S/10

अध्याय-१

# श्रमनीति

## विषय प्रवेश

20.201
(1-20)

S/10

—भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

**'Labour Policy'** पुस्तक जो मा० श्री ढेंगड़ी जी, गोखले जी व मेहता जी द्वारा लिखी गई है। यह प्रस्तुत पुस्तिका उसी पुस्तक के अध्याय क्र० १ की हिन्दी रूपान्तर है।

इसके अनुवादक हैं लखनऊ विश्वविद्यालय के वाणिज्य विभाग के डा० महेन्द्रप्रताप सिंह।

इसीप्रकार शेष १९ अध्यायों के भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये गये हैं।

—प्रकाशक

# विषय-प्रवेश

नेशनल कमीशन ऑन लेबर, जिसे राष्ट्रीय श्रम आयोग कहेंगे, के सम्मुख दो कार्य हैं :—

(१) श्रम के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों का एक वृहत पुनर्वेक्षण और (२) ऐसी संस्तुतियां करना जो भविष्य के लिए मार्ग-प्रदर्शक रेखायें बन सकें।

भारतीय मजदूर संघ के विचार-प्रस्ताव को समझने और उसका स्वागत करने के लिये भारतीय श्रम-आन्दोलन में भारतीय मजदूर संघ की भूमिका का एक सूक्ष्म पुनर्वेक्षण करना आवश्यक होगा। इसके लिये हम साथ में निम्नलिखित साहित्य भी प्रस्तुत कर रहे हैं :—

(अ) भारतीय मजदूर संघ ही क्यों ?

(ब) भारतीय मजदूर संघ स्मारिका,

(स) महामंत्री की रिपोर्ट (१९५५-१९६७)

(द) बैंकिंग-रचना सम्बन्धी विभिन्न विशेषतायें

उपरोक्त साहित्य पर दृष्टिपात करने से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होंगी—

(अ) भारत के ट्रेड यूनियन आन्दोलन में भारतीय मजदूर संघ की भावात्मक आधार पर एक अलग ही विचार-प्रस्तावना है।

(ब) इसने भारत के सभी भागों और सभी प्रमुख उद्योगों में ट्रेड-यूनियनों और मौलिक विचारों के अनुसार प्रशिक्षित श्रमिकों की एक अखिल-भारतीय आधार शिला उत्पन्न करके अपना प्राथमिक कार्य पूर्ण कर लिया है।

(स) आर्थिक प्रगति की स्थिति के लिये वह पूर्ण संतुलित व तत्पर है।

भारतीय मजदूर संघ के इतिहास और विकास के उपरोक्त तथ्य और उसकी वर्तमान स्थिति यह अनिवार्य बनाते हैं कि राष्ट्रीय श्रम आयोग की प्रश्नावली के प्रति उसकी विचार-प्रस्तावना श्रम आन्दोलन के सामान्य अंगों की अपेक्षा भिन्न हो। इस विषय का विस्तृत विवेचन हम अपने मौखिक प्रस्ताव के समय करेंगे।

इसी पार्श्व भूमिका में हम राष्ट्रीय श्रम आयोग के निर्देशित कार्यों के क्षेत्र में आने वाले विषयों पर अपने विचारों का प्रस्ताव कर रहे हैं। इन विचारों का प्रस्तुतीकरण एक लघुशोध ग्रन्थ के रूप में किया गया है। प्रथमतः हम भारत में श्रम आन्दोलन के इतिहास का एक आलोचनात्मक विवेचन करेंगे। तत्पश्चात हम 'श्रम आन्दोलन से राष्ट्र की अपेक्षाओं' पर एक वक्तव्य देंगे और चालू आर्थिक स्थितियों के सन्दर्भ में उसके निहित अर्थों की परीक्षा करेंगे। इसके पश्चात हम श्रम-कानून और सरकारी–नीति के प्रभावों पर विचार करेंगे। तदुपरान्त हम भारतीय श्रमिकों के कार्य करने और जीवनयापन के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत विवरण देंगे। इसी विश्लेषण के दौरान हम राष्ट्रीय श्रम आयोग की संचारित सम्पूर्ण प्रश्नावली का ध्यान रखते हुये विभिन्न विषयों पर अपने विस्तृत सुझाव प्रस्तुत करेंगे। अन्त में हम नीति के महत्वपूर्ण पहलुओं पर नियन्त्रण करने वाले सिद्धान्तों के रूप में कुछ निश्चित आधारभूत सम्बोधों का प्रतिपादन करेंगे। हमें आशा है कि राष्ट्रीय श्रम आयोग अपने कार्य में हमारे योगदान को समझने में हमारे वैचारिक प्रस्ताव को सहयोगी और कुशल पायेगा।

## इतिहास की समीक्षा

भारत के श्रम आन्दोलन के इतिहास और विकास पर अनेक प्रख्यात लेखकों ने पुस्तकें लिखी हैं। यहां पर यह आवश्यक नहीं कि उनके द्वारा

प्रणीत सभी बातों का पुनर्कथन किया जाये। परन्तु इन लेखकों की योग्यता, प्रमाणिकता और प्रयत्नों के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हुए भी यह कहा जा सकता है कि उन्होंने भारतीय श्रम आन्दोलन का जो विवरण दिया है वह पक्षपात और राजनीतिक झुकाव से प्रभावित हैं और इसका प्रतिफल यह है उनसे हमें आन्दोलन का एक पूर्ण और व्यावहारिक परिज्ञान नहीं मिलता है। इस कारण यह आवश्यक समझा गया है कि वर्तमान वस्तु–स्थिति के आकलन और भावी नीति के प्रतिपादन के लिये निकट भूत की घटनाओं का एक सूक्ष्म विवेचन किया जाये।

भारत के श्रम आन्दोलन के निकट भूत के इतिहास पर विचार करने से पहिले यह कहना अप्रसांगिक नहीं होगा कि उद्योगों में मानवीय सम्बन्धों के क्षेत्र में भारत का एक महान योगदान रहा है। श्रमनीति का प्रतिपादन जो शुक्रनीति, महाभारत के सर्गों और अन्य पुरातन साहित्य में उपलब्ध है, उसे यदि आधुनिक मान–दण्डों से देखें तो भी उसे हमें उन्नत, विवेकपूर्ण और सबल मानना पड़ेगा। समस्त भारतीय दर्शन जीवन के संलिष्ट दृष्टिकोण पर आधारित होने के कारण उन विचारों में बहुत कुछ है जिसका अनन्त महत्व उन व्यक्तियों के लिए है जो सबल सामाजिक आधार शिला के निर्माण के लिये सचेष्ट हैं, अथवा प्राचीन और अधिक वैज्ञानिक शब्दों में, जनसाधारण के मिलन (लोक–संग्रह) और सह–प्रचलन (लोक यात्रा) के लिये प्रयत्नशील हैं। कदाचित धर्मनिरपेक्षिता प्रगतिशीलता और उसके अवैज्ञानिक पर्य्यायों की प्रेतबाधा को महत्व देने के कारण ऐसा हो सकता है कि इन पुरातन विवेक-पूर्ण शब्दों को ठीक प्रकार से न समझा जाये और सन्दर्भ होते हुये भी छोड़ दिया जाए।

निकट भूत में गत शताब्दी के अन्तिम दशकों में श्रम को संगठित करने, समान मांगों के प्रतिपादन और उनकी शिकायतों को दूर करने की दिशा में कुछ पहिले व्यक्तिगत प्रयत्न किये गये। ऐसे अनेक मामलों में उनका स्वरूप तदर्थ समितियों का था। बम्बई और मद्रास में समय

समय पर आवश्यकतानुसार कुछ हड़ताल-कमेटियां बनाई गयीं। परन्तु ये कमेटियाँ कभी भी स्थायी आधार नहीं बना सकीं। सरकार और सेवायोजक (मालिक) दोनों ही श्रमिकों के कार्यक्रमों के प्रति शत्रुता का व्यवहार करते रहे। परन्तु फिर भी कुछ प्रख्यात व्यक्तियों-विशेषतया श्री लोखण्डे की स्मरणीय लगन के फलस्वरूप काफी मात्रा में मार्गदर्शक कार्य हुआ, जिन्हें भारतीय ट्रेड यूनियन आन्दोलन का जनक कहा जा सकता है। स्थायी आधार पर एक ट्रेड यूनियन बनाने का पहला व्यवस्थित प्रयत्न बम्बई और कलकत्ता के पोस्टल आफिसों में सन १९०६ में किया गया। इन प्रयत्नों का प्राथमिक स्वरूप तो क्लबों का था, परन्तु शीघ्र ही वह नियमित रूप से कार्य करने वाली ट्रेड यूनियनों में बदल गया।

प्रथम महायुद्ध मूल्य वृद्धि के कारण सन् १९१६–१७ में एक सामान्य उथल–पुथल उत्पन्न की और श्रमिकों के स्वार्थों के संरक्षण के लिये अनेक यूनियनों का निर्माण किया गया। यह महत्वपूर्ण है कि आज दिन तक श्रमिकों को मूल्य वृद्धि के विरुद्ध सुरक्षा के लिए संगठित करना ही एक प्रमुख कारण रहा है। भारतीय ट्रेड यूनियन आन्दोलन को अभी भी श्रमिकों के जीवन निर्वाह के स्तर की वास्तविक अर्थों में वृद्धि करने के निमित्त अगला अनुलोम या आक्रमक पग उठाना शेष है। जैसा भी हो यह तो सत्य है ही कि प्रथम महायुद्ध के काल में श्रम आन्दोलन का आकार बढ़ा और आधारभूत विषय बढ़ते हुए मूल्यों से सुरक्षा का था। इस काल में २-३ सप्ताह चलने वाली पहली हड़ताल बम्बई के डाक वितरकों ने की। अन्ततः सरकार ने डाक-वितरकों की मांगों को मान लिया और उन्हें युद्ध–कालीन–भत्ता देना स्वीकार कर लिया। इस घटना से सारे देश के पोस्टल यूनियनों के एकीकरण को प्रेरणा मिली। इसी से टेक्सटाइल कर्मचारियों को भी प्रेरणा मिली जो डा० बैप्टिस्टा के नेतृत्व के चारों ओर एकत्रित हो गये। सालिसिटर श्री जिनवाला ने भी श्रम आन्दोलन को मूल्यवान सहायता दी। इसी अवधि में पोर्टट्रस्ट यूनियनों का भी संगठन हुआ।

सन् १९१९ से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी ट्रेड यूनियन आन्दोलन में भाग लेना प्रारम्भ किया। इसका मुख्य दृष्टिकोण यह था कि ट्रेड यूनियों को ब्रिटिश से संघर्ष करने के लिये एक अस्त्र के रूप में उपयोग किया जाये परन्तु उसने प्रारम्भ में श्रम आन्दोलन के लिये कुछ निर्माणात्मक और अच्छा कार्य भी किया। श्री खापर्डे के सभापतित्व में भारत सरकार ने एक पोस्टल इन्क्वायरी कमेटी नियुक्त की जिसने काफी सामग्री संग्रहीत की। इसने ग्रेडों की अपेक्षा टाइम-स्केल की मांग को बढ़ावा दिया। यद्यपि उस समय यह मांग चन्द्रमा की मांग करने के समान माना गया परन्तु इस मांग के समर्थन में अखिल भारतीय पोस्टल यूनियन का निर्माण हो गया जिसने एक आन्दोलन किया और अन्तिम सफलता प्राप्त की। ट्रेड यूनियन आन्दोलन को इस प्रकार एक दृढ़ आधार मिला और कुछ समय के लिए पोस्टल यूनियन एक आदर्श बन गयी।

इसी काल में एक अन्य विशाल यूनियन रेलवे के लिये बनी। सन् १९१९ से पहिले भारतीय रेलों पर एक यूनियन काम कर रही थी जिसका नाम एन्गलो-इण्डियन रेलवे मेन्स फेडरेशन आफ इंडिया एण्ड बर्मा था। यह केवल एण्गलो इण्डियन ड्राइवरों, गार्डों और ए ग्रेड स्टाफ के स्वार्थों का ध्यान रखता था। भारतीय कर्मचारियों की आवाज इसके कार्यकलापों में बिल्कुल नहीं थी। इसलिये सन् १९१९ में इगतपुरी में जी० आई० पी० रेलवे में काम करने वाले कर्मचारियों की पहली कान्फ्रेंस की गई। जिसने कुछ मांगें रखीं और हड़ताल की धमकी दी। इसकी कुछ मांगों को मान लिया गया और जी० आई० पी० रेलवे मेन्स यूनियन ने दृढ़ता से कार्य को आरम्भ किया। इसके बाद सारे देश की रेलों में आन्दोलन व्याप्त हो गया और अनेक केन्द्र स्थापित किये गये। इसी समय अधिकारियों द्वारा दिए गये आश्वासनों के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में झगड़ा आरम्भ हुआ। सरकार ने एक द्विजन-कमेटी बनाई जिसमें उस समय के 'टाइम्स आफ इण्डिया' के सम्पादक और न्यायमूर्ति

चन्द्रावरकर थे। इस कमेटी ने सन् १९२१–२२ के काल में कार्य किया और अन्त में इसने कर्मचारियों के विवादों को मान्य किया।

इस समय तक अनेक सक्रिय ट्रेड यूनियन नेता जिनमें सर्वश्री एन. एम. जोशी, जषवाला, जिनवाला, एस० सी० जोशी, वी० जी० दल वी बैप्टिस्टा इत्यादि प्रमुख है, रंगमंच पर आए और उन्होंने विशेषतया पोर्ट ट्रस्ट, डाक स्टाफ, बैंक कर्मचारियों (प्रमुखतः इम्पीरियल बैंक और करेंसी), कस्टम, आयकर निम्नश्रेणी स्टाफ इत्यादि के शक्तिशाली यूनियनों का संगठन किया।

कम्युनिस्टों ने भारत के ट्रेड यूनियन आन्दोलन में प्रवेश करने का निर्णय सन् १९२३ में लिया। यह निर्णय रूस में लिया गया था और रूस ने इस कार्य की सहायता के लिए बड़ी मात्रा में धन और कार्यकर्त्ता दिये। ग्रेट ब्रिटेन से भी बड़ी संख्या में साम्यवादी कार्यकर्ता आए। सन् १९२५–२६ तक में अनेक विदेशी व देशी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों को साम्यवादी सिद्धान्तों में दीक्षित करने में सफल हो गये और सर्वश्री डांगे मिराजकर, मीमकर, जोगलेकर आदि व्यक्तियों ने गैर सरकारी (प्रमुखतः टेक्सटाइल श्रमिकों) कर्मचारियों को संगठित करना प्रारम्भ कर दिया। पहले उन्होंने नई यूनियनों का निर्माण करने का प्रयत्न किया परन्तु अपने प्रयत्नो में असफल हो जाने पर उन्होंने पुरानी यूनियनों में ही अपने जनता से सम्बन्धों के आधार पर घुसने का प्रयत्न किया और सभी विध्वंशकारी रीतियों के माध्यम से तत्कालिक नेतृत्व के विरोध में प्रचार किया।

इस समय बम्बई में टेक्सटाइल श्रमिकों के क्षेत्र में राष्ट्रीय नेतृत्व सर्वश्री एन० एम० जोशी, आर० आर० वाखले और मोहम्मद रज्जब का था। उन्होंने सन् ११२२–२३ में प्रथम टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन स्थापित की थी। सन् १९२५–२६ में कम्युनिष्ट भी इन यूनियनों में घुस आये और वृहत आधार पर हड़तालें आयोजित की गयीं। इस संघर्ष

में सन् १९२६–२७ की ६ माह पुरानी हड़ताल प्रसिद्ध है। इसके और अन्य असंतोष के प्रकटीकरण के फलस्वरूप श्रम सम्बन्धी रायल कमीशन की नियुक्ति से पहले एक फॉकेट कमेटी नियुक्ति की गई और सरकार ने शीघ्रता से श्रम सम्बन्धी १९२९ का विधेयक बनाया।

परन्तु श्रम कानून का इतिहास १९२९ के विधेयक से भी पुराना है और उसकी उत्पत्ति मद्रास की घटनाओं से सम्बद्ध है। श्री वी० पी० वाडिया के योग्य नेतृत्व में सन् १९२५ में बकिंघम और करनाटक मिल्स मद्रास ने एक हड़ताल घोषित की थी। मिल मालिकों ने इस कार्य को मैर कानूनी कार्य मानकर टार्ट के प्राविधान का आवाहन करते हुए एक मुकदमा प्रसंविदा अधिकारों का दायर किया और हड़ताल के विरुद्ध स्थगन आदेश और क्षतिपूर्ति की मांग की। वादी की इच्छा के अनुरूप एक स्थगन आदेश जारी किया गया और हड़ताल पुनः प्रारम्भ हो गई। इसी पार्श्व भूमिका में श्री एन० एम० जोशी ने ट्रेड यूनियनों के अधिकारों के लिए एक विधेयक पेश किया परन्तु तत्कालीन उद्योग, वाणिज्य और श्रम विभाग के कार्यवाहक सदस्य ने स्वयं इस सम्बन्ध में कानून बनाने का आश्वासन दिया और ट्रेड यूनियन एक्ट १९२६ पास किया गया। इसके पूर्व वर्कमेन्स कम्पेंशेशन एक्ट भी पास किया गया था।

श्रम कानून के प्रमुख अंगों और विरोधाभास में **AITUC** का निर्माण दोनों ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (**ILO**) के कार्यकलापों से हुआ। ऐसा समझा गया कि प्रथम महायुद्ध की उत्पत्ति विकसित और अविकसित देशों की विषमताओं के कारण हुई थी और वार्सा की सन्धि के फलस्वरूप इस खराबी को दूर करने के लिये दो संस्थाओं, लीग आफ नेशंस और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का निर्माण किया गया।

**ILO** के प्रारम्भिक सदस्य के रूप में भारत को भी स्वीकार किया गया। यह एक त्रि-पक्षीय संस्था है जिसमें प्रत्येक सदस्य-देश अपने

प्रतिनिध नामजद करता है। **ILO** की प्रारम्भिक कान्फ्रेन्स १९१९ के लिए भारत सरकार ने श्री एन० एम० जोशी को श्रम सदस्य नामजद किया और इसके लिये श्रमिकों के लिए अत्यधिक सहयोग करने वाली संस्था सोशल सर्विस लीग से राय ली गई। **ILO** के पास एक ऐसा प्रभावी यत्र है जिसकी सहायता से वह यह सम्भव कर पाता है कि विभिन्न सरकारें उसके कन्वेन्शनों और संस्तुतियों पर कुछ अमल अवश्य करें, भारत के सभी श्रम कानून इन कन्वेन्शनों और संस्तुतियों से प्रभावित हैं। **ILO** की प्रतीति कमेटी को संतुष्ट करने के निमित्त ही भारत के प्रथम केन्द्रीय श्रम संगठन का निर्माण भी हुआ था। यह कमेटी चाहती थी कि सदस्य देशों के नामजद श्रम-सदस्यों का सम्बन्ध देश के सर्वाधिक प्रतिनिधि श्रम संगठन से रहे। सन् १९२० में **AITUC** के निर्माण का प्रमुख कारण **ILO** के प्रथम वार्षिक कान्फ्रेन्स के लिये श्रम-सदस्य का चुनाव करना था। इस प्रकार से श्रम कानून और केन्द्रीय श्रम संगठन के निर्माण दोनों में ही भारतीय ट्रेड यूनियन आन्दोलन को वास्तविक उत्साह एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन अर्थात **ILO** से मिला जिसको सरकार ने आश्वासन दिये थे। इस प्रकार से भारतीय ट्रेड यूनियन आन्दोलन के लिए गुलामी की मनोवृत्ति और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिस्थितियां एक जन्मकालीन अभिशाप बन गये और आज भी इन विकृतियों से वह स्वतन्त्र नहीं हो सका है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि अपने प्राविधिक पक्ष में भी ट्रेड यूनियनों ने कभी संघर्ष नहीं किया और न भारतीय श्रम की वास्तविक मजदूरी के सुधार के लिये विजय ही प्राप्त की और सन् १९१६ के युद्धकालीन भत्तो से लेकर अब तक उसके प्रयत्न केवल मजदूरी के वास्तविक मूल्य के कुप्रभावों को कम करने में ही लगे रहे। यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसे उलटना ही आवश्यक है यदि राष्ट्रीय श्रम आन्दोलन के माध्यम से कोई राष्ट्र निर्माणकारी क्रिया को प्राप्त करना अभीष्ट है।

इस प्रकार हम देख चुके हैं कि भारत के प्रथम केन्द्रीय श्रम संगठन (**AITUC**) का निर्माण इसलिये नहीं हुआ कि तत्कालीन यूनियन ऐसा

संगठन चाहते थे परन्तु इसलिये हुआ क्योंकि ऐसे निर्माण की मांग अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां कर रही थीं। हम बाद में यह भी देखेंगे कि श्रम आन्दोलन के दूसरे केन्द्र–**INTUC** के निर्माण का विचार भी राजनीतिक नेताओं ने श्रमिकों की आवश्यकता के अनुरूप न करके ऊपर से दबाव के कारण ही किया। यह भारत के श्रम आन्दोलन का बहुत ही अनोखा लक्षण है और बहुत से स्वतन्त्र यूनियनों के पाये जाने का स्पष्टीकरण है। यूनियनों के परस्पर विरोध के प्रश्न पर भी यह प्रकाश डालता है। श्रम सम्बन्धी नीति और कानून के प्रश्नों पर कोई भी निर्णय यदि श्रम आन्दोलन के इस इतिहास की उपेक्षा करके किया जायेगा तो अवश्य ही यथार्थता से परे होगा। दो प्रमुख परिस्थितियों का यहां विचार करना आवश्यक होगा जो **AITUC** के निर्माण के समय थीं। उस समय सारे देश में फैला श्रमिकों का अकेला अखिल-भारतीय संगठन आल इण्डिया रेलवे मेन्स फेडरेशन था। इस फेडरेशन ने यह निर्णय लिया कि वह **AITUC** से सम्बद्ध नहीं होगा, यद्यपि फेडरेशन के व्यक्तिगत यूनियनों को यह छूट दी गई कि यदि वे चाहें तो यूनियन स्तर पर उससे सम्बद्ध हो सकती हैं। दूसरी महत्वपूर्ण परिस्थिति यह थी कि सरकारी कर्मचारियों को **AITUC** की सदस्यता ग्रहण करने पर रोक थी क्योंकि उन्हें औद्योगिक श्रमिक नहीं समझा जाता था।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम आन्दोलन के प्रति **AITUC** का रुख ही देश के श्रमिक नेताओं के बीच होने वाले बहुतांश झगड़ों के लिये प्रमुख कारण रहा है। प्रारम्भ में **AITUC** तो **Second International** से सम्बद्ध था, परन्तु १९२२-२३ में रूस ने **Third International** बनाया, जिसके द्वारा समस्त बिश्व के ट्रेड यूनियनों में अनेक गुप्तचर भेजे गये। उन्हें रूस से धन और निर्देश मिलते थे और वे रूस के राज-नीतिक स्वरूप के उद्देश्यों की ही पूर्ति करते थे। भारत के कम्युनिस्टों ने श्री एम० एन० राय के नेतृत्व में जिन्हें बाद में बहिष्कृत कर दिया

गया था, सैनिक क्रान्तिकारी कार्यवाही करना प्रारम्भ किया जिसके फलस्वरूप कानपुर और मेरठ में प्रख्यात षड़यन्त्र हुए। आरम्भ में तो इन कम्युनिस्टों की सहायता श्रम–नेतृत्व के सभी अंगों ने की। इन दोनों षड़यन्त्रों ने तो पंडित जवाहरलाल नेहरू और श्री सुभासचन्द्र बोस के समान प्रख्यात व्यक्तित्यों को भी श्रम के क्षेत्र में सर्व श्री डांगे, मिराजकर और सरदेसाई आदि की सहायतार्थ खींच लिया। परन्तु द्वितीय या तृतीय इन्टर नेशनल की सदस्यता को लेकर **AITUC** में भीषण मतभेद उत्पन्न हुआ। श्री एन० एम० जोशी ने द्वितीय और कम्युनिस्टों ने तृतीय इन्टर नेशनल में सम्मिलित होने का समर्थन किया। और कम्युनिस्टों ने इस प्रश्न पर यूनियनों में तोड़ फोड़ करनी प्रारम्भ की और उन सब पर सभी प्रकार की रीति नीतियों द्वारा आक्रमण किया जो **AITUC** को रूस का प्रतिनिधि बनने से रोकना चाहते थे। सन् १९२९ की नागपुर कान्फ्रेंस में कम्युनिस्टों ने इस विवाद को **AITUC** के तत्कालीन अध्यक्ष श्री जवाहरलाल की मौन सम्मति पर भारत के प्रथम राष्ट्रीय श्रम संगठन को तृतीय इन्टर नेशनल का सदस्य बना दिया। ऐसा कहा जाता है कि **AITUC** का यह वोट स्पष्ट बहुमत से नहीं वरन छलछद्म द्वारा प्राप्त किया गया था।

कम्युनिस्टों के इन ढंगों से दुखी होकर श्री एन० एम० जोशी **AITUC** से बाहर निकल आये और उन्होंने एक नया केन्द्रीय संगठन नेशनल फेडरेशन आफ लेवर के नाम से बनाया। इस नये संगठन और **AITUC** के मध्य संघर्ष का दूसरा कारण रायल कमीशन से सहयोग के प्रश्न पर उठा। श्री एन० एम० जोशी ने श्रमिकों का पक्ष रायल कमीशन के समक्ष प्रस्तुत किया और कम्युनिस्टों ने सहयोग नहीं दिया। क्योंकि कम्युनिस्टों का विचार ब्रिटिश सरकार से असहयोग की थी जो कांग्रेस नीति के अनुरूप था इसलिये भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने उनका समर्थन किया।

तद्पुरान्त सन् १९४७ तक ट्रेडयूनियन आन्दोलन में एकता और

विघटन की अनेक स्थितियां उत्पन्न हुयीं और ढेंकुल के खेल के अनेक विभिन्न दृश्य देखने में आये। कम्युनिस्टों द्वारा **AITUC** पर नियन्त्रण स्थापित करने पर शीघ्र ही कम्युनिस्टों के खेमें में विघटन प्रारम्भ हुआ। बामपक्षीय विप्लववादियों ने एक नया संगठन **RED-BODY** के ध्वज के नीचे प्रारम्भ किया। परन्तु यह संघर्ष अल्पकालीन था और एक वर्ष के भीतर ही रेड बाडी समाप्त होकर **AITUC** में मिल गई। इसी प्रकार बहुत दीर्घकाल तक **N. F. L.** और **AITUC** के बीच एकता स्थापित करने के लिये अनेक प्रयत्न किये गए। इन प्रयत्नों में राजनीतिक परिस्थितियों के परिवर्तनों ने भी सहायता पहुंचाई। सन १९३५ के विधेयक द्वारा जो प्रान्तीय स्वायत्तता स्थापित की गई, जिसके द्वारा श्रमिकों को रजिस्टर्ड यूनियनों के समूह से प्रतिनिधित्व के आधार पर वोट देने का अधिकार मिला जिसके द्वारा वे प्रान्तीय विधायिकाओं में अपने प्रतिनिधि भेज सकती थी, इस पार्श्व-भूमिका में एकता के प्रयत्न बहुत ही आवश्यक हो गये। और सर्व श्री जवाहरलाल नेहरू, जयप्रकाश नरायन, एन० एम० जोशी, जमुनादास-मेहता, एस० सी० जोशी और एम० एन० राय (जो उस समय डा० महमूद बनकर कार्य कर रहे थे) की एक संयुक्त समिति बनाई गई और सन १९३८ में **NFL** की समाप्ति हो गई और सभी पुनः **AITUC** में कार्य करने लगे।

यहाँ सन् १९३५ के एक्ट के श्रम आन्दोलन पर एक प्रभाव का दर्णन करना आवश्यक है। भारत सरकार विधेयक १९१५ के अनुसार प्रथम विधायिकाएं १९२१ में बनी और केन्द्रिय तथा प्रान्तीय विधायिकाओं में श्रम को प्रतिनिधित्व नामजदगी द्वारा दिया गया। यह प्रबंध केंद्र में सन् १९४७ तक चलता रहा और इन वर्षो में अर्थात् १९२१–१९४७ तक श्री एन० एम० जोशी ने श्रम का केंद्रीय व्यवस्थापिका में प्रतिनिधित्व किया। प्रांतीय स्वायत्तता १९३५ में मिलने पर, जैसा पहिले कहा जा चुका है रजिस्टर्ड यूनियनों के समूह से

सदस्यता के आधार पर श्रम प्रतिनिधि चुने जाते थे । इसके कारण बोगस सदस्यता प्रारंभ हो गई। प्रत्येक यूनियन ने यह प्रयत्न किया कि अधिक वोट–शक्ति प्राप्त करने के लिए अपनी सदस्यता अधिक दिखलाये । इसके प्रतिफल के रूप में बोगस लेखा रीतियां अपनाई जाने लगीं। कम्यूनिस्टों ने ट्रेडयूनियन आन्दोलन में नियोजित छलसाधन द्वारा बोगस सदस्यता और लेखा कार्य में हद कर दी। राजनीति का ट्रेडयूनियनों में प्रभावी आक्रमण हुआ।

ट्रेडयूनियन आंदोलन के इन्हीं परिवर्तनों के पीछे पीछे द्वितीय महायुद्ध का पदार्पण हुआ, जिनके अनुसार शिखर पर एकता की छायात्मक समरूपता दिखती थी और नीचे तह में सभी के साधनों से उत्पादित दारुण कलह। प्रारम्भ में कम्युनिस्टों ने सभी युद्ध संबंधी प्रयासों का विरोध किया। कांग्रेस ने भी यह ब्रिटिश बिरोधी विचारधारा को पसंद किया। श्री एन० यम० जोशी ने तटस्थ नीति अपनाई। उनकी वैचारिक स्थिति को **AITUC** ने अधिकारिक रूप से स्वीकृति दे दी और नई प्राप्त एकता के स्पष्ट रूप से ध्वस्त होने को रोकने के लिए विभिन्न यूनियनों को स्वतंत्रता दे दी गई, परन्तु एन० एम० राय ने आश्चर्यजनक रूप से एक दूसरा ही पलटा खाया और बहुत सक्रियता से युद्ध प्रयासों का समर्थन किया। इस कार्य के लिए उन्होंने एक अलग संगठन खड़ा किया और सरकार ने इस फेडरेशन को बढ़ावा देने के लिए काफी वित्तीय सहायता और समर्थन दिया। यह सत्य है कि बाद में जब रूस मित्र राष्ट्रों से मिल गया तो कम्यूनिस्टों ने भी युद्ध प्रयासों में सहायता देने का निर्णय किया और इसके निमित्त उन्हें जेल से रिहा किया गया जब कि राष्ट्रवादी जेलों में पड़े रहे। युद्ध काल में **ILO** की बैठक बिल्कुल नहीं हुई और जब सन् १९४५ और १९४६ में परिवर्तित परिस्थितियों में यह बैठक हुई तो सरकार ने बिना पूछे ही श्रमप्रतिनिधियों को नामजद कर दिया।

इस समय भारत सरकार श्रम मोर्चे पर काफी सक्रिय हो गई

थी और उसने वायसराय की कार्यकारी काउंसिल के तत्कालीन श्रम सदस्य डा० बी० आर० अम्बेदकर और उनके सहायक के रूप में एस० सी० जोशी को श्रम के रायल कमीशन के सुझावों पर कार्यवाही करने के लिए नियुक्त किया । उनकी प्रेरणा से एक तथ्य–अन्वेषक कमेटी की नियुक्ति तत्कालीन परिस्थितियों के अध्ययन के लिए की गई और १९४५–४७ की अवधि में वर्तमान श्रम–कानून के काफी बड़े हिस्से का ढांचा तैयार हो गया और संराधन एवं अन्य यन्त्रों की पूर्ण कल्पना की गई । सन् १९४७ में जब राष्ट्रीय सरकार बनी तो तत्कालीन मुख्य श्रमायुक्त श्री एस०सी० जोशी को श्रम कानून के विभिन्न प्राविधानों के क्रियान्वयन का कार्य सौंपा गया । आज का सम्पूर्ण ढांचा उनके और अपने आज के राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि के कार्यों के प्रति कृतज्ञ हैं ।

राष्ट्रीय सरकार के निर्माण के साथ ही श्री बल्लभभाई पटेल ने बड़ी दृढ़ता से एक नए केन्द्रीय श्रमसंगठन के निर्माण की वकालत की । उनका यह विश्वास था कि राष्ट्रीय सरकार को संगठित श्रमिकों का समर्थन अवश्य प्राप्त होना चाहिए और इस कार्य के लिए **AITUC** पर निर्भर नहीं रहा जा सकता, क्योंकि वह विदेशी समर्थन पर पल रहा है और विदेशी मालिकों के इशारे पर उनकी इच्छानुसार अपना रंग बदलता रहा है । इसलिए सन् १९४७ में भारतीय राष्ट्रीय ट्रेडयूनियन कांग्रेस का निर्माण किया गया । इस कार्य के निमित्त श्री बल्लभभाई पटेल को बहुत हद तक अहमदाबाद के मजदूर महाजन के श्रमिकों पर निर्भर रहना पड़ा, उसमें से बहुत अधिक लोगों को इस कार्य में लगाया गया । शक्ति प्राप्त करने के बाद कांग्रेस को गर्व उत्पन्न हो गया । सरकार प्रायः **INTUC** के लिए खुले आम पक्षपात करने लगी और इस प्रकार से **INTUC** का आकार और ख्याति बढ़ी ।

ऐसा कहा जाता है कि **INTUC** के आदर्शवाद की उत्पत्ति

श्री गांधी जी के द्वारा अहमदाबाद में मजदूर–महाजन के निर्माण के समय बनाये गये पूंजीपतियों के ट्रस्टीशिप और मजदूरों की सहकारी कार्य–भक्ति के सिद्धान्तों से हुई। इस आदर्शवाद में भारतीय संस्कृति के मूल्यों की एक झलक अवश्य ही है परन्तु इस बिषय में यह विचार प्रस्तावना अधूरी है और भगवतगीता और अन्य समान ग्रन्थों में विकसित अपने पुरातन सिद्धान्त की कल्याणकारी व्यावहारिक पूर्णता का भी इसमें अभाव है, इस तर्क के अतिरिक्त श्रम पर महात्मा गांधी के सिद्धांतों के सम्बंध में यह अवश्य कहा जायगा कि उनकी कल्पना एक बहुत ही संदेहास्पद परिस्थिति की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए की गई थी और उसमें व्यवहारिक सफलता के प्रोत्साहकों और दृढ़ दार्शनिक आधार का अभाव ही है। अहमदाबाद का रंगमंच, जहां इस सिद्धांत की परिभाषा की गई थी, इसकी पार्श्वभूमिका में सन् १९२६-२७ में हुई बम्बई की ६ माह लम्बी टेक्सटाइल कर्मचारियों की हड़ताल को हम सामने रख सकते हैं। बहुत से जानकारी रखने वाले व्यक्तियों का कहना है कि अहमदाबाद के लिए मिल मालिक बम्बई की हड़ताल चाहते, थे जिससे वे अहमदाबाद में अपने नव-निर्मित मिलों के लिए बाजारों की स्थापना कर सकें। इस उद्देश्य के लिए ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने एक ओर तो बम्बई के हड़तालियों की आर्थिक सहायता की और दूसरी ओर अहमदाबाद में अपने ही श्रमिकों के बीच गांधी जी को अपने सत्य और अहिंसा के सबन्धों के प्रयोग के लिए बुलाया। यद्यपि इस समस्त प्रक्रिया ने पूंजीपतियों के उद्देश्यों को भलीभांति पूरा किया, गांधी जी के पास अपने आलोचकों को यह बतलाने के लिए तर्क का अभाव था कि एक राष्ट्रीय नेता के रूप में उन्होंने बंबई की हड़ताल का फैसला क्यों नहीं कराया और अहमदाबाद के मजदूर महाजन में ही अपने खेमा क्यों गाड़े पड़े रहे। अपने प्रारंभ से ही आज तक **INTUC** पूंजीपतियों और सरकार जैसे मालिकों के हाथ में खेलती रही, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती

है । वास्तव में राजनीतिज्ञों द्वारा श्रमिकों को सभी कार्यों में सभी प्रकार से धोखा ही मिलता है और उनकी अज्ञानता का शोषण अन्य मालिकों की स्वार्थ-सिद्धि के लिए किया जाता है। किसी भी श्रम-आयोग का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि भारतीय श्रम परिस्थितियों के इस आधार भूत तथ्य की पकड़ कर ले और वह यदि कोई यथार्थ और अच्छा कार्य करने की इच्छा रखता है, तो इसकी जड़ो को उखाड़ फेंके ।

वर्तमान के समीप आने पर हम घटनाओं के इतने करीब आ जाते हैं कि कोई मूल्यांकन करना कठिन है । स्वतन्त्रता के बाद **INTUC** ने अपनी कार्यवाहियों को सारे देश में फैलाया और भारत के सर्वाधिक प्रतिनिधि श्रमिक संगठन होने का दावा किया। अपने विकास के प्रारम्भिक काल में उसने अहमदाबाद के प्रयोगों से बहुत कुछ पाया । बम्बई की कांग्रेस सरकार में सन् १९३७ में श्रममंत्री के तत्कालीन सेक्रेट्री के नाते श्री गुलजारीलाल नंदा ने सन् १९३८ के बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक को पास कराने जैसे कुछ प्रयोग किए । इस प्रकार के प्रयोगों से मिले अनुभवों ने भारत सरकार की नीतियों और **INTUC** के विकास को अत्यधिक प्रभावित किया ।

श्री एम० एन० राय द्वारा युद्धकाल में संस्थापित **NFL** कुछ समय तक चला। परन्तु फिर कांग्रेसी खेमें में विघटन हुआ और समाजवादी श्री जयप्रकाशनारायण के नेतृत्व में बाहर निकल आए और बाद में बबी समाजवादी पार्टी के संरक्षण में एक तृतीय श्रम संगठन हिंद मजदूर सभा का निर्माण हुआ । सर्व श्री एम०एन० राय और वी०वी कर्निक ने हिन्द मजदूर सभा **HMS** को अपनाया और **NFL** की प्राकृतिक मृत्यु हो गई। कुछ अन्य व्यक्ति भी थे जो इन परिवर्तनों में से किसी से प्रसन्न नहीं थे । उन्होंने सन् १९४८ में **UTUC** बनाया । बोल्शेविकों और **RSP** के विस्फोटक गुटों की धारणा कि **HMS** में समाजवादियों का एक बड़े अकेले गुट के रूप में शासन हो जावेगा, इसी धारणा का ही यह प्रमुखतः प्रतिफल था । **UTUC** के निर्माण का मुख्य उद्देश्य हय

प्रतीत होता है कि उन्हें सरकार द्वारा बनाई जाने वाली विभिन्न त्रिदलीय समितियों पर प्रतिनिधित्व करना अभीष्ट था। इस प्रकार से हमारे चार केन्द्रीय श्रम संगठनों का निर्माण हुआ, जिन्हें आज राष्ट्रीय त्रिदलीय समितियों में स्थान प्राप्त है।

इन त्रिदलीय समितियों की उत्पत्ति का कारण १९२९ और १९४३ के परिवर्तन थे। रेलवे यूनियनों के दबाव के कारण सन् १९२९ से सरकार और रेलवे यूनियनों के मध्य नियमित रूप से बैठकें होने लगीं। उस समय सर्व श्री वी०वी० गिरि और एस० सी० जोशी ने सभी श्रमिकों के हित के लिए त्रिदलीय समितियों की आवश्यकता पर बल दिया। इसी आधार पर तात्कालिक श्रम मंत्री श्री रामास्वामी मुदालियर ने सन् १९४३ में प्रथम भारतीय श्रम कान्फ्रेंस का आवाहन किया। उस समय कुछ अनुभव पोर्ट ट्रस्ट में किए गए कार्य का भी उपलब्ध था, जिसके अनुसार तृतीय दशक के पूर्वार्ध में नामजद श्रम प्रतिनिधि की व्यवस्था प्रारम्भ की गई थी। इन मीटिंगों के अनुभवों का एकत्रीकरण करके डा० अम्बेदकर ने **ILO** की सामान्य व्यवस्था के अनुसार त्रिदलीय समितियों को सन् १९४४ में स्थायित्व प्रदान कर दिया।

श्रम क्षेत्र में अभिनव प्रवेश **BMS** और **HMP** का हुआ है। इन दोनों में से पहिले के दीर्घकालीन महत्व के सम्बन्ध में अभी कुछ भी कहना जल्दबाजी होगी। पंचायत का कार्यक्षेत्र बम्बई और महाराष्ट्र के हिस्सों में ही सीमित है। दूसरे के सम्बन्ध में हमनेअपनी प्रस्तावना के प्रारम्भिक अनुच्छेदों में विभिन्न लिखित वर्णनों का संदर्भ दिया है। **BMS** के रूप में भारतीय श्रम स्थिति में पूर्णरुप से एक नवीन तत्व का प्रवेश किया है और इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता है कि चाहे वर्तमान वस्तु स्थिति किसी व्यक्ति के विश्वास को डिगा दे, भविष्य बहुत हद तक इसी के हाथ रहेगा।

भारत के श्रम के इतिहास के इस समीक्षात्मक पूर्वालोचन से अनेक

महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। उन्हें निम्नलिखित रूप से सारांशित किया जा सकता है–

(क) भारतीय ट्रेड यूनियन आन्दोलन अभी तक सुविचारित रूप से अपना कोई केन्द्र नहीं बना सका है।

(ख) भारत के अनेक केन्द्रीय श्रम संगठनों की उत्पत्ति तात्कालिक राजनीतिक आन्दोलनों में निहित है।

(ग) दो बड़े श्रम संगठनों में से **AITUC** विदेशों से अपनी प्रेरणा ग्रहण करता है जब कि **INTUC** कांग्रेस सरकार और पूंजीपतियों पर बहुत कुछ निर्भर है।

(घ) श्रमक्षेत्र में अधिकतर यथार्थ और अच्छे कार्यों के निर्माता अनेक संचरणशील और स्फूर्तिदाई व्यक्ति थे, जो राजनीति से स्वतन्त्र थे। यह तथ्य और दूसरे तथ्य जैसे अभी भी अनेक असंबद्ध श्रम यूनियनें और फेडरेशन हैं, और श्रम का असंगठित भाग बहुत विशाल है, एक बहुत ही महत्वपूर्ण विचार पर प्रकाश फेंकते हैं जिसका ध्यान श्रमनीति बनाते समय रखना चाहिए।

(ङ) भारत का श्रम कानून और त्रिदलीय समितियों का प्रसाधन **ILO** के द्वारा दिए गए माडल के अनुरूप है।

(च) भारतीय श्रम आन्दोलन ने अभी तक भारतीय श्रम की यथार्थ मजदूरी को बढ़ाने के लिए कुछ नहीं किया है और अपने जन्म के समय से ही उसका प्रमुखकार्य यथार्थ-मजदूरी के बढ़ाव को रोकना ही रहा है।

हम यही कह सकते हैं कि भारत का ट्रेड यूनियन आन्दोलन अभी उसके राजनीतिक यंत्र का ही एक हिस्सा है और अपने राष्ट्रीय जीवन

की आर्थिक व सामाजिक संस्था के रूप में योग्य स्थान को नहीं प्राप्त कर सका है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि वह अभी तक केवल अपना संगठनात्मक और कानूनी पक्ष ही विकसित कर सका है और प्राविधिक पक्ष के संदर्भ में अभाव से पीड़ित है। इसके प्रतिफल में भारतीय श्रमिक की कोई आर्थिक प्रगति नहीं हो सकी है और औद्योगीकरण की समस्त प्रक्रिया कृषि प्रेमी जनता पर लादी गई एक घटना मात्र प्रतीत होती है।

——o——

प्रकाशक—
महामंत्री
भारतीय मजदूर संघ, उत्तर प्रदेश
२, नवीन मार्केट
कानपुर

मूल्य २५ पैसे

मुद्रक—
टिप-टाप प्रिन्टर्स
२४/९१, बिरहाना रोड,
कानपुर—१
फोन नं ६९१११

अध्याय-२

# श्रमनीति

# वर्तमान आर्थिक दृश्य मीमांसा

—भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

**'Labour Policy'** पुस्तक जो मा० श्री ठेंगड़ी जी, गोखले जी व मेहता जी द्वारा लिखी गई है। यह प्रस्तुत पुस्तिका उसी पुस्तक के अध्याय क्र० २ की हिन्दी रूपान्तर है।

इसी प्रकार शेष १९ अध्यायों के भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये गये हैं।

इस अध्याय के अनुवादक हैं– लखनऊ विश्वविद्यालय के वाणिज्य विभाग के प्राध्यापक डा० महेन्द्र प्रताप सिंह। उनका मैं हृदय से आभारी हूं।

—प्रकाशक

अध्याय २

# वर्तमान आर्थिक दृष्य मीमांसा

**राष्ट्र को श्रमिक से अपेक्षायें**

श्रमिक से राष्ट्र की अपेक्षायें अल्प और सरल प्रतीत होती हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

(१) श्रमिक जन कठिन श्रम करें, आवश्यक कौशल और ईमानदारी से कार्य करें उत्तरदायित्व ग्रहण करें।

(२) उन्हें चाहिये कि उद्योग और राष्ट्र को समृद्ध बनायें।

(३) इस समृद्धि में अपना न्याययुक्त भाग प्राप्त करें और साथ में सम्पन्न बनें।

**राष्ट्रीय माँग के प्रभाव**

जो उपरोक्त माँगों को उठाते हैं और श्रमिकों से उनकी पूर्ति चाहते हैं, वे कुछ परिस्थितियों की परिकल्पना करते हैं। वे परिस्थितियाँ क्या हैं जिनके अंतर्गत उपरोक्त सूत्र की पूर्ति स्वाभाविक रूप में श्रमिकों से प्राप्त हो सकती हैं ? इस प्रकार का परीक्षण कदाचित ही कभी अपेक्षित गम्भीरता से किया जाता है। अभीष्ट प्रतिफलों की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित परिस्थितियाँ हैं जिनकी तुष्टि होनी आवश्यक हैं :—

**(अ) मनुष्य को अपने काम से लगाव रखना ही चाहिए :—**

यह भाव सही काम के लिए सही व्यक्ति के चयन के सिद्धान्त अथवा

भावी उन्नतिशील दृष्टिको। वित्तीय उत्प्रेरको, पद-प्रतिष्ठा का संतोष या मानवीय सम्बन्धों की सहायता से किया जा सकता है। साथ ही श्रमिक के लिए अच्छी कार्य परिस्थितियाँ और कार्य स्थान के निकट आवास होना भी आवश्यक है।

**(ब) उसमें प्रमाणिकता से कार्य करके उन्नति करने की योग्यता होनी चाहिए :—**

इसमें अनेक विषय सम्मिलित हैं जैसे तर्क संगत अच्छी और औद्योगिक नियोजन जो आकस्मिक सेवानिवृत्ति और कार्य-बदल का निरसन करता है और भविष्य के लिए विश्वास उत्पन्न करता है। दृढ़ प्रमोशन-नीति, अपने स्वय के योगदान के प्रतिफल में न्याय संगत भाग और इनके सम्बन्ध में सेवायोजक की मूलभूत ईमानदारी चाहिए।

**(स) उसमें काम पर अपने को विकसित करने की योग्यता होनी चाहिए–**

इसका अर्थ है सेवाकालीन प्रशिक्षण योजना, सामान्य प्रयोगों को करने की सुविधा, व्यक्ति की उन्नति के प्रचुर आंकलन और सारे प्रयासों की मान्यता।

**(द) एक व्यक्तिगत श्रमिक की प्रगति और समस्त श्रमिकों की प्रगति में कोई संघर्ष नहीं होना चाहिए :–**

इसके लिए कार्य–मूल्यांकन का समस्त विषय सामने आ जाता है जिसमें वैज्ञानिक भृत्ति–भेद, योग्यता–परिमापन, ट्रेड यूनियन अधिकार, श्रमिकों और व्यवस्थापकों की परिसीमन रेखा और उनके तत्सम्बन्धी जन्मसिद्ध अधिकार (यदि कोई हों तो), बोनस का सम्बोध, लाभ की भागीदारी, आय वितरण का सम्बोध, निर्णयकारी प्रक्रिया इत्यादि हैं।

श्रम कानून, सरकारी नीति और श्रम–न्यायपालिका के दृष्टिकोण की सिद्धता की परीक्षा इस बात से की जा सकती है कि वे कहाँ तक

उपरोक्त परिस्थितियों की संतुष्टि करने में समर्थ हैं। क्योंकि उच्चतर स्तर पर इन परिस्थितियों का स्वागत करने और प्रबल बनाने के प्रयत्न किये बिना राष्ट्रीय मांग का अनुमोदन समाप्त हो जाता है और राष्ट्रीय या जनहित के बहाने श्रमिकों के शोषण का एक प्रयास प्रतीत होने लगता है।

**सरकार और राष्ट्र से ट्रेड यूनियन की अपेक्षायें**

ट्रेड यूनियनें यह अनुभव करती हैं कि उपरोक्त परिस्थितियों की परितुष्टि सरकार के समान किसी एक पक्ष के द्वारा नहीं की जा सकती हैं। परन्तु ट्रेड यूनियनें यह भी अपेक्षा करती हैं कि सरकार इस सम्बन्ध में उनकी मित्र बने और इसमें यह बात भी सम्मिलित है कि जहाँ सरकार सेवायोजक हो उन प्रशासन और औद्योगिक क्षेत्रों में योग्य परिस्थितियाँ उत्पन्न की जायें। ट्रेड यूनियनें यह भी अपेक्षा करती हैं कि जहाँ पूंजीपतियों, व्यवसायिक व्यवस्थापकों और नौकरशाही के निहित स्वार्थ हों उन्हें 'तुमसे–श्रेष्ठ' वृत्ति का प्रयोग इन परिस्थितियों के निर्माण में न करने दिया जाए। प्रमुख रूप से खातों की जाँच, आश्वासनों का क्रियान्वयन, समान स्वार्थों पर पूर्ण और स्पष्ट मन्त्रणा, जैसे प्रश्नों पर व्यवस्थापकों को श्रमिकों की शिकायत का आधार नहीं छोड़ना चाहिए। अपने द्वारा एक रचनात्मक वृत्ति अपनाने के लिये ट्रेड यूनियनें केवल यही चाहती हैं कि श्रमिकों और उनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिये।

दुर्भाग्य से इनमें से कोई भी परिस्थिति की परितुष्टि आज नहीं हो रही है और प्रतिफल में हम अत्यधिक परस्पर दोषारोपण, भ्रमनिरूपण और एक दूसरे के द्वारा दोष–स्थानान्तरण पाते हैं।

यदि राष्ट्रीय श्रम आयोग अपने राष्ट्र निर्माणकारी कार्य में कुछ उपयोगी बात करना चाहता है तो उसे इस कठिन स्थिति का हल

ढूढ़ना चाहिये । जिन संदर्भों में इन समस्याओं का हल ढूढ़ना है वे हैं— ट्रेड यूनियन आन्दोलन की स्थिति, अर्थ व्यवस्था की वर्तमान स्थिति और औद्योगिक विवादों को हल करने में मशीनरी की वर्तमान स्थिति । यहां हम इन तीनों में से प्रथम तत्व पर विचार कर चुके हैं । अब हम अन्य दोनों तत्वों पर शीघ्रता से अपने विचार रखेंगे और तदुपरान्त अपने प्रेक्षणों और समाधानों को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करेंगे ।

**आर्थिक परिस्थिति के प्रासांगिक परिभाग**

श्रम–अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से भारतीय अर्थ व्यवस्था को दो विरोधी मांगों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, अर्थात— (१) औद्योगिक क्रिया के प्रसार द्वारा सेवायोजन की बृद्धि और (२) सेवायोजित व्यक्तियों के जीवन निर्वाह स्तर को उठाना । कभी–कभी यह कहा जाता है कि परवर्ती को पूर्व की प्रतीक्षा करनी चाहिये । वर्तमान में यह नीति प्रेरित मूल्य बृद्धि द्वारा किया जा रहा है जो एक ओर तो औद्योगिक प्रसार को प्रोत्साहन देती है और दूसरी ओर श्रमिकों की यथार्थ-मजदूरी को अधिक से अधिक स्थिर या अनेक मामलों में ह्रासमान रखती है । हमें यह भी प्रतीत होता है कि यही कारण है कि 'जीवन रक्षक', 'न्यूनतम' और 'जीवनयापन मजदूरी' जैसे सम्बोधों को मौद्रिक राशियों में अंकात्मक रूप प्रदान करने का कोई गम्भीर प्रयत्न नहीं किया गया है जिसका विवेचन करने से विभिन्न परिनिर्णयों और निर्णयों में अति करदी गई है । यही इस बात का भी कारण है कि बार-बार रखा गया **INTUC** के स्वर्गीय श्री जी० डी० अम्बेकर का सुझाव कि न्यूनतम मजदूरी का एक निर्देशांक रखा जाना चाहिये–अभी तक भारत सरकार द्वारा स्वीकृत नहीं किया गया है और बम्बई के छापाखाना–उद्योग में किए गए एक छोटे से अपवाद को अन्य स्थानों में दोहराया नहीं गया है । मूल्ययंत्र ने राष्ट्रीय आय के वितरण का इस प्रकार का प्रतिफल प्रस्तुत किया है कि सम्पन्न अधिक सम्पन्न हो गये और निर्धन अधिक साधनहीन और इस प्रक्रिया में मध्यवर्गीय तो लगभग समाप्त ही हो गये हैं ।

वर्तमान अर्थव्यवस्था के संचालन में प्रमुखतः दो बड़ी कमियां हैं। प्रथमतः यह परिकल्पना कर ली गई है कि उद्योग के विकास के लिये जिस पूंजी निर्माण की आवश्यकता है वह समाज के उच्च वर्ग से ही आवेगा। यही कारण है कि श्रमिक-लाभों का श्रमिकों के हेतु शेयरों में परिगणन केवल एक संबोध-मात्र ही रह गया हैं जिसका समय समय पर राष्ट्रीय उत्पादकता परिषदों में विवेचन कर लिया जाता है। अर्थव्यवस्था पर पूंजीवादी विचारों की पकड़ आज भी बहुत अधिक स्पष्ट है और समाजवाद के पश्चिमात्य संबोध जिस अल्प कल्याण की घोषणा करते हैं वह भी व्यवहार में नहीं लाया जा सका है। द्वितीय अभाव संसाधनों की व्यवस्था से सम्बन्धित है। इस सन्दर्भ में उत्पादकता की वृद्धि की रीतियों को मार्गदर्शक-रेखायें माना जाना चाहिये। इस क्षेत्र में यद्यपि व्यवस्थापकों के उदार वर्गों में इस विषय में आज भी विवेचन होता है परन्तु आर्थिक व्यवस्था का पूर्ण विचार करने पर यह कहना पड़ेगा कि ये सारे प्रशंसाप्रद प्रयास केवल मौखिक वाचालता हैं, जिसे श्रद्धास्पद दीख पड़ने के लिये प्रयुक्त किया जाता है। भारतीय आर्थिक रंगमंच पर वास्तविक नायक उद्योगपति, प्राविधिक अथवा प्रशासक नहीं हैं वरन् वित्त–प्रभु हैं। और इन वित्त–प्रभुओं का स्वार्थ उद्योग में नहीं वरन व्यवसाय में धन पर, शासन करने में नहीं वरन् लाभ का छल–साधन करने और उत्पादकता में नहीं वरन् लाभप्रदता में निहित है। जो मार्ग उन्होंने अपनाया है वह मिलावटी माल का उत्पादन करने, विशाल थोक और फुटकर बचतों के द्वारा बाजारों पर विजय करने, बेइमानी के तरीकों से एकाधिकारिक शक्ति प्राप्त करने, विभिन्न ब्रांडों के लिये सभी लाइसेन्स प्राप्त करने, संदिग्ध तरीकों से निर्माण करने और आसान मुद्रा की लालसा की है। इस तर्क के अनुसार निजी क्षेत्र की अनेक प्रशासकीय और उच्च नौकरियों को छलसाधन के आचार्यों, काले बाजार के विश्वस्त व्यक्तियों, तथा पारिवारिक और रिस्ते से सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा भरा जाता है। वे सरकारी क्षेत्र के अपनी राजनीतिक प्रतिमूर्तियों से समान क्लबों में मिलते हैं। ऐसी मण्डलियों की स्थिति अब ऐसी हो

गई है और इतनी फैल रही हैं कि आज श्रम न्यायपालिका तक इनके प्रभाव से मुक्त नहीं समझी जाती है। औद्योगिक व्यवस्था के सभी अंगों में गुण-नियन्त्रण का पूर्णतया अभाव है और ईमानदारी व्यवसाय में एक एक निषिद्ध वस्तु बनती जा रही है। कोई आश्चर्य नहीं कि ऐसी परिस्थिति में व्यवस्था में यथार्थ में कुशल व्यक्तियों को उन मध्यमवर्गीय कर्मचारियों के मार्ग पर रेंगना पड़े जो न तो नीति सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्णयों को प्रभावित ही कर सकते हैं और न ही अन्धे क्रोध में क्रान्ति का विगुल बजाने के लिए सड़कों के संघर्ष को ही अपना सकते हैं। इस प्रकार कुशलता उस अजायब घर की वस्तु के रूप में बदल रही है जो विदेशी पूंजी के अभ्यागतों के लिये बनी है। भारतीय श्रमिक को वे निदान नहीं दिये जा रहे हैं जो कि उत्पादकता की रीतियों से प्राप्त हो सकते हैं।

यदि आर्थिक ढांचे और व्यवस्था के उपरोक्त दो अभावों को दूर किया जा सके तो आर्थिक व्यवहार की प्रत्यक्ष दुविधा को समाप्त किया जा सकता है। तब हम लाभ के बटवारे के प्रश्न पर पहुंच सकते हैं। मंहगाई भत्ते के विचारों, मजदूरी की यथार्थ वस्तु के ह्रास, पूंजी निर्माण की आवश्यकता (जो श्रमिक की वैयक्तिक आय में प्रवेश करती है) इत्यादि को प्रभावित करने वाला मूल्य–मजदूरी–मूल्य का चक्र उनके समस्त सन्दर्भ को बदल देगा। जनता का संचालन पूर्ण सेवायोजन और जीवन निर्वाह के स्तर को उठाने वाले दोनों ही उद्देश्यों की आवश्यकताओं को जीवित रखेगा। एक वास्तविक और अच्छी श्रम-नीति को तभी बनाया जा सकता है जब तक कि शक्तिशाली कानून और सभी स्तरों पर शासन द्वारा काले धन पर निगाह रखने के कारण उत्पन्न कमियों को निर्दयतापूर्वक न दूर कर दिया जाये। अन्यथा भारतीय श्रम समस्याओं के लिये कोई यथार्थ हल नहीं है। तब यही दोहराना आवश्यक होगा जिसे श्री एन० एम० जोशी सदैव कहते रहे–"यदि विकास की गति धीमी है तो क्रान्ति के आकर्षण बृहत होंगे" वर्तमान आर्थिक परिस्थिति के यही निष्कर्ष हैं।

## श्रम-कानून और सरकारी नीति का समाघात

इन घटनाओं और परिस्थितियों पर श्रम कानून और सरकारी नीति का क्या प्रभाव हुआ है ? यह सरकार के पक्ष में कहा जा सकता है कि उसने यूनियन बनाने के लिए श्रमिकों का पूर्वकालीन भय, मिटा कर अच्छा काम किया है। सरकार ने उन्हें कानून में स्थान दिया, उन्हें ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण में सहायता की और सेवायोजकों को कुछ गम्भीरता से यह सोचने को मजबूर किया कि वे इस कार्य में भागीदार हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त सरकार श्रमिकों के लिये सहायक नहीं हुई है और कहीं-कहीं पर तो विरोधी ही सिद्ध हुई है। **INTUC** की यूनियनों के बचाव करने की उसकी चिन्ता ने यूनियनों की मान्यता और श्रम संराधन की प्रक्रिया सम्बन्धी अनेक प्रश्नों पर अनेक असंगतियाँ उत्पन्न की हैं। उसके कष्टकारी कानून ने श्रमिक के लिए न्याय को बहुत ही महंगा बना दिया है। अनेक परिनिर्णयों, समझौतों, वेजबोर्ड के निर्णयों इत्यादि का क्रियान्वयन बहुत कमजोर है। अनेक सार्वजनिक उद्योगों ने ट्रेड यूनियनों के प्रति उदासीनता की नीति को अपना कर देश के समक्ष एक बहुत ही खराब उदाहरण रखा है। प्रायः औद्योगिक शान्ति के प्रति इसकी चिन्ता ने मजदूर नेताओं का राजनीतिक लाभ उठाने के लिये अल्पकालीन उपलब्धि के रूप में अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य-अवरोधों को प्रोत्साहित किया है। उन्होंने प्रायः यूनियनों के शक्तिमान विकास और औद्योगिक सम्बन्धों के केन्द्रीय पहलुओं पर जनमत के प्रभाव के निर्माण में रुकावटें डाली हैं। प्रायः इन अल्प-कालीन विचारों के आधार पर अस्थायी परिहार्य के रूप में मूल्य वृद्धि की आज्ञायें दी गई हैं जिसने उद्योग और श्रम दोनों में ही हानिप्रद कठिन संग्रहणात्मक बीमारियों का मार्ग प्रशस्त किया है। प्रायः ये नीतियाँ शुद्ध राजनीतिक आधार पर कुछ मंत्रियों या अफसरों के लिए ख्याति और सम्पन्नता अर्जित करने के हेतु बनायी जाती हैं और इसके लिए पूंजीपतियों और श्रमिकों दोनों के बीच की वर्ग अनुशासन विहीनता

की उपेक्षा कर दी जाती है। सरकार यह निश्चय नहीं कर सकी है कि औद्योगिक विवाद और यूनियनों की पारस्परिक शत्रुता की किस स्थिति में और किस समय किस प्रकार से हस्तक्षेप करेगी। प्रतिफल में राजनीति ने इन मामलों में अनर्थ की उत्पत्ति किया है और कानून और श्रम सम्बंध नीति में इस उद्देश्य का अभाव है।

परिस्थिति की अल्पकालीन इष्टानुकूलताऐं सभी दीर्घकालीन विचारों को आच्छादित कर लेती हैं।

भारतीय श्रम परिस्थितियों की पार्श्व भूमिका और आधार भूत दुर्बलताओं का यह लघु विवरण है। केन्द्रीय श्रम संगठनों के निर्माण और सरकारी नीति के प्रतिपादन का एक प्रमुख कारण राजनीति रही है। इसने श्रमिकों के लिए बहुत सी विनाशकारी स्थितियाँ उत्पन्न कीं। इसके साथ ही देश की अर्थ व्यवस्था के परिचालन में पूंजीवादी विचारों का प्रभुत्व वर्तमान राजनीति में उनका प्रभाव रहा है। इस परिस्थिति में उत्पादकता जैसे महत्वपूर्ण विषयों से केवल मौखिक सहानुभूति की जाती है और श्रमिक का उपयोग राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है। ट्रेड यूनियनों को देश की आर्थिक व सामाजिक संस्थाओं के रूप में अपना स्थान ग्रहण करना अभी बाकी है। भारतीय मजदूर संघ जोकि एक शुद्ध अराजनीतिक केन्द्रीय श्रम संगठन है इस दृष्य को शुद्ध करने के लिए सिद्ध है और वे मार्ग जिसके द्वारा वह समझता है कि ये परिवर्तन लाए जा सकते हैं, उनका विवरण अन्य अध्यायों में राष्ट्रीय श्रम आयोग की प्रश्नावली के अनुरूप ही प्रस्तुत किये गए हैं।

प्रकाशक–
**महामंत्री**
भारतीय मजदूर संघ, उत्तर प्रदेश
२, नवीन मार्केट
कानपुर

मूल्य १५ पैसे

मुद्रक–
**टिप-टाप प्रिन्टर्स**
२४/९१, बिरहाना रोड,
कानपुर–१
फोन : ६९१११

अध्याय–१

# श्रमनीति

# भर्ती एवं अभिप्रेरण

★

—भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

**'Labour Policy'** पुस्तक जो मा० श्री ठेंगड़ी जी, गोखले जी व मेहता जी द्वारा लिखी गई है। यह प्रस्तुत पुस्तिका उसी पुस्तक के अध्याय क्र० ३ की हिन्दी रूपान्तर है।

इसी प्रकार शेष १९ अध्यायों के भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये गये हैं।

इस अध्याय के अनुवादक हैं– लखनऊ विश्वविद्यालय के वाणिज्य विभाग के प्राध्यापक डा० महेन्द्र प्रताप सिंह। उनका मैं हृदय से आभारी हूं।

—प्रकाशक

अध्याय ३

# भर्ती एवं अभिप्रेरण

## भर्ती की वर्तमान रीतियाँ

भारतीय उद्योगों में भर्ती केवल व्यवस्थापकों द्वारा ही की जाती है और प्रारम्भ में सभी रंगरूट व्यवस्थापकों के ही व्यक्ति होते हैं। ऐसी व्यवस्था कतिपय अन्य देशों के विचार और संभवतः व्यवहार के भी प्रतिकूल है जहाँ भर्ती यूनियन की सलाह से की जाती है और कम से कम नए रंगरूट को यूनियन का सदस्य होना आवश्यक है। जहां व्यवस्थापक अपने व्यक्ति नहीं ढूंढ़ पाते हैं वहाँ दूसरी रीतियाँ जैसे विज्ञापनों के माध्यम से अर्जियाँ मंगवाना, सेवायोजन कार्यालयों से संदर्भ लेना इत्यादि अपनाई जाती हैं। कहीं कहीं पर इस प्रवृत्ति का भी साक्ष्य मिलता है कि कम्पनी अपने ही कर्मचारियों के दिए गए परिचयपत्रों को स्वीकार कर ले। परन्तु यह व्यवहार सापेक्षिक वरिष्ठता रखने वाले अफसरों के परिचय तक ही सीमित है। जहाँ तक निम्न वर्ग के कर्मचारियों का संबन्ध है साधारण रिक्त स्थानों के लिए आवेदन पत्रों पर विचार करते समय कभी कभी केवल उनके पुत्रों या पुत्रियों को वरीयता दी जाती है।

अनेक निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों के संस्थानों की भर्ती नीतियों का एक आधुनिक अध्ययन श्री परेशनाथचटर्जी द्वारा किया गया है जो यह प्रदर्शित करता है कि विभिन्न इकाइयों में तलगत कार्यों को छोड़कर उच्च स्तरों पर चुनाव की सबसे महत्वपूर्ण एकमेव कसौटी पूर्व अनुभव मानी जाती है। डा० एच० के० परान्जपे का 'औद्योगिक व्यवस्थापक संग्रह– एक प्रशासनिक प्रयोग' नामक अध्ययन यह प्रदर्शित करता है कि प्रार्थियों के चुनाव में विशेषतः जब विज्ञापन

किया गया हो तो पूर्व पद पर मिलने वाले वेतन का भी एक महत्वपूर्ण प्रभाव रहता है।

## अल्पता और अतिरेक

कुछ क्षेत्रों में मानव शक्ति की अल्पता के सम्बन्ध में किए गए अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि अल्पता का प्रमुख अनुभव पेशेवर, तकनीकी और संबन्धित श्रमिकों (४५ से ५० प्रतिशत) और शिल्पी एवं उत्पादन प्रक्रिया श्रमिकों (३० से ३५ प्रतिशत) में होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय श्रमिकों की सापेक्षिक गतिहीनता भी अल्पता का एक कारण है क्योंकि अनेक गाँवों में या आसाम जैसे प्रान्त के बड़े क्षेत्रों में अध्यापकों तक की सम्पूर्ति में अल्पता है। इस संबन्ध में वास्तविक प्रवृत्तियों को बतलाने के लिए हमारे पास पर्याप्त आँकड़े नहीं हैं। इस क्षेत्र में उपयोगी प्रवृत्तियों के आंकलन में काफी कठिनाई आती हैं क्योंकि देश में बहुत अधिक बेकारी और तत्कालीन एवं आवश्यक कारणों से अनेक भर्ती और चुनाव के आयोजन करने पड़ते हैं, जिनमें हम देखते हैं कि अनेक प्रकार के व्यक्तिओं को विभिन्न कार्यों के लिए ले लिया गया है और उसके बाद शिकायत की जाती है कि फैक्टरी में कोई योग्य व्यक्ति नहीं है और अच्छे व प्रशिक्षित शिल्पी प्राप्त नहीं हैं। यथार्थ में गल्ती भर्त्ती की वर्तमान व्यवस्था में है जो प्राविधिक दृष्टिकोणों से संतोषप्रद नहीं हैं।

इस प्रश्न पर दृष्टिपात करने का एक दूसरा विचार देश में काम के अवसरों पर शिक्षा के प्रभाव का है। इस संबन्ध में अभी हाल में की गई सेवायोजन और प्रशिक्षण के डायरेक्टर जेनरल के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सर्वाधिकार स्नातक इन्जीनियरिंग स्नातकों के लिए रिक्त होते हैं– यांत्रिक इन्जीनियरों के सर्वाधिक माँग होती है और फिर सिविल और विद्युत इन्जीनियरों के लिए। यह उस समय सत्य था जब यह लिखा गया था। अभी हाल की मंदी ने इन्जीनियरों तक में बेकारी उत्पन्न कर दी है। इसी संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि खाद्य समस्या को लेकर इतनी चिन्ता होते हुए भी कृषि वैज्ञानिकों और पशु विज्ञान, पशुपालन और पौधों की कायकी में प्रशिक्षित व्यक्तिओं के लिए माँग प्रायः न्यूनतम है। विज्ञान और कला के स्नातकों का भविष्य बहुत ही शोचनीय दशा में है। इनकी अपेक्षा शास्त्र और वाणिज्य के स्नातकों को अन्यों की अपेक्षा कुछ अधिक सुविधा है। भारतीय विश्वविद्यालयों के कुल उत्पादन का करीब ९०% इन्हीं संकायों से निष्पन्न होते

और शिक्षित व्यक्तियों की निराशा में बृद्धि करता है। एशियाई क्षेत्र के लिए ILO के अभी हाल के सेमिनार ने यह स्पष्ट किया है कि निरक्षरता को दूर करने के राष्ट्रीय प्रयत्न के फलस्वरूप अनेक शारीरिक श्रम वाले अकुशल कार्यों में जिनमें पहले निरक्षर व्यक्ति ही लगा करते थे आज उनके साथ अनेक साक्षर व्यक्ति भी कार्य कर रहे हैं। परन्तु साक्षरता धीरे धीरे कड़ुई होती जा रही है और वे एक सीमा के बाद यह अनुभव करते हैं कि उन्हें सफेद पोश नौकरी पाने का अधिकार है। अनेक प्रकार के व्यक्तिओं के सम्मिश्रण के कारण अनेक श्रम-संबन्धों की समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। दूसरी ओर औद्योगीकरण की तीव्र गति और परिणामस्वरूप यंत्रीकरण के कारण शिल्पियों, तकनीकों की अल्पता उनकी गतिशीलता की वृद्धि से निर्माण हो जाती है जिसके कारण समय समय पर कार्यकारी परिस्थितियों का पुनर्आकलन आवश्यक हो जाता है। परिणामस्वरूप एशिया के कुछ देशों ने विधेयक पास कर लिए हैं जिनके अनुसार उद्योगों को मजबूर किया जाता है कि वे विभिन्न ट्रेडों में लगे बालकों में से एक निश्चित संख्या में शिल्प का प्रशिक्षण दें। कुछ ने यह सुझाव दिया है कि एक राष्ट्रीय मानव-शक्ति योजना स्थापित की जाए जो नव-साक्षरों को शिल्प का प्रशिक्षण दे। एक ओर कुशल मानव-शक्ति की अल्पता और दूसरी ओर बेकार साक्षरों का अतिरेक का परिणामकारी अर्थ यह है कि हजारों वर्गरूपी खूटियों को गोल छिद्रों में अवस्थित किया जावेगा।

## चुनाव प्रोग्राम

### अभिरुचि परीक्षायें

इस संबन्ध में हल की खोज प्राकृतिक रूप से हमारी अभिरुचि परीक्षाओं और प्रेरण कार्य के विचार में ले आती है। इन दोनों में से भर्ती के लिए अभिरुचि संबन्धी मनोवैज्ञानिक परीक्षा पर काफी विवाद है इसलिए नहीं कि उसमें कोई सैद्धान्तिक दोष है परन्तु इसलिए कि उसके प्रयोग में कुछ कठिनाइयाँ हैं। इस देश में अभी भी अरगोनामिक्स का विज्ञान और प्रयोग बहुत ही अविकसित है और पश्चिम के वैचारिक वर्गों से इनकी शीघ्र नकल भारतीय गावों के किशोरों के लिए अन्यायपूर्ण सिद्ध होगी, भारतीय समाज की सांस्कृतिक-सामाजिक पार्श्व भूमिका पश्चिमी देशों से भिन्न है और यद्यपि कुछ शहरी केन्द्रों के बालक इन तथाकथित व्यवहार कुशल तकनीकों को पसन्द कर सकते हैं परन्तु भारतीय जनता

के बहुमत का काफी महत्वपूर्ण शक्ति के भविष्य के अवसर रुक जाएगें यदि अधिक नौकरशाहों को इस संबन्ध में पागलपन करने दिया जाएगा। एक नवयुवक उपयुक्त पेशे के लिए उसके जन्म जात गुणों और लाक्षणिक विशेषताओं के अनुसार चुनाव करना भारतीय सभ्यता के लिए कोई नवीन संबोध नही है। वास्तव में यही प्रारम्भ की पुरातन वर्ण-धर्म व्यवस्था का आधार था जिसे यद्यपि गलत समझा गया है परन्तु उचित है। एक विद्यार्थी के लिए योग्य कार्यकारी पेशे का उसके गुणों और कार्यो के वर्गीकरण के अनुसार साधारण तौर से [illegible] द्वारा और संशयात्मक और कठिन मामलों में योगी या ऋषि के द्वारा किया जाता था। भारतीय योग की अनेक शाखाओं में मनोवैज्ञानिक गुणों के निर्णय पूर्णता से विचार किया गया है जिनके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की पेशों के लिए उपयुक्तता के संबन्ध में उसकी प्रारम्भिक आयु में ही [illegible] लेता है। परन्तु अपने विवेक के खजाने में अनेकों लापरवाहियों के समान ही तथा कथित श्रेष्ठ वर्गो ने इन उद्गमों और व्यवहार के निर्देशों के प्रति आँखें [illegible] हमारे समाज को व्यक्तियों का एक आधारहीन पिण्ड बना दिया है। [illegible] दृढ़ और पूर्ण व्यावहारिक रीतियों को अपना कर हम उन्हें विश्वासपूर्ण [illegible] में लगा सकते हैं। मनोवैज्ञानिक व्यवहार के क्षेत्रों (और श्रम समस्या रूप में मनोवैज्ञानिक क्षेत्र के अंतर्गत हैं) से हमें पश्चिम के बच्चों से [illegible] लिए बहुत अल्प है केवल औद्योगिक अनुशासन के योग्य कुछ वर्दियों की [illegible] इसके प्रतिकूल हमारे पास देने के लिए बहुत कुछ है। यही समय है कि संबन्ध में हमें ललकार के खड़े हो जाना चाहिए और अपनी जनता को [illegible] चाहिए कि उनके पास जन्म से और प्रारम्भिक प्रशिक्षण से उत्तराधिकार में कितनी शक्तियां हैं।

## क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व

यह विवेचन हमें क्षेत्रीय जनता की आवश्यकताओं के प्रति क्या [illegible] जाना चाहिए इस अधिक विवादित प्रश्न पर ले आता है। अभी तक [illegible] विवाद उस विवेचन से भिन्न संदर्भ में रहा है जोकि हम यहाँ करना [illegible] वर्तमान बल इस बात पर दिया जाता है कि स्थानीय और [illegible] क्षेत्र में नौकरियों में वरीयता दी जावे। इस बात की न तो इस [illegible] करनी चाहिए और न महत्व ही देना चाहिए कि वह किसी [illegible] बोध या द्वेश उत्पन्न करे। इसे उस हद तक नहीं उठाना [illegible]

अखण्डता के लिए खतरा बन जाए। इस मांग में कुछ बल है जबकि इसके अनुसार वर्ग–३ और वर्ग–४ में भर्ती के लिए वरीयता चाहिए जिसके लिए उस क्षेत्र में स्थानीय श्रम-सम्पूर्ति बहुत अधिक है और ऐसी स्थिति में स्थानीय जनता को इन अप्राविधिक शारीरिक लिपिक और प्रशासनिक पेशों में पूर्ण वरीयता दी जानी चाहिए। परन्तु प्राविधिक योग्यता की जहाँ आवश्यकता हो ऐसे देशों में योग्यता प्रमुख आधार-तत्व होना चाहिए बाकी सभी द्वितीयक।

वास्तव में यह मांग वृहतस्तर पर बेरोजगारी और प्रतिफलित भग्नाशा से उत्पन्न हुई है। इसके द्वारा यह भी प्रदर्शित होता है कि भारतीय श्रम गतिहीन नहीं है और गत्यात्मक लक्षण रख सकता है। हमारे विचार से भर्ती के सभी विचारों में स्थानीय और भाषा के विचार एक प्राकृतिक सुझाव रखेंगे। इसके अतिरिक्त ऐसे विचारों पर कोई विशेष बल देने का कोई औचित्य नहीं है। क्योंकि ऐसा करने से हमारी जनता विरोधी खेमों में बंट सकती हैं। समस्त देश को एक इकाई मानना चाहिए। किसी एक उद्योग में या जनसंख्या के एक भाग में एकाधिकार उत्पन्न करने के प्रयत्न अनन्त परेशानियाँ उत्पन्न कर देंगे इसलिए उनको हतोत्साहित करना चाहिए। क्षेत्रीय अथवा भाषावार विचारों का एक प्रमुख लक्षण जिसे वर्तमान विवेचन में भूल जाते हैं वह यह है कि हमारे देश में अनेक वर्ग या जातियाँ ऐसी हैं, जिन्होंने कुछ मामलों में विशेष योग्यता विकसित कर ली है, उदाहरणार्थ व्यवसाय के लिए सिंधियों और गुजरातियों ने लघु कौशल उद्योगों के सैनिक सेवा के लिए पंजाबियों ने, कठिन परिश्रम के लिए तमिलनाड वालों ने, होटल के कार्य के लिए उडुपीयों ने नाम कमाया है। यह एक विशिष्ट गुण है और व्यावसायिक विज्ञापन के लिए ब्रान्ड नाम के समान महत्व रखता है। विभिन्न लोग और जातियाँ तक वास्तव में कुछ कार्य संबन्धी पूर्णताएँ विकसित होने का अभिमान कर सकते हैं और उनका यह अभिमान का भाव उनमें अनुशासन और मानदण्डों के रक्षण का विश्वास दिलाता है। ये राष्ट्रीय संपत्तियाँ हैं जब तक अपनी सीमाओं का उल्लंघन न करें। वे इन विचारों के वास्तविक प्रतिरोधक यदि कोई होते हों, क्योंकि किसी भी मनुष्य के लिए व्यक्ति से राष्ट्र अथवा विश्व तक उठने के लिए उसे कुछ मध्यवर्तीस्थल चाहिये जैसे कुटुम्ब, जाति या देश का अभिमान और जहाँ तक ऊंचे नाम और प्रभावों के रक्षण की और आवश्यक विशेष अच्छे गुणों की प्राप्त करने के लिए इन विचारों को संजोया जाता है वहाँ पूर्णत्व के कठिन प्रचलन में एक उपयोगिता है। इन विचारों के और उनके

तिक प्रभावों के आगे क्षेत्रीय या भाषा के सूत्र को श्रम के क्षेत्र में भी पदों के निर्धारण में कोई महत्व न देना चाहिए।

## पिछड़े वर्ग

पिछड़ी वर्गों या जातियों, अनुसूचित जातियों और वनवासियों की स्थिति का आधार भिन्न हैं। वे इतिहास के संयमी आक्रमणों के शिकार हैं और उन सभी कारणों को शीघ्र ही मिटा देने की आवश्यकता है, जो इस भेद भाव के लिए जिम्मेवार हैं। आज जो मार्ग अपनाया जाता है वह प्रत्येक दफ्तर में अथवा उद्योग में उनके लिए कुछ संख्या में या प्रतिशत नियुक्तियों का आरक्षण देना है। हम यह अनुभव करते हैं कि उस समय तक इस व्यवस्था की उपयोगिता है जब तक कि वह अनावश्यक न बन जाए। परन्तु ये आरक्षण केवल साधारण पदों या कार्यों तक ही जहाँ तक संभव हों सीमित रहना चाहिए। सभी कार्य-पद जिनका लक्षण उन्नतोन्मुखी है अथवा जिनके लिए विशिष्ट योग्यता या कुशलता आवश्यक है उनकी भर्ती समाज के महान स्वार्थों को ध्यान में रखकर योग्यता के आधार पर ही किया जाना चाहिए। पिछड़े वर्गों के संदर्भ में सही दृष्टिकोण यही है कि उन्हें अच्छी और दीर्घकालीन छात्रवृतियों को देकर और यदि आवश्यक हो तो आयु में छूट इत्यादि देकर अधिक प्रशिक्षण सुविधायें दी जाएं और उदारता से उनकी सहायता की जाए जिससे वे शेष जाति के मानदण्डों के अनुरूप बन सकें। इसका उद्देश्य यही है कि जिन कारणों ने उन्हें उत्पन्न किया है उनको समाप्त करके भेदभाव को समाप्त किया जाए और एक स्थायी लक्षण के रूप में एक विशेषाधिकार जैसा ही कायम न रखा जाए। इस संदर्भ में सबसे अधिक उपेक्षित वर्ग भ्रमणकारी पूर्व-अपराधी बनवासी वर्ग है, जिनकी ओर ध्यान देने में प्राथमिकता देनी चाहिए। यह आज का एक दुखद सत्य है कि उन्हें वे सुविधायें और प्रेरणायें भी उपलब्ध नहीं है, जो अनुसूचित जातियों और वंशों को प्राप्त हैं।

## शारीरिक विकलांग

अंधे, कोढ़ी इत्यादि जैसे शारीरिक विकलांग वर्गों द्वारा अपेक्षित व्यवहार पर इससे भी भिन्न दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए। यह वास्तव में विशिष्ट अध्ययन और सलाह का अलग क्षेत्र है। इन मामलों में भेदभाव समाप्त नहीं किए जा सकते हैं। यह भी संभव नहीं कि किसी एक ही ढांचे का आरक्षण

सबके लिए रखा जाए। इस संबन्ध में भीख देते रहना भी समस्या का हल नहीं है। दान देने के विचारों का अनेक विकलांग व्यक्तिओं के मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके प्रतिकूल ऐसा प्राय: देखा गया है कि किसी व्यक्ति के एक कर्मेन्द्रिय या ज्ञानेन्द्रिय में खराबी हो तो एक सामान्य व्यक्ति की अपेक्षाकृत उसमें किसी अन्य इन्द्रिय के उत्कृष्ट कार्य द्वारा अधिक गुण वाला काम करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। यदि इस दिशा में सतत प्रयत्न किया जाए तो किसी विकलांग को विशेष योग्यता प्राप्त कुशल कारीगर के रूप में इतना विकसित किया जा सकता है कि वह व्यवसाय में नाम करले या समाज में प्रतिष्ठा का स्थान प्राप्त करले। विकास की इस दिशा में संभावितिओं की गहराई को नापने का गम्भीर प्रयत्न किया जाना चाहिए और उस समय तक विकलांग कारीगरों की सहकारी समितियों को विशेष सुरक्षा और प्रेरणा दी जानी चाहिए। उनके लिए सरकार में या अन्य सेवा में आरक्षण का प्रयोग किया जा सकता है परन्तु इस प्रक्रिया पर अधिक विश्वास नही किया जा सकता है क्योंकि हमारे पास बहुत अधिक संख्या में हृष्ट-पुष्ट बेकार मौजूद हैं।

## मानव-शक्ति-नियोजन

अब हम देश के एक अधिक चिन्ताजनक उपेक्षित विषय पर पहुंच रहे हैं, जो कारीगरों के परंपरागत वर्गों के विशेष संदर्भ में मानवशक्ति की पंजिका का है। औद्योगिकरण की प्रक्रिया, जैसी भारत में नियोजित हो रही है, वह पश्चिमी देशों के परिवर्तनों द्वारा प्रदत्त तैयार तकनीकी ज्ञान की सहायता से देश के भौतिक संसाधनों के उपयोग पर आधारित है। परिवर्तन में निहित सामाजिक लागतों को कम करने के निमित्त भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल तकनीकी ज्ञान को विकसित करने की आवश्यकता है। हमारे विचार में इस बात की और अधिक आवश्यकता है कि हम अपने नियोजन को देश में उपलब्ध मानवशक्ति के गुण और परिणाम के आधार पर बनायें। योजनाओं और तकनीकी ज्ञान का विकास अपने देश की मानवशक्ति पंजिका के आकलनों पर उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप किया जाना चाहिए। हमारे पास कारीगरों का एक बड़ा वर्ग है, जो कार्य की परंपरागत शाखाओं में अतिकुशल हैं। उनकी प्रक्रियाओं और व्यवस्था में बचत करने अथवा मानदण्डों को उठाने के लिए उन्हें एक तकनीकी ज्ञान प्रदान करने की अपेक्षा हमने उद्योग को एक किताबी माडल पर बनाना शुरू कर दिया और अपनी काल्पनिक उत्पत्ति में मानवीय साधनों को फिट करने का यत्न कर रहे हैं।

यह देश की श्रमशक्ति के प्रति गलत दृष्टिकोण है और आज हमारे नियोजकों द्वारा गलत प्राथमिकताओं और भारिताओं को मान्यता देने के कारण सही कर्मचारियों की भर्ती की एक पूरी समस्या उत्पन्न हो गई है। हमें ऐसे कार्य की तकनीक और उत्पादन प्रक्रिया की व्यवस्था का विकास करना चाहिए जो हमारे कारीगरों की तकनीकी कुशलता की बर्बादी को न केवल रोके बल्कि विज्ञान की तकनीक का इस प्रकार उपयोग करे कि हमारी जनता को सर्वाधिक लाभ और सेवा प्राप्त हो।

हमारी योजनाओं को वर्तमान श्रम के विकास के अनुकूल बनने दिया जाए न कि उस श्रम के अनुकूल, जिसे आधुनिक परिस्थितियों को अपनाने के नाम से बाध्य किया गया है अथवा दबाया गया है। आधुनिकता के लिए इस अंधविश्वास या पागलपन में कुछ भी पवित्रता नहीं है। यथार्थ आधुनिकता मौलिक और दृढ़ मार्गों पर कदम बढ़ाने में है। हम अपने मनुष्यों के लिए कार्यपदों को निर्धारित करें, जिससे वे उनके लिए अपनी कुशलता को बढ़ाने के लिए सहायक बन सकें और इस प्रकार भर्ती और अभिप्रेरण की अधिक से अधिक समस्याओं का हम समाधान कर लेगें।

## महिला कर्मचारी

यह एक ऐसा प्रश्न है, जो जीवन के रूढ़िगत स्वरूप के मूल तक जाता है और इसके साथ औद्योगिक समाज में कुटुम्ब के संबोध के अधिक गम्भीर प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। समाज और घर में स्त्री का स्थान और स्त्रीत्व और पुरुषत्व के भेदकारी लक्षण भिन्न हैं। इस विषय पर भारत में एक सामान्य स्वीकारोक्ति होनी चाहिए कि पुरुष के समान स्त्री कार्यपद को व्यवसाय के रूप में नहीं देखती और अनेक बार एक आवश्यक दुर्भाग्य के रूप में ग्रहण करती है। श्रम कानून को इन संबोधों को बिगाड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। पुरुष की कमाई को इस विचार पर आधारित करना चाहिए कि उसे एक पत्नी का पालन करना है, जो कमाती नहीं है। दूसरी ओर स्त्रियां जो कार्य संबन्धी अवसरों को चुनती हैं उनकी आवश्यकताओं और सुझाव के लिए सम्मान देते हुए भी समानता के सिद्धान्त का बलिदान नहीं करना चाहिए। उन्हें पुरुषों के समान कार्य के समान वेतन मिलना चाहिए। नर्सों, प्राइमरी अध्यापिकाओं जैसे कुछ कार्यों का स्त्रियों के लिए आरक्षण, स्थानान्तरण-निरपेक्ष [illegible]

नियुक्ति जिन उद्योगों में स्त्रियां अधिक कार्य करती हों वहां बच्चों के कार्य स्थान के निकट विकसित होने का प्रबन्ध मातृका अवकाश जैसी सुविधाओं को चलाते रहना इत्यादि ये सब राज्य का कार्य होना चाहिए। सरकार को चाहिए कि इस संदर्भ में आवश्यक कानून बनावे और समय समय पर उनका आकलन करे और पालन करवाये। इस संबन्ध में सरकार को यथोचित कानून बनाना चाहिए और उसका समय समय पर आकलन करते हुए पालन करवाना चाहिए। कानून की इन सुविधाओं के अतिरिक्त स्त्रियों की भर्ती के लिए कोई विशेष व्यवस्था नहीं होनी चाहिए और विक्रय-बालिका, स्वागतकारिणी, वैयक्तिक सहायिका इत्यादि जैसे कार्यो के लिए महिलाओं को रोजगार देने की विशिष्ट पसन्द को हतोत्साहित किया जाना चाहिए। स्त्री को मातृवत समझना चाहिए जिसके सभी विचारों में घर में स्थान ही केन्द्रीय विचार होना चाहिए। ऐसे कार्यों की एक सूची बनाई जानी चाहिये जिन्हें घर पर ही किया जा सके जैसे, अचार बनाना, कढाई का कार्य, बीड़ी बनाना, काजू का काम इत्यादि और उनका एकाधिकार ऐसी सेवा संस्थाओं को सौंप दिया जाना चाहिये, जो महिलाओं के लिये अपने खाली समय में घर पर काम करने के लिए इन वस्तुओं का संग्रह करते हों। यहां तक की हाथ करघा उद्योग भी इस प्रकार से महिलाओं द्वारा [illegible] स्थित किया जा सकता है। यह निश्चितरूप से अनेक घरों को अधिक प्रोत्साहित करेगा, जहां बिना पारिवारिक जीवन को क्षुब्ध किये ही महिलाएँ कुछ [illegible] सकेंगी। यह आकस्मिक श्रम के लिये यथार्थ स्थान और पद है।

## आकस्मिक अथवा मौसमी श्रम और बदली कर्मचारी

आजकल कामगारों का एक बड़ा वर्ग ऐसा है जो आकस्मिक श्रम के रूप में कार्य करता है। उनकी भर्ती के संबन्ध में कोई कठिनाई नहीं हैं। परन्तु [illegible] कठिनाई बाद में शुरू होती है। यद्यपि कार्य की आकस्मिक प्रकृति आकस्मिक की भर्ती के लिए तर्क है तो ऐसे कार्य का अत्यधिक होना ही [illegible] विरोध के लिए तर्क है कि उन्हें आकस्मिक रखा जाए। विशेष [illegible] निर्माण सरकारी प्रकल्प इत्यादि जैसे कार्यों में चलने वाले कार्य पर [illegible] आकस्मिक श्रमिकों को स्थाई मानना चाहिए जब तक वे कार्य की [illegible] प्रकृति के प्रति कृतघ्नता न करें। ऐसे उद्योगों, जिनकी प्रकृति [illegible] उद्योग की स्थिति और ढांचा स्थाई है, जैसे शकर, जिनिंग और [illegible]

में ऐसे कर्मचारियों की जो प्रत्येक मौसम में दीर्घकाल तक कार्य करते रहे हैं एक स्थायी मस्टर-रोल और वरीयता-लिस्ट होनी चाहिए और सभी व्यवहारिक कार्यों के लिए उन्हें स्थायी समझना चाहिए जब तक कि वे स्वयं ही कार्य न छोड़ दें। जिस समय उद्योग में कार्य नही होता है उस कालान्तर के लिए उन्हें एक रिटेनिंग-भत्ता दिया जाना चाहिए।

बदली कर्मचारियों की व्यवस्था में भी कुछ नियम होने चाहिये। अपने वर्तमान रूप में इस व्यवस्था में वही व्यक्ति एक स्थाई रंगरूट बन जाता है और अनेक वर्षों तक प्रतिदिन भर्ती होने के जोखिम को पार करता है। वर्तमान औद्योगिक व्यवहारों से यह स्पष्ट नहीं है कि आधुनिक उद्योग में बदली व्यवस्था किस प्रकार से न्यायसंगत आवश्यकता है। वह श्रम का शोषण ही अधिक लगता है। किसी भी स्थिति में ऐसी व्यवस्था जो कभी उस व्यक्ति को भर्ती नहीं करती, जिसे वह कार्य के लिए नियुक्त करती है अथवा ऐसे कार्यों का जीवन, जिन्हें ऐसे बदलते हुए मनुष्यों द्वारा चलाया जाता है जिनकी कभी भर्ती नहीं की जाती है एक भूतकालीन काल गणना का क्रम है और उसे भविष्य में हतोत्साहित किया जाना चाहिए। ऐसे सभी उद्योगों को बदली कामगारों के लिए लिस्ट रखने पर मजबूर किया जाना चाहिए और बदली कामगार के रूप में व्यतीत अवधि को एक निश्चित अवधि का परीक्षाकाल समझा जाना चाहिये जिसके उपरान्त उन्हें अवश्य ही स्थाई कर दिया जावे। इस संबन्ध में आवश्यक अवरोध लगाने के लिए किसी प्रकार की बेरोजगारी बीमा योजना उन बदली कामगारों के लिए होनी चाहिए और जब अर्धपरीक्षाकाल या बदली कार्यकाल में उन्हें कार्यपद न दिया जाए तो उन्हें एक निश्चित रकम दी जानी चाहिए।

## प्रोबेशनर और अप्रेन्टिस

प्रोबेशन और अप्रेन्टिस ट्रेनिंग की व्यवस्था का विचार भर्ती प्रोग्राम के एक अंग के रूप में भी किया जा सकता है। इन व्यवस्थाओं को आधुनिक उद्योगों में भर्ती-पूर्व कार्यों के एक अंग के रूप में अपनाया जाता है। सम्भवित मनुष्य के सेवाकाल के इस महत्वपूर्ण भाग पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। यह ऐसा समय होता है जबकि उद्योग अपने श्रमिक के मन पर अपनी छाप डाल सकता है और श्रमिक भी उद्योग के संबन्ध में अपनी धारणा बनाता

है। यह और अभिप्रेरण की प्रक्रिया आजकल प्रमुख विषय से ढीली ढाली जुड़ी हुई परिशिष्ट के रूप में रह गई है। वास्तव में उनकी स्थिति प्रस्तावना या परिचय जैसी है, जो किसी व्यक्ति को प्रमुख विषय में प्रविष्ट करने को उत्तेजित करती हैं। आजकल ऐसा नहीं किया जाता है और परिचयपत्र, साक्षात्कार या लिखित परीक्षा द्वारा किसी भी प्रकार से की गई भर्ती को किसी भी कार्य पर लगाने का समुचित आधार मान लिया जाता है। प्रोवेशनर और अप्रेन्टिस अपने अधिकारी के रूप में किसी परीक्षक या कार्य-स्वामी को नहीं चाहता वरन् एक अध्यापक और अनुभवी वरिष्ट व्यक्ति की आवश्यकता का अनुभव करता है, जो उन कार्य-स्थिति और कार्य-जीवन के संबन्ध में सही दृष्टि-कोण प्रदान कर सके। हमारे भर्ती के प्रोग्राम में भी एक प्रमुख खराबी यह है कि अनेक स्पष्ट खराबियों के रहते हुए भी ऐसा समझा जाता है कि प्रोवेशनर कार्यालय का एक नियमित सदस्य है यद्यपि उसे कभी किसी की भी इच्छानुसार निकाला या बरखास्त किया जा सकता है। इस अध्याय के प्रारम्भ में हमने कहा है कि प्रत्येक रंगरूट प्रारम्भ में व्यवस्थापकों का ही व्यक्ति होता है और यहां हम यह जोड़ना चाहते हैं कि हमारी प्रोवेशन व्यवस्था ऐसी अविवेकपूर्ण है कि अंत में यह कर्मचारी को स्थायी बनाते समय उसके मन में व्यवस्थापकों को एक शिक्षा देने की वृत्ति भर देती है। यद्यपि ट्रेड यूनियनें यह समझती हैं कि यह अवधि अपने सदस्य बनाने के लिए भावावेश-काल है परन्तु व्यवस्थापकों ने अभी यह अनुभव नहीं किया है कि प्रत्येक व्यक्ति के सेवाकार्यकाल के इस महत्वपूर्ण अंश की क्या संभावित महत्ता है।

## अभिप्रेरण

अभिप्रेरण एक ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा एक नए कर्मचारी को परिवर्तित वातावरण में पुनर्वासित किया जाता है और उसका परिचय संगठन के उद्देश्य, नीतियों, व्यवहारों और सुविधावों से करवाया जाता है। भारत के कुछ प्रगतिशील सेवायोजकों को छोड़कर अभिप्रेरण वास्तविक अर्थ में न तो अपनाया गया है और न विकसित ही हुआ है। कर्मचारी को फैक्टरी के संगठन से परिज्ञान अपने सहयोगियों की आपसी बातचीत से मिलता है और जब उसे किसी कथित भूल के लिए उसे अधिकारी द्वारा डांटा जाता है तब उसे औद्योगिक योजन कानून और स्टैंडिंग आर्डर का बोध होता है। यह सेवा में सामंजस्य स्था

तत्व के संभालने का कोई कुशल तरीका नहीं है । व्यवस्था का विज्ञान यह आवश्यक समझता है कि अधिकारी वर्ग को भी अभिप्रेरण योजना के अंतर्गत लाया जाए, जिससे उन्हें निरीक्षण की कला का ज्ञान मिले और वे व्यवस्था के व्यक्ति बन सकें। कार्यपद संबन्धी काल के प्रारम्भ में एक विशिष्ट आवश्यकता इस बात की है कि एक सुविचारित अभिप्रेरण प्रोग्राम बनाया जाए, जिससे अनेक वर्षों में अनुभव के द्वारा सीखने में होने वाले समय के अपव्यय को रोका जासके । प्रत्येक संस्था की कुछ अपनी विशेषता होती है इसलिये यह अच्छा होगा कि एक अल्पकालीन अभिप्रेरण शिक्षा के द्वारा एक रंगरूट के नए वायु-मंडल में आरामदेह स्थिति बनाई जा सके ।

## पदोन्नति

औद्योगिक संबन्धों का यह एक क्षेत्र है, जहां सबसे अधिक दिल-जलने की स्थिति पाई जाती है और उसका सबसे अधिक विनाशकारी प्रभाव मनस्थिति पर पड़ता है । इस संबन्ध में कुनवापरस्ती और भृष्टाचार ने व्यवहार को इतना अधिक रंग डाला है कि उनके खराब प्रभाव का वर्णन करने के लिए शब्द काफी नहीं हैं । जब उनकी प्रतिस्थापना लोकसेवा आयोग जैसे ढंगों से की जाती है तो अन्य खराबियां उत्पन्न हो जाती हैं । वास्तविक सेवा के क्षेत्र से दूर या मानवीय कार्य नियुक्ति से उदासीन होकर वे भिन्न प्रकार के पक्षपात करते हैं, जो उनके सुझाव के अनुकूल हों । प्रायः ये आयोग भी भृष्ट व्यवस्था से स्वतंत्र नहीं होते हैं और इनपर की जाने वाली नियुक्तियां भी स्वार्थ से प्रेरित होती हैं।

हमारे देश में पदोन्नति की अधिक प्रचलित व्यवस्था 'वरिष्ठता एवं योग्यता व्यवस्था' है । इस व्यवस्था में अनेक दोष हैं क्योंकि ऐसा हो सकता है कि यह वरिष्टता को कभी महत्व न देकर योग्यता को सम्मानित करे, जोकि सर्व-साधारण को दिखलाई न पड़ती हों । हमारे उद्योगों में 'गम्भीर योग्यता-परीक्षण' बहुत कम अपनाया गया है और ये शब्द भी पक्षपात के ही पर्य्याय बन गए हैं । ऐसा लगता है कि ऐसी मिश्रित व्यवस्था के स्थान पर यह [illegible] कि ऐसी विभिन्न पदोन्नति प्रवाहिकायें हों जिनमें से एक वरिष्टता के आधार पर और एक योग्यता के आधार पर हों । योग्यता परीक्षण में स्वीकृत [illegible] यह है कि विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा स्वतंत्र आकलन

द्वारा योग्यता को नापा जाए न कि कुछ व्यक्तियों अथवा समितियों द्वारा जो जल्दी ही गुटबंदी के रूप से पतित हो जाते हैं।

वैज्ञानिक पदोन्नति नीति की एक पूर्व आवश्यकता यह है कि सर्वमान्य पद-वितरण एवं पद-वैशिष्टय ज्ञात हो। नियमित रूप से निर्मित पद-मूल्यांकन-प्रोग्राम के लिए भी यही पूर्व-आवश्यकता है। प्रत्येक उद्योग के प्रत्येक महत्वपूर्ण पद को पूर्ण शुद्धता से परिमाणित करना चाहिए और उसके लिए अपेक्षित गुणों को मैनुअलों में लिखा जाना चाहिए। तदुपरान्त पूर्व-परीक्षित रीतियों द्वारा इन गुणों की पूर्ण खोज की जानी चाहिए उदाहरणार्थ, परीक्षाओं द्वारा सामूहिक साक्षातकार द्वारा, जिसमें एक समिति द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के साक्षातकार और समूह के द्वारा लक्ष्यपूर्ण वादविवाद में दिये गए अंकों के आधार पर अभिरुचि परीक्षाओं द्वारा, समस्या हल परीक्षाओं द्वारा, कार्य-जाँच रीतिद्वारा अथवा अन्य रीतियों द्वारा सर्वमान्य ढंग से गुणों की खोज की जा सकती है। ऐसी पदोन्नति रीतियों की कोई कमी नहीं है, जिनके द्वारा मानवीय चुनाव के वस्तुपरक या निकट यथार्थ प्रतिफल ज्ञात किए जा सकते हैं परन्तु उनके उपयोग करने की इच्छा होनी चाहिए। हमारी अर्थ व्यवस्था का यह दुर्भाग्य है कि हमारे व्यवस्थापकों में उत्पादकता या योग्यता-मापन के लिए वास्तविक श्रद्धा नहीं है। हम अपने उत्पादों या सेवाओं के लिए नाम पैदा करके उन्नति नहीं कर रहे हैं। हमारे वित्तीय संसार के शीर्षस्थ स्वामी आसान धन प्राप्ति के साधनों, काले बाजारों और पूर्व अध्यायों में वर्णित छलसाधन से ही संतुष्ट रहते हैं। इन परिस्थितियों में दृढ़ पदोन्नति नीति के लिए उठाई गई आवाज जंगल की पुकार में परिवर्तित हो जाती है। यथार्थ में अभिनयमंच इतना विकृत है कि इस बात पर विचार करना होगा कि पदोन्नति व्यवस्थापकों का विशेषाधिकार है अथवा नहीं।

उत्तम पदोन्नति नीति के विषय में एक अन्य दृष्टिकोण यह है कि किसी पद के लिए सही व्यक्ति की खोज की कसरत न समझकर वर्तमान के आधार पर वर्तमान योग्यता का उपयोग और बढ़ावा समझा जाए। यही कर्मचारी विकास प्रोग्रामों का यही उद्देश्य है और सभी कालावधियों में इसी का महत्व होगा। इस व्यवस्था में जैसा कुछ अन्य देशों में प्रयोग हो रहा है, प्रत्येक श्रमिक को यह मौका मिलता है कि वह अपने प्रतिष्ठान के सर्वोच्च [illegible] से कार्य-पद संबन्धी अवसरों पर एक या दो वर्ष में अपनी वास्तविक [illegible]

के आधार पर दोनों बैठकों के बीच के काल में विचार विमर्ष करें। उसे इस प्रकार ट्रान्सफर, सेवाकालीन प्रशिक्षण, पदोन्नति इत्यादि के रूप में समुचित स्थिति परिवर्तन का मौका दिया जाता है। इसका उद्देश्य यह है कि कम्पनी भी अपने व्यक्तियों में रुचि रखती हैं और वह चाहती हैं कि वे अपने पदों पर तेजी से विकसित हों और उनके प्रयत्नों में सहायक होती हैं। वह प्रत्येक व्यक्ति के विकास और वैयक्तिक प्रगति के आकलन के लिए उसे विश्वास में लेती हैं और उसके लिए अपने कौशल को प्रगट करने के अवसर देती हैं। यह व्यायाम एक तुलनात्मक दृष्टि से अल्प-अवधि के बाद निर्धारित समय पर प्रत्येक व्यक्ति के लिए किया जाता है और अविचलित रूप में इसका संबन्ध एक या दो वेतन-वृद्धि या उच्च पद पर नियुक्ति जैसे कार्यों से होता है। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक पद पर प्रगति की योजना निश्चित करता है और इस बात के लिए भी तैयार रहती है कि व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यकता के अनुरूप पदों को या कार्यकारी तत्वों को बदल दे। यह वास्तव में पदोन्नति की एक आदर्श नीति है और यदि योग्य हाथों द्वारा चलाई गई तो हमारे श्रमिकों की मनस्थिति को कल्पना से अधिक अनुपात में अनुकूल बना सकती है।

भर्ती, अभिप्रेरण और पदोन्नति के इन क्षेत्रों में जिस चीज की आवश्यकता है वह हैं एक दृढ़ और नवीन दृष्टिकोण जो समस्याओं को उनके मुख में देखे और प्रयोगों को करने से न घबराये। परन्तु इसके विपरीत आज हम बहुत अधिक रूढ़िवादिता पाते हैं। इस अध्याय में हम पहिले देख चुके है कि उन विज्ञापनों में जो अखबारों में प्रकाशित होते हैं भर्ती के लिए अनुभव को सबसे महत्वपूर्ण गुण माना जाता है और नए रंगरूट का वेतन प्रायः उसकी पिछली आय के अनुसार तय किया जाता है। भर्ती में अनुभव की वरीयता एक सिद्धान्त के रूप में सबसे अधिक वाचाल उस समय होता है जबकि किसी उद्योग कर्मचारी विभाग के अध्यक्ष का चुनाव करना होता है या उस पद पर पदोन्नति करनी होती है। कौतुहल इस बात का है कि इसी कर्मचारी विभाग में अच्छे कर्मचारी व्यवहारों के विकास में पूर्व अनुभव एक गम्भीर-अवरोध बन सकता है। अनुभव के अनेक मुख और तत्व हैं और मानवीय संबन्धों एवं औद्योगिक संबन्धों ऐसी दो परिस्थितियाँ कदाचित ही मिलेगी जिन्हें समान कहा जा सके। पूर्व अनुभव के क्षेत्रों और नई परिस्थिति के क्षेत्रों में समानता स्थापित करने का प्रयत्न वर्तमान परिस्थिति की समस्या को पुरानी के ढाचें में डालने की

प्रवृत्ति रखती है । इससे अनेक झगड़े और संकट उत्पन्न हो जाते हैं, जो प्रगति को रोक देते हैं । एक क्षेत्र के व्यवहारों को अंधे के समान दूसरे क्षेत्र में प्रविष्ट कराया जाता है और अधिक आवश्यक दृष्टिकोण की नवीनता कदाचित ही मंच पर रह पाती है । पूर्व अनुभव की सिलवटों के कारण मौलिक निर्माणात्मक प्रवृति में सड़ांध पैदा हो जाती है । क्योंकि हमारे नव विकासमय उद्योगों में बहुत सा अनदेखा मार्ग चलने को है, इसलिए पदोन्नति की किसी एक ही रीति को मार्गदर्शक के रूप में अपनाने की अपेक्षा विभिन्न प्रयोगों और मौलिक प्रयत्नों के अनुभवों की तुलना को ध्यान में रखना ही सर्वोत्तम होगा ।

वास्तव में यह ठीक होगा कि इस अध्याय के विचारों और उस मनुष्य की भर्ती के नियमों के संबोधो को जो अन्य व्यक्तियों को भर्त्ती करेगा और पदोन्नति की रीतियों को एक में जोड़ कर ऐसे प्रकाश स्तम्भ से बाँध दे जो पदोन्नति की रीतियों को स्पष्ट करेगा । जिनको भर्त्ती और पदोन्नति का कार्यभार उठाना है ऐसे व्यक्तिओं को सदैव एक नवीन और श्रेष्ट दृष्टिकोण से प्रेरणा लेनी चाहिए । समाजसेवा के सिद्ध क्षेत्रों से आने चाहिए और ऐसे होने चाहिए, जिसमें पदों पर मनुष्यों को विकसित करने की रुचि हो । यदि यह प्राप्त हो तो पदोन्नति नीति के अनेक रूप हैं जो हमारे मामले में योग्य सेवा कर सकते हैं । कर्मचारी विकास प्रोग्राम के विभिन्न पहलुओं में जो अनेक देशों में हैं हमारे देश में भी हो सकता है अर्थात कार्यपद पर प्रशिक्षण चुनाव-रीति और अनुसरण-परीक्षा (जिसकी उपयोगिता व्यक्ति-परीक्षा द्वारा बढ़ाई जा सकती है) का एक स्वरीय संयोग बनाया जा सकता है । यह सबसे उत्तम रीति है, जिसे एक अच्छा कर्मचारी-अधिकारी या मैनेजर अपना सकता है और फिर उसे अपने संस्थान के लिए उच्चतम पदों के लिए सीधी भर्ती नहीं करनी पड़ेगी । जहाँ तक संभव हो यह एक नियम होना चाहिये कि उद्योग के श्रमिकों के कुटुम्बों में से ही व्यक्तियों की पदोन्नति की जाय । इस पार्श्वभूमि में सेवा-योजक को चाहिए कि वह अपने कर्मचारियों को विश्वविद्यालयों और प्राविधिक शिक्षा संस्थाओं की सहायता से अपने पद पर रहते हुए ही अपनी योग्यता बढ़ावें और यदि आवश्यक हो तो ऐसे सभी मामलों में उन अध्ययन के निमित्त अवकाश दिया जाना चाहिये और जब वे बाहर की परीक्षाओं को पास करलें तो उन्हें वेतन वृद्धि देकर प्रोत्साहित करना चाहिये । मानव की कुशलता और ज्ञान को परिवर्धित करने के सभी साधनों का विकास करना चाहिए और पद पर इन गुणों के प्रदर्शन से होने वाले सभी प्रतिफलों को पुरस्कार देना

चाहिए। मानव के विकास में किया गया विनियोग परमात्मा के अंश की पूजा है और सभी संसाधनों को इस प्रकार से लगाना चाहिए कि मानव में भगवान के दर्शन की खोज हो सके। क्योंकि उद्योग और साहसियों को जो यह सेवा वित्तीय या आर्थिक लाभ उपलब्ध करेगी उसके अतिरिक्त सभी मानवीय संस्कृतियों का प्रमुख उद्देश्य और मुकुट मानव का विकास है और यह उन आर्थिक विचारों से बहुत उच्च है जिनके द्वारा एक अच्छी पदोन्नति नीति के अंश के रूप में कर्मचारी विकास का प्रोग्राम चलता है।

———

प्रकाशक–

**महामंत्री**

भारतीय मजदूर संघ, उत्तर प्रदेश

२, नवीन मार्केट

कानपुर

**मूल्य २५ पैसे**

मुद्रक–

**टिप-टाप प्रिन्टर्स**

२४/९१, बिरहाना रोड,

**कानपुर–१**

फोन : ६९१११

अध्याय-४

# श्रमनीति

## काम की दशायें

## छुट्टियां एवं अवकाश

—भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

**'Labour Policy'** पुस्तक जो मा० श्री ठेंगड़ी जी, गोखले जी व मेहता जी द्वारा लिखी गई है। यह प्रस्तुत पुस्तिका उसी पुस्तक के अध्याय क्र० ४ की हिन्दी रूपान्तर है।

इसके अनुवादक राष्ट्रीय सुरक्षा श्रमिक संघ, कानपुर के मंत्री व उत्तर प्रदेश भारतीय मजदूर संघ के कार्यसमिति-सदस्य श्री रमाकान्त शुक्ल हैं।

इसीप्रकार शेष १९ अध्यायों के भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये गये हैं।

—प्रकाशक

अध्याय–४

# काम की दशायें

## छुट्टियां एवं अवकाश

सवेतन छुट्टियाँ, देय अवकाश, आकस्मिक अवकाश, अस्वस्थता अवकाश, काम के घन्टे तथा अधिकार्यकाल (ओवरटाइम) आदि व्यवस्थाओं के लिये कारखाना अधिनियम, दुकान एवं वाणिज्य प्रतिष्ठान अधिनियम व राज्य वीमा कर्मचारी योजना अधिनियम बने हैं तथा विभिन्न न्यायाधिकरणों व सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जो बहुत से स्थायी आदेशों एवं सामुहिक, सौदेबाजी में समझौते के अंग बन चुके हैं। इस प्रकार इस सम्बन्ध में भारत के कर्मचारियों को कुछ वैधानिक तथा कुछ समझौतेजन्य अधिकार प्राप्त हो गये हैं। साधारणतया इतस्तः सुधारों, जो यूनियनों द्वारा मांग प्रस्तुत किए जाने पर आवश्यक होगा—को छोड़कर, संरचनात्मक परिवर्तनों में कुछ और जोड़ना आवश्यक नहीं है। इस सम्बन्ध में प्रमुख बाधायें दो हैं—प्रथम कानून की इन व्यवस्थाओं का क्रियान्वयन बहुत त्रुटिपूर्ण है। विशेषतौर से कारखानों व ऐसे क्षेत्रों जहां श्रमिक अब भी असंगठित हैं और दूसरे कमवेश फैक्ट्री के कर्मचारी सवेतन छुट्टियों, अवकाश आदि के मामलों में लिपिक वर्ग की अपेक्षा कम सुविधायें पा रहे हैं। परिणाम स्वरूप फैक्ट्री स्टाफ में गैरहाजिरी (विशेष रूप से जहां २४ घन्टे काम किया जाता है और रात्रि पालियों का नियम है) अनवरत है तथा श्रमिक को बिना वेतन छुट्टी लेने की आवश्यकता पड़ती है। हमारी बहुत पुरानी और जीवमान सभ्यता है तथा समूचे वर्ष में बड़ी संख्या में लोगों को बहुत से उत्सव एवं त्योंहार मनाने पड़ते हैं। सभ्यता की यह एक

सुन्दर परिपाटी है। इसे सभी प्रकार से प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, साथ ही इसमें कई धर्म व सम्प्रदायों द्वारा आयोजित किए जाने वाले त्योहारों या महत्वपूर्ण दिवसों या आर्वाचीन राष्ट्रीय नेताओं के जन्म व निर्वाण व शतवार्षिक को सम्मान व समानता देने हेतु सम्मिलित किया जाना चाहिए। कई उद्योगों में सेवायोजकों द्वारा इन छुट्टियों और अवकाशों के बारे में शिकायतें की गई हैं तथा कुछ न्यायाधिकरणों ने वर्तमान छुट्टियों की संख्या में कटौती के निर्णय भी दिए हैं। हमारी राय में, मुख्य दोष छुट्टियों के निर्धारण हेतु पंचांग **(Calender)** स्वीकार करने में है। हमारे पंचागों पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालने पर पता चलेगा कि हिन्दू और मुसलमानों के बहुत से धार्मिक त्योहार पूर्णचन्द्र (शुक्ल पक्ष), चन्द्र विहीन (कृष्ण पक्ष) दिनों में पड़ते हैं। अस्तु छुट्टियों के देने का विषय प्राचीन सिद्धान्त चन्द्र पंचांग पर निर्भर था। यदि यह पुनः चालू किया जाता है तो इस सम्बन्ध में सभी प्रमुख छुट्टियां जो लोगों द्वारा धार्मिक या राष्ट्रीय महत्व के दिवसों के रूप में मनायी गयी हैं, को भी सम्मिलित किया जाता है। तो हम इस निष्कर्ष पर पहुचेंगे कि रविवार का साप्ताहिक अवकाश हमारे रहन सहन के अनुकूल वाले छुट्टियों के नये चक्र में पूर्णरूप से परिवर्तित हो जावेगा। जब तक कि यह प्रकृति से सम्बन्धित प्रबन्ध नहीं किया जाता तब तक के लिए हमारे सामाजिक, धार्मिक जीवन की आवश्यकता, विकास व संरचना के प्रति कम सम्मान रखने वाले पश्चिमात्य रिवाजों को उद्योगों द्वारा प्रदत्त प्रविधानों पर हम अपने सामजिक जीवन को मागों द्वारा एक अंकुश को लागू करना आवश्यक समझते हैं। क्योंकि इस पद्धति ने लोगों को उच्चवर्गीय **(White Colour)** और निम्न वर्गीय **(Blue Colour)** ऐसे दो वर्गों में कर्मचारियों को विभाजित कर दिया है। पाश्च्यवर्ती की अपेक्षा पूर्ववर्ती वाला अधिक सुविधा जनक समझा जाता है। पाश्चिमात्य ढ़ंग के सप्ताहन्तों **(Week Ends)** के स्थानों पर छुट्टियों एवं अवकाशों को निर्धारण में हम अपनी संस्कृतियों व सम्मतियों के अनुसार परिवर्तन करें ताकि यह परिवर्तन

राष्ट्रीय स्तर पर हो सकें। जहां तक सम्भव हो सम्पूर्ण राष्ट्र को वेतन और काम का आनन्द एक-दिन एक समय पर मिले। ठीक उसी प्रकार जैसा की सभी को रात व दिन समान रूप से मिलता है तथा ये वे दिन होने चाहिए जब हम सामुहिक रूप से अपने अतीत का स्मरण कर सकें। वर्तमान समय में हमारे बहुत से त्योहारों के दिनों को छुट्टियों की सूची से काटा जा रहा है, जो अनुचित है और कटौती का यह ढंग हानिकारक भी है। छुट्टियों के नये पंचांग से जिसका हम सुझाव दे रहे हैं, श्रमिकों के बहुत से असंगठित वर्गों-जैसे खेतिहर मजदूर, गुमास्ता, घरेलु नौकर आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति होगी और उनकी ओर से पुरजोर मान्यता भी होगी।

अवकाशों की व्यवस्था के सम्बन्ध में यही विचार लागू होना चाहिये, जैसा कि पूर्व वर्णित किया जा चुका है। मजदूर जो फैक्ट्री में है और जो असंगठित हैं जैसे दुकान आदि इन्हें लिपिक या अन्य कर्मचारी की अपेक्षा कम छुट्टियां मिलती हैं अतः इस विषय पर प्रकृति प्रदत्त राय रखने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये। प्रत्येक को वर्ष में १० दिन का आकस्मिक अवकाश व १० दिन का अस्वस्थता अवकाश इकट्ठा करने का अधिकार चाहिए पर सेवायोजकों की ओर से यह जिद्द है कि अवकाश एक अधिकार का विषय नहीं माना जाना चाहिए। उनका यह एक निरर्थक तर्क ही नहीं अपितु एक निरर्थक बाधा उत्पन्न करने वाला बहाना मात्र है। आकस्मिक और अस्वस्थता सम्बन्धी अवकाश आवश्यक व अनिवार्य हैं। तथा इस सम्बन्ध में सेवा-योजकों के अधिकार का प्रश्न केवल मजदूरों को असहयोग देने में सहायक होता है। यदि मजदूर को अस्वस्थता या अन्य किसी आकस्मिक कारणवश छुट्टी न मिले, जिसकी एक या दो महीने में कभी कभी या दो एक बार जरूरत पड़ती है तो उसके मन में उस प्रतिष्ठान के प्रति आत्मीयता का भाव नहीं जागृत हो सकेगा।

संपूर्ण परिस्थियों को देखते हुए व्यवस्थापकों से परामर्श करके

अनुपस्थिति में अन्य व्यक्ति की व्यवस्था व प्रबन्ध कराके सवेतन वार्षिक अवकाश, देय अवकाश लिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में कुछ ओर से यह सुझाव दिये गये हैं कि देय अवकाश की संपूर्ण सेवा के वर्षों की संख्या के साथ भी कुछ सम्बन्ध अवश्य रखें। श्रमिक जो अपेक्षाकृत अधिक सेवा में रखा गया है उसे अधिक देय अवकाश प्राप्त होने चाहिये। यह दैनन्दिन काम करने की मनहूसियत को समाप्त करेगी और पुनः लम्बी अवधि से काम करने वाले कर्मचारियों का मान भी करेगी।

इस कारण से सभी प्रकार की छुट्टियों (आकस्मिक के अतिरिक्त) को एकत्रित करने का अधिकार अप्रतिबन्धित होना चाहिए और आकस्मिक अवकाशों को भी ट्रेडयूनियनों और प्रबन्धकों के पारस्परिक समझौतों द्वारा दूसरे प्रकार के अवकाशों में परिवर्तित करने की अनुमति दी जानी चाहिये।

ट्रेडयूनियनों के अधिवेशनों में भाग लेने पर सम्पूर्ण समय कार्य पर उपस्थित माना जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में बैंकिंग उद्योग की वर्तमान व्यवस्था अन्यों के लिये मार्गदर्शक हो सकती है।

सुरक्षा और औद्योगिक स्वास्थ्य व्यवस्था से सम्बन्धित प्रश्न यहाँ नहीं लिया जा रहा है इसलिये उस पर अलग से विचार करने आवश्यकता है।

प्रकाशक—
**महामंत्री**
भारतीय मजदूर संघ, उत्तर प्रदेश
२, नवीन मार्केट
कानपुर

**मूल्य १० पैसे**

मुद्रक—
**टिप-टाप प्रिन्टर्स**
२४/९१, बिरहाना रोड,
कानपुर—१

अध्याय–५

# श्रमनीति

# ट्रेड यूनियन और सेवायोजकों के संगठन

—भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

**'Labour Policy'** पुस्तक जो मा० श्री ठेंगड़ी जी, गोखले जी व मेहता जी द्वारा लिखी गई है। यह प्रस्तुत पुस्तिका उसी पुस्तक के अध्याय क्र० ५ की हिन्दी रूपान्तर है।

इसी प्रकार शेष १९ अध्यायों के भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये गये हैं।

इस अध्याय के अनुवादक हैं– लखनऊ विश्वविद्यालय के वाणिज्य विभाग के प्राध्यापक डा० महेन्द्रप्रताप सिंह। उनका मैं हृदय से आभारी हूं।

—प्रकाशक

# ट्रेड यूनियन और सेवायोजकों के संगठन

देश में ट्रेड यूनियनों की संख्या की अभी हाल में हुई वृद्धि का एकमेव बड़ा कारण राजनीतिक दलों की संख्या में वृद्धि और उनके द्वारा श्रमिकक्षेत्र में अपने दलों के कार्य फैलाने की इच्छा है। फलस्वरूप जिन्हें राजनीतिक उद्देश्य से चलाया जा रहा है ऐसे यूनियनों का झुकाव राजनीतिक दलों की योजनाओं के अनुसार निश्चित समय पर और निश्चित प्रकार से ऐक्शन करने पर अधिक है तथा सत्य पर आधारित नहीं है निर्माणात्मक और नियमित ट्रेड यूनियन कार्यों को करने में राजनीतिक नेताओं की प्रकाशन वृत्ति ने पिछले दशक में अनेक आन्दोलनों को जन्म दिया, जिनकी मजदूरों के स्वार्थों के रक्षण के लिए आवश्यकता नहीं थी। पिछले दशक में मजदूरों के हिस्से में आन्दोलनकारी जागरुकता और सेवायोजकों के हिस्से में न्यायसंगत मांगों के दृढ़ विरोध की वृत्ति बढ़ती रही है। सेवायोजकों और उनकी संस्थाओं में अपने मजदूरों को शत्रु समझने, श्रमकानून की प्रत्येक व्यवस्था का शोषण जिससे कि मजदूरों को उनका प्राप्य न मिले, समझौतों और अवार्ड पालन से बचने, अपील इत्यादि की देरी करने की रणनीति अपनाने और बिल्कुल निरीह मजदूरों को भी ऐक्शन के लिए भड़कानें जो बाद में गैरकानूनी साबित किया जासके, जैसी प्रवृत्तियां बढ़ रही हैं। ट्रेड यूनियनों और सेवायोजकों के संगठनों में पारस्परिक अविश्वास बढ़ रहा है। सरकार और उसके कर्मचारियों में शत्रुता का भाव पनप रहा है। कर्मचारी अनुभव करते हैं कि सरकार ने आदर्श या माडल सेवायोजक के रूप में कार्य करने की अपेक्षा अपने को प्राइवेट सेक्टर के अनेक सेवायोजकों से भी पिछड़ा हुआ सिद्ध किया है।

समाजवादी समाज की स्थापना और नियोजित आर्थिक विकास प्राप्त करने के राष्ट्रीय उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि ट्रेड यूनियनें और सेवायोजन संगठन इन उद्देश्यों के प्रति सजग रहें और इस बात की लालसा रखें कि वे अपने को राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के प्रभावी यंत्रों के रूप में विकसित कर सकें। आर्थिक शब्दावली में वे अपने को उपभोक्ताहित-सजग बनावें क्योंकि उपभोक्ताहित सजगता ही राष्ट्रीय जागरुकता की निकटस्थ आर्थिक पर्याय है। वे अपने को केवल सदस्यों के लिए ही उत्तरदायी न मानकर समस्त राष्ट्र के लिए भी उत्तरदायी समझें। इससे उन्हें प्रेरणा मिलनी चाहिए कि वे सामान्य जनता को भी सभी औद्योगिक मसलों पर विश्वास में लें, उपभोक्ताओं को अपने दृष्टिकोण और वृत्तियां समझावें और एक औद्योगिक विवाद की स्थिति में उनका नैतिक समर्थन प्राप्त करें।

परिवर्तित परिस्थितियों में ट्रेड यूनियनों को उपभोक्ताओं की कान्फ्रेंसों को आयोजित करने में पहल करनी चाहिए और उपभोक्ताओं के साहस को बढ़ाकर देश के सहकारिता आन्दोलन में बड़े पैमाने पर सहयोग लिया जा सकता है।

अपने बीच सहकारी भाव जाग्रत करके और सरकार से सहयोग लेकर के वे सामाजिक कल्याण के प्रोग्राम अपने सदस्यों और अपनी कालोनी में रहने वाले अन्य मजदूरों के लिये चला सकते हैं।

आजकल प्रायः सभी ट्रेड यूनियन और सेवायोजकों के संगठन अपने सदस्यों के क्षेत्रीय स्वार्थों के संरक्षण और संवर्धन के लिए कार्यरत हैं। उन्होंने एक अच्छे समाज के विकास की समस्याओं पर गम्भीर विचार नहीं किया है। उन्हें राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था पर एक विशद दृष्टिकोण अपनाने की आदत नहीं है। यदि दोनों ही इस बात को समझकर उचित दृष्टिकोण बना लें तो उनके मतभेद बहुत कम हो जाएगें। उदाहरणार्थ हमारी अर्थ व्यवस्था की यह माँग है कि किसी को रोजगार से न निकाला जाए और अधिकतम संभव संख्या को काम दिया जाय। सेवायोजकों और सरकार द्वारा स्वचालितीकरण, विद्युतीकरण, डीजलीकरण अथवा यंत्रीकरण को लागू करने की माँग राष्ट्र की इस सर्वोच्च आवश्यकता से पूर्णरूप से असंगत है। ट्रेड यूनियनें ऐसे कदमों के खिलाफ ठीक ही आन्दोलन कर रही हैं। यह रोजगार को एक ऊंचे स्तर पर कायम रखने में सहायक होगा। यह दुर्भाग्य है

कि एक सेवायोजक के रूप में सरकार इस कार्य में समुचित रूप से सहायक नहीं है। इसके विपरीत अपने स्वयं के विभागों और उद्योगों में वह बड़े स्तर पर लोगों को नौकरी से निकाल रही है और ट्रेड यूनियनें ठीक ही उसका विरोध कर रही हैं। सरकार को यह स्वर्णिम सिद्धान्त अपनाना चाहिए कि "किसी व्यक्ति को तब तक सेवानिवृत्त न किया जाय जब तक कि उसे उसी समान स्तर का कोई अन्य विकल्प न दे दिया जाय।"

राष्ट्रीय स्तर पर अपनी संबद्ध इकाइयों द्वारा समझौतों का पालन करवाने में केन्द्रीय श्रम संगठनों की प्रभावशालीनता समुचित है यद्यपि ऐसे भी उदाहरण है जहां स्थानीय खिचाव और दबाव के कारण सम्बद्ध इकाइयां ऐसे समझौतों का पालन नहीं करवा पाती हैं। पालन न करने वाली इकाइयों के विरुद्ध राष्ट्रीय फेडरेशन की प्रभावहीनता के भी उदाहरण हैं। परन्तु ऐसे उदाहरणों को अपवाद स्वरूप ही समझना चाहिए।

फैक्टरी के स्तर पर सेवायोजकों की क्रियाओं का यूनियन और सेवायोजक संगठनों द्वारा विकसित राष्ट्रीय नीतियों से संगति स्थापित करने में दिक्कतें अवश्य ही पैदा होती हैं। इन दिक्कतों को दूर करने का मार्ग केवल यही है कि ट्रेड यूनियनों को सुदृढ़ बनाया जाए जिससे वे सेवायोजकों को सही दिशा में कार्य करने के लिए मजबूर कर सकें।

## ट्रेड यूनियन नेतृत्व और अनेकता

यूनियनों की प्रतिद्वन्दिता को दूर करने में और अन्तर संघीय संबन्धों के नियंत्रण में अन्तरसंघीय व्यवहार संहिता प्रभावी नहीं रही है। यह संहिता उस समय तक प्रभावी नहीं बनाई जा सकती है जब तक कि ट्रेड यूनियनों की मूलभूत प्रवृत्तियों में परिवर्तन नही होता है। ट्रेड यूनियन अन्दोलन पर राजनीतिक दलों का प्रभाव काफी रहा है और हमने इस समस्या पर इस स्मृतिपत्र में अन्य स्थान पर विवेचन किया है। ट्रेड यूनियन पर बाहरी व्यक्तियों का प्रभाव बहुत अधिक रहा है। ऐसा इस कारण है कि ट्रेड यूनियन आन्दोलन अभी भी अपने प्रारम्भिक अवस्था में है और मजदूर अभी अपने नेतृत्व की क्षमता के प्रति विश्वास नहीं रखते हैं। वे अभी समझौतावार्ता की मेज पर भी अपने कार्य करने की योग्यता के संबंध में घबराते हैं। यही कारण है कि बाहरी नेतृत्व का वे सहारा लेते हैं। मजदूरों द्वारा यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि जितनी शीघ्र हो सके वे इन बाहरी व्यक्तियों से मुक्ति

पा जायं परन्तु यह तभी सम्भव होगा जब मजदूरों का आत्मविश्वास जग जाए। यह भी सत्य है कि मजदूरों का राजनीतिक शोषण भी बाहरी तत्वों के माध्यम से हो सकता है। बाहरी व्यक्तियों का निरसन ही ट्रेड यूनियन आन्दोलन को राजनीतिक परतंत्रता से मुक्ति दिला सकेगा। यथार्थ में तो ट्रेड यूनियन मजदूरों का, मजदूरों द्वारा और मजदूरों के लिए ही एक संगठन है।

'बाहरी तत्व' की परिभाषा आसान नहीं है। कठिनाई उस समय उत्पन्न होती है जबकि ऐसे नेताओं को जो कहीं पहले लगे थे और जिन्होंने नौकरी छोड दी है या जिनको नौकरी से निकाल दिया गया है उन्हें क्या कहा जाएगा ? वास्तव में उन्हें बाहरी तत्व न समझना चाहिए।

उन कर्मचारियों के संबन्ध में भी जिन्हें नेतृत्व के लिए योजनापूर्वक प्रशिक्षित किया गया हो दिक्कत होती है। एकबार प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने के बाद उनकी प्रवृत्ति बाहरी मध्यम वर्गीय नेताओं से मनोवैज्ञानिक गठजोड़ करने की हो जाती है। वे यद्यपि सर्वहारा वर्ग से उदित होते हैं परन्तु मनोवैज्ञानिक आधार पर उनसे अलग हो जाते हैं। इस संबन्ध में विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उनके मामलों में ऐसा मनोवैज्ञानिक बहाव न उत्पन्न हो। नेतृत्व की कला में उन्हें प्रशिक्षण देना आवश्यक है। ऐसे श्रमिकों की शिक्षा योजना-यूनियनों द्वारा शिक्षण कक्षायें लगाकर, अनुभवी ट्रेड यूनियन नेताओं के मार्ग दर्शन व कार्य-क्षेत्र में अनुभव प्राप्त कराके किया जा सकता है।

## ट्रेड यूनियनों की मान्यता

ट्रेड यूनियन एकता की बातचीत बहुत कुछ हवा में व्याप्त है। विभिन्न उद्योगों में ट्रेड यूनियनों की अनेकता ने सामूहिक सौदेबाजी पक्ष के रूप में श्रमिक की स्थिति को कमजोर किया है और वहां औद्योगिक शान्ति स्थापित करने के कार्य को असंभव नहीं तो कठिन अवश्य बनाया है। यद्यपि सभी यूनियनें कम से कम प्रकट रूप में 'एक उद्योग में एक यूनियन' के आदर्श का समर्थन करती हैं फिर भी किसी भी क्षेत्र में औद्योगिक स्तर पर एकता लाने का कोई गम्भीर प्रयत्न नहीं हो रहा है। इससे यह स्पष्ट है कि ट्रेड यूनियन एकता प्राप्त करने के लिये या तो कोई अधिक व्यवस्थित और गम्भीर पग उठाया जाना चाहिए या सभी यूनियनों को 'अनेकता के सत्य' के साथ जीना सीखना चाहिए।

यह स्पष्ट है कि वास्तविक और पालनीय एकता केवल विभिन्न संगठनों के नेताओं के बीच वार्ता द्वारा नहीं उत्पन्न की जा सकती है, क्योंकि उनके अन्तिम उद्देश्य और उन पर आधारित रणनीति बहुत भिन्न है। यदि शीर्षस्थ नेता किसी प्रकार के समझौते पर पारस्परिक समायोजन द्वारा पहुंच भी जाए तो भी ऐसे प्रयोग की सफलता की गारन्टी नहीं दी जा सकती है। जब तक एकता साथ ही साथ नीचे से भी न निर्माण की जाए। विभिन्न अधिकारों के बनावटी समायोजन द्वारा स्थापित एकता पालनीय नहीं बन सकती है। ट्रेड यूनियन एकता को स्थायी और प्रभावी होने के लिए उसका उद्देश्य की समानता हेतु, प्रारम्भ से ही स्वाभाविक रूप से होना आवश्यक है।

एकता प्राप्त करने के केवल दो ढंग हो सकते है। समान्यतः मजदूरों को समुचित शिक्षा और प्रचार के द्वारा एकता-सजग बनाया जाय, जिससे वे बिभिन्न यूनियनों के नेताओं पर आवश्यक दबाव डाल सकें कि वे या तो एक हो जाँय या क्षेत्र को छोड़ दें। उद्देश्यों और रणनीतियों के मतभेदों के अवरोध पर विजय प्राप्त करने का यही एक विश्वस्त मार्ग है परन्तु इसके लिए दीर्घकालीन और धैर्ययुक्त श्रमिक शिक्षा की योजना एवं प्रसार करना होगा। इस सम्बन्ध में कोई और छोटा रास्ता नहीं है।

दूसरा ढंग यह है, जिसे भारत सरकार ने डाक एवं तार विभाग में अपनाया है। इस सम्बन्ध में सरकार ने ट्रेडयूनियन एकता स्थापित करने में पहल की और एक पुनर्व्यवस्था योजना चलाई और विभिन्न यूनियनों से आग्रह किया कि वे पंक्तिबद्ध हो जावें। यह प्रयोग सफल हुआ है। यद्यपि कुछ अल्पसंख्यक वर्ग यह अनुभव करते हैं कि उनकी टुकड़ियों के अलग यूनियन न होने के कारण वे सुरक्षित नहीं है। तारघरों के क्लर्क और एस०बी०सी०ओ० कर्मचारी इस श्रेणी में आते हैं। यद्यपि यह कोई विशेषबात नहीं है और इन कमियों को वर्तमान योजना के प्रारूप में ही समुचित समायोजन द्वारा दूर किया जा सकता है। डाक और तार कर्मचारियों के राष्ट्रीय फेडरेशन ने ९ श्रेणियों के संगठनों को राष्ट्रीय स्तर पर अपने से सम्बद्ध तथा सर्किल, डिविजनल और ब्रान्च स्तरों पर समन्वित किया है।

यह ढंग पहले की अपेक्षा कम प्रभावी है। इसकी उपयोगिता सीमित है। यह तो बहुत कुछ वर्तमान यूनियनों के नेताओं के सुझाव पर निर्भर करेगा, जो इस पुनर्व्यवस्था को माने अथवा न माने। यदि इसे भारतीय रेलों पर प्रयुक्त किया जाय तो इस ढंग की प्रभावी प्रकृति की सीमायें स्पष्ट हो जायेंगी। आजकल तीन राष्ट्रीय

फेडरेशन हैं, जिनमें से दो मान्यता प्राप्त हैं और एक मान्यता रहित । इनके अतिरिक्त कई सामान्य और श्रेणीवार परिषद भी रेलों पर कार्य कर रही है । श्रेणी वार परिषदों की उत्पत्ति ने सामान्य फेडरेशनों के नेताओं और प्रशासकों को चिन्ता में डाल दिया है । यद्यपि एक व्यावहारिक रणनीति के रूप में भी एकता का सिद्धान्त मजबूत है । अल्पसंख्यक श्रेणियां इस बात से इन्कार नहीं कर सकती हैं कि सामान्य फेडरेशनों द्वारा प्रशासन अथवा द्वितीय वेतन आयोग के सम्मुख उनके मामलों को ठीक प्रकार से प्रस्तुत नहीं किया गया, क्योंकि उनका फेडरेशनों की व्यवस्था में हाथ नहीं था । अधिक संख्या वाली श्रेणियों का प्रभाव प्राकृतिक ढंग से अधिक होता है । किसी फेडरेशन की अनिवार्य सदस्यता के लिए कमजोर श्रेणियों को बाध्य करना, जिसके न्यायपूर्ण व्यवहार के प्रति वे ठीक ही सशंक हैं, उनके संविधान और प्रजातांत्रिक अधिकारों पर कुठाराघात होगा । फिर भी सामान्य फेडरेशनों और श्रेणीवार परिषदों की समकालीन विद्यमानता एक कठिन और अराजक चित्र प्रस्तुत करेगी, जो कर्मचारियों के हितों के विरुद्ध होगा । डाक तार विभाग के सूत्र को समुचित परिवर्तनों के साथ रेलवे पर प्रयुक्त करना योग्यतर होगा । यह सत्य है कि रेलों पर श्रेणियों की संख्या बहुत अधिक है । परन्तु उन्हें १२ या १३ ट्रेडों में वर्गित किया जा सकता है । विभिन्न श्रेणीवार परिषदों को ट्रेडों के अनुसार संयुक्त कर सकते हैं और फिर ट्रेडों के अनुसार परिषदों को राष्ट्रीय स्तर पर फेडरेशन बनाया जा सकता है । विभिन्न प्रत्यंग इकाइयों का समन्वय जोन, डिवीजन और ब्रान्च स्तरों पर *N.F.P.T.E.* के प्रारूप में समुचित परिवर्तन करके किया जा सकता है । यह व्यवहार्य भी है तथा योग्य भी, क्योंकि केवल श्रेणीवार परिषदों को बढ़ावा देना हानिप्रद है तो एकता के नाम पर अनिच्छुक सेवायोजकों पर अग्राह्य नेताओं और संगठनों का थोपना कम भयानक नहीं है । एकता का विकास निचले स्तर से होना चाहिए न कि उसे ऊपर से थोपना चाहिए ।

क्या सरकार इस सम्बन्ध में पहल करेगी ? और यदि वह ऐसा करती है तो क्या विभिन्न फेडरेशनों, यूनियनों और परिषदों के नेता अनुकूल प्रतिक्रिया करेंगे ? यह बात कोई नहीं जानता । कुछ भी हो खेल खेलने योग्य है यद्यपि इस ढंग की सीमायें भी सुस्पष्ट हैं ।

एक सत्य पूर्ण रूप से स्पष्ट है । कि सरकारी विभागों और लोक क्षेत्रीय संस्थानों में इस ढंग की सफलता निजी क्षेत्र के उद्योगों का मार्गदर्शन करेगी । परन्तु यह ढंग भी प्रतिफल प्रदान करने में काफी लम्बा समय लेगा ।

होगा । पंजीकरण संबन्धी वर्तमान व्यवस्थायें ठीक हैं और उन्हें भविष्य में चलने देना चाहिए ।

यूनियन की सदस्यता की जाँच के वर्तमान प्रक्रम में सुधार किया जाना चाहिए जिससे प्रक्रिया तेज हो जाए ।

यूनियनों को मान्यता औद्योगिक स्तर पर, राष्ट्रीय आधार पर या स्थानीय क्षेत्रो में उद्योग स्तर पर और फैक्टरी में ट्रेड या श्रेणी स्तर पर दिया जाना चाहिए ।

टेक्सटाइल, इंजीनियरिंग, शक्कर, सीमेन्ट इत्यादि उद्योगों में क्षेत्रीय आधार पर मान्यता का अधिक महत्व इन उद्योगों के विशेष लक्षणों के कारण होगा ।

रेलों, बैंकिंग, वीमा इत्यादि पर राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता अधिक महत्वपूर्ण होगी यद्यपि स्थानीय या इकाई स्तर पर भी व्यवस्था करनी होगी ।

यह नियम ठीक नहीं है कि कोई यूनियन जिसमें संस्था के १५% या अधिक सदस्य हों मान्यता प्राप्त कर सकती हैं । सैद्धान्तिक रूप में यह किसी एक उद्योग में ६ यूनियनों को मान्यता देने की संधि प्रदान करता है । व्यवहारिक आधार पर ६ की हद केवल अपवादपूर्ण मामलों में ही पहुंच सकती है ।

हमारा सुझाव है कि उद्योग के स्तर पर सर्वप्रथम मान्यता उस यूनियन को दी जानी चाहिए जिसमें ५५% या अधिक सदस्य हों । ऐसी यूनियन के अभाव में मान्यता उन सभी यूनियनों को दी जाए, जिसमें ३०% या अधिक सदस्य हों, ३०% से कम सदस्यता वाली यूनियनों को मान्यता नहीं देनी चाहिए ।

स्थानीय क्षेत्र में अथवा संयंत्र-ट्रेड-श्रेणी स्तर पर मान्यता ऐसी यूनियन या यूनियनों को दी जानी चाहिए, जिन्हें उद्योगसः राष्ट्रीय आधार पर मान्यता प्राप्त नहीं हैं परन्तु अपने क्षेत्रों अथवा स्तरों पर मान्यता प्राप्त यूनियनों से अधिक सदस्यता रखती हों ऐसी यूनियनों की मान्यता उन्हें क्षेत्र, संयंत्र, ट्रेड या श्रेणी की विलक्षण समस्याओं को हल करने में प्रतिनिधि स्वरूप प्राप्त करा देगा ।

यूनियन/यूनियनों की मान्यता संबन्धी पात्रता निर्धारित करने के लिए विभिन्न यूनियनों से जाँच की प्रक्रिया द्वारा उपलब्ध सदस्यता के आंकड़ों को आधार मानना चाहिए। यदि कोई यूनियन इन परीक्षित आंकड़ों को चुनौती दे तो प्रतिनिधि स्वरूप ज्ञात करने के लिए गुप्त वोट की रीति को अपनाना चाहिए। केवल वे ही श्रमिक वोट देने के अधिकारी माने जाने चाहिए, जो किसी पंजीकृत यूनियन का लगातार ६ महीने सदस्य रहा हो और जो सदस्य न हों उन्हें वोट करने का अधिकार नही मिलना चाहिए। विभिन्न स्तरों पर मान्यता की अवधि कम से कम दो वर्ष की होनी चाहिए। परन्तु किसी भी पंजीकरण रहित यूनियन को एक वर्ष के बाद किसी भी पंजीकृत यूनियन के प्रतिनिधि स्वरूप को चुनौती देने का अधिकार होना चाहिए और ऐसे मामले में सदस्यता के आँकड़ों की पुनर्जांच की जानी चाहिए और यदि फिर भी चुनौती देने वाली यूनियन संतुष्ट न हो सके तो वर्णित रीति से गुप्त वोट को अपनाना चाहिए।

यद्यपि यह केवल मान्यता प्राप्त यूनियन या यूनियनों का विशेषाधिकार होना चाहिए कि वे सामूहिक माँगों और समस्याओं पर व्यवस्थापकों से समझौते कर सकें। पंजीकरण रहित यूनियनों को यह अधिकार होना चाहिए कि वे व्यक्तिगत मामलों का प्रतिनिधित्व कर सकें और समझौते का निर्वाचन कर सकें, साथ ही समझौते की विभिन्न व्यवस्थाओं का पालन भी करवावें। व्यवस्थापकों के लिए यह अनिवार्य होना चाहिए कि वे सामूहिक मांगों पर भी पंजीकरण रहित यूनियनों के भी ज्ञापन और प्रतिनिधिमंडलों का स्वागत करें परन्तु समझौता उन विषयों पर केवल मान्यता प्राप्त यूनियन से ही करें। मान्यता रहित परन्तु पंजीकृत यूनियनों के पत्रव्यवहार का उत्तर देना व्यवस्थापकों के लिए अनिवार्य होना चाहिए। ऐसी यूनियनों के लिए यह भी अधिकार होना चाहिए कि यदि व्यवस्थापकों और मान्यता प्राप्त यूनियन के बीच हुआ समझौता कुछ विषय छोड़ गया है तो वे उनके लिए न्यायालय में जासकें। मान्यतारहित यूनियनों का यह अन्तर्निहित अधिकार है कि वे समझौते की व्यवस्थाओं के संबन्ध में श्रमिकों को सूचित कर सकें, श्रमिक स्वार्थों के विपरीत व्यवस्थाओं के विरुद्ध जनमत जाग्रत कर सकें और व्यवस्थापकों और मान्यताप्राप्त यूनियन पर उनको हटाने या संशोधन करने के लिए दबाव डाल सकें।

निम्नलिखित मामलों में मान्यताप्राप्त और मान्यतारहित यूनियनों में कोई भेद नहीं किया जाना चाहिए–

(१) सदस्यता शुल्क या संस्थान के अन्तर्गत सदस्यों द्वारा दिये जाने वाले चन्दे की राशि का संग्रह ।

(२) किसी नोटिस बोर्ड पर या नए नोटिस बोर्ड की स्थापना संस्थान के भीतर करके उसपर मीटिंग, खाते का ब्योरा या अन्य सूचना चिपकाना ।

(३) संस्थान के भीतर किसी स्थान का पूर्व सूचना देकर निरीक्षण ।

(४) संस्थान के कार्य संबन्धी कोई संबन्धित जानकारी प्राप्त करना ।

उपरोक्त विचारों के परिप्रेक्ष्य में मान्यता के नियमों का निम्नलिखित ढंग से पुनर्लेखन किया जाना जाहिए–

(क) जहाँ एक यूनियन से अधिक हों मान्यता चाहने वाली यूनियन, पंजीकरण के पश्चात कम से कम एक वर्ष से कार्य कर रही हो। जहाँ एक ही यूनियन हो, यह परिस्थिति लागू नहीं होनी चाहिए ।

(ख) (१) यूनियन की सदस्यता कम से कम संस्थान के ५५% श्रमिकों की होनी चाहिए ।

(२) जहाँ कोई एक यूनियन इस परिस्थिति को पूर्ण नहीं करती हो उन सभी यूनियनों को मान्यता देनी चाहिए, जो कम से कम ३०% या अधिक श्रमिकों को सदस्य बनाये हों ।

(३) केवल उन्हीं की सदस्यता गिनी जाये, जिन्होंने गिनती करने से पिछले ६ महीने लगातार अपना चन्दा दिया हो ।

(ग) (१) एक स्थानीय क्षेत्र में कोई यूनियन, प्रतिनिधि यूनियन के रूप में मान्यता की माँग कर सकती है यदि उसके क्षेत्र में उसकी सदस्य संख्या उद्योग स्तर पर मान्यता प्राप्त यूनियन से अधिक हो ।

(२) किसी स्थानीय क्षेत्र में एक उद्योग की प्रतिनिधि यूनियन को यह अधिकार होना चाहिए कि वह उद्योग के सभी संस्थानों में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व कर सके परन्तु यदि किसीं विशिष्ट संस्थान की यूनियन की अपने संस्थान

में सदस्य संख्या स्थानीय क्षेत्र की उद्योग के लिए मान्यता प्राप्त यूनियन से अधिक हो तो उसे संस्थान के स्तर पर मान्यता दी जानी चाहिए और यह अधिकार होना चाहिए कि वह केवल स्थानीय मामलों में रुचि ले सके।

(घ) कोई यूनियन यदि उसकी सदस्य संख्या अपनी श्रेणी अथवा ट्रेड में उस यूनियन से अधिक है, जिसे उद्योग स्तर पर मान्यता प्राप्त है तो उस उद्योग में अपनी विशिष्ट श्रेणी या ट्रेड के लिए मान्यता की माँग कर सकती है किसी श्रेणी या ट्रेड की प्रतिनिधि यूनियन को उस श्रेणी या ट्रेड की विशिष्ट समस्याओं के लिए सभी श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार होना चाहिए।

(ङ) जब एक यूनियन को मान्यता मिल जाये तो दो वर्षों तक उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए। यद्यपि एक वर्ष के बाद उद्योग की किसी अन्य पंजीकृत यूनियन द्वारा चुनौती देने पर उसकी सदस्यता की पुनर्जांच की जा सकती है।

(च) उन ट्रेड यूनियन फेडरेशनों के संबन्ध में, जो किसी केन्द्रीय श्रमिक संगठन से सम्बद्ध न हो, मान्यता के प्रश्न पर दूसरे प्रकार से विचार करना होगा।

यूनियनों की मान्यता के संबन्ध में 'अनुशासन संहिता, की व्यवस्थायें व्यवहार में कोई संतोषजनक विन्यास नहीं प्रस्तुत करती हैं। औद्योगिक संबन्धों के किसी पक्ष के द्वारा इस संहिता को गम्भीरता से नहीं देखा जाता है। इस संबन्ध में सेवायोजकों की वृत्ति अवरोधात्मक हीं रही है। श्रमिकों के मन में सदस्यता की पुनर्जांच की वर्तमान व्यवस्था के लिए अविश्वास उत्पन्न हो गया है इसलिए उसे गुप्त वोट की प्रक्रिया द्वारा प्रतिस्थापित करना चाहिए। औद्योगिक अशान्ति के प्रमुख कारणों में एक मान्यता का प्रश्न भी रहा है, क्योंकि वर्तमान व्यवस्था में सेवायोजकों अथवा सरकार द्वारा पसन्द किए जाने वाली यूनियनों को छल साधन से मान्यता दिलवाई जा सकती है यद्यपि उनकी वास्तविक सदस्यता न्याय द्वारा स्थापित स्तर से भी नीचे हो।

इसलिये यह आवश्यक है कि ऊपर वर्णित दिशा में प्रक्रम सम्बन्धी परिवर्तन किए जाएं । इस प्रक्रम को शुद्धता से लागू करने के निमित्त यह आवश्यक है कि मान्यता का सम्पूर्ण प्रश्न भारतीय ट्रेड यूनियन संशोधन विधेयक, १९४७ के द्वारा परिकल्पित श्रम न्यायालयों (लेवर कोर्ट) के सामर्थ्य के अंतर्गत ले आया जाय ।

---

प्रकाशक–

**महामंत्री**

भारतीय मजदूर संघ, उत्तर प्रदेश

२, नवीन मार्केट

कानपुर

**मूल्य २० पैसे**

मुद्रक–

**टिप-टाप प्रिन्टर्स**

२४/९१, बिरहाना रोड,

कानपुर–१

फोन : ६९१११

अध्याय–६

# श्रमनीति

# औद्योगिक सम्बन्ध

—भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

**'Labour Policy'** पुस्तक जो मा० श्री ठेंगड़ी जी, गोखले जी व मेहता जी द्वारा लिखी गई है। यह प्रस्तुत पुस्तिका उसी पुस्तक के अध्याय क्र० ६ की हिन्दी रूपान्तर है।

इसी प्रकार शेष १९ अध्यायों के भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये गये हैं।

इस अध्याय के अनुवादक हैं– लखनऊ विश्वविद्यालय के वाणिज्य विभाग के प्राध्यापक डा० महेन्द्रप्रताप सिंह। उनका मैं हृदय से आभारी हूं।

—प्रकाशक

अध्याय ६

# औद्योगिक सम्बन्ध

## प्रस्तावना

### सरकारी श्रम नीति

औद्योगिक सम्बन्धों की समस्याओं की पेचीदगी उन मनोभावों में निहित है जो सेवायोजक और कर्मचारीगण अपने मध्य सम्प्रेषण में अपनाते हैं। इस विषय में सरकार कुछ विशेष न करके अपने को एक आदर्श सेवायोजक के रूप में प्रस्तुत कर सकती है। सम्प्रेषण या संवादवहन की समस्याओं को समझने के लिए हमें इस प्रवाहिका का व्यवहार तथा सेवायोजकों और कर्मचारियों के मध्य सम्प्रेषण के तरीकों को समझना पड़ेगा। इस संबन्ध में सरकार की स्थिति भी निश्चित करनी पड़ेगी, विशेषतया उस बिन्दु पर जबकि दोनों पक्षों के बीच पारस्परिक संधिवार्ता कोई निश्चित प्रतिफल प्राप्त करने में समर्थ नहीं होती है। ऐसी स्थिति में सरकार या तो स्वयं हस्तक्षेप करे अथवा उसे झगड़े के किसी एक पक्ष की प्रार्थना पर ऐसा करना चाहिए ? इस प्रश्न की प्रकृति जननीति के कुछ निश्चित लक्ष्यों की स्वयंसिद्ध कल्पना करती है। प्रथमतः स्पष्ट रूपेण सरकार का यह कर्त्तव्य है कि झगड़े के किसी पक्ष द्वारा जनता की लूट न की जाए। कर्मचारियों द्वारा की गई प्रत्येक हड़ताल या सेवायोजक द्वारा की गई प्रत्येक तालाबन्दी जनता के लिए कुछ कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं। प्रत्येक बार जब किसी जनोपयोगी संस्थान अथवा उद्योग में व्यवस्था तितर-बितर हो रही हो तो जनता की इस कठिनाई के प्रति अंधश्रद्धा भाव रखना ठीक नहीं होगा। परन्तु साथ ही जनता का यह अधिकार है कि

वह आशा करे कि ऐसी परिस्थिति में सरकार अवश्य ही उनकी ओर से हस्तक्षेप करेगी जब किसी विवाद में उनके सामूहिक जीवन को धमकी दी जा रही हो या जिसके कारण सर्वसाधारण को बहुत नुकसान उठाना पड़ रहा हो या जनजीवन में अभद्रता उत्पन्न हो रही हो। परन्तु इसके अतिरिक्त सरकार को किसी औद्योगिक विवाद में उस समय तक दूर रहने का अधिकार है जब तक विवाद के किसी एक पक्ष के द्वारा सहायता के लिए प्रार्थना न की गई हो। इस प्रार्थना पर भी उसे बिना पर्याप्त कारण के दौड़ना नहीं चाहिए और उसे प्रार्थी की प्रमाणिकता की परीक्षा और प्रत्येक मामले की सार्थकता की जाँच करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में साधारणतया यह कहा जा सकता है कि उसको विवाद के कमजोर पक्ष के लिए एक दयालु दृष्टिकोण रखना चाहिए यद्यपि इसका अर्थ यह न लिया जाना चाहिए कि वह कमजोरी को बढ़ावा दे रही है या अनुग्रहीत कर रही है। दूसरी ओर जब विवाद वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन लाने के लिए हो तो उसे मान्यता प्राप्त यूनियन अथवा जो यूनियन सम्बन्धित कर्मचारियों के लिए सौदा करने के अधिकारी हो– की प्रार्थना का सम्मान करना चाहिए और महत्वपूर्ण मामलों में केवल कागजी यूनियन से बात नहीं करनी चाहिए। परन्तु श्रमिकों के कानूनी या संविदात्मक अधिकारों की रक्षा जैसे मामलों में उसे अपनी सेवायें और बल किसी भी साधारणतम श्रमिक को सबसे बड़े सेवायोजक के विरुद्ध भी प्रदान करना चाहिए।

संदर्भ का महान आधार उपरोक्त विचारों को बनाते हुए सरकारी हस्तक्षेप के विभिन्न रूपों और नीति के विभिन्न प्रसारों की एक आदर्श योजना परिकल्पित की जा सकती है। औद्योगिक संबन्ध पर सरकारी नीति की प्रभावशालीनता या प्रभावहीनता को ऐसे ही विचारों के आधार पर जाँचा जा सकता है, जिन्हें वर्तमान परिस्थितियों में न्यायपूर्ण और ठीक माना जा सकता है। मोटे तौर पर श्रमिक पक्ष से सरकारी हस्तक्षेप की मांग करने वाली परिस्थितियाँ और हस्तक्षेप के उचित स्वरूपों का वर्णन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

(।) व्यक्तिगत प्रकृति की शिकायतों के लिए जैसे विभुक्ति, सेवामुक्ति, स्थानान्तरण, देय भुगतान न करना इत्यादि। (अ) जब सरकार प्रगटतः सन्तुष्ट हो कि विभुक्ति, सेवामुक्ति, स्थानान्तरण इत्यादि गैर कानूनी हैं या वह समझौते के विरुद्ध हैं या व्यवहार के विरुद्ध हैं अथवा अन्यायपूर्ण और अनुचित हैं तो

योग्य कार्यपालक अधिकारी को अधिकार होना चाहिये कि वह सेवायोजक को उसके द्वारा न्यायपालिका से अन्तिम निर्णय प्राप्त करने के अधिकार को सुरक्षित रखते हुए अपना फैसला उलटने या संशोधित करने पर मजबूर कर सके। (ब) अन्य मामलों में कर्मचारी या उसकी यूनियन में उचित न्याय की प्राप्ति के लिए अपना मामला न्यायालय में ले जाने की शक्ति होनी चाहिए। अतः सरकारी हस्तक्षेप का रूप यह होगा कि वह श्रमिक द्वारा की गई शिकायत की पहली दृष्टि में प्रगट होने वाली खोजों पर कार्य करें। कार्यपालक अधिकारी द्वारा उपयोग किए गए अधिकारों के संबन्ध में न्यायपालिका द्वारा दिए गए निर्णय इस संबन्ध में आवश्यक सुधार करेगें।

(२) अवार्ड या समझौतों के पालन न होने के कारण होने वाले अन्याय के लिए यह काफी होना चाहिए कि यदि कोई यूनियन उसपर विवाद उठा दे और तब सरकार द्वारा पालन किया जाने वाला प्रक्रम वैसा ही होना चाहिए जैसा ऊपर दिया गया है। अतः व्यक्तिगत विवाद और सामूहिक विवाद में भेद किया जाना चाहिए और दूसरे के लिए एक पंजीकृत यूनियन की मध्यस्थता पर सरकार द्वारा हस्तक्षेप करने से पहिले जोर दिया जाना चाहिए। इससे श्रमिकों के जिम्मेदार यूनियनों के विकास में और प्रवृत्तियों के अनुशासन में सहायता होगी।

(३) जब यूनियनों द्वारा वर्तमान परिस्थितियों को परिवर्तित करने की मांग उठाई जाए तो सरकारी हस्तक्षेप के रूप के लिए एक निकट अध्ययन और विभिन्न तत्वों में समतोलन की आवश्यकता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जो कर्मचारी और सेवायोजकों की स्वस्थ संस्थाओं के विकास के लिए आरक्षित है। यहाँ पर बल सामूहिक सौदेबाजी पर होना चाहिए। दोनों ही पक्षों को साथ बैठना आवश्यक होना चाहिए, जिससे वे बैठकर अपनी औद्योगिक संबन्ध की समस्याओं पर विचार विमर्ष कर सकें। इन झगड़ों में सरकार को उसी समय हस्तक्षेप करना चाहिए जब एक दृढ़ और विश्वस्त ट्रेड यूनियन द्वारा मांग की जाय। परन्तु एक दृढ़ और विश्वस्त यूनियन के तत्वों को तय करनेके लिए कोई वेलोच नियम नहीं बनाने चाहिए, क्योंकि प्रायः सदस्य संख्या इत्यादि पर आधारित अंकगणितीय तत्वों से उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती है। वे खुले बहीखाते में छलसाधन के लिए लिखे गये हैं और आधारभूत श्रेणियों

और विभागों के अव्यवस्थित होने के विरुद्ध कोई गारंटी नहीं प्रदान करते हैं। प्रत्येक मामले में परिस्थितियाँ प्रायः भिन्न होती हैं। और फिर भी वे भ्रमरहित रूप में यह प्रगट कर देती हैं कि कौन सी यूनियन या यूनियनें प्रभावी हैं और उन पर प्रतिफल प्राप्त कराने का विश्वास किया जा सकता है। एक तर्क शुद्ध रीति से सुप्रशिक्षित और सुदृढ़ श्रमप्रज्ञान इस कार्य को करने में सक्षम होना चाहिए। ऐसे मामले में सरकारी हस्तक्षेप का रूप ऐसा होना चाहिए कि वह उभयपक्षों को समझौता करने के लिए मार्गदर्शन करे और न होने पर विवाद के लिए एक ऐच्छिक पंच फैसले का मार्ग प्रशस्त करे। अनिवार्य अभिनिर्णय को अन्तिम अस्त्र के रूप में ग्रहण करना चाहिए। वेजबोर्ड और वेतन आयोगों की नियुक्ति तब की जानी चाहिए जब विशाल जनसमुदाय या संस्थाओं से गवाहियां एकत्रित करनी हों और प्राविधिक अध्ययन करना आवश्यक हो।

कोई सरकार यदि नीति के उपरोक्त प्रतिपादनों पर दृढ़ रहे और यह प्रदर्शित करे कि उसे इनके निहित अर्थों का पूर्ण ज्ञान है तो ऐसा माना जा सकता है कि उसने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। सरकार की श्रम नीति की प्रभावोत्पादकता की जांच के तत्व हड़ताल या तालाबन्दी के द्वारा होने वाली मानव-दिवसों की हानि इत्यादि नहीं होना चाहिए, परन्तु स्वस्थ संस्थात्मक संबन्धों का विकास होना चाहिए, जो वह धैर्यपूर्वक बढ़ा सकती है और व्यक्तिगत कर्मचारियों को सेवा संबन्धी और उन लाभों की सुरक्षा, जिन्हें उसने अधिकार रूप में प्राप्त किया है– प्रदान कर सकती है। उसकी प्रभावोत्पादकता इस बात से प्रगट होगी कि उसने अपनी कार्यपालक सत्ता के लिए कितनी श्रद्धा उत्पन्न कर ली है। सामूहिक सौदेबाजी के क्षेत्र में आने वाले मामलों में उसकी सफलता का नाप उन समझौतों की संख्या होगी जिन्हें श्रमयंत्र की सहायता के द्वारा प्राप्त कराया गया है। इसके बाद हम ऐच्छिक पंचनिर्णय को सौंपे गए मामलों को गिन सकते हैं। परन्तु अनिवार्य अभिनिर्णय को सौंपे गए मामलों को उसकी असफलताओं में गिना जाना चाहिए। वैयक्तिक अन्यायों या पालन सम्बन्धी यूनियन की शिकायतों के मामलों में नीति के कार्य क्षमता का अनुमान लगाने के लिए न्यायालयों की प्रताड़ना को ही मार्गप्रदर्शक रेखायें मानना चाहिए। इसके अलावा औद्योगिक संबन्ध का क्षेत्र सरकार का कार्य नहीं है और किसी अल्पकाल में औद्योगिक संबन्धों के बनने या बिगड़ने के लिए उसे दोषी नहीं ठहराना चाहिए। दीर्घकाल में औद्योगिक संबन्धों की प्रवृत्ति के लिए

हमारे विचार से सरकार द्वारा एक आदर्श सेवायोजक के रूप में रखा गया उदाहरण उसकी इस संबन्ध में देन का सबसे अनुलोम तत्व होगा ।

उपरोक्त दृष्टिकोण के आधार पर औद्योगिक संबन्धों पर सरकारी नीति के हिसाब को जाँचने से ज्ञात होगा कि स्वतंत्रता के बाद उसकी गतिशील असफलतायें हुई हैं। प्रथमतः सार्वजनिक क्षेत्र आशाओं के अनुरुप नहीं सिद्ध हुए हैं। हिसाब इतना गलत है कि उसने औद्योगिक संबन्धों का कोई आदर्श स्थिर करना असंभव कर दिया, जिसे निजी क्षेत्र अपना सके । भारतीय श्रम कान्फ्रेंस के २३ वें अधिवेशन में जब सरकारी प्रवक्ता ने श्रम-व्यवस्थापक संबन्धों के विषय में नए दृष्टिकोण की शिफारिश की तो श्री नवल टाटा ने सेवायोजकों की ओर से शीघ्रता से कहा, "यदि यह अच्छा है तो आप स्वयं प्रयोग करें, हम आपसे सीखेगें"। यह एक अकेला ही उदाहरण नहीं है जब सार्वजनिक क्षेत्र को लाभरहित प्रकृति रखते हुए भी उद्धृत किया जा सकता है। द्वितीयतः श्रम-नीति का उद्देश्य अर्थात उद्योग में शान्ति बनाये रखना जहां तक स्पष्ट लगता है विलोम है इसका प्रतिफल यह हुआ है कि प्रत्येक परिस्थिति की आवश्यकता के अनुसार कुछ सोद्देश्य ढंग अपनाए गए और श्रमनीति के दीर्घकालीन निर्देशन का अभाव रहा है। औद्योगिक संबन्धों के अधिक अनुलोम पहलुओं जैसे प्रत्येक फर्म या उद्योग में संस्थात्मक संबन्धों की स्थिरता, जीवन निर्वाहस्तर को उठाने के लिए सहायक तत्वों के विषय में पारस्परिक भाव साम्य इत्यादि की इस प्रक्रिया में हानि हुई है। तृतीयतः प्रशासकीय बल के अभाव में संराधन या पालन यंत्र कमजोर रहा है । इसने सरकारी हस्तक्षेप में श्रमिकों का विश्वास डिगा दिया है। चतुर्थतः वर्तमान काल में व्यवस्थापक मद से उत्पीड़ित श्रमिक के पास कोई औषधि नही है। जो भी न्यायसंगत रास्ता वह अपनाता है वह खर्चीला और अनिश्चित है। यह वस्तुस्थिति विशाल काया भग्नाशा और विश्वास की पूर्ण हानि का कारण रहा है । अन्त में, अनुशासन कोड जो कि अंक-गणितीय मूल्यों पर आधारित है औद्योगिक रचना के अनेक महत्वपूर्ण बिन्दुओं और परिस्थितियों की अवहेलना करता है। प्रतिफल में कोड कोई उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता है । अनेक बार कोड की वेलोच व्यवस्थाओं पर मजबूती से बैठकर व्यवस्थापक और मान्यता प्राप्त यूनियनें उत्पीड़ित सदस्यों और मान्यतारहित यूनियनों की बात भी नहीं सुनते हैं। यह कडुवाहट और प्रतिशोध का वायुमंडल बहुत ही सुलझे हुए और भली बात सोचने वालों के मस्तिष्कों में उत्पन्न कर देता है। कोड का वास्तविक संचालन अनेक अनुचित

श्रम व्यवहारों के लिए पीडन और शरण का कारण रहा है। औद्योगिक संबन्धों पर सरकारी नीति इस प्रकार कोई उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकती है क्योंकि उसने न तो अपनी सीमाओं को समझा है और न हीं वह एक निःसीम ढंग से किसी उद्देश्य के प्रति श्रद्धालु है। उसका शान्ति के लिए प्रयत्न वहुत हद तक भ्रामक है क्योंकि वह वर्तमान वस्तुस्थिति के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर विवाद की उपयोगिता की अवहेलना करती है। उसका प्रभाव प्रगति के लिए जोश को ठंडा करने का हुआ है।

## त्रुटिपूर्ण सम्प्रेषण

## औद्योगिक झगड़े का मूलभूत कारण

श्रमिकों और व्यवस्थापकों के वीच संवादवहन की प्रवाहिका का व्यवहार ही औद्योगिक संबन्धों को उन्नत करने के लिए केन्द्रीय महत्व का है। आधुनिक औद्योगीकरण का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह है कि उसने एक औद्योगिक संस्थान में मजदूरों के व्यक्तित्व को नष्ट कर दिया है। ऐसी परिस्थिति में किसी श्रमिक की सामान्य और प्राकृतिक अनुभूति यह होती है कि उच्च अधिकारी हर समय उसके विरुद्ध कुछ पकाते रहते हैं और वर्तमान परिस्थिति तो अब बदलने वाली नहीं है। उसे आत्मारहित यंत्र समझा जाता है और कम्पनी में कोई भी उसकी सुनने वाला नहीं है। तदुपरान्त अंगूर की बेल फैल जाती है और अनेक अवरोध खड़े कर दिए जाते हैं और एक दूसरे पर प्रहार ही सम्प्रेषण का सामान्य ढंग बन जाता है। इसका परिहार यही है कि प्रत्येक फर्म में सम्प्रेषण या संवादवहन की एक अथक और आशावादी प्रवाहिका बनाई जाय जो विशेषतः शीर्ष से तलतक और तल से शीर्ष तक स्वतंत्र रूप से कार्य करें। अधिकार और प्रोत्साहन साथ साथ चलने चाहिए और सम्प्रेषण के यंत्र को एक धुरी समझना चाहिए, जिसके चारों ओर औद्योगिक संबन्धों का सरगम गूँजना चाहिए। इस प्रक्रिया में न केवल श्रमिकों के नेताओं का आदरपूर्वक सुना जाएगा वरन् एक दूर स्थित कर्मचारी की दबी हुई आवाज भी पूर्ण हिफाजत से सुनी जाएगी।

इस सम्प्रेषण का प्रकार और सम्प्रेषण में प्रत्युत्तर का ढंग प्रायः व्यक्तियों के स्तर पर निर्भर होगा, जो एक दूसरे पर विश्वास करते हैं और जिनके बीच एक सतत सहयोगी प्रयत्न उत्पन्न किया जाए और चलाया जाए। वैज्ञानिक

व्यवस्था का तत्सबन्धी सम्बोध एक कर्मचारी को ऐसी वस्तु नहीं समझता है, जिसकी व्यवस्था कुछ व्यवस्थात्मक सिद्धान्तों से ही की जाएगी परन्तु वह जोकि सहयोग के सिद्धान्तों का सुझाव अपने चेतना स्तर के अनुसार देगा। एक अच्छी संवादवहन व्यवस्था इस आवश्यकता को स्वीकार करती है कि कर्मचारियों के मनोवैज्ञानिक स्तर और व्यवस्थापक के व्यवस्थापना व्यवहार के वीच प्रत्येक समीकरण के भारक तत्व के अनुसार एक उचित सम्प्रेषण की प्रवाहिका स्थापित हो। हाल ही में श्री एस० एम० पाटिल, मैनेजिंग डायरेक्टर हिन्दुस्तान मशीन टलन ने 'इक्नामिक टाइम्स के व्यवस्था में नया दृष्टिकोण' नामक लेख में कर्मचारी के विकास की पाँच स्थितियाँ बतलाई हैं जिनके लिए उत्पादकता, कार्य और सम्बन्धों के मानको को सुरक्षित रखने के लिए पाँच क्रमवार प्रवेश बतलाये हैं—

(१) मनुष्य जीवन की समस्याओं से कुछ अधिक के संबन्ध में जागरुक है। व्यवस्था के केवल उसी स्वरूप का वह प्रत्युत्तर देता है जोकि उसी प्रकार की चिन्ता उसके सम्बन्ध में करता है जैसी एक छोटे बच्चे के लिए की जाती है।

(२) दूसरा स्तर जागृति का है। उसके जागरुक मस्तिष्क में अनेक प्रेरणायें प्रवेश करती हैं। उचित व्यवस्था का रूप अपरिवर्त्तनीय निर्धारित नियमों और उनके अपरिवर्त्तनीय पालन का है।

(३) कर्मचारी 'स्वयं' की शक्ति में विश्वास करता है। उसका विश्वास है कि वह स्थापित व्यवस्था को अपनी इच्छा शक्ति द्वारा बदल सकता है। इस स्थिति में एक दीर्घकालीन संगठनात्मक शक्ति के युद्ध का सूत्रपात होता है। उत्पादन को तभी स्थिर रखा जा सकता है जब 'पाने के लिए देने' का सिद्धान्त माना जाए और वैयक्तिक अभिप्रेरणा व्यवस्था जैसी संतोषजनक रीतियों का निर्माण किया जाए।

(४) चतुर्थ स्तर पर सामाजिक-केन्द्र वृत्ति है। कर्मचारी मूलभूत व्यक्तिगत और भौतिक मामलों को छोड़कर सामाजिक मामलों से सम्बद्ध हो जाता है। ऐसे स्तर पर व्यवस्था प्रतिस्थापनीय एवं भागीदारी की होनी

चाहिए। कदाचित इस स्तर पर प्रायः प्रस्तावित 'व्यवस्था में श्रमिक भागीदारों' की रीति सफल हो सकती है।

(५) सर्वोच्च स्तर पर कर्मचारी अपनी जीने की क्षमता के बारे में पूर्ण विश्वास रखता है। वह लक्ष्य-प्रभावित होता है साधन प्रभावित नहीं। इस स्तर पर कर्मचारी विश्वासऔर आदर चाहता है। एक 'स्वीकृति व्यवस्था' जो उसे वही समझती है जो वह है और यह तथ्य स्वीकार करती है कि अपने कार्य के क्षेत्र में वह सक्षम और जिम्मेदार है और उसे जो वह आवश्यक समझता है करने में समर्थन देती है। व्यवस्था उसके साथ संगठन को फिट करती है न कि उसे संगठन में। लेखक के विचार से भारत में अनेक उद्योग उपरोक्त वर्गीकरण के तीसरे स्तर पर हैं यद्यिपि कुछ उन्नत प्राविधिक उद्योगों में तीसरा स्तर भी पार हो गया है। लेखक ऐसी भी गूढ़ार्थक परिस्थिति की संभाविता बतलाता है जहाँ एक श्रमिक नेता जो तृतीय स्तर पर हो द्वितीय स्तर में भी अपने अनुयायी रखता हो। इस विचार में हम यह जोड़ सकते हैं कि बहुत से ऐसे उदाहरण है जिनमें चतुर्थ स्तर के नेताओं के अनुयायी द्वितीय स्तर पर हों और चित्र में से तृतीय स्तर की जीवन्त कड़ी गायब हो। वह कैसा भी हो, लेखक ने एक महत्वपूर्ण और सत्य निष्कर्ष निकाला है अर्थात "उत्पादकता नियंत्रक और नियंत्रित दोनों ही की मनस्थिति का परिणाम है और स्तरों के भीतर के स्तरों पर आधारित व्यवस्था मनोविज्ञान विचलनकारी होगा परन्तु एक विशिष्ट स्तर के लिए उसे उचित बना रहना चाहिए।" यह व्यवस्थापकों और श्रम के बीच सम्प्रेषण व्यवस्था के गुण और प्रकार के प्रति ऐसा विचार प्रस्ताव है, जिसे प्रायः दैनिक कार्यक्रम और फैक्टरी की राजनीति में भूल जाया जाता है और इसीलिए हमें औद्योगिक सम्बन्धों में चारों ओर पतन दिखलाई पड़ता है। यह सम्बन्ध इसीलिए किसी उत्पादक मूल्य से वंचित रह जाता है।

सरकार का इस सम्बन्ध में पिछला कार्यवृत्त अर्थव्यवस्था के लिए बहुत ही हानिकारक है। सरकार के पास एक बहुत बड़ा औद्योगिक साम्राज्य है है जहां वह बहुत अच्छे कार्य कर सकती है। सन १९६० के केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की हड़ताल के बाद संसद में और बाहर अनेक आश्वासन दिये

गए थे कि व्हिटले काउन्सिल की स्थापना की जाएगी। तदुपरान्त सरकार द्वारा ही इस व्यवहार को कार्यरूप में बदलने के पहले विरोधों की एक श्रृंखला प्रस्तुत की गई थी। प्रथम, सरकारी कर्मचारियों से कहा गया कि वे अपने हड़ताल के अधिकार को स्वेच्छा से छोड़ दें। दूसरे यह कहा गया कि वर्तमान कर्मचारी परिषद की प्रकृति अनुचित है। तृतीय सेक्रेटेरियट के मिनिस्ट्रीयल कर्मचारियों और डाकतार, तथा रेलवे विभाग के औद्योगिक कर्मचारियों के भेद का प्रश्न उपस्थित हुआ जो आज भी समान और पुराने नियमों द्वारा अधिशासित हैं। अंत में जब संयुक्त सलाहकार समिति आई तो अधिकारियों ने मीटिंगों की कार्यवाही और वृत्त लेखों को रखने या छोड़ने में आनाकानी की। ऐसी विशेषाधिकारग्रस्तवृत्ति व्यक्तिओं को उनके सही स्थान पर रखती है' प्रतिफल के रूप में विशाल काया भग्नाशा उत्पन्न होती है और संचयी शिकायतों का भार बढ़ जाता है। यदि उनकी भग्नाशाओं को प्रत्यक्ष मार्ग नहीं मिलने दिया जाता है तो वे अप्रत्यक्ष मार्ग ढूंढ़ लेते हैं और खराब वस्तुओं के उत्पादन, नागरिकों के प्रति दुर्व्यवहार, भ्रष्टाचार उत्साह की कमी, 'हिंसा छोड़ देने की' मनोवृत्ति, अनुत्तरदायित्व और बदनामी टालने की वृत्ति इत्यादि अपना लेते हैं। यदि अन्य अवसरों पर वे ऐसी प्रतिक्रिया दिखलाते हैं कि महा निर्वाचन में राजनीतिक विरोध करें, चक्कर में डाल देने वाली सूचनायें दे दें या सरकारी गुप्त सूचनायें भी दे दें, तो ऐसी दशा में सरकार को ही दोष देना चाहिए कि उसने अपने कर्मचारियों को ऐसी स्थिति में ला पटका है। औद्योगिक सम्बन्धों की विकृति के कारण ये ही कमियां हैं और इन्हीं के कारण सार्वजनिक सेवाओं में पतन आया है। इसने बहुत बिस्फोटक परिस्थिति बना दिया है इतना अधिक कि किसी मामले में वह भयंकर हड़ताल में बदल सकती है। औद्योगिक झगड़े के प्रारूप सम्बन्धी साँख्यकीय वृत्त कुछ अन्य प्रतिफल भी क्यों न बतलावें यह दोषी सम्प्रेषण का ही तत्व है जो प्रत्येक औद्योगिक झगड़े की जड़ में रहता है। आजादी के बाद श्रमिकों को एक स्पष्ट आशा थी कि उनके दैनिक जीवन की व्यवस्था के लिये उन्हें विश्वास में लिया जाएगा परन्तु यह किसी बुद्धिमान रीति से नहीं अपनाया जा सका है। सम्प्रेषण की इस मूलभूत असफलता और उसकी वर्तमान प्रकृति, ढंग और क्षेत्र के कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विचारों को बल मिला है। यही कारण है कि भारत में श्रमिक असंतोष किसी गड़ी प्रवृत्ति या मामले को प्रस्तुत करने वाले भूविस्फोट की प्रवृत्ति नहीं रखता है। यह चित्र

एक सहायताहीन जनता का है जो विशालकाया भग्नाशा से पीड़ित है और जो किसी निश्चित कार्य की रूपरेखा पर विश्वासपूर्वक नही जुटा सकती है तथा जो इस असंतोष या हलचल को किसी भी प्रकार के 'वाद' के लिए उत्तेजना मानते हैं वे ही स्वयं अपनी इच्छाओं के आधार पर सिद्धान्त बनाते हैं और उपरोक्त सत्य को छिपाते हैं। कुछ व्यक्तियों के समूह ने, जिनकी गोद में आजादी के बाद सत्ता गिरी है- राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक या प्रशासकीय क्षेत्रों में अभी भी वह विवेक जिसके द्वारा वे उसे अन्य लोगों विशेषतया श्रमिकों के साथ बांट सकें नहीं सीखा है यही झगड़े का कारण है।

## यूनियनों का कार्य

औद्योगिक सम्बन्धों के स्वरूप को प्रभावित करने में ट्रेड यूनियनों का कार्य प्रायः उन्हीं केन्द्रीय श्रमिक संगठनों के दर्शन और व्यवहार का अनुगामी रहा है, जिनके वे अंग हैं। कम्युनिस्टों की यह घोषित नीति है कि वर्ग संघर्ष और वर्गीय झगड़ों को बढ़ाया जाए। एटुक और अन्य कम्यूनिस्ट यूनियनों के लिए तो 'औद्योगिक संधि प्रस्ताव' का वजूद ही नहीं है और वे सभी अवसरों का प्रयोग व्यवस्थापकों और श्रमिकों के सम्बन्धों को विगाड़ने के लिए करते हैं। इस उद्देश्य से वे सभी छलसाधन अपनाते हैं और उन सभी के विरुद्ध दुर्भावना-पूर्ण प्रचार करते हैं, जो कोई निर्माणात्मक या किसी हद तक अच्छे और आदरपूर्ण सम्बन्धों को बनाने का प्रयत्न करते हैं। इन लोगों को वे व्यवस्थापकों के व्यक्ति और श्रमिकों के शत्रु बतलाते हैं और यह अर्थ लगाते हैं कि कोई भी दोनों का मित्र हो ही नहीं सकता है। कम्यूनिष्टों को वर्गसंघर्ष के इस वातावरण को बनाने में काफी सफलता प्राप्त हुई है। इन्टक जोकि वर्गसंघर्ष का विरोध करती है और वर्गसहयोग के लिए कार्य करती है श्रमिकों के मानसपटल पर इसी कारण बदनाम हो गई है। पहिले कहे गए अन्य दोषों के कारण इन्टक साधारण श्रमिकों के मन से एटुक के प्रभाव को साफ नहीं कर सकी है। हिन्द मजदूर सभा या हिन्द मजदूर पंचायत स्वयं ही इन साम्य-वादी विचारों और व्यावहारिक तत्वों से प्रभावित है यद्यपि समय समय पर उन्होंने अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों को बनाने और बनाये रखने के लिए सच्चे प्रयत्न किये हैं। परन्तु वर्गविरोध के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने के बाद वे युद्ध की स्थिति लाने की दिशा में संगठन के आन्तरिक निर्मित दबावों का विरोध नहीं कर सके हैं। इन घास की जड़ जैसी प्रवृत्तियों और

दबाओं के फलस्वरूप उन्होंने कभी भी व्यवस्थापकों से सहयोग करने की इच्छा से कार्य नहीं किया है। भारतीय मजदूर संघ ने कम्यूनिष्ट प्रभाव को पराजित करने के लिए और औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार लाने के लिए एक भिन्न रण-नीति अपनाई है। उसने एक व्यवहारिक और प्रयोगात्मक वृत्ति सभी समस्याओं के निराकरण के लिए अपनाई है और भारतीय दर्शन और संस्कृति द्वारा बतलाये गए सत्यों और पश्चिमी अर्थात कम्यूनिष्ट और स्वतन्त्र विश्व के व्यव-हारों और प्रतिफलों से अपने को पूर्ण कानकार रखा है। हिन्द मजदूर सभा के प्रतिकूल उसने अपने कार्यकर्ताओं को कुछ चुने हुए उद्योगों में केन्द्रित नहीं रखा है परन्तु एक बड़े आधार और क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए सैनिक मोर्चे बनाये हैं। कार्य करने के एक अखिल भारतीय आधार पर उसने उस वातावरण को बनाना प्रारम्भ कर दिया है, जिसको वह आदर्श औद्योगिक सम्बन्धों के विकास के लिए आवश्यक समझता है। अभी उसका योगदान श्रमिक के जीवन से सम्बन्धित प्रश्नों पर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का है और उस दृष्टिकोण ने एक उत्प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।

ट्रेड यूनियन आन्दोलन में यह प्रचलन स्पस्टतः विरोधी यूनियनों का प्रश्न उठाता है। यह प्रायः कहा जाता है कि आधे से ज्यादा औद्योगिक सम्बन्धों के प्रश्न अन्तर-यूनियन-शत्रुता के कारण उत्पन्न होते हैं। इस शत्रुता के संकुचित अर्थ में यह सत्य हो सकता है कि यह किसी उद्योग के कर्मचारी विभाग की समस्याओं के निकटवर्ती या कुशल कारण बने। परन्तु एक विशाल और दीर्घकालीन संदर्भ में यह देखा जा सकता है कि मूल कारण इस देश में कम्यूनिष्ट विचारधारा के विषाक्त तत्वों का प्रवेश है। मजदूर इन अराष्ट्रीय तत्वों से अकेले ही लड़ रहे हैं और इस प्रयत्न में उन्हें व्यवस्थापकों अथवा सरकार का कोई सहयोग नहीं मिल सका है। व्यवस्थापकों ने प्रत्येक परिस्थिति में प्रायः अपनी तत्कालिक लाभ ही देखा है और कम्यूनिष्ट रणनीति के कारण पथभ्रष्ट हो गए है। बिना किसी आदर्श के उनकी प्रवृत्ति केवल कम्यूनिष्ट आदर्शों के नेतृत्व के स्वार्थी उद्देश्यों को पढ़ने की रही है और इस प्रक्रिया में वह स्वयं ही कम्यूनिष्टों की दीर्घकालीन नीतियों की चालाकी में फंस गए हैं। जब कम्यूनिष्ट-विरोधी या राष्ट्रीय यूनियनों और बड़े कम्यूनिष्ट यूनियनों में झगड़ा हुआ है तो व्यवस्थापकों ने कदाचित ही कोई गम्भीर कम्यूनिष्ट विरोधी नीति अपनायी है। उन्होंने कम्यूनिष्टों से समझौता करने का प्रयत्न किया हैं

इस आधार पर कि वे बड़ी यूनियन हैं अथवा वे संकट उत्पन्न करने वाले लोग हैं। इसको कम्यूनिष्ट विजय मानकर समारोह करते हैं तथा इसका प्रयोग वे श्रमिकों के वर्गसंघर्षमयी विश्वास को दृढ़ करने में करते हैं। इसका परिणाम उन्नतोत्तर औद्योगिक सम्बन्धों की विकृति उत्पन्न करने का होता है। सन् १९६२ में चीन के आक्रमण तक सरकार ने भी यही गलती की थी और उसके बाद यद्यपि सरकारी प्रवृत्तियों में महत्व कुछ बदला है परन्तु अनेक अवसरों पर पुराने झुकावों की पुनरावृत्ति ही दृष्टिगोचर होती है। अतः सरकार और व्यवस्थापक दोनों ही कदाचित अनजान में उन यूनियनों को महत्व दे रहे हैं, जो औद्योगिक सम्बन्धों को विकृत करने के लिए कार्यरत हैं और परिणाम यह हुआ है कि इस क्षेत्र में कोई भी संबन्धों को सुधारने के लिए नहीं बचा है। इस प्रकार व्यवस्थापकों और श्रमिकों के मध्य एक स्वरीय और सहयोगी सम्बन्धों के निर्माण का विशाल और स्वयं में पूर्ण ऐसा प्रश्न एक द्वितीय श्रेणी के उपचार का विषय बना दिया गया है और उन अधिकारियों को प्रशासकीय पक्ष के नाम पर सौप दिया गया है जिन्हें नीति निर्धारण करने अथवा महत्वपूर्ण निर्णय लेने की कोई आज्ञा नहीं प्रदान की गई है।

निश्चय ही उपरोक्त परिस्थिति में सरकार और सेवायोजक वर्तमान स्थिति को सुधारने के लिए अत्यल्प ही कर सकते हैं। इसलिये मजबूरी में यह क्षेत्र श्रमिक यूनियनों के लिए ही छोड़ना पड़ेगा। प्रत्यक्षतः यह काफी होगा यदि व्यवस्थापक अपनी सम्प्रेषण रीतियों को पूर्णत्व प्रदान करें और सरकार अपने विवेक पूर्ण भाग का निर्वाह करे। इस क्षेत्र में कुञ्जी के शब्द धैर्य और अध्यवसाय हैं। सभी अच्छे उद्देश्यों वाले व्यक्तियों द्वारा उत्तम संबन्धों के निर्माण और निर्वाह का लम्बा रास्ता धैर्ययुक्त ढंग से और अथक मुद्रा रखकर ही तय किया जा सकता है– एक अन्य प्रकार से कदाचित जो थोड़ा अप्रत्यक्ष है, सभी लोग एक समान प्रयत्न कर सकते हैं। वह क्षेत्र शिक्षा का है, प्रत्यक्षतः समाचारपत्रों और जनसम्पर्क के अन्य साधनों द्वारा जनशिक्षा देकर और विशेषतः श्रमिकों को प्रशिक्षण देकर। इस प्रस्ताव में हम इसका उपयुक्त स्थान पर वर्णन करेगें। इस समय केवल यही कहना काफी होगा कि यदि ट्रेड यूनियनों को चलाने के कम्यूनिष्ट और राष्ट्रीय तरीकों के सामान्य भेद को ठीक से समझ लिया जाए और यूनियन शत्रुता से उत्पन्न प्रश्नों की उसी प्रकाश में समीक्षा की जाए तो सही दिशा में प्रयत्न आरम्भ हो जाएगा।

उपरोक्त दृष्टिकोणों से औद्योगिक सम्बन्धों के विभिन्न तत्वों के कार्यों को देखने पर एक निश्चित मार्ग मिल जाएगा । औद्योगिक सम्बन्धों के निर्वाह के सबसे महत्वपूर्ण तत्व सेवायोजक और कर्मचारीगण हैं । सेवायोजक को चाहिए कि वह विभिन्न स्तरों के कर्मचारियों के प्रति विभिन्न व्यवस्थापक नीतियों की आवश्यकता को मान्यता देने वाले संदर्भ के प्रारूप से निर्देशित एक प्रभावशाली सम्प्रेषण प्रवाहिका की खोज करे । इसी प्रकार उसे कम्यूनिष्टों की रणनीति और राष्ट्रवादी यूनियनों के प्रयत्नों को समझना चाहिए । सरकार का कार्य सामान्यतः उस समय प्रारम्भ होना चाहिए जब श्रमिक उसकी माँग करे । यहाँ सरकार को भी चाहिए कि विभिन्न प्रकृतियों के विवादों के लिए वह विभिन्न प्रकार के हस्तक्षेप के रूप तय करे जैसे वैयक्तिक शिकायतें, पालनहीनता के लिए यूनियन प्रतिनिधित्व इत्यादि वस्तुस्थिति को बदलने के लिए विवाद इत्यादि में उसकी नीतियाँ अलग होनी चाहिए । सद्भाव को उत्पन्न करने और पारस्परिक परिज्ञान के लिए एक विवेकपूर्ण और सोद्देश्य नीति को अपनाने के अतिरिक्त सरकार को औद्योगिक शान्ति के प्रश्नों पर आवश्यकता से अधिक उद्वेलित नहीं होना चाहिए । एक प्रजातान्त्रिक संरचना में कुछ झगड़े और अपव्यय अवश्यम्भावी हैं और वह नसों का तनाव ढीला करने में और एक दूसरे को समझने के लिए उत्तम वायुमंडल निर्माण करने में औषधि का प्रभाव रख सकता है । श्रमिकों की शिक्षा के प्रश्न पर संभवतः सरकार और केन्द्रीय श्रम संगठनों के योगदान के लिए काफी क्षेत्र हैं और जनशिक्षा के विषयों में सेवायोजक भी एक बड़े रूप में प्रयत्नों में सम्मिलित हो सकते हैं । अंतिम विश्लेषण में जनमत की और श्रमिकों की वृत्तियों की शिक्षा और उपलब्धि योग्य औद्योगिक वायुमंडल उत्पन्न करने के तत्व सिद्ध होंगे । सरकार भी सेवा-योजकों के साथ कर्मचारी प्रशासन और वैज्ञानिक व्यवस्था के पहलुओं के प्रशिक्षण में सहकार्य कर सकती है और शिक्षा एक महान लक्ष्य समर्पित नीति के बीच जोड़ने वाली कड़ी बन सकती है ।

वास्तव में यह एक त्रिपक्षीय प्रयत्न होना चाहिए । औद्योगिक संबन्ध के वायुमंडल को सुधारने में अन्य प्रयत्न केवल द्वितीयक और अस्थायी प्रभाव रखते हैं । आसानी से भ्रष्ट होने वाले श्रमिक नेताओं से कार्यकारी व्यवस्था और सभी प्रकार के समझौते करना, मध्यस्थता सेवा को हलके दिलसे उपलब्ध करना इत्यादि रीतियों के द्वारा औद्योगिक विवादों को रोकने के प्रयत्न प्रायः मन बहलाने के ढंग हैं वे मूलभूत प्रश्नों के स्थायी हल नहीं प्रस्तुत करते हैं । कठिन

परिस्थितियों में किए गए विभिन्न अर्थों से उत्पन्न गड़बड़ी से व्याकुल न होते हुए औद्योगिक सम्बन्धों की योजना की मजबूत पकड़ के लिए तथ्यअन्वेषी खोजें अवश्य ही की जानी चाहिए। ये उस समय होनी चाहिए जबकि कोई संकट उत्पन्न हो गया हो या निकट भविष्य में उत्पन्न होने की संभावना हो। तथ्यअन्वेषी खोजों के लिए अनुलोम मार्ग के रूप में एक अन्य क्षेत्र भी है। किसी फैक्टरी में मनुष्यों के सम्बन्ध में और उनके प्रति अन्यायों आशाओं और सुझावों की जानकारी प्राप्त करने के लिए भी अनुलोम रीति हो सकती है। यह खोज किसी फैक्टरी के मानव-शक्ति पंजिका के निर्माण और सतत संकलन में भी सहायक हो सकती हैं, जिसके आधार या एक पूर्ण अभिज्ञात संगठन नीति अधिक अंशों में विश्वास से बनाई जा सकती है। एक आदर्श औद्योगिक सम्बन्ध योजना के लिए दोनों ही आवश्यक हैं।

ट्रेड यूनियनों की शक्ति और दुर्बलता भी अच्छे सम्बन्धों के निर्वाह में एक महत्वपूर्ण तत्व हैं। किसी फर्म में औद्योगिक सम्बन्ध को योग्य दिशा देने के लिए एक शक्तिशाली ट्रेड यूनियन ही सार्थक हो सकती है। जहाँ उद्योग की इकाई छोटी हो, जैसे दूकानों या छोटी संस्थानों या फैक्टरियों में, वहां यूनियन इतनी शक्तिशाली और विशाल होना चाहिए जो सारे उद्योग में अपना व्याप कर ले। तब केवल मजबूरी और सेवा परिस्थितियाँ ही व्यक्तिगत कर्मचारियों को उत्तेजित या उनके मन पर भग्नाशा नहीं उत्पन्न कर सकेंगी। ऐसे क्षेत्रों में समान दूकानों, संस्थानों और फैक्टरियों में मजदूरी ओर सेवा परिस्थितियों में समानता होनी आवश्यक है, जिससे अनुचित प्रतियोगिता को रोका जासके और ऐसा शक्तिशाली और बड़े यूनियनों के अभाव में नहीं किया जा सकता है। बड़े संस्थानों में, एक शक्तिशाली यूनियन का अस्तित्व प्रशासकीय प्रकृति की समस्याओं जैसे वरिष्ठता का निर्धारण, इकाइयों या विभागों का संयुक्तिकरण, कार्यपद के तत्व परिवर्तन की नई रीतियों के प्रवेश इत्यादि, को हल करने के लिए भी आवश्यक है।

श्रमिक/कर्मचारी/कल्याण अधिकारी का कार्य भी एक महत्व रखने लगता है। अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों के निर्वाह के लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारियों के अफसर सुप्रशिक्षित और कर्मचारियों के मामलों में दक्ष हों, उन्हें शीर्षस्थ अधिकारियों का विश्वास प्राप्त हो और औद्योगिक सम्बन्धों के निर्माण के लिए स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण कर सकें। उनके सम्बन्ध विभागीय अध्यक्षों

अथवा पंक्तिबद्ध व्यवस्था से जो भी हों उन्हें यूनियनों को स्पष्ट कर देना चाहिए और इस सम्बन्ध में उनके कार्य निर्धारित और ज्ञात होने चाहिए। प्रायः इन कर्मचारी अफसरों के एक या दूसरे आवश्यक गुण गायब पाए जाते हैं और तब यूनियन उनके सिर के ऊपर शीर्षस्थ अधिकारियों से बात करना पसंद करता है। यह कर्मचारी अफसरों के रूप में उनकी प्रतिष्ठा और कुशलता कम कर देता है यथार्थ में, जो आवश्यक है वह यह है कि संयन्त्र के स्तर से ऊपर तक ठीक से एक परिसीमित सम्प्रेषण की पंक्ति बनाई जाए जो शीर्षस्त अधिकारी और संचालक बोर्ड के सर्वोच्च नीति स्तर तक जाए और यूनियन की संरचना के तत्सम्वादी स्तरों से विषयों का तत्संवादी रूप विकसित करे। ऐसी सम्प्रेषण पंक्ति या प्रवाहिका की आवश्यकताओं के अनुकूल दोनों ही पक्षों को चाहिए कि अपनी शक्तिओं को अर्ध्यपित करें और अतिवादी अपीलों और मामलों के लिए नियम बनावें। कार्यपद-मूल्यांकन, पदोन्नति नीति या सेवानिवृत्ति लाभयोजना, जैसे विशिष्ट मामलों को यूनियन और व्यवस्थापकों की एक संयुक्त प्राविधिक रचना को सौंप देना चाहिए।

वर्तमान समय में ऐसी सुपरिभाषित और सुस्पष्ट सम्प्रेषण पंक्तिया अस्तित्व में नहीं हैं। अपवाद रूप में कुछ उदार फर्मों या संस्थानों में हैं। परन्तु वे भी एक स्थापित परम्परा का रूप नहीं ले सकी हैं। 'माडल परिवेदना क्रियाविधि' कुछ इसी प्रकार का कार्य करना चाहती है परन्तु उसका पालन अधिकतर संस्थानों में नहीं किया जा रहा है। वास्तव में मान्यतारहित यूनियन को प्रायः परिवेदना के प्रस्तुतीकरण में कोई स्थान नहीं दिया जाता है। यह हमारा विचार-प्रस्ताव है कि नई माँगों से अलग वैयक्तिक या सामूहिक परिवेदना संबन्धी मामलों को हाथ में लेने या प्रतिनिधित्व करने और वर्तमान नियमों, स्टैंडिंग आर्डर, या अवार्ड समझौतों की व्यवस्था इत्यादि के निर्वाचन में कर्मचारी को अपनी पसन्द की यूनियन को कार्यवाहक बनाने में कोई अवरोध नहीं होना चाहिए और इस संबन्ध में मान्यता के प्रश्न का कोई अस्तित्व नही होना चाहिए। दोनों ही पक्षों की वृत्तियों को अनुशासित करने में स्टैंडिंग आर्डरों का अस्तित्व पालन बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है परन्तु आजकल ये स्टैंडिंग आर्डर प्रायः सभी व्यवस्थापकों द्वारा बनाये जाते हैं। यूनियनों का उनकी रचना में कोई स्थान नहीं है। केवल कुछ कार्यावधि के मामलों में कभी कभी उनसे विचार विमर्ष किया जाता है। कुछ मामलों में औद्योगिक

अवार्ड ने स्टैंडिंग आर्डर के लिए निश्चित भूमि पर कब्जा कर लिया है। इस वाद के कब्जे पर हमें कुछ नहीं कहना है। स्टैंडिंग आर्डर का निर्धारण उसी आधार पर माना जाना चाहिए जिस पर अन्य माँगे आधारित हैं और संविदा की एक मूलभूत शर्त होना चाहिए। इन आर्डरों में उन अफसरों के प्रति व्यवहार की व्यवस्था होनी चाहिए जो स्टैंडिंग आर्डर के आधार पर अनुशासन या अन्य कार्यवाही नहीं करते हैं। वर्तमान स्थिति यह है कि अफसरशाही कानूनी व्यवस्थाओं और संविदात्मक अधिकारों की कोई श्रद्धा नहीं करते हैं। खेल के नियमों का पालन दोनों ही पक्षों को समान रूप से करना चाहिए। जब भी ऐसे संविदात्मक नियम बनाए जाएं तृतीय पक्ष के निर्णय के संदर्भ की भी व्यवस्था उसी प्रकार की जानी चाहिए जैसे अन्य अधिकारों या मांगों की की जाती है। सरकार या अभिनिर्णय यंत्र या परिवेदना पंचनिर्णय की स्थायी रचना किसी भी यूनियन के लिए पहुंच के भीतर होनी चाहिए परन्तु आधारभूत या प्रारूपसम्बन्धी परिवर्तनों और विकल्पों को केवल सौदेबाजी के अधिकारियों अर्थात मान्यता प्राप्त यूनियनों द्वारा ही प्रेषित करने का अधिकार होना चाहिए। इन सभी व्यवस्थाओं के परिचालन का एक आवधिक मूल्यांकन बहुत आवश्यक है और ऐसे अनुगामी-अध्ययन या घटना अध्ययनों को प्रकाशित करने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। कर्मचारियों का व्यवस्था सम्बन्धी और ट्रेड यूनियनों का यथार्थ प्रशिक्षण अधिकारी संस्थाओं द्वारा औद्योगिक संबन्ध में क्षेत्र के भीतर बाहर किए गए आवधिक मूल्यांकनों पर विचार विमर्ष के द्वारा किया जा सकता है। यहां सरकार द्वारा निर्मित अध्ययनमंडल बहुत प्रभावी स्थान ग्रहण कर सकते हैं।

मोटे तौर से मूलभूत समस्याएं और उनके हल औद्योगिक सम्बन्ध के सबसे अधिक कंटकाकीर्ण और कठिन क्षेत्र में पाए जाते हैं। उद्योग में मानव सम्बन्धों के इस मूलभूत दैनिक कार्यक्रम और आधारशिला की उचित और पूर्ण स्वीकृति हमें उच्च राष्ट्रीय चित्त वृत्ति निर्माण करने की कुञ्जी प्रदान कर सकती है। एक अच्छी प्रकार से बुनी गई औद्योगिक सम्बन्ध के कार्यक्रम की पार्श्वभूमिका होने पर बाकी की श्रमसमस्याएं अपना योग्य आकार प्राप्त कर लेंगी और अपने विशिष्ट उद्देश्य को ढाल लेगीं। इसके अभाव में औद्योगिक प्रगति का सम्पूर्ण यान पतवार विहीन होकर ववंडर की दिशा में ही जाता हुआ दिखलाई पड़ेगा।

## सामूहिक सौदेबाजी

औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र में यथार्थ में सामूहिक सौदेबाजी का कोई विकल्प नहीं है। द्विपक्षीय इकरार का स्थान कोई तीसरे पक्ष द्वारा किया गया समझौता नहीं ले सकता है। परन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सामूहिक सौदेवाजी की प्रगति हमारे देश में बहुत धीमी है। राष्ट्रीय आधार पर अभी हाल में किया गया व्यवसायिक बैंकों और बीमा आयोग का द्विपक्षीय समझौता कदाचित सामूहिक मोलभाव की पहली महान विजय है। वेतन आयोगों और वेजवोर्डों के अवार्डों और रिपोर्टों से क्षेत्र बहुत अधिक व्याप्त है, सामूहिक मोलभाव द्वारा दिए गए समझौतों के इस अभाव के तीन कारण दिखलाई पड़ते हैं—

(अ) सार्वजनिक क्षेत्र में यह एक प्रवृत्ति पाई जाती है कि किसी भी स्तर पर आवश्यक स्वतंत्रता से संधिवार्ता करने के लिए आदेश न दिया जाए।

(ब) निजी क्षेत्र में सेवायोजकों के फेडरेशन अपने समान स्वार्थों को सरकार के सामने प्रस्तुत करने के लिए बन गए हैं। वे मजदूरी या कर्मचारियों की सेवा परिस्थितियों के प्रश्नों पर अपने सदस्यों के प्रति बचन देने की जिम्मेदारी नहीं लेना चाहते हैं।

(स) ट्रेड युनियन आन्दोलन का अभी वह आकार नहीं बन सका है कि वह राष्ट्रीय स्तर पर संधिवार्तायें कर सकें। क्षेत्रीय और व्यक्तिगत फर्म के स्तर पर हमारे पास काफी सामूहिक मोलभाव के आधार पर किए गए समझौते हैं। इसे अस्वीकार नहीं किया जासकता है कि एक यूनियन से अधिक का होना और दूसरे यूनियन के कार्यों से प्रभावित किसी यूनियन को दिए गये अधिकारों के कारण भी कुछ हद तक भारत में सामूहिक सौदेबाजी का विकास रुका है। परन्तु इसका मूलकारण न तो कानून है और न यूनियनों की अनेकता। ऊपर वर्णित राष्ट्रीय स्तर के मोलभाव में भी ये कमजोरियां मौजूद थीं और उनका परिहार उन्हीं उद्योगों के श्रमिकों के दबाव से प्रायः हो गया था। ट्रेड यूनियन चेतना के विकास के साथ सामूहिक मोलभाव को राष्ट्रीय स्तर पर भी उसी

प्रकार का एक प्रभावी आकार मिल जाएगा जैसा कि इकाई के स्तर प्राप्त हैं। कानून बना कर इसके विकास की गति को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि प्रायः कानून कोई लक्ष्यपूर्ति नहीं कर सकेगा।

यह सदैव आसान नहीं होता है कि एक बड़ी यूनियन किसी उद्योग की विभिन्न श्रेणियों, क्षेत्रों अथवा फर्मों की मांगों को समायोजित करके एकात्म भाव से व्यवस्थापकों का सामना करें। यदि वह इस करिश्में को प्राप्त भी करले जैसा प्रारम्भ में सभी की माँगों को बढ़ा कर ही किया जाता है तो भी समायोजनों पर संधिवार्ता करना कठिन हो जाता है जो किसी भी सार्थक संधिवार्ता के लिए अवश्यम्भावी हो जाते हैं। जहां यह सेवायोजक के लिए तुलनात्मक रूप में आसान होता है कि वह संधिवार्ता एक बड़े ढंग से कर सके क्योंकि उसे तो केवल अपनी जेब की ही चिन्ता रहती है, वही यूनियन नेता के लिए कठिन होता है क्योंकि उसे यूनियन के विभिन्न क्रोधी सदस्यों के विचारों का ध्यान रखते हुए बात करनी होती है जिन्हें आखीर में उसे अपने कदम की न्यायपूर्णता भी समझानी पड़ती है। यदि कोई यूनियन नेता आर्थिक परिस्थिति की मांग को समझ भी जाए तो भी उसके सदस्यों से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वे भी उसी हद तक धैर्य बुद्धि रख सकते हैं। साथ ही बहुत ही थोड़े उद्योग या यूनियन ऐसी हैं जिनकी सदस्यता पूर्णतया समरूपी हों जिससे विभिन्न ग्रेडों या क्षेत्रों में स्वार्थों के संघर्ष को टालने की संभाविता हो। आधुनिक यूनियन नेता को अपनी मजदूरी नीति निर्धारण करते समय अपने ही संगठन में स्वार्थों के संतुलन का पूर्ण ध्यान रखना पड़ता है। संधिवार्ता की मेजपर इस नीति में यदि उसको फेर बदल करना पड़े तो बड़ी दिक्कत आती हैं। प्रायः सभी संधिवार्तायें बन्द कमरे में होती हैं। व्यवस्थापक प्रायः एक 'संवेष्ठना सौदे' के कार्यक्रम पर ही जोर देते हैं। यह उनके संधिवार्ता में दिए गए प्रस्तावों को परीक्षात्मक बना देता है। ऐसी स्थिति में मजदूरों की यह माँग की वार्ता की प्रगति की सूचनायें उन्हें मिलती रहें आसानी से पूर्ण नहीं की जा सकती हैं। यूनियन की टीम में बहुधा अनेक व्यक्ति होते हैं और प्रायः उनकी वृत्तियां भिन्न होती हैं। यदि संधिवार्ता के दौरान अयोग्य व्यक्तियों में झड़प हो जाती है तो बाद का चित्र बड़ा ही कठिन बन जाता है। एक की शान्ति वृत्ति, दूसरे का राजनीतिक रंग, तीसरे का सामान्य दुराग्रह इत्यादि उस समझौतावार्ता की मेज पर अपने निशान छोड़ जाते हैं जहाँ सामूहिक मोलभाव का सौदा पटना है। यदि ऐसी परिस्थिति में यूनियन की आंतरिक शत्रुता भयंकर रूप धारण कर

लेती है तो ऐसी यूनियन जिसने श्रमिक इतिहास के घटनाक्रम से मान्यता प्राप्त की होगी अधिक समय तक नहीं टिक सकेगी और न कुछ प्राप्त ही करा सकेगी। यदि भारत में यह करिश्मा कुछ स्थानों में हुआ होगा तो सामान्य सदस्यों के अज्ञान और सहानुभूति के अभाव से प्रेरित कार्य ने इस विषय में कम भाग न लिया होगा। परन्तु यह कोई महत्वपूर्ण तत्व नही हैं जिसपर एक विश्वस्त नीति के लिए भविष्य के परिगणन आधारित किए जांए। इस चेतना के विकास और जागरण के सामान्य वातावरण जिसके अनेक विश्वास प्रदायक चिन्ह हमें दीख रहे हैं, के साथ ही यह काफी हद तक संभव है कि सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रियांए स्वयं ही यूनियनों की अनेकता को जन्म दे दें विशेष तौर पर श्रेणीवार टूटने वाली यूनियनों को और वह भी उस समय से बहुत पूर्व ही जब तक हम मजदूरी के अंतरों को तर्क शुद्ध करने के लिए कार्य-पद-मूल्यांकन के महत्व को न अपनाने का अर्थ समझ पाएगें। एक आन्तरिक मजदूरी के प्रारूप को स्वीकार करना सामूहिक सौदेबाजी के विकास की महत्वपूर्ण पूर्व आवश्वयकता है और विशेष रूप से ऐसे समय जबकि हमें भ्रम-पूर्ण टाइम-स्केल, ओवर लैपिगं ग्रेड और अर्ध-समान महगाईभत्ता का सामना करना पड़ता है भविष्य में उद्योगानुसार सामूहिक सौदेबाजी को एक प्राविधिक आधार प्रदान करने के लिए वह और भी अधिक जरूरी है। अश्रमिकों की श्रेणियों के ट्रेड यूनियनवाद की तात्कालिक वृद्धि और औद्योगिक कानून में 'वर्कमेन' की परिभाषा द्वारा स्थापित परिसीमाओं द्वारा लादा गया भार जिसकी ट्रेड यूनियन अनुभूति की हैं इस संदर्भ में भावी विकास के चिन्ह प्रकट करते हैं और सामूहिक मोलभाव की प्रक्रिया में इसके भार की अवहेलना भयंकर संकट का कारण बन सकती है।

उपरोक्त विचारों का वर्णन करने में हमारा उद्देश्य भविष्य के एक विश्वासयोग्य साधन के रूप में सामूहिक मोलभाव पर ठंडा पानी डालना नहीं है। वरन् हम इस बात पर विश्वास करते हैं कि भविष्य में ओद्योगिक विवादों का सच्चा हल सामूहिक सौदेबाजी ही प्रस्तुत कर सकता है। परन्तु इसी कारण हम यह कहने के लिए भी सचेत हैं कि यूनियनों को सरलता से मान्यता प्रदान करने के लिए कानून बनाने में शीघ्रता करने और फिर उस कानून पर सामूहिक सौदेबाजी के विकास के लिए निर्भर रहने से सामूहिक सौदेबाजी की व्यवस्था ही असम्मानित हो जाएगी और उस एकमेव साधन का आधार नष्ट हो जाएगा जोकि भारतीय श्रमिक को अधिक समय तक जीवित रहने वाले लाभ दिला

सकता है। सामूहिक मोलभाव की प्रक्रिया में नियोजित विकास के द्वारा लादी गई परिस्थितियों का विचार हम राष्ट्रीय मजदूरी नीति पर विवेचन करते समय करेंगे। क्योंकि वित्त और मूल्यांकन एवं उद्योग के आर्थिक लाभों की दिशा के अतिरिक्त हम ऐसा अनुभव नहीं करते हैं कि कोई अन्य घेरने वाली परिसीमायें हैं, जो पक्षों के बीच औद्योगिक विवाद में होने वाले पारस्परिक समझौते का वृत्तानुगत कर सकती हैं। इन सारी परिस्थितियों को देखकर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह सुरक्षित और विवेकपूर्ण होगा कि हम ट्रेड यूनियन चेतना के विकास पर विश्वास करें, जो सामूहिक मोलभाव को पुरस्कार वाली अपनी स्थिति प्राप्त करवा दें और यदि कानून द्वारा कोई प्रयत्न यूनियन या सौदे के पक्ष को मान्यता देने के लिए या पंचनिर्णय अथवा अभिनिर्णय पर निषेध लगाने के निमित्त किया गया तो उसका गर्भपाती प्रभाव होगा और सामूहिक सौदेबाजी की अन्तिम सफलता को कठिन और कालक्षेपी बना देगी।

## संयुक्त मन्त्रणा

इस विषय का एक आकलन बाम्बे लेदर इन्स्टीच्यूट के श्री वी० जी० मेहत्रास ने अपनी पुस्तक 'व्यवस्था में श्रम भागीदारी–भारत में ओद्योगिक प्रजातंत्र का एक प्रयोग' में किया है। इस पुस्तक के विद्वान लेखक ने 'भागीदारी' के सम्बोध की परिभाषा ऐसी प्रक्रिया के रूप में की है जहाँ प्रशासन की निर्णयकारी शक्ति को समस्त व्यवस्थात्मक क्रिया के क्षेत्र में सभी उचित व्यवस्था के स्तरों पर अपने उचित प्रतिनिधियों के द्वारा किसी औद्योगिक संगठन के कर्मचारी बटा लेते हैं। यह योजना संयुक्त व्यवस्था काउंसिलों के द्वारा कार्य कर रही है और औद्योगिक प्रजातंत्र के प्रति भारतीय दृष्टिकोण स्पष्ट करती हैं। अभी तक इस प्रयत्न में निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के १०० से अधिक संस्थानों ने भाग लिया है। दिनांक २१-४-६७ के इकनामिक साइन्स में यह अंक सार्वजनिक क्षेत्र में ४१ और निजी क्षेत्र में ८१ दिखलाया गया है। निजी क्षेत्र में काउंसिल सामान्यतः मान्यता प्राप्त यूनियन या यूनियनों से समझौते द्वारा स्थापित की जाती हैं। 'एक संयन्त्र, व एक काउंसिल' का साधारण व्यवहार अपनाया जाता है। उनका आधार ६ से १२ तक का होता है और दोनो ही पक्षों की समानता होती है। श्रमिक प्रतिनिधि या तो चुने जाते हैं या उन्हें मान्यतः प्राप्त यूनियन द्वारा नामांकित किया जाता है। अध्यक्ष और

उपाध्यक्ष पदों को व्यवस्थापकों और श्रमिकों के बीच में अदल-बदल की व्यवस्था का पूर्णरूपेण पालन नहीं किया जाता है। संयुक्त मंत्रियों का चुनाव श्रम और व्यवस्था के प्रतिनिधियों में से नामांकन द्वारा किया जाता है। बैठकों की औसत संख्या प्रति दो मास में एक है और उपस्थिति का औसत ८४% है। काउंसिल के प्रस्ताव और फैसले अधिकतर सर्व सम्मति से होते हैं क्योंकि साधारण बहुमत के फैसले संयुक्त व्यवस्था काउंसिल की आत्मा के विरुद्ध हैं। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि विचार विमर्ष सदैव स्वतंत्र और स्पष्ट ही होता है क्योंकि श्रमिक प्रतिनिधियों के मनों पर बलि हो जाने का भय व्याप्त रहता है। लेखक ने इस भागीदारी को पांच ढंगों से वर्गीकृत किया है—सूचनात्मक, सहवैचारिक, सहयोगी, प्रशासकीय और निर्णयात्मक। उनका यह अनुभव है कि व्यवस्थापक काउंसिलरों को सभी आवश्यक सूचनाए देने में कोई जीवन्त उत्साह नहीं दिखलाते हैं। सहवैचारिक भागीदारी अधिकतर उत्पादन और कर्मचारी संबन्धी मामलों में किया जाता है और सहयोगी भागीदारी कल्याण और सुविधा के क्षेत्रों में दिखलाई पड़ती है। प्रशासकीय और निर्णयात्मक भागीदारी का प्रायः अभाव है और यह विचार उत्पन्न करता है कि काउंसिलों को केवल आकस्मिक और हल्का महत्व दिया जा सकता है। लेखक का कहना है कि इस काउंसिल का स्वरूप 'प्रारूपित माडल इकरार' के नमूने का बनाया गया है और फिर भी उनके विचार से काउंसिल के कार्यक्षेत्र की स्पष्ट परिसीमायें निर्धारित की जानी चाहिए। विशेषतौर पर संधिवार्ता और सहयोग के क्षेत्रों को एक दूसरे से अलग अलग निश्चित किया जाना चाहिए। साथ ही वर्क्स कमेटी के सामान्य कार्यों को संयुक्त व्यवस्था काउंसिल से अलग किया जाना चाहिए। एक उचित रास्ता यह हो सकता है कि एकमेव संयुक्त व्यवस्था काउंसिल गठित की जाए जिसमें अनेक उपसमितियों का समन्वय हो तथा वर्क्सकमेटी के कार्यों का योग्य रीति से प्रवेश हो। हम सामान्यतः विद्वान लेखक के इन सुझाओं का समर्थन करते हैं। साथ ही हम यह कहना चाहते हैं कि संयुक्त व्यवस्था काउंसिल और वर्क्सकमेटी के साथ साथ अस्तित्व की कोई आवश्यकता नहीं है। लेखक यह भी स्वीकार करता है कि व्यवस्थापकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों में संयुक्त व्यवस्था काउंसिल ओर वर्क्सकमेटी के कार्यों के सम्बन्ध में भ्रम है। परन्तु वे यह अनुभव करते हैं कि उनके कार्यों के सम्बन्ध में मतिभ्रम नहीं होना चाहिए क्योंकि संयुक्त काउंसिल नीति संबन्धी विषयों पर विचार करती है जबकि वर्क्स कमेटी दैनन्दिन कार्यक्रम के फलस्व-

रूप उत्पन्न विषयों का भार उठाती है। उन्होंने यह भी अनुभव किया है कि भारत में कहीं भी एक ही संस्थान में संयुक्त व्यवस्था काउंसिल और वर्क्स कमेटी सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर रही हैं। साधारणतया वर्क्स कमेटियों ने कार्य करना बन्द कर दिया है, जहां भी संयुक्त व्यवस्था काउंसिलें स्थापित हो गई हैं। हम यह कहना चाहते हैं कि ऐसा ही होना चाहिए।

यह निर्विवाद सत्य है कि वर्क्स कमेटियों के अनुभवों ने संयुक्त व्यवस्था काउंसिलों के निर्माण के लिए आधार प्रदान किया है। उनके निर्माण के संबन्ध में कानूनी आवश्यकतायें चालू रखना चाहिए और उन्हें वर्तमान सीमा, जो कि १०० या अधिक श्रमिकों के संस्थान की है, की अपेक्षा उन संस्थानों पर लागू किया जाना चाहिए, जिनकी श्रमिक संख्या २० या अधिक हो। परन्तु यह याद रखना चाहिए कि वर्तमान कानूनी अनिवार्यता प्रभावशाली नहीं रही है क्योंकि उनकी सहचारिक प्रकृति ने सेवायोजक या कर्मचारियों किसी को भी प्रोत्साहित नहीं किया है। वर्तमान यर्क्स कमेटियों के सर्वसम्मत फैसलों को भी व्यवस्थापक शुद्ध सुझाव समझते हैं और उनके निर्णयों पर कोई प्रभावकारी शक्ति नहीं है। अतः वे अधिकतर कागज पर अस्तित्व रखती हैं और उनका कोई जीवन्त प्रभाव नहीं है। उन्हें वास्तव में संयुक्त व्यवस्था काउंसिलों के पूर्वजों के रूप में चलाया जाना चाहिए और धीरे धीरे उनके कार्यों में अगले पैरा में दिए गए सुझावों के अनुसार वृद्धि करके अधिक प्रभावी बनाना चाहिए। वर्क्स कमेटी और संयुक्त व्यवस्था काउंसिल का अन्तर केवल उनके सम्बन्धित कानूनी और संविदात्मक स्थिति के अनुसार होना चाहिए। वर्क्स कमेटियों के कानूनी-न्यूनतम कार्यों में सुधार करने के लिए समझौते द्वारा प्रायः संयुक्त व्यवस्था काउंसिलों का निर्माण होना चाहिए।

यह एक सुमान्य तथ्य है कि संयुक्त सहविचार की किसी योजना की सफलता उस वृत्ति या दृष्टिकोण पर निर्भर करती है, जो कि विभिन्न पक्ष कमेटी या काउंसिल के मंच पर उपस्थित करते हैं। इस मंच के कार्यों को औद्योगिक प्रजातन्त्र स्थापित करने के लिए प्रभावी बनाने और उचित वृत्ति के विकास को योग्य वातावरण प्रदान करने के लिए हम समझते हैं कि वर्तमान परिस्थिति में यह आवश्यक होगा कि वर्क्स कमेटी के ही संविधान में निम्नलिखित व्यवस्थाओं को सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए—

(१) वर्क्स कमेटी पर श्रमिक प्रतिनिधि की नियुक्ति गुप्त वोट से ही की जानी चाहिए। ट्रेड यूनियन शत्रुता के संदर्भ में यह आवश्यक है और एक मान्यता प्राप्त और सुरक्षित यूनियन के लिए यह कोई कठिनाई नहीं उपस्थित करेगा। यह मान्यतारहित यूनियन को भी एक आधार भूमि प्रदान करेगा और उसकी क्लेषकारक मूल्य प्राप्ति करने की वृत्ति को भी रोकेगा।

(२) चुने गए मदस्यों का कार्यकाल ३ वर्ष का होना चाहिए और कुछ सदस्यों में से १/३ प्रतिशत अवकाश प्राप्त करें और उनकी जगहों को वार्षिक चुनाव द्वारा भरा जाए। यह कमेटी को स्थायित्व देगा और परिवर्तन की हवाओं को भी एक सुविचारित ढंग से व्यवस्थित करेगा।

(३) व्यवस्थापक और श्रमिक दोनों ही पक्षों द्वारा एक अतिरिक्त सदस्य नामांकित करना चाहिए, जो एक बाहरी व्यक्ति होवे। इससे कमेटी की कार्यवाही के संचालन में एक विशिष्ट और स्वतंत्र सलाह मिलने का मौका मिलेगा।

(४) एक कमेटी में केवल दो ही पदाधिकारी होना चाहिए अर्थात, अध्यक्ष और मंत्री। इन दोनों को भी बदल बदल कर व्यवस्थापकों और श्रमिकों के नामांकित व्यक्तियों द्वारा ग्रहण किया जाना चाहिए। यह पारस्परिक व्यवहार में आदर और जिम्मेदारी का भाव उत्पन्न करेगा।

(५) संस्थान के किसी भी कर्मचारी पर अनुशासनिक कार्यवाही, जैसे विभुक्ति सेवामुक्ति, निलम्बन, स्थानान्तरण, वेतनवृद्धि रोकना या अर्थदण्ड इत्यादि, कमेटी की पूर्व सम्मति का विषय होना चाहिए अथवा बड़े संस्थान में वह उपसमिति द्वारा तय होना चाहिए। ऐसी व्यवस्था के द्वारा कर्मचारियों के मन से भय धुल जाएगा और औद्योगिक संस्थान में प्रजातंत्र और आत्म–अनुशासन का विकास होगा। एक वर्क्स कमेटी के सदस्य के मामले में कोई चार्जशीट या अन्वेशी प्रक्रिया कमेटी द्वारा निर्धारित कार्यविधि द्वारा ही की जानी चाहिए। वर्क्स कमेटी को ऐसा अधिकार दे देने से वह उसके स्तर को उठा देगा और कमेटी द्वारा की गई भर्त्सना का भी अनुशासनहीन शक्तियों को दबाने में प्रभाव होगा। यह भागीदारी को एक सार्थक प्रक्रिया बनादेगी और औद्योमिक अनुशासन और उत्पादन

को एक गम्भीर और उद्देश्यपूर्ण क्रिया में परिवर्तित कर देगी। इस व्यवस्था के अभाव में वर्क्स कमेटी को सौपी गई जिम्मेदारी को उचित सहारा नही मिलेगा और इन पदों का चुनाव दोनों पक्षों को बचनबद्ध नहीं करेगा।

यह परिकल्पित है कि उपरोक्त व्यवस्थायें संयुक्त व्यवस्था काउंसिलों को ले जाई जाएगी जबकि वे वर्क्स कमेटियों की प्रतिस्थापना करके बन जाएगी। यह भी आवश्यक है कि वर्क्स कमेटियों के कार्यक्षेत्र को बढ़ाया जाए जिससे वे उत्पादकता और कार्यभार को भी सम्मिलित कर सकें और चालू और परिवर्तनीय रीतियो द्वारा होने वाले उत्पादन पर प्रभाव का भी आंकलन कर सके। यह श्रमिकों को अपनी संस्था के उपार्जित लाभ के संबन्ध में एक स्पष्ट चित्र भी दे सकेगा और उन्हें यह जानकारी भी दे सकेगा जिसके आधार पर वे अपनी तर्क शुद्ध अपेक्षायें बनाएगें। सामूहिक सौदेबाजी और सहवैचारिक यंत्र के क्षेत्रों के बीच कुछ समान विषयों पर भी प्रशासकीय निर्णय लिया जाना चाहिए। ऐसा पदोन्नति, स्थानान्तरण, छँटनी, प्लेआफ, सतत सेवाकाल, श्रमिकों का स्थिरीकरण, वरिष्ठता निश्चय इत्यादि के मामलो में आवश्यक होगा। इन विषयों पर मान्यता प्राप्त यूनियनों से सामूहिक मोलभाव की प्रक्रिया द्वारा नीति निर्धारित की जानी चाहिये और उसको पालन करवाने कार्य वर्क्स कमेटियों द्वारा किया जाना चाहिए। इन विषयों पर निर्णय बिना वर्क्स कमेटी के पूर्वसहमति के नहीं लिए जा सकते हैं परन्तु इसके अपवाद के रूप में पदोन्नति के संबन्ध में वर्क्स कमेटी की केवल निरीक्षणात्मक अधिकार हो सकते हैं। सहवैचारिक यंत्र इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी का एक परिशिष्ट क्षेत्र बन जाएगा जोकि मान्यता प्राप्त यूनियन या यूनियनों का अधिकार है। इस प्रकार से केवल वे ही औद्योगिक प्रजातन्त्र का एक प्रभावी स्वरूप प्रदान करेगें।

## श्रमिकीकरण की ओर

लाभ में भागीदारी, श्रमिकों को शेयरों का एलाटमेन्ट, संचालकबोर्डो पर श्रम प्रतिनिधियों की नियुक्ति, इत्यादि ऐसी योजनाए हैं जिनके सम्बन्ध में पश्चिमी देशों में उत्साह निर्माण हुआ है। एक चरम रूप यूगोस्लाविया का है जहां एक पूर्ण स्वचालित व्यवस्था है। कानून के द्वारा यह घोषित किया

गया है कि फैक्टरियाँ, खदाने, परिवहन, संवाद वाहन, व्यापार, कृषि, बन सम्पत्ति, नगरपालिका और अन्य आर्थिक उद्योगों को राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप में श्रमिक सहकारी संघों द्वारा राज्य की आर्थिक योजना के अन्तर्गत जनता के नाम से चलाया जाएगा। भारतीय मजदूर संघ ने अपने संविधान में 'उद्योगों के श्रमिकीकरण' को अंतिम प्राप्य लक्ष्य के रूप में रखा है। परन्तु यूगोस्लेविया के ढाँचे के अनुसार एक क्रान्तिकारी परिवर्तन न तो संभव ही है और न उचित ही। कुछ अन्य अनुभव भी उपलब्ध हैं, जैसे फ्रान्स में अभी हाल में जनरल डीगाल की सरकार ने एक सरकारी विज्ञप्ति के द्वारा १०० से अधिक कर्मचारियों वाले निजी उद्योगों में लाभ की भागेदारी अनिवार्य कर दी है। तदुपरान्त पश्चिमी जर्मनी का सह-व्यवस्था का अनुभव है, जहाँ शीर्षस्थ रचनाओं जैसे व्यवस्थाबोर्ड, जो दीर्घकालीन नीति निर्धारण करता है, ऐसे समझौते के अनुसार प्रत्येक ११ वां व्यक्ति नियुक्त किया जाता है और श्रमिकों तथा व्यवस्थापकों के समान प्रतिनिधि होते हैं। ये दोनों ही प्रयोग कठिन जलवायु में चल रहे हैं। हमारे देश में राष्ट्रीय उत्पादकता काउंसिल ने अभी हाल में उत्पादकता के लाभ को अंशधारियों, श्रमिकों, उपभोक्ताओं के बीच बाँटने और पुनर्जोत प्रभाव के निमित्त एक सूत्र विकसित किया है। इस राष्ट्रीय उत्पादकता काउंसिल के सूत्र में गोखले स्कूल आफ इकनामिक्स और पाल्टिक्स पूना के डायरेक्टर श्री वी० एम० डाण्डेकर ने एक शोध इस निमित्त किया है कि ३०% का पुनर्जोत नियोजन श्रमिकों को शेयरों के रूप में दे दिया जाना चाहिए और उनको भी सहस्वामी बना लेना चाहिए। दोनों सूत्र निम्नांकित हैं।

| उत्पादकता लाभ के निर्धारण की मद | राष्ट्रीय उत्पादकता काउंसिल का सूत्र | श्री दाण्डेकर का सूत्र |
|---|---|---|
| मूल्य में कमी– ... ... | २०% | २०% |
| श्रम को हिस्सा ... ... | ३०% | ३०% |
| पुनर्जोत | ३०% | —— |
| ,, श्रमिकों को शेयर | —— | ३०% |
| शेयर होल्डरों को ... ... | २०% | २०% |

दोनों ही सूत्रों में और आगे प्राविधिक परिगणन की आवश्यकता है उदाहरणार्थ, उत्पादकता के लाभ को ज्ञात करने की रीति और विभिन्न श्रेणियों को शेयरों के बटवारे के लिए। व्यवस्थापकों की ओर से ऐसी योजनाओं के लिए एक समान विरोध यह है कि वे तब तक निर्णय की जिम्मेदारी को बाटने को तैयार नहीं हैं जब तक व्यवस्थापकों को उद्योग की सफलता के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है। श्रमिकों के पक्ष से विरोध यह है कि ऐसी योजनायें केवल कुछ ट्रेड यूनियन नेताओं के लिए अच्छे पद प्राप्त करने का ढंग प्रदान करती हैं, जोकि इस प्रक्रिया में पक्ष परिवर्तन कर लेते हैं। कदाचित इसी कारण से यूगोस्लाव ढाँचा किसी कर्मचारी के वोर्ड की सदस्यता का अधिकतम कार्य-काल दो वर्ष का निर्धारित करता है और इस समय भी वे अपने पुराने पद पर कार्य करते रहते हैं केवल वोर्ड की बैठकों की अवधि को छोड़ कर कुछ भी हो इन योजनाओं के बढ़ाने के संबन्ध में यह हिचक समझ में आती है क्योंकि दीर्घकालीन नीति निर्धारण के लिए विशेष योग्यताओं की आवश्यकता रहती है और मामलों की व्यवस्था आसानी से सर्वसाधारण श्रमिकों द्वारा चुनाव की प्रक्रिया के आधीन नहीं की जा सकती है। इस संबन्ध में यह नोट करना आवश्यक है कि यूगोस्लेविया के निर्वाचित लोग नीचे की संस्था अर्थात व्यवस्थापक संस्था को नामांकित करते हैं, जबकि फेडरल जर्मन रिपब्लिक में कर्मचारी और सह-निर्धारण के कार्यों को वर्क्स काउंसिल के अधिकार क्षेत्र में रखा गया है और आर्थिक मामलों में वर्क्स काउंसिलों को केवल सह-निर्णय का अधिकार है। इंगलैण्ड और अमेरिका में सेवायोजक अभी भी क्षेत्र का स्वामी है। परन्तु ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस इस दृष्टिकोण को लेकर खड़ा है कि ट्रेड यूनियनवादियों को नीतिनिर्धारण में और एक औद्योगिक इकाई के दैनन्दिन कार्यक्रम में व्यवस्था के सभी स्तरों पर अधिक से अधिक हिस्सा मिलना चाहिए।

संयुक्तराज्य अमेरिका में अधिकतर दृष्टिकोण व्यवस्था की जिम्मेदारी को बांटने के विरुद्ध ही है। उनका कहना है कि व्यवस्थापकों का कर्तव्य है कि वे व्यवस्था करें और ट्रेड यूनियनवादियों का कर्तव्य है कि वे अपने सदस्यों के स्वार्थों की रक्षा एवं वृद्धि करें और व्यवस्था में भागीदार न बनें। कहीं एक सीमा-रेखा खींची जानी चाहिये। कुछ अधिकारी विद्वानों का यह अनुभव है कि व्यवस्था में श्रमिकों की भागीदारी का एक विश्वास भारत के

द्वारा प्रतिज्ञाबद्ध लक्ष्य के विरुद्ध है, जिसके अंतर्गत वह एक स्वतन्त्र ट्रेड यूनियनवाद और स्वतन्त्र सामूहिक सौदेबाजी स्थापित करना चाहता है।

उपरोक्त प्रयोगों और सुझावों से हमें बहुत ही सतर्क निष्कर्ष निकालने पड़ेंगे और मानवीय प्रकृति और एक आदर्श अर्थ-सामाजिक ढाँचे की आवश्यकताओं के अध्ययन के मजबूत आधार पर अपने देश की संस्कृति के अनुरूप ही एक क्रिया की दिशा निश्चित करनी पड़ेगी। भारतीय विचारों की मुख्य प्रवाहिका से दो तत्वों का सुझाव मिलता है, जिनके आधार पर हम विश्वासपूर्वक इस विषय पर अध्ययन कर सकते हैं। भारत में यह माना गया है कि सम्पत्ति किसी एक व्यक्ति की नहीं होती है परन्तु यह परमात्मा ने विश्वास या न्यास के रूप में सारी संसृति को दी है। व्यावहारिक रूप में इसका अर्थ यह होता है कि सारी सम्पत्ति पर राष्ट्रीय परिसीमाओं के भीतर राष्ट्र का निरपेक्ष अधिकार है और यह केवल पूंजीपतियों या व्यवस्थापकों की ही जिम्मेदारी नहीं है कि वे उनके सही विनियोग को तय करें। द्वितीयतः भारतीय व्यवहार में यह माना जाता है कि किसी भी कार्यक्रम में रूप ऐसा होना चाहिए, जो उस आत्मशक्ति की अनुगामी हो जो व्यक्तिओं को कार्यरत करती है और किसी भी विशिष्ट ढांचे में कोई भी अपवित्र या दबाव डालने वाली बात नहीं है। वास्तव में भारत की दूरदृष्टि इतनी सूक्ष्म है कि यदि योग्य भावना हो तो किसी भी कार्यक्रम के स्वरूप को अच्छे काम में लगाया जा सकता है क्योंकि भावना के समक्ष स्वरूप का महत्व नहीं है। आत्मा किसी का भी उपयोग कर सकती है परन्तु उसके अभाव में कुछ भी अच्छा संभव नहीं है।

उपरोक्त विचार हमें दो महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर ले जाते हैं। वे निम्नांकित हैं—

(१) जनसमूहों को अपने लिए सामूहिक कार्यक्रम का स्वरूप सामूहिक विवेक के अनुसार निश्चित करने का स्वयं अधिकार होना चाहिए और जनता पर कोई मत या सिद्धान्त लादा नहीं जाना चाहिए।

(२) नीति का प्रवाह जनता की ओर अथवा श्रम की ओर उन्मुख होना चाहिए। परिसीमन विचार केवल राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के अनुसार

राष्ट्रीय संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग का होना चाहिए। परन्तु समाज की आवश्यकताओं के अनुसार विकास या परिवर्तन के इन विचारों के अतिरिक्त, पूंजीपतियों द्वारा पूंजीविनियोग में सामान्य लाभ से अधिक की मांग और व्यवस्थापकों की सर्वकालिक श्रेष्टता के विचारों को सम्माननीय नहीं समझना चाहिए।

उपरोक्त आधार पर हम निष्कर्ष निकाल सकते है कि राष्ट्र और सरकार को उद्योग में क्रमगत श्रमिकीकरण का विकास करने को प्रस्तुत रहना चाहिए और इसके लिए लाभ की भागीदारी, शेयरों का बटवारा, सह-निर्धारण संयुक्त काउंसिले, श्रमिक सहकारी संघ इत्यादि जैसे साधनों को अपनाना चाहिए। इस सम्बन्ध में औद्योगिक कानून की अनुसूचियों में इन भागों को संरक्षण होने के अतिरिक्त कोई विशिष्ट कानून नहीं होना चाहिए और उनकी तैयारी अन्य औद्योगिक भागों के समान ही होना चाहिए। इसके लिए कोई कठोर नियम नहीं होना चाहिए परन्तु इस सम्बन्ध में उठाई गई मांग को औद्योगिक विवाद समझा जाना चाहिए और उनका फैसला करते समय न्याय प्रतिष्ठानों को ऊपर दी गई निर्देशरेखायें विदित होनी चाहिए। ऐसी आशा की जा सकती है कि इस प्रकार की व्यवस्था हमें सारे देश की विशाल सीमाओं के विस्तार में श्रमिकों द्वारा प्रदर्शित उत्साह और योग्यता और सेवायोजकों द्वारा प्रदर्शित सदवृत्ति और अवरोध के द्वारा एक धीरे धीरे विकसित होने वाला ढांचा प्राप्त हो जाएगा।

इस संघर्ष में से विभिन्न योजनाएँ कार्यरत हो जाएँगी विचार और व्यवहार के आधारभूत सिद्धान्तों द्वारा प्रतिपादित सामान्य नियमों के अन्तर्गत प्रगति की इस दिशा के विकास के लिए मानव की अपूर्व बुद्धि का विश्वास किया जा सकता है।

## संराधन

अपने वर्तमान रूप में श्रम संराधन तंत्र की अपने प्रारम्भिक जीवनकाल में बड़ी उपयोगिता थी और आज भी नए संस्थानों के लिए अथवा नए यूनियनों के लिए उस समय तक जब तक कि वे सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया और परिसीमाओं और औद्योगिक कार्यवाही के रूपों के अच्छे जानकार नहीं बन

जाते हैं, वह एक उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति करता है। वह वास्तव में एक ज्ञान-प्रदायक पद है, जिससे संराधन अधिकारी औद्योगिक विवादों पर विचार करते समय अपने विशद ज्ञान और सिद्धहस्तता का प्रयोग अपने सामने प्रस्तुत मामलों पर करके एक सही दृष्टि प्रदान करता है। इस ढंग के निश्चित लाभ हैं जबकि औद्योगिक संबन्ध की स्थिति कच्ची और रूखी हो। प्रभाव रूप में संराधन का मंच एक ऐसा मौका उभयपक्षों को प्रदान करता है जबकि वे अपनी दृढ़ता में परिवर्तन कर सकते और समझौतों पर पहुंच सकते हैं। कदाचित उभयपक्ष जब एक बार वह सब जान लेते हैं जो कुछ संराधन अधिकारी को उनसे कहना है तो संराधन की उपयोगिता नष्ट हो जाती है और वह एक अनावश्यक अवरोध बन जाता है, जोकि उन्हीं तर्कों को बार बार उबा देने वाली स्थिति तक दुहराकर देरी करता है। इन सबसे ऊपर जब विभिन्न कार्यवाहियों के लिए निर्धारित अवधि की सीमाओं का पालन, संराधन अधिकारी के पास कार्य की अधिकता, पक्षों की अनुपस्थिति विशेषतया सेवायोजकों की या अन्य कारणों से नहीं होता है तो संराधन का सारा प्रयत्न आन्दोलनकारी प्रवृत्तियों को हवा देने का कार्य करने लग जाता है। ऐसी ही वर्तमान स्थिति है। वास्तव में प्रभाव की दृष्टि से संराधन अधिकारी सरकारी हस्तक्षेप का एक विसापिटा विस्थापित ओर प्रभावहीन स्वरूप प्रस्तुत करने लगा है, जिसे समाप्त कर देने के लिए दृढ़ आधार बनता जाता है।

परन्तु हम लोग यह विश्वास करते हैं कि संराधन अधिकारी की उपयोगिता ट्रेड यूनियन का वस्वस्थापक जीवन के प्रारम्भिककाल में है और उस समय भी हो सकती है जबकि उभयपक्ष संबन्धों को पूर्ण रूपेण समझता हो क्योंकि वह एक ऐसा स्थान उपलब्ध कराता है जहां एक सम्मान जनक रीति से दूसरे विचार उठ सकते हैं। इसलिए शक्ति और कार्य के ढंगों में कुछ परिवर्तनों के साथ उसे चलता रहना चाहिए। प्रथम तो उसे निर्धारित समय-सीमाओं का कठोर पालन करना चाहिए। विषेषतया उन मामलों में जहां उसकी प्रक्रिया केवल व्यवहारिक प्रकृति की हो क्योंकि ऐसी स्थिति में पक्षों को संराधन कान्फ्रेन्स में कुछ सीखने को नहीं रहता और वे उसकी अवहेलना करना चाहते हैं तो ऐसी स्थिति में संराधन तंत्र को बाधक नही होना चाहिए दूसरे संराधन अधिकारियों को कुछ पुलिस अफसरों या अन्य पालक सत्ताओं जैसी प्रशासकीय शक्तियाँ भी प्राप्त होनी चाहिए, जिसके द्वारा वे अपने निर्णय का कुछ मामलों में, जो उन्हें सोंपे गये हैं, पालन भी करवा सकें।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें 'श्रमिक अभियोजकों' की सहायता मिलनी चाहिए जिनके कार्यों के सम्बन्ध में हमने अन्य स्थान पर लिखा है ।

इस संदर्भ में यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि हम अपरे विचार प्रस्ताव में अन्त तक संराधन अधिकारियों के लिए एक अतिरिक्त और जीवन्त कार्य की परिकल्पना कर रहे हैं। उस कार्य को साराशंत: निम्नलिखित रूप में रखा जा सकता है–

(१) विमुक्ति, सेवामुक्ति, स्थानान्तरण इत्यादि अनुशासनिक कार्यवाहियों के मामलों में जोकि वैयक्तिक कर्मचारी के सामाजिक और आर्थिक जीवन को प्रभावित करते हैं किसी भी उत्पीड़ित कर्मचारी द्वारा स्वयं अपने प्रतिनिधि द्वारा या किसी मान्यता प्राप्त यूनियन द्वारा संराधन अधिकारी के पास पहुंचा जा सकता है। इस प्रकार से पहुंचने पर संराधन अधिकारी गुणों के अनुसार मामले का फैसला करने के लिए सक्षम है और अपने निर्णय का पालन करने के लिए सेवायोजक को बाध्य कर सकता है। परन्तु उसके फैसले के विरुद्ध अपील किसी भी पक्ष द्वारा निश्चित समय के भीतर की जा सकती है। परन्तु उस काल में भी निर्णय बाध्य करेगा जब तक कि अपीलेट कोर्ट द्वारा अंतिम फैसला न कर दिया जाए। ऐसे मामलों में जो भी विभिन्न फैसले किए जाएगें वे इस संबन्ध में निर्देश-रेखाओं का कार्य करेगें।

(२) अवार्डों के निर्वचन, समझौतों इत्यादि या उनकी व्यवस्थाओं के पालन में संराधन अधिकारी एक पालक अधिकारी की हैसियत से किसी भी संबन्धित कर्मचारियों की किसी भी मान्यताप्राप्त यूनियन द्वारा उनकी बात सुन सकता है। उस मामले में निर्णय लेने और पालन करवाने का वैसा ही अधिकार होगा।

हम समझते हैं कि उपरोक्त अधिकार संराधन अधिकारी में निहित होने चाहिए और उसे शीघ्र कार्यवाही करना चाहिए। यह उस अन्याय को रोकने के लिए है, जो श्रमिक पर किया जा रहा है और जिन्हें बहुत प्रकार से तंग किया जा रहा है और किसी बहाने से ट्रान्सफर या पदमुक्ति करके एक हल्की रीति से जीवन की सामान्य गतिविधि से विच्छिन्न कर दिया

जाता है। इसी मामले में हम देखते हैं कि अनेक भूखहड़तालें और प्रतिवाद जन्म लेते हैं, जिनका कोई लाभ नहीं होता है और जो केवल श्रमिकों में घोर निराशा का ही निर्माण करते हैं। हम समझते हैं कि यह शक्ति उस समय भी आवश्यक है जबकि यह तय कर दिया गया हो कि इस प्रकार की कार्यवाही से पहिले, वर्क्स कमेटी की पूर्व सहमति चाहिए। क्योंकि वर्क्स कमेटी में अन्तर यूनियन शत्रुता के द्वारा या निर्वाचन के प्रतिफलों के रूप में उत्पन्न बाधा की अवहेलना नहीं की जा सकती है। कानून को अन्य स्थानों के समान ही यहां भी व्यवस्था करनी चाहिए यद्यपि इस प्रक्रिया में संरक्षण हेतु स्थापित व्यवस्था का दुर्पयोग करने का मौका दस अपराधी व्यक्ति भी उठा सकते हैं। इसी प्रकार अवार्ड या समझौते इत्यादि के अधिकारों को पालन के विचार से आगे मुकदमेबाजी की छूट नहीं होनी चाहिए। एक प्रशासकीय सत्ता द्वारा उसका पालन करवाने की क्षमता होनी चाहिए जब तक कि वह यह विचार न करे कि समझौते या अवार्ड इत्यादि के मामले में उसे न्यायपालिका से फैसला लेना आवश्यक है। इन शक्तियों को देने से संराधन अधिकारियों के कार्य अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावी हो जाएगें और वर्तमान व्यवहार की महान त्रुटियों को दूर करने में काफी हद तक सहायक होंगे जोकि समय समय पर गम्भीर औद्योगिक उत्पातों के कारण बनते हैं और एक बड़े क्षेत्र पर विखरे श्रमिकों के लिए प्रायः उत्पीड़न उत्पन्न करते हैं। यहां हम यह कह देना उचित समझते हैं कि वर्तमान संराधन पत्र को और अधिक दृढ़ बनाने के लिए उनकी संख्या बढ़ानी चाहिए ओर श्रम कार्यालयों में संराधन अधिकारियों और उनके सहयोगी व्यक्तियों का योग्य पारिश्रमिक बढ़ाया जाना चाहिए। इससे पहला लाभ यह होगा कि उनके कार्य की गति तेज होगी और दूसरे उन्हें सेवायोजकों की धन की पोटली के लालच में पड़ने से रोका जा सकेगा, जिससे वे गरीब से गरीब कर्मचारियों के लिये तथा उनसे सम्बन्धित जीवन पहलुओं पर स्वतंत्र व दृढ़ फैसले लेने में समर्थ हो सकेंगे।

## अभिनिर्णय

औद्योगिक सम्बन्ध के वर्तमान संदर्भ में अभिनिर्णय की आवश्यकता स्पष्ट है। संराधन की प्रक्रिया के पूर्ण होने पर यदि आवश्यक हो, प्रत्येक

पक्ष को यह छूट होती है कि विवाद को अभिनिर्णय के सुपुर्द कर सके। मामला अभिनिर्णय को सौंपने सम्बन्धी सरकार का वर्तमान स्वच्छंदता पूर्ण अधिकार आगे नहीं चलना चाहिये। बल्कि इसके स्थान पर अभिनिर्णय अधिकारी को यह छूट होनी चाहिए कि वह प्राथमिक सुनवाई के आधार पर उसकी उपयुक्तता की जांच कर ले और तब उसे स्वीकार या अस्वीकार करे। औद्योगिक ट्रिब्युनलों की नियुक्ति श्रम विभाग में निहित नहीं होनी चाहिए वरन् सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा अथवा किसी अन्य सत्ता, जिसे उन्होंने शक्ति प्रदान की हो– उसके द्वारा की जानी चाहिए। विमुक्ति अथवा सेवामुक्ति जैसे मामलों में अभिनिर्णय यंत्र की शक्तियों को बढ़ाया जाना चाहिए और अभिनिर्णय अधिकारी के लिए यह आवश्यक होना चाहिए कि वह मामलों की नए सिरे से गुणों के आधार पर परीक्षा करें और केवल कार्यविधि के नियमों की अनुरूपता की रक्षा करने में ही न लगे रहें। इसी प्रकार जब कोई विवाद कोर्ट के सामने चल रहा हो, तो सेवायोजक को कर्मचारी की सेवाओं को उसी आधार पर जोकि विवाद का विषय है समाप्त करने से रोका जाना चाहिए और यदि वह अन्य किसी आधार पर ऐसा करना चाहे तो उसे कोर्ट की पूर्व सहमति प्राप्त करना चाहिए। मजदूरी भुगतान, श्रमिक हर्जाने इत्यादि के विधेयकों के अन्तर्गत न्यायपालिका तंत्र की विभिन्नता को कम करके श्रमिकों के लिए एक सुसम्बद्ध न्यायव्यवस्था का ढांचा खड़ा किया जाना चाहिए और यह ढांचा कार्यपालक प्रत्यंगों पर किसी भी प्रकार से निर्भर नहीं होना चाहिए जैसे कि अपनी नियुक्ति इत्यादि के लिए। यहां तक कि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय में भी श्रमिकों के लिए एक अलग पीठ होना चाहिए और ऐसी स्थिति में एक अलग श्रम एपीलेट ट्रिब्युनल की कोई आवश्यकता नहीं रह जाएगी। श्रमिकों के लिए न्याय की लागत कम से कम की जानी चाहिए और श्रमिकों की ओर से दरख्वास्तों पर केवल मामूली स्टाम्प फीस लगनी चाहिए। अभिनिर्णय अधिकारी के अवार्ड और उनके सम्मुख पंजीकृत समझौतों को एक कानून का दर्जा दिया जाना चाहिए जिससे उनका पूर्ण और उचित पालन करवाया जा सके।

## अनुशासन कोड

औद्योगिक झगड़ों को तर्कशुद्ध रीति से निपटाने के लिए अनुशासन कोड औद्योगिक संबन्ध के पक्षों द्वारा एक प्रयत्न रहा है। परन्तु जैसे कि कोई

व्यक्ति औद्योगिक संबन्ध के व्यावहारिक पहलू पर उतर आता है तो उसे यह दिखलाई पड़ने लगता है कि उसका प्रयोग और अधिक दुख उत्पन्न करता है अपेक्षा उसकी जोकि यह दूर करना चाहता है। एक ओर तो यह किसी मान्यता प्राप्त यूनियन द्वारा अपने ही सदस्यों और मान्यतारहित यूनियन के सदस्यों पर क्रूरता को प्रोत्साहित करता है और दूसरी ओर यह व्यवस्थापकों के लिए असंभव परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ जब किसी प्रमुख विभाग में या संस्था की श्रेणी में या एक विशिष्ट क्षेत्र में किसी मान्यतारहित यूनियन द्वारा हड़ताल शुरू कर दी जाती है। औद्योगिक संरचना में अंतर सम्बन्ध इतने जटिल हैं कि उनका किसी एक तक पूर्ण नियम अथवा वस्तुओं की तर्क शुद्ध योजना द्वारा अधिशासन नहीं किया जा सकता है क्योंकि ये अंतरसम्बन्ध जो परिस्थितियां उत्पन्न करते हैं प्रायः घबरा देने वाले और विरोधाभासी होते हैं। कोड का प्रायः निर्वाचन इस प्रकार से किया जाता है कि व्यवस्थापकों और मान्यतारहित यूनियनों के मध्य किसी भी प्रकार का शब्दों या पत्रों का विनिमय नहीं होना चाहिए। इसके कारण या तो असीम झगड़ें या विखरे हुए युद्ध प्रारम्भ हो जाते हैं। मान्यता प्राप्त यूनियन भी कोड के सभी प्रत्यंगों का आदर करने में अपने को असमर्थ पाती हैं। इस कोड के विभिन्न स्पष्टीकरणों का विभिन्न संस्थानों में प्रयोग किया गया है और सार्वजनिक क्षेत्र में कुछ मामलों में इनको कठोरता से लागू करने का प्रयत्न किया गया है। समय समय पर दिखलाई पड़ने वाली उसकी सफलता संस्थान की दृढ़ स्थिति के कारण हैं न कि किन्हीं प्राकृतिक तत्वों के कारण। यह कर्मचारियों के दुख और भग्नाशा में प्रतिफलित हुआ है जोकि ट्रेडयूनियन आन्दोलन के प्रति भी उदासीन हो गए हैं। अपने भाग्य को सुधारने के प्रत्येक साधन में विश्वास खोकर ऐसे कर्मचारीगण एक प्रकार से सूखी लकड़ी में बदल गए हैं और प्रायः स्वेछाचारी व्यवहार करते हुए देखे जा सकते हैं और सभी प्रश्नों की ओर अकुशल अनुत्तरदायी और सनकी दृष्टिकोण अपना लेते हैं। औद्योगिक सम्बन्धों में अनुशासन कोड को अभी भी उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति करना है और उसकी किसी व्यवस्था को कानून में बदलने की जल्दी नहीं करना चाहिये।

## ऐच्छिक पंचनिर्णय

औद्योगिक सम्बन्ध की अनेक कटीली समस्याओं का हल ढूढ़ने का एक आदर्श ढंग उभयपक्षों द्वारा संयुक्त रूप से पंचनिर्णय व्यवस्था का उपयोग

करना है। औद्योगिक अभिनिर्णय के अन्य ढंगों में विवाद के प्रत्यक्ष मामलों के अतिरिक्त राष्ट्रीय और सामान्य परिस्थितियों पर भी विचार करना ट्रिब्युनल के लिए आवश्यक होता है। ऐच्छिक पंचनिर्णय ऐसी अनिवार्यताओं के बीच कार्य नहीं करता है। यह सामूहिक सौदेबाजी का ही प्रकार है। पंच-निर्णयकर्त्ता का कार्य यह होता है कि ऐसा हल निकाले जिसे स्वीकार करना दोनों ही पक्षों के हित में हो। जैसा कि एक लेखक ने लिखा है, "एक ऐसा हल है जिसे उन्होंने स्वयं ही ढूढ़ लिया होता यदि अपने क्रोध पर काबू रखा होता और उतने ही मधुर और तर्कशुद्ध होते जितने कि आर्थिक पुस्तकों के उनके माडल।" हमारे देश में ऐच्छिक पंचनिर्णय की प्रगति काफी उत्साह-वर्धक रही है यद्यपि हालही में उसके प्रति कुछ क्षेत्रों में अविश्वास पनप उठा है। परन्तु यह श्रम पंचनिर्णय के क्षेत्र में प्रशिक्षण और निर्देशन के अभाव के कारण हुआ है। अभी हालही में एक संस्था ऐच्छिक पंचनिर्णय के प्रोत्साहन के लिए बनी है और उसने इस बात की आवश्यकता अनुभव करली है कि एक वैयक्तिक पंचनिर्णयकर्त्ता का विकास ऐसे समय किया जाए कि उसे दोनों ही पक्ष स्वीकार कर सकें। हमारे पास अब अनेक व्यक्तिगत पंचनिर्णयकर्त्ताओं के बोलते हुए अवार्ड और अनेक उदाहरण हैं जबकि उन्होंने टेकनिकल मूल्यांककों की सहायता पंचनिर्णय के विषय के सम्बन्ध में फैसला करने से पहिले ली है। अभी भी अनेक पंचनिर्णायक यह बात दिमाग से नहीं निकाल सके हैं कि उनका फैसला किसी प्रकार से व्यापक है। न्यायवादिता सिद्धान्त में पंचनिर्णायक के मन की एक अभिमति ही मानी जाती है, क्योंकि न्यायिक पहुंच समझौते के लिए सहायक नहीं होती। एक पंचनिर्णय का कार्य कोई हल पालन करवाना नहीं है वरन एक समझौता खोजना है, जिसपर दोनों ही पक्ष सहमत हो सकें। इसलिए कि ऐच्छिक पंचनिर्णय का यह मार्ग व्यवहार में अपनाया जा सके—यह आवश्यक है कि, राष्ट्रव्यापी आधार पर कुछ मोटे तौर पर संबोध ऐच्छिक पंचनिर्णय के सम्बन्ध में बनाए जाएं। क्योंकि यह उन व्यक्तिओं द्वारा उत्तमरूप से किया जा सकता है, जिन्होंने इस प्रकार की राष्ट्रीय सेवा के लिए विशिष्ट कुशलता का विकास कर लिया है। उचित तरीका यह होगा कि पंचनिर्णायकों की एक सूची घोषित की जाय, जोकि श्रमिकों और सेवायोजकों के केन्द्रीय संगठनों को मान्य हों। तभी विवाद के विभिन्न पक्षों के लिए यह आसान होगा कि इस सूची से किसी व्यक्ति की सहायता की प्रार्थना कर सकें। औद्योगिक सम्बन्ध पर अनेक विचार गोष्ठियों में भी इन सदस्यों की उपस्थिति अभिनन्दनीय होगी जहां पर अधिक स्वतंत्र

वातावरण में मूलभूत और विशिष्ट समस्याओं का विवेचन होता है। अनेक अनुसंधान कर्त्ता संगठन और काउंसिलें भी योग्य और प्रतिष्ठित पंचनिर्णायकों के सुझाओं के प्रकाश में द्यौद्योगिक सम्बन्ध के विशिष्ट पहलुओं की खोज करेगें और ऐसे प्रकल्प ले सकते हैं, जो किसी औद्योगिक विवाद में विवेचन का आधार बन सकते हैं।

इन पंचनिर्णायकों के द्वारा किया गया विचार या कही गई बात के चारों ओर व्यवस्थित ज्ञान और व्यवहारिक अनुभव का एक संग्रह बन जाएगा और मजदूरी-निर्धारण, भृत्ति-प्रभेद सामाजिक-लागतें और आर्थिक विकास, अल्प सुविधायें इत्यादि जैसे कठिन मसलों को तय करने के लिए संदर्भ की एक सामान्य योजना बन सकेगी। प्रायः वे सभी महत्वपूर्ण विषय जो यूनियन के मांग पत्र में आते हैं, कि उनके लिए कोई निश्चित स्थायी सिद्धान्त या नियम नहीं बनाये जा सकते हैं। सामूहिक– विनिमय में जो समझौते होते हैं यह नहीं स्पष्ट करते कि समझौते के समय दोनों पक्षों के मन में क्या चल रहा था। यह न्यायालयों का कार्य है कि प्रमाण-विधि (केस ला) निर्धारित करें। परन्तु पंचनिर्णायक बाध्य नहीं हैं कि वे प्रमाणविधि बनाने के लिए जोरदार प्रयत्न करें। उनके एवार्डों में पूर्व मामलों के निर्णयों के संदर्भ हो सकते हैं परन्तु मजदूरी जैसे मामलों में पूर्व–विधि अनिवार्यतः लागू नहीं की जा सकती है। एक प्रकार से महत्वपूर्ण विवादों में पंचनिर्णायकों द्वारा दिये गए निर्णय हमें जीवन्त सामान्य अधिनियम प्रदान कर सकते हैं, जो प्रत्येक अवधि में चालू व्यवहार या चलन के आधार पर विकसित हीता है। इसमें मानवमात्र का सुविचार पाया जा सकता है और यह ऐसे नियमों और प्रवृत्तियों का सुझाव दे सकता है, जो औद्योगिक और आर्थिक जीवन के आधुनिक स्वरूप द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में ठीक मानव सम्बन्धों के समायोजन के लिये सहायक हो सकता है।

इसलिये कि पंचनिर्णायक अपने कार्य को ठीक प्रकार से कर सकें यह आवश्यक है कि उन्हें तकनीकी मामलों का अच्छा ज्ञान हो–जिनका विवाद के निर्णय में भारी महत्व होता है। नौकरशाही, वकील, अध्यापकों, व्यवसायियों या तकनीशियनों जैसा कोई ऐसा पेशा नहीं हो सकता है जो हमें स्वयंभू पंचनिर्णायक प्रदान कर सके। पंचनिर्णय एक उच्चतर व्यवहार–कुशल–पेशा है जो अपने आप विकसित होना चाहिये यद्यपि कर्मचारी-मैनेजर, वरिष्ठ ट्रेड

यूनियनवादी इस पेशे को तुलनात्मक सुविधा से अपना सकते हैं। पंचनिर्णायक की इज्जत (आदर) किसी भी समाज के लिये वह सबसे बड़ा धन है, जो वह अपने ऊंची अवधारणा, संतुलन एवं मेधा वाले व्यक्तियों में खोज सकता है। ऐसे व्यक्ति जितना ही अधिक विवाद के शत्रुपक्षों की बात शान्ति से सुन सकेगें और उनकी सापेक्षिक स्थितियों को एक ठीक परिप्रेक्ष्य में रख सकेगें जिससे एक उत्तर प्राप्त हो सके, ठीक उसी प्रकार से जैसे बीज से फल की प्राप्ति होती है, उतना ही वह समाज औद्योगिक विवादों को गर्मी के स्थान पर प्रकाश से हल करने में योग्य बन जायेगा। यह उचित है कि हम ऐसे व्यक्तियों को अच्छा भुगतान करें और उनकी सेवाओं का प्रयोग करने वाले यूनियन और व्यवस्थापक बराबर बराबर भार उठावें। अपने आमन्त्रण में दोनों ही पक्षों को बराबर बराबर दांव लगाना चाहिये जिससे इनको एक संतुलित आधार मिले और इनके पेशे को उच्च स्वीकृति और सम्मान मिले जिसके बिना इस कार्य को उठाना योग्य नहीं होगा।

## हड़तालें

हड़तालें श्रमिक का एक वैधानिक शस्त्र है। इस शब्द में अन्दर रहो-हड़ताल, कलमबन्द हड़ताल सहानुभूति-हड़ताल, टोकेन-हड़ताल और भूख-हड़ताल भी सन्निहित मानना चाहिये। सार्वजनिक, आकस्मिक अवकाश को भी एक हड़ताल का ही स्वरूप मानना चाहिए। इस शब्द में धीरे-चलो, तोड़-फोड़ और अवैधानिक जेल शामिल नहीं मानना चाहिये। ये वाद के रूप दूषित और समाजविरोधी तरीके हैं और इन्हें हतोत्साहित करना चाहिये। 'कानून के मुताबिक कार्य, विरोध प्रदर्शन का एक ऐसा रूप है, जिसका आधार भिन्न है और उसे विरोध का एक वैधानिक स्वरूप मानना चाहिये। 'रोष प्रदर्शन' हड़ताल, जिसमें ओवरटाइम करने से मना किया जाये, अनुसूची के अनुसार अन्तिम बस को चलाने से इनकार करना आदि शामिल हैं, की परीक्षा उद्योग और एक्शन के समय पर विचार करके होनी चाहिये कि वह हड़ताल है या केवलमात्र विरोध। तूफानी हड़ताल (एक एक फैक्टरी द्वारा क्रम से की जाने वाली) और क्रान्तिकारी सामान्य हड़तालें प्रायः राजनीतिक प्रकृति की होती हैं। परन्तु उससे बड़े पैमाने या ट्रेड यूनियन उद्देश्य से की जाने वाली सहानूभूतिपूर्ण सामान्य हड़ताल या 'बन्द' को भिन्न समझना चाहिये। इनकी बारम्बारता और अवधि वे संगत आधार हैं जिनके द्वारा यह ज्ञात किया जा

सकता है कि उन्हें एक क्रान्तिकारी उथल-पुथल की प्रस्तावना या तैयारी माना जा सकता है। इसी प्रकार एक टोकेन स्ट्राइक की पुनरावृत्ति किसी भी प्रतिष्ठान में उसकी प्रकृति को एक वैधानिक हड़ताल से 'शरारत' में बदल सकती है।

ऐक्ट की वर्तमान परिभाषा के अनुसार स्ट्राइक्स या तो वैधानिक या अवैधानिक हो सकती हैं। उन्हे अवैधानिक माना जाता है जब कि वे ऐक्ट (धारा २२ और २३ औद्योगिक संबन्ध ऐक्ट) के खिलाफ हों या धारा १० (३) के अंर्तगत आदेश के प्रतिकूल हों। इन व्यवस्थाओं का प्रभाव यह है कि जनोपयोगी संस्थानों की सभी हड़तालों को अवैधानिक करार दिया जाये, क्योंकि एक ओर तो उनके लिये कम से कम १४ दिनों का नोटिस आवश्यक है और दूसरी ओर वे वैधानिक नहीं रहतीं जब संराधन अधिकारी ने विवाद में मध्यस्थता कर दी हो जिसको करने के लिये वह १४ दिन के नोटिस की अवधि में ही प्रति-बाधित है। हड़तालों की वैधानिक रोक एक कुख्यात असफलता सिद्ध हो रही है क्योंकि वह हड़ताली परिस्थिति के व्यवहारिक सत्यों की उपेक्षा करती है और हड़ताली के मनोविज्ञान के निकट अध्ययन पर आधारित नहीं जान पड़ती है।

हड़ताल प्रायः विरोध या शक्ति का प्रदर्शन होती है। भारतीय परिस्थिति के संदर्भ में युद्ध का अंतिम-लड़ाई वाला रूप संभाव्य नहीं है। अपने चालू रूप में हड़तालों का अर्थ सेवायोजकों सरकार और जनता का ध्यान उन बातों की ओर खींचना है, जिन्हें श्रमिक अन्याय या दबाव समझते हैं। इसलिए जब तक विधायिका और श्रमिकों के विचारों में असंगति रहेगी कि क्या न्याय है और क्या अन्याय अवैधानिक हड़तालें होती ही रहेंगी। इसी कारण से उनसे इस प्रकार निपटारा करना चाहिए कि उन्हें दबाया न जाये बल्कि अधिक मूलभूत प्रतिसमायोजनों, अन्याय और आर्थिक उथल-पुथल पर प्रकाश डाला जाय जो उनकी जड़ में स्थित हैं और जहाँ भी आवश्यक हो उन्हें सुधा-रात्मक कार्य या शिक्षा या दोनों के द्वारा दूर करने का मार्ग निकाला जाय। हड़ताल का व्यक्त कारण शायद ही कभी उसका वास्तविक कारण होता है, अधिक से अधिक वह सीमान्तक-घटना हो सकती है। किसी व्यक्ति ने जिसने एक हड़ताल के लिये विभिन्न प्रकार की अपीलें की हैं या देखी हैं वह जानता है कि किस प्रकार संचित शिकायतों या अनेक असंबन्धित घटनाओं

को कैसे उठाया जाता है, जिससे हड़ताल का वातावरण किसी भी संस्थान या संयंत्र में बनाया जा सके। एकबार जब यह वातावरण बन जाता है तो वास्तविक हड़ताल किसी भी छोटे से बहाने पर शुरू हो सकती है। तदुपरान्त जब हड़ताल किसी तात्कालिक या घोषित कारण के दूर होने पर या संघर्ष में हड़ताल की शक्ति समाप्त होने पर वापस ले ली जाती है तो उसकी पुनरावृत्ति तभी संभव होती है जब कि मूलभूत कारणों को जिनकी वजह से हड़ताल शुरू हुई थी ध्यान नहीं दिया जाता है। जब ऐसी हड़तालें एक या दो वर्षों के आवधिक अन्तरों पर हों तो उन्हें भाफ निकालने वाले सेफ्टीवाल्व समझना चाहिए जिनके अभाव में अधिक भयंकर स्वरूप उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसी फैक्टरियों में जहां श्रमिक पूरे दिन का कठिन श्रम करते हैं ऐसी हड़तालें प्रायः एक बलकारक प्रभाव रखती हैं क्योंकि उनके द्वारा अवधि के संचित तनावों को दूर किया जा सकता है या फैक्ट्री की कार्य व्यवस्था में कठिन परिवर्तन करने या भुगतान योजना के पुनर्आकलन का मौका लिया जा सकता है। अक्सर ऐसी हड़तालें फैक्टरी के स्तर पर आकस्मिक प्रकार से उत्पन्न हो जाती हैं। साधारणतया नेता को पता रहता है कि परिस्थिति विस्फोटक है परन्तु हड़ताल का वास्तविक प्रभाव या घटना बिना उसकी स्पष्ट इजाजत के हो सकते हैं। दूसरी ओर ऐसे भी उदाहरण मौजूद हैं जहाँ हड़ताल की योजना के नियंत्रक अनेक तत्वों में से एक में भी परिवर्तन होने पर हड़ताल के शुरू होने के कुछ ही समय पहिले ऐन मौके पर अपने पूर्व फैसलों को बदल दिया। अनेक प्रकार के कारण होते हैं जो वास्तविक हड़ताल को प्रेरित करते हैं। भारतीय संदर्भ में इनमें से औद्योगिक कार्य में खराब सामाजिक स्थिति, थकान, और भग्नाशा और श्रमिकों को दी गई निम्न श्रेणी ही स्थायी मूलभूत कारण हैं। मजदूरी महंगाई भत्ता, बोनस, या अन्य वित्तीय माँगों की माँग पर हड़तालों को एक भिन्न वर्ग माना जा सकता है। सक्रिय ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ता का शिकार होना या अन्तर यूनियन शत्रुता तथा विकसित होने वाली परिस्थितियों के कारण भारत में अनेक हड़तालें हुई हैं। इस देश में अनेक सेवायोजक ऐसे हैं, जिन्होंने स्वयं को श्रम आन्दोलन से अभी तक समायोजित नहीं कर पाया है और ऐसे मामलों में यूनियन हड़ताल से ही प्रारम्भ करती है। दूषित या असंतुलित मजदूरी की सौदेबाजी जिसने कुछ श्रेणियों या क्षेत्रों के प्रति तुलनात्मक अन्याय किया है धीरे धीरे हड़ताल का कारण बनती जा रही हैं। ऐसे विरोध बहुत ही

प्राकृतिक हैं और टूटने वाले यूनियनों के निर्णय के कारण बने रहेंगे ऐसी सम्भावना है। किसी संस्थान में एवार्ड के पालन न करने या किसी समझौते के गलत निर्वचन इत्यादि भी सामान्य हड़ताल के अवसर प्रदान करते रहे हैं। एक विशिष्ट पदवृद्धि या पदवृद्धि नीति का विरोध भी हड़ताल का एक नया कारण बन रहा है। विशेष तौर पर उन सफेद कालर श्रमिकों के बीच जिनमें इस मामले में भावनाशीलता अधिक प्रचन्ड है।

हड़ताल के कारण और कार्य पद्धति का विश्लेषण हमें हड़ताल की परिस्थिति के परिचालन के मार्ग सुझाता है। इस संदर्भ में हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि वैधानिक और अवैधानिक हड़तालों का वर्तमान भेद एक नये भेद द्वारा बदल देना चाहिये— वैधानिक, विधान–विरत और अवैधानिक। अपने विवेक से विधायिका व्यवस्थायें कर सकती हैं जिसके अनुसार एक हड़ताल वैधानिक मानी जा सकती है. जिसमें श्रमिक को हड़ताल की अवधि का वेतन या मजदूरी मिलने का हक हो। इसी प्रकार वह कुछ अन्य हड़तालों को अवैधानिक भी करार दे सकती है जिनमें तोड़ फोड़, धौंस, आधार या हिंसा का सहारा लिया जाता है। जनोपयोगी संस्थानों में केवल ये दोनों ही अन्तर चलने चाहिये और इसी प्रकार तालाबन्दी भी कानून के द्वारा वैधानिक और अवैधानिक रूप से परिमाणित होनी चाहिये। बाकी सभी मामलों में एक तीसरे प्रकार की हड़ताल की श्रेणी होनी चाहिये जो न तो वैधानिक हो और न स्पष्टतया अवैधानिक। इसे विधान–विरत हड़ताल कहा जाना चहिये, जिसमें वे सजायें न दी जायं, जो एक अवैधानिक हड़ताल में दी जाती हैं। यह विधायिकाओं के लिये यह संभव करेगा कि वह वैधानिक एवं अवैधानिक हड़तालों के लिये हड़ताल घोषणा की न्यूनतम परिस्थितियां निर्धारित कर दे और बाकी जब हडतालों को विधान–विरत घोषित करने की सुविधा दे। यह सेवायोजक अथवा उस ट्रेड यूनियन के लिये खुला छोड़ना चाहिये, जो संस्थान की हड़ताली यूनियन के अलावा हो, कि वह औद्योगिक अभिनिर्णय को आवेदन करें कि वह प्रतेक हड़ताल की परिस्थितियों के अनुसार विधान–विरत हड़ताल के लिये भी अवैधानिक हड़ताल की सजा की धाराओं को आकर्षित कर सके इन मामलों का निर्णय करते समय अभिनिर्णय यंत्र कुछ विशाल वैचारिक आधारों द्वारा उस समय निर्देशित हों जब कि उसे एक विधान–विरत हड़ताल को अवैधानिक करार नहीं देना हो। ये वैचारिक आधार निम्नलिखित हो सकते हैं—

(१) हड़ताल की घोषणा से पहिले सेवायोजक को बहुत पहले सूचना दी गई थी।

(२) कार्य न करने का काम शान्तिपूर्ण हो।

(३) हड़ताल का प्रमुख उद्देश्य सेवायोजक को वार्तालाप की मेज पर लाना हो।

(४) हड़ताल शुद्ध टोकेन प्रकृति की हो।

(५) वह सन्नियम या एवार्ड की व्यवस्थाओं का पालन करवाने के निमित्त की गई हो।

(६) घोर असंतोष उत्पन्न करने के लिये काफी उत्तेजना मौजूद हो।

(७) कोई अन्य कारण, जोकि अपमानजनक या निम्नश्रेणी का घुटनाटेक सामान्य कार्य करने के बराबर हो।

उपरोक्त वैचारिक आधारों की उपस्थिति या अनुपस्थिति का सामान्यतः प्रभाव औद्योगिक टिब्यूनल को यह तय करने में पड़ना चाहिए कि किसी विशिष्ट मामले में अवैधानिक हड़ताल के लिए निर्धारित सजा की धाराओं को आकर्षित किया जाये या नहीं, जिसके लिए किसी योग्य पक्ष ने, जो शामिल हो या प्रभावित हो, आवेदन किया गया हो। ठीक इसी प्रकार हड़ताली यूनियन के लिये भी यह खुला होना चाहिये कि वह एक अवैधानिक को विधान-विरत या एक विधान-विरत को वैधानिक हड़ताल घोषित करवा ले और तत्संबन्धी व्यवस्थाओं का लाभ उठावे।

हमारे द्वारा सुझाया गया वर्गीकरण एक बहुत आवश्यक वर्गीकरण है और वास्तव में अनेक उदार सेवायोजक विभिन्न प्रकार की हड़ताल परिस्थितियों के निवारण के लिये किसी ऐसे ही प्रकार के वर्गीकरण स्वीकार करना पसंद करते हैं। उन्होंने किसी हड़ताल के उपरान्त हड़ताली परिस्थितियों को स्थिर करने में इससे काफी सफलता प्राप्त की है। ऐसे सेवायोजकों की संख्या यद्यपि बहुत ही कम है और उनमें एकरूपता होने से यूनियनें अन्दाजा ही लगाती रहती है और यह औद्योगिक मनःस्थिति को प्रभावित करता है। अनेक योग्य पर्यवेक्षकों द्वारा यह अनुमान लगाया गया है कि हड़तालों के द्वारा उत्पादन की गिरावट

खराब औद्योगिक सम्बन्धों के कारण होने वाली गिरावट की अपेक्षा बहुत कम होती है। यदि हड़ताल को एक सम्मानजनक और भली-भांति समझ में आने वाला विरोध का एक स्वरूप बना दिया जाये तो औद्योगिक संघर्ष की प्रक्रिया का एक जीवन्त भाव विकसित होगा और कार्यकारी-शक्ति-मत्ता की मनःस्थिति स्थिर रखने में व्यवहारिक सहायता मिलेगी। यह निश्चित रूप से सम्मानपूर्वक और कार्य की प्रतिष्ठा को संचित रखते हुए कठिन मेहनत के लिये प्रेरक वातावरण उत्पन्न करेगा क्योंकि जब यह समझा जाने लगता है कि कार्यकारी परिस्थितियां अब सम्मानजनक नहीं रह गई हैं तभी हड़ताल और कार्य की अपेक्षा का दूसरा मार्ग अपनाया जाता है। यह एक प्रकार का अस्थायी पलायन है, जो एक योग्य हाथों से प्राप्त होने पर स्वस्थ खलबली और महत्वपूर्ण विषय पर गम्भीर विचार विमर्ष उत्पन्न करता है। ऐसी हड़तालों के पीछे का दर्शन या सामाजिक आधार पर वादविवाद की औद्योगिक अभिनिर्णय में व्यवस्था और जब आवश्यक हो तो उससे फैसला करवाना, सभी सम्बन्धित व्यक्तियों पर एक गुणकारी प्रभाव डालेगा कि वे एक तीसरे पक्ष के सम्मुख अपने कार्यों के औचित्य के सम्बन्ध में विचार करें। वास्तव में इसके द्वारा वे हड़ताल जैसी समस्या को उपभोक्ताओं या सामान्य जनहितैषी हल के करीब ले आते हैं, जो एक बहुत उपयोगी निवारण-विधि है, यद्यपि उपेक्षित है। इसके माध्यम से यूनियनों के द्वारा 'एक्शन कमेटी' के झन्डे के नीचे हड़ताल–घोषणा करने का कार्य भी अनावश्यक हो जायेगा जिसका प्रयोग मान्यता जैसे उद्देश्यों के लिये अपने यूनियन के प्रत्यक्ष रिकार्ड को साफ रखने के लक्ष्य से किया जाता है। यह उत्तम होगा कि किसी योग्य ट्रिब्यूनल के समक्ष यूनियनों में उन हड़तालों को स्वीकार करने का नैतिक साहस होना चाहिये जिन्हें वे न्यायपूर्ण समझने का विश्वास रखती हैं। हड़तालों की संस्थात्मक प्रक्रिया निर्माण और सामाजिक-भेदभाव के दर्शन का विकास और निर्देश इस सम्बन्ध में वर्तमान अवस्था को सुधारने के लिये आवश्यक योगदान होगा।

## तालाबन्दी

सैद्धान्तिक रुप से तालाबन्दी की स्थिति पर भी हड़ताल के समान आधार पर ही तर्क संभव है क्योंकि हड़ताल करने का अधिकार एक जन –प्रसंविदा के दो पक्ष होने के नाते सेवायोजक और श्रमिकों के बीच

समानता के संबोध से उत्पन्न होता है। परन्तु यह कभी भी तथ्य रूप में नहीं पाया जाता है । वर्तमान परिस्थितियों में यह संबन्ध पूर्ण रूप से असमान होता है। श्रमिक बिना सेवायोजक की सहमति के सेवायोजन के नियमों को नहीं बदल सकता है। परन्तु सेवायोजक अनेक परिवर्तन करने और अनेक आदेश देने के लिये अधिक स्वतंत्र है। इस लिये उसे बिना नोटिस अपने श्रमिकों की तालाबन्दी करके प्रसंविदा को तोड़ने की कभी जरूरत नहीं है। यह सेवायोजकों के लिये आसान है कि वे प्रसंविदा की पवित्रता की बात करें परन्तु श्रमिकों को अनेक बार प्रसंविदा तोड़ने और साथिओं का विश्वास तोड़ने के बीच चुनाव करना पड़ता है कि क्या वे सेवायोजक को सेवायोजन की परिस्थतियों को बिगाड़ने की इजाजत दे सकते हैं ! हड़ताल श्रमिकों के लिये अधिक आवश्यक है न कि तालाबन्दी क्यों कि सेवायोजक द्रढ़ स्थिति मे होते हैं। और उहें तालाबन्दी करने की जरूरत नहीं पड़नी चाहिये । इस लिये हड़ताल और तालाबन्दी पर बिना भेद भाव के लगाया जाने वाला प्रतिबन्ध श्रमिकों के प्रति अन्याय होगा। इसलिये, हम सुझाव देते हैं कि किसी उद्योग में तालाबन्दी और जनोपयोगी संस्थान में हड़तालों में समानता रखी जाये और उनके संदर्भ में कोई विधान-विरत हड़ताल न हो। उनके मामले में हड़ताल और तालाबन्दी वैधानिक होने चाहिए और उस समय होनी चाहिये जबकि उन्हें रोकने के लिए सभी प्रयत्न समाप्त हो गए हों, एक कानूनी नोंटिस दिया गया हो और तृतीय पक्ष के निर्णय को भी मामला सौंपने की तैयारी रहे। हम इस सम्बन्ध में यह जोड़ना चाहते हैं कि जनोपयोगी संस्थानों की घोषणा कानून के द्वारा की जाये ओर प्रशासक की मर्जी पर न छोड़ी जाये।

## घेराव

एक अन्य प्रश्न जिसने जनता का ध्यान अभी हाल में बहुत आकर्षित किया है 'घेराव' है और इस विषय पर अलग विवेचन करना आवश्यक है। औद्योगिक युद्ध संचालन के लिये श्रमिकों के हथियारो में घेराव एक वैधानिक शस्त्र नहीं है। घेराव शब्द अभी हाल में रचा गया है परन्तु घटनायें इतनी नई नहीं हैं। कानून की कमियों और विभिन्न यंत्रों की असमुचितताओं के प्रति श्रमिकों की एक प्रकृतिमूलक प्रतिक्रिया के रूप में घेराव स्वाभाविक है और उसके स्वागत या तिरस्कार का कोई प्रश्न नहीं है। केवल तिरस्कार करने

का कोई अर्थ नही जब तक कि आधारभूत कारणों को दूर करने का कठिन प्रयत्न न किया जाये। हमने इस स्मृतिपत्र में अन्य स्थान पर श्रमसन्नियमों को अधिक पूर्ण और यंत्र को अधिक कुशल बनाने के निमित्त सुझाव दिये हैं। यदि ये सुझाव माने जायें तो प्रतिक्रियात्मक घेराव बेकार हो जायेगें। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रतिक्रियात्मक घेराव पूर्ण नियोजित या संगठित नहीं होते हैं। वे शुद्ध औद्योगिक प्रकृति के होते हैं जो वैधानिक नहीं हैं। दूसरी ओर राजनीतिक घेराव पूर्ण नियोजित और सुविचारित होते हैं। वे उस उथल-पुथल को निर्माण करने के दीर्घसूत्री प्रयत्न की श्रृंखला की एक कड़ी के रूप में है, जो अन्तिम क्रान्ति की स्थिति का निर्माण करेगी। ऐसे मामलों में श्रमिकों को एक राजनीतिक खेल में केवल मोहरों के समान समझा जाता है और अगले राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उनके रोष का शोषण किया जाता है। ऐसे घेरावों का घोर तिरस्कार किया जाना चाहिये। वे न केवल अराष्ट्रीय ही परन्तु श्रमविरोधी भी होते हैं। दीर्घकाल में वे श्रमिकों की न्यायपूर्ण और ठीक मांगों के प्रति भी सारी जनता की प्रवृत्ति को आक्रमक बना देती हैं। इस राक्षस के संहार के लिये सही रास्ता को इस मेमोरेण्डम में हमारे द्वारा दिये गये सुझाओं को अपनाना है। यदि श्रमिकों को विश्वास हो जाये कि न्याय सस्ता और शीघ्र उपलब्ध होगा तो वे कभी भी बाहरी राजनीतिक स्वार्थों द्वारा अपना शोषण स्वीकार नहीं करेंगे।

## त्रिदलीय संस्थायें

भारत की वर्तमान त्रिदलीय संस्थाओं ने सरकारी प्रवक्ताओं, उद्योग और श्रमिक नेताओं के विचारों को व्यक्त करने के लिये बहुत उपयोगी मंच प्रस्तुत किया है परन्तु इस कार्य के अतिरिक्त इसने श्रमिकों के जीवन पर कोई जीवन्त प्रभाव नहीं डाला है। अनेक बार १५ वें त्रिदलीय सम्मेलन को औद्योगिक संबन्ध का एक महत्वपूर्ण मार्ग सूचक माना जाता है क्यों कि इसने 'जीवनीभृत्ति' 'न्यायपूर्ण भृत्ति' और 'न्यूनतम भृत्ति' के सम्बोधों की परिभाषा की, और २० वें ने 'अनुशासन कोड' के अंतर्गत मान्यता प्राप्त यूनियन के अधिकारों को परिभाषित किया। परन्तु भारत सरकार ने द्वितीय वेतन आयोग के समक्ष एक वक्तव्य दिया कि यद्यपि राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में सरकार स्वयं भी एक पक्ष थी किन्तु यह कहना उचित नहीं होगा कि सरकार उन प्रस्ताओं को मानने के लिए वाध्य है। और यह उन सुझावों को पालन करवाने के लिये कोई

प्रशासनिक कार्य करने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध नहीं है। यदि सरकार इन प्रस्तावों का पालन करने के लिये कटिबद्ध नहीं हो तो कोई कारण नहीं कि अन्य कोई भी पक्ष उनका पालन करे। वास्तव में भारतीय श्रम कान्फ्रेंस का मंच पूर्णरूपेण अप्रभावी हो गया है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य बात है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, जोकि अनेक सरकारों, उद्योग और विभिन्न देशों के श्रमिक नेताओं का एक त्रिदलीय मंच है आज भी हमारे राष्ट्रीय त्रिदलीय संस्था से अधिक प्रभावी हैं। **ILO** ने कार्य-अध्ययन में अनेक विशिष्ट और योग्य सेवाओं और उत्पादकता तथा श्रमिक कल्याण की अनेक तकनीकें विकसित की हैं जो श्रमिक जीवन को काफी हद तक योग्य रूप प्रदान कर रहा है। हम पहिले कह चुके हैं कि हमारे श्रमकानून अधिकतर **ILO** द्वारा निर्धारित रेखाओं पर बने हैं। उसके प्रकाशन भी प्रामाणिक पुस्तकें समझी जाती हैं और अभिनिर्णय में आने वाले अनेक विवादों पर अपनी छाप छोड़ते हैं। परन्तु भारतीय श्रम सम्मेलन और स्थायी श्रम कमेटी से यह अपेक्षा करना अस्वाभाविक नहीं है कि वे भारतीय श्रमिक के जीवन स्तर को उठाने में अतीव योगदान दे सकते हैं, बेकारी दूर कर सकते हैं और उत्तम औद्योगिक वायुमंडल बना सकते हैं।

हमारी त्रिदलीय संस्थाओं का प्रमुख दुर्गुण यह है कि वे श्रमिक के लिये कोई स्थायी कार्य नहीं करती हैं। प्रभाव में वे केवल प्रदर्शनात्मक संस्थायें रह गईं हैं जो समय समय पर कसमें खा सकती हैं और जिन्हें कान्फ्रेंस से बाहर आते ही भूल जाया जाता है। उनके पास एक प्रभावी कार्यालय होना चाहिये जो उनके फैसलों को लागू करवावें और उनके स्तर और महत्व के अनुसार विशिष्ट कार्य करें। ऐसे तीन कार्य राष्ट्रीय त्रिदलीय संस्था के नियंत्रण में स्पष्ट रूप से रखने योग्य हैं। एक तो भारतीय श्रमिक की कार्यकारी एवं जीवन निर्वाह परिस्थितियों से सम्बन्धित संमंकों के संग्रह और प्रकाशन का कार्य है। वर्तमान स्थिति यह है कि यह कार्य विभिन्न राज्यों और केन्द्रीय सरकार के श्रम विभागों, भारतीय साँख्यकी संस्था, राष्ट्रीय न्यादर्श सर्वेक्षण, केन्द्रीय साँख्यकीय संगठन और श्रमिक-ब्यूरो शिमला द्वारा किया जाता है। परन्तु यह कार्य बहुत अल्प और असम्बद्ध है और व्यवहारिक उपयोग में नहीं लाया जा सकता है। यहां तक कि जीवन निर्वाह निर्देशाकों के निर्माण और रखरखाव का कार्य, जिसपर श्रमिकों का महंगाई भत्ता हमेशा ही निर्धारित

किया जाता है, भी अनेक दुर्गुणों से भरा है तथा राजनीतिक प्रभावों के लिए खुला हुआ है। इस महत्वपूर्ण समंक का संकलन और प्रकाशन का कार्य त्रिदलीय सम्मेलनों द्वारा किया जाना चाहिये। इससे सम्बन्धित कार्य का संकलन श्रमिक उत्थान के लिए महत्वपूर्ण एवं व्यवहारिक योजना बनाने में योग्य आधार प्रदान कर सकता है, यह क्षेत्र मौलिक और महत्वपूर्ण शोध के लिये खुला है और इस कार्य में त्रिदलीय का लगना श्रमनीति को एक निश्चित दिशा प्रदान करेगा। यह ट्रेड यूनियन आन्दोलन को राष्ट्रीय योजनाओं और नीतियों में अपना अधिकारी भाग प्राप्त कराने में भी सहायक होगा।

त्रिदलीय का दूसरा कर्तव्य श्रमिक और निरीक्षकों का प्रशिक्षण होना चाहिये, जिसमें ट्रेड यूनियन कार्यों के लिए श्रमिक शिक्षा भी सम्मिलित है। वर्तमान समय में सरकार इस सम्बन्ध में कुछ कक्षायें चला रही है और कुछ अन्य कार्यों को राष्ट्रीय उत्पादकता काउंसिल चला रही है। **ILO** ने उत्पादकता को अन्तर्राष्ट्रीय सेवा प्रस्तुत करने के लिये अपनी योजना का महत्वपूर्ण अंग माना है। उत्पादकता के लिये चेतना-निर्माण करना भी त्रिदलीय के लिये एक महत्वपूर्ण कार्य है और समय के साथ उसके कार्यों का एक अंग बन जायेगा। ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ताओं के व्यवहारिक प्रशिक्षण की एक तात्कालिक योजना जो श्रमिकों को सुरक्षा, अनुशासन, पद-अवसरों, कल्याणकारी योजनाओं इत्यादि के संबन्ध में चेतना दे और औद्योगिक संबन्धों में निरीक्षकों का प्रशिक्षण एक त्रिदलीय संस्था द्वारा अच्छा किया जा सकता है न कि एकदलीय संस्था अर्थात सरकार द्वारा।

तीसरा कार्य समाज सुरक्षा की एक सामूहिक योजना है। वर्तमान समय में कुछ योजनायें जैसे कर्मचारी प्रावीडेन्ट फन्ड, कर्मचारीबीमा इत्यादि विभिन्न त्रिदलीय सस्थाओं द्वारा चलाई जा रही हैं। वेकारी के वीच के संबन्ध में भी एक योजना है। समाज सुरक्षा का विवेचन करते समय हम अनेक समन्वय की बात करेंगे। इस समय यह कहना काफी है कि सारी योजना का समन्वय होना चाहिए और उसे राष्ट्रीय त्रिदलीय के सामान्य निरीक्षण में चलाया जाना चाहिये।

उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये त्रिदलीय की एक स्थायी समिति केन्द्रीय श्रम-मंत्री की अध्यक्षता में बनाई जानी चाहिए। सरकार की सहमति से

संस्थान के मुख्य प्रशासकीय अधिकारी की नियुक्ति त्रिदलीय बोर्ड द्वारा की जानी चाहिये।

## सामान्य

विशाल दृष्टिकोण से यही वह मार्ग है, जिसपर उद्योग में मानवीय संबन्धों को प्रभावीरूप से चलाना चाहिए जिससे रुक रुक कर चलने वाली लम्बी दौड़ में गति फलदायक हो। निश्चित और स्पष्ट विचारों के आधार पर उसका अभिनवीकरण करने में बार बार असफलताओं और विशालस्तर पर दुर्घटना का मुंह देखना पड़ेगा। सभी बातों की योजना में वैधानिक सन्नियमों का न्यूनतम स्थान ही होना चाहिये। दोनों पक्षों पर कुशल वार्ताकारों का एक स्थायी कार्यकारी यंत्र जो दृढ़ परम्पराओं और व्यवहार के मानदण्ड स्थापित कर सकें—और एक उत्साही स्वीकृति के साथ ही संस्थाकृत हो—एक नवीन औद्योगिक समाज का निर्माता होगा। ट्रेड यूनियनों पर सामान्य जनता अथवा अखवारो द्वारा कितना भी प्रदर्शनकारी होने का आरोप लगाया जाये वास्तव में आजकल वह एक गम्भीर दैनिक कार्य हो गया है। यह आवश्यक है कि उद्योग उनके कार्य को आफिस या फैक्टरी परिसर के अन्दर ठीक सुविधायें देकर और उन्हें उद्योग का एक भाग मानते हुये न कि आफिस के बाहर का कार्य समझकर सम्मान देकर उनके कार्य को आसान बनादे। सेवायोजक और कर्मचारी के बीच स्थायी सद्भावना के निर्माण के लिये एक स्थिर और स्वस्थ संम्प्रेषण एक पूर्व आवश्यकता है और इस सम्प्रेषण के लिए मान्यता प्राप्त यूनियन एकाकी नहीं तो एक महत्वपूर्ण साधन तो अवश्य ही हैं। निर्वाचन के द्वारा श्रमिकों की वर्क्स कमेटी बनाकर जो संयुक्त व्यवस्था कौंसिल में परिवर्तित हो और औद्योगिक सम्बन्ध में काफी शक्ति रखे विशेषरूप से अनुशासन सम्बन्धी कार्यवाही उत्पादकता, कल्याण इत्यादि के विषय में, यह इस सम्प्रेषण की अन्य मुख्य प्रवाहिका है। इसे चाहिये कि वह द्विमार्गी सूचना वहन को उत्साह से कायम रखे। इसके आधार पर प्रतिनिधि यूनियन या यूनियनों से एक सामूहिक विनिमय का शीर्ष बन सकता है। इस सामूहिक विनिमय से उत्तम कुछ नही है उस समय तक जब तक कि ऐसी स्थिति न उत्पन्न हो जाये जहाँ न कोई सेवायोजक और न कोई कर्मचारी क्योंकि सभी एक औद्योगिक परिवार के सदस्य के रूप में प्रत्येक मामले को मिलकर तय करेगें। परन्तु हमारे द्वारा पहिले वर्णित कारणों से

सामूहिक विनिमय हमेंशा संभव नहीं होता है। ऐसी अवस्था में ऐच्छिक पंच-निर्णय दूसरा उत्तम मार्ग है। ऐच्छिक पंचनिर्णय की स्वतंत्र प्रकृति ही उसका सर्वोत्तम धन है और योग्य पंचनिर्णायकों के बोलते हुए फैसले, जो समय समय पर, तकनीनी सलाह पर आधारित हों स्वस्थ सम्बन्धों को विकसित करने के लिये निर्देशक तत्व बन सकते हैं। ऐच्छिक पंचनिर्णायकों के एक पेशे का विकास श्रम समस्याओं पर शोध कार्यकर्त्ताओं को भी प्रेरणा प्रदान कर सकता है। ऐसी स्थिति में सभी आवश्यक संमको को एकत्रित करने, शोध के समन्वय करने और श्रमिकों तथा निरीक्षक शिक्षा की योजनायें चलाने की जिम्मेदारी उठाने वाली त्रिदलीय संस्थायें अनेक प्रयोग की दिशाओं को प्रोत्साहित कर सकती हैं। प्रत्येक परिस्थिति में प्रभाव डालने वाली विद्युत शक्ति के वजन के लिये न्यूनतम वैधानिक सन्नियम और अधिकतम स्वतन्त्रता देश के उत्साह को अनेक सबल और मौलिक दिशाओं में सक्रिय करेंगी। विधानविरत हड़ताल के लिए क्षेत्र और अभिनिर्णय न्यायालयों में वाद-विवाद, सामाजिक अन्याय और विधान एवं मनुष्य कीं अपूर्णताओं के नए क्षेत्रों पर प्रकाश डालेंगे। संयुक्त व्यवस्था काउंसिलों का विकासमान स्वरूप हमें निर्माणात्मक कार्य का एक भिन्न संवल प्रदान कर सकता है। लाभ में हिस्सेदारी की योजना की ओर प्रगतिवादी प्रचलन और श्रमिकों के प्रतिनिधियों का संचालक मंडल में प्रवेश देश के श्रमिकों के लिए राष्ट्र निर्माणकारी कार्यो में भाग लेने का अवसर प्रदान करेंगे। इस प्रकार कार्य परिषदों के अधिकारों की वृद्धि द्वारा शिकार होने से रक्षित श्रमिक तथा विश्वासयोग्य निर्णयों और समझौते, जिसे शुभायुक्ततन्त्र उसके लिए लागू कर सकेगा, उसके हड़ताली कार्यवाही की औचित्यता व जनसाधारण और उपभोक्ता को समझाना, जिसके लिये वह उत्तरदायी है—जिनका कि वह अंग व प्रत्यंग है और जिसे नीति निर्धारण की सत्ता में हिस्सा लेने के लिए विवाद खड़ा करने का अधिकार है, जनता का एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करेगा जो, कि आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर है। यदि तब भी ऐसा आमंत्रण जनता को प्रेरणा न दे सका तो औषधि की खोज औद्योगिक सम्बन्ध मे दूसरे क्षेत्र में करनी पड़ेगी। परन्तु किसी अन्य बात के प्रति दोषारोपण करने से पहिले हमें अपने औद्योगिक सम्बन्धों के गृह को सुव्यवस्थित कर लेना चाहिये क्योंकि कौन जानता है कि हम लोग इसी क्षेत्र में अपनी सारी

समस्याओं का समाधान करलें । औद्योगिक परिवार एक बड़ा संयुक्त परिवार होना चाहिये और तब उसे एक सुदृढ़ मूल वाली छबि और रंग की प्राप्ति होगी । तभी उसका विकास भी सजीवी नियम के आधार पर होगा ।

---

प्रकाशक–
महामंत्री
भारतीय मजदूर संघ, उत्तर प्रदेश
२, नवीन मार्केट
कानपुर

मूल्य १ रुपया

मुद्रक–
टिप-टाप प्रिन्टर्स
२४/९१, बिरहाना रोड,
कानपुर–१
फोन : ६९११९

अध्याय–७

# श्रमनीति

# ग्रामीण तथा असंगठित श्रमिक

—भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

**'Labour Policy'** पुस्तक जो मा० श्री ठेंगड़ी जी, गोखले जी व मेहता जी द्वारा लिखी गई है। यह प्रस्तुत पुस्तिका उसी पुस्तक के अध्याय क्र० ७ की हिन्दी रूपान्तर है।

इसी प्रकार शेष १९ अध्यायों के भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये गये हैं।

इस अध्याय के अनुवादक हैं– राष्ट्रीय सुरक्षा श्रमिक संघ, कानपुर के मंत्री व भारतीय मजदूर संघ, उत्तर प्रदेश की कार्यसमिति के सदस्य श्री रमाकान्त शुक्ल उनका मैं हृदय से आभारी हूं।

—प्रकाशक

# ग्रामीण तथा असंगठित श्रमिक

ग्रामीण बेरोजगारी तथा अर्धनियोजन की समस्या ने अब तक के संतोषजनक विकल्प का उल्लंघन किया है। इस सम्बन्ध में विश्वसनीय आंकडों की अनुपलब्धि ने समस्या की तीव्रता के आंकलन में एक बहुत बड़ी कठिनाई उत्पन्न की है। ग्रामीण अर्धनियोजन के विस्तार का सही आंकलन अब भी बहुत कठिन है तो भी ग्रामीण श्रमिकों को उपयुक्त संरक्षण तथा सहायता प्रदान करने हेतु हमारे किसी योजना या योजनाओं की संरचना करने के पूर्व इन समस्त आंकड़ों को एकत्र करना ही पड़ेगा।

कई वर्षों के पूर्व, भारत सरकार ने रिपब्लिकन पार्टी को आश्वासन दिया था कि बची हुयी भूमि को भूमिहीन श्रमिकों के मध्य त्वरित बांट दिया जावेगा–विशेष तौर से उनके मध्य जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित बन्य जातियों से सम्बन्धित हैं किंतु फिर भी यह कार्यवाही अभी तक पूर्ण नहीं की गयी। इस सम्बन्ध में सरकार के पक्ष में इमानदारी की कमी ही इस आश्वासन को न पूरा करने का मुख्य कारण है। बहुत से राज्यों में राज्य भूमि सुधार कानून में, भूमि बन्धन से सम्बन्धित व्यवस्थायें कड़ाई के साथ लागू नहीं की गयी हैं। कुछ मामलों में निर्धारित बन्धन अवास्तविक हैं तथा नितान्त अव्यवहारिक है। तब पर भी समस्त कृषि योग्य वेकार भूमि तथा भूमि सुधार कानूनों को लागू होने

अनुकूल नये तकनीकी विकास का विचार देता है। प्रथम चरण में यह प्रयोग कुछ चुने हुए क्षेत्रों में लागू किया जा सकता है।

निकट भविष्य में अप्रतिरोधी परिणामों के देने में समर्थ, श्रम-सघन विकासमान परियोजनाओं को चलाना एक दूसरा माप है, जो विशाल पैमाने पर परीक्षण के योग्य है। उपयोगी सड़कों का निर्माण, छोटे तथा मझोले सिंचाई तथा परनाली के काम बेरोजगार तथा अर्ध-बेकारों की सहायता से किया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय मानव शक्ति का पूर्णतया तथा फलदायी उपयोग के निमित्त सामाजिक दशायें तथा कार्य उत्पन्न करने के दृष्टिकोण से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा सुझाया गया कार्यवाही कार्यक्रम (**Action Programme**), भारतीय दशाओं और आवश्यकता के बहुत ही उपयुक्त है। निःसंदेह अपनी दशाओं के अनुरूप कार्यक्रम अपनाने के रास्ते और साधन ढूंढ़ने पड़ेंगे जो व्यवहार्य भी है।

रिपब्लिकन पार्टी ने मांग की थी कि भारत में सभी खेतिहर मजदूरों को न्यूनतम वेतन कानून १९४८ का संरक्षण व लाभ प्रदान किया जाना चाहिये। यह अविलम्ब किया जाना चाहिये। इस कानून की धाराओं के अमलीकरण का विश्वास दिलाना अत्यधिक कठिन है। निरीक्षणालयों को बहुत बड़ा बनाना पड़ेगा, इसकी व्यवस्था अत्यधिक खर्चीली है। वास्तव में कृषि उद्योग इस बोझ को सहन करने में असमर्थ हैं। दूसरे स्रोतों से इन खर्चों का पूरा करना इतना आसान नहीं होगा। इस काम को ग्राम या ब्लाक डेवलपमेंट कर्मचारियों पर देना सम्भव है। इसका परीक्षण किया जाना चाहिए, यद्यपि कोई भी इस प्रबन्ध की क्षमता से आश्वस्त नहीं हो सकता क्योंकि यह स्टाफ (कर्मचारी) उन लोगों के भ्रष्ट प्रभाव को आसानी से ग्रहण कर सकते हैं, जो न्यूनतम वेतन कानून के उल्लंघन के जिम्मेवार हैं। हमें स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं है कि हम ग्रामीण क्षेत्रों में न्यूनतम वेतन कानून के अमलीकरण का कोई प्रभावकारी ढंग ढूंढ़ने में असमर्थ रहे हैं। यद्यपि

हम सहमत हैं कि सम्पूर्ण देश में उसको लागू करना निहायत जरूरी है तथ्य रूप में, खेतिहर मजदूरों को सामाजिक न्याय की एकमात्र आश्वती (गारंटी), किसान, कारीगर और खेतिहर मजदूरों से युक्त, ग्रामीण राष्ट्रकुल की भावना पुनर्जीवित करने में निहित है। इस राष्ट्रकुल का प्रत्येक घटक सहमत है कि इसकी सम्पन्नता अपरिहार्य रूप से अन्य दूसरे भागीदारों से सम्बन्धित है। यह अनुभूति, सहयोग और पारस्परिक विश्वास का वातावरण व दृष्टिकोण को जन्म देती है। जब तक कि ग्रामीण क्षेत्र के प्रत्येक मस्तिष्क में स्वैच्छिक पारस्परिक निर्भरता की भावना या अपरिहार्यता पुनः नहीं लायी जाती है केवल कानून के बल-पर न्याय और समानता का विश्वास दिलाना असम्भव है किन्तु यह सत्य है कि यूनियन संगठनों की क्षमता के बाहर यह एक बड़ा विषय है। चूंकि हम लोग इस प्रकार की आदर्श दिशा से बहुत दूर दिखलाई पड़ते हैं इसलिए हम कुछ भी न करके उपयुक्त कानून और उसके कड़ाई के साथ पालन पर विश्वास करते हैं।

केन्द्रीय श्रम संगठनों को अभी तक खेतिहर मजदूरों को संगठित करने में सफलता नहीं मिली है। यह कहना कठिन है कि यह उनकी अनुत्सुकता के कारण है या इस दिशा में उनकी अयोग्यता कारण है। वास्तव में खेतिहर मजदूरों को संगठित करना कई गुना अधिक कठिन है। उनके काम के स्थान बिखरे हुए हैं। अतएव उनके अन्दर ट्रेड यूनियन चेतना जाग्रत करना कठिन है। दूसरे उनमें से प्रत्येक अपने मालिक के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आता है जबकि फैक्ट्री में ऐसा विरला ही होता है। तीसरे उनको अभी भी विश्वास नहीं है कि ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध विभिन्न परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में, ट्रेडयूनियन कभी भी उनकी सेवा का एक प्रभावकारी यन्त्र बन सकती है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि खेतिहर मजदूरों के सम्बन्ध में श्रमिक सहकारी समितियां कम से कम उतनी ही उपयोगी हैं जितनी कि ट्रेडयूनियन में। उनको श्रमिक सहकारी समितियों में संगठित करने के लिये अधिक जोर देना चाहिये। श्रमिक

सहकारी समितियां बन विभागीय श्रमिकों के लिए भी अधिक उपयोगी हैं। इन अपढ़, अशिक्षित बन विभागीय मजदूरों को बन विभागीय ठीकेदारों के शोषण और चंगुल से बचाने हेतु उचित संरक्षण दिया जाना चाहिए। सब प्रकार की वेतन अदायगी और ठीकेदारी श्रम के काम की दशाओं में मालिकों को प्रमुख उत्तरदायी बनाने हेतु कानून में उपयुक्त संशोधन करने की प्राथमिकता दिखलाई पड़ती है। यह अवश्यमेव किया ही जाना चाहिए और उनको श्रम सहकारी समितियों में संगठित किया जाना चाहिये।

ग्रामीण कारीगर श्रमिक कानूनों की परिधि के बाहर हैं। वे 'कामगार' नहीं कहला सकते क्योंकि वे वेतन भोगी नहीं हैं। किन्तु उनके कल्याण पर किसानों और मजदूरों का कल्याण निर्भर करता है। यहां तक कि पार्श्ववर्ती का कल्याण पूर्ववर्ती के लिये पहली शर्त है। उनके हित में यह आवश्यक है कि उनके काम की दशाओं को सुधारा जाय, उनकी कारीगरी में थोड़े अंशों तक मशीनीकरण प्रचलित किया जाय, जो उनके उत्पादन के ढंग में पूर्णरूप से सहायक हो सके। स्वदेशी की भावना को प्रोत्साहित किया जाय और उनको बाजार सहकारी समितियों में संगठित किया जाय। ग्रामीण कारीगरों के लिये बाजार सहकारी समितियां वही हैं जो औद्योगिक कर्मचारियों के लिये ट्रेड-यूनियनें हैं।

ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के असंगठित और छोटे उद्योगों में कार्यरत मजदूर अपेक्षाकृत अधिक संरक्षण के अधिकारी हैं। न्यूनतम कानून के प्राविधानों और दूसरे कानूनों को इस क्षेत्र तक बढ़ाया जाना चाहिये। इस प्रकार के कानूनों को लागू करवाने या निरीक्षण करने के लिये पर्याप्त मात्रा में श्रम निरीक्षकों को भर्ती किया जाना चाहिये। एक प्रतिष्ठान, जो अपने कर्मचारियों को न्यूनतम वेतन भी प्रदान नहीं कर सकता, चलते रहने का कोई अधिकार नहीं रखता है। इस सिद्धान्त को

कड़ाई के साथ पालन करना चाहिये। उनके मामले में ट्रेड यूनियन के चंदे की दर घटाई जानी चाहिए। इस प्रकार यह इस क्षेत्र में ट्रेड यूनियन-वाद की वृद्धि में सहायक हो सकती है।

—o—

प्रकाशक–

**महामंत्री**

भारतीय मजदूर संघ, उत्तर प्रदेश

२, नवीन मार्केट

कानपुर

मूल्य १० पैसे

मुद्रक–

**टिप-टाप प्रिन्टर्स**

२४/९१, बिरहाना रोड,

कानपुर–१

फोन : ६९१११

अध्याय-८

# श्रमनीति

# श्रम कानून

—भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

**'Labour Policy'** पुस्तक जो मा० श्री ठेंगड़ी जी, गोखले जी व मेहता जी द्वारा लिखी गई है। यह प्रस्तुत पुस्तिका उसी पुस्तक के अध्याय क्र० ८ की हिन्दी रूपान्तर है।

इसी प्रकार शेष १९ अध्यायों के भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये गये हैं।

इस अध्याय के अनुवादक हैं– लखनऊ विश्वविद्यालय के वाणिज्य विभाग के प्राध्यापक डा० महेन्द्रप्रताप सिंह। उनका मैं हृदय से आभारी हूं।

—प्रकाशक

अध्याय ८

# श्रम कानून

श्रमिक और व्यवस्थापक सम्बन्धों में सुधार होना चाहिए और कानून या बाध्यता की अपेक्षा प्रमुख रूप से सामूहिक विनिमय और वार्तालाप के द्वारा उनका संचालन होना चाहिये। दूसरे शब्दों में, संबन्ध केवल वैधानिक और गतिहीन नहीं वरन् विकासजन्य और गतिशील होना चाहिये। अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों को प्राप्त करने के लिए उभयपक्षों अर्थात श्रमिकों और व्यवस्थापकों द्वारा प्रमुख कार्य किया जाना चाहिये और जब द्विजनवार्ता असफल ही हो जाये तभी औद्योगिक शान्ति की स्थापना के लिये कानून का प्रवेश करना चाहिये। सामूहिक विनिमय और दृढ़ तथा स्वस्थ ट्रेड यूनियन आन्दोलन के माध्यम से श्रम समस्याओं को सीधे जामे के कानून द्वारा हल किया जाना चाहिये।

## राज्यीय हस्तक्षेप

जब श्रमिकों के स्वास्थ्य, चरित्र और कल्याण की सुरक्षा और विकास करना अभीष्ट हों, जोकि असमान विनिमय शक्ति और बेईमान तथा लालची मालिकों के शोषण से दुखी हों तो राज्य द्वारा हस्तक्षेप की माँग करना तथा उसके द्वारा हस्तक्षेप होना भी आवश्यक है। शोषण स्वयं में ही, धोके के समान अनैतिक है और प्रभावित व्यक्ति अथवा जनसामान्य के प्रति गलत कार्य है और समाज के सम्पूर्ण वर्ग पर बहुत अधिक निर्भरता सारे समाज के ताने बाने के लिये भयंकर उथलपुथल या अन्तिम बर्बादी की चुनौती है।

प्रकाश काटन मिल्स लिमिटेड के मामले में उस समय के बम्बई हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश श्री एम० सी० छागला ने इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात कही—

"—यह कहना सत्य है कि अपने श्रम और औद्योगिक कानून की वर्तमान प्रवृत्ति मालिकों पर अधिक से अधिक भार डालती है। ये भार श्रमिकों के स्वार्थों के हित में डाले जाते हैं क्योंकि वे अनेक दशकों और शताब्दियों तक दलित रहे हैं और विधायिका उनकी स्थितियों को उठाना चाहती है और इसीलिये मालिकों से यह नहीं सुना जा सकता है कि, "व्यवसाय चलाने या सम्पत्ति को रखने के मेरे अधिकार पर यह एक तर्क शून्य बाधा है क्योंकि कानून द्वारा मेरे ऊपर डाला गया भार मेरे विचार से बर्दाश्त के बाहर है"।

## कानूनों की सीमा

श्रमकारी जनता के कल्याण की सुरक्षा एवं विकास के लिए सरकार ने विभिन्न श्रम कानून ठीक ही बनाये हैं जैसे, फैक्टरी एक्ट, औद्योगिक विवाद विधेयक, न्यूनतम मजदूरी विधेयक, श्रमिकों का क्षतिपूरक विधेयक इत्यादि। परन्तु यह दुःखद बात है कि इन विधेयको के उद्देश्य और लक्ष्य उतने नहीं प्राप्त हो सके हैं जितने होने चाहिये। इन उद्देश्यों की पूर्ति में प्रमुखतः अन्य कारणों के अतिरिक्त निम्नलिखित बाधायें हैं—

(अ) इन श्रमिक विधेयकों के पालन का सरकारी यंत्र अकुशल और अमुचित है। श्रमिकों के अथाह समुद्र सा रूप और झूठे बेईमान मालिकों की विशालता देखते हुये प्रशासनिक कर्मचारियों का संख्या-गुण तथा उनकी शक्ति बिल्कुल ही अप्रभावी सिद्ध हो चुकी हैं।

(ब) श्रम कानूनों में विभिन्न त्रुटियां हैं– उदाहणार्थ :

(१) विवादों के ट्रिब्यूनलों को सौंपने के सम्बन्ध में सरकार की ऐच्छिक शक्तियां।

(२) मांग के दिनांक से ही एवार्ड को लागू करने के सम्बन्ध में प्रबन्ध का

अभाव, जिससे एक ओर असाधारण विलम्ब और दूसरी ओर मालिकों द्वारा देरी करने की नीतियों का अपनाया जाना संभव होता है।

(३) माडल स्टैन्डिंग आर्डर में साधारण पदनिवृत्ति की व्यवस्था।

(४) सरकार द्वारा एक श्रम व्यवस्था कोड के निर्माण की असफलता जिसमें एक संगठित यंत्र द्वारा कानून का पालन कराया जाय।

(स) मालिकों द्वारा छोटे छोटे मामलों पर भी अपीलें करना और आर्डरों और एवार्डों द्वारा न्याययुक्त भुगतानों के विरुद्ध स्थगन आदेश लेना, जिससे श्रमिकों में भग्नाशा और हतोत्साह पैदा होता है।

(द) स्वस्थ और मजबूत ट्रेड यूनियनों के संगठन का अभाव, जोकि कानून द्वारा प्रदत्त अधिकारों की सुरक्षा एवं पालन के लिये प्रत्येक समय सिद्ध और सतर्क रहे।

(ध) श्रमिकों के बीच वृहत निरक्षरता। प्रायः भारत का सम्पूर्ण श्रम कानून न केवल अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कन्वेशनों से प्रभावित है वरन् उसी पर आधारित है। भारत के संविधान ने उनके कारण श्रम कानून की प्रगति को प्रतिबाधित नहीं किया है वरन् इसके प्रतिकूल सरकार को निर्देश देता है कि पूर्ण रोजगार और उत्तम जीवन मान स्थापित करे और इन कन्वेशनों का पालन करे। यह अपना निश्चित मत है कि इन कन्वेशनों के पीछे केवल चलने की अपेक्षा, सरकार भारतीय श्रमिक की परिस्थितियों, औद्योगिक विकास के स्तर और वर्तमान ट्रेड यूनियन आन्दोलन की स्थिति पर आधारित श्रम कानून की शुरुआत करे।

## निर्देशक सिद्धान्त

संविधान में दिये गये श्रमिक सम्बन्धी राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्तों के पालन के वर्तमान कानून पूर्ण रूप से असमुचित सिद्ध हुये हैं। श्रमिक का कार्य करने का अधिकार, जीवन मजदूरी के प्रति अधिकार और शिक्षा के अधिकार को पूर्ण रूपेण दृष्टि से ओझल रखा गया है और जीवन के एक उत्तम मानदण्ड को प्राप्त करने का स्वप्न अधिक दूर चला गया है। इसके विपरीत १५ वीं भारतीय श्रम सम्मेलन के सुझावों के अनुसार जहां

आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी दी जानी चाहिये– सरकार अपने द्वारा दिए गये वचनों से मुकर गई है।

वर्तमान व्यवस्था में निम्नलिखित परिवर्तनों और सुधारों की शीघ्र आवश्यकता है, जिससे निर्देशक सिद्धान्तों के प्रतिपालन में प्रगति हो सके—

(अ) संविधान द्वारा सुरक्षित मूलभूत अधिकारों में कार्य करने के अधिकार को सम्मिलित करना। सरकार के लिए यह अनिवार्य होना चाहिये कि वह सारे नागरिकों को नौकरी की सुरक्षा करे साथ ही उन्हें भूख, गरीबी और बीमारी से भी मुक्त रखे।

(ब) सेवायोजकों की क्षमता का ध्यान न रखते हुये भी पारिवारिक बजट, अनुसंधानों के आधार पर एक न्यूनतम मजदूरी की सुरक्षा प्रदान करना।

(स) उपरोक्त न्यूनतम मजदूरी को वास्तविक अर्थों में सुरक्षा प्रदान करना। सारा वेतन पैकेट सही रीति से परिगणित उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक से सम्बन्धित होना चाहिये।

(द) एक संग्रथित समाज सुरक्षा की योजना का निर्माण, जिसमें बेरोजगारी का बीमा और प्रत्येक पूर्ण वर्ष की नौकरी के आधार पर एक माह की कुल मजदूरी के हिसाब से ग्रेच्युटी का लाभ सम्मिलित हो।

(य) सभी श्रम कानूनों की संहिता बनाना और साथ में प्रशासन के लिए एक और अभिनिर्णय के निमित्त मशीनरी बनाना।

(र) हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में श्रमिक के लिये एक विशेष बेन्च का गठन करना, जिससे मामलों के शीघ्र फैसले में देरी दूर की जा सके।

(ल) बोनस को एक 'विलम्बित मजदूरी' तब तक मानना चाहिये जब तक कि 'यथार्थ मजदूरी' और 'जीवनी मजदूरी' में अन्तर रहे और दूसरे आधार पर बोनस भुगतान विधेयक को समुचित रूप से संशोधन होना चाहिये।

(व) वर्गीकरण के सम्बन्ध में विवादों के ठीक और वैज्ञानिक निर्धारण के

लिये एक विशिष्ट ट्रिब्युनल का निर्माण जिसमें अनुभव और तकनीकी योग्यता हो।

## I. औद्योगिक विवाद अधिनियम

(१) विधेयक की धारा १० (१) के अनुसार सरकार के पास कुछ मामलों को छोड़ कर विवादों का ट्रिब्युनल को सौंपने का ऐच्छिक अधिकार है। इन ऐक्छिक शक्तियों को हटा देना चाहिये और पक्षों को इस बात की स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि सीधा फैसला न होने पाने पर वे अभिनिर्णय के लिये स्वयं ही ट्रिब्युनल के पास विवाद को ले जा सकें।

(२) संराधन अधिकारियों के अधिकारों को इस प्रकार से बढ़ाना चाहिये कि विवाद की तहकीकात के समय ही किसी भी व्यक्ति की उपस्थिति मजबूर कर सके; तथ्यों और परिस्थितियों से जानकार किसी भी व्यक्ति की मौखिक साक्ष्य ले सके। मालिकों की अफसरों के प्रति अश्रद्धा दिखलाने और महत्व न देने की वर्तमान प्रवृत्ति भी कम हो जायेगी और अफसर भी समझौता कराने में महत्वपूर्ण कार्य करने लग जायेंगे।

(३) श्रमिकों और कम्पनी के बीच प्राइवेट समझौतों से, अनेक कड़ुवी औद्योगिक लड़ाइयां और विवाद हुए है। धारा २ (पी०) को इस प्रकार संशोधित करना चाहिये कि श्रमिकों के सीधे समझौते, जिनमें किसी पंजीकृत ट्रेड यूनियन की सहायता न ली गई हो (संराधन प्रक्रियाओं को छोड़ कर) धारा से निकाल दिया जाय। इसका अच्छा प्रभाव यह होगा कि वेइमान सेवायोजक निजी समझौतों की वर्तमान व्यवस्था का अपने मतलब के लिये गलत प्रयोग नहीं कर सकेंगे।

(४) एक लेवर कोर्ट या औद्योगिक ट्रिब्युनल के सामने किसी अभिनिर्णय प्रक्रम के दौरान या उनकी परिसमाप्ति के दो माह के बाद हड़ताल होना बहुत ही तर्करहित और कड़ी चीज है। किसी भी औद्योगिक मामले में हड़ताल करने के मूल्यवान अधिकार से श्रमिक वंचित होता है जबकि एक भी व्यक्तिगत मामला किसी वर्ष में पुनर्नियुक्ति या बोनस का चल रहा हो। धारा २३ (ब) इस प्रकार से संशोधित किया जाना चाहिये,

जिससे केवल वे ही हड़तालें गैर कानूनी घोषित की जा सकें, जो उन मामलों से संबन्धित हों, तथा अभिनिर्णय में संदर्भित की जा सकें।

(५) बैठकी के संबन्ध में वर्तमान व्यवस्था धारा २५ सी० से २५ ई० जो ५० से कम औसत कर्मचारियों की संख्या के प्रतिष्ठानों से संबन्धित हैं लागू नहीं है। विभिन्न प्रतिष्ठानों के बीच कर्मचारियों की संख्या के अनुसार भेदभाव करने का कोई औचित्य नहीं है क्योंकि बैठकी की क्षति-पूर्ति प्रत्येक मालिक को करना पड़ता है चाहे वह कितने ही कर्मचारियों की सेवायोजना करता हो।

(६) धारा २५ **H** सेवानिवृत कर्मचारियों के पुनः सेवायोजन की व्यवस्था करती है परन्तु वह उन परिस्थितियों का वर्णन नहीं करती जिनपर उनकी पुनर्सेवायोजना की जायेगी। इस चुप्पी का कुछ सेवायोजक लाभ उठा कर घटी हुई दरों पर या मजदूरी क्रमों की निम्नतम श्रेणी पर नौकरियाँ देने लगे हैं। किसी संदेह को दूर करने के लिये या किसी गलत श्रम व्यवहार को रोकने के लिये विशिष्ट पद पर विशिष्ट दर पर उन्हीं सेवायोजन परिस्थितियों पर ही पुनर्नियुक्ति की जाने की विधेयक में समुचित व्यवस्था होनी चाहिये।

(७) जब सेवायोजक के पास एक सुरक्षित कर्मचारी की लिस्ट भेजी जाय और वह उन कर्मचारियों को मान्यता न दे तो ऐसे कर्मचारियों को मान्यता प्राप्त माना जाय। इस प्रकार से स्पष्ट व्यवस्था जरूरी है, जिससे किसी विशिष्ट श्रमिक की मान्यता का विवादहल किया जा सके।

(८) धारा ३४ (**I**) में व्यवस्था है कि कोई न्यायालय इस विधेयक के अंतर्गत दण्डनीय किसी भी अपराध को या उसकी सहायता के कार्यों को स्वयं विचार हेतु नहीं ले सकता है जब तक कि कोई शिकायत किसी उचित सरकार की सत्ता के अन्तर्गत न की जाये। परन्तु, ऐसा देखा गया है कि सरकार कदाचित ही किसी व्यक्ति पर ऐसी गल्तियों के लिए मुकदमा चलाती है और इस कारण धूर्त मालिक एवार्ड समझौतों और विधेयक की अन्य व्यवस्थाओं का उलंघन बिना किसी भय के अंधाधुन्ध करते हैं। कथित व्यवस्था के प्रतिपालन को प्रभावी बनाने

के निमित्त यह आवश्यक है कि सरकार द्वारा विशिष्ट 'श्रम कोट साहब' नियुक्त किए जायें, जो सरकार की ओर से ऐसे अपराधियों के विरुद्ध मुकदमें चलायें जो विभिन्न श्रम कानूनों का उल्लंघन करते हैं। ये 'कोट साहिबान' श्रम कानून के अंतर्गत किसी अधिकार के प्रतिपालन के निमित्त संराधन अधिकारियों की संस्तुति पर व्यक्तिगत श्रमिकों की ओर से कार्य करें।

## J. कर्मचारी बीमा विधेयक

१. (अ) वैधव्य भत्ता और (ब) अन्तिम संस्कार भत्ता की अतिरिक्त सुविधायें सीमित व्यक्तियों को दी जानी चाहिये।

(अ) एक सामान्य भारतीय कुटुम्ब में सारे कुटुम्ब के लिये पुरुष सदस्य ही जीविका कमाता है और जब दुर्दैव से कमाऊ सदस्य मर जाता है तो सारा परिवार भाग्य के आसरे हो जाता है। कुटुम्ब की इस दयनीय दशा का विवरण सर्व विदित है। कम से कम एक वर्ष के लिये वैधव्य भत्ता दुखी परिवार को तात्कालिक आर्थिक कठिनाई से उबारने के लिये सहायक होगा। ऐसा भत्ता इंगलैण्ड में दिया भी जा रहा है, जो उदाहरण अपने यहाँ भी अपनाने योग्य है।

(ब) वास्तविक समाज सुरक्षा योजना के द्वारा श्रमिकों के जीवन के विभिन्न स्तरों में स्थिरता, सुरक्षा और निश्चितता उत्पन्न होनी चाहिये। श्रमिकों को उचित अन्तिम संस्कार की सुरक्षा होनी चाहिए और मृत्यु के बाद धार्मिक कृत्यों की पूर्ति क्योंकि यह जीवन की अन्तिम परिस्थिति है। मानवता की अनुभूति यह मांग करती है कि श्रमिकों को यह विश्वास होना चाहिये कि उनके परिवार के सदस्यों को धार्मिक कृत्यों की पूर्ति करने के लिये रुपया उधार नही लेना पड़ेगा। इस दिशा में जापान ने शुरुआत कर दी है और हम निवेदन करते हैं कि जापान की ही भाँति उचित अंतिम संस्कार भत्ता मृत श्रमिक के परिवार को दिया जाना चाहिये।

### २. सुविधाओं में वृद्धि

### (अ) बीमारी का भत्ता

(१) प्रतीक्षा दिवसों की समाप्ति : वर्तमान व्यवस्था के अनुसार बीमारी के

प्रथम दो दिवसों को प्रतीक्षा दिवस मानकर उनके लिये भत्ता नहीं दिया जाता है । यह समझ में नहीं आता जब कि वर्ष के कुल दिन जिनके लिये भुगतान किया जाता है निश्चित हैं तो इन दो दिनों के लिये कटौती क्यों की जाती है। बीमारी की सुविधा का संबन्ध बीमारी से होना चाहिये और 'बीमारी का काल' असंगत है। इस दिशा में उचित परिवर्तन किया जाना चाहिये।

## (ब) पात्रता की परिस्थिति :

वर्तमान व्यवस्था के अनुसार उसके दिये गये भुगतानों की संख्या २/३ सप्ताह संख्या काल से कम नहीं होनी चाहिये। उस परिसंवादी काल में ऐसा विश्वास किया जाता है कि वह नौकरी के लिये प्राप्य था, १२ भुगतान अधिकतम हो सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि श्रमिकों को भुगतान उनके योगदान के अनुसार किया जाता है। यह उस सामान्य सिद्धान्त पर आधारित है कि, जो श्रमिक कम योगदान करता है उसे कम भुगतान किया जाना चाहिये। श्रमिकों को कुल हानि से बचाने के लिये और इस भयंकरता को दूर करने के लिये वे ही सिद्धान्त उनपर भी लागू किये जाने चाहिये जो परिसंवादी काल में १/३ सप्ताह संख्या से कम के लिये भुगतान नहीं करते हैं, अधिकतम योगदान और कम से कम भुगतान साथ ही ६ होने चाहिये।

## (स) अस्थाई और स्थाई विकलांगता, सुविधा और आश्रित जन सुविधा :

वर्तमान समय में अस्थाई विकलांगता सुविधा नौकरी की चोट के लिये कल्पित औसत मजदूरी के आधे की दर से दी जाती है। नौकरी की चोट का अर्थ है वह चोट, जो किसी भी कर्मचारी को एक फैक्टरी या संस्थान में दुर्घटना या व्यवसायिक बीमारियों के कारण उत्पन्न हो। अतः बीमारी के विपरीत नौकरी की चोट नौकरी के स्थान और प्रकृति से सीधी सम्बन्धित है। यह चोट इस कारण उत्पन्न होती है, क्योंकि श्रमिक जो कि नौकरी पर अपने और अपने परिवार की रोटी के लिये निर्भर रहता है उसे जोखिम उठाने पड़ते हैं। क्योंकि ऐसी विपदा के आने का मुख्य कारण नौकरी है। हमारा निवेदन है कि घायल व्यक्ति को पूर्ण कल्पित औसत मजदूरी के बराबर भुग-

तान दिया जाना चाहिये। समान सिद्धान्तों के आधार पर स्थायी विकलांग सुविधा और आश्रित सुविधा पूर्ण औसत मजदूरी के बराबर ही घायल व्यक्ति को दी जानी चाहिये।

### ३. सरकार द्वारा योगदान :

वर्तमान व्यवस्था के अनुसार केवल नौकर कर्मचारी ही इस योजना के प्रति योगदान कर रहे हैं। वास्तव में, सामाजिक सुरक्षा की योजना श्रमिकों के कल्याण के लिये सेवायोजकों का दायित्व के अतिरिक्त सामुदायिक जिम्मेदारी के सिद्धान्त को मान्यता देने की पूर्व कल्पना करती है। इस सिद्धान्त की मान्यता के रूप में हमारा यह दृढ़ मत है कि राज्य को श्रमिकों के कल्याण के लिये योगदान करना चाहिये। यह वास्तव में दुख कारक है कि हमारी सरकारें एक नया पैसा भी इस योजना में नहीं दे रही हैं जबकि इंग्लैण्ड में सरकार स्वास्थ्य योजना में सहयोग करती है।

### ४. धनकोषों का विनियोग :

केन्द्रीय नियमों की धारा २७ यह निर्धारित करती है कि वह धनकोष जो शीघ्र ही खर्चे के लिये आवश्यक नहीं है, उसे सरकारी प्रतिभूतियों में अथवा रिजर्व बैंक में– स्थाई खाते में जमा करना चाहिये। धनकोष अन्य प्रकार से बिना केन्द्रीय सरकार की इजाजत लिये विनियोजित नहीं किया जा सकता है। यह ध्यान में रखना चाहिये कि कार्पोरेशन के पास करोड़ों रुपयों की विशाल राशि इकट्ठा है। हमारा निवेदन है कि कथित कोषों को निवास सम्बन्धी कठिन समस्या के हल करने के लिये आवास सम्बन्धी योजनाओं में लगाया जाय। बम्बई में औद्योगिक श्रमिकों का जीवन परिस्थितियों के एक सामान्य सर्वेक्षण से यह ज्ञात होता है कि श्रमिकों के खराब स्वास्थ्य का एक प्रमुख कारण– बहुत ही असंतोषजनक आवास सम्बन्धी परिस्थितियां भी हैं। कार्पोरेशन का यह एक महत्वपूर्ण कर्तव्य है कि ऐसी अस्वास्थ्यकारी वायुमंडल से श्रमिकों की रक्षा करे और रोगों व बीमारियों के कारणों की रोक थाम करें। वर्तमान व्यवस्था के अनुसार कारपोरेशन केवल इलाज सम्बन्धी कार्य देखता है। "रोकथाम इलाज से उत्तम है" सिद्धान्त के अनुसार कार्पोरेशन को अच्छे और स्वास्थ्यप्रद मकानों के लिये प्रयास करना चाहिये। उत्तम

मकान का अर्थ उत्तम स्वास्थ्य है, जिसके प्रतिफल में बीमारी सुविधा कम देनी पड़ेगी। अतः समुचित संशोधन के द्वारा कारपोरेशन पर यह कार्य जिम्मेवारी के रूप में दिया जाना चाहिए कि वह अपने धनकोषों का एक उचित प्रतिशत आवास योजनाओं में विनियोजित करे।

## K. स्थायी आदेश

(१) विभिन्न राज्य की सरकारों और कार्पोरेशनों ने 'कुव्यवहार' की लिस्ट को बढ़ा दिया है, जोकि औद्योगिक नौकरी (स्थाई आदेश) केन्द्रीय नियमावली, १९४६ के अंतर्गत बनाये गए मण्डल स्थायी आदेशों में स्पष्ट किये गये हैं। हम निवेदन करते हैं कि कार्यों और कार्यत्रुटि जो 'कुव्यवहार' माने जायें, सारे देश भर में एक होने चाहिये और इसीलिये उचित परिवर्तन विभिन्न प्रदेशों के और कार्पोरेशनों के स्थायी आदेशों में करना चाहिए, जिससे वे केन्द्रीय मण्डल स्थायी आदेशों के अनुरूप हो जायें।

(२) माडल स्थायी आदेशों से 'सामान्य विमुक्ति' की व्यवस्था निकाल देनी चाहिये। हम उसको कायम रखने का कोई औचित्य नहीं देखते हैं। स्थायी कर्मचारी के सेवाओं की निवृत्ति सेवायोजक द्वारा कभी नहीं करनी चाहिये केवल 'कुव्यवहार' को छोड़कर। यह निरर्थक व्यवस्था सेवायोजक के हाथ में एक ऐसा यंत्र प्रदान करती है कि वह अनपेक्षित कर्मचारियों को बिना जाँच किये ही या बिना 'विमुक्ति क्षत्तिपूर्ति' दिये ही निकाल सकता है।

## (३) सजा के रूप में विमुक्ति :

कोई भी सेवामुक्ति या विमुक्ति का आदेश नहीं दिया जाना चाहिये जब तक कि वर्क्स कमेटी या संयुक्त व्यवस्था काउंसिल की इजाजत सेवायोजक के द्वारा न प्राप्त कर लां जाये। ऐसी व्यवस्था माडल स्थायी आदेश में प्रविष्ट कर ली जानी चाहिये, जिससे श्रमिक की सेवा की सुरक्षा हो सके।

## L. फैक्टरी एक्ट

(१) एक्ट की धारा ४९ (I) के अंतर्गत ऐसा सेवायोजक जिसकी फैक्टरी में

सामान्यत: ५०० या अधिक कर्मचारी कार्य करते हों उसे वेलफेयर अफसर नियुक्त करने पड़ते हैं। इन वेलफेयर अफसरों का कार्य श्रमिकों के कल्याण का ध्यान रखना है, परन्तु व्यवहार में ऐसा देखा जाता है कि उन्हें सेवायोजकों को खुश रखने के लिये अपनी आत्मा के विरुद्ध कार्य करना पड़ता है क्योंकि वे उन्हीं से वेतन पाते हैं। हमारा निवेदन है कि ऐसे वेलफेयर अफसरों का वेतन सीधे सरकार से मिलना चाहिये, जो उस भुगतान को संबन्धित सेवायोजक से वसूल कर ले। इससे वेलफेयर अफसरों को स्वतन्त्रता के साथ अपने फैसले के अनुसार और प्रभावी रूप से श्रमिकों की कल्याण की देखभाल करने का सही कार्य निर्भयता के साथ मिल जायेगा।

(२) वार्षिक अवकाश : वर्तमान व्यवस्था के अनुसार वार्षिक अवकाश पिछले कलेन्डर वर्ष में प्रत्येक २० दिन के कार्य के लिये एक दिन के बराबर पैसा दिया जाता है। वह समय अब आगया है जबकि यह दर बढ़ाई जानी चाहिये, क्योंकि यहाँ पर यह दर बहुत कम है। विभिन्न राज्यों के दूकानों के अधिनियमों में २१ दिनों की वार्षिक अवकाश की व्यवस्था है। कोई कारण नहीं कि फैक्टरी एक्ट और दूकान अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिकों में भेदभाव किया जाये। फैक्टरी एक्ट में संशोधन 'प्रत्येक १५ दिनों' के स्थान पर 'प्रत्येक २० दिनों' कर देना चाहिये। अधिकतम संचय ६० दिन का करने की इजाजत होनी चाहिये।

(३) अभी तक बीमारी अवकाश, आकस्मिक अवकाश और भुगतानी छुट्टियों के लिये कोई वैधानिक व्यवस्था नहीं की गई है। इस कमी के कारण श्रमिकों का शोषण होता है और उन्हें ऐसे अवकाश नहीं दिये जाते है, जब तक कि कोई यूनियन न बन जाये तथा मांग न की जाये या किसी समझौते या एवार्ड के द्वारा वह न दी जाये। ऐसा अवकाश अब औद्योगिक नियमावली का एक सामान्य लक्षण हो गया है, इसलिये उसकी वैधानिक व्यवस्था की जानी चाहिए। ७ दिन की बीमारी अवकाश पूरे वेतन पर यदि फैक्टरी बीमा योजना के परिसर में नही है और यदि आधे वेतन पर है, ७ दिनों का आकस्मिक अवकाश पूरे वेतन पर और ५ दिनों की भुगतानी छुट्टियाँ पूरे वेतन पर दी जाने की व्यवस्था एक्ट में संशोधन करके की जानी चाहिये। संचय पर कोई रुकावट नही लगाई जानी चाहिये।

## ४. न्यूनतम मजदूरी ऐक्ट

धारा ४ (1) में व्यवस्था है कि आधार भूत मजदूरी दर पर न्यूनतम मजदूरी और एक विशिष्ट भत्ता श्रमिकों पर लागू होने वाले जीवन निर्वाह निर्देशांक के विचलन से व्यवहार संकुल समायोजित दर से दिया जाना चाहिये, जिसे हमने जीवन निर्वाह भत्ता कहा है इसके विरुद्ध सामान्य प्रवृत्ति यह रही है कि न्यूनतम मजदूरी में सर्व-समावेशिक दर अपनाई जाये। परन्तु महाराष्ट्र सरकार ने एक महत्वपूर्ण विचलन इस सामान्य व्यवहार से किया है। जहाँ तक प्रेस छपाई उद्योग का संबन्ध है और न्यूनतम मजदूरी को बम्बई के श्रमिकों के सामयिक जीवन निर्वाह निर्देशांक ५०० के अनुसार निर्धारित की है। प्रत्येक १० अंशों की वृद्धि के लिये बम्बई में २रु० पूना और नागपुर में १रु०५० पैसा, सांगली, मिराज, तथा शोलापुर इत्यादि में १रु० २५ पैसा और अन्य स्थानों में १रु० के अनुसार जीवन निर्वाह भत्ता की व्यवस्था की गई है। हमारा निवेदन है कि यह स्वचालित वृद्धि वैधानिक न्यूनतम मजबूरी में की जानी चाहिये यही रास्ता यथार्थ मजदूरी सुरक्षा करने का है हमारा निवेदन है कि एक्ट में वैधानिक व्यवस्था की जानी चाहिये जो सरकारों को आदेश दे कि न्यूनतम मजदूरी समुचित जीवन निर्वाह निर्देशांक के अनुसार निर्धारित करें और सभी श्रमिकों के सम्पूर्ण वेतन पेकेट के विचलन के अनुसार व्यवस्था करें, जिससे कुशल श्रमिकों को भी शामिल करते हुए सभी श्रमिकों को शत प्रतिशत मूल्य वृद्धि 'निरसन' प्राप्त हो सके।

———

प्रकाशक–
महामंत्री
भारतीय मजदूर संघ, उत्तर प्रदेश
२, नवीन मार्केट
कानपुर

मूल्य २० पैसे

मुद्रक–
टिप-टाप प्रिन्टर्स
२४/९१, बिरहाना रोड,
कानपुर–१
फोन : ६९१११

भाग २ अध्याय ६

# श्रमनीति

# सुरक्षा एवं स्वास्थ्य

—भारतीय मजदूर संघ

'Labour Policy' पुस्तक के अध्याय क्र० ९ का यह हिन्दी रूपान्तर है। डा० महेन्द्र प्रताप सिंह (प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय) इस अध्याय के अनुवादक हैं। उनका मैं हृदय से आभारी हूं।

—प्रकाशक

# "सुरक्षा एव स्वास्थ्य"

कुछ ऐसे उद्योग हैं– जैसे फैक्टरियाँ, खनिज उद्योग, गोदी कर्मचारी, पैट्रो कैमिकल्स, उर्वरक निर्माण और यंत्र निर्माण इत्यादि, जिनके संचालन में सुरक्षा के पगों की व्यवस्था एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। हमें ऐसी संस्थाओं के सम्बन्धों में सूचनायें उपलब्ध हैं, जहाँ दुर्घटनाओं की वर्तमान दर अधिक है। यद्यपि सभी खतरे वाले उद्योगों के लिए कुछ निश्चित समान लक्षण होते हैं। यह अधिक व्यवहारिक होगा कि किसी ऐसे उद्योग को उदाहरण स्वरूप लेकर इस संदर्भ में सुरक्षा और स्वास्थ्य की समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जाय। उदाहरण स्वरूप हम कोयले की खानों में सुरक्षा समस्या पर विचार करना चाहेंगे। खानों के मुख्य निरीक्षक द्वारा, खानों की सुरक्षा समस्या पर तैयार की गई एक टिप्पणी जिसे धनबाद के खानों की सुरक्षा की 'राष्ट्रीय कौंसिल' ने प्रसारित किया है, उसमें अन्य सूचनाओं के अतिरिक्त एक चित्रलेख (Chart) दिया हुआ है, जिसमें कुछ विदेशों की कोयले की खानों की मृत्यु दरें और भारतवर्ष की कोयला और इतर खानों की दुर्घटना दरें दी गयीं हैं। इस टिप्पणी में कहा गया है कि भारत की खानों से सम्बन्धित सुरक्षा वृत्त विश्व के किसी भी देश के खान उद्योग के सर्वोत्तम वृत्त से तुलना करता है और देश के अन्तर्गत यद्यपि १९५४–५५ और ५७ में भयंकर दुर्घटनायें हुयीं, तथापि पिछले १० वर्षों में सामान्यतः कम दुर्घटनाओं की ओर जाने की प्रवृत्ति रही है। परन्तु टिप्पणी इस सम्बन्ध में सन्तोष करने के स्थान पर सावधान करती है। (१ भारत, इंगलैंड और अमेरिका, जर्मनी, बेल्जियम और फ्रान्स के कोयलों की खानों के निरीक्षक मण्डलों की शक्ति के तुलनात्मक चित्रलेख और (२) इस अतिरिक्त तथ्य कि उन सब देशों में ट्रेड यूनियनों के द्वारा काफी बड़ी सख्या में पूरा समय देकर काम करने वाले प्रशिक्षित निरीक्षकों की नियुक्ति की जाती है। और प्रत्येक बड़े खान में एक या अधिक पूरा समय देकर काम करने वाले सुरक्षा अधिकारी होते हैं, के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त टिप्पणी में भारतीय खानों की अतिनिरीक्षण सम्बन्धी (Over Inspection) शिकायत का परित्याग कर दिया गया है। इसके विरुद्ध उस टिप्पणी में इस बात का जोर

दिया गया है कि इस विकासमान उद्योग की बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार अधिक विद्युत, यांत्रिक, सांख्यकीय एवं चिकित्सा सम्बन्धी निरीक्षकों एवं काफी मात्रा में विशेषज्ञ निरीक्षकों की नियुक्ति की जाय। निरीक्षक मण्डल के चिकित्सा विद्युत निरीक्षण, सांख्यकीय अनुसन्धान और विधि सम्बन्धी सहायता के विभागों को दृढ़ करने का कार्य प्रारम्भ हो चुका है।

हमारे निरीक्षक मण्डल की महान उपयोगिता को स्वीकार करते हुये हम केवल यही कह सकते हैं कि ऐसा निरीक्षक मण्डल पूण रूप से समुचित नहीं हो सकता है। इस बात की आशा करना बहुत अधिक ही माना जायगा कि निरीक्षक मण्डल खानों में सभी कार्यकारी क्षेत्रों पर बराबर नियन्त्रण रख सके। अनेक पहलू जिन पर बराबर और सतर्कता पूर्वक निरीक्षण किया जाना चाहिए। जैसे उनकी विशाल संख्या और खानों की सतत् परिवर्तनकरी परिस्थितियां ऐसे ये दो तत्व हैं जो निरीक्षक मण्डल के कार्यों की सीमाओं के लिए उत्तरदायी हैं। इस तथ्य को इंगलैण्ड की खानों पर नियुक्त द्वितीय रायल कमीशन (१९०९) एवं कोयले की खानों में सुरक्षा पर नियुक्त राँयल कमीशन (१९३६-३८) में दिये गये विचार भी पुष्ट करते हैं।

फलतः यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि कोयले की खानों की सुरक्षा समस्याओं के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जाय, न कि उसे केवल निरीक्षक मण्डल को ही सौंप दिया जाय। समस्या के आकार की विशालता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि शताब्दी के प्रारम्भ से १९६२ तक खानों में मरने वालों की संख्या १६४७४ थी, जिसमें से १२१५ अर्थात् ७॥% उन दुर्घटनाओं में मरे जो १० या उससे अधिक से सम्बन्धित थीं। सारे विश्व में कोयले की खानों में दुर्घटना दरें फैक्टरियों की अपेक्षा तीन से आठ गुनी अधिक हैं।

सभी खानों में निम्नलिखित प्रमुख समस्यायें पाई जाती हैं :—

(१ भूमि के नीचे कार्य करने वाले कर्मचारियों के लिये प्रत्येक स्थान पर गरमी और नमी को कम रखते हुये ताजी हवा की व्यवस्था।

(२) भूमि के नीचे समुचित विद्युत प्रकाश की व्यवस्था।

(३) पानी के निष्कासन की व्यवस्था।

(४) भूमि के नीचे पाये जाने वाले कोयले और अन्य धातुओं के ऊपरी सतह तक पहुंचाने का प्रबन्ध ।

(५) छतों की रोक और नियन्त्रण ।

कुछ विशेष प्रकार के कारण हैं, जो अधिक मृत्युकारक दुर्घटनायें उत्पन्न करते हैं :— (१) विस्फोट (२) जलप्लावन (३) चट्टान फटना (४) गहरे शाफ्टों (चक्कों) में फँस जाना तथा (५) आग लग जाना ।

## कोयले की खानों में व्यवसायिक रोग

निम्नलिखित कारणों से कोयले की खानों में खतरा उत्पन्न होता है :—

(१) ड्रिलिंग (Drilling), कटिंग, बालर सटिंग, लोडिंग तथा परिवहन की प्रक्रिया में बहुत ही महीन बालू के कण व मिश्रित धूल के उत्पन्न होने से अनेक प्रकार की न्यूमोनिया हो जाती हैं ।

(२) अपर्याप्त प्रकाश के कारण खान के कर्मचारियों को अनेक प्रकार के नेत्र रोग हो जाते हैं ।

(३) पर्याप्त शुद्ध वायु न मिलने के कारण कर्मचारियों को गर्मी, शक्तिक्षय एवं थकान के रोग हो जाते हैं । और

(४) अस्वस्थ वातावरण के कारण अनेक प्रकार के ऐसे रोग हो जाते हैं, जो खानों के लिए विशिष्ट हैं और कुछ रोग जो कि सामान्यतः होते रहते हैं ।

किसी भी काम में कार्य क्षेत्र प्रति घण्टा परिवर्तित होता रहता है और नई भूमि नई समस्यायें उत्पन्न करती हैं । खान का सतत् बदलने वाला चित्र गम्भीर अध्ययन का विषय नहीं बन पाता । फैक्टरियों की अपेक्षा खानों के उद्योग में यही विशेष अन्तर है । प्रकृति के विरुद्ध यह एक सतत संघर्ष है । उदाहरण के लिये जैसे छतों और किनारों को गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के विरुद्ध दृढ़ता से टिकाए रखना पड़ता है । खानों का कार्य और अधिक कठिन और विषम होता जा रहा है क्योंकि :—

(१) जहां धातुयें मिलती हैं उन स्थानों की गहराई बढ़ती जा रही है ।

(२) यंत्रों का प्रयोग अधिक हो रहा है तथा उत्पादन की गति तीव्र हो रही है। व्यवस्थापक उत्पादन की लागत में बड़ी बचत करने के उत्साह में सुरक्षा के पहलू को समुचित महत्व नहीं देते हैं। कोयले की खानों में सुरक्षा पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट (१९५६) यह स्पष्ट करती है कि किस प्रकार से व्यवस्थापकों एवं श्रमिकों की ठीक प्रवृत्ति के अभाव में नियमन अप्रभावी होता जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट में कहा गया है कि यदि इस प्रश्न की जांच की जाय कि निरीक्षक मण्डल के घोर प्रयत्नों के उपरान्त भी क्यों दुर्घटनायें होती हैं ? तो यह देखने में आयेगा कि जो कोयले की खान के उद्योग में कार्य करते हैं उनकी खराबियां और असफलतायें, सत्ता द्वारा हस्तक्षेप के फलस्वरूप न हल होने वाली अनेक समस्यायें हैं। इस दृष्टिकोण से श्री एस० के० दास द्वारा 'धोरी कोयले की खान दुर्घटना' की जांच की रिपोर्ट १९६५ का विशेष अध्ययन उपयोगी होगा। इसमें धोरी कोयला खान की दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में दो परस्पर विरोधी सिद्धान्त लिखे गए हैं, जिनमें से एक खानों के विभाग और दूसरा व्यवस्थापकों द्वारा प्रतिपादित किया गया है। श्री आर० पी० सिन्हा द्वारा प्रतिपादित व्यवस्थापकों का सिद्धान्त पूर्ण रूप से टूट चुका है और मैनेजर के वक्तव्य पर अविश्वास किया गया है। इस सम्बन्ध में श्री दास के अनुभव और सुझाव उपयोगी हैं :—

(१) ऐसी खानों में भी जहां गैस नहीं होती है, भूमि के नीचे कार्य करने वाले सभी कर्मचारियों को विद्युत कैप वाले लैम्प दिये जाने चाहिये।

(२) जहाँ "सक्रिय रूप में गैस युक्त" और "प्रावधिक रूप से गैस युक्त" चट्टानों के सम्बन्ध में कोई कठिनाई नहीं उत्पन्न होती वहां "सक्षम गैस युक्त" चट्टाने कठिनाई उत्पन्न करती हैं। यह स्थिति स्पष्ट की जानी चाहिए कि १९६२ के सरक्यूलर नम्बर ५२ में संकल्पित सर्वेक्षण कौन नियन्त्रित करेगी ?

(३) भारत के भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग के परामर्श द्वारा यह विचार किया जाना चाहिए कि नियमन में निर्धारित ३० मीटर की सीमा सुरक्षा सीमा है अथवा नहीं ? कोयले की खानों के सन्नियम १९५७ के नियम १२४ में व्यवस्था की गई है कि किसी खान में जहां सन्नियमों के अनुसार सुरक्षा लैम्पों का प्रयोग आवश्यक नहीं है, यदि कार्य करते समय किसी पुलिया, गड़बड़ी या भूगर्भ सम्बन्धी विचलन के ३० मीटर के भीतर कर्मचारी पहुंच जाय तो निरीक्षण के

लिये नियुक्त योग्य व्यक्ति को निरीक्षण करते समय प्रमाणित फ्लेम सेफ्टी लैम्प द्वारा जानने वाली गैस की उपस्थित की जांच अवश्य करनी चाहिये ।

(४) भविष्य में सभी माइनिंग सरदारों, शैट फायरिंग सरदारों और ओवर मैनों को इस बात का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए कि वे खान के वातावरण में $CH_4$ की उपस्थिति की जांच कर सकें । सभी माइनिंग सरदारों, शैट फायरिंग सरदारों तथा ओवर मैनों के प्रमाण पत्रों पर गैस की जांच के लिये उनकी योग्यता सम्बन्धी टिप्पणी निश्चित अवधि के बाद पुनः नवीकृत की जानी चाहिए ।

(५) किसी भी गैस युक्त या गैस विहीन खान में जहाँ फ्लेम या विद्युत लैम्पों का प्रयोग किया जा रहा हो, उनकी अच्छी और सुरक्षा युक्त स्थिति का ठीक रख-रखाव करना खान के व्यवस्थापकों की जिम्मेदारी और उनका कर्तव्य होना चाहिये ।

(६) खान उद्योग में कोयले की धूल के विस्फोट भयंकर खतरा उत्पन्न करते हैं और प्रायः बिना किसी बदल के ऐसे विस्फोट फायर डैम्प विस्फोट होते हैं और इनके लिये निम्नलिखित बातें आवश्यक होती हैं—

(अ) विस्फोटजनक अग्नि आद्रता एवं वायु का मिश्रण ।

(ब) अग्नि उत्पन्न करने का उद्‌गम ।

(स) असुरक्षित मार्ग की लम्बाई जो कि विस्फोट के प्रसार को रोके । यदि आवश्यक हो तो कोयले की खानों के सन्नियम १९५७ के नियम १२३ में दी गयी आवश्यक कोयले की धूल के प्रति सावधानियों का पालन करने के विरुद्ध निरीक्षक कर्मचारियों की शक्ति को बढ़ा देना चाहिए जो कठिन प्रयत्न द्वारा उसे रोक सकें ।

(७) एक गैसयुक्त और एक गैस रहित खान के कर्मचारियों, अफसरों और व्यवस्थापकों के मस्तिष्कों में अनेक मानसिक अन्तरों की उपस्थिति के विचार से कुछ सामान्य सावधानियों को सभी प्रकार की खानों में चाहे वे गैस-युक्त हों या गैस रहित विशेष रूप से कार्य करते समय लागू किया जाना चाहिए जैसे प्रत्येक खान को प्रत्येक कार्यकारी स्थान में गैस की परीक्षा और ऐसे सब

स्थानों में जो कि कार्यकारी स्थान से ३०० फीट के अन्तर में ही परीक्षा करनी चाहिए। और इसके लिये अधिक सही और अधिक संवेदनशील यंत्र का सेफ्टीलैंप या वायु के (सैम्पुल) न्यादर्शों के विश्लेषण के स्थान पर प्रयोग करना चाहिए। यह कार्य प्रति मास या उससे अधिक बार सहायक मैनेजर या मैनेजर द्वारा किया जाना चाहिए जिसके पास प्रथम श्रेणी का या द्वितीय श्रेणी का प्रमाण पत्र हो। यह कार्य मैनेजर और सहायक मैनेजरों के बीच बटा होना चाहिये।

(८) गैस युक्त खानों में वर्तमान विधान के अनुसार पूरी खान को वायु संचारक (बैंरीलेटर) यंत्र जो खान के प्रवेश द्वार पर स्थापित किया जाय, वायु संचारित किया जाना चाहिए। गैस रहित खानों में भी उत्तम वायु संचारण की सिद्धि के लिये पग उठाये जाने चाहिये। प्राकृतिक रूप से वायु संचारित खान में यह व्यवहारिक रूप से असम्भव होता है कि खानों के प्रावधिक कमेटी द्वारा सुझाये गये सुरक्षा प्रमाण को प्राप्त कर सके। अतः नियमन में दिये गये समुचित वायु संचारण शब्द को पूर्ण रूप से स्पष्ट किया जाना चाहिये और उसमें कमेटी के सुझाव के अनुसार वायु के परिमाण इत्यादि विचारों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। यद्यपि गैस रहित खानों में जो बहुत छोटी हों या जिनके विकास की प्रारम्भिक स्थिति हो, उन्हें खानों के निरीक्षक की लिखित अनुज्ञा द्वारा प्राकृतिक वायु संचारण के प्रयोग की विशेष छूट दी जानी चाहिए। और निरीक्षक मण्डल द्वारा प्रति वर्ष निरीक्षण के पश्चात इस छूट की नवीकरण किया जाना चाहिये। दूसरी गैस रहित खानों में जहाँ विकास सम्बन्धी कार्य हो रहा हो, वायु का बहाव ०.५ एम प्रति सेकेन्ड से कम न होना चाहिये। यदि प्राकृतिक वायु संचारण उपरोक्त आवश्यकता को पूर्ण न करता हो तो मुख्य मार्ग पर या खान के प्रवेश द्वार पर समुचित क्षमता वाले अतिरिक्त पंखों का प्रयोग किया जाना चाहिए। सामान्यतया जैसे ही मार्ग डेढ़ खम्ब तक बढ़ जाय या पिछले वायु संचारण यन्त्र से १५० फीट आगे बढ़ जाय तो वायु संचारण व्यवस्था करना अनिवार्य होना चाहिये।

(९) सुरक्षा सप्ताओं का प्रयोग करना चाहिये, जिस उद्देश्य से वे बनाये गये थे।

(१०) इस प्रकार के प्रस्तावों के लिए कोई सुझाव नहीं दिया जाता है, जैसे—(अ) कोयले की खानों का राष्ट्रीयकरण।

(ब) सरदारों व ओवरमैनों का राष्ट्रीयकरण।

(स) निष्कासन सेवानिवृत्ति या अवरोध, मैनेजरों या सहायक मैनेजरों का जिनके लिए खानों के मुख्य निरीक्षक को लिखित सहमति हो।

(द) प्राविधिक और योग्य व्यक्तियों के समूह (Poll) का निर्माण।

(य) प्रत्येक खान से ५ मील की त्रिज्या के भीतर अपमोचन अवस्थान का निर्माण।

(११) खानों के विभाग को विचार करना चाहिए कि किसी भी बड़ी दुर्घटना के पश्चात् श्रमिक की पहिचान सम्बन्धी कठिनाई को कैसे दूर किया जाय (संदर्भ स्वरूप यह जानना रुचिकर होगा कि विभिन्न पक्षों द्वारा यह सुझाव दिया गया था कि कुछ विदेशों में चट्टानों की धूल के अवरोधों को खड़े करने के कार्य को भारत के गैसयुक्त खानों में भी बनाया जाना चाहिए, जिससे कोयले की धूल के विस्फोट से उत्पन्न खतरे को न्यूनतम किया जा सके)।

खानों के सन्नियम १९५५ के नियम २२ जो कि व्यय की प्राप्ति के सम्बन्ध में है, की दुरूहता पर भी विचार किया गया था, और एक पक्ष के द्वारा यह सुझाव रखा गया कि अनुसंधान के खर्चों में सभी प्रकार की लागतें शामिल की जानी चाहिये।

खानों में सुरक्षा सम्बन्धी प्रथम कान्फ्रैन्स (१९५८-५९) में निम्नलिखित विषयों पर अनेक मूल्यवान सुझाव प्रस्तुत किये गये थे :—

(१) व्यवसायी प्रशिक्षण एवं खान में काम करने वाले श्रमिकों के लिए सुरक्षा सम्बन्धी शिक्षा।

(२) गैस, धूल एवं शक्तिक्षरण इत्यादि से उत्पन्न होने वाले खतरों से सम्बन्धित प्राविधिक मामले, वायु संचारण के मान दंड प्रकाश एवं योजना की परिशुद्धता, छतों के नियन्त्रण, यंत्रीकरण एवं विस्फोटकारी वस्तुओं के प्रयोग से सम्बन्धित समस्यायें।

(३) सुरक्षा सम्बन्धी मामलों में उत्पादन में कार्य करने वाले अफसरों की जिम्मेदारी और व्यवस्थापकों का व्यवहार सुरक्षा को प्रोत्साहन देने में श्रमिकों का स्थान और अनुशासन की आवश्यकता।

(४) श्रमिकों की उपयुक्तता एवं वैयक्तिक सुरक्षा सम्बन्धी परिवेष ।

(५) खानों की सुरक्षा सम्बन्धी कानून के पालन की व्यवस्था और पालन करने वाली एजेन्सी का कार्य ।

(६) सुरक्षा सम्बन्धी यंत्रों और वस्तुओं की प्राप्यता ।

(७) क्षति पूर्ति एवं पुनर्वासन ।

कान्फ्रैन्स ने यह सुझाव दिया कि प्रत्येक खान में कार्य करने वाले श्रमिक का नौकरी के प्रारम्भ में और उसके पश्चात निश्चित अवधि के उपरान्त बराबर स्वास्थ्य सम्बन्धी परीक्षण किया जाना चाहिये, तदुपरान्त अनेक विषय सम्बन्धी समितियाँ, एक स्थायी सुरक्षा सुझाव समिति और खानों में सुरक्षा के लिए एक राष्ट्रीय कौंसिल बनाई गई जिनके विषद् उद्देश्य थे । वर्तमान सीमाओं के परिवेक्ष में खानों की सुरक्षा सम्बन्धी यंत्रों की कमेटी के अनुभव और सुझाव संतोषजनक हैं । देश को जहाँ तक सुरक्षा यंत्रों का सम्बन्ध है, आत्मनिर्भर हो जाना चाहिये और अपवाद स्वरूप केवल वही वस्तुयें रखी जायँ जिनका निर्माण अति विशिष्ट है अथवा जिनके लिये देश में आर्थिक उत्पादन करने के लिए अपर्याप्त माँग है ।

ठीक माप के यंत्रों के पुर्जे जो कि स्वीकृत डिजाइन और प्रमाप के हों, उनकी सरलता से प्राप्यता अत्यन्त महत्वपूर्ण है, न केवल उत्पादन वृद्धि के लिए वरन वर्तमान उत्पादन स्तरों को बनाये रखने के लिए भी आवश्यक है । यह सत्य है कि हमारी खानों में प्रयुक्त होने वाले यत्रों में अधिकतर विदेशों में निर्मित हैं । और उनमें लगने वाले कल-पुर्जे अधिकृत डिजायन के हैं इसीलिए इन पुर्जों को आवश्यकता के अनुसार आयातित करना पड़ता है और इन कल-पुर्जों का देश में निर्माण केवल तभी सम्भव है जब मूल निर्माताओं से अनुज्ञा प्राप्त कर ली जावे । परन्तु कल-पुर्जों के बनाने की समुचित क्षमता का प्रारम्भ से ही विकास किया जाना चाहिये । जहाँ तक खान उद्योग के लिए सुरक्षा यंत्रों और कल-पुर्जों के आयात का प्रश्न है । उद्योग की आवश्यकता की समय से पूर्ण रूप से पूर्ति की जानी चाहिये । आयात सम्बन्धी आवेदनों पर अनुज्ञा प्रदान करने का अधिकार खानों के सुरक्षा यंत्रों के सम्बन्ध में खानों के मुख्य निरीक्षक को ही होना चाहिए, जो अति आवश्यक और उचित मामलों में ऐसी भी वस्तुओं के आयात

की अनुज्ञा दे सके, जिनका निर्माण देश में हो सकता है। कल-पुर्जों की आवश्यकता की पूर्ति के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित आयात कर्ताओं का उपयोग किया जाना चाहिए, जिससे फुटकर कल-पुर्जे तत्काल प्राप्य रहें और खुले बाजार में खरीदे जा सकें। एक स्थायी खान सुरक्षा यंत्र सलाहकारी बोर्ड बनाया जाना चाहिये, जो सतत पुनर्आकलन करता रहे और खानों के सुरक्षा यंत्रों की प्राप्यता के सम्बन्ध में सलाह देता रहे।

सबसे महत्वपूर्ण परन्तु दुर्भाग्य से सबसे अधिक उपेक्षित पहलू खान उद्योग में श्रमिकों के व्यवसायिक प्रशिक्षण का है। खानों के श्रमिकों में अधिकतर श्रमिक गाँव से भर्ती किये गये नए व्यक्ति होते हैं जिन्हें भूमि के नीचे कार्यों में लगा दिया जाता है और इससे पहिले कोई व्यवसायिक प्रशिक्षण नहीं दिया जाता जिससे वे अपने कार्य से सम्बन्धित तत्वों या सुरक्षा से सम्बन्धित सिद्धान्तों को जान सकें। अनुभवी श्रमिकों की अपेक्षा नये प्रवेशकर्ता ही दुर्घटनाओं से ग्रस्त होते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की कोयले की खानों पर नियुक्त कमेटी ने अपनी सुरक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट १९५६ में इस बात पर जोर दिया कि दुर्घटनाओं के रोकने के संघर्ष में खान में कार्य करने वाले श्रमिकों का व्यवसायिक प्रशिक्षण अत्यन्त आधारभूत तत्वों में से एक है, और यह भी कहा है प्रशिक्षण की चाहे जो भी रीति अपनाई जावे, सुरक्षा आवश्यकताओं का पूर्ण ध्यान रखा जाना चाहिए। खानों में कार्य करने की कला का यह प्रमुख अंग है कि खानों के कार्य में होने वाले खतरों का ज्ञान और उनको रोकने की सही रीतियाँ मालूम हों। इस प्रकार का प्रशिक्षण अधिक कुशल और योग्य श्रमिक उत्पन्न करने में सहायक होगा। खानों में कार्य की गहरी प्रणाली और यंत्रों और विस्फोटकों के बढ़ते हुये प्रयोग के कारण जो अतिरिक्त खतरे पैदा हो गये हैं, उनके लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है।

प्रशिक्षण सम्बन्धी उपसमिति ने प्रशिक्षार्थियों के चुनाव सैद्धान्तिक और गैलरी प्रशिक्षण, निर्देशित कार्यकारी प्रशिक्षण प्रशिक्षक, प्रशिक्षार्थियों को प्रमाणित करना, प्रशिक्षण के काल में छात्रवृत्ति, धरातल पर कार्य करने अथवा खुले मैदान में कार्य करने के लिए प्रशिक्षण की अवधि में कमी गैसयुक्त खानों के लिये विशेष प्रशिक्षण, दक्षता वर्ग, ट्रैक तैयारी करने का प्रशिक्षण, विस्फोटकों के प्रयोग का प्रशिक्षण और गैस की परीक्षा के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में यथोचित

सुझाव प्रस्तुत किये हैं। इस परियोजना में खान के स्तर पर प्रशिक्षण की संकल्पना न केवल नए प्रवेशकर्ताओं के लिये वरन् अन्य खान के श्रमिकों के लिए भी है। इस कार्य में न्याय करने के निमित्त निरीक्षक मण्डल को बल प्रदान करने के लिए इस परियोजना में इंगलैंड के खान विभाग की व्यवस्थाओं के समान प्रशिक्षण विभाग के निर्माण का सुझाव दिया है। इस कमेटी ने विभिन्न प्रकार के वर्गों के लिये सामान्य सलाह का प्रतिवादन किया है और उसको प्रकाशित किया है जो कि माइनर और लोडर, ट्रेलर, टिन्डल, टिम्बर मैन, हैमर इत्यादि सम्मिलित हैं।

जहाँ तक खानों की सुरक्षा, शिक्षा एवं प्रचार का सम्बन्ध है, हम इस उद्‌श्य के लिए नियुक्त कमेटी के निम्नलिखित पर्यवेक्षण और सुझावों के प्रति संतोष अनुभव करते हैं :—

(१) सुरक्षा, शिक्षा और प्रचार इत्यादि की आवश्यकता (खंड २ पृष्ठ ८)

(२) खान श्रमिकों की सुरक्षा शिक्षा (खंड ३ पैरा ४–१)

(३) निरीक्षक कर्मचारियों के लिए सुरक्षा शिक्षा (खंड ३ पैरा ४–२)

(४) सुरक्षा सम्बन्धी भाषणों में उपस्थिति निश्चित करना (खंड ३ पैरा ४–३)

(५) अफसरों की सुरक्षा सम्बन्धी बैठकें (खंड ३ पैरा ४–४)

(६) सुरक्षा सम्बन्धी प्रचार (खंड ४ पैरा २–१)

(७) सुरक्षा प्रकल्प एवं सुरक्षा सप्ताह (खंड ४ पैरा २–३)

(८) वैयक्तिक श्रमिकों, निरीक्षक अफसरों एवं मैनेजरों तथा व्यवस्थापकों के लिए सुरक्षा पुरष्कार (खंड ५ पैरा ३–१)

(९) सुरक्षा पोस्टर प्रतियोगिता (खंड ५ पैरा ३–२)

(१०) सुरक्षा सम्बन्धी सुझावों के लिये पुरस्कार (खंड ५ पैरा ३–३)

(११) प्राथमिक चिकित्सा प्रतियोगितायें (खंड ५ पैरा ३–४)

(१२) बीरता के लिए पुरस्कार (खंड ५ पैरा ३–५)

(१३) सुरक्षा सम्बन्धी स्लाइड, फिल्म एवं वृत्त चित्र (खंड ९ पैरा ३)

यद्यपि उपरोक्त सुझाओं में से अनेक लागू होने की प्रक्रिया में चल रहे हैं। इस मामले पर अधिक ईमानदारी से और तेजी से कार्य किया जाना चाहिए,

जिससे जब इन पगों को अपना लिया जाय, वह केवल जीवन विहीन शोभा मात्र न रह जायँ ।

खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के थकान की समस्या का भी पूर्ण अध्ययन किया जाना चाहिये । दुर्घटनाओं में फँसे हुये श्रमिकों को दी जाने वाली क्षति पूर्ति की दरें और अधिक बढ़ा दी जानी चाहिये और पेन्शन के भुगतानों के स्थान पर एक ही बार पूरा भुगतान किया जाना चाहिए । परिवर्तित परिस्थिति के प्रकाश में व्यवसायिक रोगों के लिए क्षतिपूर्ति की दरें पुनर्निधारित किया जाना चाहिये । खानों की सुरक्षा सम्बन्धी कानून का सतत पुनर्आंकलन किया जाना चाहिए । यह इसलिए आवश्यक हो जाता है कि, क्योंकि नई खानों की कार्य रीतियाँ और नये यंत्र प्रयोग और नये-नये धातुओं के भण्डारों की खोज और नये-नये शोध सम्बन्धी निष्कर्ष प्राप्त हो रहे हैं । वर्तमान समय में खान विधेयक (१९५९) के उद्धार नियमों और कोयला खानों सन्नियम १९५७ में सशोधन की आवश्यकता है (खान विधेयक में यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि खानों का निरीक्षण श्रमिकों के प्रतिनिधि भी कर सकें) ।

खानों की विकास योजनाओं की पूर्व परीक्षा उसी प्रकार की जानी चाहिए जैसी कि जर्मनी, पैन्सिलवेनिया, नीदर लैंड, कनाडा और वेल्जियम में की जाती है । और इस उद्देश्य के निमित्त एक खान विकास बोर्ड बनाया जाना चाहिए । धातुओं की सुरक्षा और बचाव तथा असुरक्षित क्षेत्रों में बने भवनों के उद्धार के हित में खानों की सम्पत्ति पर भवन निर्माण पर नियन्त्रणकारी पग उठाये जाने चाहिए । इस उद्देश्य के निमित्त बिहार राज्य सरकार द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ समितियों के समान समितियाँ अन्य राज्य सरकारों द्वारा बनाई जानी चाहिए । कोयले की खानों में उद्धार स्थानकों की सख्या बढ़ाई जानी चाहिये । जिन स्थानों पर श्रमिकों का अधिक केन्द्रण होता है उनका अनुमान पहिले से लगाया जाना चाहिये । क्योंकि अधिक यंत्रीकरण का अर्थ होता है विद्युत और विस्फोटकों का अधिक प्रयोग और दोनों में ही खतरा उत्पन्न करने की क्षमतायें हैं । और जहाँ श्रमिकों का अधिक केन्द्रण होता है वहाँ दुर्घटनाओं में एक अधिक बड़ी संख्या में श्रमिक आबद्ध हो जाते हैं ।

हमारी वर्तमान परत सम्बन्धी परिस्थितियों में कार्यावरोध की घटना का पूर्ण [illegible] किया जाना चाहिए । विशेषतया द्वितीय कार्य काल में छत और पर्श [illegible]ण एक बहुत ही महत्वपूर्ण समस्या है । इस सम्बन्ध में वर्तमान

कमियों को रिक्त स्थानों पर बालू जैसी अज्वलनशील वस्तुओं से भर कर दूर किया जा सकता है। भारतीय परिस्थितियों में बालू का प्रयोग सर्वोत्तम हल है, परन्तु खम्भनाश कार्यों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली प्रत्येक समस्या के लिए बालू का प्रयोग रामबाण नहीं है और प्रायः समुचित मात्रा में प्रयोग की जाने वाली वस्तुयें प्राप्य भी नहीं हैं। विशेषज्ञों को निश्चय करना चाहिए कि छत की रोक के लिए कौन सी रीति भारतीय परिस्थितियों में उचित होगी। हमारे देश में गैसयुक्त खानों में इस बात का निश्चय किया जाना चाहिए कि कोयले की धूल के विस्फोट की सम्भावना के विरुद्ध क्या पत्थर और धूल के अवरोध लाभप्रद रूप से प्रयोग हो सकते हैं। यद्यपि समस्या की प्रकृति के कारण सुरक्षा समस्या के सभी पहलुओं के प्रति निरीक्षक मण्डल से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वह पूर्ण न्याय कर सकें। परन्तु निरीक्षक मण्डल की संख्या शक्ति बढ़ाने के प्रश्न पर गम्भीरता से विचार किया जाना चाहिए।

जहाँ तक सुरक्षा के मामलों का प्रश्न है प्रतियोगिता की भावना अत्यन्त सहायक होगी। दूसरे देशों में इसी भावना ने सुरक्षा चेतना को प्रोत्साहित किया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम आयोग के छठे सत्र में (इस्तम्बूल १९५६) में कोयला खान कमेटी की कोयले की खानों में सुरक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट में सुरक्षा के मामलों में खान के कमचारियों की प्रेरणा को बढ़ावा देने वाले पगों के सम्बन्ध में सुझाव दिये गये थे। उसमें इस बात का उल्लेख किया गया है कि फ्रान्स और जर्मनी के समान सुरक्षा बोनस की व्यवस्था की जाय। इस रिपोर्ट में जर्मनी में प्रयुक्त दो सूत्रों का वर्णन किया गया है। जिसमें से एक अत्यन्त सरल और त्वरित भुगतान देने वाला है। उसी रिपोर्ट में रूर में स्थिति गैल-सैनक्रीन के "कन्सौलीडेशन" एवं "उनसेर फिड्ज" की खानों द्वारा किये गये अत्यन्त आकर्षक प्रयोग का वर्णन किया गया है और इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया है कि एक कुशलता पूर्वक निर्मित सुरक्षा बोनस की योजना उत्साह एवं सहयोग की प्रेरणा देने वाली प्रभावी योजना है जो न केवल निरीक्षकों को ही वरन् खान के श्रमिकों को भी उत्साह देती है इस रिपोर्ट में निम्नलिखित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है, जिस पर प्रत्येक सुरक्षा बोनस की योजना आधारित की जानी चाहिए :—

"गणना की रीति सरल और शीघ्र समझ में आने वाली होनी चाहिए, एक ऐसी व्यवस्था अपनाई जानी चाहिए, जो [illegible] लिए एक बार [illegible] क

मौका प्रदान करे, बोनस का भुगतान बिना किसी देरी के किया जाना चाहिए। जिससे जिस समय भुगतान किया जा रहा हो, श्रमिकों को यह ज्ञात हो कि किस अवधि के लिए बोनस की गणना की गई है और अन्त में यह भी कहना है कि बोनस की प्रभाव प्रदता बढ़ाई जा सकती है, यदि उसका भुगतान साधारण मजदूरी के भुगतान से स्पष्ट रूप में अलग रखा जाय और ऐसी स्थिति का चुनाव किया जाय, जब कि यह द्विगणित प्रशंसा का विषय बन जाय अर्थात् महीने का अन्तिम सप्ताह।"

रिपोर्ट में खानों के विभिन्न विभागों के बीच एक प्रकार को प्रतियोगिता को प्रविष्ट करा देने की प्रशंसा की गई है। प्रतियोगिता अनुकृति को प्रोत्साहित करती है। "नार्ड और पास्डोकैले" की खानों में एक विशिष्ट सुरक्षा पुरष्कार की स्थापना की गई है और अन्य खानों में उसका प्रसार विचाराधीन है। अमेरिका में कोयले की कुछ खानें अपनी खानों में सुरक्षा प्रतियोगिताओं की व्यवस्था करती है और निर्धारित अवधि के पश्चात् उस खान को नगद पुरष्कार दिया जाता है, जिसने सर्वोत्तम प्रतिफल प्राप्त किये हों। अन्य खानों में ऐसी प्रतियोगितायें आयोजित की जाती हैं, जो उस खान श्रमिक को बढ़े दिन पर पुरस्कार प्राप्त करने का अवसर प्रदान करती हैं, जिसने वर्ष भर कुछ निर्धारित सुरक्षा व्यवस्थाओं का पालन किया हो। हम कुछ प्राथमिक सहायता प्रतियोगिताओं का भी स्मरण कर सकते हैं, जिन्होंने अमरीका के खान श्रमिकों के बीच काफी उत्साह का निर्माण किया है। ऐसा दल जो क्षेत्रीय पुरष्कार, राज्य पुरष्कार या राष्ट्रीय पुरष्कार प्राप्त करता है, उसे नगद पुरस्कार, एक बैजयन्ती या अन्य सम्मान प्रदान किये जाते हैं। अन्त में उल्लेख उस होम्स एसोसिएशन का भी किया जा सकता है, जिसका प्रभाव अमेरिका के खानों की सुरक्षा पर महत्वपूर्ण रहा है। यह संस्था ऐसी खानों को समुचित पुरष्कार और सम्मान प्रदान करके सुरक्षा आन्दोलन को प्रेरणा देती है, जिन्होंने सुरक्षा का एक उच्च प्रतिमान् प्राप्त किया हो और उन खान श्रमिकों को भी पुरष्कृत करती है, जिन्होंने २० वर्ष या अधिक बिना किसी दुर्घटना के कार्य किया हो। पोलैण्ड में एक विशिष्ट कोष की स्थापना की गई है, जिसमें से प्रति वर्ष सामूहिक पुरष्कार उन खानों को, जिन्होंने औद्योगिक सुरक्षा और स्वास्थ्य में सर्वोत्तम प्रतिफल प्राप्त किये हैं और उन श्रमिकों और निरीक्षकों को जिन्होंने बिना दुर्घटना के कार्य किया है अथवा जिन्होंने खानों में औद्योगिक सुरक्षा और स्वास्थ्य को सुधारने में महान योगदान किया है, दिया जाता है। उदाहरणों की इस श्रृंखला

में अन्य देशों के अनेक उदाहरण जोड़े जा सकते हैं।

जहाँ उपरोक्त संदर्भित सुधारक पगों का महत्व है, सार रूप में यह कहा जा सकता है कि सर्वोच्च महत्व सभी सम्बन्धित व्यक्तियों में सुरक्षा चेतना को उत्पन्न करना है।

अत्यन्त महत्वपूर्ण यह तत्व अन्य खतरे वाले उद्योगों पर भी समान रूप से लागू होता है। इस प्रकार के प्रत्येक उद्योग में सुरक्षा चेतना को बढ़ाने के लिये साधनों की खोज में गम्भीर प्रयत्न किया जाना चाहिये। विभिन्न उद्योगों में सुरक्षा समस्यायें विभिन्न स्वरूप ग्रहण करती हैं। परन्तु मूलभूत तत्व वह मनुष्य है, जो उद्योग का संचालन करता है। उद्योग में यदि मानव तत्व को आवश्यक चेतना के स्तर पर ले आया जाय, तो उद्योग का निर्जीव यंत्र स्वचालित रूप में अपनी रक्षा कर लेगा। मनुष्य मुख्य समस्या है और सभी सुरक्षा समस्या का वही केन्द्र है।

मुद्रक–टिप-टाप प्रिन्टर्स, २४/९१ बिरहाना रोड, कानपुर–१ फोन नं० ५३२३७

भाग २ अध्याय १०

# श्रमनीति

## वेतन नीति

प्रकाशक :—
भारतीय मजदूर संघ
२ नवीन मार्केट
कानपुर

मूल्य : २ रुपये

भाग २ अध्याय १०

# श्रमनीति

## वेतन नीति

●

—भारतीय मजदूर संघ

'Labour Policy' पुस्तक के अध्याय क्र० १० का यह हिन्दी रूपान्तर है। डा० महेन्द्र प्रताप सिंह (प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय) इस अध्याय के अनुवादक हैं। उनका मैं हृदय से आभारी हूं।

—प्रकाशक

अध्याय–१०

# वेतन (भृत्ति)

भारत में भृत्तिहीनता एवं न्यूनवृत्ति योजना (Under employment) दोनों वातावरण को अत्यन्त प्रभावित करने वाले तत्व हैं, जिसने अन्य देशों की तुलना में अथवा मनुष्य जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की तुलना में अपने देश में श्रमिक की भृत्ति को निम्न स्तर पर बनाये रखा है। इसने कुशल और अकुशल श्रमिक दोनों को प्रभावित किया है। उच्च स्तरों पर यह योग्यताओं को विदेशों की ओर आकर्षित कर रहा है। निम्न स्तरों पर इसने श्रमिकों को विनिमय शक्ति से हीन बना डाला है। कृषि श्रमिकों, छोटी दुकानों और संस्थानों के गुमास्तों, प्रायः सभी संस्थानों परन्तु विशेषतया छोटे पैमाने के उद्योगों के अकुशल श्रमिकों और घरेलू सेवाओं के श्रमिकों आदि की स्थिति घोर निर्धनता की स्थिति है। अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की तुलना में पढ़े लिखे वर्ग की विपुलता ने इस वर्ग को भी अकुशल श्रमिकों की श्रेणी में पहुंचा दिया है।

उपरोक्त श्रेणियों के बीच कृषक श्रमिकों की श्रेणी एक ऐसी श्रेणी हैं जिसके पास सम्भवतया कोई भी विनिमय शक्ति नहीं है। ग्रामों की अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भरतापूर्ण है। श्री बी० एस० व्यास, सरदार बल्लभ भाई विद्यापीठ गुजरात के द्वारा इस प्रकार के श्रमिकों का किया गया एक अधुनातन अध्ययन यह बतलाता है कि आकस्मिक पुरुष श्रमिक जो कि कृषक श्रमिक शक्ति का एक बड़ा भाग है–की औसत प्रतिदिन आय एक गाँव से दूसरे गाँव तक ८७ पैसे से लेकर १.०५ पैसे तक पायी जाती है। जहां तक भृत्ति सम्बन्धी अन्तरों का सम्बन्ध है वे अधिकतर किसी अन्य तत्व की अपेक्षा खेतिहरों की आय पर निर्भर पायी गयी थी। सेवायोजन की अवधि १४० से २५९ दिवसों की थी। चुने गये सर्वोत्तम और निकृष्ट चार ग्रामों में परिवार की आय ३९३) रु० प्रति वर्ष और ५८८ रु० प्रति वर्ष के बीच रहती थी। निकृष्ट ग्रामों में ४०% भुगतान वस्तु द्वारा प्रायः घटिया अनाज के माध्यम से और सर्वोत्तम ग्रामों में ९७% मजदूरी का भुगतान नगद दिया जाता था। इसके प्रतिकूल यह जान लेना उचित होगा कि १९६२–६३ में भारत के प्रति सेवा नियोजित व्यक्ति की औसत वार्षिक आय की

गणना ५०९ रुपया की गई है। विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित अंकों के आधार पर हमें निम्नलिखित प्रतिफल प्राप्त होते हैं :—

| क्षेत्र | भृत्ति एवं वेतन (करोड़ रुपयों में) | कुल श्रमशक्ति (प्रति दस लाख) | औसत आय प्रति व्यक्ति (रुपये) |
|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ |
| १–कृषि एवं सम्बन्धित क्रियायें। | १२४१.२ | १२३.२८ | १०१ |
| २–खान उद्योग, निर्माणी एवं फैक्ट्री संस्थान। | ९६६.१ | ४.६४ | २०८२ |
| ३–लघु उद्योग (निर्माण सहित) | २२४.० | १२.०४ | १८६ |
| ४–अन्य वाणिज्य एवं परिवहन। | ३६३.७ | १०.८० | ३३७ |
| ५–संगठित बैंकिंग उद्योग एवं बीमा | १३७.५ | ०.१५ | ९१६७ |
| ६–नौकरियां एवं उन्मुक्त कलायें | ५३१.० | ९.३० | ५७१ |
| ७–घरेलू सेवायें | २२०.० | ९.४१ | ५०० |
| ८–सरकारी उद्योग | २८९.० | १.९१ | १५१३ |
| **स्वयं नियोजित क्षेत्र की आय** | | | |
| ९–कृषि एवं सम्बन्धी क्रियायें | ४४१०.० | ४९.३१ | ८९४ |
| १०–लघु उद्योग (निर्माण सम्मिलित) | ७८९.४ | ४.०१ | १९६९ |
| ११–अन्य वाणिज्य एवं परिवहन | १०८८.४ | २.७० | ४०३१ |
| १२–नौकरियाँ एवं उन्मुक्त कलायें। | ३०९.० | ६.७१ | ४६५ |

# स्रोत (उद्गम) :-

(१) स्कम्भ २, "The movement of distributive share in India 1948-49 to 1957" लेखक नारायण एवं बीनाराय, प्रकाशन राष्ट्रीय आय शोध पर तृतीय भारतीय कान्फ्रैंस, बम्बई १९६१ । समंक माला राष्ट्रीय कौंसिल फॉर एप्लायड इकनोमिक रिसर्च में भविष्यालोकित । उपरोक्त समंक सन् १९६२-६३ से सन्दर्भित ।

(२) स्कम्भ ३, केन्द्रीय सांख्यकी प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय आय समंक १९६१ की १९५५-५६ से १९५९-६० तक की समंक मालायें । १९६२-६३ के लिए उपरोक्त समंकों की प्राप्ति का आधार एक साधारण रेखात्मक भविष्यावलोकन विधि का प्रयोग ।

उसी स्रोत से भारत में मजदूरी आय की क्षेत्रीय स्थिति १९५३-५४ से १९५७-५८ वर्षो के लिए निम्न लिखित समंक प्राप्त किये गये हैं जो औसत वार्षिक मजदूरी की आय बतलाते हैं ।

| क्षेत्र<br>१ | करोड़ रुपयों में आय<br>२ | राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में- स्कम्भ-२<br>३ |
|---|---|---|
| **संगठित क्षेत्र** | | |
| १-वाटिका उद्योग | ८४ | ०.८ |
| २-खनिज उद्योग | ४८ | ०.५ |
| ३-फैक्टरी संस्थान | ३९२ | ३.७ |
| ४-संदेश वाहन | ३५ | ०.३ |
| ५-संगठित बैंकिंग एवं बीमा | ६० | ०.६ |
| ६-रेल उद्योग | १५१ | १.४ |
| ७-सरकारी सेवायें | ५७० | ५.४ |
| **असंगठित क्षेत्र** | | |
| ८-कृषि | ८०० | ७.६ |
| ९-वन उद्योग | २८ | ०.३ |
| १०-मत्स्य उद्योग | ५ | ०.१ |
| ११-लघु उद्योग | १८३ | १.७ |
| १२-अन्य वाणिज्य एवं परिवहन | २४५ | २.३ |
| १३-नौकरियां एवं उन्मुक्त कलाएँ | ३५६ | ३.४ |
| १४-घरेलू सेवायें | १४६ | १.४ |

इसी सम्बन्ध में, 'Iconomic Times' के रिसर्च ब्यूरो द्वारा किया गया एक अधुनातन अध्ययन महत्वपूर्ण ज्ञान प्रदान करता है। इसमें ब्रिटेन और भारत की तुलना की गई है। जो दोनों ही देशों के मजदूरी कमाने वाले व्यक्तियों के प्रभाव और उनकी आय के स्तरों के निर्धारण में सामूहिक विनिमयशीलता के प्रभाव को बतलाती है।

**ब्रिटेन और भारत के मध्य एक तुलनात्मक सारणी**

| | ब्रिटेन | भारत |
|---|---|---|
| (१) कुल कर्मचारी जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में मजदूरी एव वेतन अर्जक। | ९३.३ | ५१.१ |
| (२) राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में मजदूरी एवं वेतन | ७३.५ | ३० ५ |
| (३) कार्यकारी जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में मजदूर समठन की सदस्यता। | ३९.८ | २.१ |
| (४) कुल श्रमिकों की संख्या के प्रतिशत के रूप में उन श्रमिकों की संख्या जो सामूहिक विनिमय से आच्छादित हैं। | ३२.८ | नगण्य |
| (५) राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में स्वयंसेवा नियोजित व्यक्तियों की आय। | ९.० | ४४.९ |

उपरोक्त सारणियों से निम्नलिखित निश्कर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं :—

(१) एक ऐसे परिवार में जो कृषि एवं तत्सम्बन्धी कार्यों पर निर्भर हो उन व्यक्तियों की संख्या जो किसी भी प्रकार की मृत्ति उपार्जित करते हैं अधिक प्रतिभाषित होती है। कदाचित जीवन निर्वाह की आवश्यकताओं एवं कार्य की अधिकता की ऋतु के प्रभाव से बाल एवं महिला श्रमिकों के सेवा नियोजन का प्रतिशत इस क्षेत्र में उच्च पाया जाता है।

(२) सगठित बैंकिंग एव बीमा के व्यवसाय में श्रमिकों को उच्चतम मजदूरी प्राप्त होती है। और उनके बाद दूसरा स्थान उन श्रमिकों का है जो खानों, निर्माणियों एवं फैक्टरी सस्थानों में कार्य करते हैं, परन्तु उनकी संख्या पूर्वोत्तर श्रमिकों से काफी कम है। तृतीय स्थान सरकारी उद्योगों का है। पुनः हम देखते हैं कि नौकरियों और उन्मुक्त कलाओं के श्रमिकों का स्तर सरकारी उद्योगों के श्रमिकों से काफी नीचा है और उनके तुरन्त बाद घरेलू सेवकों का स्थान है। समस्त व्यवसायों में वाणिज्य, परि-

वहन, लघु उद्योगों और कृषि एवं तत्सम्बन्धी क्रियाओं में संलग्न श्रमिकों का स्थान निकृष्ट है। यह महत्वपूर्ण है कि अन्तिम तीन व्यवसायों में जिनका उल्लेख किया गया है, उसी क्रम में स्वयं सेवानियोजित व्यक्तियों के लिये तुलनात्मक दृष्टि से एक उच्च क्षेत्र पाया जाता है।

(३) केवल नौकरियों और उन्मुक्त कलाओं के श्रमिकों को छोड़कर किसी भी सेवा से सम्बन्धित श्रमिकों की औसत आय उसी क्षेत्र के स्वयं नियोजित व्यक्तियों की अपेक्षा काफी कम है।

(४) देश की जनसंख्या का बड़ा भाग कृषि पर जीवित है। यद्यपि इस क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय अत्यधिक निम्न है। इस क्षेत्र की कुल आय राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में सबसे अधिक है (७.६)। सरकारी सेवायें जिनमें रेलें भी सम्मिलित हैं एक बड़ा भाग प्रस्तुत करती हैं। इसके फलस्वरूप जनसेवी सेवाओं में प्राप्त होने वाले मजदूरी सम्बन्धी निर्णय अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय महत्व का स्थान रखते हैं। महत्व के क्रम में इनके पश्चात कुल क्षेत्रीय आय के दृष्टिकोण से फैक्टरी संस्थानों, नौकरियों एवं उन्मुक्त कलाओं, अन्य वाणिज्य एवं परिवहन, लघु उद्योग एवं घरेलू सेवाओं में कार्य करने वाले व्यक्तियों का आता है। इनके अतिरिक्त अन्य क्षेत्र कुल राष्ट्रीय आय के एक प्रतिशत भाग से भी कम बनाते हैं। यह वर्गीकरण हमें एक ऐसा आधार प्रदान करता है जिसके आधार पर श्रमनीति के व्यवहार एवं विभिन्न प्रमुख क्षेत्रों में मजदूरी के निर्धारण और मजदूरी पर प्रभाव डालने वाले अनेक सिद्धान्तों का परीक्षण मूल्य मजदूरी, मूल्य वृद्धि, राष्ट्रीय मजदूरी नीति अथवा न्यूनतम मजदूरी आदि इत्यादि सम्भव हो सकता है।

(५) पिछली सारिणी से यह ज्ञात किया जा सकता है कि मजदूरी पर कमाने वाले श्रमिकों और उनकी कुल आय अब भारतीय अर्थव्यवस्था का एक बड़ा भाग बनाते हैं। यद्यपि अन्य विकसित देशों की अपेक्षा उनकी तुलना में काफी नीची है, परन्तु उसकी उपेक्षा स्वयं नियोजित क्षेत्र की अपेक्षा कम और अधिक नहीं की जा सकती है। परन्तु श्रमिक अधिक संगठित नहीं हैं जिसमें ट्रेडयूनियन सदस्यता कुल कार्यकारी जिन संख्या की दो प्रतिशत ही है, सामूहिक विनिमय का प्रभाव प्रायः शून्य हो, उसे यह नहीं कहा जा सकता है एक ऐसा देश है जहां संस्थामक प्रभावों पर फल को प्राप्ति नहीं किया जा सकता है। यह पहलू सतर्कता की ओर संकेत करता है कि विधायकों को वैधानिक मान्यता अथवा उद्योग के लिये राष्ट्रीय विनिमय नीतियों के

पग बिना विचारे न उठाया जाय।

समस्या के आकार की तुलना में ट्रेड यूनियन आन्दोलन के विकास की गति अत्यन्त धीमी रही है। एक अनुमान के अनुसार जहाँ फैक्टरियों में रोजगार १९६० से १९६४ तक ८ लाख अधिक हो गया है वहाँ इस अवधि में अपने वार्षिक वृत्त प्रस्तुत करने वाले प्रामाणिक ट्रेड यूनियनों की कुल सदस्यता प्रायः स्थिर रही है। संगठित श्रम की शक्ति के सम्बन्ध में हमें आश्चर्यजनक रूप में भिन्न-भिन्न अनुमान प्राप्य हैं जो २० लाख से ३६ लाख सदस्य तक हैं, परन्तु हम जानते हैं कि जो कुछ भी परिवर्तन दृष्टि-गोचर होता है वह पारस्परिक झगड़ों एवं जीवन निर्वाह कारक प्रयत्नों का प्रतिफल है। फलतः संगठित क्षेत्र में भी हमें सामूहिक सौदों की घटनायें कम दिखलाई पड़ती हैं, और मजदूरी के मामलों में तृतीय पक्ष के फैसलों की भरमार मिलती है।

उपरोक्त सब कुछ कहने के पश्चात यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि ट्रेड यूनियन मजदूरी के निर्धारण में कुछ भाग आवश्य ले रहे हैं। विशेष रूप से अर्थ व्यवस्था के संगठित क्षेत्र में इस मामले में ट्रेड यूनियनों का कुछ प्रभाव भी हो रहा है और अब यह शोर भी मचने लगा है कि संगठित श्रम के द्वारा प्राप्त मँहगाई भत्तों की दरें मजदूरी से प्रभावित मुद्रा स्फीति अर्थ व्यवस्था में उत्पन्न कर रही है। श्रमिकों के विरुद्ध इस प्रकार का शोर प्रमाण शून्य है और केवल प्रचार साधनों पर पूंजीपतियों के प्रभाव का निर्देशांक मात्र है, जिसका विषद विवेचन अनावश्यक है। संगठित श्रमिकों की शक्ति स्वयं ही अति न्यून है ओर उन क्षेत्रों में भी जहाँ इसने विशेष प्रभाव डाला है हम देखते हैं कि श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी में कोई सुधार नहीं हुआ है। यदि हम एक ही उद्योग में क्षेत्र सम्बन्धी मजदूरी के अन्तर और व्यवसाय सम्बन्धी मजदूरी के अन्तरों का परीक्षण करें तो मजदूरी के व्यवहार पर ट्रेड यूनियन आन्दोलन का वास्तविक प्रभाव स्पष्ट हो जावेगा। नेशनल कौंसिल आफ इम्प्लायड रिसर्च इकनामिक्स द्वारा प्रकाशित "वेज डिफरैनसियल्स इन इंडियन इन्डस्ट्रीज" नामक अधुनातन अध्ययन यह प्रदर्शित करता है कि अनेक कार्यों के लिये विभिन्न संस्थानों में मजदूरी का विचलन काफी पाया जाता है। इसी प्रकार न्यूनतम और अधिकतम वेतन वाले कार्यों के बीच अन्तरों को कम करने के प्रति प्रवृत्ति भी पाई जाती है। यह आशा की जा सकती है कि इन परिवर्तनों के निर्देशांक में यूनियन के दबाव का असर पाया जाएगा। परन्तु हम यह स्वीकार करते हैं कि इस सम्बन्ध में हमारे पास अपने या बाहरी श्रोतों से पर्याप्त सूचनायें उपलब्ध नहीं हैं, जिससे इस संदर्भ में कोई दृढ़ वक्तव्य दिया जा सके।

अतः यह ज्ञात किया जा सकता है कि भारत में मजदूरी के निर्धारण पर मजदूरी समझौतों और निर्णयों की रूढ़िवादी रीतियों में अत्यधिक प्रभाव डाला है। सामूहिक सौदेवाजी अत्यन्त लज्जाशील प्रतीत होती है। भृत्तिहीनता एवं न्यूनवृत्ति योजन का विपुल आकार, कृषि एवं असंगठित उद्योग में अकुशल श्रम और मजदूरी की विपुलता ने श्रम बाजार पर विशेष प्रभाव डाला है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आत्मनिर्भर प्रकृति के कारण देश में इस बात की आवश्यकता नहीं है कि ये तत्व अधिक समय तक मजदूरी के स्वरूपों को प्रभावित करें। इसके विपरीत यदि पंचवर्षीय योजनाओं में संकल्पित पश्चिमी अनुकृति पर आधुनिक औद्योगीकरण की दिशा में देश को महत्वपूर्ण उन्नति कराने का निश्चय है (एक विचार जो अनेक कारणों से हमें अमान्य हैं) तो प्रतिलोम प्रयत्न आवश्यक होगी, जिससे औद्योगिक श्रमिकों के जीवन निर्वाह स्तरों के ऊपर पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था का खिचाव प्रतिकूल अनुपात में अनुभव न हो सके। परन्तु ये क्षेत्रीय और इसीलिए अपूर्ण विचार है। भारतीय आर्थिक परिस्थितियों में जो सबसे अधिक महत्व की बात है, वह यह है कि भारतीय जनसंख्या के सभी वर्गों के जीवन निर्वाह स्तर को आगे बढ़ाने के लिए ठेलना चाहिए। प्रत्येक श्रमिक की वास्तविक मजदूरी में एक सतत एवं त्वरित सुधार दिखलाई पड़ना चाहिये, और यद्यपि ट्रेडयूनियन आन्दोलन और सामूहिक सौदेबाजी का विकास इस प्रक्रिया की गति को तेज कर देगा परन्तु फिर भी यह आवश्यक नहीं है कि इन तत्वों के विकास की परीक्षा की जाय। जो भी साधन हमें उपलब्ध हैं उनके आधार पर हमें अपनी जनता जीवन निर्वाह स्तरों को एक न्यायपूर्ण रीति से ऊपर उठाना चाहिए।

## न्यूनतम मजदूरी

मंदो मध्यस्तथा शीघ्रः त्रिविधो मृत्य उच्यते।
सभा मध्याच श्रेष्ठा च भृतिस्तेषां क्रमास्स्मृता ॥ ९५ ॥
अवश्यपोष्पभरण भृतिर्मध्या प्रकीर्तिता ॥ ८९ ॥
परिपोष्या भृतिः श्रष्ठा समान्नाच्छादनार्थिका।
भवेदेकस्य भरणं यथा सा हीन संज्ञिका ॥ ९० ॥
ये भृत्या हीनभृतिकाः शत्रवस्ते स्वयंकृताः ॥ ९३ ॥

शुक्रनीति अध्याय २

न्यूनतन मजदूरी के सम्बोध की क्रियाशीलता में प्रमुख कठिनाई न्यूनतम मजदूरी की परिभाषा से इतनी अधिक सम्बन्धित नहीं है, जितनी कि उसके वास्तविक परिणाम

एवं निर्धारण में और उससे भी अधिक उसके क्रियान्वयन से है। एक न्यूनतम मजदूरी या भृत्तिक्रम की न्यूनतम दर कानून द्वारा एक मौद्रिक परिमाण के रूप में निर्धारित की जा सकती है, और उसको एक विशिष्ट आधारवर्ष से सम्बन्धित किया जा सकता है। कानून द्वारा निर्धारित न्यूनतम आवश्यकता–आधारित अथवा न्यूनतम मजदूरी के समान सम्बन्धों से कितना समानात्व रखता है यह आज भी एक आलोचनात्मक प्रश्न का प्रश्न है क्योंकि यह सम्बोध अभी स्थिर नहीं हो पाये है। एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम यूनियन आफ इण्डिया तथा अन्य (14 F. J. R., A. I. R., 1958 S C 578) नामक मुकदमे में आदरणीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यूनतम, न्यायपूर्ण एवं जीवन निर्वाह मजदूरी (Living wages) के विभिन्न सम्बोधों का बिस्तारपूर्ण वर्णन किया है। उन्होंने देश के संविधान की व्यवस्थाओं का और Fair wage Committee के सुझावों का न केवल विचार किया है, वरन् अन्तर्राष्ट्रीय श्रमी संगठन, आस्ट्रेलिया एवं अमरीका के बुद्धिमान न्यायाधीशों श्रम पर नियुक्त रॉयल कमीशनों, विभिन्न श्रम अनुसन्धान कमेटियों द्वारा समय–समय पर प्रकाशित विवरणों का भी ध्यान रखा है और सरकारों, श्रम संगठनों एवं केन्द्रीय श्रम संगठनों के दृष्टिकोणों को महत्व दिया है। इस प्रकार के एक विशद अनुसन्धान के पश्चात वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि न्यूनतम मजदूरी, न्यायपूर्ण मजदूरी एवं जीवन निर्वाह मजदूरी के शब्द समूहों की अन्तर निहित वस्तु न तो स्थिर है और न ही स्थायी। वह परिवर्तनशील है और समय-समय पर उसमें विचलन होना अवश्यम्भावी है। सामूहिक सौदा व्यवस्था के विकास एवं प्रगति के साथ-साथ जीवन निर्वाह के प्रतिमानों में सुधार किया जायगा और इस कारण मजदूरी की विभिन्न श्रेणियों के सम्बन्ध में हमारे विचारों में प्रसार होगा और वे अधिक प्रगतिशील होंगे।

कदाचित इस बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय पर सुधार करना कठिन है। एक औद्योगिक श्रमिक कार्यकर्ता के लिये न्यूनतम मजदूरी की परिभाषा करना सदैव एक बौद्धिक व्यायाम मात्र रहा है। उसके लिये सीधे महत्व का विषय न्यूनतम दरों के भुगतान के निर्धारण के एवं उनके अवधि के अनुसार विकास के नियमन एवं क्रियान्वयन की रहा है। अतः हमारा यह सुझाव है कि इस प्रश्न के इन व्यावहारिक पक्षों की ओर आगे बढ़ें।

यह निर्विवाद है कि न्यूनतम मजदूरी के कानून को बनाना और उसका पालन कराना अत्यन्त आवश्यक है और उसके क्षेत्र का इतना प्रसार किया जाना चाहिये जिससे समस्त गैर औद्योगिक श्रमिकों को भी सम्मिलित किया जा सके। विभिन्न राज्य

सरकारों ने इस प्रकार के कानून पास किये हैं और उनके क्रियान्वयन के सम्बन्ध में एक काफी दीर्घकालीन अनुभव उपलब्ध हैं। वह स्थिति अभी तक निर्माण नहीं हो सकी है जबकि सम्पूर्ण देश के लिये न्यूनतम मजदूरी के नियमों एवं प्रतिमानों की समानता का प्रयत्न किया जा सके। प्रत्येक राज्य में भी सरकारी नोटीफिकेशन के अनुसार किये गये क्षेत्रानुसार वर्गीकरण अन्तिम स्वरूप प्राप्त कर सके हैं— ऐसा नहीं कहा जा सकता है। इससे भी एक बड़ी कठिनाई श्रमिकों के विभिन्न वर्गों की परिभाषा करने के सम्बन्ध में उत्पन्न हुई है। इन वर्गों को कुशल अर्धकुशल एवं अकुशल जैसे दो या तीन वर्गों में एकत्र कर देना अत्यंत विशाल क्षेत्रीय होगा, जिसके अनेक अर्थ निकाले जा सकते हैं। कदाचित एक संस्थान से दूसरे संस्थान में अथवा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित कार्यों में बहुत अधिक अन्तर पाया जाता है। अतः प्रायः यह देखा जाता है कि कोई भी संस्थान अथवा क्षेत्र जितना छोटा और गरीब होगा उतना ही अधिक उसके श्रमिक को विभिन्न प्रकार के कार्यों से लाद दिया जायेगा और ऐसे संस्थानों में शुद्ध शारीरिक कार्य करने वाले अथवा अकुशल श्रमिक का कोई स्थान नहीं है। साथ ही यह संस्थान अपने सभी प्रकार के कार्यों को करने वाले सहायकों के लिए कुशल या अतिकुशल श्रमिकों की मजदूरी का भार वहन भी नहीं कर सकते। यह सिद्धान्त रूप में तो कहना अच्छा है कि न्यूनतम मजदूरी के परिणाम को श्रमिक की वास्तविक आवश्यकता के अनुसार विभाजित किया जाना चाहिये और वह जो कि उसके अनुसार भुगतान न कर सके उसे अपना व्यवसाय बन्द कर देना चाहिये और उसे अवसर देना चाहिये जो कि ऐसा कर सकते हों। परन्तु जैसे ही हम शहरों से गाँवों की ओर चलें तो हम देखते हैं कि इन आज्ञाओं का पालन करने की कठिनाइयाँ अत्यन्त वास्तविक होती जाती हैं। इस क्षेत्र में समस्त अर्थ व्यवस्था केवल भोजन करने तक जीती है। राष्ट्रीय न्यूनतम के विकास का सम्बोध इन सम्भावनाओं से प्रभावित है और इसी कारण से न्यूनतम मजदूरी के सम्बन्ध में एक अत्यन्त बुद्धिसंगत नीति को ग्रहण करने की आवश्यकता है। न्यूनतम मजदूरी को निर्धारित करने के एक अन्य खतरे पर यहाँ विचार कर लेना आवश्यक है। व्यवहार में यह देखा गया है कि जब किसी क्षेत्र के लिये एक बार न्यूनतम मजदूरी तय कर दी जाय तो वही न्यूनतम, अधिकतम मजदूरी बन जाने की प्रवृत्ति रखती है और अत्यन्त सम्पन्न संस्थान भी अपने कर्मचारियों को वही न्यूनतम मजदूरी देने में संतोष करता है। इससे सामाजिक कानून के एक विशिष्ट अंग को बनाने का उद्देश्य ही पराजित हो जाता है, जिसे जनता के अधिकतम सम्भाव्य कल्याण के निमित्त बनाया गया था।

विभिन्न ट्रेड, क्षेत्रों, पेशों और संस्थानों में न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था के

बनाने में अधिक प्राविधिक प्रयत्नों का किया जाना एक मार्ग हो सकता है। वर्तमान स्थिति यह है कि विभिन्न वर्गों के लिए न्यूनतम मजदूरी की सारणियाँ अथवा नियम तैयार करने में सस्थान की प्रकृति की सर्वथा उपेक्षा की जाती है। यह अनुभव किया जाता है कि पूंजी, विक्रय, लाभ अथवा सेवा नियोजित व्यक्तियों की संख्या इत्यादि के आधार पर संस्थानों का वर्गीकरण करना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे न्यूनतम मजदूरी के कानून को जनता के लिये यथार्थ रूप में हितकारी बनाया जा सके। इसी आधार पर न्यूनतम मजदूरी के नियमों को लागू करने के लिये प्रत्येक स्थान या क्षेत्र में ट्रेड को वर्गीकृत किया जाना चाहिये। इसके पश्चात ही यदि उन ट्रेडों में एक पूर्ण प्राविधिक खोज की जाय तो यह ज्ञात होगा कि प्रत्येक इकाई में क्षेत्र एवं संस्थान वर्गीकरण के अनुसार आर्थिक या वित्तीय क्षमता कितनी है। तभी यह सम्भव होगा कि ऐसे प्रकट शोषण को दूर किया जा सके जैसा कि हम बम्बई जैसे विशाल नगरों की अत्यन्त धनवान बाजारों में देखते हैं, जहाँ श्रमिक को अत्यन्त निम्न जीवन पूर्ति स्तर पर कार्य में लगाया जाता है, जबकि लाखों रुपया उसके सामने से बहते हुये पानी के समान बह जाता है। निश्चित रूप से यह सत्य है कि मानवीय श्रम को उसी प्रकार से पुरस्कृत करना चाहिये, जितना भार अर्थ व्यवस्था उठा सके और श्रमिकों की बहुलता एक ऐसा कारण नहीं बनने देना चाहिये जिससे कुछ थोड़े से हाथों में धन का अधिक से अधिक केन्द्रण हो जावे। विशाल और लाभ कमाने वाले संस्थानों के मालिकों को बाध्य किया जाना चाहिये कि वे अपने द्वारा सेवा नियोजित मानवीय श्रम को वह मूल्य दें जो उन श्रमिकों को एक सम्मानप्रद जीवन प्रदान कर सके। इसी प्रकार कर्तव्यों एवं पद भारों का प्रमानीकरण न्यूनतम मजदूरी के नियमों के परिपालन को सार्थक एवं प्रभावी बनाने का एक आवश्यक आधार है। यह कार्य अत्यन्त बड़ा एव कठिन है। परन्तु इस कारण उसको करने में अवरोध नहीं पड़ना चाहिये। वर्तमान स्थिति यह है कि यह कार्य कुछ दुकान एवं संस्थानों के निरीक्षकों के हाथ में है कि वे इसे परिभाषित करें और वर्गीकृत। प्रत्यक्ष प्रवृत्ति यह देखी जाती है कि इन मामलों में राज्य की ओर से कोई उत्साह नहीं दिखलाया जा रहा है वरन् वह तो केवल शिकायतों को ग्रहण करके प्रमाणित करने का भार शिकायत करने वाले पर ही डाल देता है।

इस सम्बन्ध में यह स्वीकार करना होगा कि न्यूनतम मजदूरी का कानून मुख्यतः मिक रूप से अर्थ व्यवस्था के केवल असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लाभ के लिये है। इस क्षेत्र में श्रमिकों के प्रति व्यवस्थापकों का अनुपात प्रायः हास्यास्पद ढंग से अधिक होता है। ऐसे असंख्य उदाहरण प्राप्य हैं, जहाँ साहसी के परिवार के प्रत्येक सदस्य का उसके दूर के सम्बन्धी उद्योग में सेवा-नियोजित एक या दो श्रमिकों के अफसर के रूप में कार्य

करते हैं, जिससे व्यवस्थापक-श्रमिक अनुपात २:१ या ३:१ तक ही जाता है। ऐसे मामलों में भी जहाँ अफसरवाद एक प्रकार से अनुपस्थित हो, कर्मचारी सेवा नियोजक के इतने निकट होते हैं कि वे किसी शिकायत का पंजीयन नहीं करवा पाते हैं। दूकानों एवं संस्थानों के निरीक्षक मण्डलों का यह अनुभव है कि जहाँ किसी संस्थान का अत्यन्त प्रताड़ित सेवक निरीक्षक के पास गुप्त रूप से शिकायत करता है, वह प्रायः प्रार्थना करता है कि वह खुले तौर से सामने नहीं आ सकता है, या अपनी शिकायत के लिये प्रमाण उपस्थित नहीं कर सकता है। ऐसी परिस्थितियों में केवल एक अत्यन्त कर्तव्य-निष्ठ निरीक्षक ही नियमों को तोड़ने वाले सेवानियोजक को झूठे क्रेताओं का बुद्धिमानी से प्रयोग करके या सतर्क जाल फैला कर पकड़ सकता है। परन्तु राज्य सरकारों की यह प्रवृत्ति बढ़ रही है कि इस महत्वपूर्ण कार्य को जहाँ सम्भव हो नगर पालिकाओं अथवा अन्य स्थानीय निकायों को सौंप दें, जिसके कारण निरीक्षकों की इस प्रकार की कर्तव्य निष्ठा अब एक अमान्य गुण बनता जा रहा है। ये संस्थायें स्थानीय राजनीति में इतनी फसी हैं कि स्थानीय दूकान एवं संस्थान निरीक्षक अनेक प्रकार के दबावों के फलस्वरूप कोई बीरतापूर्ण, सुविचारित अथवा प्रभावी कदम उठा ही नहीं सकते हैं। वास्तव में कानून एक कल्याणकारी राज्य का गहना मात्र बनता जा रहा है, जिसके आवरण में अनेक निम्नकोटि के उद्देश्य अनवरुद्ध कार्य कर रहे हैं और श्रम का शोषण खुले में निर्लज्ज भाव से किया जा रहा है। एक छोटे संस्थान का सेवानियोजक अनेक ऐसे अवसर पा जाता है जबकि वह अपने कर्मचारी को झगड़े में डाल सकता है और उससे जिस निष्ठा की अपेक्षा करता है, वह उसके वेतन के अनुपात में कहीं भी नहीं ठहरती। इन कर्मचारियों को प्रायः घरेलू कार्यों में भी लगाया जाता है और सम्पूर्ण परिवार को दास श्रमिक समझा जाता है जो कि सेवानियोजक के छोटे बच्चों की भी जंजीर में बंधे होते हैं। इस दासवृत्ति की स्थिति से उनका उद्धार केवल तभी किया जा सकता है जबकि एक सुविचारित एवं अनिवार्य कानून बनाया जाये और उसका भेद रहित एवं कुशल प्रशासन किया जाये। दूकान एवं संस्थान निरीक्षक केवल एक जन-अभियोक्ता होना चाहिये जो शिकायत के उपरान्त शिकायतकर्ता के द्वारा प्रस्तुत तथ्यों एवं प्रमाणों पर कार्य करे वरन् समाज की आत्मा पर दृष्टि रखें और जहाँ भी कानून का उलंघन देखें स्वयं क्रिया को प्रारम्भ करें। तभी न्यूनतम मजदूरी एक यथार्थता बन सकेगी।

ऐसा करने के उपरान्त ही हम भारतीय श्रम कान्फ्रेंस द्वारा सुझाये आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी के क्रियान्वयन के लिये एक अनेक वर्षीय परियोजना बनाने का विचार कर सकते हैं। सम्बन्धित विषय पर वर्तमान विचारों के

सुधार करने के लिये बहुत कुछ मिलेगा, यदि हम कान्फ्रेंस द्वारा दी गई न्यूनतम न्याय-युक्त एवं जीवन निर्वाह मजदूरी की परिभाषाओं पर विचार करें। विशेष तौर पर शैक्षिक एवं चिकित्सा सम्बन्धी देखभाल और वृद्धावस्था की आवश्यकताओं के खर्चों को ध्यान में रखकर हम आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम का अंग मान सकते हैं और एक परिवार में उपभोग की इकाइयों की संख्या को अधिक बना सकते हैं। जीवन निर्वाह मजदूरी के सम्बोध को एक विकासमान सम्बोध मानना चाहिये, क्योंकि सामान्य मनुष्य की आकांक्षायें, उपयोगिताओं और सेवाओं के एक विशाल क्षेत्र को छूने लगती हैं। परन्तु वर्तमान, आर्थिक परिस्थिति के सन्दर्भ में इस बात की शीघ्र आवश्यता है कि वर्तमान परिभाषाओं पर कार्य किया जाय न कि अनावश्यक शैक्षणिक व्यायाम के आधार पर परिभाषायें बदली जायें।

इस सम्बन्ध में किसी भी कार्यकारी योजना का प्रस्थान बिन्दु विभिन्न क्षेत्रों और समाज के आर्थिक वर्गीकरण के विभिन्न स्तरों से सम्बन्धित श्रमिकों की जीवन निर्वाह एवं कार्य की परिस्थितियों के यथार्थ सर्वेक्षण पर आधारित होना चाहिये। अभी हाल में इस प्रकार के सर्वेक्षण कृषि श्रमिकों, औद्योगिक श्रमिकों और मध्यम वर्गीय श्रमिकों के सम्बन्ध में १९५७–५९ में किये गये थे। यद्यपि उनका प्रकाशन अत्यन्त विलम्बित हो गया है। परन्तु उनका प्रमुख प्रयोग जीवन निर्वाह निर्देशांकों के निर्माण में किया जा रहा है। उनका यह निश्चय ही एक महत्वपूर्ण प्रयोग है जो हमें नगरों और क्षेत्रों के अनुसार जीवन–निर्वाह निर्देशांक प्रदान कर सकता है और विभिन्न नगरों और क्षेत्रों तथा एक ही क्षेत्र में विभिन्न अवधियों एवं जनसंख्या स्तरों के लिए तुलनात्मक मँहगाई के निर्देशांकों के आधार पर न्यूनतम के राष्ट्रीय या राज्यीय अंकों के अथवा अन्य मजदूरियों के मौद्रिक प्रत्यंगों के परिमाण निरूपण अथवा निर्वचन में सहायक हो सकता है। इस सर्वेक्षण का एक अन्य महत्वपूर्ण प्रयोग न्यूनतम मजदूरी की योजना के लिये प्रारम्भिक लक्ष्य निर्धारित करने के लिये और उसके वास्तविक मान को एक निश्चित अवधि के भीतर प्रशासित एवं आश्वासित करने के लिये आवश्यक है। इन सर्वेक्षणों के द्वारा हमें वैयक्तिक एवं पारिवारिक आय-व्यय के स्वरूप का आधार प्राप्त हो सकता है, जिससे हम एक न्यूनतम मजदूरी योजना की ओर प्रस्थान कर सकते हैं। यह सर्वेक्षण हमें एक निश्चित जनसंख्या स्तर के लिये वर्तमान ऋण ग्रस्तता की स्थिति एवं उसके कारणों का ज्ञान प्रदान कर सकता है। न्यूनतम मजदूरी के निम्नतम स्तर का प्रथम लक्ष्य यह हो सकता है कि हम ऐसे पग उठावें कि श्रमिक या उसके परिवार जीवन निर्वाह की वर्तमान आवश्यकताओं की बिना किसी ऋण या उधार लिये पूरा कर सकें। इससे हमारी जनता तात्कालिक चिंता से मुक्त हो जायेगी और जनसंख्या के घनी बनी

की उस पर पकड़ ढीली पड़ जावेगी। इसके साथ ही एक ऐसी योजना को भी उठाना चाहिये जिससे बिना उद्योग की वस्तुनिष्ठ आवश्यकताओं का विरोध किये हुये प्रत्येक संस्थान के न्यूनतम आर्थिक सामर्थ्य का उपयोग किया जा सके, जिसके आधार पर सामान्य श्रमिकों को मौद्रिक लाभों की प्राप्ति निश्चित की जा सके। ये दो पग हमें स्थानीय या अन्य राजनीति से मुक्त कार्यकारी एवं पालक यंत्र का व्यवहारिक आधार प्रदान करते हैं, और भारत में प्रथम क्रान्ति उत्पन्न करेंगे जिसके द्वारा समस्त जनता को कल्याणकारी राज्य की ओर ऊर्ध्वगति प्राप्त होगी। इस योजना के अन्य पग राष्ट्रीय मजदूरी योजना और अर्थ व्यवस्था के लघु श्रेणी क्षेत्र के नियोजन के अंग होंगे।

एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी निश्चय रूप से एक अनुकरणीय सम्बोध है और हम सबका यह प्रयत्न होना चाहिये कि जितना शीघ्र सम्भव हो इस सम्बोध को वास्तविकता में परिणित कर सके। परन्तु हमारे देश की परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि चाहे हम इच्छा रखें तो भी हमारे लिये यह सम्भव नहीं होगा कि आसाम के पहाड़ी क्षेत्रों जैसे क्षेत्रों के बन श्रमिकों से लेकर विशाल नगरों के क्षेत्रों में काम करने वाले फैक्टरी श्रमिकों तक समान रूप से लागू होने वाली न्यूनतम मजदूरी के निरपेक्ष मान दण्ड से सम्बन्धित अखिल भारतीय नियम बना सकें। इस न्यूनतम को लागू करने में कठिनाई इस बात की नहीं है कि विभिन्न क्षेत्र में उपभोग की आवश्यकतायें भिन्न-भिन्न हैं। इस तत्व का विचार तो क्षेत्रीय जीवन निर्वाह निर्देशांकों के प्रयोग द्वारा किया जा सकता है। कदाचित उस उद्देश्य के निमित्त एक अधिक सही रीति यह होगी कि विभिन्न क्षेत्रों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्देशांक बनाए और रखे जांय, जो हमें एक निश्चित मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं के तत्कालीन मौद्रिक समान मूल प्रदान कर सकें। Intuc के स्वर्गीय श्री जी० डी० अम्बेकर न्यूनतम मजदूरी निर्देशांक के एक प्रमुख व्याख्याता थे और इस विषय में उन्होंने जो कुछ भी कहा है वह अर्थपूर्ण है। जहाँ तक निर्देशांक से बंधी हुई न्यूनतम मजदूरी का सम्बन्ध है वह एक अव्यवहारिक धारणा है। महाराष्ट्र राज्य के छपायी प्रेसों में लागू होने वाले नियम और न्यूनतम मजदूरी विधेयक निर्देशांक से बँधी हुई मजदूरी पर आधारित हैं। एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी या उसके समान मूल्य के निर्धारण की वास्तविक कठिनाई यह है कि विभिन्न उद्योगों और क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न आर्थिक सामर्थ्य पाया जाता है। न्यूनतम मजदूरी का मुख्य विचार यह होना चाहिये कि वह एक न्याययुक्त न्यूनतम हो, और उसे दिया ही जाना चाहिए, चाहे सेवानियोजक की देय क्षमता कितनी भी हो। यह कानूनी न्यूनतम [illegible]

होना चाहिए जो मानव के जीवन निर्वाह की सभी न्याय सगत आवश्यकताओं की पूर्ति करे। परन्तु यह न्याय संगत आवश्यकतायें क्या हैं और उस समय क्या करना चाहिए, यदि हम कल्पना करें कि कृषि या घरेलू उद्योग में इस प्रकार के न्यायसंगत न्यूनतम को लागू करने के फलस्वरूप एक विशाल मात्रा में बेरोजगारी फैल गई हो ? इस प्रश्न को व्यवहारिक दृष्टिकोण से इस प्रकार से हल किया जा सकता है कि न्यूनतम मजदूरी के वर्गीय मानदंड निर्धारित कर दिए जांय, और उसको नगरीय और ग्रामीण दो प्रत्यंगों में बांट दिया जाय। नगरीय क्षेत्रीय ग्रामीण क्षेत्रीय न्यूनतम का निश्चय करने से पूर्व क्षेत्र की परिभाषा स्थिर की जानी चाहिए। इस सन्दर्भ में हम यह कहना चाहेंगे कि सांख्यिकी संस्थाओं द्वारा किया गया वर्तमान क्षेत्रीय वर्गीकरण श्रम कानून के लिये स्वीकार नहीं है। इसके लिए मौलिक चिंतन आवश्यक है। यह एक विशेषज्ञ अनुसन्धान का विषय क्षेत्र है। परन्तु यह अत्यन्त प्रछन्न है कि क्षेत्रीय वर्गीकरण उद्योग की प्रकृति, प्रयुक्त प्राविधि के स्तर और व्यवसाय के अंतिम प्रतिफलों पर आधारित किया जा सकता है। न्यूनतम मजदूरी के उच्चस्तरों के लिये प्रत्येक संस्थान के अनुसार कार्यशील पूँजी, संस्थान के आकार, कर्मचारियों की संख्या इत्यादि के आधार पर आगे किया जा सकता है। भारतीय मजदूर संघ की एक यूनियन ने देहरादून में सिलाई स्थानों से एक सफल समझौता किया है, जिसके अनुसार विभिन्न संस्थानों द्वारा एक सूट की सिलाई के लिए फर्म के अनुसार मजदूरी का एक मान्य निश्चित कर दिया गया है। इस प्रकार के विभेदी करण ने विभिन्न ख्याति वाले संस्थानों की कुशलता एवं निपुणता के अंशों का भी पूर्ण सत्कार किया है। उपरोक्त वर्णन में यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि यद्यपि हम सभी देशों, उद्योगों और क्षेत्रों के लिए समान राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी की सम्भावना की संकल्पना नहीं करते हैं, परन्तु हम यह भी अनुभव नहीं करते कि इस विषय के बिना किसी दृढ़ राष्ट्रीय निर्देशन के, राज्यों पर ही छोड़ दिया जाय। न्यूनतम मजदूरी के प्रतिमानों का यह सम्बोध विकासमान देशों के लिये अतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा प्रस्तावित अधुनातन सूत्र से कुछ-कुछ मेल खाता है। इस सत्र में संकल्पना की गई है कि एक प्रतिनिधि कृषक खेतिहर के जीवन निर्वाह स्तर को आधार मानना चाहिए और उसके लिए निर्धारित न्यूनतम मजदूरी के लिये निम्न स्तर से औद्योगिक मजदूरियों का समायोजन किया जाना चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की विशेषज्ञ समिति के विचार से यदि एक खेतिहर के जीवन निर्वाह स्तर को आधार माना जाय और औद्योगिक श्रमिक को उसकी तुलना में समायोजित मजदूरी दी जाय तो आशंका यही है कि दोनों स्तर एक दूसरे से दूर नहीं होंगे। हम अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के इस वाद के विचार से सहमति नहीं है और न यह उनके प्रस्ताव का एक सहकारी और

आवश्यक प्रतिफल ही माना जा सकता है। हमारा यह दृढ़ मत है कि न्यूनतम मजदूरियों के क्षेत्रीय प्रतिमानों को निर्धारित किया जा सकता है और उनमें अन्तर भी रह सकता है क्योंकि ऐसा न होने पर सभी क्षेत्रों में न्यूनतम श्रमिकों को अति निम्न स्तर पर बांध देगी। यदि कृषि क्षेत्र किसी विशिष्ट समय पर एक उच्च न्यूनतम दे सकता है तो यह आवश्यक नहीं है कि वह उस समय तक प्रतीक्षा करे जब तक औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि नहीं होती, क्योंकि सभी क्षेत्रों में समान रूप से आनुपातिक विभेदमूलक स्थिर अंक को स्थिर रखते हुए सभी क्षेत्रों में ऊर्ध्व संशोधन नहीं हो जाता। इसके साथ ही हम यह अनुभव नहीं करते हैं कि औद्योगिक क्षेत्र की न्यूनतम मजदूरी को निम्न स्तर पर बांधा जाय। केवल इसी कारण से क्योंकि प्रतिनिधि कृषक खेतिहर आज भी अपने न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर पर चल रहा है। विकास प्रक्रिया की असमानता स्वयं में ही एक कारण है जो क्षेत्रीय न्यूनतमों की आवश्यकता की पुष्टि करता है।

भारतीय परिस्थिति के सन्दर्भ में एक न्यूनतम मजदूरी विधेयक के प्रयोग से संबन्ध में एक अपवाद यह होगा कि आर्थिक आधार के अतिरिक्त आधार ढूंढना पड़ेगा। भारत ही एक ऐसा देश है जहां जीवन के लिए आर्थिक अभिप्रेरण को उच्च सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। इस देश का सबसे अधिक हित उन महान त्यागी व्यक्तियों के दल ने किया है जिन्होंने धन अथवा भौतिक आवश्यकताओं की कभी चिन्ता नहीं की। उनके लिये जीवन की आवश्यकता जैसी वस्तु कोई नहीं है वरन् वे तो वायुमण्डलीय तत्वों के स्वयं स्वामी हैं। न्यूनतम मजदूरी का कोई विधेयक अथवा कोई भी श्रम कानून इस पवित्र और समाज सेवा के उच्च विचार के अवरोध, विलम्ब अथवा ध्वंस का कारण नहीं बनने देना चाहिये, जिसमें किसी मौद्रिक पुरस्कार की परवाह नहीं की जाती और न ही इस पृथ्वी से किसी भौतिक सुविधा की अपेक्षा की जाती है। ऐसे व्यक्ति किसी भी वस्तु पर निर्भर नहीं होते है (निरावलंब) और ऐसे दासता का स्वरूप देना अथवा कानून द्वारा निर्धारित एक न्यूनतम मजदूरी को स्वीकार करने के लिये बाध्य करना एक ऐसा कार्य होगा जो समाज से उस जीवन-प्रदान के विशाल स्रोत को छीन लेगा जिसे परमेश्वर के सच्चे सपूत अपने उदात्त जीवन से उत्पन्न करते हैं। वे समाज की ध्वजा लेकर चलने वाले व्यक्ति होते हैं इसी लिये उन्हें किसी भी श्रम कानून की बाध्यता से मुक्त कर देना चाहिये, जो लाभ प्रदान करता हो अथवा अवरोध लगाता हो। उनके लिये बहुजन हिताय के मानदण्ड नहीं होते। वे तो स्वयं ही एक आदर्श होते हैं जिसकी ओर दूसरों को स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये सब कुछ बलिदान करके स्वतः बढ़ना चाहिये। किसी प्रकार के व्यक्ति अपने ऊपर कोई कार्यभार डाल लें, चाहे एक अध्यापक, प्रोफेसर,

समाचारपत्र सम्पादक अथवा सामाजिक कार्यकर्ता इत्यादि का स्वरूप ग्रहण कर ले तो उन पर कोई श्रम कानून नहीं लागू किया जाना चाहिये। इस प्रकार के आन्तरिक गुणों की मान्यता के लिये किसी भी वाह्य प्रक्रिया को निर्धारित करते समय एक कठिनाई निश्चित रूप से सामने आवेगी। ऐसे व्यक्ति ऐसे श्रमिकों के ही वर्ग में कार्य कर रहे हो सकते हैं जिनके लिये न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण आवश्यक हो। केवल एक ही मार्ग है कि ऐसे व्यक्तियों के लिये यह अवसर दिया जाना चाहिये कि समय-समय पर वे स्वतः घोषणा कर सकें कि वे साधारण श्रमिको को लागू होने वाले प्रतिमानों से शासित होना नहीं चाहते हैं। ऐसी स्वेच्छा से की गई घोषणा को कानून की सीमायें निश्चित करने के लिए समुचित आधार माना जा सकता है। फलतः एक ही संस्थान में कार्य करने वाले जैसे किसी सामाजिक सेवा संस्थान में कार्य करने वाले कुछ सदस्य औद्योगिक कानून से शासित होंगे, परन्तु उन्हीं के कुछ सहयोगी ऐसे नहीं होंगे जिन्होंने स्वतः बाहर रहना स्वीकार किया हो और उन्हें न्यूनतम मजदूरी जैसे किसी भी औद्योगिक कानून के निमित्त औद्योगिक श्रमिक नहीं माना जाना चाहिये। कार्य के घंटों, अतिरिक्त कार्यावधि, प्राविडेंट फंड इत्यादि के लिये आर्थिक एवं गैर आर्थिक अभि-प्रेरणा से कार्य करने वाले विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों का सहअस्तित्व न केवल व्यवहार्य माना जाना चाहिये वरन् उसे मानवीय प्रगति का प्रेरणादायक प्रतीक मानना चाहिये जो अन्तिम लक्ष्य के रूप में राज्यहीन समाज तक पहुंचा देगा।

## महँगाई भत्ता

यह एक ऐसा विषय है जिस पर वर्तमान समय में अत्यन्त गर्म वातावरण उत्पन्न हुआ है और आज भी बिना किसी कमी के चल रहा है। भारत में मूल्यों की प्रगति ने एक सीधी ऊर्ध्व गति का प्रमाण दिया है और वह जनता के सभी वर्गों के लिये कठिनाइयां उत्पन्न कर रही हैं। इस सम्बन्ध में ऐसे श्रमिक जिनकी तुलनात्मक दृष्टि से स्थिर आय है सर्वाधिक हानि उठाने वालो में से हैं। वे पूर्ण रूप से देश के औद्यो-गिक संस्थानों पर अपने जीवन निर्वाह के निमित्त निर्भर हैं। उनकी मजदूरियां, कुछ अत्यंत दुर्लभ अपवादों को छोड़ कर, उत्पादन अथवा उत्पादकता के आधार पर निर्धारित नहीं होती है और न हीं वे स्वयं सेवा नियोजित क्षेत्र के समान अपनी वस्तुओं अथवा सेवाओं का मूल्य खुले बाजार में तय कर सकते हैं। इस प्रकार वे आकाश छूते मूल्यों के सहायताहीन लक्ष्य बन जाते हैं। जीवन की इन प्रतिकूलताओं की आंशिक प्रतिक्रिया के रूप में उन्होंने विरोध में अपनी आवाज उठाने का यत्न किया है और मूल्यवृद्धि की क्षतिपूर्ति के रूप में महँगाई भत्ता की मांग की है। यह महँगाई भत्ता की

व्यवस्था युद्धकालीन अर्थव्यवस्था की खुमारी के रूप में जीवित है और केवल भारत एवं पाकिस्तान की विशिष्टता है। मँहगाई भत्ता के लिये श्रमिकों की माँग जीवन निर्वाह निर्देशांक के आधार पर शत-प्रतिशत प्रभाव-निरसन की अत्यन्त प्रगट है। आधुनातन काल में जीवन निर्वाह निर्देशांकों के निर्माण की भ्रमपूर्ण प्रणाली के सम्बन्ध में भी विरोध उत्पन्न हुआ है यद्यपि उनमें से कुछ का संशोधन किया गया है परन्तु १९५८–५९ के पारिवारिक आय व्यय के अनुसन्धान के आधार पर उनके बनाये जाने के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बदल पर आज भी सरकार विचार कर रही है। वास्तव में सांख्यिकीय समंकों के इस अति महत्वपूर्ण भाग के सम्बन्ध में सरकार द्वारा देरी और गोपनीयता अत्यन्त रोष कारक है। इस समय तक हमें १९६८–६९ के परिवार जीवन निर्वाह सवक्षण के निमित्त तैयार होना चाहिये था परन्तु दुर्भाग्य से अभी तक हम इस शताब्दी के द्वितीय एवं तृतीय दशकों की पंगु उपभोक्ता मूल्य निर्देशांको की समंकमाल से मुक्त नहीं हो सके हैं। सरकार निश्चय ही श्रमिकों को प्रत्येक प्रकार की उत्तेजना का कारण प्रदान कर रही है जो कि मूल्य वृद्धि के अत्यन्त भावप्रवण प्रश्न और उसके प्रभाव निरसन से सम्बद्ध है। यहां तक कि केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के मंहगाई भत्ता निर्धारण सिद्धान्तों पर अधुनातन खोज ने प्रकट रूप से तृतीय वेतन आयोग के सामने उपस्थित प्रश्नों के अधिकतम भाग को विलम्बित कर दिया है। इसके अतिरिक्त श्रमिकों से कहा जाता है कि वे एंड-हॉक सुविधाओं से सन्तुष्ट रहें जिनके अनुसार मँहगाई भत्ता में वृद्धियां दी जाती हैं परन्तु जो परिस्थिति का सामना आधी दूरी तक भी नहीं करतीं।

यह एक आश्चर्य की बात होती यदि इन परिस्थितियों में पूर्ण प्रभाव निरसन की उपयुक्तता या अनुपयुक्तता के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपालन न किया होता। वर्तमान आर्थिक स्थिति में मूल्य–मजदूरी–मूल्य के चक्र से सम्बन्धित पुराने सम्बोधों को धार्मिक सत्य मान कर प्रयुक्त किया गया है और उनकी समुचितता की कोई परीक्षा नहीं की गई है। यहां तक भी कहा गया है कि आर्थिक विकास के हितों की रक्षा के लिये श्रमिकों की यथार्थ मजदूरियां नीची होनी चाहिए। इस शील जनता के सम्बन्ध में लेखकों द्वारा ऐसे मत प्रकट किये जाते हैं जो उन्हें बहते हुए निम्न करों, उच्च लाभों और धनिकों को अन्य प्रेरणायें जिससे वे अपने कोषों को विनियोजित कर सकें और पूँजी निर्माण में गति ला सकें, की भी देते हैं तो मानवीय प्रेरणा के उस सम्बोध के विषय में आश्चर्य होने लगता है जिसने इन योग्य सिद्धान्तवादियों को चालना दी है। यहां तक कि सरकार भी जो अपने राष्ट्रीय गुण के रूप में बचत करने के लिये कहती है ऐसा देखा गया है कि वह

उद्देश्यों के लिये केवल अपने अहं को पूर्ण करने के लिये अथवा स्वय गद्दी पर बने रहने के लिये करोड़ों रुपया बर्बाद करती है। परन्तु राष्ट्र इस समस्या की अवहेलना अब अधिक दिन तक नहीं कर सकता है। औद्योगिक मोर्चे पर किसी दृढ एवं प्रोत्साहन देने वाले पग को उठाने से पूर्व इस समस्या का समाधान एक निरपेक्ष आवश्यकता है। इस वर्ष अच्छे मानसून के होने पर इस कठिन समस्या का सदैव के लिए निराकरण करने के निमित्त एक विशेष सुविधा प्राप्त हुयी है क्योंकि इस प्रश्न के दीर्घकालीन पहलुओं पर विचार करना सरकार के लिये अब सम्भव होगा यदि इस समृद्धि के वर्ष में खाद्यमूल्यों पर नियन्त्रण करके सरकार सापेक्षिक मूल्य स्थिरता का वातावरण बना सकती है।

मँहगाई भत्ते का प्रश्न एक सर्वग्राही प्रश्न है और इकाई के स्तर पर सौदेबाजी पर उसका समाधान छोड़ देना घोर पलायनवाद होगा। इस सम्बन्ध में मूल्य प्रवृत्तियों को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्वों से सही सिद्धान्तों और प्रतिमानों के प्रयोग द्वारा निपटा जा सकता है। कठिनाई इतनी अधिक प्राविधिक नहीं है जितनी कि राजनैतिक। इस सम्बन्ध में ग्रेट ब्रिटेन के द्वारा किया गया अध्ययन प्रश्न की सभी प्राविधिक दृष्टिकोणों से विशद व्याख्या करता हैं। यद्यपि वह देश अपनी मूल सुनियोजित नीति को पूर्ण रूप से साकार इसलिये नहीं कर सका है क्यों कि उसकी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय पर अत्यधिक निर्भरता है। यह उदाहरण केवल विकसित देश पर ही लागू नहीं होता वरन विकासमान देशों पर भी लागू होता है। उसके अन्तर्गत प्रस्तावित समाधान आर्थिक व्यवहार के अधिक स्थायी सिद्धान्तों पर आधारित है। इस विषय का प्रमुख विचार उत्पादकता, मूल्य और आय सम्बन्धी उद्देश्य पर सरकार द्वारा प्रकाशित एक संयुक्त वक्तव्य में अनुवद्य है जिसे ब्रिटिश उद्योग के दोनों ही पक्षों के प्रतिनिधियों की सहमति प्राप्त थी। उद्देश्य के वक्तव्य के दोनों ही पक्षों की सहमति थी कि वास्तविक आर्थिक उद्भव, जिसमें मूल्य स्थिरता भी हो, का मार्ग राष्ट्रीय उत्पादकता की औसत वृद्धि के आधार पर औसत वेतन वृद्धियों को परिसीमित करना है। इस वक्तव्य में वार्षिक वेतन वृद्धियों के मान दण्ड उल्लिखित थे। और साथ ही उन आधारों का भी उल्लेख था जिनमें अपवाद किये जा सकते हों। इसके पश्चात ही मूल्यों और आयों के राष्ट्रीय बोर्ड का गठन किया गया जिसका कार्य यह था कि सरकार द्वारा संदर्भित विशिष्ट मजदूरी की माँगों अथवा मूल्य वृद्धियों के सम्बन्ध में अनुसंधान करे और निर्णय करे कि क्या वे राष्ट्रीय हित में हैं। इस राष्ट्रीय बोर्ड को मामले सौंपने के व्यवहार की पूर्ति के रूप में एक ऐसी व्यवस्था बनाई गई जिसके अनुसार मूल मजदूरी और मूल्य वृद्धियों के सम्बन्ध में पूर्व चेतावनी दे दी जाय। इसके कारण बिना में एक

बहुत ही प्रभावी ढंग से ट्रेड यूनियन कांग्रेस की जनरल कौंसिल का प्रवेश हो गया। इस पग के द्वारा प्राकृतिक ढंग से ब्रिटिश ट्रेड यूनियनों के भीतर केन्द्रीय सत्ता के एक अंश का प्रवेश हुआ जिसने श्रमिकों के लिये यथार्थ रूप में मूल्य बृद्धि सुनिश्चित कर दी। मँहगाई भत्ते की व्यवस्था को श्रमिक विश्व भर में कहीं भी पसन्द नहीं करते। भारत में यह प्रश्न उठाया भी नहीं जाता यदि स्थिर मूल्य स्तर का वातावरण पाया जाता। वास्तव में श्रमिक अपने जीवन निर्वाह स्तर को यथार्थ मजदूरी में बृद्धि द्वारा उठाना चाहते हैं। एडहॉक मौद्रिक बृद्धियाँ जो मूल समस्याओं को छूती ही नहीं हैं निश्चय ही भ्रमोत्पादक हैं। श्रमिक किसी भी औद्योगिक सम्बन्ध अथवा औद्योगिक नीति की व्यवस्था में पूर्ण सहयोग देने के लिए कटिबद्ध हैं जो कि उनके लिए उनकी मजदूरी की मूल वस्तु में निश्चित बृद्धि कर सकें।

भारतीय परिस्थिति में वास्तविक संकट यह है कि प्रचार के साधन अत्यधिक रूप से पूँजीपतियों और सरकार के हाथों में हैं और उन्होंने भारतीय श्रमिक की एक झूठी प्रतिमा खड़ी कर दी है। यह कल्पना कर ली जाती है कि भारतीय श्रमिक उत्पादकता के प्रति कोई झुकाव नहीं दिखलाता और केवल अपनी मांगों और अधिकारों की जिद करता है। यह विचार पूर्ण के लिये केवल एक अर्ध सत्य की प्रतिस्थापना है। नियंत्रण उद्योग के सर्वोच्च स्थानों पर नियुक्तियाँ यह दिखलाती हैं कि भारतीय उद्योग और यहाँ तक कि लोक उपक्रम भी आज भी एक पारवारिक समझे जाते हैं जो कि जन्म या राजनैतिक सम्बन्धों के आधार पर चलते हैं। भारतीय सेवा नियोजक का यदि झुकाव यदि उत्पादकता की ओर होता तो हमें आज के क्रियाशील व्यवस्था की अपेक्षा अधिक योग्य व्यवस्था प्राप्त हो जाती। सरलता से प्राप्त होने वाली मुद्रा की अधिकता, उत्पादित वस्तुओं में मिश्रण के द्वारा लाभ का छल साधन, सस्ते विज्ञापन द्वारा बाजारों को जीतना, एकाधिकारी विक्रय अथवा फुटकर बचतों की व्यवस्था द्वारा लाभ का छल साधन इत्यादि बहुत अधिक देखने में आता है। भारतीय उत्पादन के लिये आज भी गुण अथवा लागतों के सम्बन्ध में नाम कमाना आज भी शेष है और इससे भारतीय उद्योग का सम्मान किसी भी प्रकार से नहीं बढ़ता है। वास्तविक तथ्य यह है कि प्रतिष्ठित व्यवस्थापक क्षेत्रों में केवल उत्पादकता के सम्बन्ध में अत्यधिक चर्चा ही होती है। किन्तु यह ज्ञात नहीं है कि पूँजीपति जो कि सम्पूर्ण प्रकिया को पूँजी प्रदान करता है और अन्ततः नियन्त्रित करता है, विषय को जानता है अथवा नहीं। यही स्थिति मन्त्रियों और संसद सदस्यों की है जो कि कार्यों के आकलन पर निर्णय देने के लिये बैठे हैं। नौकरी करने वाले व्यवस्थापिकों का एक छोटा सा वृत्त ऐसा है जो मंच पर अत्यन्त सलज्ज अवतरण कर रहा है और वैज्ञानिक व्यवस्थापन में कुछ रुचि ले रहा है। मूलतः

के चक्र से संघर्ष करने का उत्पादिकता के माध्यम से प्रयत्न केवल वह छोटा सा वर्ग कर रहा है जो श्रमिकों के लिये कोई भी आश्वासन प्रदान करने में असमर्थ है। वास्तव में भारतीय श्रमिक का सामना किसी ऐसे यथार्थ चैलेन्ज से नहीं हुआ है जिससे वह खेल में अपने भाग्य का निर्णय कर सके। उसे त्याग और बचत करने की सलाह की खुराक दी जाती है। अत्यन्त गिरी हुई और निम्न जीवन निर्वाह की स्थिति में यह आश्चर्य नहीं करना चाहिये कि वह धनिकों द्वारा गरीबों को दी जाने वाली खोखली सलाहों पर ध्यान देने का मन रखें। उनके पीछे दबाव डालने वाली कोई भी शक्ति भी नहीं हैं।

इसके विपरीत भारत में जो भी श्रम समंक उपलब्ध कराये गये हैं, वह दिखाते हैं कि भारतीय श्रमिक को उत्पादकता के लाभों में कोई भी भाग नहीं दिया जाता है। उदाहरणार्थ : उत्पादन के मासिक आँकड़ों और इण्डियन लेवर जर्नल के अंकों के आधार पर बनाई गई निम्नलिखित सारिणी उपरोक्त वक्तव्य की प्रमाणिकता सिद्ध करती है :—

**वास्तविक प्रतिमानों में श्रम उत्पादकता के निर्देशांक (१९५१=१००)**

| वर्ष | औसत प्रतिदिन रोजगारी का निर्देशांक | केवल औद्योगिक उत्पादन में निर्माण का निर्देशांक | निर्माण में वास्तविक प्रतिमानों के आधार पर श्रम-उत्पादकता का निर्देशांक | वास्तविक आयों का निर्देशांक |
|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ |
| १९५१ | १००.० | १००.० | १००.० | १००.० |
| १९५२ | ९९.० | १०३.० | १०४.० | १०१.३ |
| १९५६ | १०६.७ | १३७.२ | १२८.६ | ११५.४ |
| १९६० | ११७.३ | १७५.३ | १४९.४ | १२३.८ |
| १९६१ | १२२.१ | १८५.१ | १५१.१ | १२५.५ |
| १९६२ | १२८.० | २०१.१ | १५७.१ | १२६.५ |
| १९६३ | १३६.० | २१६.२ | १५९.० | १२९.० |
| १९६४ | १४२.६ | २३३.५ | १६३.७ | १३२.१ |

(स्रोत : भारतीय श्रम जर्नल, भारतीय श्रम सांख्यकी, १९६६ सारणी ४.२ तथा भारत में चुने गये उद्योगों के उत्पादन के मासिक आँकड़े, अक्टूबर १९६५)

२०० रु० प्रति माह से कम आय पाने वाले कर्मचारियों की आय के निर्देशांक दिखलाने वाली एक सारिणी भारतीय श्रम सांख्यकी १९६६ में दी गई है और उसकी प्रवृत्ति का भी समर्थन करती है। यह सारिणी निम्नलिखित है :—

(आधार १९५१ = १००)

| वर्ष | मौद्रिक आयों के निर्देशांक | अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक | वास्तविक आयों के निर्देशांक |
|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ |
| १९५२ | १०७.१ | ९८.१ | १०९.२ |
| १९५५ | ११३.१ | ९१.४ | १२३.७ |
| १९६० | १३४.४ | ११८.१ | [illegible] |
| १९६१ | १३८.६ | १२०.७ | [illegible] |
| १९६२ | १४४.० | १२३.८ | [illegible] |
| १९६३ | १४५.२ | १२७.६ | [illegible] |
| १९६४ | १४८.७ | १४४.८ | १०२.७ |

कदाचित यह सम्भव हो सकता है कि श्रम उत्पादकता की वृद्धियाँ [illegible] सारिणी में दिखाई गई हैं पूर्ण रूप से नहीं अंशतः अधिक पूँजी नियोजन [illegible] हों। परन्तु फिर भी यह भूला नहीं जा सकता है कि पूँजी विनियोग को यह [illegible] भी धनवान व्यक्तियों के द्वारा की जाती है जोकि उनको और अधिक धनवान [illegible] और कोई भी प्रयत्न नहीं किया जाता जिससे श्रम को भी हिस्सा मिल सके। [illegible] समान देश ने भी श्रमिकों को एक उच्च स्थान और व्यवस्थापना में हिस्सा [illegible] है। भारत के श्रमिक वास्तव में एक से अधिक प्रकार से विकल हैं। [illegible] प्रभावित करने में उनका कोई हिस्सा नहीं है। जैसा कि उपरोक्त आंकड़ों से [illegible] (और १९६४ के पश्चात प्रवृत्ति की और खराब होने की सम्भावना है) [illegible] दकता में मिलने वाला कोई भी हिस्सा नहीं दिया जाता। कुछ थोड़े से [illegible] पर धन में वृद्धि हो रही है, परन्तु श्रमिकों की वास्तविक मजदूरियाँ नीचे जा [illegible] और फिर भी उन पर यह आक्षेप लगाया जा रहा है कि वे अर्थ व्यवस्था में [illegible]

प्रेरित मुद्रा स्फीत उत्पन्न कर रहे हैं। श्रमिकों के लिए यह एक असह्य परिस्थिति है जिसका सामना वीरता से करना चाहिये। विश्वास करने के लिए कोई भी प्रमाण इस प्रकार का प्राप्त नहीं है जिससे कि यह माना जा सके कि भारतीय अर्थव्यवस्था में लागत प्रेरित मुद्रास्फीत है। भारतीय श्रम पर इस सम्बन्ध में सबसे अधिक तीव्र आक्रमण पैन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय के एक विदेशी प्रोफेसर सिडनी वीनट्राव ने किया है। "बिना मुद्रा स्फीति के विकास" नामक रिपोर्ट में उक्त प्रोफेसर ने भारतीय मुद्रास्फीति की स्थिति को मौद्रिक मजदूरियों और श्रम उत्पादकता के बीच एक असन्तुलन के रूप में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। परन्तु उसी रिपोर्ट की प्रस्तावना में नेशनल कौंसिल ऑफ एप्लायड एकनोमिक्स रिसर्च के डायरैक्टर जनरल डा० पी० एस० लोकनाथन ने अंगुलि निर्देश किया है कि इस प्रकार से विचार करने की अनेक गम्भीर परिसीमायें हैं। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि मुद्रास्फीत किस प्रकार से सामान्यतः एक मिश्रित घटना है और प्रमुख दोषी के रूप में किसी भी अकेले तत्व को पकड़ पाना अत्यन्त कठिन है। केन्द्रीय श्रम मन्त्रणालय ने इस विचार के विरोध में कहकर अच्छा कार्य किया है कि Wage board के निर्णयों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की लागतें और मूल्य विशेष रूप से बढ़ें। इस प्रकार का श्रम मन्त्रणालय का अध्ययन जोकि अक्टूबर १९६७ की Standing labour Committeey की मीटिंग के लिए एक टिप्पणी के रूप में तैयार किया गया है, अपने प्रकार का प्रथम है और यदि भविष्य में उसी प्रकार के अध्ययन किये गये तो वे हमें भारतीय आर्थिक स्थिति का एक वास्तविक चित्र प्रदान कर सकेंगे। किसी भी अवस्था में यह तो स्पष्ट है ही कि भारतीय श्रमिक तेजी से बढ़ते हुए मूल्यों के सन्दर्भ में तेजी से अपनी वास्तविक मजदूरी को गँवा रहा है और वास्तविक मजदूरी के लिये पूर्ण सुरक्षा की उसकी मांग के पीछे सभी नैतिक और आर्थिक समर्थन हैं। मँहगाई भत्ते की नीति को वास्तविक मजदूरी की सुरक्षा जैसे आधारभूत विचार पर बनाया जाना चाहिये।

अतः किसी भी कीमत पर किसी भी श्रमिक की वास्तविक मजदूरी को संशोधित जीवन लागत निर्देशांक के अनुसार शत प्रतिशत प्रभाव निरोधन की अपेक्षा सारा लाभ ही कम करने में कोई न्याय संगत उक्ति नहीं है। जनता के जीवन निर्वाह स्तरों को सुधारने का राष्ट्रीय लक्ष्य पूर्ण रूप से पराजित हो जावेगा यदि शत प्रतिशत प्रभाव निरोधन में एक प्रतिशत कम भी प्रतिमान स्वीकार कर लिया जाय क्योंकि सारा प्रयत्न वास्तविक मजदूरी को बढ़ाने के लिये होना चाहिये न कि उसे करने के लिये। ऐसा करने का तर्क उत्पादकता के लाभों को वितरित करना है। भारत में प्राप्त आंकड़े यह बतलाते हैं कि परिस्थितियों का न्याय यही है कि भारतीय श्रमिक की वास्तविक मजदूरी में वृद्धि की

जाय । परन्तु ऐसा हुआ नहीं है । उसके अतिरिक्त सबसे खराब बात यह है कि वास्तविक मजदूरियों एवं उत्पादकता के बीच कोई सुविचारित सम्बन्ध नहीं स्थापित किया गया । श्रम को बलि का बकरा बनाया जा रहा है और उसकी निम्न जीवन निर्वाह स्तर के प्रति कोई चिंता न करते हुए उस पर सारे दोष लादे जा रहे हैं । प्रायः उसकी सुरक्षा और विकास की प्राथमिकताओं की बात की जाती है परन्तु वास्तव में यह उसकी वास्तविक मजदूरी को कम करने के लिये कोई तर्क नहीं माना जा सकता । सुरक्षा पर व्यय जनकोष से करों के माध्यम से प्राप्त होता है । किसी ने भी मँहगाई भत्ते में शत प्रतिशत प्रभाव निरसन के तर्क समर्थन करते हुए प्रत्यक्ष करों के समाप्त किये जाने का प्रश्न नहीं उठाया है । ऐसी कल्पना की जाती है कि उद्योग और व्यापार की आर्थिक सुव्यवस्था से प्रत्यक्ष कर बढ़ सकते हैं । उन्हें लागत समझा जाता है जोकि उद्योग के फलों के प्रति श्रमिक की माँग होने से पहिले ही उत्पादकता के लाभ चुपचाप खा जाते हैं । मँहगाई भत्ते के मूल्य प्रभाव निरशन को कम करने के लिये उसे पुनः चित्र में लाना नहीं चाहिए, इसी प्रकार से विकास की आवश्यकताओं को भी वास्तविक मजदूरियों को कम करने का कारण नहीं बनाना चाहिए । सभी विकास सम्बन्धी वित्तीकरण के लिये दृढ़ सिद्धान्त यह है कि उसकी प्राप्ति उद्योग के उत्पादकता लाभों के विनियोग से होना चाहिये । अतः हम पुनः उसी टालू और राजनैतिक व्यवहार के सामने पहुँच जाते हैं जो कि उत्पादकता के प्रति किया जा रहा है उसे व्यवस्थापिकों के एक प्रचार साधन के रूप में और बिना किसी गम्भीर और कार्यकारी प्रस्ताव के जिससे श्रम की उन्नति हो सके । यद्यपि इसे स्वीकार कर लिया जाय । जबकि यह आवश्यक नहीं है कि विकास सम्बन्धी प्रयत्नों का प्रवाह चालू परित्यागों के मध्य से होना चाहिए तो भी ऐसा कोई कारण नहीं है कि यह परित्याग गरीब श्रमिकों के द्वारा किया जाय जो कि उपभोग व्यय पर पूँजी को इसलिये आकर्षित करें कि उसे भावी उद्योगों में लगाया जा सके । जहां तक राष्ट्रीय मांगों का प्रश्न है पूँजी और श्रम दोनों ही उनके आधीन होने चाहिए और कल्याणकारी समाज की साधारण आवश्यकता यह है कि जो भी अधिक के लिये अधिक सशक्त हों उसे खेल में छूट नहीं दी जानी चाहिये । यदि बिना आकर्षण के पूँजी आगे आने में सलज्ज हो तो उसे राष्ट्रीय हल में अवश्य देना चाहिए । जहां तक राष्ट्रीय हितों का प्रश्न है उनकी तुलना में निजी को पवित्र नहीं माना जा सकता । दूसरी ओर पूँजी निर्माण और विनियोग की भावी योजनायें श्रम के नाम पर साथ-साथ चल सकती हैं । यदि राष्ट्र निर्णय करता है कि विनियोग की दृष्टि से उद्योगों में एक निश्चित विकास की दर रखी जाय और यदि इस दर को प्राप्त करने में श्रम के उपभोग में कटौती करनी पड़ी तो ऐसा करने के लिए श्रमिक को अपने उद्योग में अंश प्रदान करके या यूनिट ट्रस्ट बैंक के

किया जा सकता है। इससे यदि वर्तमान में नहीं तो भविष्य में समृद्धि में उसका भाग उसके लिए सुरक्षित हो जावेगा। विकास वित्तीकरण की सारी आवश्यकतायें इस प्रकार से पूर्ण की जा सकती हैं। यह मार्ग उद्योगों के प्रजातन्त्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करायेगा और विकास प्रक्रिया में सामाजिक लागतों के प्रभाव को संतुलित करेगा। विकास या सुरक्षा की आवश्यकतायें वास्तविक मजदूरी प्रदान करने में कोई अवरोध नहीं उत्पन्न करती हैं।

भारतीय परिस्थिति की सच्चाई यह है कि वर्तमान मुद्रा स्फीति प्रायः सरकार द्वारा उत्पन्न की गई परिस्थिति है। राजनैतिक परिस्थितियों के दबावों के समक्ष नत होकर सरकार ने बढ़ी मात्रा में हीन अर्थ प्रबन्ध की नीति को अपनाया। इस प्रकार से उत्पन्न की गई मुद्रा का बहाव या तो सरकारी ठेकेदारों की जेबों की ओर हुआ जिन्होंने विभिन्न छल साधनों से अनुज्ञा पत्रों पर अधिकार करके सरल मुद्रा कमाई अथवा ग्राम्य और सहकारिता के माध्यम से बड़े भूमिपतियों या बड़े किसानों की ओर गया जो कि राजनीतिज्ञों के प्रमुख समर्थक हैं। ग्रामीण वित्तीकरण में हानिकारक ऋणों का दबाव, ऋणों का गलत प्रयोग अथवा क्षेत्रीय स्तर पर या मन्त्रियों के स्तर पर मुद्रा का दुरुपयोग नौकरशाही क्षेत्रों में भ्रष्टाचार को प्रोत्साहित करने के कारण बने और इन्होंने काले बाजार के व्यापारियों और सटोरियों को दृढ़ बनाया जिससे वे बहती हुई मुद्रा को बुद्धिमत्ता पूर्वक अपने जाल में रोक सकें यही कारण है कि हम भारतीय बाजार की परिस्थितियों में अत्यन्त अनोखा व्यवहार देखते हैं। यद्यपि मूल्यों में बड़ी तेजी दिखाई पड़ती है। उपभोक्ताओं द्वारा गम्भीर प्रक्रिया का नितान्त अभाव है। जो थोड़ा सा भी संगठन हो सका है वह केवल ट्रेड यूनियनों के समर्थन का परिणाम है कभी-कभी जनता के कुछ वर्गों और विशेष रूप से गैरश्रमिकों को ऐसा अनुभव होता कि किसी भी वस्तु का मूल्य अधिक महत्व का नहीं है। ये उपभोक्ता उसे किसी भी मूल्य पर खरीदने को तैयार हैं यदि वह बाजार में प्राप्त हो। वास्तव में हम यह नहीं सकते कि भारत में संगठित श्रमिकों की कुल शक्ति जनसंख्या के अनुपात में महत्वहीन है और जब हम देखते हैं कि उनकी वास्तविक मजदूरियां गिर रही हैं श्रम उत्पादकता में वृद्धि हो रही है तो कोई भी व्यक्ति यह सुझाव कैसे दे सकता भारतीय अर्थव्यवस्था में मूल्य-मजदूरी-मूल्य का चक्र कार्य कर रहा है? भारत में रियों का व्यवहार विश्चय ही भारतीय अर्थव्यवस्था के वर्तमान बीमारियों नहीं है। इसके प्रतिकूल यह व्यवहार आर्थिक बीमारियों का एक निर्देशक अंश तक धनवान धनी और गरीब निर्धन होता चला जा रहा है यह परिस्थिति के हितों की सुरक्षा के लिए सक्रीयता का आह्वान करती है और ऐसा

मजदूरियों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करके किया जा सकता है। सरकार जो कि मूल्य का प्रमुख प्रोत्साहक है उसकी यह केन्द्रीय जिम्मेदारी होनी चाहिए। यदि एक बार यह केन्द्रीय दायित्व स्वीकार कर लिया जाय तो अन्य प्रश्न केवल प्रक्रिया सम्बन्धी पहल मात्र बन जाते हैं।

अतः वास्तविक मजदूरी को प्रत्येक परिस्थिति में सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता स्वीकार करने के पश्चात ऐसा करने का स्वरूप अधिक लचीले आधार पर जांचा जा सकता है। जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं कि भारत में मँहगाई भत्ते की व्यवस्था इस देश की विशेषता है और विदेशी शासन की विरासत है। यह एक प्रकार से सेवानियोजकों को सुरक्षा प्रदान कर रही है जो सेवा निवृत्ति लाभों अथवा वेतन से सम्बन्धित भत्तों की गणना में मँहगाई भत्ते की उपेक्षा कर सकते हैं। हमारे विचार से सामान्य भुगतान की उस व्यवस्था की ओर हमें चलना चाहिये जिसमें मँहगाई भत्ता वेतन में सम्मिलित कर दिया जाय और सम्पूर्ण वेतन को प्रत्येक स्तर पर एक निर्देशांक से सम्बन्धित कर दिया जाय। ऐसा वर्तमान व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके किया जा सकता है अथवा ऐसी व्यवस्था के द्वारा किया जा सकता है जिसमें प्रत्येक इकाई के अनुसार वेतन के पुनर्आकलन का अवसर दिया जाय जिसमें मँहगाई भत्ता और वेतन को मिला दिया जाय और निर्देशांक के परिवर्तन के अनुसार उसमें वृद्धि की योजना रखी जाय।

सारे देश में मूल्य वृद्धि के प्रभाव निरशन के स्वरूप का मुख्य आकार एक होना चाहिए। यह व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि जहां तक सम्भव हो विन्दु से विन्दु और महीने से महीने के अनुसार सम्बन्धित जीवन निर्वाह निर्देशांक के वृद्धिमूलक तत्व की गणना की जानी चाहिए। इस प्रकार दिया जाने वाला प्रभाव निरशन वास्तविक वेतन के आधार पर होना चाहिए न कि विभिन्न स्तरों के आधार पर जैसा कि केन्द्रीय सरकार की सेवाओं में किया जाता है अथवा न्यूनतम वेतन के आधार पर जैसा कि टेक्सटाइल उद्योग में किया जाता है। इन दोनों ही उदाहरणों में श्रमिकों की एक बड़ी संख्या को घोषित प्रभाव निरशन से कम दिया जाता है और न्यूनतम आधार पर दिया जाने वाला प्रभाव निरशन श्रमिकों के विरुद्ध एक प्रचार अस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यह एक अन्य उदाहरण है कि किस प्रकार से सरकार और सेवानियोजक द्वारा एक प्रतिक्रिया कारक प्रचार श्रमिकों के विरुद्ध किया जाता है और वास्तविकता के स्थान पर आंकड़ों का जाल बुना जाता है। सभी स्तरों पर श्रमिकों को कम से कम वर्तमान आधार पर साढ़े ७०० रुपया मासिक तक अपने मूल वेतन की प्रत्येक पाई के लिये जीवन निर्वाह लागत में प्रत्येक बिन्दु की वृद्धि के लिए शत-प्रतिशत प्रभाव निरशन

दिया जाना चाहिए। इस गणना के लिए आधार वर्ष वही होना चाहिए जो कि तत्सम्बन्धी निर्देशांक के लिए हो। इस निर्देशांक को भी प्रत्येक दस वर्ष के बाद एक नई दस वर्षीय परिवार आय–व्ययक खोज के आधार पर बदल देना चाहिए। यह अनुसन्धान स्थायी त्रिदलीय मशीनरी के सिद्धान्त निरीक्षण में नियुक्त एक स्वतन्त्र विशेषज्ञ समिति के द्वारा किया जाना चाहिये। यह अनुसंधान समाज के तीन विभिन्न स्तरों को सम्बोधित किया जाना चाहिए। (अ) कृषि या ग्रामीण श्रमिक (ब) फैक्ट्री श्रमिक और (स) मध्यम वर्गीय कर्मचारी। प्रत्येक स्तर के लिए उपभोक्ता मूल्य निर्देशांकों की समुचित समंक मालायें बनायी जानी चाहिए और उनको तत्सम्बन्धी वर्ग के आय–व्ययक खोज पर आधारित किया जाना चाहिए। अतः कृषि सम्बन्धी जीवन निर्वाह निर्देशांक को चाहिए कि कृषि श्रमिक के लिए एक निश्चित यथार्थ मजदूरी के मौद्रिक मूल्य को ज्ञात करें और इसी प्रकार श्रमिकों और मध्यमवर्गीय कर्मचारियों से सम्बन्धित निर्देशांकों का कार्य होना चाहिए। द्वितीयतः यह निर्देशांक विशिष्ट स्थानों, नगरों, क्षेत्रों, राज्यों और सम्पूर्ण देश के लिये अलग-अलग होने चाहिए। प्रत्येक मामले में समुचित निर्देशांक का चुनाव, सौदा करने वाली इकाई और उसकी आवश्यकताओं के अनुसार किया जाना चाहिये। अतः किसी अखिल भारतीय सेवा के लिए अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक अपनाया जाना चाहिए, जबकि एक छोटी स्थानीय फैक्ट्री के लिये स्थानीय निर्देशांक का प्रयोग किया जाना चाहिए। जहां कहीं भी स्थानीय निर्देशांक प्राप्त न हो राज्य अथवा क्षेत्रीय निर्देशांक का प्रयोग परिस्थितियों के अनुसार किया जाना चाहिये। उदाहरणार्थ पूना या बरेली का निर्देशांक उन नगरों के चारों ओर औद्योगिक क्षेत्र में प्रयुक्त होना चाहिये जबकि राज्य परिवहन या विद्युत बोर्ड के संस्थान के लिये जोकि सम्पूर्ण राज्य पर फैला हुआ है राज्य निर्देशांक का प्रयोग किया जाना चाहिये। जहां तक सम्भव हो समंक माला का क्षेत्र उस क्षेत्र के अनुकूल होना चाहिये जिसके श्रमिकों ने एक यूनियन बनाई है और जो अपनी मांग किसी उद्योग के विशिष्ट संस्थान के अनुसार कर रहे हैं। अतः एक फैक्ट्री जिसकी एक शाखा कलकत्ता में हो और दूसरी बम्बई में। इसी कारण से उसे एक अखिल भारतीय निर्देशांक का प्रयोग नहीं करना चाहिये, वरन् विभिन्न श्रमिकों के लिए वे विभिन्न निर्देशांक अपना सकते हैं। इस सम्बन्ध में यह स्मरण करना आवश्यक होगा कि निर्देशांकों का औसत चाहे क्षेत्रीय हो, राज्यीय हो या अखिल भारतीय हो वह प्रावधिक रूप से भ्रममूलक होगा, क्योंकि वह किसी वास्तविकता का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। इस प्रकार का औसत वास्तविकता के आधार प्रायोगिक हो सकता है और इसका प्रयोग केवल उसी समय करना चाहिये जबकि कोई और रास्ता न हो। इसके साथ ही आकलन करने वाली सत्ता नजदीक होनी चाहिए क्योंकि सत्ता के दूर होने पर निर्देशांक की

उपयुक्तता संदेह उत्पन्न होने पर जांची नहीं जा सकती है। निर्देशांकों की भ्रममूलक गणनाओं के सम्बन्ध में अद्यतन ज्ञान के कारण यह विषय अधिक भावनाशील हो गया है और यह आवश्यक है कि निर्देशांक के सम्बन्ध में विश्वास पुनर्जाग्रत किया जाय, परन्तु इसके लिए कठिन निरीक्षण करना होगा। जब अखिल भारतीय निर्देशांक का प्रयोग किया जाता है और स्थानीय भत्तों की मांग की जाती है तब इन मांगों के प्रति उस समय तक न्याय करना असम्भव हो जाता है जब तक विभिन्न नगरों और क्षेत्रों के सम्बन्ध में सापेक्षिक मँहगाई के निर्देशांक उपलब्ध नहीं होते। कुछ प्रकाशनों से यह स्पष्ट होता है कि केन्द्रीय सांख्यिकी संस्था ने इस मामले का रहस्य समझ लिया है और उसे इस बात के लिये प्रेरणा देनी चाहिए कि वह शीघ्र ही सुधारात्मक या सन्तुलनकारी पूरक निर्देशांक बनावे जिनके आधार पर मजदूरी गणना के लिये अखिल भारतीय निर्देशांकों की माला प्रावधिक रूप से स्वीकार हो जावे।

एक बार जब निर्देशांक माला इस प्रकार स्थिर कर दी जाय तो उसे प्रत्येक माह के लिये चालू आधार माना जाय। हमारे समंकों की स्थिति यह है कि मासिक निर्देशांकों के प्रकाशन में एक लम्बी देरी हो जाती है। मूल्यों की सतत वृद्धि के सम्बन्ध में यह विलम्बना श्रमिकों को बहुत हानि पहुंचा रही है। तिमाही, छमाही या वार्षिक औसतों के सम्बन्ध में कोई प्रयत्न और वह भी ५ या १० बिन्दुओं के स्लैब के द्वारा श्रमिकों के विरुद्ध एक षड़यन्त्र मालूम होता है। निर्देशांकों की मासिक आंकड़े एक अच्छे उद्देश्य की पूर्ति कर रहे हैं और प्रशासकीय क्षेत्रों में आवधिक औसतों के सम्बन्ध की नई प्रवृत्ति को महत्व नहीं दिया जाना चाहिये। किसी अपवाद जनिक मामले में जहां मासिक निर्देशांक की गणना सम्भव न हो विकल्प के रूप में मौसमी चार महीने के औसत का प्रयोग किया जा सकता है। क्योंकि जलवायु सम्बन्धी तीन ऋतुयें जाड़ा, गर्मी और बरसात में से प्रत्येक का मूल्य प्रचलन पर प्रभाव होता है और मौसमी औसत मूल्य विचलनों को स्थिर आधार दे सकता है। विशेष रूप से यदि निर्देशांक प्रतिबद्ध बेतन का हमारा सुझाव मान लिया जाय तो निर्देशांकों के मौसमी औसत का कुछ महत्व हो जाता है। परन्तु यह एक सीमा है जिसके आगे किसी भी प्रकार के आवधिक, औसत, चाहे वह चल हों या अचल, को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। वस्तुओं के रूप में पूर्ण भुगतान या आंशिक भुगतान की व्यवस्था वास्तविक मजदूरी की व्यवस्था में कोई अवरोध नहीं उत्पन्न करती क्योंकि मूल्यों का ध्यान रखते हुए जिन पर निर्देशांक आधारित हों मौद्रिक समान मूल्य ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रकार से की गई जांच मौद्रिक गणना को अन्य नगद भुगतानों के समान सम्बन्धित

मौद्रिक मजदूरी माना जा सकता है। हम यह कह चुके हैं कि प्रभाव निरशन की दर मूल वेतन के प्रत्येक रुपये के लिये शत प्रतिशत होनी चाहिए और निर्देशांक के प्रत्येक बिन्दु वृद्धि के लिए अर्थात् एक दोहरी प्रतिबद्धता होनी चाहिए जैसा कि बैंकिंग उद्योग में है। अर्थात् एक वेतन के लिए और दूसरे निर्देशांक बिन्दु के लिये। केवल यही वास्तविक मजदूरी की सुरक्षा निश्चित कर सकता है। इस प्रकार की सुरक्षा के लिये उद्योग की देय क्षमता एक सम्बन्धित सम्बोध उस समय नहीं बन सकता है जबकि सिद्धान्त को सम्पूर्ण राष्ट्र पर लागू किया जाय। वर्तमान समय में कुछ फर्मों या संस्थानों के द्वारा क्षमता के इस तत्व को ढाल बनाया जा रहा है क्योंकि महंगाई भत्ते का सिद्धान्त इकाई के अनुसार सौदेबाजी पर आधारित होना संकल्पित है। एक बार यदि इसे राष्ट्रीय सिद्धान्त बना लिया जाय तो सभी तत्व अपने सही स्थान पर बैठ जायेंगे। वास्तव में मूल्य यंत्र पूर्ण रूप से धनी वर्गों के लाभ के लिए कार्य करता है जोकि अर्थ व्यवस्था और उसके बाजारों पर नियंत्रण कर रहे हैं। सपूर्ण अर्थव्यवस्था में वास्तविक मजदूरी की सुरक्षा एक सन्तुलनकारी तत्व बन जायेगा जो श्रम विरोधी परिस्थिति को दूर करेगा और मूल्य स्तर के स्थिरीकरण को प्रोत्साहित करेगा क्योंकि तब यह अर्थ-व्यवस्था के अप्रभावी वर्गों के लिए मूल्य की वृद्धि लाभदायक नहीं होने देगा जो कि सुविचारित ढंग से मूल्य वृद्धि उत्पन्न कर रहे हैं। मूल्य का स्थिरीकरण उनके लिये अधिक कठिन कार्य नहीं है जो आर्थिक यन्त्र पर नियन्त्रण करते हैं। वर्तमान वितरण या तो उद्देश्य प्रेरित है अथवा राजनैतिक विचलन का प्रतिफल है। किसी भी प्रकार से इस परिस्थिति का इलाज होना चाहिए और इसके लिए प्रेरक संघर्ष किया जाना चाहिये और लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वास्तविक मजदूरी का कानून बनाया जाना चाहिये। कुछ लोगों को ऐसा लगेगा कि यह विचार जीवन निर्वाह निर्देशांक को अत्यधिक अधिक महत्व दे रहे हैं। हम में से सभी को मालूम है कि वे तर्क कौन से थे जिनके कारण प्रावधिक क्षेत्रों ने जीवन निर्वाह निर्देशांक शब्द समूह को उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक शब्द समूह द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया है, क्योंकि वास्तविक जीवन निर्वाह निर्देशांक का बनाना प्रावधिक रूप से सम्भाव्य नहीं है। हमें युद्ध, अकाल या मूल्य वृद्धि की असमान्य परिस्थिति द्वारा उत्पन्न तर्क ज्ञात हैं परन्तु इन विचारों को कुछ समय तक प्रतीक्षा करने देना चाहिये जब तक कि श्रमिकों पर किया जाने वाला संचयी आक्रमण वास्तविक मजदूरी की सुरक्षा के पगों द्वारा निरस्त्र नहीं कर दिया जाता। अर्थ व्यवस्था के घटना मूलक परिवर्तनों को जो कि मासिक निर्देशांक बतलाते हैं अधिक योग्य व्यवहार द्वारा जिसमें कारणों के द्वारा निर्देशांकों के उच्चावचनों में परिवर्तन लाया जा सके, प्रतिनिधिक बनाया जा सकता है यदि बीच में युद्ध के समान कोई राष्ट्रीय संकट उपस्थित हो जाय तो समस्त जनता पर युद्ध कर लगाया

जा सकता है। परन्तु फिर भी पहिले श्रमिकों को उनके खातों में वास्तविक मजदूरी के बराबर बृद्धि दी जानी चाहिये और उसके पश्चात युद्ध कर की कटौती की जानी चाहिये। वास्तविक मजदूरी की निरपेक्ष सुरक्षा एक न्यूनतम पूर्व आवश्यकता है जिसके सम्बन्ध में समझौता नहीं किया जा सकता है। इसी अवश्यम्भावी आधार पर प्रकाशयुक्त मजदूरी नीति की सम्पूर्ण प्रवैगिकी पैगें ले सकती है।

## झालरी (Fringe) भत्ता या अन्य भत्ते

मजदूरी के सिद्धान्तों पर विभिन्न परिचर्चाओं में अथवा श्रम शास्त्रियों के क्षेत्रों में झालरी भत्ते के प्रश्न ने बहुत कम महत्व प्राप्त किया है। इस विषय को दृढ़ सम्बोधात्मक आधार नहीं दिया गया है और परिभाषाओं की भिन्नतायें और क्षेत्रों के विभेद इतने अधिक हैं कि हमारे लिये स्पष्ट बात करने में कठिनाई उत्पन्न करते हैं। राष्ट्रीय श्रम आयोग की विशद प्रश्नावली में भी विषय को केवल आकस्मिक रूप से छुआ गया है और परिभाषा की प्रार्थना की गई है। इस विषय को परिभाषित करने के सम्बन्ध में केवल एक उदाहरण द्वारा विचलनों के अंश को आसानी से समझा जा सकता है। राष्ट्रीय श्रम आयोग की प्रश्नावली की प्रश्न संख्या १७९ चिकित्सा सेवा, बीमारी सुविधा, मातृका सुविधा आदि को समाज सुरक्षा मानता है वहीं मँहगाई भत्ते से सम्बन्धित गजेन्द्र गडकर आयोग की रिपोर्ट चिकित्सा सेवा को झालरी भत्ता मानती है। यह बाद की रिपोर्ट एक पग और आगे बढ़ कर कौटुम्बिक पेन्सन योजना को भी झालरी भत्ते में जोड़ देती है।

हमारे विचार से हमारे देश में इस विषय को गम्भीर एवं तात्कालिक महत्व मिलना चाहिये। श्रमिकों में विभाजित करने के लिये हमारे पास कुल कोष बहुत ही सीमित है। उनका अधिकतम उपयोग किया जाना चाहिये। झालरी भत्तों के सम्बन्ध में अन्तर राष्ट्रीय श्रम संगठन जिनेवा की "कुछ देशों में श्रम के गुण और आर्थिक विकास" नामक पुस्तिका का लघु रूप बनाया जाना चाहिये। इस पुस्तिका के लेखकों ने सामाजिक तत्वों के चार प्रमुख वर्गों से सम्बन्धित सांख्यिकी वस्तु की परीक्षा की है। जिनका सम्भवतया श्रम के गुणों पर प्रभाव पड़ता है। यह हैं :— (१) शिक्षा (२) स्वास्थ्य (३) आवास (४) सुरक्षा। लेखकों ने विभिन्न श्रम गुण निर्देशांकों की परीक्षा के आधार पर यह ज्ञात किया है कि खाद्य का स्तर आर्थिक विकास से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रखता है। उच्च शिक्षित वर्गों में इस स्तर की बृद्धि एक चल प्रमाण के रूप में आशा बँधाती है। भारतीय मजदूर संघ की यूनियनों का यह

अनुभव रहा है कि अति सुन्दर कैन्टीन व्यवस्थायें या आवास की निकटता का नागरी क्षेत्रों में अनुपस्थिति को कम करने में बहुत अच्छा प्रभाव रहा है। हमारे देश में अभी तक सामाजिक सुविधाओं पर किये गये व्ययों का श्रम शक्ति के गुण पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट आंकिक आधार पर नापने की विधि का विकास नहीं हो सका है। उपरोक्त पुस्तिका में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार से सांख्यिकी रीतियों को विभिन्न प्रकार के झालरी भत्तों और आर्थिक विकास पर उनके प्रभाव के आंकिक स्वरूप को जानने के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है जिससे यह ज्ञात हो सके कि झालरी भत्तों से श्रम के गुणों की कहाँ तक बृद्धि हुई है। जब तक सुयोग्य प्रकार से इस प्रकार का व्यायाम नहीं किया जाता उत्पादन लागतों पर झालरी भत्तो के प्रभाव को जाँचा नहीं जा सकता है। अधिक मौद्रिक आयों के विकल्प के रूप में उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है जिससे उद्योग की लागत या श्रमिकों को लाभ का पता चल सके।

झालरी भत्तों पर एक अन्य विचार है जिसका हम भारतीय परिस्थितियों में माडल के रूप में प्रतिपादन करना चाहते हैं। परन्तु इस विषय पर हम विस्तार से विचार करने के पूर्व एक नवीन विचार रखना उपयुक्त समझते हैं जिसके अनुसार झालरी भत्तों को सुनहरी जजीरें माना गया है। इस विचार के अनुसार सेवा नियोजकों द्वारा झालरी भत्ते देकर कर्मचारियों को अपनी इच्छाओं और योजनाओं के अनुसार सुनहरी जंजीरों में बाँध दिया जाता है। अतः एक मकान जो कि किसी कर्मचारी को एलाट कर दिया जाय जिसका वह अपने सम्पूर्ण कार्यकाल में भी स्वामी नहीं बन सकता है और जिसका उपयोग सेवायोजकों द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार ही कर सकता है। एक ऐसा अहसान है जो कि श्रमिक को स्वतन्त्र प्रकार से व्यवहार करने से रोकता है। इसके कारण वह सेवा नियोजक के विरुद्ध हड़ताल या प्रदर्शन में भाग लेने से पहिले दो बार बिचार करता है या इसी के कारण वह रात्रि में या कठिन घण्टों में ड्यूटी देता है। इस प्रकार की आवासिक सुविधा व्यवस्थापक को एक अवसर प्रदान करती है कि वह श्रमिक की व्यक्तिगत या पारिवारिक कमजोरियों को जान सके और जब भी व्यवस्थापकों का मन चाहे वे उनका उपयोग कर लें। इस विचार समुदाय का दृष्टकोण है कि हम श्रमिक न चाहते हैं और न झालरी भत्ते माँगते हैं। हमें जो कुछ भी दे सकते हो मजदूरी के रूप में वह दे दो और हम जैसे भी चाहेंगे उसे व्यय करेंगे। तुम्हें हमारे व्यय के ढाँचे की प्राथमिकताओं से कोई सरोकार नहीं है। यह विचार प्रणाली एक महत्वपूर्ण गुण रखती है और सेवा नियोजकों के विरुद्ध एक आघात है जो इस मामले का तमाशा बनाना चाहते हैं।

झालरी भत्ता शब्द का यह अर्थ निकलता है कि एक पितृ भावना से प्रेरित व्यवस्था दया या कृपा करके कुछ दे रही है। परन्तु यह अर्थ अब इससे अधिक कुछ नहीं बतलाता कि इस नाम के अन्तर्गत वास्तव में श्रमिक को क्या मिल रहा है। तथाकथित झालरी भत्ते आज माँग पत्रों के अंग बन गये हैं। और विभिन्न ट्रिब्यूनल उनके सम्बन्ध में अपने निर्णय दे रहे हैं। अनेक मामलों में वे अधिकार की वस्तु बन गये हैं। न केवल एक रूढ़िगत व्यवहार के द्वारा वरन् कानूनी तौर पर न्याय्य समझौतों और निर्णयों के द्वारा व्यवस्थापिकों ने भी मँहगाई भत्ते या भत्तों की मात्रा निर्धारित करने में छूट प्राप्त करने के लिये इन भत्तों की गणना करना प्रारम्भ कर दिया है। इन प्रवृत्तियों को प्रत्यावर्तित न तो किया जा सकता है और न करने की आवश्यकता है। सही दृष्टिकोण यह होगा कि इन झालरी भत्तों को सामुदायिक सेवायें माना जाय और उन्हें एक राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक लक्ष्य की प्राप्ति में औद्योगिक समुदायों की स्थापना की योजना का अंग बना दिया जाय। इस सन्दर्भ में उन्हें मजदूरी के निर्धारण के उन बन्धनों से मुक्त कर दिया जाना चाहिये जिनसे वे बंधे हुये हैं। मजदूरी के सम्बन्ध में चर्चा के बीच किसी भी समय झालरी भत्तों की मौद्रिक गणनाओं को वेतन के परिमाण को प्रभावित करने के लिये नहीं करना चाहिए। अनेक प्रकार की सुविधाओं के लिये जैसे निःशुल्क, आवास, कैन्टीन इत्यादि यह वास्तव में कठिन है कि उनकी उस प्रकार से गणना की जा सके कि झगड़े से सम्बन्धित सभी पक्ष संतुष्ट हो सकें। साथ ही इस प्रकार का शुद्ध आर्थिक विचार सामाजिक सुविधाओं के रूप में उनका आकर्षण नष्ट कर देता है। उन्हें मजदूरी के झगड़ों के सम्बन्ध में जीवन निर्वाह के लिए अधिक से अधिक एक तत्व माना जा सकता है। परन्तु यदि ऐसा न हो तो एक आनवार्य और निर्णयमूलक उद्योग का श्रमिक के प्रति कर्तव्य मानकर गम्भीर महत्व दिया जाना चाहिये। उन्हें सामाजिक सुरक्षा के सम्बोध से स्पष्ट रूप से अलग कर देना चाहिए जिनकी व्यवस्था समाज उद्योग के सहयोग से करता है। समाज सुरक्षा और सामुदायिक सेवाओं का विभाजन विषय के दृष्टिकोण से नहीं वरन् प्रशासनिक दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। निश्चय ही प्राविडेन्ट फन्ड, बेरोजगारी बीमा इत्यादि ऐसे विषय हैं जिनकी व्यवस्था एक सामाजिक प्रत्यंग के द्वारा अधिक उत्तम रीति से की जा सकती है न कि औद्योगिक व्यवस्था के द्वारा। इसके प्रतिकूल कैन्टीन यात्रा सुविधा इत्यादि के प्रश्न उद्योगों द्वारा अधिक उत्तमता से हल किये जा सकते हैं। आवासीय या चिकित्सा सुविधा जैसे कुछ विषय अवश्य होंगे जिनका प्रबन्ध दोनों के द्वारा किया जाना सम्भाव्य होगा। यहां समाज सेवाओं का एक अन्य अन्तर स्पष्ट करना उचित होगा जैसे नि.शुल्क प्राइमरी या सेकेन्ड्री शिक्षा म्यूनिसपल अस्पताल इत्यादि। यह सभी नागरिकों के लिये बनाये जाते हैं और यह एक अलग विषय है।

सामाजिक सुरक्षा का अर्थ वे व्यवस्थायें हैं जिन्हें औद्योगिक और सरकारी कोष से श्रमिकों और उनके परिवारों की सामान्य जनसेवाओं के अतिरिक्त सहायता की जाती है। जैसे ही कोई व्यक्ति एक श्रमिक का जीवन अपना लेता है वह इन सुविधाओं का अधिकारी हो जाना चाहिये। इन भत्तों की व्यवस्था स्थायी त्रिदलीय समिति द्वारा की जानी चाहिये जिसका सुझाव इस पुस्तक के अन्य भागों में हमने दिया है। इस बात का कारण यह है कि इन सेवाओं को उद्योग को नहीं सौंपना चाहिए क्योंकि वे एक राष्ट्रीय व्यवस्था द्वारा अधिक सुरक्षापूर्वक वितरित की जा सकती है। एक टेक्सटाइल मिल में एक श्रमिक अपने मिल से वृद्धावस्था पेंसन प्राप्त करने के लिये पूर्ण रूप से आश्वस्त नहीं हो सकता है क्योंकि समय आने तक हो सकता है कि मिल पर कर्जे हो जांवें या उसका विसर्जन हो जाय। किन्तु ऐसा एक राष्ट्रीय प्रत्यंग के सम्बन्ध में नहीं कहा जा सकता है जिसका निर्माण ही विशेष रूप से इसी उद्देश्य से किया जाय। परन्तु इसके संबंध में हम और अधिक विचार करेंगे, जब सामाजिक सुरक्षा के पहलू पर कहेंगे। तब तक के लिये यह कहना पर्याप्त होगा कि सामुदायिक सेवाओं में वे सब सेवायें सम्मिलित होनी चाहिये जोकि औद्योगिक समुदाय के द्वारा प्रदान की जाती हैं, चाहे उनका प्रारम्भ सेवा नियोजक के द्वारा किया गया हो या उनकी उत्पत्ति कर्मचारियों की मांगों से हुयी हो अथवा वे कानूनी संविदात्मक दवाओं से प्रकट हुयी हों उनमें वे सारी सुविधायें सम्मिलित होनी चाहिये जिनको कि आज झालरी भत्ते का नाम दिया जाता है।

एक उद्योग में कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों को एक औद्योगिक परिवार मानना चाहिये। सामान्य सेवाओं और सुविधाओं की वस्तु और क्षेत्र क्या होनी चाहिये जो कि यह औद्योगिक परिवार अपने लिये प्राप्य बनावे इसे उसके अपने निर्णय पर छोड़ देना चाहिये, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इस सम्बन्ध में कानून की कोई प्रतिबाध्यता न हो सके। उदाहरणार्थ यह हमारा मत है कि वर्तमान स्थिति में कुछ कानूनी प्रतिबाध्यतायें अतिशय आवश्यक हैं, जो कि एक श्रमिक को अधिकार के रूप में प्राप्य होना चाहिये। जिस समय से भी उसका प्रवेश एक श्रमिक के रूप में हो। प्रथमतः विशेष रूप से बड़े नगरों के क्षेत्रों, नई बनी हुई नगरियों और औद्योगिक कालोनियों में उन्हें आवासीय सुविधा मिलनी चाहिये। द्वितीयतः इन सुविधाओं में कार्य स्थान की सुविधायें, जैसे जलपानग्रह, शौचादि की सुविधा, स्नानागार, प्राथमिक चिकित्सा इत्यादि। बालकों के देख-भाल की व्यवस्था जहां स्त्रियां कार्य करती हों अथवा सभ्य जीवन की अन्य मूलभूत आवश्यकतायें सम्मिलित की जानी चाहिये। परन्तु उन्हें आवश्यक रूप से कानूनी न्यूनतम तक अवरोधित नहीं रखना चाहिये। उनका क्षेत्र इतना अधिक विस्तुत होना चाहिये जितना कि विशिष्ट उद्योग, फर्म या

संस्थान कर सके। और यह औद्योगिक समुदाय के लिये गर्व का कारण होना चाहिये कि वह अपने कर्मचारियों को आदर्श सामुदायिक सेवा प्रदान कर सके। सरकार भी यह अच्छा कार्य करेगी यदि वह विभिन्न क्षेत्रों या विभिन्न दृष्टिकोणों से इस सम्बन्ध में उत्तम कार्य के लिये पुरस्कार रख कर प्रोत्साहन दे और इन पुरस्कारों का विस्तृत विज्ञापन करे, जिससे वे व्यवसायिक सम्मान का उद्गम और अच्छे से विनियोजक व्यवहार का मापदण्ड बन सकें। इन सेवाओं को मानवीय दृष्टिकोण से देखना चाहिये जिसके लिये समाज या उद्योग वस्तुतः जीवित है। वे स्वयं में ही एक लक्ष्य हैं। दूसरे इस सम्बन्ध में यह उल्लेख किया जाना चाहिये कि जहाँ मजदूरी, उत्पादन, बोनस इत्यादि को निश्चित परिस्थितियों में उत्पादन और कार्य के गुण से सम्बन्धित किया जाना चाहिये वहीं सामुदायिक सेवाओं के सम्बोध को एक विस्तृत आधार पर प्रतिष्ठित करना चाहिये। जहाँ अर्थ व्यवस्था की उत्पादन प्रक्रिया में व्यक्ति कार्य की एक इकाई है, वहीं सामाजिक ढाँचे में परिवार उपभोग की एक इकाई है। परिवार का यह सम्बोध केवल श्रमिक उसकी पत्नी और उसके बच्चों तक ही प्रतिबन्धित नहीं किया जाना चाहिये। जैसा कि कुछ सेवानियोजकों ने क्रूरतापूर्वक श्रमिकों के माता-पिताओं को उनके एलाट किये गये कमरों से निकाल कर प्रदर्शित किया है। सामुदायिक सेवाओं की दृष्टि से परिवार की परिभाषा में वे सभी व्यक्ति आते हैं, जिन्हें श्रमिक अपने परिवार के चौके का अंग मानता है। अतः वे अतिथि भी जो अल्प काल के लिये आते हैं, उन्हें चिकित्सा सम्बधी अथवा खेल-कूद की सुविधायें औद्योगिक समुदाय द्वारा प्रदान की जानी चाहिये। यह अधिक उत्तम होगा यदि इन सामुदायिक सेवाओं के बजट एवं व्यवस्था श्रमिकों के द्वारा बनाई जाय तो इससे आवश्यक लोच और विचारों का सन्तुलन प्राप्त किया जा सकता है। इसके द्वारा उद्योग के श्रमिकीकरण और कार्यशील समुदायों के स्वायत्त निर्माण का मार्ग प्रशस्त होगा जो कि एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था का अग है। इन सामुदायिक सेवाओं के लिये कोष सेवानियोजकों और श्रमिकों से समय-समय पर निश्चित की गई पद्धति से प्राप्त किया जा सकता है जिसमें सरकार द्वारा आवास या बाल व्यवस्था या सामुदायिक विकास जैसे विशिष्ट कार्यों के लिये सामान्य विकास योजनाओं के द्वारा पूरक व्यवस्था भी की जा सकती है। ऐसी स्थिति में स्पष्टतः इन सेवाओं का उत्पादन लागतों और मजदूरी के अन्तरों से सम्बन्ध नहीं रह जायगा। यह व्यवस्थायें केवल उपभोग विषयक व्यवस्थायें हैं, जिन्हें सर्व-साधारण रीति से बनाया गया है क्योंकि इसी प्रकार से वे अधिक आर्थिक और सुविधाजनक हो सकती है और अधिक बन्धु भाव को तथा उद्योग और कार्य स्थान के लिये निष्ठा को प्रोत्साहित कर सकती हैं।

## मजदूरी के अन्तर

यथा यथा तु गुणवान् भृतक तद् भृतिस्तथा ।
संयोज्या तु प्रयत्नेन नृपेणात्महिताय वै ॥
(शुक्रनीति, अध्याय २)

मजदूरी के अन्तरों का क्षेत्र आर्थिक सक्रियता का एक ऐसा क्षेत्र है जो कि राष्ट्र निर्माण की योजना के अंग के रूप में राष्ट्रीय गुणों के सम्बर्धन से निकट सम्बन्ध रखता है। एक शुद्ध आर्थिक प्रस्ताव के रूप में भी इस विषय का विशेष महत्व है क्यों कि उसका सम्बन्ध मानवीय प्रयत्न को गुण और मात्रा के अनुसार इस प्रकार से पुरस्कृत करना है कि वह सर्वोच्च अंश में सृजनात्मक चेष्टा को गति प्रदान करेगा और एक दी हुई परिस्थिति में अनुकूल प्रतिफलों की प्राप्ति करेगा, वरन् भविष्य के लिए आशा और विश्वास का कीर्ति स्तम्भ होगा जैसा कि उपरोक्त शुक्रनीति के श्लोक में उत्तम प्रकार से कहा गया है कि राजा (अथवा सेवानियोजक) को चाहिये कि वह मानवीय गुणों के भेदों को ध्यान रखता हुआ पूर्ण सतर्कता से और प्रयत्न पूर्वक समुचित मजदूरियों के अंतर स्थापित करे, क्योंकि इसके द्वारा ही वह अपना (अथवा राज्य का) कल्याण कर सकता है। यह स्पष्ट है कि एक विकासमान अर्थ व्यवस्था में हमें मानवीय सम्बन्धों के इस मूल तत्व का बुद्धि पूर्वक प्रयोग करने में सतर्कता रखनी चाहिये, जिससे हम अपने मार्ग पर त्वरित गति से चल सकें।

इस दृष्टिकोण से देखने पर यह कहना पड़ेगा कि इस अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व को भारतीय उद्योग और सेवाओं में अत्यन्त अल्प ध्यान दिया गया है। औसत श्रमिक के पास कोई ऐसी निर्देशक रेखायें नहीं हैं कि वह जान सके कि उसे कौन से मानवीय गुणों की बृद्धि करनी चाहिये जिससे वह ईमानदारी से और न्यायपूर्ण विधि से अधिक कमा सके। आज वह और उसके बालक स्कूल में और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करते हैं इस विश्वास से कि शिक्षा नौकरियों के द्वारा पुरस्कृत की जाती है, यह प्रदर्शित करता है कि भारतीय श्रमिक समाज द्वारा स्थापित मान दण्डों के प्रति भावुक है। इसी कारण भाषा सम्बन्धी आन्दोलनों को सेवानियोजकों से प्रतिबद्ध किया गया था। परन्तु हमने क्लर्की की नौकरियों को जो मूल्य प्रदान किया था—गिर रहा है जिसके लिए आज भी स्कूल प्रशिक्षण दे रहे हैं। ऐसी शिकायतें प्रायः प्राप्त होती है कि क्लर्की सेवाओं में अत्यधिक भर्ती हो गई है और इन वर्गों पर तेजी से आघात करने के लिये स्वचालितीकरण लाया जा रहा है। ऐसा कहा जाता है कि आने वाले दिनों में रूढ़िगत कौशल से

भिन्न कौशल की आवश्यकता होगी परन्तु मजदूरी के अन्तरों के सम्बन्ध में किसी उत्तम राष्ट्रीय नीति के माध्यम से कोई निर्देशक रेखायें नहीं दी जा रही हैं, जो पुरुषों एवं महिलाओं द्वारा उपयोगी आर्थिक गुणों को प्राप्त करने के निमित्त प्रदर्शित चेष्टाओं और इच्छाओं को मार्ग दे सकें। वेतन के अन्तरों के सम्बन्ध में औचित्य के प्रचार के सिद्धान्त के प्रति राष्ट्रीय उपेक्षा एक मूलभूत कारण है जो आधुनिक युवकों के जीवन को दिशा नहीं दे पा रही है और राष्ट्र जीवन को हानि पहुंचा रही है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि श्रम सम्बन्धी राष्ट्रीय आयोग को यह पहलू अत्यधिक महत्व का मानना चाहिये और इसे उससे अधिक स्थान देना चाहिये जैसा कि उसकी प्रश्नावली में दिया गया है।

फेयरवेज कमेटी ने वेतन अन्तरों के विषय पर विचार करते समय अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट का ठीक ही निम्नलिखित हवाला दिया है "किसी भी देश में अधिकतम आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण की उपलब्धि के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न देशों और उद्योगों में आपेक्षिक मजदूरियाँ इस प्रकार से निश्चित हों कि– (अ) वह अर्थव्यवस्था के विभिन्न पेशों, उद्योगों एवं भौगोलिक क्षेत्रों पर श्रमिकों का इस प्रकार विभाजन करें कि राष्ट्रीय उत्पादन अधिकतम हो, (ब) जिससे अर्थव्यवस्था के संसाधनों का पूर्ण विनियोजन प्राप्त हो सके और (स) अत्यन्त उपयुक्त आर्थिक विकास की दर को प्राप्त किया जा सके।"

परन्तु विषय प्रवेश इतनी गम्भीरता से करने के उपरान्त मजदूरी के अन्तरों को स्थापित करने के लिये कोई भी निर्देशक रेखायें प्रस्तुत करने में रिपोर्ट बुरी तरह असफल हुई है। जिन नौ तत्वों का सुझाव कमेटी ने दिया है वे केवल एक औपचारिक व्यवहार के द्योतक हैं। उदाहरणार्थ उसमें एक तत्व "मानसिक एवं शारीरिक आवश्यकतायें" वर्णित है जोकि इतना स्पष्ट है कि उसका कोई उपयोग हो नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः कमेटी ने विषय को वेजबोर्ड या अन्य भृत्ति निर्धारक सत्ताओं के लिए छोड़ दिया है जिनसे यह आशा की गई है कि वे अपने प्रतिमान खोजें। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि ऐसे वेजबोर्डों ने जैसे पोर्ट तथा डाक वेजबोर्ड ने विषय का उल्लेख केवल प्रश्नावली में किया है और व्यवहारिक रूप से उसे उसी स्थान पर छोड़ ही दिया है। कुछ औद्योगिक निर्णयों में जैसे Best, बम्बई ने पद-मूल्यांकन के सम्बन्ध में कुछ व्यायाम किया है। परन्तु क्योंकि इन संस्थाओं को सापेक्षिक तत्वों के लिये भार प्रदान करने के सम्बंध में कोई निर्देशक रेखायें नहीं प्रदान की गई हैं, इन्होंने केवल विदेशी विषय सम्बन्धी पुस्तकों का ही प्रयोग किया है जोकि भारतीय

परिस्थितियों से कोई मेल नहीं रखती हैं। साथ ही वेतन-अन्तरों से सम्बन्धित किसी भी वैज्ञानिक व्यवस्था जैसे पद-मूल्यांकन, के लिये एक पूर्णकालिक सतत अध्ययन की आवश्यकता रहती है, जो समय समय पर परिवर्तित होने वाली पद-वस्तु का पूर्ण ध्यान रखे और उसके प्रतिफलों को सार्थक करने के लिये उसका समर्थन योग्यतामापन की किसी व्यवस्था से करें। परन्तु गम्भीरता पूर्वक इसके सम्बन्ध में कुछ भी किया गया ऐसा प्रतीत नहीं होता है। यह केवल इंजीनियरिंग इकाइयों में हुआ है जैसे भाण्डुप की GKW फैक्टरी, बम्बई में, कि पद-मूल्यांकन को एक तर्कसंगत स्तर पर रखा गया है। परन्तु यहां पर या अन्य समान स्थानों पर जहां विदेशी व्यवस्थापकों का औद्योगिक सम्बन्धों के बनाने में हाथ है, केवल विदेशी विचारों को भारतीय धरा पर बोया गया है।

भारतीय मनोवैज्ञानिकों के लिए मजदूरी के अन्तरों के विषय में वैज्ञानिक पद-मूल्यांकन एक कठिन व्यायाम नहीं है। इस सम्बन्ध में प्रक्रिया ठीक प्रकार सेकी जा च की है जो पद-व्याख्या से प्रारम्भ होती है और पद-समूहों से पद विशिष्टता निर्धारण करके मूल-पदों या प्रतिमान कार्यों के चुनाव करने, तत्वों के निश्चय करने और पद-मूल्यांकन करके उनको विभिन्न वेतन-भेदकों में रखकर प्रभावित करने वाले तत्वों का पूर्ण ध्यान रखते हुए मौद्रिक मूल्यांकन करता है। अनुस्थिति निर्धारण की अंकेतर रीतियाँ तथा ग्रेड व्याख्या रीति तक अत्यन्त प्राथमिक उपयोग है और उनके आधार पर ऐतिहासिक सापेक्षकों से तत्व तुलना तथा विन्दु-मूल्यांकन रीति तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। भारतीय परिस्थितियों में शोध करने की आवश्यकता इस सम्बन्ध में है कि भृत्ति-विषमता के सम्बन्ध में विभिन्न तत्वों और सहिष्णुता–प्रतिमानों का सही भार–निरूपण किया जाए। हमारे मत से तो समस्या का उचित समाधान तभी खोजा जा सकता है जब कार्यशील जनता के प्रमुख आर्थिक वर्गों के लिये अथवा विनियोजित क्षेत्र के लिये सामान्य राष्ट्रीय निर्देशक रेखायें बना दी जायें।

विश्व के विभिन्न आर्थिक दृष्टि से विकसित देशों ने अपने देशों में वेतन-भेदकों को निर्धारित करने के लिए पद मूल्यांकन रीतियों के सम्बन्ध में अनेक प्रयोग किये हैं। आस्ट्रेलिया में इंजीनियरिंग उद्योग के सम्बन्ध में कॉमन वेल्थ कोर्ट आफ कन्शीलेशन एड आर्बीट्रेशन मैटल ट्रेड एवॉर्ड को प्रायः आधार माना जाता है–इस एवॉर्ड में पद-मूल्यांकन योजना के मुख्य तत्वों के रूप में कौशल और बिना निरीक्षण के कार्य के दायित्व को माना गया है। यह भारत की व्यवस्था के अत्यन्त प्रतिकूल है, जहां शिक्षा या स्कूल की योग्यता को प्रमुख महत्व दिया जाता है अर्थात् जहां क्लर्की की

मनोवृत्ति बहुत अधिक फैली हुयी है। बैलजीयम में सन् १९४५ ई० में श्रम और सामाजिक सुरक्षा के मन्त्रालय द्वारा जनरल टेक्नीकल कमीशन बनाया गया जिसने ३२ क्षेत्रों की एक लिस्ट बनायी जिनका पदवर्गीकरण योजना में प्रयोग किया जाना चाहिये। उन्हें पांच प्रमुख शीर्षकों में वर्गीकृत किया गया।

(१) कार्य सम्बन्धी प्रशिक्षण और ज्ञान जिसमें सैद्धान्तिक ज्ञान और व्यवहारिक प्रशिक्षण सम्मिलित हो। (२) शारीरिक गुण जिनमें स्नायु चालक और शक्ति सम्बन्धी गुण सम्मिलित हैं। (३) बौद्धिक और मानसिक गुण। (४) चरित्र और व्यवहार तथा (५) पद सम्बंधी परिस्थितियाँ। इन तत्वों को अधिकतम भार के विंदु निम्नलिखित थे।

**बेलजीयम : जनरल टेक्नीकल कमीशन के द्वारा बनायी गयी योजना में पद-वर्गीकरण के लिए प्रयुक्त तत्व—**

| तत्व | अधिकतम विन्दु |
|---|---|
| १—कार्य सम्बन्धी प्रशिक्षण एवं ज्ञान— | |
| (अ) सैद्धान्तिक प्रशिक्षण एवं ज्ञान | |
| १—स्कूल शिक्षा | ५०० |
| २—पूरक प्रशिक्षण | ५०० |
| (ब) व्यवहारिक प्रशिक्षण | |
| ३—व्यवहारिक एप्रैन्टिसशिप एवं अन्य प्रशिक्षण | ३८८ |
| ४—अव्यवहारिक एप्रैन्टिसशिप एव अन्य प्रशिक्षण | ५०० |
| २—शारीरिक गुण : | |
| (अ) अनुभूति विषयक | |
| ५—दृष्टि | १०० |
| ६—स्पर्श | १०० |
| ७—श्रवण | १०० |
| ८—घ्राण | १०० |
| ९—स्वाद | १०० |
| (ब) चालक | |
| १०—प्रचलनों की गति | १५० |
| ११—प्रचलनों की सुतथ्यता | १५० |
| १२—प्रचलनों का समन्वय | १५० |

| तत्व | अधिकतम बिन्दु |
|---|---|
| १३–प्रतिक्रिया की गति | १५० |
| १४–चपलता | १०० |
| (स) मांस पेशीय : | |
| १५–मांस पेशीय प्रयत्न | २५० |
| १६–स्थिति | १०० |
| ३—बौद्धिक और मानसिक गुण : | |
| १७–एकाग्रता | ३०० |
| १८–निर्णय | २०० |
| १९–स्मरण शक्ति | २०० |
| २०–अनुसंधान वृत्ति | २०० |
| २१–सुरुचि | २०० |
| ४—चरित्र एवं व्यवहार : | |
| (अ) चरित्र : | |
| २२–निर्देशन सत्ता | १५० |
| २३–नैतिक सत्ता | १५० |
| २४–प्रत्युत्पन्न मति | १५० |
| २५–अनुक्रम एवं स्वच्छता | १५० |
| २६–छवि | १५० |
| (ब) व्यवहार : | |
| २७–अन्यों के प्रति | ४०० |
| २८–उद्योग के प्रति | ४०० |
| २९–व्यवहार के मापन योग्य परिणाम | ४०० |
| ५—पद सम्बन्धी परिस्थितियाँ : | |
| ३०–वातावरण का प्रभाव | ३०० |
| ३१–दुर्घटनाओं के जोखिम | ३३० |
| ३२–बीमारी के जोखिम | ३०० |

फ्रान्स में पदों के लिये पद-मूल्यांकन की दो योजनाओं का प्रयोग किया गया जिनमें से क्रमशः एक प्रमुखतः शारीरिक, द्वितीय प्रमुखतः बौद्धिक थी। शारीरिक श्रमिकों के नीचे दिये हुए प्राप्तांक यह बताते हैं कि मूल्य आवश्यक रूप से अपने अंश

के रेखीय अनुपात में नहीं है (इसके विरुद्ध भारत में अप्राकृतिक प्रवृत्ति अंकगणतीय वृद्धि को स्वीकार करने की है)।

**फ्रान्स—टैलेमिकैनिके इलैक्ट्रिके प्लान्ट नान्टैरे संस्थान में शारीरिक श्रमिक के लिए पदमूल्यांकन योजना के अन्तर्गत तत्व और विन्दु :**

| तत्व | प्रत्येक अंश के लिए प्राप्तांक | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ |
| १–प्रशिक्षण | ११ | १४ | १७ | २२ | २८ | – | – |
| २–व्यावहारिक अनुभव | ११ | १४ | १७ | २२ | २८ | ३६ | ४४ |
| ३–अनुकरण | १० | १२ | १४ | १७ | २० | २३ | – |
| ४–कार्य की कठिनता | ७ | १२ | १७ | २२ | २८ | ३४ | – |
| ५–शारीरिक प्रयत्न | ७ | १० | १३ | १६ | २० | – | – |
| ६–मानसिक अथवा दृष्टि केन्द्रण | ७ | १० | १३ | १६ | २० | – | – |
| ७–कल-पुर्जों और उत्पादन के लिये दायित्व | ५ | ६ | ८ | १० | १२ | – | – |
| ८–कच्चे माल और प्रगतिमय कार्य के लिये दायित्व | ५ | ६ | ८ | १० | १२ | – | – |
| ९–अन्यों की सुरक्षा के लिये दायित्व | ५ | ६ | ८ | १० | १२ | – | – |
| १०–अन्यों के कार्यों के लिये दायित्व | ५ | ७ | १० | १५ | २० | – | – |
| ११–कार्य की परिस्थितियाँ | ७ | १० | १३ | १६ | २० | – | – |
| १२–कार्य की पूर्ति में जोखिम | ५ | ६ | ८ | १० | १२ | – | – |

प्राय: एक तत्व के विभिन्न अंशों के लिए विन्दुओं को निर्धारित करने के लिए

विस्तृत सूचनायें दी जाती हैं। निम्नलिखित सारिणी में अन्य लोगों की सुरक्षा का दायित्व, नामक तत्व के विभिन्न अंशों के लिए बिन्दु मूल्यांकन को समझाया गया है।

**फ्रान्स : टैलेमिकैनिके इलैक्ट्रिके प्लान्ट नान्टैरे के समस्त कर्मचारियों के लिए पद मूल्यांकन योजना के अन्तर्गत अन्यों की सुरक्षा के लिए दायित्व के अंक—**

| जोखिम की प्रकृति | जोखिम की सम्भावना की अवधि | |
|---|---|---|
| | अवधि के ३० % से कम | अवधि के ३० % से अधिक |
| १ | २ | ३ |
| १—अकेले में अथवा बिना यंत्रों के और केवल प्रकाश के यन्त्रों के साथ असम्भाव्य कार्यों में अन्यों की दुर्घटनायें | — | ५ |
| २—कार्य जिसमें अन्यों को अल्प दुर्घटनायें सम्भव हों; इस जोखिम को दूर रखने के लिये एक तर्क संगत सतर्कता की आवश्यकता है | ६ | ७ |
| ३—एक मशीन पर कार्य करते समय असतर्कता अथवा किसी आज्ञा के पालन करते समय असतर्कता अन्यों को गम्भीर दुर्घटनाओं में डाल सकती है : पैर या उंगली पिच जाना, नेत्रों पर आघात | ७ | ८ |
| ४—पद सम्बन्धी कार्य को पूर्ण करते समय गम्भीर दुर्घटनाओं को रोकने के लिए स्थायी सतर्कता की आवश्यकता परन्तु चोट लगने से अन्य लोग ध्यान रख कर बच सकते हैं | ९ | १० |
| ५—अन्यों की सुरक्षा अपवर्जी रूप में कार्य करते समय सावधानी पर निर्भर है और अल्प अंश में भी असतर्कता मारक प्रतिफल उत्पन्न कर सकती है | १० | १२ |

जर्मन प्रजातान्त्रिक रिपब्लिक में सभी उद्योगों के लिये पद मूल्यांकन की एक ही योजना लागू की गई है। इस योजना में अत्यधिक महत्व 'ज्ञान और अनुभव" को दिया गया है, परन्तु इस तत्व के लिये अन्य तत्वों के ४ या ५ अंशों की अपेक्षा १० अंश रखे गये हैं। जर्मनी के फैडरिल रिपब्लिक में फैक्टोरल डिजायन की एक व्यवस्था यूलर स्टीवैन्स रीति के अन्तर्गत प्रयुक्त होती थी, जो कि ५३ अंकों पर आधारित थी जिनमें से कार्य पद परिस्थितियों के लिये १९, दायित्व के लिये ९, कौशल और ज्ञान के लिये ११ और विभिन्न प्रकार के प्रयत्नों के लिये १४ अंक निर्धारित थे। नीदरलैण्ड नेशनल स्टैन्डर्डस् कमीशन ने निम्नलिखित प्रमाणीकृत रीति को निर्धारित किया।

**नीदरलैण्ड : प्रमाणीकृत नीति के अन्तर्गत तत्वों, विन्दु मूल्यों और भारों की व्यवस्था—**

| तत्व | प्रति तत्व सामान्य अधिकतम बिन्दु संख्या | भार | सामान्य कुल अधिकतम बिन्दु |
|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ |
| ज्ञान | ८ | ५ | ४० |
| स्वतन्त्रता | ७ | ६ | ४२ |
| अन्यों से सम्पर्क | ७ | २ | १४ |
| सत्ता प्रयुक्त | ७ | २ | १४ |
| स्पष्टता | ७ | १ | ७ |
| नैपुण्य | ८ | २ | १६ |
| कच्चे माल और यंत्रों से समायोजन | ८ | १ | ८ |
| **पद परिस्थितियाँ** | | | |
| भारोत्तोलन | ८ | १ | ८ |
| थकान स्थितियाँ | ८ | १ | ८ |
| भारयुक्त ध्यान | ८ | १ | ८ |
| वायुमण्डलीय तत्व | — | ३ | — |
| व्यक्तिगत जोखिम | ८ | १ | ८ |
| असमान्य योग्यतायें | — | १ | — |
| उत्तरदायित्व (तोड़-फोड़ करने की जोखिम) | ८ | ४ | ३२ |

इस व्यवस्था की कुछ विशेषतायें हैं। इसमें 'निर्देशों के विवरण और प्रकृति के अन्तर्गत कार्य का सम्पादन किस प्रकार से होगा" इस रूप में परिभाषित स्वतन्त्रता और "विचार के लिये आधिक या कम समय लगाने की योग्यता" के रूप में परिभाषित स्पष्टता के तत्व इस व्यवस्था की विशेषतायें हैं। यह भी असामान्य है परन्तु पर्याप्त महत्व का है कि वायुमण्डलीय तत्व और असमान्य योग्यताओं के लिये कोई विशिष्ट अंक नहीं निर्धारित किया गया है। इस व्यवस्था का एक विशेष लक्षण यह भी है कि सम्पूर्ण व्यवस्था मारित है। ज्ञान के तत्व को बिखरे हुये तथ्यों के ज्ञान और परस्पर अनन्योआश्रित प्रश्नों के रूप में दो विभागों में बाँटा गया है। और इस दूसरे विभाग को पुनः सरल, कम सरल और कठिन सम्बन्धों में बाँटा गया है। इस रीति को अधिक लोचपूर्ण कहा जा सकता है, क्योंकि सर्वाधिक अंक बहुत कड़ाई से निर्धारित नहीं किये गये हैं। स्वीडन ने राष्ट्रीय योजना के विकास को प्राप्त करने में सतर्कता से यात्रा की है। राष्ट्रीय योजना को अन्तिम स्वरूप देने से पूर्व अनेक उद्योगों को सामूहिक समझौते करने के लिये प्रेरित किया गया था और उसके उपरान्त इस विषय पर राष्ट्रीय समिति ने अनुभवों को संग्रहित करके एक प्रमाणित पुस्तिका प्रकाशित की। इसी प्रकार इंग्लैंड और अमेरिका में भी विभिन्न उद्योगों और फर्मों के लिये पद मूल्यांकन की योजनायें बनायीं और उनका प्रयोग किया। इस विवरण से यह विदित होगा कि इस विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव अनेक रुचि कारक कोणों का विकास किया है परन्तु मूल्यों की प्राथमिकताओं और निश्चित निर्देशन की भावनाओं द्वारा उन पर प्रकाश डाला जाना अभी बाकी है। पश्चिमी विचार और व्यवहार में जो कमी है उसे भारतीय योगदान द्वारा पूर्ण किया जा सकता है।

भारतीय मनोविज्ञान की अनुभव सिद्ध और पूर्ण परीक्षित शाखा ने सामान्य विश्व की क्रियाओं को तीन भागों में बाँटा है। अर्थात वे जो शरीर, जीवन और मस्तिष्क से सम्बन्धित हैं। इस विशाल वर्गीकरण से संगति रखते हुये सर्व प्रथम वे पद या क्रियायें हैं जो मानवीय जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं लेकिन जिनके सम्पादन में यन्त्रवत् और कम बुद्धि के प्रयोग की आवश्यकता होती है। इन पदों या कार्यों को करने के लिये मनुष्य को अपने पाँच सम्बेदक अवयवों के शारीरिक गुणों, शारीरिक शक्ति, हाथों, पैरों और स्नायुओं की शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। इन कार्यों के बीच कुछ में नेत्रों और देखने के प्रयत्नों के विभिन्न अशों की आवश्यकता होती है तो कुछ में वायु-मण्डलीय तत्वों के विचलनशील अंशों के कारण, जैसे तापमान, मौसमी परिवर्तन, ध्वनि, घ्राण, रात्रि के कार्य या भूमि अथवा समुद्र के ऊपर या नीचे किये जाने वाले कार्यों के कारण अन्यों की आवश्यकता होती है। इनके अतिरिक्त कुछ में श्रमिक को अपने शरीर

को विभिन्न स्थितियों में रखकर कार्य करना होता है और कुछ में उसे जीवन का खतरा, दुर्घटना, बीमारी इत्यादि का जोखिम उठाना पड़ता है। कुछ अन्य ऐसे कार्य हैं जिनमें गति, तत्परता, स्पष्टता, जीवट या अन्य ऐसे गुणों की आवश्यकता पड़ती है जो किसी खिलाड़ी या अंग सौष्ठव बनाने वाले व्यक्ति के गुण हैं। और कुछ ऐसे भी कार्य हैं जिनमें स्वच्छता, व्यवस्थित व्यवहार, मधुर आवाज, हाथों की नफाशत और स्त्रियोचित गुणों की आवश्यकता होती है। जैसे बच्चों के अस्पताल में बच्चों की देख-रेख के लिये। यह सारे गुण शरीर के गुण हैं और शारीरिक संस्कृति के प्रतिफल। कुछ ऐसे कार्य हैं जैसे सैनिक सेवा में जिनके लिए असामान्य दृढ़ता, जीवट, शक्ति और शारीरिक संघर्ष की आवश्यकता होती है। और कुछ ऐसे भी कार्य हैं जिनके लिये साधारण कुशलता की आवश्यकता होती है जैसे मोटर या एक सरल मशीन या यंत्र को चलाना। ऐसे पदों या कार्यों के लिये जिनमें शरीर के रख-रखाव और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती हैं एक अंश तक श्रेणी विभाजन खोजा जा सकता है जिससे विभिन्न पद-अन्तरों का एक समुचित दृश्य प्राप्त हो सके। कार्य अध्ययन और कार्य सम्बन्धी अर्थशास्त्र के व्यवहार ने इस सम्बन्ध में अनेक अंशों में महत्वपूर्ण भेद स्थापित किये हैं जिनके सम्बन्ध में उत्पादकता पर विचार करते समय विचार करने का हमें अवसर मिलेगा। यदि उन्हें सामूहिक रूप से एक साथ रखा जाय तो एक पद-समूह बन जावेगा जिसे प्राथमिक मूलभूत महत्व का माना जा सकता है और उसके आधार पर एक राष्ट्रीय योजना में व्यवसाय सम्बन्धी अन्तरों के लिये एक मौमिक स्तर प्राप्त किया जा सकता है।

मानवीय मूल्यों की श्रंखला में इसके उपरान्त जीवन की शक्तियाँ हैं। आर्थिक भाषा में उन्हें एक व्यवसायी की गति या प्रेरणा, एक उत्पादक और प्रसारशील वृत्ति की फलोत्पादकता या पूर्णता, एक प्रावैधिक सेवा क लिये आवश्यक कुशलता पर अधिकार अथवा नियामक और आदेशात्मक प्रशासन, वायुमण्डलीय तत्वों की समझ और उनका निर्देशन, जीवन के सम्बन्धों और व्यवहारों में काम में आने वाली सहयोगी वृत्तियाँ, उत्तरदायित्व वहन करने की, उसे नापने की और उसका योग्य प्रतिनिधान करने की क्षमता, स्वच्छ लेखा प्रस्तुत करने की योग्यता, स्फूर्तियुक्त नेतृत्व करने की शक्ति और नियंत्रक शक्ति और वह सब शक्तियाँ जो एक क्रियाशील मनुष्य या न्याययुक्त व्यवसायी, व्यापारी, वैज्ञानिक, यांत्रिक और उपयोगी व्यक्ति बनाती है, कहा जा सकता है। इन शक्तियों के व्यायाम के सम्बन्ध में जिन पद सम्बन्धी तत्वों का प्रायः विचार किया जाता है वे विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्व को वहन करना है। जैसे निर्णय लेना, धन का संग्रह और उपयोग, विक्रयशीलता, वैज्ञानिक शोध के आधार पर उत्पादन लक्ष्यों का निर्धारण और उनकी प्राप्ति, सहयोग के आधार पर सहकार्य की वृत्ति और

व्यक्तियों का मनोबल बनाना, यन्त्रों, भौतिक उत्पादनों के प्रति उत्तरदायित्व, मनुष्यों की सुरक्षा और उनके कार्य के प्रति उत्तरदायित्व, विभिन्न प्रकार की कुशलताओं के प्रति प्रेरणा का प्रदर्शन, बदलती हुई परिस्थितियों के प्रति त्वरित समायोजन, मानवीय सम्बन्धों और सहकारी वृत्तियों को प्राप्त करने के लिये मुक्त बुद्धि, अन्य व्यक्तियों से कार्य कराने की सत्तात्मक क्षमता और निर्देशन, प्राविधिक, प्रशासनिक और व्यवस्थात्मक सेवा के गुण इत्यादि हैं। यह गुण मनुष्य के भीतर अनुभव प्रशिक्षण और समस्याओं के स्वतन्त्र रूप से सुलझाने से उत्पन्न होते हैं। इसके विपरीत यदि यह बातें न हों तो यह एक ऐसी नपुंशक नौकरशाही में बदल जायगी जिसमें निर्णय लेने की इच्छा और शक्ति नष्ट हो चुकी हो और जो केवल पूर्व सत्ता के उद्धरणों पर ही कार्य कर रही हो। इन कार्यों को करने के निमित्त एक निश्चित स्पष्टता, दृढ़ता, कल्पना, स्वप्रेरित स्नायुगत उत्तेजना से उन्मुक्त रह कर जोखिम उठाने की वृत्ति, अनुशासन और व्यवस्था की भावना, उद्देश्यों, शक्तियों, प्रवाहों और प्रति-प्रवाहों का विचार और लक्ष्यों और उनकी प्राप्ति इन्हीं जीवन धाराओं के माध्यम के द्वारा ही सम्भव है। यह मानवीय गुणों का वह समूह जो ऊपर वर्णित शरीर और शारीरिक गुणों की संस्कृति से भिन्न है। हमारे मनोवैज्ञानिक विचार प्रणाली के अनुसार ये जीवन की शक्तियाँ हैं, शक्ति की प्रेरणायें हैं। किसी भी पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति को जो इन शक्तियों का प्रयोग कर रहा हो, पूर्व वर्णित शक्तियों के प्रयोग करने वाले से उत्कृष्ट मानना चाहिये। और उन्हें पिछले वर्ग के व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक वेतन और सम्मान दिया जाना चाहिये। उनका योगदान उत्पादन और समृद्धि के लिये अधिकतम होता है। यथार्थ में जो निर्णय वे लेते हैं या जो कार्य वे करते हैं। उत्पादकता के मापदण्डों को उठाने में, वे केन्द्रीय महत्व के हैं। राष्ट्रीय निर्माण में वे व्यवहारिक नेता हैं। यदि पहिले वर्ग के व्यक्तियों के वेतन-अन्तरों को बनाने में गणतीय-बृद्धि का व्यवहार किया जाय जो कि अपने शरीर के गुणों का प्रदर्शन करते हैं तो दूसरे प्रकार के वर्ग का सम्मान ज्यामितिक बृद्धि के अनुसार वेतन बृद्धि में किया जाना चाहिये। ऐसे व्यक्ति न केवल अपने कार्य के द्वारा अधिक वित्तीय पुरस्कार के लिये अपने को योग्य बनाते हैं वरन् वे उस सामान्य संग्रह में उससे अधिक योगदान देते हैं जितना कि वे इस जीवन सम्बन्धी शक्ति के मापदण्ड में स्वयं ऊँचे चढ़ते हैं। इस वर्ग में उच्चतम वित्तीय प्रतिष्ठा प्राप्त होनी चाहिये। तृतीय वर्ग जिसका हम सुझाव दे रहे हैं यद्यपि इस दूसरे वर्ग से अधिक प्रतिष्ठित है। उसे वित्तीय प्रेरणायें देने से मानव के भारतीय मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण के अनुसार मध्य स्तर से सम्पूर्ण सार ही निकल जावेगा। वेतन के अन्तरों की राष्ट्रीय नीति में इन प्रथम दो वर्गों के बीच न्यूनतम और अधिकतम वेतन क्रमों में १ : १० का अनुपात प्राप्त किया जाना चाहिये जो कि प्रगति के सीधे मार्ग पर यात्रा करने के

साधारण क्रम को अपने शारीरिक और जीवन्त मस्तिष्क के द्वारा बनाये रखते हैं।

जीवन की शक्तियों से मस्तिष्क के गुणों की ओर जैसे जैसे हम मानवीय मूल्यों की श्रेणी में चढ़ते जाते हैं हमारे सम्मुख एक बिल्कुल ही बदला हुआ विचार प्रवाह उपस्थित हो जाता है। क्योंकि इस ऊंचाई पर मूल्यों की श्रेणी में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जाता है। वह मस्तिष्क का उचित क्षेत्र है जहां मनुष्य के भीतर का विचारक सत्य और न्याय की खोज में और सुन्दरता और अच्छाई को प्राप्त करने में स्वयं ही आह्लादित हो जाता है और अपने जीवन की क्रियाओं और उसके चारों ओर के वातावरण को यह प्रकाश देकर स्वयं संतुष्ट हो जाता है। मानव व्यक्तित्व का यह परिवर्तन जीवन की शक्तियों से अत्यन्त अल्प सम्बन्ध रखता है। संस्कृति के श्लोक में यह ठीक ही कहा गया है कि ऐसा वर्ग उपासना के केन्द्र बिन्दु के रूप में धन को नहीं देखता परन्तु मौलिक वस्तु के रूप में सन्तोष की प्राप्ति चाहता है। इसमें धनी व्यक्ति से कहा गया है :—

वयमिह परितुष्टाः वल्कलैः त्वम् दुकुलैः।
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः॥

स नु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥

यदि अधिक दूर तक जांय तो भी द्वितीय वेतन आयोग की बात से सहमत होना कठिन नहीं होगा जो कि अध्याय ८ पैरा १९ में कहता है कि "सार्वजनिक सेवा स्वयं में अपना पुरस्कार है। वहां पर प्रतिष्ठा है और सम्मान है—वहां पर अपनी योग्यताओं के सतत् और पूर्ण प्रयोग के लिये अवसर है और लोकनीतियों और योजनाओं को स्वरूप प्रदान करने में अपने प्रभाव का व्यायाम करने का अवसर है—जो इनमें प्रवेश करते हैं वे जनता के सेवक हैं व्यक्तियों के नहीं। अनेक पश्चिमी देशों में, उसके विश्वविद्यालयों के सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थियों में से एक बड़ा भाग अल्प मौद्रिक पुरस्कारों के रहते हुए भी शैक्षणिक जीवन अपनाता है और हम विश्वास करते हैं कि इसी प्रकार के अभौतिक कारणों से भारत की सार्वजनिक सेवा आवश्यक क्षमता और योग्यताओं वाले नवयुवकों को आकर्षित करने में असफल नहीं होंगे।

यह मस्तिष्क का एक सुन्दर मोड़ है जबकि वह उन भौतिक इच्छाओं के घेरे से निकल जाता है जिसे कि जीवन की सामान्य शक्तियाँ बढ़ाती हैं। यह मोड़ हमें एक अध्यापक, एक वैज्ञानिक, एक सामाजिक कार्यकर्ता, एक न्यायाधिपति या किसी भी

मानवीय ज्ञान के एक विभाग के विशेषज्ञ अथवा एक यश प्राप्त कलाकार, एक दार्शनिक एक नियोजक या बौद्धिक में देखने से मिल सकता है। अपने उत्कर्ष के इस स्तर पर सेवा का एक विशिष्ट भाग मनुष्य को छूता है परन्तु फिर भी वह भौतिक आवश्यकताओं और इच्छाओं से मुक्त नहीं हो पाता। वह अपने सद्गुणों के व्यवहार और गुणों के विकास से सन्तुष्ट रहता है, परन्तु उसे उन सुविधाओं की आवश्यकता रहती है जो इस प्रकार के व्यवहार या विकास को भौतिक चिंताओं से मुक्त रख सकें। अतः एक अध्यापक जिसे अपने पेशे से प्रेम हो अपना सर्वोत्तम दे सकता है यदि उसे एक निर्वाहकारी वेतन मिलता हो और अपने और अपने परिवार और अपने बच्चों के कल्याण की आवश्यकताओं की चिन्ता से मुक्त हो जाय। ऐसी स्थिति में उसे भौतिक धन की अपेक्षा मस्तिष्क की समृद्धि में अधिक आनन्द आने लगता है जिसका वह अपने विद्यार्थियों में निर्माण कर सकता है। इसी प्रकार एक वैज्ञानिक, एक व्यवसायिक, प्रशासक अथवा एक सैनिक, सेनापति ही अपने वेतन की तुलना करने की चिन्ता नहीं करता। यदि उसे शोध करने के लिये एक शान्त स्थान मिल जाय, अपने कार्य को चलाने के लिये सुविधायें मिल जावें, अपने कार्य को प्रकाशित करने की व्यवस्था मिल जावे और उन व्यक्तियों से संस्तुति और सम्मान मिल जावे जिनके अन्तर्गत वह कार्य करता है तो वह संतुष्ट रहेगा। इन गुणों का विकास पर्याप्त वेतन-अंतरों के रूप में अधिक धन फेंक कर (यद्यपि इस स्तर पर भी मुद्रा के मूल्य अनुपस्थित नहीं रहते) नहीं किया जा सकता है जितना कि प्रतिष्ठा और सम्मान की भावना से किया जा सकता है जोकि वे और दूसरे अपने कार्य और व्यवसाय के लिये रखते हैं। इन सेवाओं की सुन्दरता, प्रतिष्ठा के प्रेम पर आधारित है जो उन्हें अपने कार्य में अच्छाइयों की ओर उठाती है और बुराइयों की ओर गिरने नहीं देती। यश और सामाजिक स्वीकृति के लिये वे शुद्ध और उच्च कार्य के आदेश को कलुषित होने नहीं देते और उच्च और गम्भीर विचार, आदर्श चरित्र, सत्य और स्पष्टवादिता के मूल्य, मस्तिष्क को खुला रखना और सतत गवेषणा करने वाली बुद्धि, व्यक्ति में पूर्ण विश्वास, अपरवर्जीय केन्द्रण और सम्प्राप्त प्रकाश को विगलित नहीं होने देते। मस्तिष्क में इस प्रकार का मोड़ आने पर बुद्धि प्रमुख रूप से विचारों में आबद्ध रहती है। और विचारों का अध्ययन या जीवन का अध्ययन और परावर्तित वृद्धि के विकास और सूचनाओं में लगी रहती है। स्वभाव में सन्तुलन-धैर्य, स्थिरता और शान्ति से निर्माण होता है। फिर परावर्तन होने लगता है और विकास के सार्वभौमिक नियमों की खोज और परीक्षण के आधार पर परिस्थितियों को सम्भालने की क्षमता जाग जाती है। और इस प्रकार के व्यक्तियों की यह विशेषता है। इस वर्ग के व्यक्तियों को विभिन्न पदों के स्तरों में हम अध्यापक और प्राध्यापक, शोधकर्ता, वैज्ञानिक, कलाकार, लेखक, कवि, लोकसेवक (वास्तविक अर्थ में निर्माणकर्ता,

चित्रकार, चिकित्सक, प्रशासक इत्यादि अर्थों के रूप में बांट सकते हैं। यह सब मिलकर अपने कार्यों से इतर एक अन्य पद-समूह बनाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को अपने कार्य क लिए आवश्यक न्यूनतम शिक्षा की आवश्यकता होती है, वे अपने विषय का ज्ञान रखते हैं, उनमें विविधता, विवेक, न्यायपूर्णता, तर्कपूर्ण सगति कठिन बातों को ग्रहण करने की शक्ति आदि होती है जो उनके पद और कार्य के लिए समुचित होती है। वे ऐसे बहुत विवरणों के प्रति सजग रहते हैं जिनको अन्य लोग प्राय: उपेक्षित छोड़ देते हैं। वे बारीकी कुशलता आदि का ऐसा अनपात व्यवहार में लाते हैं जिनका प्रयोग यदि अधीर व्यक्तियों द्वारा किया जाय तो सम्पूर्ण कार्य ही बिगड़ जावेगा। वे मानव समाज के वास्तविक निर्माता हैं, नये और विस्तृत यत्रों, शक्तियों और अनुभूतियों के उत्पादक हैं जोकि संपूर्ण मानव सभ्यता को नयी दिशाओं में प्रवाहित कर सकते हैं। वे व्यावहारिक कार्य सम्पादन में प्रारम्भ में ही देख सकते हैं कि किस गलत प्रवृत्ति का प्रवेश हो रहा है। और बिना उनके मार्गदर्शन के कार्यवाहक आदि अपनी शक्तियों का प्रयोग करें तो अधिक गोलमाल या अपने कार्यों के कारण तोड़-फोड़ उत्पन्न कर सकता है या अंधा होकर सीधा ही टकरा सकता है। ऐसे व्यक्ति बाहर से कम व्यस्त दिखाई पड़ते हैं। और कम उत्पादक मालुम होते हैं। परन्तु उनकी उपस्थिति और कार्य, कल्पना शक्ति वाले कार्यवाहकों में दस गुनी स्फूर्ति भर सकते हैं और विश्वास जगा सकते हैं जिसके बिना वे मूर्खों के समान निष्प्रभावी हो जावेंगे। ऐसे व्यक्तियों का स्थान समाज में बहुत ऊँचा है। उनके कार्य भविष्य के लिए हैं न कि वर्तमान के लिये। और उत्पादकता की सामान्य परीक्षायें उन पर लागू नहीं होतीं वे मानव संस्कृति की केवल पूरक सेवायें अथवा आर्थिक विचार की आधार शिलायें नहीं हैं, वरन वे हैं जोकि मानव के भाग्य को बदल देते हैं और जाति के गुण और स्वभाव को निर्धारित करते हैं। सामूहिक उत्कर्ष के इस युग में इस क्षेत्र को जनता की प्रगति के लिये अत्यन्त महत्व है परन्तु फिर भी उनकी सेवाओं की प्रकृति ऐसी है कि उसकी नाप तौल केवल आर्थिक आधार पर नहीं की जा सकती जैसा कि अन्य वर्णित दो वर्गों के लिए सम्भव है। इस वर्ग के कार्यकर्ताओं के लिए सही प्रेरणा सम्मान और प्रतिष्ठा की भावना की है और हमें ऐसे मार्गों और साधनों का अन्वेषण करना चाहिए जो इन व्यवसायों में इनका निर्माण कर सकें और इनकी विजय का विशाल प्रमाण पर उत्सव मना सकें। राष्ट्र को चाहिए कि इन सेवाओं में गौरव का गर्व उत्पन्न करें और इनमें से प्रत्येक को जो कुछ उसको देय है प्राप्त करा सके। इस प्रकार से इन सेवाओं के सन्दर्भ में वेतन, प्रत्यन्तरों के प्रति दृष्टिकोण ही बदल जाता है और प्रतिष्ठा की श्रेणी उनका स्थान ग्रहण कर लेती है। इस पद-समूह को समाज के द्वारा द्वितीय पद-समूह से ऊँचे क्रम में रखना चाहिये यद्यपि वेतन के सम्बन्ध में उनकी तुलना न की जाय। इन वर्गों में वेतन क्रम

का आधार भूत स्तर काफी ऊँचा रखा जाना चाहिये जिससे उन्हें अच्छी जीवन व्यवस्था प्राप्त हो। परन्तु प्रथम वर्णित दो वर्गों के समान वेतन प्रत्यन्तर इतने अधिक भाव प्रवण नहीं बनाये जाने चाहिए। फिर भी सत्ता और सम्मान उनके ऊपर पूर्ण श्रद्धा से लादना चाहिए।

मानवीय प्रेरणा की श्रेणी में व्यक्तियों का सर्वोच्च वर्ग वह है जिनके अन्दर इस संसार में वृत संकल्प की भावना हो। ऐसे व्यक्ति मुद्रा और प्रतिष्ठा की कौड़ी बराबर चिंता नहीं करते। वास्तव में यदि उनके कार्य की नाप-जोख भौतिक मापकों के द्वारा की जाय तो वे अपने को अपमानित अनुभव करते हैं। हमने ऐसे व्यक्तियों का वर्णन न्यूनतम मजदूरी के सम्बोध पर विचार करते हुए किया था वे गरीबी और अपयश के द्वारा लादी गई कठिनाइयों की उपेक्षा करते हुए कार्य करते हैं और प्रायः देखा गया है कि उनके जीवन रहते हुए जनता और समाज उनके मूल्यों को परख नहीं पाते। ऐसे व्यक्ति किसी मानवीय अभिकर्ता या संस्था के द्वारा कार्य में नहीं लगाये जाते परन्तु वे स्वयं इनमें से किसी का उपयोग करते हैं या छद्मवेश धारण करके कार्य करते हैं। यह उनके लिए है कि मानव समाज व्यक्तिगत स्वतन्त्रा के मूल्यों की रक्षा करे। क्योंकि यह तभी सम्भव है कि वह इन स्वतन्त्र आत्माओं का लाभ उठा सके। वे मानवीय सेवायोजन के सम्बोध से परे हैं। और मानवता के सच्चे स्वामी हैं। अन्य सेवायोजक जो व्यक्तियों को रोजगार में रखते हैं, वास्तव में एक या दूसरे प्रकार का कार्य करते हैं, जिसका माप पूँजी की मात्रा, साहस, उद्योग विज्ञान अथवा अन्य गुण के द्वारा किया जा सकता है। जिनकी वह आयोजना करते हैं और जिन्हें वेतन प्रत्यान्तरों के सम्बोध के अन्तर्गत रखा जा सकता है, जिससे हमारी मजदूरी नीति अपने प्रभाव में राष्ट्र की आय नीति बन सके। क्योंकि यदि मजदूरी नीति या मजदूरी प्रत्यान्तर आय प्रत्यन्तरों से भिन्न रखे जांय जोकि समाज में प्राप्य है तो बाजार की शक्तियां मानवीय व्यवहार पर प्रभाव डालने लगती हैं, जिससे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था विकृत हो जाती है। मजदूरी प्रत्यान्तरों पर जो दृष्टिकोण हमने प्रस्तुत किया है, वास्तव में सक्रिय प्राकृतिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण और उपभोग है। इस प्रकृति के अपराध में तीन भुजायें हैं– वस्तु, जीवन और मस्तिष्क। और इन गुणों की महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों के अनुसार समाज को उत्तर देना चाहिए। यदि समाज अपने उद्देश्यों की एक संगतिपूर्ण प्राप्ति करना चाहे। यह ज्ञान भूतकाल के भारतीय विचारकों को पूर्ण रूप से विदित था जिन्होंने ऐसा अर्थ सामाजिक ढांचा उत्पन्न किया जिसमें शताब्दियों के आक्रमणों को सहन कर पाया। अब आवश्यकता इस बात की है कि उस ज्ञान को आधुनिक शब्दों में आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल फिर से प्रस्तुत किया जा सके। यह योग्य होगा यदि राष्ट्रीय

श्रम आयोग जीवन के इन स्थायी मूल्यों की पहिचान कर सके, जिन्हे भारतीय ऋषियों ने अनेक पीढ़ियों में देखा और राष्ट्र को एक बार फिर मजदूरी प्रत्यन्तरों और प्रतिष्ठा प्रत्यंतरों की एक समन्वित व्यवस्था के माध्यम से मानवीय मूल्यांकन और पुरस्कार की व्यवस्था के सही मापदंड प्रदान करे, जिससे भारत में मानवीय प्रयत्नों को अत्यन्त आवश्यक दिशा प्राप्त हो सके।

## वेतन नीति Wage Policy

श्रम से सम्बन्धित सभी प्रश्नों में मजदूरी नीति का प्रश्न सबसे अधिक भावुक है। राष्ट्रीय श्रम आयोग के द्वारा प्रचारित प्रश्नावली में ठीक ही कहा गया है कि इस विषय को अर्थनीति के संग्रथित पृष्ठभूमि में ही यथार्थतया लिया जा सकता है। जिसमें पूंजी निर्माण की आवश्यकताओ और उद्योग के प्रतिफलित विकास का पूर्ण ध्यान रखा गया हो और जिसमें मजदूरी नीति, साहसी के लाभ और उपभोक्ताओं की प्राप्ति के सामूहिक प्रभावों का अध्ययन किया गया हो और जो मजदूरियों, आय और मूल्यों के उद्देश्यों और क्षेत्रों का परीक्षण अर्थव्यवस्था के विकास के सन्दर्भ में करती हो। इसे अंत में मजदूरी के ढांचे में क्षेत्रीय सन्तुलन के निमित्त निर्देशक रेखायें प्रस्तुत करनी चाहिये और यह स्पष्ट करना चाहिए कि इस नीति को लागू करने के लिये वर्तमान संस्थात्मक व्यवस्था में कौन से परिवर्तन करना आवश्यक होगा। स्पष्टता के लिये हम जोड़ सकते हैं कि वास्तव में उद्देश्य केवल यह नहीं है कि एक निश्चित समय में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये केवल एक नीति बतलायी जाय, वरन् यह भी कि एक राष्ट्रीय अर्थनीति प्रस्तुत की जाय जो यथोचित नियोजन, संगठन और प्राविधि के माध्यम से देश के संसाधनों का पूर्ण उपयोग करते हुए जनता को पूर्ण रोजगार प्रदान कर सके और उसके सन्दर्भ में राजनीतिक तत्वों का यथोचित विचार करते हुए मजदूरी नीति का पुनर्निर्धारण किया जावे।

यह उत्तम होगा यदि हम विषय का विश्लेषण ऐसे दृष्टिकोण से कर जो हमारे व्यक्तियों को पूर्ण रोजगार प्रदान करने की आवश्यकता पर बल देता है। हमारे देश में करोड़ों नवयुवक वर्तमान समय में अपने जीवन के अनेक नियामक वर्ष निठल्ले रहकर अथवा अनुपयोगी बनकर अथवा छोटी नौकरियों पर काम करके बरबाद कर देते हैं जिनमें पुनः अपनी योग्यता और कौशल का पूर्ण उपयोग करने के लिये अवसर नहीं मिलता। देश में यह स्थिति सभी ओर फैल गई है, जिसके कारण न केवल अत्यन्त कठिनाई वरन् विशाल मात्रा में भग्नाशा मजबूरी और दारिद्य का वातावरण बना है।

जो कहीं-कहीं भुखमरी तक भी पहुंचा है। इस समस्या के तत्काल निदान की समस्या सर्व सम्मति है। हमारे युग की यह एक सामाजिक चेतावनी है। यदि जनता ने इस परिस्थिति के विरुद्ध पर्याप्त विद्रोह नहीं किया तो उसका कारण यह है कि गहरी और तर्कयुक्त संस्कृति ने उसे यह पढ़ाया है कि अपने नेताओं और परमात्मा पर विश्वास रखो और शान्ति पूर्वक हानि उठाने जाओ। यहां तक कि यदि मृत्यु आ जाये तो उसे भी परमात्मा की इच्छा समझो। तथा प्रेम, सौहार्द्र और अच्छे विचार, जाति के नेताओं के प्रति जगाने का एक साधन मानो। इतिहास इस पीढी और इसके नेताओं को क्षमा नहीं करेगा, यदि हम आज भी इस समस्या के प्रति सजग नहीं होते और इसके तत्काल निदान के लिये महत्वपूर्ण और यथार्थवादी कदम नहीं उठाते।

सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार कुल जनसख्या ४३९ मिलियन थी जिसमें २२६ मिलियन पुरुष और २१३ मिलियन स्त्रियाँ थीं। इनमें से १२९ मिलियन पुरुष और ५९.५ मिलियन स्त्रियाँ श्रमिकों के रूप में पंजीकृत थीं। श्रमिकों के रूप में पंजीकृत इन वर्गों के निम्नलिखित उपवर्ग बेरोजगारी या अर्धरोजगारी के किसी भी भारतीय विद्यार्थी के लिए विशेष महत्व को हैं।

| उपवर्ग | श्रमिकों की संख्या मिलियन में | |
|---|---|---|
| | पुरुष | स्त्रियाँ |
| १–कृषक | ६६.५ | ३३ |
| २–कृषि श्रमिक | १७ | १४ |
| ३–घरेलू उद्योग | ७ | ५ |
| योग | ९०.५ | ५२ |

यह सुविदित है कि इन उपवर्गों में प्रत्युत्तर सम्बन्धी अनेक भूलें हैं। और कार्य के ऋतु जनित और रोजगार के अल्प क्षेत्र के कारण वे पूरी तरह से सेवायोजित नहीं होते। अतः अब केवल ३९.५ मिलियन पुरुष और ७.५ मिलियन स्त्री श्रमिक जनता बचती है जो निर्माण, विनिर्माण, व्यापार व वाणिज्य, परिवहन, संग्रह एवं संचार, खदान व उत्खनन, पशुपालन, वन, मत्स्य उद्योग, शिकार एवं बागान, उद्यान तथा सम्बन्धित कर्मों में लगे हुए हैं। यदि हम इन वाद के वर्गों में लगे हुए श्रमिकों को

औद्योगिक श्रमिक माने तो हमें पुरुषों के लिए १७ % और स्त्रियों के लिए ३.५ % का निम्न अनुपात प्राप्त होता है। यह देश के औद्योगीकरण की वर्तमान स्थिति है। यदि हम अधरेलू उद्योगों, व्यापार, व्यवसाय या सेवाओं में लगे ६२०४५.५ मिलियन व्यक्तियों के वर्गीकरण पर विचार करें तो औद्योगीकरण की प्रगति और अधिक स्पष्ट हो जाती है (सारिणी १.३२ भारतीय श्रम सांख्यकी)। ४५.५ मिलियन व्यक्तियों में से १५.८ पुरुष और ४.६ मिलियन स्त्रियां एकाकी श्रमिक अथवा पारिवारिक श्रमिक के रूप में पंजीकृत हैं जिससे केवल २५ मिलियन व्यक्ति औद्योगिक संस्थाओं में लगे हुए बच रहते हैं। इन २५ मिलियन व्यक्तियों का विभाजन यदि सेवायोजक और कर्मचारियों के रूप में किया जावे तो क्रमशः २ मिलियन व २३ मिलियन आते हैं जो सेवायोजक और श्रमिक का अनुपात १–११.५ बतलाता है। यह महत्वपूर्ण है कि जनगणना में सेवायोजक के रूप में घरेलू उद्योग में किसी भी उपवर्ग का उल्लेख नहीं है। इसमें साधारण तौर पर केवल यह कहा गया है कि घरेलू उद्योग में लगे हुए १२ मिलियन व्यक्तियों में १ मिलियन कर्मचारी हैं और शेष दूसरे। ३३ करोड़ गांव में रहने वाले व्यक्तियों में नगर में रहने वाले ८ करोड़ की अपेक्षा यह अंक साधारणतया ठीक हैं। परन्तु १९६३–६४ के वर्तमान मूल्यों पर आधारित प्रति व्यक्ति ३७० रु० की राष्ट्रीय आय जीवन निर्वाह के स्तर को त्वरित औद्योगीकरण के द्वारा बढ़ाने की समस्या का आश्चर्य में डालने वाला अनुपात उपस्थित करती है।

यह रुचिकारक होगा कि इन अंकों की तुलना अन्य देशों के अंकों से इसलिये की जाय कि यह जाना जा सके कि किस प्रकार आर्थिक क्रिया औद्योगीकरण के साथ बदलती है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट नं० ६७ की सारिणी नं० ४ से लिये गये निम्नलिखित समंक इस बात को स्पष्ट करते हैं।

| देश | वर्तमान वर्ष जिसके समंक प्राप्य हैं | कुल श्रमशक्ति का प्रतिशत | | |
|---|---|---|---|---|
| | | कृषि | उद्योग | सेवायें |
| आस्ट्रेलिया | १९५४ | १३ | ४१ | ४६ |
| बल्गारिया | १९५६ | ६५ | १९ | १६ |
| कनाडा | १९६२ | ११ | ३६ | ५३ |
| चेकोस्लोवाकिया | १९६० | २६ | ४६ | २८ |
| फ्रान्स | १९६२ | २१ | ३९ | ४० |
| जर्मनी (F.R.) | १९६१ | १४ | ४९ | ३८ |

| देश | वर्तमान वर्ष जिसके समंक प्राप्य हैं | कुल श्रमशक्ति का प्रतिशत | | |
|---|---|---|---|---|
| | | कृषि | उद्योग | सेवायें |
| जर्मनी (ब्रिटेन) | १९६१ | ४ | ४९ | ४७ |
| हंगरी | १९६० | ४० | ३५ | २५ |
| इटली | १९६२ | २७ | ४० | ३३ |
| जापान | १९६१ | ४५ | २४ | ३१ |
| मैक्सिको | १९६० | ५५ | १९ | २६ |
| पोलैण्ड | १९६० | ४८ | २८ | २४ |
| स्वीडेन | १९६० | ४१ | ४५ | ४१ |
| मिश्र | १९६० | ५८ | १२ | ३० |
| अमेरिका | १९६० | ७ | ४० | ५३ |
| रूस | १९६१ | ३७ | ३३ | ३० |

उपरोक्त प्रत्येक देश में प्रतिशत और कृषि में लगी हुई निरपेक्ष संख्या क्रमशः गिरती गई है। यह विशेष रूप से दृष्टव्य है कि अमेरिका में केवल कृषि में ४.५ मिलियन लोग जुट कर (अपनी श्रम शक्ति का ७%) समस्त विश्व के खाद्यान्न की कमी को दूर करने का स्वप्न देख सकते हैं। यह समंक यह भी बताते हैं कि किस प्रकार से तेजी से बढ़ने वाली बचतें विशाल ढांचे के परिवर्तों की व्यवस्था कर सकती हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम भारत की श्रम शक्ति के वर्गीय विभाजन में किसी रंगमंचीय परिवर्तन का लक्ष्य बनावें। हमारे पास कृषि में ही बहुत कुछ करने के लिए बाकी है। सन् १९६०-६१ में अपने १५२ मिलियन हैक्टर के कुल खेतिहर क्षेत्र में से हमने केवल १९.५ मिलियन हैक्टर पर बुवाई एक से अधिक बार की। यदि इसमें खेती योग्य बेकार भूमि के २० मिलियन हैक्टर को जोड़ दिया जाय और अपने देश में निम्न औसत उपज का विचार किया जाय तो हम देख सकेंगे कि समस्या की प्रकृति क्या है और इसे किस प्रकार हल किया जा सकता है। वन और उसके उत्पादक, खनिज पदार्थ, पशु व मत्स्य धन के सम्बन्ध में और भी अधिक कहा जा सकता है। हमारा देश प्राकृतिक संसाधनों में निश्चित ही पीछे नहीं हैं। तब यथार्थ समस्या कहां है? हमारे पास संसाधन हैं और व्यक्ति भी। और उत्तर प्राप्त करने के लिये हमें केवल खोई हुई कड़ियों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

यह एक सुपरीक्षित आर्थिक विकास का सिद्धान्त है कि उत्पादकता और प्राकृतिक संसाधनों का मूल्य, प्राविधिक प्रयोग, संगठन अथवा उत्पादन की रीति, कुशलता और सरकार की नीति के द्वारा और सामान्य रूप में समाज के संगठन के द्वारा प्रभावित होते हैं। किसी भी संसाधन के अन्तर्निहित गुण उसको उत्पादन में भाग लेने के लिये और इस प्रक्रिया में मूल्यवान बनने के लिये प्रेरित नहीं करते। इसके लिए यह आवश्यक है कि सहभागी और पूरक संसाधन (उत्पादन के साधन) प्राप्य हों और प्रत्युत्पन्न उत्पादन के लिये एक बाजार भी हो। जब आवश्यक और पहिले सहकार्य न करने वाले उत्पादन के साधन जैसे पूंजी का प्रयोग, संगठन और प्राविधिक कौशल की आपूर्ति की जाती है तो प्राकृतिक संसाधनों में आर्थिक मूल्य और उपयोगिता का जामा पहिना दिया जाता है। मानवीय शक्ति उसके गुण और सम्पन्नता का प्रयोग इन सहकारी तत्वों का प्रयोग प्राप्त कराता है।

इन सहकारी तत्वों में से पूँजी की आवश्यकता को भारतीय नियोजको ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है। परन्तु उसी विश्वास से यह नहीं कहा जा सकता कि संगठनात्मक और प्राविधिक कौशल की आवश्यकता को उसी प्रकार महत्वपूर्ण माना गया है। यदि यह बाद की वस्तुओं को हमारी योजनाओं के बनाने और चलाने में महत्व दिया गया होता तो हमें वर्तमान के पूर्ण अनुपस्थित श्रम शक्ति उपयोग और प्रशिक्षण परियोजनाओं की अपेक्षा एक अर्थपूर्ण व्यवस्था प्राप्त होती। यह स्वीकार नहीं किया गया है कि मानवीय तत्व भी पूँजी का एक स्वरूप है। दूसरे शब्दों में आर्थिक भाषा में पूँजी के प्रयोग का जो अर्थ समझा जाता है या इन संस्थागत प्रवाहिकाओं के द्वारा अर्थ लगाया जाता है उसके कारण औसत भारतीय नियोजकों और सरकार के द्वारा पूँजी निर्माण के प्रति उत्साह को अविश्वास से देखने लगा है। देश के लिए एक मजदूरी और रोजगार नीति बनाते समय पूँजी निर्माण की आवश्यकता और न्याय का बाजा बजाना पर्याप्त नहीं होगा जिसके अन्तर्गत पूँजी और श्रम के लेखामूल्य दिखलाये जाते हैं। अब यह आवश्यक होगा कि औसत व्यक्ति पूँजी के विशिष्ट उपयोगों का अर्थ समझे जोकि वह अपने निम्न स्तर के उपभोग को रोक कर या उसकी वृद्धि को रोक कर प्राप्त करता है।

इसे करने का उत्तम उपाय यह होगा कि पूँजी के उपयोग का निर्देशन इस प्रकार से किया जाय जिससे मनुष्यों को बढ़ता हुआ रोजगार दिया जा सके और वह भी शीघ्र। यह क्रिया एक सन्तोष के रूप में महत्वपूर्ण है। परन्तु यह आवश्यक कहा जायेगा कि सेवायोजन की नीतियों की यथार्थ सफलता इस बात पर निर्भर होगी कि

वे किस मात्रा में राष्ट्रीय आय और उत्पादन में वृद्धि करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमसंगठन ने आर्थिक नीति के उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप में लिखा है :—

प्रत्येक आर्थिक उत्पादक रोजगार निम्नलिखित परिवर्तन कर सकता है—

(अ) आवश्यकता वाले वर्गों में आय को बढ़ाना जिससे वे आर्थिक विकास के लाभों में अधिक हिस्सा प्राप्त कर सकें।

(ब) इस बात की सुरक्षा करना कि आर्थिक विकास के लिये अधिक से अधिक मानवीय क्षमताओं का उपयोग किया जा सके।

(स) इस बात की सुरक्षा करना कि समाज के आर्थिक जीवन में सभी का योगदान हो सके और भग्नाशा की भावना और असफलता का भाव दूर रखा जा सके जो बेरोजगारी और गम्भीर अर्ध रोजगारी से उत्पन्न हो सकते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कान्फ्रेंस १९६१ के सेवायोजन नीति सम्बन्धी प्रस्ताव ने सरकार को प्रभावित किया कि "सामाजिक और आर्थिक नीति के प्रमुख लक्ष्य के रूप में पूर्ण उत्पादक और स्वतन्त्र रूप से चुना गया रोजगार रखा जाय जिस लक्ष्य में अन्य बातों के साथ जीवन निर्वाह के उच्च स्तर भी सम्मिलित हैं और निम्नलिखित अर्थ में समझा जाय।

(१) प्रत्येक व्यक्ति के लिये जो काम ढूंढ़ रहा है, काम हो।

(२) जो पद प्राप्त हों वे जहां तक सम्भव हो, उत्पादक हों।

(३) रोजगार के चुनाव की स्वतन्त्रता हो और प्रत्येक श्रमिक को ऐसे कार्य में जिसके लिये वह पूर्ण रूप से उपयुक्त है जाति, लिंग, विचार, आयु और जन्म के विचारों से रहित अपने प्राप्त कौशल और प्राकृतिक गुणों के आधार पर चुने जाने और उनका प्रयोग करने का पूर्ण अवसर मिले।"

उपरोक्त सेवायोजन लक्ष्यों का सुझाव देते समय अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन यह पूर्ण रूप से समझता था कि उनको किस प्रकार से अन्य सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति से जोड़ा और समन्वित किया जाय। सामाजिक उद्देश्य, उपभोग के पुनर्वितरण अथवा अधिक समृद्ध वर्गों से गरीब वर्गों की उपभोग के वितरण से सबसे अधिक सम्बन्धित है। आर्थिक विकास की वृद्धि आर्थिक उद्देश्य है, जिससे विनियोग की दर

अति निकट से सम्बाधित है । यह स्पष्ट है कि यदि नवीन कार्य में लगे कर्मचारी अपने उत्पादन से अधिक अपने उपयोग को बढ़ा लें तो यह अतिरेक या तो बिनयोग या किसी दूसरे के उपभोग के खर्चों पर होगा । यह बाद की बात यद्यपि श्लाघ्य है परन्तु इसे प्राप्त करना कठिन है । क्योंकि उच्च आय और धन के वर्गों पर लगाये गये कर जिनसे इन उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है, प्रायः उपभोग की अपेक्षा बचत को कम कर देते हैं । भारत का अधुनातन अनुभव इस भय को स्पष्ट करता है ।

इस आवश्यकता का पूर्ण ध्यान देते हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने सेवायोजन नीति के लिये निम्नलिखित सिद्धान्त बताये हैं :—

(१) प्रत्येक देश के मानवशक्ति के उपभोग की एक नीति होना चाहिए जिसके लक्ष्य स्पष्ट हों और जिन्हें प्राप्त करने के लिये एक क्रियाशील योजना हो ।

(२) योजना में मानवीय क्षमताओं के विकास के लिए दीर्घकालीन उद्देश्य और यंत्र विशेष रूप से शिक्षा और प्रशिक्षण सम्मिलित होने चाहिये ।

(३) इसमें एक विकासशील अर्थव्यवस्था के सतत् उत्कर्ष के लिये सामान्य प्रकृति के उद्देश्य और साधनों की व्यवस्था होनी चाहिये । इसमें ऊंचे अंश में श्रम प्रचलन के विकास के लिए और बदलती आवश्यकताओं के प्रति श्रम शक्ति के प्रभावी समायोजन के लिए लक्ष्यों और साधनों का विधान होना चाहिये ।

(४) अन्य आर्थिक और सामाजिक नीतियों से सेवायोजन नीति के उद्देश्यों और साधनों का समन्वय किया जाना चाहिए ।

(५) ऐसे व्यक्ति जिन्हें अर्थव्यवस्था किसी एक निश्चित समय पर नौकरी न दे सके उन्हें उनकी आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये मुक्तहस्त सहायता की जानी चाहिये, जिससे वे भविष्य के उपयोगी सेवायोजन में लग सकें ।

(६) यह सारी नीतियां पूर्ण प्रजातांत्रिक प्रक्रमों के माध्यम से बनायी और लागू की जानी चाहिए क्योंकि सेवायोजक और श्रमिक उनके द्वारा विशेष रूप से प्रभावित होंगे और इसी कारण सरकारों द्वारा उनसे विचारविमर्श किया जाना चाहिये और उनका सहयोग मांगा जाना चाहिये ।

भारतीय मजदूर संघ उपरोक्त सेवायोजन नीति और रोजगार, उद्देशित योजना

को अपनाने का समर्थन करता है और इसके लिये पूँजी निर्माण और विनियोग की दिशा को प्राथमिकता देने के लिये तैयार है जिनसे उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति हो। परन्तु वह भेदभाव शून्य पूँजी निर्माण और उद्योग में रोजगार के उद्देश्यों से रहित पूँजी बिनियोग के बिरुद्ध है जैसे कम्प्यूटर, आटोमेशन और बड़े प्रकल्प का संयंत्र जो काफी लम्बे गर्भकाल के पश्चात लाभ प्रदान करेंगे। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय श्रम आयोग के इस प्रश्न के लिये कि मजदूरी के निर्धारण में श्रम के प्रति न्याय, उद्योग का विकास, पूँजी निर्माण और साहसी के प्रतिफल इत्यादि के सिद्धान्तों का कैसे प्रयोग किया जायेगा ? हमारा उत्तर यह है कि इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उत्तर नहीं हो सकता जब तक यह न पता हो कि पूँजी को किस उपयोग में और किस प्रकार से लगाने की इच्छा है। यहां तक कि अभिनवीकरण अथवा आटोमेशन जैसे तात्कालिक प्रयोगों में मजदूरी को बचाने से जो पूँजी निर्माण होती है वह श्रमिकों को उनके कार्य-पदों के बाहर फेंक देती है। राष्ट्रीय स्तर पर यह भय और भी अधिक है। दूसरे शब्दों में यदि आर्थिक कर्म साहसी की स्वतन्त्र इच्छा पर छोड़ दिये जांय अर्थात् लाभ के उद्देश्य पर नियन्त्रण न हो तो कोई कारण नहीं कि क्यों निम्न मजदूरी पाने वाले श्रमिक समृद्धि सम्पन्न साहसी के हित में जोड़ने का प्रयत्न करें अथवा पूँजी निर्माण का उद्योग करें ? जिसका लाभ न तो उनको मिलेगा न रोजगार का उद्देश्य पूरा होगा और जो केवल एक सीमान्त या घटनात्मक चरित्र का होगा। निश्चित ही मजदूरी पर बन्धन क लिये विचारणीय मामला होगा। यदि यह दिखलाया जा सके कि प्रतिफलित बचतों का प्रयोग कम भाग्यवान व्यक्तियों के रोजगार के लिये किया जा रहा है। परन्तु इस प्रकार का प्रस्ताव केवल एक मजदूरी निर्धारण के सूत्र को अपनाकर निश्चित नहीं माना जा सकता, जोकि किसी रोजगार उद्देशित योजना से संगत न हो। साथ ही यह भी पर्याप्त नहीं होगा कि सरकार अथवा उसकी रोजगार विषयक योजनाओं पर विश्वास किया जाय जब तक कि ऐसी योजनायें उत्पादक सिद्ध न हों। यही कारण है कि एक राष्ट्रीय आर्थिक योजना के निर्माण में श्रमिक की भागीदारी अत्यन्त आवश्यक है जिससे उन्हें किसी भी मजदूरी निर्धारण के प्रारूप से जोड़ा जा सके। यह भी बुद्धि रहित होगा कि सरकार पर विश्वास किया जाय कि वह किसी भी प्रकार से अतिरिक्त श्रमशक्ति को सार्वजनिक क्षेत्र में खपा लेगी। यदि इस प्रकार से नये रोजगार प्राप्त व्यक्ति केवल अपने उपभोग को बढ़ा रहे हों न कि उत्पादन को जिसे उनके रोजगार का प्रमाण माना जाय तो वे अर्थ व्यवस्था में एक गम्भीर कठिनाई उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार का अतिरिक्त कर्मचारी वर्ग सम्पूर्ण सेवा क भीतर मनोबल गिरा देते हैं। और प्रशानन में केवल दिखावा और चक्करदार व्यवहार उत्पन्न कर देते हैं।

बिगड़ी हुई आदतों वाले ऐसे व्यक्तियों से दबी हुई सार्वजनिक सेवायें सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में विघटन उत्पन्न कर सकती हैं। यह विश्वास करने के लिये कुछ आधार है कि इस प्रकार की कुछ बात हमारी सार्वजनिक सेवाओं के कुछ विभागों में उत्पन्न हो गई हैं। सीधी बेरोजगारी सहायता योजना को अपना लेना इस प्रकार के गलत और विघटनकारी रोजगार से अच्छा होगा। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने ठीक ही सुझाव दिया है कि ऐसे व्यक्तियों को जिन्हें अर्थव्यवस्था रोजगार नहीं दे सकती उनकी आधारभूत आवश्यकताओं को दूर करने के लिये सहायता दी जानी चाहिए शताब्दियों से भारत में यह प्रचलन रहा है कि धर्मशालायें बनायी जाँय और घरों में अन्नक्षेत्र खोले जाँय और बेरोजगारों को भोजन दिया जाय। यह उत्तम होगा कि हम इस राष्ट्रीय चलन को पुनर्जीवित करें और बेरोजगारों को लाभप्रद व्यवसाय में लगाने के लिये इसमें एक रोजगार एवं प्रशिक्षण योजना जोड़ दें। किसी भी अवस्था में समाज अपने व्यक्तियों को भूख से मरने नहीं दे सकता। इस लिये यह उत्तम होगा कि मानवशक्ति नियोजन आर्थिक सेवाओं के संगठन को इस प्रकार से किया जाय कि हम प्रत्येक व्यक्ति का उत्तम प्रबन्ध कर सकें, उसे एक उत्पादक रोजगार मे लगा सकें अथवा उसके भार को यह जानते हुए उठा सकें कि उसके लिये नये कार्य या रोजगार के अवसर ढूंढ़ना है। जब योजना में इस प्रकार की रोजगार सम्बन्धी अभिनति होगी तभी श्रमिकों का समर्थन विभिन्न विनयोग निर्णयों में प्राप्त किया जा सकेगा। भारतीय श्रमिक निश्चित ही देश के गरीब और बेरोजगार व्यक्तियों की ओर सहायता का हाथ बढ़ाने में असफल नहीं होगे। परन्तु आज जब उससे यह कहा जाता है कि मजदूरी पर बन्धन स्वीकार करे तब उसके पास यह विश्वास करने के कारण होते हैं कि इस प्रकार की मांग केवल समृद्ध पूँजीपति अथवा निष्क्रिय राजनीतिज्ञ या भ्रष्ट नौकरशाह के प्रति ही सेवा करती है। मजदूरी नीति के सम्बन्ध में निर्णयों के लिये किसी भी विनयोग योजना या नीति के उद्देश्यों के आर्थिक और रोजगार सम्बन्धी उद्देश्य ही केन्द्रीय महत्व के होते हैं। यदि श्रमिकों के प्रतिनिधियों और सेवायोजकों के सुझाव लिये जाते हैं और उन्हें श्रम बहुल उत्पादों के विकास और श्रमबहुल प्रविधियों के प्रयोग से विज्ञ रखा जाता है और सहयोगी सतत अध्ययनों के माध्यम से सेवायोजन नीति के प्रतिपादन में उनके सहयोग की कामना की जाती है तो इस प्रश्न से एक लाभदायक मजदूरी नीति का उद्भव होगा। भारतीय परिस्थिति में इस केन्द्रीय तत्व की उपेक्षा के कारण मजदूरी पर किसी योजना के अपनाने के सम्बन्ध में अनेक कठिनाई उत्पन्न हो गई हैं। यह हमारी योजना सम्बन्धी यन्त्र के परिचालन में संगठन और प्राविधिक कुशलता की कमी का एक कारण है। यदि मेरे अपने उपभोग को कम करके पूँजी का निर्माण होना है या विनयोग किया जाना है तो मुझे कम से कम यह आवश्यक मालूम होना चाहिये कि किस उद्देश्य

में वह लगाया जा रहा है। भारतीय श्रमिक अवश्य ही ऐसे रोजगार को समर्थन देगा जिसके सम्बन्ध में उसे मालूम हो कि वह उससे अधिक गरीब और दर्बल व्यक्ति भी सहायतार्थ है। परन्तु वह यह जानने के लिए ठीक ही बल देता है कि उसे इस बात की सुरक्षा होनी चाहिये कि एक पवित्र नाम लेकर उसे कहीं धोखा तो नहीं दिया जा रहा है। दूसरी ओर यदि अर्थव्यवस्था पूँजी बहुल होनी है तो इस बात की सम्भावनायें हैं कि उसका त्याग केवल बड़े लोगों की ओर समृद्ध करेगा और कदाचित् उसे उसके कार्य पद से भी दूर कर दिया उसे दोष नहीं दिया जा सकता यदि वह ऐसे सिद्धांत के अन्तर्गत जहां बड़ी मछली छोटी मछली को खा लेती है अपनी सगठित शक्ति का प्रयोग अधिक से अधिक करके अधिक से अधिक खींचने का प्रयत्न करे और पूँजी निर्माण तथा साहसी के लाभ जैसे तत्वों को कोई महत्व न दे।

यह चर्चा हमें अर्थ नीति के अन्य महत्वपूण पहलुओं की ओर ले जाती है। इस सन्दर्भ में आर्थिक विकास का दृष्टिकोण, सार्वजनिक क्षेत्र का ढांचा और कार्य, मजदूरी नीति, निजी क्षेत्र का संस्थात्मक ढाँचा और आय नीति का विचार पूर्ण रूप से सम्बन्धित विषय हो जाते हैं। आर्थिक नियोजन के बड़े मामलों की ओर जाने से पहिले हम अपनी स्थिति को इस सन्दर्भ में स्पष्ट कर दें कि पूंजी निर्माण से सम्बन्धित निर्णयों का निजी क्षेत्र के मजदूरी ढाँचे पर वर्तमान परिस्थितियों में क्या प्रभाव होता है। इस सम्बन्ध में हमारा विश्वास है कि इन मामलों में सभी निर्णय श्रमिकों के लिये इस हद तक महत्व रखते हैं कि वे कहाँ तक औद्योगिक प्रारूप को श्रमिकीकरण की ओर ले जा रहे हैं। एक बार जब प्रारम्भिक पूंजी किसी उद्योग को चलाने में लगा दी जाती है और उत्पादन के लिये श्रमिकों को कार्य में लगाया जाता है तो बाद में कार्यशील पूँजी में जो भी वृद्धि की जाती है वह श्रम के प्रति उतना ही बड़ा योगदान है जितना कि पूँजी के प्रति। अनेक वर्ष बीतने पर यह मानना तर्क शुद्ध होगा कि आनुपातिक दृष्टि से पूँजी की अपेक्षा श्रम का भाग अधिक बढ़ता है। और पूँजी एक निद्राशील भागीदार बन जाती है। एक विकासमान व्यवसाय मे यदि बाहर से लोग पूँजी लगावें तो यह माना जा सकता है कि पूँजी को श्रम के कार्यो ने आकर्षित किया है। यह सत्य है कि गिरते हुए व्यवसाय में उसे जीवित रखने के लिये लगाई गई पूँजी एक भिन्न चित्र उपस्थित करती है। परन्तु ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक मामले की परीक्षा अलग से करनी होगी जिसे हानि की जुम्मेदारी निर्धारित की जा सके। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि सभी संचतियाँ श्रम के हिस्से के कारण बनी हैं। यह आवश्यक है कि मजदूरी नीति की घोषणा करने से पहिले इस भाग का भी निर्धारण कर लेना आवश्यक होगा। हमें ज्ञात है कि भारत के समान एक तुलनात्मक स्वतन्त्र पूंजी बाजार में इस

सम्बन्ध में लिया हुआ कोई भारी निर्णय पूंजी को लज्जाशील बन सकता है। और आर्थिक विकास में रोक उत्पन्न कर सकता है। परन्तु ऐसा ही अधिक बल देकर उस समय कहा जा सकता है जबकि ऐसे निर्णयों की अनुपस्थिति में मजदूरी नीति बनायी गयी हो। एक निष्कर्ष के रूप में हमें यह कहने की आज्ञा होनी चाहिये कि श्रम को पूँजी के स्वामित्व में हिस्सा देने की नीति ऐसी होनी चाहिये कि राष्ट्रीय रंगमंच पर क्रमिक श्रमिकीकरण की योजना अपनायी जा सके। अन्यत्र हमने राष्ट्रीय उत्पादकता काउंसिल द्वारा प्रतिपादित और डाक्टर गोखले स्कूल आफ इक्नामिक्स एण्ड पौलटिक्स द्वारा समर्पित प्रस्ताव का सन्दर्भ दिया है जिसमें श्रमिकों को उत्पादकता लाभों में से हिस्सा देने की बात की गई है। इसमें हम यह जोड़ते हैं कि ऐसी योजना को प्रारम्भ करते समय एक निर्धारित योजना के अनुसार श्रमिकों को संपत्तियों में स्वामित्व देना चाहिये जिससे अपनी संस्था अथवा उद्योग के विनियोग सम्बन्धी निर्णयों में वे बुद्धिमत्ता-पूर्ण और जीवन्तरुचि ले सकें। निर्धारित योजना को एक क्रमिक या स्तरित रूप में उद्योग के श्रमिकीकरण की दिशा में ले जाना चाहिये। ऐसी योजना पूँजी के अपवर्जी स्वामी को सदैव के लिये समाप्त कर देगी परन्तु साहसिक योग्यता को हानि नहीं पहुंचायेगी। वस्तुतः इस सन्दर्भ में श्रमिकों की परिभाषा में हम उन सबको सम्मिलित करते हैं जो उद्योग को पूर्ण समय देकर सेवा प्रदान कर रहे हैं अर्थात् इसमें व्यवस्थापकों का पक्ष भी सम्मिलित है। यदि हमारे द्वारा सुझाये गये ढग से मजदूरी प्रत्यान्तरों का निर्माण किया जाय और इस प्रकार वैज्ञानिक कार्य पदमूल्यांकन के आधार पर हिस्से दिये जाँय तो निश्चय ही उद्योग वर्तमान व्यवस्था के मुकाबले में अनेक गुना अच्छे प्रकार से व्यवस्थित हो जायेंगे। जबकि वर्तमान व्यवस्था में एक उद्यमी साहसी के अधपके और अनुभव शून्य लड़के और पोते सरकार और व्यवस्थापकों के लिये एक समस्या बन जाते हैं। संपतिकर का ढांचा कुछ इसी प्रकार के सिद्धान्तों पर बनाया गया है और हम उसके औद्योगिक संस्थाओं में प्रयोग का सुझाव देते हैं। इस प्रकार योजना सन्यत्र और उद्योग के स्तर पर एक मजदूरी नीति को अपनाने का प्रोत्साहन देगी। ठीक उसी प्रकार से जैसे रोजगार उद्देशित योजना राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार की नीति को सम्भव करेगी।

मजदूरी नीति के प्रसंग में संगीत की तान भरने वाली रेखाओं को खींचने के उपरान्त हम अब मजदूरी योजना की विषय वस्तु पर विचार करेंगे। सर्वप्रथम इस मार्ग पर हम एक मजबूर उपभोक्ता और सर्वशक्तिमान राज्य से भेंट करते हैं। इन दोनों में से मूल्य बृद्धि की परिस्थिति में उपभोक्ता के हित पर मंहगाई भत्ते पर विचार करते समय हम विवेचन कर चुके हैं जिसे पुनः लिखना आवश्यक है। परन्तु वह कहानी का

विलोमात्मक पहलू है। एक अर्थ में उपभोक्ता सदैव ही उत्पादन प्रक्रिया पर अधिकार रख सकता है क्योंकि अन्ततः सम्पूर्ण यंत्र ही उसकी सेवा के लिए चलना चाहिए। उपभोक्ता सर्वसाधारण जनता है। उसका दृष्टिकोण शुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण है। सरकार सत्तारूढ़ दल के एक विशिष्ट राजनीतिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व कर सकती है। परन्तु यह उपभोक्ता के लिए नहीं कहा जा सकता है। उपभोक्ता एक कमाने वाला भी है। अत अन्ततः उपभोक्ता के हितों की शुद्ध राष्ट्रीय व्यवस्था सम्पूर्ण देश की आय की क्षेत्रीय नीति और मूल्य यंत्र के परिचालन का विवाद बन जाती है। आय की नीति के क्षेत्रीय और व्यवसायिक प्रयोग दोनों ही हैं। इसके व्यवसायिक प्रत्यान्तरों पर हम मजदूरी प्रत्यान्तर' शीर्षक में वर्णन कर चुके हैं जहां यह कहा गया है कि एक निश्चित दृष्टिकोण से सेवायोजक के हिस्से को आय वितरण में मजदूरी प्रत्यान्तरों के सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार निर्धारित किया जा सकता है। क्षेत्रीय नीति के सम्बन्ध में हम ठीक क्रम से अब विवेचन करेंगे। इस स्थिति में हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि उपभोक्ता का हित एक अलग हित नहीं रह जाता जब हम एक क्रम करने वाली इकाई से हटकर सम्पूर्ण राष्ट्रीय क्रिया का विचार करने लगते हैं। इस स्थान पर उसका स्थान आय नीति ले लेती है।

सौदेबाजी के इकाई स्तर पर उपभोक्ता का हित और सरकार का हित एक निश्चित वास्तविकता बन जाते हैं। परन्तु मजदूरी निर्धारण के सन्दर्भ में इन संयोधों के सम्बन्ध में हम उपयोगी बात कर सकें इसके लिये उत्तर देने से पहिले कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता होगी। प्रथमतः हमें ज्ञात होना चाहिए कि वह क्या है जिसे हम तथाकथित प्रतियोगी हितों अर्थात् श्रमिकों, पूँजी, उपभोक्ता और सरकार के बीच में बाटने जा रहे हैं। क्या वह शुद्ध लाभ है, उत्पादकता लाभ है, शुद्ध आय है अथवा कुछ और। यह हमें अंतिम लेखा व्यवस्था के प्रश्न पर ले आती है। यह अब सुविदित है कि हम लोग जिस प्रकार से अंतिम शुद्ध लाभ जानने को अन्तिम लेखे लिखते हैं वह अनेक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सन्तोषजनक नहीं है। बोनस एक्ट के आधीन भुगतान करने के ही लिये विभाज्य अतिरेक को प्राप्त करने के लिये अन्तिम लेखे को इस प्रकार से पुनर्लिखित किया गया है कि व्यवसायिक एकाउन्टेन्ट उसे सहमति नहीं प्रदान करते। श्रम अर्थशास्त्र के लिये अन्तिम लेखों को वर्तमान रीति से भिन्न रूप में विन्यस्त करना आवश्यक है। हमें यह करना चाहिये कि संस्था को चलते रहने के लिये आवश्यक प्रथम खर्चों को सर्वप्रथम संस्था की कुल आय में से घटा देना चाहिये। यह कुल लाभ के सबोध के समान होगा (जिसमें स्टाक की खरीद इत्यादि के लिए कुछ संशोधन किए गए हों) जिसे हम लोग आगे गणना करने के लिये आधारभूत सम्बोध मान लें।

द्वितीयत हमें प्रत्येक उद्योग के लिये विभिन्न अनुपात तय करने होंगे जोकि कुल मजदूरी बिल, संचालन व्यय और नियोजित विकास व्यय का इस कुल लाभ का अन्य समुचित वित्तीय चर से सम्पूर्ण उद्योग के सम्बन्ध में रखना चाहिये। यह राष्ट्रीय कुशलता अंकेक्षण का एक पहलू है जिस पर करारोपण का प्रारूप भी आधारित होना चाहिये। इन मामलों में फर्म का दृष्टिकोण स्पष्ट करके ही हम मजदूरी निर्धारण से सम्बन्धित निर्णय के समक्ष पहुंचते हैं। इस स्थिति में हम देख सकेंगे कि इस प्रकार से वैज्ञानिक आवटन करके उन उद्योगों में जिनकी कुशलता का स्तर नीचा हो उपभोक्ता हित और कर्मचारी हित में सघर्ष का अनुभव कर सकेंगे क्योंकि ऐसी फर्म की जीवन सम्बन्धी आवश्यकतायें उत्पादन के बाजार मूल्य को तय करती हैं। यदि उपभोक्ता को कटौती के रूप में वस्तु के मूल्य को कम करने का निर्णय लेना है (ऐसा मूल्य जो कुल उद्योग में एक सा हो) तो ऐसे निर्णय से वह फर्म प्रभावित होगी जिसकी कुशलता निम्न स्तर की है क्योंकि एक निश्चित स्तर के बाद वह निर्धारित मूल्य पर व्यवसाय नहीं चला सकेगी। किसी उपभोक्ता पर लाभ को विस्तृत करने का निर्णय तब ऐसे निर्णय की वैकल्पिक उपयोगिता और रोजगार पर सबसे दुर्बल और सीमान्त इकाई के बन्द होने से पड़ने वाले प्रभाव पर निर्भर करेगी। एक सैद्धान्तिक आधार पर यह हमें प्रत्येक उद्योग के द्वारा प्रदत्त रोजगार और आय के अवसरों के रूप में विभिन्न उद्योगों के आधार और प्रधार से उत्पन्न होने वाले समान्त-सीमांत प्रतिफलों के सिद्धान्त तक पहुंचा देती है। वर्तमान समय में यह स्थिति दो कारणों से उत्पन्न नहीं होती,– (१) मजदूरी निर्धारण में उद्योग के अनुसार मजदूरी नीति नहीं अपनाई गई है और (२) करारोपण के सन्नियम फर्म के औद्योगिक शक्ति के अध्ययन पर आधारित न होकर उसकी देश-क्षमता पर आधारित होती है। उस विस्तार पर करारोपण के सन्नियम कुशल इकाई पर अधिभार डालते हैं और सामान्य उपभोक्ता हितों से मजदूरी नीति को अर्थपूर्ण साम्य नहीं स्थापित करने देते। इस विवाद का अन्त हम यह कहकर कर सकते हैं कि उपभोक्ता हितों के लिए राष्ट्रीय चिन्तन मजदूरी निर्धारण पर इच्छित पकड़ एक उद्योगानुसार मजदूरी और मूल्य नीति स्थापित करके प्राप्त कर सकता है। परन्तु इसे सभी हितों के लिये न्यायपूर्ण बनाने के लिये करारोपण की नीति को इस प्रकार बनाना चाहिये कि एक कुशल इकाई के श्रमिकों को उच्च कुशलता के लाभ काफी मात्रा में उत्पादकता लाभों म हिस्सा प्राप्त करके मिल सके। इस बाद के संबोध की क्रिया का वर्णन हमने पृष्ठ ५१ से ५४ तक 'श्रमिकीकरण की ओर' अनुच्छेद म किया है। उपभोक्ता हितों की इस सेवा का अर्थ रोजगार में लगे कर्मचारियों की उत्पादकता म बृद्धि होगी। इस सेवा को विभिन्न उद्योगों के प्रति एक सुनियोजित विचार के माध्यम से प्रदान किया जा सकता है।

विभिन्न उद्योगों के लिये इस मार्ग की योजना हमें अन्तिम कठिन प्रश्न पर ले आती है अर्थात् विभिन्न उद्योगों और निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच विनियोग की प्राथमिकतायें। इस विवेचन को हमने यह कहकर सरल बनाया है कि हम एक रोजगार उत्पादन योजना चाहते हैं। इसमें हम यह जोड़ सकते हैं कि उद्योगानुसार प्राथमिकताओं के इन विचारों में क्षेत्रों का निजी और सार्वजनिक विभागों में बटवारा असंगत हो जाता है। अब एक अन्तिम प्रश्न बच रहता है और वह यह कि एक विस्तृत विनियोग प्रारूप बनाया जाये जोकि न केवल राष्ट्रीय आय के विकास को प्रोत्साहन दें वरन राष्ट्रीय मजदूरी नीति की विस्तृत रेखाओं के माध्यम से उसक न्याययुक्त वितरण की सुरक्षा करे।

एक दशक पूर्व राष्ट्रीय आर्थिक विकास के लिये हमारे द्वारा प्रस्तावित रोजगार-उत्पादन योजना पर चलने से हिचक हो सकती थी। यह विचार राजनीतिक अर्थशास्त्र का एक वांछनीय विचार समझा जा सकता था। परन्तु अब अर्थयापन का विज्ञान इतना विकसित हो गया हैं कि जिसके आधार पर इस प्रश्न पर बहु-क्षेत्रीय अन्तर्कालिक माडलों और अन्य गणितीय प्रतिक्रियाओं के द्वारा एक अनुकूलतम बचत योजना को ध्यान देकर वैकल्पिक विनियोगों के बीच चुनाव पर प्रकाश डाला जा सकता है। नियोजन की सम्पूर्ण समस्या को दो अनुक्रमिक प्रश्नों में बांटा जा सकता है। सामान्य बचत दर का निर्धारण और विनियोग के घटकों का निर्धारण। सेवायोजकों और श्रमिकों के संगठनों को इन दोनों ही मामलों में चुनाव करने के निमित्त विश्वास में लिया जाना चाहिये। विभिन्न गणितीय मण्डल हमें आर्थिक विकास के वैकल्पिक पथ दिखला सकते हैं जोकि किसी अर्थ में कुशल हो सकते हैं। पथ का चुनाव सतर्क विचार द्वारा किया जाना चाहिये कि समाज को क्या स्वीकार है और उसके लिये क्या उचित है। इन दोनों आधारभूत प्रश्नों में से उचित और स्वीकार्य बचत दर का निर्धारण समाजिक कार्य-कर्ताओं के लिये अत्यन्त कठिन कार्य है। यह लक्ष्य मजदूरी नीति के निर्धारण में महत्वपूर्ण है। परन्तु जैसा हम पहिले कह चुके हैं कि विनियोग प्रारूप का रोजगार फलन बचत दर को निर्धारित करने के लिये आवश्यक जनोत्साह को जगाने के लिये अत्यन्त आवश्यक केन्द्रीय महत्व का है। केवियन सोसाइटी के लिए सर आर्थर लेविस के अध्ययन (जो एक पुस्तिका "आर्थिक नियोजन के सिद्धान्त" के रूप में प्रकाशित हो गया है) में निष्कर्ष के रूप में इस पहल पर निम्नलिखित शब्दों में विचार प्रस्तुत किया गया है।

"पिछड़े हुए देशों में नियोजन विकसित देशों की तुलना में सरकारों पर अधिक

बड़े कार्य थोपती है। सरकार को अनेक कार्य करने पड़ते हैं जिन्हें विकसित देशों में साहसियों पर छोड़ा जा सकता है। उसे औद्योगिक केन्द्र उत्पन्न करना होता है, कृषि क्रान्ति को चलाना होता है, विदेशी मुद्रा विनिमय को कठोरता से नियन्त्रित करना होता है और साथ ही जनसेवाओं और सामान्य आर्थिक सक्रियमों में महत्वपूर्ण प्रगति करनी होती है। और यह सब एक नौकरशाही के माध्यम से करना होता है जो विकसित देशों की तुलना में अत्यन्त घटिया होती है।"

इन पहलुओं का विवेचन करने के उपरान्त विद्वान लेखक ने एक प्रश्न उठाया है– वह क्या है जोकि इन गल्तियों और अक्षमताओं के रहते हुए भी एक पिछड़े हुए देश को आगे बढ़ने में सहायक हो सकता है ? वे इस प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित सुन्दर और महत्वपूर्ण शब्दों में देते हैं।

"यदि जनता अपने पक्ष पर राष्ट्रीयता से ओतप्रोत हो, अपने पिछड़े पन के प्रति सजग और प्रगति के लिये चिन्तित हो, तो प्रशन्नतापूर्वक अनेक कठिनाइयों को उठा सकती है और अनेक गल्तियों को वर्दाश्त कर सकती है और अपने देश के पुनर्निर्माण में उत्साह पूर्वक अपने को झोंक सकती है। जनता का उत्साह नियोजन के लिये स्निग्धकारी तैल और आर्थिक विकास के लिये पेट्रोल दोनो ही हैं। एक शक्ति है जो प्रायः सभी बातों को सम्भव बना देती है। एक अत्यन्त पिछड़ा हुआ देश भी त्वरा से विकास करेगा यदि वहां की सरकार यह जानती है कि किस प्रकार से इस प्रवैगिक शक्ति को कार्य में लगाया जाये।"

हमारा यह निश्चित मत है कि यह प्रवगिक शक्ति हमारी भारतीय अर्थव्यवस्था में योजनाओं को रोजगार-विषयक बनाकर उत्पन्न की जा सकती है जिससे अंतिम भारत के अभागे व्यक्ति की आँखों से आँसू पोछे जा सकें" जैसा कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा करते हुए १५ अगस्त १९४७ में अपने भाषण में कहा था, और तदुपरांत उसी समय श्रमिकों को बुलाकर बचत की दर पर निर्णय लेकर उनके द्वारा योजना पर अन्तिम निर्णय लेना चाहिये क्योंकि वही निर्णय महान योजना को सफल कर सकेगा। हमें ज्ञात है कि हमारे श्रमिकों की राष्ट्रीय भावना इतनी उच्च है कि वह भारत को स्वर्णभूमि बनाने की रोमांचकारी यात्रा में जन सहयोग के वातावरण को उत्पन्न करने में सुखकर धक्के पर धक्के लगाती जायेगी। परन्तु यह सेजभार-उत्पादक योजना और नियोजन प्रक्रिया में श्रमिक सहयोग की उपेक्षा करके सम्भव नहीं होगा। ऐसे उद्देश्यों और साधनों द्वारा उत्पन्न बचत और विनियोग उससे अनेक गुणा

अधिक होगा जोकि एक अधिनायकवादी अर्थव्यवस्था में सरकारी क्रिया उत्पन्न कर सकती है अथवा जोकि नियोजक पूजीपतियों, उद्योगपतियों, व्यवसायिओं और महाजनों से प्रेरित नियोजन अथवा उपदेशों द्वारा प्राप्त करने की कल्पना करते हैं।

यहां पर उपरोक्त सुझावों में अंतर्निहित योजना के ढांचे का विस्तार करना आवश्यक नहीं है। परन्तु हम अपने दृष्टिकोण के कुछ पहलुओं पर विचार करने की स्वतन्त्रता लेना चाहेंगे। हमारे नियोजन का सम्पूर्ण प्रयत्न इन राष्ट्रीय संसाधनों को मानवीय कौशल एव प्रयत्नों के प्रयोग एव पूंजी एवं प्राविधि के प्रयोग द्वारा आर्थिक संसाधनों में परिवर्तित करना होना चाहिये। मानवीय प्रयत्नों एवं कौशल के पक्ष में जिन गुणों का हम विकास करना चाहते हैं, वे हैं; नये विचारों के लिये प्रोत्साहक भौतिक वस्तुओं में रुचि, ज्ञान वृद्धि की इच्छा, आर्थिक-अवसर एव प्रचलनशीलता की कल्पना और परिवर्तन के प्रति समायोजन की सामान्य योग्यता, दीर्घ दृष्टि रखने की योग्यता एवं इच्छा, साधनपूर्णता उद्योग एव बचत की योग्यता। ये केवल शिक्षा और प्रशिक्षण से उत्पन्न होने वाली बातें नहीं हैं वरन् जनता में भौतिक समृद्धि प्राप्त करने की इच्छा और प्रयत्नों के फूल हैं। जनता में यह प्रयत्न जमेगा जबकि वे देखेंगे और सन्तुष्ट हो जायेंगे कि प्राप्य आर्थिक संसाधन और राष्ट्र की पूँजी को उसकी जनता को पूर्ण रोजगार प्रदान करने के लिये सचल कर दिया गया है। पूँजी के पक्ष में हम वर्तमान स्थिति से प्रारम्भ करना होगा और रोजगार के अधिकतम करने के लक्ष्य को स्थिर मान कर विभिन्न माडेल बनाना होगा। विभिन्न विनयोग आवटंन की योजनाओं की परीक्षा हमें इस दृष्टिकोण से करनी होगी कि वे कितनी रोजगार-प्रयत्न की वृद्धि कर सकती हैं। यह सुविदित है कि विभिन्न क्षेत्र अपनी श्रम-सघनता में भिन्नता रखते हैं और विभिन्न क्षेत्रों में भी विभिन्न प्रक्रियाओं की श्रम सघनता अलग-अलग होती है। इस व्यायाम में हमारा सकेन्द्री लक्ष्य विभिन्न रोजगार प्रोत्साहक योजनाओं में से सर्वाधिक उत्पादक को खोजना होगा जिसमें रोजगार-फलन सबसे अधिक महत्व का होगा और उत्पादक फलन योजना के सामाजिक और आर्थिक पक्ष से सम्बन्धित होगा। भारत की तृतीय पंचवर्षीय योजना में पूँजी-उत्पाद अनुपात अत्यन्त ही भिन्न था। यद्यपि यह हमारी योजना के परिचालन पर एक दुखद आलोचना है यह हमें एक अप्रत्याशित संतोष प्रदान करता है कि एक एकमेव-प्रकल्प जनित योजना जोकि हम सुझा रहे हैं ज्ञात सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियो में जोकि तेजी से गिर रही हैं, एक अनुकूलतम परियोजना से कम व्यवहारिक प्रतिफल नहीं प्रदान करेगी। हमारे द्वारा सुझाई गई रीति दूसरी ओर एक लाभ रखेगी कि वह भारतीय जनसंख्या के एक चेतन एवं महत्वपूर्ण अंश को नियोजन प्रक्रिया में लगा देगी जिसे हम "संगठित श्रम" कहते

हैं। इसका बचत दर के निर्धारण में स्फूर्तिमय प्रवेश और इसके द्वारा रोजगार-प्रोत्साहक विनियोग प्रारूप के चुनाव द्वारा उत्पन्न हिम-गेंद का प्रभाव वर्तमान अवचेतन प्रगति रोधक स्थिति से सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति को राष्ट्रीय प्रगति के एक चेतन और शक्तिप्रेरित साधन में परिवर्तित कर देगा। दूसरे शब्दों में यह हमारा मत है कि यदि हमारे प्रकल्पों के प्रारूपों द्वारा सुझाये गये माडलों में योजना मूल्यांकन प्राविधि का प्रयोग किया जाये तो अनेक काल अवधियों में (अपूर्ण गणितीय मूल्यांकनों में प्रयुक्त एकमेव काल अवधि की अपेक्षाकृत) रोजगार-प्रोत्साहक योजना सर्वोत्तम उत्पादन उत्पन्न करेगी। इस योजना के अनुसार आय-उत्पादक विभिन्न स्तर बचत दर और पूँजी-उत्पाद अनुपातों की एक अरेखित व्यवस्था उत्पन्न कर देंगे और न केवल "आर्थिक उड़ान" की स्थिति शीघ्र ही ले आवेंगे वरन् न्यूनतम सामाजिक लागतों की रीति के द्वारा हमें एक आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था प्रदान करेंगे। प्रत्येक मामले में योजना के प्रारूप के सम्बन्ध में एक निगम्म–परिकल्पना बनानी होगी और हम यह सुझाव देते हैं कि श्रमिकों का सहयोग प्राप्त करना सर्वोत्तम परिकल्पना होगी। अर्थयापन साहित्य में यह सुविदित तथ्य है कि कुछ उद्योग श्रम की उत्पादकता पर अपने प्रभावों के माध्यम से प्रायः विकास के प्रसारकों का कार्य करते हैं। यह तत्व प्राविधिक बाह्यता का एक उदाहरण माना जाता है। इन प्राविधिक बाह्यताओं को एक भुजा मान कर, उत्पादन का उद्भव को दूसरी भुजा ओर योजना प्रारूप के भाग के रूप में उत्पादन क्षमता को तीसरी भुजा मानकर हमारा माडल एक अच्छा त्रिभुज बना सकता है। यह सत्य है चूंकि हम एक दी हुई मात्रा में पूंजी और बिनियोग के सम्बन्ध से प्रारम्भ करते हैं इसलिये नई व्यवस्था के प्रतिस्थापन या बदल की प्रक्रिया कुछ मामलों में केवल सीमांत पर ही कार्य करेगी। श्रमिक सीमांत बृद्धियां एक संगत और अन्तत अधिक उत्पादक माडल की रचना करेगी। इस आधार पर एक अन्तर्कालिक योजना बचतों का विवरण प्रस्तुत करेगी और इन बचतों के परिमाण के सम्बन्ध में हम राष्ट्रीय मजदूरी नीति का चार तत्वों के आधार पर साम्य ज्ञात कर सकेंगे, अर्थात् (१) उपभोग का प्रारम्भिक स्तर, (२) नियोजन क्षितिज, (३) नियोजन काल में उपभोग में वृद्धि और (४) सीमांत स्थितियां। इस द्वितीय स्थिति में फिर ट्रेडयूनियनों का सहयोग अत्यन्त अर्थपूर्ण एवं महत्व का हो जायेगा। तभी वह बचत की दर और रोजगार की बृद्धि में सहसंबध स्थापित कर सकेगा। जो श्रमिक रोजगार में हैं इस प्रकार से तय करेंगे कि उन्हें तुलनात्मक दृष्टि से कम भाग्यवान लोगों को रोजगार देने के लिये कितना त्याग करना चाहिये और सशक्त शरीर व्यक्तिओं को कोई कार्य दिये बिना वे कितना भार वहन कर सकते हैं। राष्ट्र के उद्योग के श्रमिकीकरण को उसकी रूपरेखा प्राप्त हो जायेगी और श्रमिकों का संघर्ष जनता की महान यात्रा को स्थान दे देगा, जिसके द्वारा

राष्ट्र एक संगठित प्रयास द्वारा एक सचेतन मार्ग पर चल पड़ेगा और उसकी सहायता आर्थिक योजना का निर्देशक मानचित्र करेगा।

एक प्रश्नावली के रूप में उपरोक्त विवेचन का समापन सामान्य शब्दों में करते समय यह कहा जा सकता है कि उद्योग का विकास, साहसी के प्रतिफल, पूजी निर्माण इत्यादि जैसे आधारों का मजदूरी ही निर्धारण के लिये उस समय तक न्याययुक्त विचार नहीं किया जा सकता है जब तक कि हम उनसे उत्पन्न पूँजी लगाने की रीति या रूप का विवरण नहीं देते। इकाई के स्तर पर इस कार्य का रूप उद्योग का क्रमिक श्रमिकीकरण पूँजी एकन्ध और कार्यशील पूँजी के स्तरित श्रमिक स्वामित्व के आधार पर होना चाहिये। राष्ट्रीय स्तर पर इसे रोजगार प्रोत्साहक योजना के बनाने में श्रमिकों की भागीदारी के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। यदि ये दो कार्य कर लिये जायें तो हम श्रमिकों में अनन्त उत्साह उत्पन्न कर सकेंगे, जिससे वे इकाई स्तर पर एक उचित मजदूरी व्यवहार और राष्ट्रीय स्तर पर एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति बना सकेंगे जिसमें उद्योग, पूँजी निर्माण और साहस के लिये पूर्णतयः न्याय मिल सकेगा। तब उद्योग का विकास रोजगार प्रोत्साहक प्रक्रियाओं और प्रकल्पों में विनियोग का स्वरूप ग्रहण कर लेगा और पूँजी निर्माण एक नई विधा के प्रवेश से सर्वसाधारण जनता और श्रमिकों के द्वारा बचतों की योजना से और मजदूरी निर्धारण के औद्योगिक निर्णयों के आधार पर होने लगेगा। हम इस सम्बन्ध में स्पष्ट हैं कि हमारे द्वारा सुझाए गए मार्ग के अतिरिक्त यह व्यवहारिक नहीं होगा। एक सीमा तक इसका अर्थ समाज के मूल्यांकनों को बदलना है। और हमारे मत में सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही दृष्टिकोणों से यह आवश्यक है। सामाजिक पक्ष में यह आवश्यक है कि सर्व साधारण को शान्ति प्रदान करने के लिए आर्थिक क्रिया में जनता का निर्माणात्मक सहयोग उत्पन्न करना आवश्यक है और आर्थिक दृष्टि से इससे हमें कदाचित एक अनुकूलतम आर्थिक विकास का माडल प्राप्त होगा जिसमें उपभोग आध्यात्मकताओं, उत्पादन, लक्ष्यों, वितरण प्रभावों और आत्मनिर्भर विनिमय यंत्र का विचार होगा।

उपभोक्ता हित के कोण से हमारे द्वारा सुझाये गये माडल की एक विशिष्ट प्रवृत्ति है (यदि करारोपण के ढांचे को एक फर्म उद्योग ढांचे के स्थान पर उद्योग-जनित ढांचा बनाया जाये कि वह मूल्याधन व्यवस्था के प्रति भावुक होगा जिसमें नीति विषयक निर्णय करने के लिये सीमान्त फर्में आवश्यक' प्रदत्त प्रदान करेंगी। मूल्य में एक कमी तब एक ऐसा प्रतिपादन होगा जो यदि शुद्ध बाजार स्थितियों पर न छोड़ा जाय तो ऐसा निर्णय होगा जो कि उपभोक्ता कुछ अकुशल सेवायोजकों के बिरुद्ध स्वय ले लेंगे। झगड़ा

श्रमिकों और उपभोक्ताओं के बीच नहीं है क्योंकि बेरोजगारी सहायता की व्यवस्था के माथ श्रमिक एक वर्ग के रूप में केवल सीमान्त रूप में मूल्य निर्णय के लिये चित्र में उपस्थित होंगे परन्तु दाँव पर जो लगा है वह यह है कि एक ओर फर्मों की संख्या अथवा श्रमिकों की संख्या कम हो (सम्मिलन अथवा स्थानान्तरण अथवा प्रतिबन्ध के द्वारा) और दूसरी ओर राष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ता आय। वह स्थिति जब पूर्ण रोजगार कायम हो जाये ऐसे निर्णय अभिनन्दनीय होंगे क्योंकि वे न केवल उपभोक्ताओं के मूल्य की कमी से लाभ पहुंचायेंगे वरन् अकुशल और कम देने वाली इकाइयों का निरसन कर के श्रम की सीमान्त मूल्य को बढ़ा देंगे और उत्पादक रोजगार अथवा श्रम उत्पादकता को प्रोत्साहन देकर आय को अधिकतम कर देंगे। एक स्वतन्त्र बाजार में प्राकृतिक प्रक्रिया के द्वारा वे मिट जायेंगे जब कि उपभोक्ता को उसका सिंहासन प्राप्त हो जायेगा। ऐसे नियोजन माडल के संचालन में मजदूरी, आय और मूल्यों की एक संग्रथित नीति स्वाभाविक उपप्रमेय होगी। वर्तमान नियोजन की एक खराबी यह है कि वह संसाधनों को चलायमान बनाने का कार्य प्रशासकों पर छोड़ देती है और जिसके प्रतिफल में करारोपण का ढाँचा आय पर सीधा असर डालता है यह न जानते हुये कि वह मूल्यांकन और अर्थ व्यवस्था की मजदूरी नीति पर कितना नुकसान कर देगा। हमें ज्ञात है कि इन विचारों को रखते समय हम लोग, आर्थिक विचारों को एक नया मोड़ दे रहे हैं। इसकी मान्यताओं और निष्कर्षों पर हम विचार-विमर्श करने को तैयार हैं। परन्तु दूसरी ओर यह ध्यान देना उत्तम होगा कि अनेक नियोजक जहाँ आय नीति और मूल्य नीति की बात करते हैं वहीं उनके दृष्टि में मजदूरी–संकोच अथवा मजदूरी–प्रतिबन्ध भी रहते हैं। हम चेतावनी देते हैं कि एक मजदूरी–आय–मूल्य नीति के सम्बन्ध में कोई भी फीका प्रलयकारी प्रतिफल उत्पन्न कर देगा। इसके बिपरीत मूल्य निर्धारण का हमारे द्वारा सुझाया गया यंत्र, जो उत्पादक रोजगार की योजना के एक फलन के रूप में कार्य करता है और एक सीमान्त फर्म के ऊपर प्रभावों पर केन्द्रित रहता है अधिक वास्तविक है और सरकार द्वारा आसानी से चलाया जा सकता है। हमें ज्ञात है कि रोजगार–प्रोत्साहक योजना पर तत्काल चले जाने का एक प्रभाव यह होगा कि शीघ्र ही अनेक कृषि–औद्योगिक प्रकल्प, लघु प्रमाण उद्योग और सहकारिताओं द्वारा व्यवस्थित एवं वित्तीकृत नये नगरों का प्रादुर्भाव हो जायेगा। यह एक तात्कालिक चित्र है जोकि हम अर्थ व्यवस्था को खीचना चाहते हैं। हमारी योजना का प्रथम चरण पूर्ण रोजगार पर समाप्त होना चाहिये जिसमें ऐसी आर्थिक संस्थायें हों जो कि सुरक्षा के लिये विकसित क्षेत्र और सहयोगी उद्योगों से पूर्ण हों जिससे आवश्यकता के समय शीघ्रता से युद्ध कालीन व्यवस्था पर पहुंचा जा सके। परन्तु तदुपरान्त द्वितीय चरण में पूर्ण रोजगार के आधार से उच्च से उच्चतर भौतिक समृद्धि की वस्तुओं का स्तर एक

प्राविधिक क्रान्ति के माध्यम से प्राप्त होता जायेगा जिसमें प्राविधिक का चुनाव हमारे कल्याण की निजी कल्पना के अनुकूल होगा। यह प्रक्रिया हमारे देश के लिये एक दूसरे कारण से भी उपयुक्त है। हमारी एक प्राचीन एवं प्रौढ़ सभ्यता है। यह हमारी संस्कृति की महानता नहीं है कि हम अपने रूढ़िगत मूल्यों और सांस्कृतिक स्वरूपों को भूल कर आर्थिक विकास को उठा कर आदर्शवाद का स्थान प्रदान कर दें। यहाँ तक कि जितने भी तथाकथित भौतिक दृष्टि से उन्नत पश्चमी देश हैं उन्होंने आर्थिक विकास एक अत्यन्त पीड़नकारी प्रक्रिया से अधिनायकवादी अमानवीयता या सम्प्रदायवादी शोषण के माध्यम से प्राप्त किया है। यह सब करने के उपरान्त प्रसन्नता और आनन्द के कौन से वास्तविक स्तर उन्होंने प्राप्त किये हैं ? यह एक अत्यन्त सांस्कृतिक रूप से विकृति एवं अशान्त दृष्टिकोण है जिसमें रूढिगत मूल्यों और सांस्कृतिक स्वरूपों को आर्थिक विकास का अवरोध समझा जाता है और आधुनिकता की बाधा के रूप में मिटा कर मानवीय सुख के खजाने को मिटाया जाता है। एक अधिक ज्ञान गम्भीर दृष्टि रूढ़िगत मूल्यों और सांस्कृतिक स्वरूपों को एक ओर और मानवीय कल्याण के साधनों के रूप में आर्थिक विकास की प्रक्रियाओं को दूसरी ओर रुझान देती है। जब हम आर्थिक विकास की कल्पना को मानव के विकास के चक्रों के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं तो हमारे माडल का महत्व अपना पूर्ण मूल्य प्राप्त कर लेता है। एक वांछनीयता के रूप में भी वह हमें प्राविधिक दृष्टि से एक कुशल हल प्रदान करता है। परन्तु अपने विशाल क्षेत्र में यह उसे देखा जाये तो वह सही संस्थात्मक प्रारूप और उनके प्राप्त करने की व्यवस्थायें सुझाता है। इन योजनाओं को उत्पन्न करने, अपनाने और सचालित करने की संस्थायें श्रमिकों और नागरिकों की सहकारितायें, संयुक्त व्यवस्था और श्रमिक काउंसिलें एक उद्योग के सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के औद्योगिक परिवार और लक्ष्यों के नियोजन और परिचालन के लिये राष्ट्रीय स्तर की त्रिस्तरीय संस्थायें हैं। इन सभी सस्थाओं में से समाज के आर्थिक संगठन में कदाचित "औद्योगिक परिवार" की सस्था केन्द्रीय महत्व की है। हम ऊपर यह दिखला चुके हैं कि मजदूरी नीति, मूल्य नीति, रोजगार नीति और करारोपण नीति का विकास तर्क शुद्ध आधार पर एक उद्योग को इकाई मान कर कैसे किया जा सकता है। श्रम मोर्चे पर औद्योगिक यूनियनों के लिये प्रयत्न जारी है। बैंकिंग और अन्य वित्तीय सेवा संस्थायें भी कुशलता से विकसित की जा सकती है जब कि वे भी उद्योगानुसार विशिष्टता प्राप्त कर लें। हम उत्पादकता शीर्षक अपने अध्याय में यह बतलायेंगे कि अभिनवीकरण की योजनायें और अन्य उत्पादकता के माप तथा व्यावहारिक वैज्ञानिक शोध का सम्बन्ध भी ठीक प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है यदि उद्योग को राष्ट्र के आर्थिक जीव का एक संगठित अंग माना जाये। यह सब ...ा के एक क्षेत्र के रूप में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र को स्वीकार करता है। आज

भेद करने की आवश्यकता इस कारण उत्पन्न हुई प्रतीत होती है—क्योंकि हम राष्ट्र को सरकार मान लेते हैं और जन नीति के बृहद एवं विश्वसनीय साधन के रूप में केवल सार्वजनिक क्षेत्र को ही लेते हैं। भारतीय मजदूर संघ राष्ट्र को सर्वोच्च सत्ता स्वीकार करता है, जिसके समक्ष सरकार और निजी क्षेत्र का समान मानता है। दोनों ही को चाहिये कि एक प्रकार से राष्ट्र की सेवा करें और एक समान अनुशासन के जुयें में बंध जायें। आर्थिक और सामाजिक विचार की वास्तविक रीति-नीति उद्योग के आधार पर निर्धारित होनी चाहिये चाहे स्वामित्व का प्रकार या रूप कोई भी क्यों न हो। प्रत्येक उद्योग को एक स्वतन्त्र लक्ष्य और समुचित अंग के माध्यम से एक राष्ट्रीय अनुशासन जनता द्वारा दिया जाना चाहिये। यदि संसदीय प्रजातन्त्र वह अंग हो तो कदाचित कार्यकारी प्रतिनिधित्व के आधार पर चुना गया एक ससद "एक उद्योगों का परिषद" एक ऐसा आदेश उन राजनीतिज्ञों के समुदाय की अपेक्षा अधिक बुद्धिमानी से दे सकेगा जोकि क्षेत्रीय विचारों से प्रेरित चुनाव से आये हैं। तत्काल हम यह सुझाव दे सकते हैं कि सभी आर्थिक हितों जैसे श्रमिक, किसान, उद्योगपति इत्यादि का प्रतिनिधित्व करने वाली एक राष्ट्रीय परिषद को समुचित संस्था समझा जाये जोकि हमें एक योजना का माडल और क्षेत्रीय उद्योगानुसार मजदूरी आय और मूल्यों के ढांचे का प्रारूप प्रदान कर सकती है। मजदूरी का व्यवहार और मजदूरी से सम्बन्धित नीति का तब समय-समय पर इस एजेन्सी के द्वारा निर्धारण होगा। क्योंकि कोई स्थिर या कठोर नीति इस सम्बन्ध में नहीं हो सकती है जोकि राष्ट्रीय श्रम आयोग प्रदान कर सके। वह एक विस्तृत यंत्र बतला सकता है जो समय की आवश्यकताओं के अनुसार उचित नीति का निर्धारण एवं संचालन कर सके और एक विशिष्ट सामाजिक संस्था के रूप में वह सही मजदूरी नीति के विकास के लिये आवश्यक निर्देशक रेखायें खीच सकता है। उपरोक्त अनुच्छेद में हमने जो प्रयत्न किया है वह केवल यह है कि ऐसे मार्ग के सम्बन्ध में निर्देश करें, जोकि राष्ट्रीय श्रम आन्दोलन आर्थिक सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं को पूर्ण ध्यान देते हुये प्रतिपादित कर सकता है।

## वेतन भुगतान की रीतियाँ और सामान्य मामले

मजदूरो के विषय पर प्रश्नावली के अन्य अंगों पर संक्षेप में प्रकाश डालना उचित होगा। मजदूरी के भुगतान के लिये प्राय नगद भुगतान की रीति अपनाई जाती है जोकि मुद्रा की अर्थव्यवस्था के बढ़े हुए महत्व के कारण है और ऐसी ही चलनी चाहिये। जहां तक सम्भव हो उसे रेखांकित चेकों के द्वारा भुगतान में बदल देना चाहिये जिससे बैंकिंग की आदत बढ़े और सुरक्षा और सत्यता का ध्यान रखा जा सके।

जहां मजदूरी के भुगतान को वस्तुओं के द्वारा किया जा रहा है उसे छोड़ना नहीं चाहिये। वह निर्देशांक से बन्धे हुए वेतन पैकेट के समान है क्योंकि वह वास्तविक मजदूरी प्रदान करता है। ऐसा गावों में होता है और इस प्रकार के भुगतान को संचालित करने वाले किसी नियम में परिवर्तन करने में इतनी प्रशासनिक समस्या उलझी हुई है कि उन पर विचार करना अनार्थिक होगा। समय कालिक वनाम वस्तुदर मजदूरी पुराना प्रश्न हो गया है। उसे सामूहिक सौदेबाजी के लिये छोड़ देना उपयुक्त होगा। इस सम्बन्ध में कोई समरूपता अत्यावश्यक नहीं है। हम लोग एक विभाजित वेतन पैकेट के पक्ष में नहीं है जिसमें आधारभूत वेतन, मंहगाई भत्ता और उत्पादकता भुगतान शामिल हो। श्रमिकों के लिए इस प्रकार का विभाजन हानिकर होगा क्योंकि वह इन सम्बोधों से ऐसा अन्तर्सम्बन्धित करता है कि प्रायः श्रमिक पर मजदूरी बढ़वाने में अनेक ओर से आक्रमण सहना होता है। निर्देशांक-बद्ध वेतन-पैकेट की व्यवस्था होनी चाहिये जिसमें मूलभूत वेतन और मँहगाई भत्ता एक साथ हो जिससे मजदूरी को एक वास्तविक मजदूरी का स्वरूप दिया जा सके। वास्तविक मजदूरी श्रम उत्पादकता की बृद्धि के साथ बढ़नी चाहिये और उसे चाहिये कि एक समुचित मजदूरी नीति के आदेश का पालन करे। यदि इस व्यायाम में प्रोत्साहक भुगतान की एक व्यवस्था प्रविष्ट कराई जा सके तो दी हुई परिस्थितियों में मनोवैज्ञानिक आधारों पर वेतन के भुगतान की तिथि के अलावा किसी अन्य दिन एक प्रोत्साहक भुगतान की व्यवस्था की जा सकती है। हम लोग इस बाद के विभाजन के विरुद्ध नहीं हैं जहाँ इस प्रकार का विभाजन उत्पादकता के हित में हो। न्यूनतम मजदूरी के सम्बन्ध में हम लोग इसी अध्याय में पहिले विवेचन कर चुके हैं परन्तु बोनस के सम्बन्ध में हमने इस विषय पर विशद विवेचन श्रम सन्नियम शीर्षक अध्याय में किया है।

मुद्रक—टिप-टाप प्रिन्टर्स • बिरहाना रोड, कानपुर–१ • फोन ५३२३७

अध्याय - ११

# श्रमनीति

# औद्योगिक सम्बन्ध

— भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

राष्ट्रीय श्रम आयोग को भारतीय मजदूर संघ द्वारा प्रस्तुत किये गये "LABOUR POLICY" नामक अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है।

इस पुस्तक के सभी २० अध्याय अलग-अलग पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये गये हैं।

आपात्कालीन स्थति के अन्तर्गत कारावास की अवधि में इस अध्याय का अनुवाद आई० आई० टी० कानपुर के प्राध्यापक डा० भूषणलाल धूपड़ के सहयोग से किया गया है।

हम उनके प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं।

-रामनरेश सिंह

भाग २

अध्याय ११

# प्रोत्साहन, प्रेरणा व उत्पादकता

## आधार भूत विषय

किसी भी समाज के जीवन स्तर को उठाना अधिक उत्पादकता पर निर्भर करता है। उत्पादकता की बढ़ोत्तरी से आर्थिक प्रगति व कल्याण होता है। लम्बे काल तक किसी भी प्रकार का आर्थिक चमत्कार इस तथ्य को बदल नहीं सकता। आर्थिक उत्थान के लिये इसके अलावा कोई छोटा मार्ग (Short-cut) नहीं है। केवल मात्र उत्पादकता के दर को अधिक बढ़ाने से ही आर्थिक उत्थान हो सकता है। किसी भी आर्थिक अथवा सामाजिक पद्धति की लम्बी अवधि में जीत केवल मात्र उत्पादकता बढ़ोत्तरी पर ही निर्भर करती है। इस प्रकार इसकी (उत्पादकता की) महत्ता है। जो भी ट्रेड यूनियन अथवा कर्मचारियों के संगठन उत्पादकता के दर की बढ़ोत्तरी के लिये पूरे जी जान से खड़े नहीं होते, वे या तो आराम से गद्दी पर बैठ कर राजनीति करने या नारेबाजी करने वाले राजनातिज्ञों के जमघट के रूप में होगे अथवा पूर्ण रूपेण राष्ट्र विरोधी समूह। किसी भी दशा में ऐसे समूह आर्थिक उत्थान और राष्ट्र को आगे बढ़ाने की गति में एक बाधा स्वरूप हैं और वे देश और जनता की अन्तरात्मा के वास्तविक समर्थन का दावा नहीं कर सकते, चाहे उनकी संख्या बल कितनी भी क्यों न हो अथवा किसी भी उद्योग में उसको कोई भी स्थान प्राप्त हो अथवा विशेष भर्ती के कारण हो या ऐतिहासिक प्रक्रिया के अवसरों

के कारण हो अथवा लोगों की अनभिज्ञता का दुरुपयोग करने या राजनीतिक प्रेरणा के कारण हो। अतएव हमारा यह दृष्टिकोण हैं कि सभी राष्ट्रवादी तत्वों को एक साथ कदम मिलाकर चलना चाहिये। इस सम्बन्ध में शेष विवेचन तो केवल मात्र तकनीकी ही हैं।

भारत के उत्पादकता आन्दोलन की प्रगति के बारे में हमें दो प्रमुख टिप्पणियां करनी हैं। सर्व प्रथम यह हमारी स्पष्ट राय है कि सार्वजनिक व निजी दोनों ही क्षेत्रों में प्रबन्धकों ने उत्पादकता आन्दोलन को अभी तक गम्भीरता से नहीं लिया है। बहुत कम ऐसे कारखाने हैं, जहां दिन प्रतिदिन की कार्यवाही में एक अच्छी उपकरण प्राप्त वर्क स्टडी इकाई रखी जाती है और सम्मानित की जाती है। यह भी कोई असाधारण बात नहीं होगी जिसमें कि ऐसे प्रबन्धक कारखानों में मिल सकते हैं, जो 'उत्पादकता' अथवा 'वर्कस्टडी' के शब्दों के अर्थ भी नहीं जानते। पेशेवर प्रबन्धकों के समुदाय में ही कुछ लोग ऐसे हैं, जो राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद की गतिविधियों से सम्बन्धित हैं और जिन्हें विषय के बारे में कुछ जानकारी है। फिर भी राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद की बैठकों में उन्हें कुछ तकनीकी शब्द सीखने मात्र का अवसर प्राप्त हुआ है, जिससे वे कार्यालयों के काम में उन शब्दों का प्रयोग कर सकें ताकि ऐसा प्रतीत हो कि वे भिन्न-भिन्न वस्तुओं के सम्बन्ध में एक उच्चस्तरीय व्यवसायिक दृष्टिकोण रख रहे हैं। इतना ही नहीं इसके 'संगठन और पद्धति' के लिये एक साधारण सेल मात्र ही बना कर छोड़ दिया गया है और सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों में कर्मचारियों के सुझाव को काट छांट करने के लिये इस सेल का प्रयोग किया जाता है। उच्चस्तरीय अधिषासी वर्ग और वरिष्ठ अधिकारियों ने अभी तक उत्पादकता के विचारों को पूर्णरूपेण समर्थन नहीं दिया है तथा उद्योगपति और वित्तीय व्यवस्था करने वाले अथवा पूंजीपति व राजनीतिज्ञ जो औद्योगिक गतिविधियों के मालिक या नियन्त्रक हैं, लगभग इस विषय में कोई भी विशेषज्ञता नहीं प्राप्त किये हैं। भारतवर्ष में प्रशासन का स्तर तो करीब-करीब सभी स्थानों पर बहुत खराब है। उपयोगी शोध की भी यही स्थिति है और भारतीय प्रयोगशालाओं में जो कुछ थोड़ा बहुत अच्छा शोध होता भी है तो प्रशासकों द्वारा उसकी कीमत नहीं आंकी जाती। हर दिशाओं में बाबूगिरी की मनोवृत्ति हमारा पीछा कर रही है। नई दिल्ली में दि० २५ अप्रैल से २ मई, १९६७ तक हुये विचार गोष्ठी जो अफ्रीका व एशियाई देशों में विज्ञान व तकनीकी के प्रोत्साहन और उपयोग हेतु आपसी सहयोग के लिये संगठित की

गयी थी, में प्रस्तुत एक पर्चे (विषय) में प्रो पी० सी० महालोनबीस ने कहा कि भारत में विश्वविद्यालयी स्तर के शिक्षा प्राप्त वैज्ञानिक और इन्जीनियर्स की समूची संख्या का अनुमान २ लाख १५ हजार है, (वर्ष १९६३ में इनमें १ लाख ८ हजार वैज्ञानिक हैं, ८० हजार इन्जीनियर हैं और २७ हजार कृषि वैज्ञानिक हैं)। उन्होंने बताया कि यह संख्या यू० एस० ए०, रूस, इङ्गलैंड और जापान को छोड़कर शेष सभी प्रगतिशील देशों से अधिक है। यदि डिप्लोमास्तरीय व्यक्तियों को सम्मिलित कर लिया जाय तो यह संख्या ६ लाख के करीब होती है, जो आकड़ों के हिसाब से भारत को एक बहुत ही प्रशंसनीय स्थान प्रदान करती है। भारत में 'शोध और विकास' के लिये हो रहे खर्चे का अनुपात सबसे अधिक है। समूचे देश के राष्ट्रीय उत्पाद को आधार मानकर आर० एण्ड डी० पर खर्चे का वह भाग जो असैनिक शोध पर हुआ है और जिसे आम तौर पर रिसर्च रेशो (Rescares Ratio) कहते हैं ०.३३ है। अन्य देशों में यह अनुपात निम्नलिखित हैं : आस्ट्रेलिया ०.१६, स्विटजरलैंड ०.२१, कनाडा ०.२६, स्वीवडन ०.२७, यू० एस० ए० ०.३१, नार्वे ०.३७, वेलजियम ०.३८, पश्चिमी जर्मनी ०.३६,नीदरलैण्ड ०.४५, जापान ०.४७ और इङ्गलैंड ०५३। विद्वान लेखक ने माना है कि भारत में आर० एण्ड डी० पर इतनी मात्रा में खर्चे के पश्चात भी इसकी आर्थिक प्रगति पर प्रभाव लगभग नगण्य ही है, इसने न ही उत्पादकी गुणवत्ता में सुधार के लिये योगदान दिया है और न ही कीमतों में कमी लायी है। शोध वैज्ञानिकों में अपने शोध पत्र छपवाने की होड़ लगी हुई है और एक प्रकार की प्रचार प्रसिद्धि तथा पदोन्नति पाने की मनोवृत्ति धारण की हुयी है। योजनाबद्ध लाभ प्रदान करने वाले शोध के लिये भी खर्चे व लाभ के विवेचन हेतु भी कोई रुझान नहीं है। बाबूगिरी और राजनीतिज्ञों की मनोवृत्ति शोध जैसे गम्भीर विषयों में अपना प्रभाव बढ़ा रही है। क्या हम कह सकते हैं कि यह उन तथ्यों के कारण हैं, जिसको केन्द्रीय सरकार की प्रक्रियाओं के लिये बाबू और राजनीतिक लोग प्रदान करते हैं ? नई दिल्ली अथवा केन्द्रीय सचिवालय का वातावरण और ससदीय भाषणों का स्तर इसी निर्णय की गवाही देता है। उत्पादकता के लिये उच्च स्तर पर सभी लोगों में चिन्ता पैदा की जानी चाहिये। केन्द्रीय सरकार की सेवाओं के दृष्टिकोण और उच्चस्तरीय अधिपासी वर्ग और प्रशासकों के दृष्टिकोण में एक क्रान्तिकारी दिशा लायी जानी चाहिये, यदि राष्ट्रीय स्तर पर उत्पादकता की योजनाओं को सफल बनाना है तो। उत्पादकता स्तरों में भारी परिणाम में लाये गये अथवा लाये जाने वाले विषयों और

समस्याओं पर संसद सदस्यों के योगदान का निर्भीक और स्पष्ट परीक्षण के लिये एक सार्वजनिक सतर्कता समिति होनी चाहिये। और इस प्रकार परीक्षण के फलों को जन समुदाय के मत बनाने के लिये प्रचार करना चाहिये, जिसके परिणाम स्वरूप जनता अपने चयन में मार्गदर्शन प्राप्त करे कि राष्ट्र के भाग्य को बनाने के लिये किन लोगों का न्यास (ट्रस्ट) बनाया जा सकता है। राष्ट्र के समूचे वातावरण के राजनीतिक और नकारात्मक मान्यता को बदल कर आर्थिक और रचनात्मक मान्यताओं में लाना चाहिये, जो कि वैज्ञानिक दृष्टि-कोण और प्रकृति से प्रेरित हों तभी हम वर्तमान सेवाओं में उपस्थित बाबूगिरी और राजनीतिक दिशा को बदलने में सफल हो सकेंगे। आजकल तो गुजरात का परम्परागत व्यापारी समुदाय भी बाबूगिरी की ओर जा रहा है। गुजरात विश्वविद्यालय द्वारा किये गये 'रोजगार सर्वे' पर प्रो० जे० डी० ढलोकिया बताते हैं कि गुजरात विश्वविद्यालय से निकले हुये ८२.२ प्रतिशत आर्ट्स ग्रैज्युएट, ७२.८ प्रतिशत विज्ञान स्नातक और ७१ प्रतिशत वाणिज्य स्नातक क्लर्क के रूप में काम कर रहे हैं। अनुत्पादक व्यवसायों में प्रबुद्ध लोगों की इस प्रकार लगने अर्थात् क्षय हो जाने को अपराधी माना जाना चाहिये। अब तो स्वभाव में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का विषय ही शेष है।

उत्पादकता के विषय में हमारे विचार और व्यवहार में द्वितीय प्रकार का गम्भीर दोष यह है कि हम श्रम उत्पादकता पर बहुत अधिक आग्रह करते हैं और भूमि तथा पूंजी की उत्पादकता के बारे में सब कुछ भूल जाते हैं। श्रम उत्पादकता एक ऐसी गतिविधि है, जो सम्पत्ति के वितरण में लाभदायक हो सकती है, परन्तु भारतीय परिस्थितियों के अन्तर्गत भूमि और पूंजी से सम्बन्धित उत्पादकता बहुत आवश्यक है, क्योंकि यह राष्ट्रीय आय के विकास की दर को अधिकतम गति से प्रभावित कर सकती है, इन दोनों में पूंजी की उत्पादकता बहुत ही प्रमाणिक है। देश में इकत्रित की गयी बचत और साधनों के भंडार के उपयोग जो हम कर सकते हैं, अधिकतम करना चाहिये, क्योंकि वे पदार्थों और सेवाओं के वर्तमान और भविष्य के प्रवाहों में योगदान देते हैं। भारत में इस पहलू को अपराधी स्तर तक दुर्लक्ष्य किया जा रहा है। हमारे पास निर्भर की जाने वाली पूंजी और उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले प्रमुख उत्पाद के अनुपात के संख्या पत्र भी नहीं हैं और न देश की सांख्यकीय गणना करने वाले निपुण वर्ग ने भविष्य के वर्षों के लिये पदार्थों व सेवाओं के उत्पादन की सहायतार्थ पूंजीगत सम्पत्ति की भौतकीय उत्पादकता के माप हेतु कोई गम्भीर

प्रयत्न ही किये हैं। सांख्यकीय गणना के विशेषज्ञों को यह जानकारी है कि किस प्रकार राष्ट्रीय आय की परिभाषा और माप को वैचारिक और व्यावहारिक कठिनाइयां घेरे हुये हैं। इन परिस्थितियों में हमें यह जानकारी है कि राष्ट्रीय स्तर पर पूंजी-आय के अनुपात के आधार पर अपनी प्रस्तावना किस प्रकार सिद्ध कर सकते हैं अथवा विवाद-ग्रस्त बना सकते हैं। हम अपने दृष्टिकोण को समझाने के लिये उत्तर भारत के सुगर के कारखानों का एक उदाहरण प्रस्तुत करेंगे, जहाँ पर सरकार ने कारखानों को लाइसेन्स प्रदान करने में अत्यधिक हस्तक्षेप किया है और पूंजी और विदेशी मुद्रा के भारी खर्चे को उठाया है और यह हमारी यूनियन्स द्वारा दी गयी चेतावनी के पश्चात भी किया गया। इसके परिणाम स्वरूप बाजार से चीनी गायब हो गयी और २ वर्ष की ही अवधि में इसकी कीमतें चार से पांच गुने बढ़ गयीं।

## एक उदाहरण

इन्डियन सुगर इन्डस्ट्री रिसर्च इन्स्च्यूट जो भारतीय मजदूर संघ द्वारा स्थापित भारतीय श्रम अन्वेषण केन्द्र की एक शाखा है, के निदेशक श्री ठाकुरदास साहनी ने भारतीय सेन्ट्रल सुगर केन कमेटी की शाखा केन डवलमेन्ट सब कमेटी की फरवरी १९६५ की बैठक में चीनी उद्योग में भूमि और पूंजी उत्पादकता पर एक योजना प्रस्तत की। हमारे निदेशक के सुझाव पर विस्तार से विशेषज्ञों द्वारा तर्क-वितर्क व विचारविमर्श करने के पश्चात् समिति ने प्रस्तुत योजना को सर्वसम्मति से अनुमोदित किया और सरकार के पास इसकी स्वीकृति के लिये सिफारिश की कि इस योजना को इसके नमूने के तौर पर कार्यान्वित किया जाय। परन्तु सरकार ने इस संदर्भ में कुछ भी नहीं किया। तथा इसके विपरीत वह गलतियां ही करती रही तथा पूंजी को बरबाद करके उद्योग के विकास को रोके रखा। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में केन्द्रीय खाद्य व कृषि मत्री ने लाइसेन्स व ऋण प्रदान करने की घोषणा की, ताकि २०० करोड़ रुपये की पूंजी लगाकर ८ लाख टन तक की चीनी उत्पादन की क्षमता में बढ़ोत्तरी हो सके। नये चीनी कारखानों के लगाने के लिये सैकड़ों करोड़ों रुपये की विदेशी मुद्रा का भी उपयोग किया गया। इस संदर्भ में देश की चीनी उत्पादन की दिशा को ध्यानपूर्वक अध्ययन करना लाभप्रद होगा। चीनी का उत्पादन वर्ष १९६५ से ६८ तक निम्नलिखित रहा—

| वर्ष | चीनी का कुल उत्पादन (लाख टनों में) |
|---|---|
| १९६५-६६ | ३५.५ |
| १९६६-६७ | २१.०० |
| १९६७-६८ | १५.०० (अनुमानित) |

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि १९६६-६७ में किस उद्देश्य के लिए मशीनरी बढ़ायी गयी थी ? उद्योग में पहले से ही बहुत सी क्षमता अनुपयोगी अवस्था में विद्यमान थी। पूंजीगत सम्पति को बढ़ाना पूर्णतः अनावश्यक था और इस पूंजीगत सम्पत्ति के कारण अतिरिक्त खर्चे में भी भारी बढ़ोत्तरी करनी पड़ी। इसी कारण से उद्योग की ओर से भी अनुत्पादक कार्य का शोर मचाया गया और चीनी के ऊंचे दामों के लिये दबाव डाला गया।

इसके विपरीत यदि मशीनों पर पूंजीगत खर्चे के बढ़ाने के स्थान पर सरकार ने गन्ने की खेती बढ़ाने के लिये अधिक तीव्रता का मार्ग अपनाया होता तो हमें कई आर्थिक पक्षों में लाभ होता। इस पद्धति से प्रति एकड़ भूमि में इस गुना अधिक चीनी का उत्पादन हुआ होता और परिणाम स्वरूप वर्तमान भूमि की उत्पादकता में १० गुना अधिक की बढ़ोत्तरी हुयी होती। इसके द्वारा गन्ना पिराई की अवधि में लगभग १०० प्रतिशत बढ़ोत्तरी हुयी होती और परिणाम स्वरूप वर्तमान क्षमता की अनुपयोगिता को लम्बा अवधि तक प्रयोग में लाया जा सकता था, साथ ही पिराई के योग्य गन्ने में अधिक चीनी की रिकवरी हुयी होती और कम भूमि में पर्याप्त मात्रा में पूरक उत्पाद भी मिलते। ध्यान रहे कि हमारी योजना के अनुसार पूंजीगत उपकरणों में भी कोई विशेष अन्तर लाने के लिए नहीं था और साथ ही अधिक उत्पादन के कारण घरेलू बाजार और निर्यात के लिए चीनी की कीमत में भी कमी होती।

चीनी उद्योग के लिए प्रमुख और सबसे अधिक अनिवार्य आवश्यकता (input) सिंचाई और उर्वरक की है। सिंचाई, ट्यूबेल, नलकूप द्वारा और उर्वरक हरी खाद द्वारा मिलती है। एक गाँव के लिए एक नलकूप पर्याप्त है। भारत में वर्तमान कारखानों को गन्ना देने के लिए १० हजार नलकूप पर्याप्त है। इनकी लागत केवल १०० करोड़ रुपए होगी, परन्तु यह ८ लाख टन अतिरिक्त उत्पन्न चीनी के मुकाबले में ४० लाख टन अतिरिक्त चीनी देगी। ध्यान रहे कि खाद्य मंत्री ने २०० रुपए की लागत पर ८ लाख टन चीनी के अतिरिक्त उत्पादन का

सुझाव दिया था। चीनी की उत्पादकता को बढ़ाने से हमारी शोध इकाई (अग्रगामी इकाई) की योजना के अन्तर्गत उपभोक्ता के लिए प्रति इकाई कीमत भी कम होती।

भूमि की उत्पादकता बढ़ाने से खाद्य सामग्री उत्पन्न करने वाली फसलों के लिये अतिरिक्त भूमि भी प्राप्त होती। आजकल उत्तर, प्रदेश, बिहार, पंजाब, मध्यप्रदेश, राजस्थान और पश्चिमी बंगाल में हमें प्रति एकड़ ०·३ टन चीनी प्राप्त होती है। महाराष्ट्र और दक्षिण भारत के कुछ भागों में हमें प्रति एकड़ ३·० टन चीनी उपलब्ध होती है। इसका अर्थ हुआ उत्तर भारत के मुकाबले में १० गुने अधिक की प्राप्ति। यह अन्तर स्पष्टतया inputs के कारण है और उत्तर भारत में अनुपयोगी मशीनरी के लगाने के स्थान पर नलकूप सिंचाई और उर्वरक योजनाओं पर पूंजी लगाने से इस अन्तर को दूर किया जा सकता है।

वर्ष १९६५-६६ से १९६७-६८ तक चीनी के उत्पादन में कमी स्पष्टतया कच्चे माल की कमी के कारण थी। अनावश्यक पूंजीगत उपकरणों पर भारी खर्चे ने न काम में आने वाली क्षमता को बढ़ा दिया और चीनी की कीमतों पर नियंत्रण के साथ कारखानों ने गन्ने की कीमतों को बरदाश्त करना कठिन महसूस किया। इसका प्रभाव यह हुआ कि जो भी गन्ने का उत्पादन हुआ, उसे सफेद चीनी बनाने के स्थान पर गुड़ और खाड़सारी चीनी की ओर भेज दिया गया। इसने उद्योग की समस्या को और भी जटिल बना दिया। कीमतों, लाइ-सेन्स और पूंजी की नीति का गलत रूप से बनाना ही सम्पूर्ण घोटाले के लिये दोषी है। प्रथम योजना के काल में १४३ चीनी कारखानों की क्षमता ३२ लाख टन थी, जो सात मास कार्यकाल और ११ प्रतिशत चीनी रिकवरी के आधार पर थी। वर्ष १९६१-६२ में अधिक चीनी की उपज को रोकने के लिये १० प्रतिशत कटौती करने के लिए सरकार वाध्य हुई थी। इसने कारखानों की न प्रयोग में आने वाली क्षमता को बढ़ाने के लिए वाध्य किया। चीनी कारखानों की सिद्ध की गई क्षमता के वावजूद सरकार २०० करोड़ रुपया लगाने के लिए प्रस्तुत हुई और इस तथ्य को भुला दिया कि पुरानी मशीनरी (जिसकी खरीदने की कीमत की धनराशि वर्तमान कीमत की केवल १० प्रतिशत है) पूर्णतः ठीक थी और एक लम्बे काल तक वह चल सकती था और जो भीतरी और विदेशी बाजारों की मांग को पूरा भी कर सकती थी। सरकार के इन सभी निर्णयों के कारण गन्ने की फसल के लिए कुल क्षेत्रफल बढ़ गया है (सिंचाई के दुर्लक्ष्य के

परिणाम स्वरूप भूमि उत्पादकता गिर गई है), गन्ना पेरने की क्षमता बढ़ गई है, लगाई गई मशीन की क्षमता बढ़ गई है और चीनी का उत्पादन पहले से निर्धारित कटौती वाले मात्रा से गिरकर आधी रह गयी है। अब चीनी कारखाने स्थापित करने व लाइसेन्स लेने से लोग इनकार कर रहे हैं, यह है पूंजी की गम्भीर स्थिति, जो अपने में स्वयं की हार मानती है और फिर भी सरकार ने श्रमिकों के विवेकपूर्ण सुझाव को नहीं सुना। क्यों? क्या पूंजी उत्पादकता पर श्रमिकों द्वारा सुझाव देना वर्जित है?

उत्तर भारत में गन्ना पिराई के लिये उपयुक्त मौसम १ नवम्बर से ३१ मई तक रहता है। नवम्बर मास में चीनी की रिकवरी कम होती है, अर्थात् अधिकतम ८ प्रतिशत तक रहती है और प्रतिमास बढ़ते-बढ़ते मार्च में १२ प्रतिशत तक बढ़ जाती है। अब कारखानों को गन्ने की सप्लाई मार्च, अप्रैल व मई मास तक दी जा सकती है, यदि गन्ने के खेतों के लिये उचित सिंचाई उपलब्ध हो। चीनी की रिकवरी का एक आधार गन्ने की परिपक्वता पर है, जो सीधे सिंचाई से नियंत्रित होती है, सिंचाई की सहायता से अप्रैल, मई में १३ प्रतिशत तक रिकवरी हो सकती है, परन्तु सिंचाई के न होने पर १० प्रतिशत और कभी कभी ६ प्रतिशत रह जाती है। अब गन्ने की कम सप्लाई उद्योग को प्रभावित करती है और इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, जब चीनी की रिकवरी के सबसे उपयुक्त अप्रैल व मई के मौसम में मशीनरी का प्रयोग नहीं किया जाता। वस्तुतः ऐसा ही उत्तर भारत में होता है। इसलिये भूमि-उत्पाद की अनुपात सिंचाई और उर्वरक के दुर्लक्ष्य के कारण अन्तिम उत्पाद के रूप में पर्याप्त मात्रा में कम हो गई है। परिणामस्वरूप पूंजी-उत्पाद अनुपात की सभी मिलों में कमी हुई है और उस समय अर्थात् जोरों के मौसम में श्रमिकों को निरुपयोगी बनाने के लिये बाध्य किया है। इस दुर्लक्ष्यता ने गन्ने की बुवाई हेतु बीच के और देर से पकने वाले किस्म के उचित अनुपात को अव्यवस्थित कर दिया है और इससे पिराई का सर्वोच्च लाभदायक कार्यक्रम भी अव्यवस्थित हो गया है।

अब सरकार को यह स्पष्ट हो गया है (कम से कम हम यह आशा करते हैं) कि उसकी शक्कर नीति पूर्णरूपेण असफल हो गई है। केन्द्रीय सचिवालय में बाबू और राजनीतिक लोग अपनी असफलता को छिपाने के लिये बाजार के नियंत्रण में ढील दे रहे हैं। अब सरकार ने कारखानों को अपनी उत्पाद का ४० प्रतिशत खुले बाजार में बेचने की छूट दे दी है। बाजार में अब दो कीमतें

हैं, नियंत्रित कीमत १५० रुपये प्रति क्विंटल है और खुले बाजार में कीमत ५०० रुपये प्रति क्विंटल है। यह किस कारण से ! क्या यह राष्ट्र के अमूल्य बचत और विदेशी मुद्रा का दुरुपयोग नहीं है ? और इसके पश्चात भी सरकार श्रम उत्पादकता की बात करती है। यदि सरकार ने श्रमिकों की सिफारिश की ओर ध्यान दिया होता, तो उसे कम मूल्य पर अधिक चीनी प्राप्त हुई होती। विदेशी मुद्रा बरबाद करने के स्थान पर हमने शक्कर की विश्व बाजार पर कब्जा करके विदेशी मुद्रा अर्जित की होती। उद्योग में दो लाख श्रमिको की आय तीन गुनी हो जाती। अब सुगर उद्योग में अकुशल श्रमिकों का न्यूनतम वेतन १०६ रुपये प्रतिमास है (६० रु० वेतन और ४० रुपये मंहगाई तथा शेष अन्य )। उत्तर भारत में इनके काम का समय २ मास से ४ मास तक का है। हमारे सुझाव को अपनाने के पश्चात श्रमिक को ७ मास का काम मिला होता और वह भी २०० रुपये प्रति मास पर। ये सभी आकड़ें पहले सिद्ध किये जा चुके हैं और अब पुनः भी सिद्ध किये जा सकते हैं। परन्तु सरकार साइसेन्स देकर एक प्रकार का व्यापार बनाना चाहती है। वह उत्पादकता और जीवन स्तर को बढ़ाने के बारे में चिन्तित नहीं है और उचित श्रम शोध संस्थानों को उपभोक्ता और श्रमिकों की सेवा करने से भी रोक रही है। कम से कम इस मामले में उसके कारनामों का यही परिणाम हैं। हमारे सुझाव को मानने पर सरकार अपनी आय जो इक्साइज ड्यूटी. परचेज टैक्स, आयकर और सुपर टैक्स के रूप में कमाती है, तिगुनी हो जाती। कारखानों, आयात और बाजार में चीनी बेचने के लिये लाइसेन्स देने के रूप में काले धन को कोई भी न कमा सकता। उत्पादकता को बढ़ाकर, हरएक कारखाने की आय और किसानों की आय को बढ़ाकर, बचत की क्षमता को पर्याप्त रूप से पैदा किया गया होता। परन्तु ऐसे राष्ट्रीय हितों की कौन चिन्ता करे ?

उद्योग का अप्रधान उत्पाद (By product) भी निरुपयोगी वा फालतू मशीन के स्थान पर सिंचाई व उर्वरक जैसे इनपुट्स से सम्बन्धित है। यह इसलिए है क्योंकि वह गन्ने की परिपक्वता और कार्यकलापों की अवधि पर निर्भर करता है। शीरा, जो पावर अलकोहल के लिए कच्चा माल है और जो पेट्रोल से मिलाकर मोटरकार और ट्रक्स के चलाने के उपयोग में आता है और जिसे रबर के सामानों के बनाने में भी उपयोग किया जाता है, शक्कर उद्योग का बहुमूल्य अप्रधान उत्पाद है। श्रमिकों के सुझावों को मानने से शीरे की सप्लाई में भी बढ़ोत्तरी

हुई होती। खोई जो कागज बनाने के लिये बहुमूल्य कच्चा माल है, हमारे सुझाव को मानने पर प्राप्त हुआ होता। खोई सर्वसाधारण रूप से चीनी उद्योग में ईंधन के रूप में प्रयोग की जाती है। परन्तु जब कारखाना लम्बे काल तक के लिए चलता है, तब गर्मियों के मौसम में (पुनः ध्यान दें कि ऐसा अधिक रिकवरी के योग्य मौसम के मध्य में होता है) उबालने वाली प्रक्रियाओं में भाप की खपत कम हो जाती है। गन्ने की परिपक्वता पर अधिक रिकवरी होने पर गन्ने के रेशे का अनुपात भी बढ़ जाता है। इन दोनों ही कारणों से पर्याप्त रूप से खोई मिल सकती है, परन्तु सरकार की संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण ऐसा सम्भव न हो सका।

ऊपर लिखे अप्रधान उत्पाद के बावजूद चीनी उद्योग के अन्य भी अप्रधान उत्पाद हैं अर्थात् चीनी कारखानों के चारों ओर वस्तुओं के अन्य उपयोग भी हैं। परन्तु हमारे द्वारा उत्पादकता के सम्बन्ध में दिये गये योजनाओं पर पूंजीपतियों और सरकार के अन्धेपन के कारण दुर्लक्ष्य हो रहा है। उदाहरणार्थ- गन्ने के रस की सफाई करने पर जो गन्दगी निकलती है, एक अच्छी खाद (Organic mamuse) है। उन कारखानों जिनमें सल्फीटेशन प्रक्रिया की जाती है, से बनी खाद को गन्ने व अन्य फसलों के लिए प्रयोग किया जा सकता है। कारबनाइ-जेशन प्रक्रिया वाले कारखानों से हमें गाढ़ी Pressmud मिलती है। इसका खाद के रूप में और मोम के बनाने के लिए कच्चे माल के रूप में उपयोग के लिए शोध किया गया है, परन्तु सरकार ने अभी तक इन परिणामों को व्यवहार में लाकर व्यपार के लिए उपयोग नहीं किया गया है। इसी प्रकार सरकार ने यह मालूम करने के लाखों रुपये का व्यय किया है, जिसके अन्तर्गत कारखाने से निकले गन्दे पानी के स्वच्छ करने का प्रयत्न किया गया है, ध्यान रहे कि यह पानी ग्रामों में पशुओं व मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिए घातक है, परन्तु इस तथ्य को सुगमता से भुला दिया है कि इस पानी को सिचाई के लिए और गन्ने अथवा अन्य फसलों के पकाने में अच्छे माध्यम के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। यह तो स्वच्छ पानी में मिला जुला फ्रेस मद है, यदि इस पानी को उसी रूप में प्रयोग किया जाय तो इससे सिचाई और उर्वरक पर पूंजी के खर्चे में बचत की जा सकती है और हमारी शोध इकाई द्वारा सुझाई गई राय पर होने वाले १०० करोड़ रुपये के खर्चे की धनराशि में भी कमी सम्भव है।

हमारी शोध इकाई की योजना के अनुसार हम २० लाख एकड़ गन्ने की

के उपयोग में आने वाली भूमि से कन्ट्रोल कीमत से सस्ते मूल्य पर ६५ लाख टन चीनी का उत्पादन कर सकते हैं, जबकि ५० लाख एकड़ की विस्तृत भूमि से हम इस समय केवल १६ लाख टन चीनी का उत्पादन कर पाते हैं। गन्ने के अंकुर पैदा होने से लेकर कटाई तक कुल १६ बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। परन्तु उत्तर भारत में गन्ने की केवल २ या ३ बार सिंचाई हो पाती है, कुछ क्षेत्रों में सिंचाई के कोई साधन नहीं हैं और फसल पूर्णतया वर्षा पर ही निर्भर है। महाराष्ट्र में जहां सिंचाई के साधन अच्छे हैं, गन्ने की औसत उपज ६० से ७०टनप्रति एकड़ है। उत्तर प्रदेश और बिहार में जब कभी गन्ने की बढ़ती अवधि में १० बार सिंचाई मिल जाती है, तो गन्ने की उपज प्रगतिशील किसानों के खेतों में ८० टन प्रति एकड़ की दर तक प्राप्त की गई है, इस परिणाम को सरकार द्वारा आयोजित प्रान्तीय गन्ना प्रतियोगिता योजना मे भी प्रदर्शित की गई हैं।

श्रमिक अपनी इस प्रकार की उलब्धियों के लिये किस स्थान पर प्रभावी प्रतिनिधित्व करें ? वर्ष १९६७ में वेतन मंडल के सम्मुख हमने ३ बार प्रतिनिधित्व किया, परन्तु यह असहाय वेतन मंडल उक्त विषयों मे कर ही क्या सकता हैं ? लोकसभा में इस विषय को यदि मूल कार्यक्रम के कुछ अराजनैतिक घंटों में लिया भी जाय, तो भी इसे दल के दृष्टिकोण से ही देखा जाता हैं। परिणाम स्वरूप इस समय गम्भीर रूप से चीनी की कमी हो गई हैं। वर्ष १९६०-६१ में हमारे पास १२ लाख टन चीनी अतिरिक्त रूप में थी। वर्ष १९६३ में हमारी शोध इकाई ने सरकार को अपना प्रतिवेदन दिया कि सरकार लाईसेन्स देने और पूंजी प्रधान उपकरणों के लिये ऋण देने की उत्पादन विरोधी नीति को रोके। यदि ऐसा किया गया होता तो भीतरी माँगों को पूरा करने के बाद तुलनात्मक कीमतों के द्वारा विश्वव्यापी चीनी बाजार को अपने आधीन करके विदेशी मुद्रा कमाई जा सकती थी। परन्तु सरकार की गलत ढग से धन के व्यय के कारण भारतीय उपभोक्ता अपने लिये ५०० रुपये प्रति क्विन्टल की अत्यधिक ऊंची कीमत देने के पश्चात भी चीनी की पर्याप्त मात्रा को प्राप्त नहीं कर पा रहा है। ध्यान रहे कि वर्ष १९६१ से १९६३ तक चीनी की कीमत ११० रुपये प्रति क्विन्टल थी। दूसरी ओर चीनी मशीनरी बनाने वाले कारखानों के पास मशीन बनाने के लिए आदेश नहीं हैं। सरकार का सुझाव देशभक्ति के रूप में था जिसमें कि विदेशी मशीनों के स्थान पर देश में ही चीनी मिलों

ने मशीनों को बनाना शुरू किया, परन्तु इसी बीच सरकार ने जल्दबाजी करके करोड़ों रुपये व्यय करके अत्यधिक मशीनरी का आयात किया और इधर देश के अन्दर मशीन बनाने की क्षमता के उत्पन्न हो जाने पर अब आदेश की कमी के कारण वे कारखाने निरुपयोगी पड़े हैं। एक ओर इन सभी बचतों और विदेशी मुद्रा की अपराध तुल्य हानि और दूसरी ओर देश के पवित्र नाम पर हमें वेतन नियंत्रण अपनाने के लिए आह्वान किया जाता हैं आखिर यह क्या है ? ऐसे नेताओं को श्रम उत्पादकता पर भाषण देने का क्या अधिकार है ?

## निष्कर्ष

हमने पूंजी और भूमि उत्पादकता पर पर्याप्त लम्बी व्याख्या प्रस्तुत की है, क्योंकि हम यह अनुभव करते हैं कि यह पहलू राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, फिर भी इसको दुर्लक्ष्य किया जाता है और इसमें असावधानी बरती जाती है। हमारी व्यवहारिक शोध ने तकनीकी सेवाओं के पहलुओं को अभी तक नहीं बदला है। ऊपर उल्लेख किए गये शोध पत्र में प्रो० महालनवीस ने ठीक ही कहा हैं कि औद्योगीकरण के संकटकाल में अप्लाइड शोध उद्देश्यपूर्ण, योजनाबद्ध कार्यक्रम के अन्तर्गत और परियोजना के आधार पर बनानी चाहिये और यह एक निश्चित अवधि के भीतर सक्रिय प्रयत्नों के लिए होनी चाहिए तथा साथ ही खाद्य, प्रतिरक्षा, निर्यात प्रोत्साहन, आयात पूरकता और सर्वसाधारण आर्थिक विकास की राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुकूल होनी चाहिए। परन्तु शक्कर उद्योग में इस प्रकार के खोज का यह एक ऐसा उदाहरण हैं, जिसके अन्तर्गत शोध को एक श्रम सगठन ने अपने खर्चे पर किया, साथ ही व्यापक रूप से हो रहे पूंजी और विदेशी मुद्रा जैसी अनुपलब्ध साधनों का गलत तरीके से व्यय रोकने के लिये किया और अत्यधिक उपयुक्त समय पर किया। शोध के सुझाव पर विशेषज्ञों द्वारा कई बार तर्क-वितर्क और विचार विमर्श किया गया, पश्चात सर्वसम्मति से अनुमोदन किया गया, परन्तु फिर भी लाइसेंस प्रदान करने के अपने जोश में सरकार ने इन सुझावों को दुर्लक्ष्य किया और करोड़ों रुपयों के मूल्य की विदेशी मुद्रा की हानि की।

और यह उदाहरण अपवाद के रूप में नहीं है। अभी-अभी पूना की एन्टीबायोटिक्स यूनियन और मद्रास की फूड कारपोरेशन कर्मचारी यूनियन ने सार्व-

जनिक क्षेत्र के कारखाने में हो रही हानि को रोकने के लिए एक अभियान लिया और उत्पादकता के लिए ठोस विचार प्रस्तुत किये। बम्बई की बेस्ट कारखाने में भारतीय मजदूर संघ की यूनियन ने शहरी बस सेवा की स्थिति को सुधारने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन को विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट के सुझावों को अपनाने के लिए अभियान लिया, परन्तु हर स्थान पर यह पाया गया कि अफसरशाही, जो गलत मान्यताओं से सम्बन्धित है और राजनीतिज्ञों के स्वार्थों, जो मत प्राप्त करने की अल्पकालीन साहसिक कदम के अलावा कुछ भी नहीं समझता, उत्पादकता के विचारों पर उसी समय विरोधी हो जाता है, जैसे ही श्रमिकों के द्वारा वे उठाये जाते हैं अथवा अधिक से अधिक राजनीतिक उत्तर प्राप्त होता है कि 'विषय विचाराधीन है।' फिर भी कुछ अपवाद भी हैं। जी० के० डल्लू कारखाना बन्डुप में और शुक्ला मन्सेस्ता उद्योग थाना (दोनों कारखाने बम्बई क्षेत्र में हैं) में भारतीय मजदूर सघ की यूनियनों के अनुभव इस सदर्भ में उत्साहप्रद हैं। श्रम प्रबन्ध सहयोग के कारण इन विषयों में यह पाया गया है कि कुछ प्रक्रियाओं में हमारे श्रमिकों ने गुणवत्ता नियंत्रण, हो रही हानि में कमी, मशीन-आयु में बढ़ोत्तरी, मशीनों की खराबी के कारण काम बन्दी में कमी, श्रम उत्पादकता और औजारों के प्रयोग व डिजाइन की विशेषज्ञताओं में विश्व रिकार्ड तोड़े हैं। परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं और दोनों ही पक्षों द्वारा बड़ी कठिनाई से बनाये रखे जाते हैं। तब इसका अनुमाग लगानां कि उत्पादकता के नाजुक तरीकों के क्या भाग्य हो सकते हैं जब प्रबन्ध अत्यधिक हानि को स्वीकार करता है और इस प्रकार की हानि को छिपाने के लिए श्रमिकों को पेट काटने के लिए कहते हैं (और यह प्रक्रिया सार्वजनिक क्षेत्र में उपस्थित है)। इसमें क्या खराबी है जब कोई इस परिस्थिति के विरोध में विद्रोह करता है? परन्तु बड़े दुर्भाग्य की बात कि जब कोई ऐसा करता है और न्यायालय की गोद में ढकेल दिया जाता है तो वह पाता है कि न्यायालय में उत्पादकता का कोई भी तकनीकी विभाग नहीं है। इस विषय पर उसके सभी तर्क व्यर्थ जाते हैं। वे किसी प्रकार के प्रोत्साहन पद्धति के डिजाइन को भी नहीं मानते। कई बार वे उन्हें विषय, कार्य और क्षेत्र से भी बाहर मानते हैं। एक राष्ट्रवादी और रचनात्मक ट्रेड यूनियन के लिये जो देश में पहले से ही कमजोर है, उसके सामने उद्योग का कुछ भी भला करने का मार्ग नहीं है। ये वे आधारभूत विषय हैं, जिन्हें उत्पादकता आन्दोलन को अपने सम्मुख रखना चाहिये, बजाय इसके कि वर्तमान काल के चल रहे प्रवचनों तथा अन्य प्रचा-

रात्मक भाषणों को चालू रखा जाय। इन सभी विषयों के उत्तर हमें ढूढ़ने होंगे, जब हम एक रचनात्मक यूनियन और प्रबन्ध के बीच में संचार व्यवस्था के माध्यम की योजना बनावें और उत्पादकता को सुधारने के लिए सुझाव प्रस्तुत करें।

## कार्यवाही सम्बन्धी विषय : प्रोत्साहन योजना

उत्पादकता के परिणाम के लिए सर्वोच्च व स्पष्ट टेकनिक अदायगी की पद्धति है। पहले पहल विचार करने पर यह 'पद्धति' बड़ी मनमोहक प्रतीत होती है, परन्तु समूचा परिणाम प्राप्त करने के लिए पर्याप्त मात्रा में तैयारी हेतु काम करना पड़ता है। बहुत से ऐसे उदाहरण हैं, जिनमें इस प्रकार के प्रारम्भिक भूमिका वाले काम को दुर्लक्ष्य कर देने से बाहरी रूप से प्रशंसनीय पद्धतियों को भी अफलता का मुंह देखना पड़ता है। इसके पहले कि परिणाम देने वाली अदायगी पद्धति को अपनाया जाय, जिसे वर्कस्टडी अपनाने के पश्चात लागू करना सम्भव है, दो प्राथमिक बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। प्रथम यह कि श्रमिकों की सहायता प्राप्त हो, उन श्रमिको की, जो ऐसी योजना के अन्तर्गत होंगे और द्वितीय पद्धति के अध्ययन से सम्बन्धित है सर्वप्रथम श्रमिकों के सक्रिय सहयोग से श्रमिकों को उत्पादकता लाभ के परिणामों को बताकर एव मनवाकर पूरें कारखाने में एक क्रमबद्ध उत्पादकता विश्लेषण करना चाहिये। कई बार इस प्रकार के अध्ययन से यह पता लगेगा कि खराब योजनाओं के के कारण अनुपयुक्त रख रखाव, औजार, सामग्री, आर्डर्स अथवा विशेषज्ञों की कमी आदि के कारण कुछ समय के लिए मशीने निरुपयोगी बनी रहेंगी। जब ऊपर की कमियां खराब निरीक्षण और अनुपयुक्त प्रेरणाओं से जुड़ जाती हैं तो परियोजनाओं में न प्रयोग में आने वाली श्रमशक्ति बढ़ जाती है, क्योंकि सम्पूर्ण वातावरण आलस्यपन को प्रोत्साहन देता है, साथ ही सामग्री को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में द्विविधा और जमघट की स्थिति पैदा हो जाती है। दोषपूर्ण डिजाइन और ले आउट, स्तर से नीचे की पद्धतियाँ, खराब गुणवत्ता नियंत्रण, अपूर्ण विवरण अथवा खराब उपकरण और खराब औजार के कारण काम की गति में और काम करने में रुकावटें पैदा होती हैं, साथ ही अनुपयुक्त उत्पादन नियंत्रण, भिन्न-भिन्न कार्य सम्बन्धी समय के आकड़ों की कमी, गलत अनुमान लगाने वाली पद्धति, दोषपूर्ण ऐनवैन्टरी कन्ट्रोल तथा अनुपयुक्त संचार

पद्धति उत्पादकता में अवरोध पैदा करती हैं। यदि इसके साथ पुरानी और अप्रचलित मशीनें अथवा मशीन टूल्स और घिसी हुई मशीनों के कारण अवरोध की गति, खराब पद्धति और रख रखाव के दुर्लक्ष्य को जोड़ दिया जाय, तो श्रम उत्पादन की बड़ी दयनीय स्थिति हो जायगी और उसके बारे में सोचना भी व्यर्थ होगा। उक्त सभी बातों को केवल मात्र वर्कस्टडी टेकनालाजिस्ट द्वारा ही नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि कई बार इस प्रकार के अध्ययन श्रमिकों की कुशलता, दिनचर्या, हस्तकला की परम्परा और परस्पर व्यक्तिगत सम्बन्धों पर बुरे परिणाम डालते हैं। यदि इन सभी बातों के लिए एक श्रमिक को निर्जीव प्राणी की तरह मैथेड्स इन्जीनियर के हाथों में सौंप दिया जाता है और उसकी आज्ञाओं के अनुसार काम करने के लिए कहा जाता है, तो ऐसी प्रक्रियाओं से श्रमिकों की भावनाओं को चोट पहुंचती है और इनके फलमें उनके प्रति द्वेष और क्रोध बढ़ता है तथा इस प्रकार पूरी योजना असफलता की ओर अग्रसर हो जाती है। ऊपर लिखे ढंग के अनुसार प्राथमिक मैथेड स्टडी के बाद ही कार्य के मापांकन को अपनाना चाहिए। आम तौर पर इन दोनों अध्ययनों के बीच में स्पष्ट तौर पर विभाजन करने वाली कोई रेखा खींचना सरल नहीं है, क्योंकि व्यवहार में टाइम स्टडी करते समय मथेड्स से ही प्रगति की खोज की जाती है। फिर भी कार्य के मापांकन के पूर्व पूर्णरूप से नमूने के अध्ययन अथवा पद्धति में सुधार करना चाहिये, क्योंकि इसके ही आधार पर परिणामों के प्राप्त करने हेतु अदायगी वाली पद्धति का पूरा महल खड़ा है। भारत के प्रशासकीय वर्ग के लिये हैदराबाद में जो विद्यालय है, वह समस्याओं को पहचानने के लिये निःशुल्क सलाहकार सेवा प्रदान करता है। हम यह भी जोड़ना चाहेंगे कि आरगोनामिक्स (Orgonomics) का उपयोग भी उस हद तक इस क्रम में सम्मिलित करना चाहिये, जितना कि वर्कस्टडी का भाग है। इसमें भिन्न-भिन्न पक्षों, जैसे श्रमिकों की काम करने की आदत, प्रक्रिया का स्वभाविक रूप से प्रचलन, शारीरिक स्थिति, काम का बोझ, काम में सुर, नियमितता, गति, थकान, सक्रियता और भिन्न-भिन्न प्रकार के काम के बोझ को लेना और साथ ही कार्य स्थल का ले आउट, कार्य की स्थिति और कल्याण को ध्यान में रखना चाहिये, साथ ही मनुष्य सम्बन्धी विशेषताओं, जैसे- सीखने की प्रक्रिया, कुशलता, स्वास्थ्य, लिंग, आयु, बुद्धिमत्ता और मनुष्य की आकृति सम्बन्धी आकड़ों को भी ध्यान में रखना चाहिये। कार्य के बोझ ३ प्रकार के होते हैं, शारीरिक, देखने, सुनने व बोलने सम्बन्धी और मानसिक (प्रस्तुत करना और नियंत्रित करना)। गति-

विधियों के प्रकार निम्नांकित हैं-- शरीर के सभी जोड़ जैसे कि पोर, कलाई, कूल्हा, कन्धा, व रीढ़। ये क्रमशः अधिक बोझ बरदास्त करते हैं। ले आउट की डिजाइन शीघ्रता की अथवा साधारण कार्यक्षेत्र के अनुकूल होनी चाहिये। साथ ही कम से कम समितीय, स्वरानुकूल, आदत के अनुकूल, स्वभाविक और नियमित गतिविधि सम्बन्धी प्रक्रिया के मूल्यांकन से सम्बन्धित सिद्धान्तों को उचित स्थान देना चाहिये। वातावरण को नियंत्रित करने की आवश्यकता है ताकि प्रकाश (आँखों को चौधयाने वाले प्रकाश, प्रकाश के स्तर--वस्तुओं और उनके वातावरण से सम्बन्धित स्तर को निचिश्त करने वाला तथा प्रकाश के सम्बन्धी हैं), वायु के आवागमन की उचित व्यबस्था, तापक्रम एवं नमी, शोर, जलवायु, (वायु की गति, वर्षा, धूल ओर समुद्र तट से ऊँचाई) रंग, धुआ और गन्ध कार्यस्थल से शौचालय, कैन्टीन और सिगरेट पीने के स्थान की दूरी, यातायात और क्षेत्र में होने वाली रुकावटें तथा सकरेपन, नयनाभिराम, भूमि-बगीचे और सुहावने दृश्य के वातावरण, सफाई और धूप की रोशनी व गर्मी आदि के वायुमंडल में फैलने की प्रक्रिया से सम्बन्धित विषयों को अनुकूल बनाया जा सके।

एक सरल उत्साह पद्धति, जिसके अनुसार हर एक श्रमिक अपने उत्पादन का आकलन कर अपने प्रोत्साहन वेतन का हिसाब लगा सके-- स्पष्टतः ही श्रमिकों के दृष्टिकोण के अनुसार एक अच्छी पद्धति है। परन्तु आधुनिक कारखानों में प्रक्रियायें इतनी पेचीदी हैं कि वे कई पहलुओं पर निर्भर रहती हैं, जैसे कच्चे माल के गुण, मशीन की आयु, तापक्रम, टीमवर्क आदि। जिसके कारण एक सरल प्रोत्साहन वेतन पद्धति का बनाना व्यवहारिक नहीं हो पाया है इसके साथ ही इन्जीनियरिंग कारखानों की बहुत सी प्रक्रियाओं में बड़े गुणवत्ता के नियक्षण की आवश्यकता रहती है। फिर भी भारतीय मजदूर संघ की यूनियन का यह अनुभव है कि जे० के० डब्लू कारखाना बन्दुप (बम्बई) में कितनी भी पेचेदी प्रोत्साहन योजना क्यों न हो-- वर्क चार्ट्स और कार्य परीक्षण पद्धतियों की प्रथमिक प्रशिक्षण द्वारा श्रमिकों की समझ में आ सकती है। इस योजना को इकाई स्तर पर लागू करना चाहिए। यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि प्रोत्साहन योजना के सभी ब्योरों को सामूहिक सौदेबाजी के द्वारा निर्णय करना चाहिये और उसमें रजिस्टर किये गये समझौतों को कानूनी रूप से सम्मिलित करना चाहिये तथा उसके पश्चात ही कारखाने में उन्हें लागू करना चाहिये।

नहीं तो श्रमिकों के मनोबल सम्बन्धी संदेह बने रहेंगे और अच्छी से अच्छी बनाई गई योजना भी अन्ततोगत्वा असफल हो होगी। कोई भी प्रोत्साहन वेतन सम्बन्धी योजना को ऐसा नहीं बनाना चाहिये कि उससे वेतन में कटौती हो। यह समुचित प्रगति की सभी भावनाओं के विरुद्ध है। व्यक्तिगत और सामूहिक प्रोत्साहन योजनाओं में भेद करना कठिन है। प्रत्येक मामले में पर्याप्त रूप से वातावरण, उत्पादन प्रक्रियाओं की प्रकृति अथवा कार्य की प्रकृति मनुष्य सम्बन्धी ऐतिहासिक पक्ष आदि पर निर्भर करती है। फिर भी हम सामूहिक रूप से यह अनुभव करते हैं कि भारतीय पद्धतियों में सामूहिक प्रोत्साहन योजना अच्छी है। तथा यह और अच्छा एवं संतोषप्रद है कि सामूहिक प्रोत्साहन योजना प्रोत्साहन वेतन की दरों को निश्चित करे (विशेषकर गुण, नियंत्रण, मशीन का बिगड़ जाना, कच्चा माल, टूल्स और आर्डर्स से उत्पन्न होने वाले विषयों को अपने प्रभाव डालने वाली क्षमता को उचित स्थान देना चाहिये) और वेतन के लिये वास्तविक जनराशि समूह में व्यक्तिगत योगदान के मापांकन से निर्धारित होनी चाहिये। इस प्रकार की सामूहिक योजना अनुपस्थित रहने की स्थिति में भी यह नियंत्रित कर सकेगी। जब कार्य के उन आकड़ों पर, जिन पर प्रोत्साहन वेतन का हिसाब किया जाता है, उपस्थिति के स्तर से पर्याप्त प्रभावी होती है अथवा जब समूह की एक निश्चित संख्या की कमी किसी एक श्रमिक के छुट्टी लेने के कारण होती है तो उसे नाकारात्मक मूल्य दिया जाना चाहिये। हम यह नहीं विश्वास करते कि समय के लिये आधारित दर प्रोत्साहन योजना लागू करने में एक बार न पाने वाली रुकावट है। प्रोत्साहन वेतन को एक अतिरिक्त वेतन के रूप में माना जा सकता है और तब उत्पादकता की बढ़ोत्तरी पर आधारित आय में बढ़ोत्तरी सभी श्रमिकों को समान रूप से प्राप्त हो सकेगी। साथ ही उत्पादकता लाभ के वितरण में यह आवश्यक नहीं है कि वे एक गणित में उपयोग होने वाली समानता के रूप में हो, जो कि कुछ मामलों में उत्पादकता के उद्देश्य को ही पराजित कर दे। न्याय और अवसर की समानता के सामाजिक विचार-ऐसी मनोवृत्तियां हैं, जो व्यक्ति और समूह के व्यवहार और गतिविधियों को लम्बे काल तक प्रभाव डालती हैं। बहुत से पाश्चात्य देशों में जहां टाइम रेटेड श्रेणियां नहीं पायी जातीं, एक प्रकार की टाइमरेटेड योजना के लागू करने विचार सम्मुख आ रहे हैं। भारत में इन दिशाओं के विपरीत योजना के लागू करने से पर्याप्त हानि सम्भव है। साथ ही वर्कस्टडी की पद्धति पर्याप्त मात्रा में विकसित हो गयी है, जिसमें क्लर्क तक को सम्मिलित किया गया है, जहां पर

सम्बन्धित "गतिविधियों के नमूने (Activity sampling)" के उपयोग कुशलता के दर (Efficiency coefficients की जानकारी के लिये प्रयोग में आते हैं। इन्हें भिन्न-भिन्न रूपों में जाना जता है जैसे--- .. .. ..random observation studies,.. .. .. ..snap reading, .. .. ....ratio delay,.. .. .. .. work sampling.. .. .... activity ratio study .. .. .. .. machine utilisation study .. .. .. .. अथवा .. .. .. .. observation ratio। यह .. .. . theory of sampling और .. .. .. theory of probability पर आधारित है। यह न दुहराये जाने वाली प्रक्रियाओं के विश्लेषण में अधिक लाभकारी है। अनुपाततः यह सस्ता ढंग है। निरीक्षण हेंतु उद्देश्यों को स्थापित करता है। मनुष्य शक्ति की योजना में सहायक है और समय के साथ बदलती हुई प्रक्रियाओ में प्रभावी होने में भी सहायक है। इस पद्धति के अन्तर्गत किसी भी गतिविधि के नमूने के परिणामों में विश्वास की मात्रा सम्पन्न कराने हेतु प्रबन्धिका निर्णय लेती हैं और तब नमूने के तौर पर प्रक्रियाओं को वर्कस्टडी विभाजित करती है और और निम्नलिखित सूत्र के आधार पर निरीक्षण संख्या निर्धारित होती है---

$$N = \frac{6P(100-P)}{L^2}$$

जहां पर N = निर्धारण संख्या

6 = विश्वास स्तर

L = यथार्थता की सीमा और

P = कार्य समय का अनुपात प्रतिशत में, इसलिये

(100—P) = बैठकी का समय

समय पर आधारित वेतन दर क्लर्क के काम से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है और चूंकि इस प्रकार की श्रेणियों को भी सीधी पद्धति द्वारा प्रोत्साहन योजनाओं के अन्तर्गत लाना हैं, हमें दोनों ही प्रकार की पद्धतियों--समय पर निर्धारित वेतन दर और प्रोत्साहन योजनाओं को अपनाना पड़ेगा। इस विचार के साथ ही एक और अतिरिक्त लाभ प्रोत्साहन सम्बन्धी वेतन को भिन्न रूप में देने के लिये भी है। कभी-कभी यदि किसी दूसरी तिथि पर दिया गया तो इसका एक प्रशंसनीय प्रभाव पड़ता है। एक विशेष कारखाने में जहाँ पर भारतीय मजदूर संघ की यूनियन सम्मिलित थी, इस विभाजन का हमें अनोखा अनुभव हुआ। एक अच्छे प्रकार से आयोजित प्रोत्साहन योजना के लागू होने के बाद हर मास की सातवीं तारीख को साधारण वेतन के साथ प्रबन्ध ने प्रोत्साहन

वेतन देना प्रारम्भ किया। उल्लिखित कारखाने की यह वेतन तिथि थी। तत्पश्चात् ऐसा अनुभव में आया कि श्रमिक मासिक वेतन के रूप में भिन्न-भिन्न धनराशि पाने के इतने अभ्यास हो गये कि प्रोत्साहन वेतन उन्हें किसी प्रकार से प्रभावित करने में असफल हो गयी। तत्पश्चात् प्रबन्ध ने यूनियन से वार्तालाप कर प्रोत्साहन वेतन को सम्पूर्ण आय से पृथक कर लिया और उसे हर मास की २८ तारीख को देना शुरू किया। यह देखने में आया कि कारखाने के श्रमिको के खर्च करने की आदतें इस प्रकार से थीं कि उनमें से बहुत से श्रमिक पाँच अथवा दस रुपये तक की धनराशि के ऋण लेने के अभ्यस्त हो गये। प्रोत्साहन वेतन के मास के अन्त में प्राप्त होने की पद्धति उनके लिये वरदान सिद्ध हुयी और धनराशि की उपयोगिता उसके मूल्य से अत्यधिक रूप में लाभकारी हुयी, बजाय इसके कि यह धनराशि जब उनके मासिक वेतन के साथ दी जा रही थी। परिणाम यह हुआ कि कारखाने में श्रमिकों का नैतिक स्तर बढ़ गया और श्रमिकों ने प्रोत्साहन वेतन को बढ़ाने में अत्यधिक रुचि लेना शुरू किया, जिसने उनके परिवार जनों और पड़ोसियों के बीच सामाजिक स्तर को बदल दिया। इस प्रकार प्रोत्साहन योजना अत्यधिक सफल हुयी। प्रोत्साहन वेतन को कब शुरू किया जाय के संदर्भ में हम इस सिद्धान्त से सहमत नहीं हैं कि अतिरिक्त आय तभी शुरू होनी चाहिए जब कुशलता का एक विशेष स्तर प्राप्त हो जाय। इसके विपरीत हमारा यह दृष्टिकोण है कि प्रोत्साहन योजना को वास्तविक सफलता प्रदान करने के लिए इसे उत्पादन उस स्तर से अदा करना शुरू करना चाहिए जो कि किसी भी समय जबकि इस योजना को लागू करने की इच्छा प्रकट की जाय अथवा वर्कस्टडी के प्रारम्भिक रूप में मैथेड स्टडी को शुरू किया जाय। प्रबन्ध जो कि 'परिणाम के पश्चात अदायगी' की पद्धति को लागू करना चाहता है, योजना में अपना पूरा सम्मान दाव पर लगा देना चाहिए, जिसके अन्तर्गत पूरी योजना को प्रभावी बनाने के लिए अदायगी को तुरन्त लागू कर देना चाहिए। प्रारम्भ में अथवा उस समय जब वर्कस्टडी विशेषज्ञ क्षेत्र में अपने प्रथम प्रकटीकरण में श्रम, प्रबन्ध के इरादों पर उसी समय से सन्देह करना प्रारम्भ कर देता है कि प्रबन्ध अदायगी के एक भिन्न पद्धति को लागू करेगा। ऐसी परिस्थिति में यदि यूनियन से यह मांग की जाय कि वह पद्धति के लागू करने के लिए राजी हो कि अतिरिक्त आय देना तभी सम्भव होगा, जब वर्तमान कुशलता को बढ़ाया अथवा वर्तमान स्तरों को पार किया जाय, तब सम्भावना यह है कि यूनियन इस योजना को श्रमिकों द्वारा स्वीकृत कराने में अयोग्य

अथवा असफल हो जाय। ऐसी परिस्थिति में यदि यूनियन कमजोर है अथवा उसी या निकट की कार्यक्षेत्रता में एक प्रतिद्वन्दी यूनियन बनी हुई है, तब यह सम्भव है कि वह परिस्थिति का लाभ उठावे और उक्त प्रयत्नों को कार्यान्वित होने में असम्भव बना दे। फिर भी जब प्रोत्साहन वेतन साधारण स्तर से नीचे पर ही मिलना प्राप्त हो जाता है और बढ़ोत्तरी के कारण प्रशंसनीय अन्तर दिखाई देता है तब प्रोत्साहन योजना श्रमिकों में उल्लेखनीय वर्ग में भी रुचि पैदा करता है और शीघ्र ही हर दृष्टिकोण से एक लाभान्वित सुझाव बन जाता है। जैसे लम्बी छलांग लगाने के लिए एक कदम पीछे हटा जाता है, उत्पादन बढ़ोत्तरी के लिये इसी प्रकार की प्रक्रिया अपनानी चाहिये। परन्तु इसके बगैर अतिरिक्त उत्पादन भी सम्भव नहीं होता, पूर्णतः पूर्व स्थिति बनी रहती है अथवा घटोत्तरी होना भी सम्भव है और किसी भी प्रकार का विश्वास पैदा करना अत्यधिक कठिन हो जाता है। प्रोत्साहन योजना को सफल बनाने में श्रमिक के जीवन स्तर को सुधारने की इच्छा आधारभूत प्रेरणादायी है, परन्तु इस प्रेरणा को कार्यान्वित होने के पहले श्रमिक को इस बात से सहमति होनी चाहिये कि योजना दूसरे माध्यमों द्वारा उसके लाभ को समाप्त नहीं किया जायगा और इसे कुछ अन्य बुराइयां अथवा शोषण के भिन्न स्वरूप को लागू करने के लिए एक अस्थायी बचाव के रूप में नहीं अपनाया जायगा, विशेषतया बहुत से श्रमिकों के मन में यह संदेह है कि एक बार काम के बोझ को बढ़ाने पर नियोजक की यह मनोवृत्ति पायी गई है कि वह इस बढ़े हुये काम को बाद में साधारण काम मानने लगता है। इसे अच्छे सम्बन्धों द्वारा बुद्धिमत्ता पूर्ण संचार द्वारा व्यवस्था, यूनियन के साथ ठेके द्वारा और दीर्घकालीन नीतियों द्वारा दूर करने की आवश्यकता है, साथ ही सामग्री के एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने, उपकरणों की कुशलता, मशीनों का बन्द हो जाना भी श्रमिक द्वारा लगाये गये परिश्रम के मापांकन में रोड़ा नहीं बनना चाहिये। यह सर्वसाधारण रूप से कुछ काल के बाद एक स्थायी प्रोत्साहन वेतन की अदायगी को दृढ़ करेगी।

असाधारण तथ्यों के प्रभाव को हटाने के लिये एक अच्छी योजना है, जिसे "पारितोषिक वेतन योजना (Premium Pay Plan)" कहते हैं। यह योजना अच्छी प्रकार से विदेशों में परीक्षित हो चुकी है। इस योजना के अन्तर्गत कार्य के वर्गीकरण और प्रकृति तथा कार्य के निभाने के अनुसार श्रमिक को एक निश्चित आधार के वेतन पर रखा जाता है। कार्य के निभाने के स्तरों को

वर्गस्टडी विशेषज्ञों द्वारा एक सप्ताह की अवधि में कार्य के मूल्यांकन किये जाने वाले कार्य-भाग पर निर्धारित किये जाते हैं। श्रमिक को तभी प्रोत्साहित किया जाता है कि वह कार्य की कुशलता कार्य स्थल पर प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राप्त करे। प्रशिक्षण के दौरान श्रमिक को उस आधार पर वेतन दिया जाता है, जिसके अन्तर्गत वेतन की बढ़ोत्तरी के क्रमबद्ध रूप उसकी प्रशिक्षण की प्रगति से सम्बन्धित हैं जो कि उसकी कार्य के निभाने के स्तर के प्रोत्साहन हेतु की जाती है और जिसे तकनीकी रूप से 70M' hour level कहा जाता है। जब श्रमिक दो सप्ताह की अवधि के लिए 70M' hour level प्राप्त कर लेता है और अपने सुपरवाइजर को यह समाधान करा देता है कि वह इसे बनाये रख सकता है तो श्रमिक को कार्य निभाने के स्तर के अनुसार उपयुक्त वेतन स्तर पर रखा जाता है। जब कार्य निभाने के अगले स्तर को प्राप्त किया जाता है और उसी समान दो सप्ताह के लिए बनाये रखता है तब श्रमिक को ऊँचे स्तर के लिये ठेका करने की स्वतन्त्रता है, जिसमें कि इस ऊँचे स्तर के अनुकूल ऊँचे वेतन दिये जाते। यह पद्धति वेतन के स्तर को एक प्रकार का स्थायित्व प्रदान करती है और बाहरी हस्तक्षेप जैसा कि मशीन का बिगड़ना अथवा छुट्टियों का समावेश करती है। सर्व साधारण मशीन का बिगड़ना अथवा छुट्टियाँ श्रमिक को पीसरेट हेतु दण्डित करतीं। इस प्रकार श्रमिक को अपने अभ्यास कार्य के सुर के अनुसार अपने आपको ढालने के लिये कुछ अधिक स्थान प्रदान करती हैं और वेतन में उन पहलुओं के प्रभाव को रोकती हैं जो कि श्रमिक के नियंत्रण के बाहर है। प्रोत्साहन वेतन की कोई भी पद्धति क्यों न हो, यह देखना अनिवार्य है कि श्रमिक पैसे के पीछे भागने के अन्तर्गत अपने आपको अधिक न खपा दे। कुछ पीस रेट वेतनों की पद्धति का यह अनुभव है, उदाहरणार्थ-- बाम्बे डाक्स। इन पद्धतियों ने उत्पादकता की वृद्धि के साथ श्रमिकों की आय में सुधार किया, परन्तु इन पद्धतियों का श्रमिकों के स्वास्थ्य के ऊपर भारी परिणाम दिखाई देने लगा। यह अमानुषिक है और मनोबल को तोड़ने वाला है। हम इसलिए यह सिफारिश करते हैं कि जहाँ कहीं भी परिणाम हेतु वेतन की पद्धति को अपनाया जाय, अधिकतम सीमा निर्धारित होनी चाहिए, जिसके आगे श्रमिक दुहरा उत्पादन के लिए कुछ भी प्रोत्साहन वेतन नहीं मिलना चाहिए। यह उस संदर्भ में है, जिसमें कि वर्कस्टडी पद्धति में दरों को निर्धारित करने के सिद्धान्त व्यापक रूप में निर्धारित होनी चाहिए। वर्तमान काल में टाइम एण्ड मोशन स्टडी का उपयोग श्रमिक का औसतन और स्टैन्डर्ड कार्य

निभाने के निर्धारण के लिये अपनाया जाता है, इस पद्धति को प्रबन्धिका द्वारा सुपरविजन की पद्धति के अध्ययन के लिए उपयोग करना चाहिए। हम पहले कह चुके हैं कि वैज्ञानिक स्तर का प्रोत्साहन वेतन के प्रारम्भ होने वाले बिन्दु को निर्णय करने के लिए कोई स्थान नहीं देना चाहिये, यह बिन्दु ऐतिहासिक स्तर द्वारा दी गई रेखा से कम होनी चाहिये, परन्तु कार्य निभाने के अधिकतम स्तर जिसके आगे कार्य करने पर श्रमिक के स्वास्थ्य पर खराब प्रभाव पड़ेंगे, को निर्धारित करने के लिए दरों को निकालने के सिद्धान्त में उपयुक्त परिवर्तन के साथ उपयोग किए जा सकते हैं। भिन्न-भिन्न प्रोत्साहन, जिनके साथ प्रोत्साहन वेतन जुड़ा हुआ नहीं है, जैसे कि कार्य सुरक्षा, कार्य समाधान, कार्य से सम्बन्धित सामाजिक सम्मान आदि भी उत्पादकता को बढ़ाने में पर्याप्त मात्रा में भूमिका निभाते हैं, यह प्रोत्साहन योजना के साथ होते हैं अथवा उनके बिना ही होते हैं। वे सभी पहलू जो कि अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों को बनाने के लिए लाभदायक हैं और जिनका हम पहले विस्तृत उल्लेख कर चुके हैं, इस संदर्भ में अधिक आग्रह के साथ लागू होते हैं। श्रमिक को प्रबन्ध में भागीदार के रूप में व्यवहार किया जाना चाहिए, न कि उनके ऊपर केवल मात्र अफसराना व्यवहार हो। उसके अधिकारी शोध्याय, अच्छी रूप रेखा, भेष भूषा, अंग्रेजी बोलने वाले तथा कागजों पर हस्ताक्षर करने वाले भद्रपुरुष नहीं होने चाहिये वरन् मेहनत से काम करने वाले होने चाहिये। भारतीय मजदूर संघ की यूनियन का यह अनुभव है कि इन्जीनियरिंग और केमिकल्स के कारखानों में जहां पर उच्च-स्तरीय अधिशासी वर्ग कारखानों में खड़े होकर बड़ी कुशलता से कार्य को समाप्त करता है, और अपनी बाहों को चढ़ाये रहता है और दूसरे श्रमिकों के समान कपड़े गन्दा करता है, उत्पादकता बिना रोक टोक के बढ़ जाती है। श्रमिक हमेशा अपने आपको उस अधिकारी के अनुपात में अधिक महत्वपूर्ण और उच्चस्तर का अनुभव करता है, जिसका उत्पादन क्षेत्र में कभी भी परीक्षण नहीं हुआ है। ऐसा ही उन मामलों में भी होता है, जब प्रबन्धिका कार्य के एक उचित प्रवाह को बनाने में असफल होती है अथवा अच्छे औजार और मशीनें प्रदान नहीं करती। वह इस प्रकार से असम्बन्धित प्रबन्ध से उत्पन्न होने वाले सभी सुझावों को संदेह से देखता है, श्रमिक को उसके कार्य पर उसकी आवश्यकताओं के बारे में लगातार परामर्श लेना चाहिये और सहायता की जानी चाहिये।

इस संदर्भ में कार्य मूल्यांकन के समय विशेष देखदेख भी सहायक होती है, विशेषकर एकत्रित किये गये आंकड़ों का विस्तृत उपयोग होना चाहिए,

अभी भी भारत में ऐसा नहीं किया जाता, जहां पर विदेशों के ऐतिहासिक आंकड़े ही प्रयोग में लाये जाते हैं। श्रमिक को यह जानकारी होनी चाहिये कि किस प्रकार से प्रयत्न, शांति, दृष्टिकोण, आराम और विश्राम, हस्तक्षेप और देरी के विजय कार्य मूल्यांकन में प्रभावी होते हैं। कार्य-मूल्यांकन के भिन्न-भिन्न पद्धतियों में जैसा कि टाइम स्टडी रेफरेन्स डाटा, सिन्थेसिस डाटा, बेसिक मोशन डाटा (पहले से निर्धारित टाइम मोशन स्टडीज, आधारभूत मैथेड टाइम मेजर मेन्ट), हरएक मामलों की स्थितियों के अनुसार अथवा कार्य की प्रकृति के अनुसार उचित पद्धति के चयन को यूनियन को सूचित करना चाहिये। कार्य सम्बन्धी टेकनिक्स, सुरक्षा, कच्चा माल, उपकरण और प्रक्रियाओं की भरपूर प्रशंसा वर्कस्टडी विशेषज्ञों के कार्य की प्रारम्भिक कार्यवाही का एक हिस्सा है। जब श्रमिक यह जानता है कि उसका दर एकाएक नहीं लगाया गया है, बल्कि उसके लिए विश्राम और थकान का उचित प्राविधान किया गया है तो यह कार्य मूल्यांकन के लिए सम्मान करने लगता है, अन्यथा स्टाप वाच द्वारा लिए गए आकड़े उसके मन पर भयंकर प्रतिक्रिया करते हैं, मुख्यत: स्तर निर्धारित करते समय ऐसा होता है। परन्तु रख रखाव वाले काम में प्रबन्धिका को श्रमिकों के मुकाबले कुछ आगे ही रहना चाहिये।

वस्तुत: प्रबन्धिका को श्रमिकों के घरेलू चिन्ता में भी भागीदार होना चाहिये। एक सहृदय सुपरवाइजर अथवा प्रवन्धक, जो श्रमिक के परिवार के किसी भी अस्वस्थ सदस्य को देखने जाता है, उसके सुख दु:ख में भाग लेता है, आवश्यकता के अवसर पर वित्तीय और अन्य सहायता प्रदान करता है, स्वभावत: श्रमिक को प्रिय लगता है और श्रमिक सम्मान देता है। वे सभी प्रेरणायें जो उत्पादन को बढ़ा सकती हैं, काम के लिये और मनुष्य के लिये स्नेह ही सर्वोच्च और अत्यधिक विश्वासनीय हैं। धन का प्रोत्साहन वस्तुत: गौण है और ऊपर लिखे पहलू से प्रशंसा के रूप में स्वभाविक रूप से प्रस्फुटित होना चाहिये, जहां स्नेह भाव स्थापित होता है, उत्पादकता व्यक्तिगत त्याग द्वारा परिपूर्णता तक पहुंचता है। स्नेहभाव के पश्चात जिम्मेदारी के भाव का अनुगामी होगा। दूसरी ओर केवल मात्र धन की आवश्यकताओं से खिलवाड़ के अन्तर्गत मालिक-नौकर सम्बन्ध में विरोधी भाव निहित है। मातृभाव और बन्धुभाव कारखाने को एक व्यापक परिवार के रूप में बनाती है, जैसा कि एक बार भारतीय ग्राम था और जो अपनी वर्तमान विनष्टप्राय स्थिति में भी कुछ हद तक विद्यमान है, और

जो समाज का जीवमान और स्वाभाविक अंग अथवा इकाई था, जहाँ पर कोई भी ऐसे प्रमुख उथल पुथल नहीं होते, जहाँ सम्पूर्ण उत्पादन समाप्त हो जाय, क्योंकि भिन्न-भिन्न गतिविधियों के आपसी सम्बन्ध अच्छी प्रकार से व्यवस्थित थे और हैं, तथा ग्राम की समृद्धि के साथ सभी समृद्ध होते थे, ग्राम के दुख में सभी दुखी होते थे, इस भाँति आधुनिक उद्योग अथवा कारखाना भी समाज का एक जीवमान अंग अथवा इकाई बन जाना चाहिए। तभी संघर्ष के स्थान पर सहयोग उत्पन्न होगा और वितरण उत्पादन की एक स्वाभाविक गतिविधि बन जायगी।

## उत्पादकता लाभ में भागीदारी और अभिनवीकरण

हमने दो विचार अर्थात् उत्पादकता लाभ में भागीदारी होना और अभिनवीकरण--दोनों को ही इकट्ठा लिया है, यद्यपि ये दोनों राष्ट्रीय श्रम आयोग द्वारा दिये गये प्रश्नावली में इकट्ठे नहीं दिये गये हैं। दोनों के समान ही पक्ष हैं अर्थात्--अर्थशास्त्रीय प्रक्रियाओं से उत्पन्न बचत के लक्ष्य। हम पहले ही प्रस्तुत कर चुके हैं कि इन बचतों की व्यापकता उस पद्धति से प्रभावित होगी, जिसके अन्तर्गत उन्हें अर्थव्यवस्था की बढ़ोत्तरी में अन्ततोगत्वा उपयोग किये जायेंगे। उत्पादकता से उत्पन्न होने वाले लाभ को किस सीमा तक श्रमिक को छोडना चाहिए और किस हद तक अभिनवीकरण की प्रक्रिया को स्वीकार कर कष्ट सहने चाहिए-- वाले प्रश्न का उन भिन्न-भिन्न पूंजी सम्बन्धी निर्णयों के संदर्भ में ही निर्णय किया जा सकता है, जो कि एक विशेष प्रकार के कष्टों को सहने के अन्तर्गत किए गए हों। वास्तव में हम इस तर्क को इससे आगे बारम्बार नहीं दुहरा सकते, यह बिलकुल सम्भव है कि बहुत सी विशेष परिस्थितियों में उत्पादकता में बढ़ोत्तरी के विशेष योगदान नई पूंजी के लगाने पर सुधरी हुयी टेकनालाजी के लागू करने अथवा सुधरी हुयी प्रबन्धकीय कुशलता के लागू करने के अन्तर्गत हुयी हो। श्रमिक केवल मात्र इसमें सहयोग करने वाला पक्ष हो। परन्तु इससे यह तथ्य नहीं निकलता कि उत्पादकता के लाभ पूंजीपति अथवा तकनीकी विशेषज्ञों और प्रबन्धकों को ही दिये जांय। तो भी पूंजी और तकनीकी ज्ञान व्यक्तियों को समाज की प्रक्रियाओं के अन्तर्गत दिये जाते हैं और इस संदर्भ में तुरन्त अथवा कुशल तथ्यों के मुकाबले में सामाजिक उद्देश्यों की आवाज अधिक होती है। वितरण में वास्तविक विवाद खपत और बचत में है अथवा

उत्पादन हेतु पूंजी के पुनः लगाये जाने वाले कार्यक्रम के दावे का तात्कालिक खपत के ऊपर होगा। यदि यह कार्यक्रम रोजगारमूलक हैं, जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, तब श्रमिकों को बचत द्वारा लगाई गयीं पूंजी के लिये खड़ा होने हेतु कह सकते हैं। पूंजी और श्रम में अपने अपने हिस्से को निर्धारित करने वाली पद्धति के सम्बन्ध में वही सिद्धान्त लागू हो सकता है, जो हम पहले प्रस्तुत कर चुके हैं, जब हम वेतन नीति और औद्योगिक सम्बन्धों की चर्चा कर रहे थे और जहाँ पर राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद के फारमूले का उल्लेख किया था। इस भगीदारी के समूचे पक्ष में वेतन के अन्तर के बारे में हमारे सिद्धान्त ठीक उतरते हैं। उत्पादकता लाभ के विवेचन के संदर्भ में जो उन तथ्यों की महत्ता के अनुसार हैं, जिनके एक सामूहिक प्रयत्न में बिलीनीकरण के अन्तर्गत अन्तिम सुधार होता है, हमारा यह विचार है कि ऐसा प्रयत्न नहीं किया जाना चाहिये। यह अनावश्यक है तथा बाल की खाल निकालने के समान घातक उसी प्रकार हो सकता है, जैसा पैतृक सम्पत्ति के बाँटने पर विवाद उठते हैं। सभी का मूल उद्योग (Mother Industry) के साथ समान सम्बन्ध है और समान हक है तथा जिसके कार्यकलाप अभिभाजित है। इस प्रकार के विवेचन के सही उपयोग, जो कि उत्पादन के आगामी कार्यक्रमों के बारे में प्रस्तुत किया जाता है, वस्तुतः आपरेशन रिसर्च के विषय से सम्बन्धित है अथवा उसमें निहित है, क्योंकि आपरेशन रिसर्च सर्वोच्च प्रकार की पद्धति है, जो कि गणित की सहायता से वर्तमान विज्ञान ने भिन्न भिन सम्भावनाओं और विकल्पों के बारे में प्रस्तुत किया है तथा जो श्रम, मशीन, सामग्री तथा धन सम्बन्धी नियंत्रण और प्रबन्ध में उत्पन्न होते हैं। इसकी विशेष पद्धति परिस्थितियों का वैज्ञानिक नमूना बनाकर नियंत्रण की व्यूह रचना बनानी है जो भिन्न भिन्न प्रकारों के व्यवहारों को मापांकन करने, परस्पर तुलना करने और भावी परिस्थितियों के अनुमान लगाने से सम्बन्धित है। इसके भिन्न भिन्न तकनीक ये हैं :—Linear Programming, Programme evolution and Renew techinque (PERT) जो कि Optinum path और critical path, in put—out put analysis। श्रमिक की एक विशेष औसत आय को ध्यान में रखकर तथा एक विशेष परिस्थितियों के चित्रण के अन्तर्गत दोहजार देने के उद्देश्यों को प्रमुख स्थान प्रदान करने के अन्तर्गत किसी कारखाने के सम्बन्ध में पूंजी लगाये जाने वाले निर्णय से पूर्व इस प्रकार के विवेचन की जानकारी होनी चाहिये। राष्ट्रीय स्तर की इसी उद्देश्यों की पूर्ति समष्टिगत अर्थव्यवस्था macro economics के लागू करने से प्राप्त हो सकता है। सांख्य

अर्थशास्त्र economitrics अब हमें करीब करीब सभी आर्थिक सम्बन्धों के बारों में स्तैतिस्कीय विवरण दे सकता है। किसी कारखाने से सम्बन्धित उत्पादन और इन्वेन्टरी सम्बन्धी निर्णय भी सरल सांख्य अर्थशास्त्र के लागू करने से किये जा सकते हैं। किसी एक कारखाने अथवा उद्योग सम्बन्धी लगाई जाने वाली पूंजी के निर्णयों के बारे में निर्णय सम्बन्धी प्रक्रिया में आवश्यक श्रमिकों की संख्या का गणितीय नमूना बनाकर परिणाम निकालना कठिन नहीं है। यह निर्णय अपेक्षित परिणामों के संदर्भ में लगाई जाने वाली पूंजी की संख्या और पद्धति दोनों के बारे में हो सकती है। हम यह विचार रखते हैं कि उत्पादकता लाभ का भिन्न भिन्न कारणोंवश विवेचन इस संदर्भ में नहीं लाना चाहिए, ताकि उत्पादकता लाभ में भागीदारी होने पर प्रभाव डाले। ध्यान रहे कि आपरेशन रिसर्च पद्धति भविष्य सम्बन्धी विकल्पों के निर्धारण के लिए है। पूंजी की मल्कियत अथवा तकनीकी और अन्य ज्ञान की स्थिति इन सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा समाज से अधिक धन, सुविधा अथवा सुविधायें लेने के लाइसेन्स के रूप में नहीं देखना चाहिए। इन वस्तुओं के अधिग्रहण करने वाले भगवान और समाज के ट्रस्टी हैं और भगवान तथा समाज ही वास्तविक एवं कुशल मालिक है, उन्हें अपने सम्पूर्ण अधिकार स्वामी के सेवार्थ प्रस्तुत करनी चाहिए। उन्हें इन पक्षों के लिए समय समय पर समाज द्वारा प्रस्तुत मान्ताओं के अनुसार पारितोषिक मिलना चाहिए और मिलेगा। मौलिक विचार जो इन मान्यताओं के लिए हैं, के बारे में वेतन अन्तर वाले विषय पर चर्चा करते समय प्रस्तुत की चुकी है। जब एकवार उत्पादकता लाभ में भागीदार होने के बारे में इन दो तथ्यों पर निर्णय लिया जा चुका है, अर्थात एक ओर तत्कालिक खपत और दूसरी ओर विकास हेतु बचत का पूंजी के रूप में लगाना (यह विभाजन विकास परियोजनाओं के रोजगार देने वाले सम्मान पर निर्भर करते हैं, जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है) तत्कालिक खपत के लिए पृथक किए गए भाग हमारे द्वारा प्रस्तुत किए गए सुझावों के अलावा उन योजनाओं के लिये होंगे, जिन्हें हम दो भागों में बाटना चाहेंगे अर्थात् उपभोक्ता का अंश और श्रमिक का अंश। फिर भी हमारे द्वारा प्रस्तुत की गयी योजना के अन्तर्गत उपभोता का अंश पहले से ही पुनः पूंजी लगाने के अन्तर्गत पदा होने वाली रोजगार देने में निहित है, क्योंकि इस प्रकार के लागत सम्बन्धी निर्णय आय व वितरण के लिए होते हैं, जिनका स्वरूप रोजगार देने के लिए होता है तथा मूल्य स्तर की कटौती में होता है, इसलिये हमारे द्वारा प्रस्तुत योजना के अन्तर्गत उत्पादकता लाभ का तात्कालिक खपत

सम्बन्धी भाग का पूरा हिस्सा उन लोगों में वितरण के लिए उपलब्ध है, जिन्होंने इस लाभ को प्राप्त करने के लिए काम किया, वेतन अन्तर के लिए अपनाये गये मान्यताओं के आधार पर बितरण होना चाहिये। दूसरा भाग जिसे पुनः पूंजी के रूप में प्रयोग किया जाता है, उद्योग में उन व्यक्तियों को सेयर के रूप में मिलना चाहिये और जिसे एक कारखाना अथाव उद्योग की एक इकाई क्रमबद्ध श्रमिकीकरण की योजना की ओर उन्मुख एक विशेष स्तर पर अपने आपको पाती है।

अभिनवीकरण की योजना में उस विचार का व्यापक स्वरूप अपनाना चाहिए, जिसके अन्तर्गत किसी कारखाने अथवा उद्योग की एक इकाई को व्यापक परिवार के रूप में माना जाता है और ऐसा सभी कारखानों तथा एक ही उद्योग में काम करने वाली इकाइयों को इकट्ठा कर एक बड़े व्यापक परिवार के रूप में मानना चाहिये। अभिनवीकरण की योजना की व्यापक मान्यता योजनाधिकारियों से प्राप्त होना चाहिये, जिन्हें भिन्न भिन्न पक्षों को ध्यान में रखना चाहिये, जैसा कि सम्पूर्ण रोजगार प्रधान (यह .....infrostructure के अधिक स्पष्ट होगा), प्रतिरक्षा आवश्यकताओं (जो महत्व की औद्योगिक इकाई मे कुशलता लाने के सम्बन्ध में है) और व्यापक योजना की ब्यूह रचना जिसमें आयात उपकरणों के लिये भीतरी उपकरणों की डिजाइन और उत्पादन, आर्थिक उत्थान के क्रम आदि सम्मिलित हैं। अभिनवीकरण की ऐसी योजनाओं से जो लाभ समुदाय प्राप्त करेगा--का ऐसी स्थिति में ही निर्धारण होना चाहिये। इस विषय को अभिनवीकरण के लाभों को बांटने में न्यायिक निर्णय करते समय पुनः नहीं प्रस्तुत होना चाहिए। लाभ का नियोजन और श्रमिकों में वितरण की नीति को अपनाना चाहिए, जिसे वेतन अन्तर के अध्ययन में उल्लेख किया गया था, अर्थात् १५ वें श्रम सम्मेलन की मौलिक सिफारिशों की धारा २ को उस स्थान पर प्रगट नहीं होने चाहिये, जहां वह इस समय पाई जाती है, जैसा कि हमारे द्वारा प्रस्तुत योजना के अन्तर्गत सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन होने के पश्चात होगा। वर्तमान सिफारिशें विषय को मौदेबाजी के लिये व्यापक स्थान प्रदान करती हैं और इसलिये लगातार तथा दुबारा घटित होने वाली कठिनाइयों के लिये स्रोत प्रदान करती है। हम इस परिस्थिति को अधिक स्थायी और स्वस्थ पद्धति द्वारा बदलाना चाहते हैं, (अभिनवीकरण को अपनाने में यह धारा समस्या का प्रमुख केन्द्र अथवा स्रोत बनी हुई हैं)। जहाँ तक अभिनवीकरण

के लिये मौलिक और व्यापक कार्यवाही का सम्बन्ध है, प्रश्नावली का परिशिष्ट की शेष धारायें पर्याप्त उपयुक्त हैं और उन्हें बनी रहनी चाहिये। हमारे विचार में एक आवश्यकता है, जिसके अनुसार अभिनवीकरण के वर्तमान विचार प्रणाली में एक और दिशा जोड़ी जानी चाहिये। वर्तमान सिफारिशों का बोझ छटनी और कार्यभार सम्बन्धी नीतियों पर काफी प्रभावी है। इन पक्षों को तुच्छ और अस्पष्टवादों अथवा कागजी समझौतों में परिणित किया जाता है, जिन्हें वास्तविक स्वरूप देने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अभिनवीकरण के कार्यक्रमों को अपनाने के पश्चात व्यवस्थापिका ऐसे माध्यम व ढंग ढूढ़ती है कि अभिनवीकरण के अन्तर्गत पाये गये फालतू स्टाफ को निलम्बित करदे अथवा बर्खास्त कर दें। उन मामलों में जहाँ ऐसा नहीं किया जाता, जैसाकि सार्वजनिक क्षेत्र मे पाया जाता है और जहाँ प्रबन्ध कुशलता बहुत कम ही अपनायी जाती है, ऐसा पाया गया है कि फालतू स्टाफ सेवाओं को कमजोर बना देता है, जैसा कि पूर्व उल्लेख किया गया है। अभिनवीकरण द्वारा किसी भी श्रेणी अथवा विभाग में फालतू किये गये स्टाफ को कभी भी सही प्रकार का व्यवसाय अथवा लाभकारी और उत्पादकीय रोजगार अभिनवीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत नहीं दी जाती। इसे तात्कालिक अनिवार्य बोझ के रूप में ढोया जाता है, ताकि एक उपयुक्त समय पर इसे हल्का किया जा सके। ऐसा यह इसलिए है, क्योंकि अभिनवीकरण के निर्णय और इस निर्णय के पश्चात बदली हुई परिस्थिति के अन्तर्गत फालतू स्टाफ के बने रहने में मौलिक विरोध है। अभिनवीकरण शब्द का परिभाषा से ही यह अर्थ है कि स्टाफ के मामले में परिवर्तन। इसके द्वारा भिन्न भिन्न हस्तकलाओं में कमी प्रगट करना कुछ परम्परागत कार्यों, हस्तकलाओं, दृष्टिकोणों और सम्बन्धों को फालतू बनाना है। कार्य के तथ्यों और संगठनात्मक ढाँचे को बदलना है। यह एक नयी प्रकार की पद्धति है, जहाँ पर भिन्न भिन्न बलों के एक संतुलन से भिन्न दूसरे संतुलन की ओर परिवर्तन लाया जाता है। इसे ऊपरी परिवर्तनों द्वारा बड़ी कठिनाई से अपनाया जा सकता है। सामाजिक उद्देश्यों की प्राथमिकता के अन्तर्गत अभिनवीकरण को रोकना एक विषय है तथा यह कहना दूसरा विषय है कि इसे संगठनात्मक अनुशासन में मानवीय विचारों को लागू कर बिना किसी को कष्ट दिये प्राप्त किया जाना चाहिये। दूसरा विषय जो कि भारतीय श्रम सम्मेलन की सिफारिशें प्राप्त करने की कोशिश करती है, समस्या का कोई हल नहीं प्रदान करती। अभिनवीकरण की योजना के अपनाने पर वास्तविक निदान एक कारखाने में अथवा चालू इकाई में बड़ी कठिनाई से प्राप्त

की जा सकती है। हम इस विचार के हैं कि यदि औद्योगिक समिति अभिनवीकरण की योजना को अपनाना चाहती है तो इसे इस प्रक्रिया के नये मानकों के अन्तर्गत आवश्यक कार्य सामग्री, कुशलता, कार्य सम्बन्ध, व्यक्तियों की नियुक्ति के लिए अपने संगठन को इसके अनुरूप ढालने हेतु तुलनात्मक दृष्टि से स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए। इन मामलों के बारे में निर्णय करने हेतु उपयुक्त अधिकरण वर्कस् कमेटी अथवा संयुक्त प्रबन्ध समिति होगा, जिसके कि कार्य को हम लोगों ने औद्योगिक सम्बन्धों वाले प्रकरण में स्पष्ट किया है। उदाहरणार्थ--हमने कहा है कि किसी व्यक्ति को छटनी अथवा निकाल बाहर करने हेतु निर्णय वर्कस् कमेटी के सर्वसम्मति निर्णय से लिया जाना चाहिए। सम्पूर्ण संगठन से परिवर्तन अथवा ऊपर उठाने के प्रक्रिया में कुशल अन्तरण के लिए कुछ कार्य और व्यक्तियों का अनावश्यक हो जाना अवश्यभावी है। संगठन तथा व्यक्तियों की अच्छाई के लिए यह प्रश्न सीधी प्रकार से सुलझाया जावे, जिसमें कि उपयुक्त वैकल्पिक नौकरियाँ अथवा आंशिक बेकारी के लिए बेकारी का बीमा अथवा छटनी के लिए प्रभति क्षतिपूर्ति दी जा सकती है। हम अन्तिम तरीके को बहिष्कृत करना चाहेंगे, क्योंकि इसके द्वारा सक्षम शरीर वाले व्यक्तियों की छटनी कल्पित होती है आंशिक बेरोजगारी के आधार पर बेरोजगारी भत्ता कम से कम (जितना सम्भव हो) समय के लिए होना चाहिये और यह पिछली नौकरी के अनुरूप पूरा वेतन और मँहगाई भत्ते के समान होनी चाहिये। पुनः रोजगारी शीघ्र होनी चाहियें और पिछली रोजगारी की वेतन और सामाजिक सम्मान से कम नही होनी चाहिये। प्रत्यक्षतः यह उस कारखाने के लिए जो अभिनवीकरण के कार्यक्रम को अपना रहा है असंभव प्रतीत होता है परन्तु ऐसा करना उद्योग के लिए संभव हो सकता है और यह उद्योग की प्राथमिक जिम्मेदारी होनी चाहिये। आर्थिक संगठन के हमारे समूचे दृष्टिकोण में हम उस स्वीकृत सामाजिक पद्धति का रूप सम्मुख रख रहे हैं जिसको विस्तृत अथवा व्यापक प्रक्रिया एवं प्रणाली सम्बन्धी परिवार कहेंगे, इसे (जगत्वां जगत की कल्पना इससे परिभाषित होती हैं। अभिनवीकरण से पैदा होने वाली आंशिक बेरोजगारी के मामले में हम यह विचार रखते हैं कि पूरे उद्योग को एक इकाई के रूप में देखना चाहिये। हमें यह अवगत है कि उद्योग को राष्ट्रीय संगठन के अन्तर्गत एक मिली जुली इकाई मानने के विचार का आर्थिक अनुशासन के विचारों और नीतियों का व्यापक प्रभाव पड़ता है। हम इस पचिका के अन्तिम अध्याय में इस व्यापक पर पक्ष अपने विचार प्रस्तुत करेंगे। वेतननीति राष्ट्रीय पूंजी लगाये जाने वाले ढांचे के पक्षों

के अन्तर्गत हमने इस कल्पना के बारे में पहले ही अपने विचार प्रस्तुत किए हैं जो कि सार्वजनिक नीति, कीमतों और कर पद्धति, कार्य के अनुसार, प्रतिनिधित्व अथवा उद्योग सभा के अन्तर्गत आती हैं। सामाजिक आर्थिक ढाँचे पर हमारे विचारों के अन्तर्गत अभिनवीकरण के द्वारा तकनीकी नयी पद्धति का लागू करना भी उद्योग में निर्णय करने वाली गठन के रूप में प्रगट होती है। वह सामूहिक समिति के आधार पर एक प्रकार की औद्योगिक समिति बननी चाहिये अथवा यह और भी अच्छा हों कि यह एक औद्योगिक सभा के अन्तर्गत हो जो इस प्रकार के कार्यक्रम और विषयों को चालित करे। यदि यह आवश्यक हो तो उद्योग को इस उद्देश्य के लिए एक औद्योगिक फन्ड खड़ा करना चाहिये जिसका उपयोग कल्याण, बेरोगारी, सहायता के लिए उपयोग किया जा सके और इससे भी बढ़कर उपयुक्त तकनीकी, वैज्ञानिक और संगठनात्मक शोध के खर्चे का वहन कर सके जो कि तकनीकी और उत्पादकता क्रान्ति की प्रगति को सहज और गतिशील बना सके। अभिनवीकरण अथवा उत्पादकता के अन्य महत्व पूर्ण पद्धतियों से उठने वाले श्रमिक और सामाजिक विषयों को हल करने के लिये ढाँचे के परिवर्तन सम्बन्धी निर्णय लेना होगा। विज्ञान का प्रभाव इस प्रकार की सामाजिक आर्थिक गठन के बनाने पर समावेश किया जा सकता है और इसका स्वागत किया जा सकता है। इस सामाजिक आर्थिक गठन के अन्तर्गत भिन्न भिन्न उद्योग कर्मेन्द्रियों के समान होंगे।

## स्वाचालितीकरण

हमारे देश में स्वाचालितीकरण के प्रश्न पर व्यापक चर्चा हो रही है हम इस विषय में और कुछ नहीं जोड़ना चाहते। समूचे वाद-विवाद में दो प्रचलित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं, एक ओर कुशलता और दूसरी ओर छटनी। नियोजक यह विचार प्रत्तुत करते हैं कि कम्प्यूटर्स को चालित करने के परिणाम स्वरूप कोई छँटनी नहीं की जायेगी पर परन्तु यह उनका खराब तथ्यों को मीठी वाणी में प्रस्तुत करने का तरीका है। कम्प्यूटर्स का अस्तित्व ही रोजगारी की दशा पर काफी प्रभाव डालती है एक कम्प्यूटर्स बिना किसी एक काम पर बहुत बड़ी संख्या में लोगों को रोजगारी निश्चित ही प्राप्त होगी वर्ना उसके कि जब इसका उपयोग किया जायेगा। यदि ऐसा नहीं है तो यह (कम्प्यूटर) अपने उद्देश्य को ही असफल कर देता है। प्रत्यक्ष रूप में अथवा छिपी हुई बेरोजगारी अथवा

स्वाचालितीकरण के द्वारा श्रमिक एक कार्य से दूसरे कार्य पर तवादला होने को मना नहीं किया जा सकता अर्थात् इसे स्वीकार करना होगा। यह महत्वपूर्ण है कि किसी भी नियोजक ने दो भिन्न भिन्न परिस्थितियों में जो कम्प्यूटर के प्रयोग पर अथवा न प्रयोग करने पर पैदा होती है के लिए स्टाफ आवश्यकताओं के तुलनात्मक संगठनात्मक विवरण प्रस्तुत नहीं किये हैं। इस प्रकार के तथ्य प्रस्तुत करने वाले नियोजक श्रमिक को अथवा श्रमिकों की स्वाचालितीकरण विरोधी समिति का समाधान करने हेतु निमन्त्रण देती ताकि ऊपर उल्लेख किए गए दो संगठनात्मक विवरणों का बारीकी से निरीक्षक कर सकती और इन तथ्यों के आधार पर वाद-विवाद आगे बढ़ सकता। उन्होंने ऐसा नहीं किया क्योंकि उनकी प्रस्तावना ही आधारभूत बेईमानी की है स्वाचालितीकरण के लिए अधिक गम्भीर और ईमानदार तर्क इन्प्रास्ट्रक्चर (Inprastructer) अथबा आधारभूत उद्योगों में इसकी आवश्यकता है जहाँ पर रोजगारी की स्थिति पर कई गुना अधिक प्रभाव का अनुमान लगाया जाता है अथवा इसकी आवश्यकता आयात वस्तुओं के स्थानापन्न में अथवा निर्यात सम्बन्धी उद्योगों में स्पर्धा के आधार पर अथवा परिरक्षण उद्योगों में है। वर्तमानकाल में कम्प्यूटराइजेशन के उपयोग के लिए तर्क स्तैतकीय अथवा गणित के उन कार्यों के लिए प्रस्तुत की जा रही हैं जहाँ या तो जहाँ कम्प्यूटर की सहायता बिना आंकड़े नहीं लगाये जा सकते अथवा आंकड़ों का मनुष्य द्वारा सर्वोच्य पद्धतियों के उपयोग से करने पर इतना लम्बा समय लेता है कि जब विश्लेषण के परिणाम उपलब्ध होते हैं तब तक उसकी उपयोगिता ही समाप्त हो जाती है ध्यान रहे कि मनुष्य द्वारा सर्वोच्च आकड़े लगाने वाले ढंगों में दफ्तर के आंकड़े लगाने वाले साधारण उपकरण भी शामिल हैं। कम्प्यूटर काल को शीघ्रतम लाने के लिए यदि कहीं जल्दबाजी हैं तो सुरक्षा क्षेत्र में इसकी ओर सर्वप्रथम ध्यान देना चाहिए। देश की स्वन्त्रता सभी प्रकार के बलिदान से ऊपर है इसलिए युद्ध गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में जहाँ पर कम्प्यूटराइजेशन के कारण विजय और हार के साथ भारी नुकसान तक अन्तर पड़ता हैं, स्वाचालितीकरण को हरी झन्डी दी जानी चाहिये। शेष सभी क्षेत्रों में निर्यात करने हेतु उद्योगों के तर्क कोई तथ्य नहीं रखते। चीनी उद्योग के उदाहरण का उल्लेख करते हुए हम पहले ही संकेत कर चुके हैं किस प्रकार पूरी अर्थ व्यवस्था को वास्तविक रूप से निर्यात सम्बन्धी दिशा दी जा सकती है। कम्प्यूटराइजेशन के उपयोग से बनाई गई वस्तुओं का प्राश्चात्य देशों से मुकाबला करने वाली स्थिति अभी बहुत दूर है। पूरे भारत में

पचास कम्प्यूटरों के मुकाबले में इंगलैण्ड के पास २ हजार सात सौ कम्प्यूटर्स हैं। एक वर्ष पूर्व यू० एस० ए० के पास ४३ हजार से अधिक कम्प्यूटर्स थे और कोई नहीं जानता कि वह देश शीघ्र क्रान्ति में जेट गति की गतिविधियों से कितना तेजी से आगे बढ़ रहा है। इन्फ्रास्ट्रक्चर (Inprastructure) में कम्प्यूटर्स के उपयोग के बारे में एक और तथ्य प्रस्तुत किया जाता है जिसके अनुसार इसका उपयोग भूमि को अधिक स्थिर रूप से और बहुतायत उपजाऊ बना देगी जो कि सिंचाई की पद्धतियों की डिजाइन, फसल की भविष्यवाणी गति को बढ़ाने, पेड़ लगाये जाने और फसल लगाये जाने वाली भूमि में फसलों और क्रमबद्धता को नियन्त्रण करना, मौसम के बारे में भविष्यवाणी कर सहायता प्रदान करना और मौसम तब्दीली के तथ्यों को क्रमबद्धता के अनुसार नियन्त्रण करना शामिल है। हम यह प्रकट करते हैं कि कम्प्यूटर के इस प्रकार चयन किये गये उपयोग से राष्ट्रीय और उत्पाद में वृद्धि होगी और अर्थ व्यवस्था में श्रमिकों को उच्चे सही वेतन देना संभव होगा। परन्तु यह तर्क जहाँ तक इस देश में प्रस्तत करने का प्रश्न है जो उस विक्रेता के समान है जो कम्प्यूटर के बेचने पर तुला हुआ है वनस्पति एक अर्थशास्त्री अथवा नीति निर्धारित करने वाले विशेषज्ञ के जो योजना के नमूनों को अन्तिम रूप देने के पहले सभी प्रकार की आर्थिक और सामाजिक कीमतों को ठन्डे दिल से हिसाब लगाता है। यू० एस० ए० में एक उच्चस्तरीय आयोग जिसका नाम है 'तकनीकी स्वाचालितीकरण और आर्थिक प्रगति पर राष्ट्रीय आयोग (The National Commission on lechonoloryad automation and economic prosms) ने इस तथ्य से इन्कार नहीं किया है कि स्वाचालितीकरण के कार्यक्रम को स्थगित करने से अर्थ व्यवस्था निश्चित ही अधिक रोजगारी प्रदान कर सकती है। भारतीय परिस्थिति में इस बात की आवश्यकता है सर्वप्रथम सम्पूर्ण रोजगारी का आधार प्रस्तुत किया जाय और तत्पश्चात् राष्ट्रीय आर्थिक व्यूह रचना के द्वारा एक असंतुलित स्थति से ऊंचे और अधिक उत्पादन वाले संतुलन की ओर क्रमबद्ध बढ़ा जाय। इस व्यूह रचना के अन्तर्गत भिन्न भिन्न उद्योगों को न्यायिक पक्ष प्रदान किया जाय जिसके परिणाम भारत में औसतत आदमी की उत्पादकता और वास्तविक आमदनी बढ़ सकेगी। स्वाचालितीकरण के समान उच्चस्तरीय तकनीकी उपयोगिता के लिए वास्तविक चिन्ता इस दूसरी और तत्पश्चात् क्रमों में आ सकती है इसलिए भारतीय उद्योग में कम से कम दस वर्ष के लिए स्वाचालितीकरण के आने पर कानूनी रुकावट लानी चाहिये। इसका सुझाव देते समय हमें यह विश्वास है कि एकबार

नागरिक क्षेत्र के किसी विभाग में कम्प्यूटर के लिये यदि दरवाजा खोल दिया गया तब यह दूसरे विभागों में भी अपना रास्ता बना लेगा। इसलिये स्वाचालितीकरण के ऊपर हमारा विचार अन्य ट्रेडयूनियन्स के समान हैं जो भारतीय उद्योग में हमारी आर्थिक प्रगति के इस दौर में अथवा उस समय तक जब तक सम्पूर्ण रोजगार प्राप्त नहीं की जाती स्वाचालितीकरण के लागू करने के विरोधी हैं। एकबार सम्पूर्ण रोजगार के प्रथम लक्ष्यों तक पहुंचने तक किसी उचित विधि पर वार्तालाप की जा सकती है।

## अन्य पक्षों की भूमिका

उत्पादन के भिन्न भिन्न तथ्यों से सम्बन्धित उत्पादकता की बढ़ोत्तरी में सरकार प्रबन्ध और श्रम, सभी को बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होगी। सर्व प्रथम सरकार की अपनी गतिविधियों से पूरी अर्थव्यवस्था के लिये उत्पादकता को बढ़ाने के लिये अग्रेसर होना पड़ेगा। इस उद्देश्य हेतु सरकार को अर्थव्यवस्था के कठिनाई से उपलब्ध तथ्यों को पहचानना होगा जैसे कि पूंजी, परिरक्षा सम्बन्धी कच्चामाल, भूमि, विदेशी मुद्रा आदि और अर्थव्यवस्था के लिये सबसे अधिक उत्पादन देने वाली पूंजी के ढांचे की योजना करना होगा जो कि पूरी रोजगारी तक पहुंचने के सर्वप्रथम सामाजिक लक्ष्य के एक रूप होगी। तत्पश्चात् सभी नागरिकों के जीवन स्तर में न्यायिक बढ़ोत्तरी से एक रूप होगी। इसे अपने नियन्त्रित मैकेनिज्म को बड़ी बुद्धिमानी से प्रयोग करना होगा और निम्नलिखित को ध्यान में रखना अनिवार्य होगा। वर्तमान पूंजीरत उपकरण के उपयोगके घटने की प्रक्रिया अभिनवीकरण की वास्तविक आवश्यकतायें, निरन्तर एक प्रकार की नीति द्वारा विदेशी बाजार को बनाना, वेतन और मूल्य नीति का लागू करना, श्रम और औद्योगिक नीति को लागू करना, आपूर्ति सम्बन्धी बजट, अच्छे इन्फ्रास्ट्रक्चर (Inprastracture) का विभाग करना, गुणात्मक शिक्षा, उत्पादन दिशा वाली कर नीति, और सामाजिक लेन देन में कुशलता, मितव्ययी और ईमानदारी का अपना उदाहरण प्रस्तुत करना और सेवाओं में से सभी प्रकार के भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद और आलस्य को दूर करना। पूरी अर्थव्यवस्था को उत्पादकता की दिशा प्रदान करने के लिये सरकार को वस्तुतः एक प्रमुख कार्य निभाना हैं। सरकार यह अपने उदाहरण और उचित गतिविधियों

द्वारा कर सकती हैं जो राष्ट्रीय विशेषताओं को प्रोत्साहन दे और साथ ही साथ अति अधिक उपयोगिता को ध्यान में रख और एक दृष्टि प्रदान कर वैज्ञानिक शोध की योजना द्वारा होगा। औद्योगिक अथवा कारखाने की योग्यता के लिए दिन प्रतिदिन के विस्तृत तथ्यों में प्रबन्ध को भी एक महत्वपूर्ण भमिका अदा करनी हैं। यह विशेष रूप से देखना चाहिए कि उत्पादन सम्बन्धी शेड्टलिंग (Scheduling) ठीक प्रकार से नियन्त्रित है, मनुष्य-मशीन-रेखाचित्र वैज्ञानिक विश्लेषण वेज्ञामिक ढंग से बनाया गया है और उचित उपयोग में लाया गया है, एक अच्छी प्रकार से डिजाइन की गई पद्धति और कार्य का अध्ययन किया गया है, और उसे ठीक रूप से चालू किया गया गया है श्रम मापांकन के विश्वस्थ आकडों पर ठीक प्रकार की प्रोत्साहन योजना बनाई गई है, और माल के प्रवाह सम्बन्धी चार्टस् विश्लेषण के उपयोग से प्रवाह में दूविधाओं को रोका गयाहै, आपरेशन रिसर्च के उपयोग से लागत, बजट, इनवेन्टरी, नियन्त्रण किया जाता है, उपयुक्त, व्यक्तिगत और पदोन्नति नीतियों को ठीक रूप से बनाये रखने के कारण श्रमिकों के मनोबल को बनाये रक्खा जाता है, औजार और उपकरणों को अच्छी प्रकार से डिजाइन किया जाता है, बाजार सम्बन्धी शोध और भविष्यवाणी अच्छी प्रकार से की जाती है और इन जानकारी प्राप्त तथ्यों के आधार पर गुणात्मक नियन्त्रण स्थापित किया जाता है, प्रशिक्षण और नैपुण्यवर्ग के कार्यक्रमों द्वारा लगातार बदलती हुई सामाजिक और श्रमिक परिस्थिति के अन्तर्गत निरीक्षण की गणात्मक स्थित को ठीक रूप से बनाये रक्खा जाता हैं जो कि व्यक्तिगत विकास कार्यक्रम के लिए मामलों पर आधारित और अध्ययन पर आधारित अपनाये जाते हैं, अवरोधक रख-रखाव और मरम्मत द्वारा मशीन की आयु और कुशलता की सुरक्षा की जाती हैं जो कि पूंजी की उत्पादकता की कुंजी है, अच्छे विशेषज्ञों द्वारा संचार और अनुमान सम्बन्धी जानकारी दी जाती है और बहुत सारे अन्य निर्णयों जो कि श्रमता-विश्लेषण, योजना और नियन्त्रण के अन्तर्गत आते हैं, जो सभी तथ्यों के व्यापक विश्लेषण द्वारा शीघ्र रूप से किये जाते हैं। प्रबन्धकों को भविष्य पर दृष्टिकोण रखना चाहिये और इस उद्देश्य हेतु, आर्थिक उत्थान के प्रोत्साहन के लिए शोध और विकास इकाई को अनिवार्य रूप से स्थापित करना चाहिए और उसे व्यवस्थित रूप से रखना चाहिये। यह उद्योग के भीतर एक प्रकार उपयोगी शोध है जिसके अन्तर्गत इसके कार्य और उससे होने वाले लाभ की पद्धति के मापांकन द्वारा उत्पाकता लाभ का आर० एण्ड डी० (R & D) के योगदान के सम्बन्ध के आधार पर व्यापक उद्देश्यों के लिए उपयुक्त नियन्त्रण

बनाया जा सकता है। वस्तुत: प्रबन्ध को उत्पादन दिशा प्रदान करने वाली योजनाओं पर काम करना चाहिये। ट्रेड यूनियन्स को विशेष रूप से सावधान रहना होना कि जब वह धीमे काम, नियम के अनुसार काम, अतिरिक्त काम पर प्रतिबन्ध अथवा अन्य काम रोको ढंग अथवा जोश को समाप्त करने वाले अभ्यास, के लिये जब वह सिफारिश करे तो वह संगठनात्मक अनुशासन से नियन्त्रित रहे ताकि इस प्रक्रिया में काम करने की आदत नष्ट न हो जाय। यह भारतीय मजदूर संघ की यूनियन्स का अनुभव है कि एक अनुशासित मन ट्रेडयूनियन अथवा प्रबन्ध गतिविधियों के लिये समान रूप से आवश्यक है और जब दोनों पक्षों द्वारा कोई स्थित ली जाती है जिसके अन्तर्गत अधारभूत स्वभाव के अनुशासन की आदतों को दूषित नहीं किया जाता तब यूनियन द्वारा नियम के अनुसार काम अथवा अन्य अभ्यासों के अन्तर्गत की गई स्थित का उत्पादकता पर कोई खराब परिणाम नहीं पड़ता। ऐसी परिस्थिति में श्रमिक केवल मात्र अपनी भक्ति भाव ओर आज्ञाकारी भाव को काम से हटाकर यूनियन के नियम के पालन के लिये बदल लेता है। इसलिए वह अपनी मानसिक क्षमताओं पर खराब प्रभाव नहीं पड़ने देता और ज्यों ही यूनियन उपयुक्त निर्णय लेती है श्रमिक अपनी क्षमताओं को पुन: काम पर लगा सकता है। एक जागरुक यूनियन इस प्रकार के कदम तभी उठाती है जब वह यह महसूस करती है कि उसके सदस्यों का लाभ अन्ततोगत्वा उत्पादकता से सम्बन्धित है और यूनियन उत्पादकता के मनोबल को स्थायी रूप से कम करने को बरदाश्त नही कर सकती। वस्तुत: इस महत्वपूर्ण भूमिका को प्रभावी रूप से निभाने के लिये ट्रेडयूनियन को एक तकनीकी विशेषज्ञ से सज्जित होना चाहिए। बहुत सी भूतकालीन यूनियन्स के पास केवल मात्र संगठनात्मक और कानूनी अंग रहे हैं भविष्य में यूनियन को एक तकनीकी अंग भी रखना चाहिये जिसके पास दिशा देने के अधिकार हों।

इस अध्याय को हम यह कर समाप्त करेंगे कि उत्पादकता अधिकांश रूप में दृष्टिकोण से है, वैज्ञानिक प्रकृति अथवा स्वभाव को पैदा करने से सम्बन्धित है वनस्पति इसके कि केवल मात्र निर्जीव मशीनों और कागजी कार-वाइयों के अनुसार अपने को ढाकने से सम्बन्धित है और उत्पादकता सम्बन्धी मोर्चे पर सक्रिय गतिविधियों में श्रमिक मनस्थिति और ट्रेडयूनियन आन्दोलन की शक्ति और गुणों को एक महान भूमिका निभानी है। इसलिये इस मनो

भूमिका को व्यापक रूप से सम्मानित किया जाना चाहिये और मानवमन के एकात्म ज्ञान द्वारा ठीक रूप से समझा जाना चाहिये जिसकी आधारभूत खोज आर्थिक उद्देश्यों के लिये ही नहीं है यद्यपि या स्पष्ट शब्दों में हमेशा उसको कार्यान्वित नहीं कर पाता है जिसकी ओर यह उद्देश्य बनाये हुये हैं। यहाँ अर्थशास्त्र को अन्य विज्ञानों से सम्बन्धित करने की आवश्यकता महसूस होती है भिन्न भिन्न उत्पादकता तरीकों के प्रभावी ढंगों को प्रस्तुत करने में हमारे द्वारा प्रस्तुत सामाजिक दिशा को इस रूप से बनाया गया है जो एक व्यापक राष्ट्रीय अभियान के लिये सर्वप्रथम आधारभूत प्रारम्भ करने का बिन्दु है और जो कि परम्परागत समाज को भविष्य की मान्ताओं के अनुसार बदलने की पेचीदा समस्या के लिये एक एकात्म पद्धति पर आधारित है।

भाग २ अध्याय १२

# श्रमनीति

## बोनस, भविष्य निधि अदायगी

प्रकाशक :–
भारतीय मजदूर संघ
२ नवीन मार्केट
कानपुर

मूल्य : तीस पैसे

# प्रस्तावना

राष्ट्रीय श्रम आयोग को भारतीय मजदूर संघ द्वारा प्रस्तुत किये गये "Labour Policy" नाम अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है। हिन्दी में इस पुस्तक के सभी २० अध्याय अलग-अलग पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये गये हैं।

आपातकाली स्थिति के अन्तर्गत कारावास की अवधि में इस अध्याय का अनुवाद आई० आई० टी० कानपुर के प्राध्यापक डा० भूषण लाल घूपड़ के सहयोग से किया गया है।

हम उनके प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं।

—रामनरेश सिंह

# * बोनस अदायगी का कानून *

बिना किसी दुराग्रह के हमारी पूर्व में कही गयी संस्तुति को जिसके अन्तर्गत बोनस को 'देरी से दिया गया वेतन' के रूप में उस अवधि तक माने जाने चाहिए जब तक असली वेतन और जीवन वेतन के बीच का अन्तर समाप्त नहीं हो जाता, उस अनुसार बोनस कानून में पूर्ण रूपेण संशोधन होना चाहिये। इस संदर्भ में कानून में निम्नलिखित परिवर्तन के लिये हम उल्लेख कर रहे हैं।

(१) कानून की धारा ३२ को अधिनियम से निकाल देना चाहिये, इस कानून के अन्तर्गत कर्मचारियों के कुछ वर्गों का उल्लेख है, जिन पर यह कानून नहीं लागू होता। बोनस पारतोषिक नहीं है, वरन् श्रमिकों का कानूनी हक है और बोनस पाने के हक को सभी श्रमिकों के लिए लागू होना चाहिए, बिना नियोजक की किसी प्रकार की बिशेषता के परन्तु प्रमुख रूप से प्रशासकीय तन्त्र के अन्तर्गत सरकारी नौकरों को छोड़कर।

(२) सामुहिक लाभ में से विकास की छूट अथवा विकास के लिये धनराशि की कटौती के लिये किन्चित भी अनुमति नहीं देनी चाहिए और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु धारा ६ सी उपधारा बी को हटा देनी चाहिए। यहाँ यह स्मरण रहे कि बोनस आयोग ने यह सिफारिश की है कि विकास हेतु छूटको पूर्व निर्धारित खर्चे के रूप में अनुमति नहीं देनी चाहिए। विकास की छूट के बारे में आयोग ने यह कहा है "अब हम विकास की छूट और विकास की छूट के कारण हुये बचत कर के प्रश्न पर आते हैं.....यह विशेष छूट कम्पनियों को नई मशीनरी लगाने के लिए प्रोत्साहन के रूप में होती है।

किसी एक वर्ष में जबकि बहुत सी मशीनें लगायी जाय, पूरे विकास की छूट के साथ साथ 'कानूनी मूल के साथ छूट' सहित पूर्व खर्चे के रूप में सम्मिलित करने से उपलब्ध फालतू धनराशि पूर्णरूपेण समाप्त हो जाय अथवा पर्याप्त मात्रा में कम हो जाय, जबकि वस्तुतः कारखाने के कार्यकलापों से काफी बड़ी मात्रा में लाभ हुआ हो, हमको ऐसा अनुभव होता है कि यदि विकास की छूट को पूर्व खर्चे के रूप में अनुमति नहीं दी जाती है तो यह ठीक होगा कि विकास की छूट के परिणाम स्वरूप कर में जो छूट होती है, बोनस फार्मूले के अन्तर्गत उसको अर्थात् आयकर और सुपर टैक्स को काट लेने के विचार को ध्यान में नहीं रखना चाहिए। इसका अथ है यह कि परिणाम स्वरूप विकास की छूट के एक भाग को पूर्व खर्चे के रूप में करने की अनुमति दी जा रही है, क्योंकि लाभ के एक भाग, जिस पर वस्तुतः कर नहीं दिया जाना चाहिये, पर कर काटा जा रहा है। कम्पनियों पर लागू आय कर और सुपर टैक्स की वर्तमान दरों के अन्तर्गत, जो कि ५० प्रतिशत है, विकास की छूट पर कर दी उचत उस धन राशि की ५० प्रतिशत होगी, इसलिए इसका प्रभाव यह पड़ेगा कि कम्पनी, टैक्स के लिये अतिरिक्त कटौती के द्वारा विकास की छूट पर ५० प्रतिशत के बराबर लाभ प्राप्त करेगी, जो (अर्थात् विकास कर) कि बोनस फार्मूलों की उद्देश्य पूर्ति के लिये पूर्व खर्चे के रूप में है।"

(३) बोनस आयोग की सिफारिशों के अनुसार केवल आय कर और सुपर टैक्स को पूर्व खर्चे के रूप में मानने की अनुमति देनी चाहिए और उसे ही सम्पूर्ण लाभ में से काटने की अनुमति देनी चाहिये। और इस उद्देश्य पूर्ति हेतु धारा ६ (स) में उचित संशोधन करना चाहिये और धारा २ (१२) को हटा देना चाहिए। सर टैक्स और अतिरिक्त लाभ कर और कोई भी दूसरे सीधे लगाये जाने वाले करों को पूर्व खर्चे के रूप में अनुमति नहीं देनी चाहिए। सुपर प्राफिट कर के प्रश्न पर विस्तृत चर्चा की गई है परन्तु अन्ततोगत्वा बोनस आयोग ने इसे अमान्य कर दिया है।

जहाँ तक सुपर प्राफिट टैक्स का प्रश्न है आयोग ने कहा है, "हम इस

विचार के हैं कि बोनस फार्मूले की उद्देश्य पूर्ति के लिये आंकड़ें निकालते समय सुपर प्राफिट टैक्स के कारण कोई भी कटौती नहीं करनी चाहिए। हमारे कारण निम्नलिखित हैं—

(१) सर्व प्रथम इसे मस्तिष्क में लाना होगा कि आयकर कानून के अन्तर्गत बोनस के रूप में दी जाने वाली तर्क संगत धनराशि को खर्चे के रूप में माना जाता है। (२) बोनस फार्मूले के अन्तर्गत आयकार और सुपर टैक्स को इसलिए काटा जाता है ताकि इन करों के धनराशि का हिसाब करने के पश्चत् पूजा और सुरक्षित कोष पर न्यूनतम रिटर्न निश्चित किया जा सके। (३) कम्पनीज एक्ट की धारा ३४६ (४) (डी) के अन्तर्गत सुपर प्राफिट टैक्स को अधिक अथवा असाधारण लाभ पर कर माना है, जैसा कि सरकार ने घोषणा की है। (४) यदि सुपर प्राफिट टैक्स को पूर्व खर्चे के रूप में माना जाय, क्योंकि बोनस रूप में दी गयी धनराशि पर सुपर प्राफिट टैक्स नहीं लग सकता और सुपर प्राफिट टैक्स अधिक लाभ पर कर के रूप में है, यह आवश्यक होगा कि बोनस के लिये निर्धारित धनराशि पर बोनस के कारण सुपर टैक्स की बचत को जोड़ें, परन्तु इसकी जोडना जरा कठिन होगा, क्योंकि सुपर प्राफिट टैक्स के आंकड़े निकालना अपने में ही पर्याप्त जटिल है। अतएव यह अच्छा होगा कि बोनस फार्मूले को अनवश्यक रूप से पेचीदा न बनाया जाय (५) सुपर प्राफिट टैक्स का पूर्व खर्चे के रूप में न काटने का एक और भी कारण है कि वह यह कर की अदायगी तभी होगी, जब शेष लाभ पर्याप्त मात्रा में हो, क्योंकि आय का वह भाग जो स्थायी कटौती के अतिरिक्त हैं, पर ही कर लगाया जा सकता है।"

(३) जैसा कि बोनस आयोग ने सिफारिश की है, पूँजी पर ७ प्रतिशत की दर से रिटर्न की अनुमति दी जाय और सुरक्षित कोष पर केवल ४ प्रतिशत की दर के रिटर्न की अनुमति दी जाय, इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कानून की सूची क्रमांक क्रमाक ३ में समुचित संशोधन किया जानाचाहिए।

जहां तक पूंजी और सुरक्षित धनराशि पर रिटर्न का प्रश्न है, आयोग ने कहा है "बोनस के लिये उचित फार्मूले पर विचार करते समय यह ध्यान रखना चाहिए और इस तथ्य पर आग्रह करना चाहिए कि उद्योग के साथ साथ श्रमिकों को भी यह लाभप्रद है कि पूँजी लगाने के लिए लोग होने चाहिये और उन्हें उद्योग में पूजी लगाने के लिये उचित लाभ की आशा होनी चाहिये परन्तु बोनस फार्मूले से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह करों की बढ़ोत्तरी के विरोध में पूँजी लगाने वालों को सुरक्षा प्रदान करेगा। विगत अनेक वर्षों की स्थितियों में जबकि योजनाओं के खर्चे को ध्यान में रखकर और इससे भी अधिक आपात्कालीन करके दरों में बहुत उढ़ोत्तरी हुयी है, जिसके परिणाम स्वरूप सभी प्रकार के जन समुदाय पर प्रभाव पड़ा है.....। हमारे सामने प्रस्तुत की गई याचिकाओं को ध्यानपूर्वक विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अदा की गयी पूजी पर रिटर्न का ७ प्रतिशत बोनस फार्मूले में पूर्व खर्चे के रूप में अनुमति दी जानी चाहिए। परिस्थितियों में पर्याप्त परिवर्तन हो गया है, जब फार्मूले को पूरे बेन्च ने बताया था। अदा की गयी पूजी पर रिटर्न की दरों में कुछ बढ़ोत्तरी के लिए अब समय आ गया है। हम यह विचार नही करते कि पूर्व खर्चे के लिए ७ प्रतिशत से अधिक रिटर्न की अनुमति दी जानी चाहिए। जो रिटर्न हम सुरक्षित कोष के ऊपर प्रस्तुत कर रहे हैं, अंशधारियों ( शेयर होल्डर्स ) को अतिरिक्त लाभांश ( Dividents ) पहुँचायेगा। उपलब्ध अतिरिक्त धन का अनुपात, जिसके बारे में हम सुझाव दे रहे हैं, बोनस उदायगी के पश्चात् कम्पनी के पास इस मात्रा में उपलब्ध होगा, जिसके अन्तर्गत अन्य वस्तुओं के साथ-साथ शेयर होल्डर्स को अधिक लाभ ( Dividents ) देने की सम्भावना होगी। ऊपर लिखे विषयों को ध्यान में रखकर फिर भी यह कहा जा सकता है कि वर्तमान श्रमिक वर्ग में प्रमुखतया करखाने में लाभ पैदा करने के लिये योगदान दिया है, जिसमें से सुरक्षित कोष को बनाया गया है और जिसमें कारखाने के लाभ पैदा करने की क्षमता को बढ़ाया है और इसे भिन्न भिन्न पक्षों में से एक पक्ष माना जाना चाहिये। यद्यपि यह निर्णायक पक्ष नहीं है, जिसके अन्तर्गत अदा की गयी पूँजी

के मुकाबले में सुरक्षित कोष पर कम रिटर्न देना है। इस विषय पर ध्यान पूर्वक सोचने के पश्चात हम इस विचार के हैं कि बोनस फार्मूले में अदा की गयी पूंजी के मुकाबले में सुरक्षित कोष पर रिटर्न के पूर्व खर्चे का दर कम होना चाहिये और इसे उस दर पर चालू रखना चाहिए, जिसके अनुसार सुरक्षित कोष पर रिटर्न आम तौर से दिया जाता है, जो वर्तमान फार्मूले के अन्तर्गत कार्यरत पूंजी के रूप में प्रयोग होता है और इसकी दर ४ प्रतिशत है।"

(५) यदि निर्यात से कमाई गयी आय पर छूट सीधे कर के सम्बन्ध में दी जाती है, तो इस प्रकार की छूट की धनराशि को समूचे लाभ में जोड़ देना चाहिए। इसी प्रकार किसी भी उद्योग से विकास के लिये कोई भी छूट अथवा सुविधा जब दी जाती है तो इसे भी समूचे लाभ में सम्मिलित कर देना चाहिये। इस योग का सीधा कारण यह हैं कि कोई भी लाभ जो नियोजक द्वारा प्रदान नहीं किया जाता उसको श्रमिकों में बाँटा जाना चाहिए, क्योंकि श्रमिकों के सहयोग और योगदान से ही नियोजक अपने व्यापार अथवा उद्योग का विकास करता है तथा इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु धारा ७ (बी) और ७ (सी) को हटा देना चाहिये।

(६) किसी भी प्रकार के संदेह को दूर करने के लिए और श्रमिकों के लाभ पर बोनस के अधिकार का समर्थन करने के लिए कानून में श्रम एपलेट फार्मूले के अनुसार बोनस भुगतान हेतु स्पष्ट रूप से प्राविधान होना चाहिए। ध्यान रहे कि यह उन श्रमिकों के लिये है, जो किसी संस्थान में २० की संख्या से कम हैं। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि मद्रास उच्च न्यायालय ने विभिन्न चीली और किराना मर्चेन्ट के मामलों में ऊपर के विचार को मान्यता दी है। विवाद का निर्णय लेबरला जर्नल जून १९६७ में प्रकाशित हुआ है।

७. कानून की धारा १७ (ए)के अनुसार पूजा अथवा त्यौहार व परम्परागत दिए जाने वाले बोनस की किसी भी धनराशि को कानून के अन्तर्गत अदा किये जाने वाले बोनस के रूप में समायोजित होना चाहिए।

कानून के अन्तर्गत बोनस का अर्थ केवल मात यह है जो लाभ पर बोनस के नाम से जाना जाता है। प्रोत्साहन बोनस व उत्पादन बोनस आदि की अदायगी कानून के अन्तर्गत नहीं आता, क्योंकि यह लाभ पर बोनस में समायोजित अथवा सम्मिलित नहीं है। इसी प्रकार कुछ मौकों पर दिये जाने वाले बोनस, पूजा बोनस तथा त्यौहार बोनस को भी त्यौहार के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं करना चाहिए। दूसरे शब्दों में कानून के अन्तर्गत बोनस को पूजा अथवा त्यौहार बोनस के अतिरिक्त अदा करना चाहिए। इस उद्देश्य पूर्ति हेतु धारा १७ (ए) में उचित रूप से संशोधन करना चाहिए।

८. धारा १९ बोनस की अदायगी के लिये समय सीमा निर्धारित करती है, परन्तु यह समय सीमा बोनस के बारे में तथा उसका विस्तृत रूप से गणना करने के लिए निर्धारित नहीं है। इसलिए बहुत से नियोजक, जिनका कोई ईमान व धर्म नहीं होता, केवल चार प्रतिशत बोनस देते हैं और जब श्रमिक विवाद खड़ा करते हैं उस समय भी नियोजक अतिरिक्त बोनस की अदायगी को उस तिथि से लेकर माप के अन्त तक नहीं करते, जिस तिथि पर एवार्ड के अनुसार लागू होनी चाहिए थी, अथवा समझौता कार्यान्वित होनी चाहिये थी, जैसा कि कानून की धारा १९ (ए) के अन्तर्गत कही गयी है। इसलिये धारा १९ में संशोधन करना चाहिये, ताकि बोनस के बारे में समय सीमा अनिवार्य रूप से निर्धारित हो सके। इस प्रकार के संशोधन महाराष्ट्र सरकार ने करने की कोशिश भी की है।

९. धारा १४ (बी) में यह प्राविधान है कि बोनस के आंकड़े निकालने के लिए कार्य दिवस की संख्या निकालनी पड़ती है। इस हेतु एक श्रमिक के वे दिन, जिन दिनों में वह वेतन अथवा आय सहित छुट्टी पर था, कार्य दिवस में सम्मिलित किया जाना चाहिये।

यह समझना भी कठिन है कि आय सहित छुट्टी को क्यों सम्मिलित किया गया है और आय रहित छुट्टी को इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु क्यों नहीं सम्मिलित करना चाहिए। अधिकृत और अनधिकृत अनुपस्थिति का तर्क सङ्गत आधार पर भेद किया जा सकता है, परन्तु जहाँ तक बोनस कानून का सम्बन्ध

है, वेतन सहित वेतन रहित छुट्टी को एक ही आधार पर लेना चाहिये, नहीं तो वे विशेषकर वे अभागे कर्मचारियों, जो लम्बे काल तक अस्वस्थ रहते हैं और बिना वेतन के उन्हें छुट्टी पर रहना पड़ता है, कहे गये प्राविधान के अन्तर्गत वे बड़ी भारी हानि उठाने को बाध्य होंगे। इसलिए कही गयी धारा १४ (बी) में उचित संशोधन करना चाहिये।

१०. धारा २३ में यह प्राविधान है कि कम्पनी की बैलेन्स सीट और लाभ हानि के लिखे जोखे, जो कि योग्य अंकेक्षक (आडीटर) द्वारा ठीक प्रकार से जांची गई हो, को ठीक माना जाना चाहिये। और आवश्यक नहीं है कि नियोजक इन विवरणों को और उनमें लिखी विस्तृत जानकारी की प्रमाणिकता को सिद्ध करे, यदि उसने इस हेतु इसके साथ एक हलफनामा अथवा किसी और पद्धति द्वारा प्रमाण को जमा किया है।

इसमें कोई शक नहीं कि यह धारा पेटलैड टर्की रेड डाई वर्क्स कम्पनी लि० (ए०आई०आर०१९६०एस०सी०१००६) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रभाव को निरस्त करने के लिए बनायी गयी है। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने ठहराया था कि बैलेन्स शीट की प्रमाणिकता के बारे में कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता, जब तक यह सकारात्मक सबूत से सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि विवरण ठीक हैं, जो विवरण किसी प्रमाणित बही में सम्मिलित है और न्यायालय में दाखिल की जाती है, को एक हलफनामा द्वारा अथवा एक योग्य गवाह की मौखिक प्रमाणिकता द्वारा सिद्ध करना होता है। और जब कोई भी एक कम्पनी अपने लिये बैलेन्स शीट तैयार करती है, तो इसे इस नियम के अपवाद के रूप में नहीं माना जा सकता। विवरण की प्रमाणिकता को सिद्ध करना सम्बन्धित पक्ष की जिम्मेदारी है और अब तक वह इस बोझ व जिम्मेवारी को नहीं निभाता, तब तक यह मानना होगा कि विवरण सिद्ध सहीं नहीं है।

नियोजकों की बैलेन्स शीट और अन्य विवरणों, जिन्हें देश की उच्चतम न्यायिक अधिकारी ने अमान्य किया है, से श्रमिक द्वारा चुनौति देने के महत्वपूर्ण हक के ऊपर लिखे प्राविधान में छीन लिया गया हैं।

यह आम जानकारी का विषय है कि नियोजकों के अधिकारियों द्वारा बेलेन्स शीट को इस प्रकार तैयार किया जाता है और इस तरह तोड़ा मरोड़ा जाता है कि कर और बोनस की जिम्मेवारियों से बचा जा सके। श्रमिक लेखा जोखा की तैयारी में एक पक्ष नहीं है, परन्तु वे उद्योग के लाभ में सहभागीदार हैं। इसलिये उन्हें लेखा जोखा के निरीक्षण का अधिकार होना चाहिये, ताकि वे अपने हिस्से के सही आंकड़ों को बना सके व देख सकें। केवल मात्र विवरण प्रस्तुत करना अथवा खर्चे को भिन्न-भिन्न भागों में बाँटना अथवा श्रमिकों को कुछ स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना ही पर्याप्त नहीं है।

इसलिये धारा २३, २४ और २५ में समुचित संशोधन करना चाहिये, जिसके अनुसार नियोजकों को बैलेन्स शीट की प्रमाणिकता को सिद्ध करना पड़े, उस समय जब वह श्रमिकों द्वारा चुनौति दी जाय।

११. धारा ६ में यह प्राविधान है कि कोई भी कर्मचारी बोनस लेने के अयोग्य ठहराया जायगा, यदि वह नौकरी से धोखे अथवा चोरी के दोष में बरखास्त किया गया है। यह स्मरण रहे कि बोनस श्रमिक का कानूनी दावा है, जो श्रमिकों के सहयोग से नियोजक द्वारा कमाये गये लाभ से उत्पन्न होता है। अपने कमाये गये हिस्से को, जिसे बोनस के रूप में अदा किया जाता है, श्रमिक को बंचित नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसकी सेबायें ठीक प्रकार से अथवा गलत प्रकार से प्रमुख अथवा गौड़ दुर्व्यवहार के कारण उसकी सेवायें समाप्त की गयी रहती हैं। इस पर उसे दोहरा दंडित किया जा रहा है, प्रथम तो उसे बरखास्त करके और द्वितीय उसके बोनस को रोक करके।

सर्वोच्च न्यायालय ने वार्तालाप की एक श्रृङ्खला में ग्रेच्युती के सम्बन्ध में यह माना है कि ".....ग्रैच्युटी श्रमिक द्वारा एक लम्बी अवधि तक और प्रशंसनीय सेवाओं द्वारा अर्जित की गयी है, उसे इससे बंचित नहीं किया जा सकता, जबकि उसके दुर्व्यवहार की कैसी भी प्रकृति हो, जिसके लिये उसकी सेवायें तक समाप्त की गयी हैं। इन मामलों में गारमेन्ट क्लिनिग वर्क्स और

हिन्दुस्तान टाइम्स लि० के विवाद भी सम्मिलित हैं। यही सिद्धान्त बोनस के मामलें में भी लागू होना चाहिए और उसे बोनस अदायगी के अयोग्य नहीं ठहराया जाना चाहिये, यद्यपि उसे किसी भी कारण से नौकरी से बरखास्त किया गया हो। इसलिये कानून की धारा ६ को अधिनियम से निकाल देना चाहिये।

# भविष्य निधि अधिनियम (प्राविडेन्ट फण्ड एक्ट)

इस अधिनियम में हम निम्नलिखित प्राविधानों को परिवर्तन करने का सुझाव प्रस्तुत करते हैं—

१. यह अधिनियम उन सभी संस्थानों पर लागू होता है, जो सूची क्रमांक १ में लिखित किसी भी उद्योग के अन्तर्गत एक कारखाना है और जिसमें २० अथवा इससे अधिक व्यक्ति सेवा में लगे हुए हैं।

अधिनियम का उद्देश्य श्रमिक के अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् अथवा उसकी अपमृत्यु के होने पर उसके आश्रितों के लिए उनके भविष्य हेतु नियमित रूप से कुछ बचत करने के भाव को उत्पन्न के लिये है। यह एक सामाजिक कानून है, जो श्रमिकों के लाभ के लिये बनाया गया है। इसलिए कोई भी ऐसा कारण नहीं है कि इस कानून को कारखाने के श्रमिकों तक ही लागू करने तक सीमित रखा जाय और वह भी उन्हीं कारखाने के श्रमिकों को, जो कि सूची क्रमांक १ में लिखे किसी उद्योग में काम करते हों। इस प्रकार के आवश्यक लाभ को सभी श्रमिकों तक बढ़ाना चाहिये।

उद्योग से सम्बन्धित इस निर्धारित धारा के उन व्यापक संस्थानों पर लागू होने में भी पुनः समस्या पैदा होती है, जहाँ पर कई प्रकार की औद्योगिक गतिविधियाँ चलती हैं, जिनमें से कुछ तो इस सूची क्रमांक में आते हैं और कुछ अन्य नहीं आते हैं। वास्तव में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि इसे निर्धारित करने के लिये कि क्या इस प्रकार के व्यापक कारखानों पर यह कानून लागू होता है अथवा नहीं। इसके लिये आधार ढूँढ़ना यह है कि क्या

कारखाने में होने वाली गतिविधियां, जो सूची क्रमांक के अन्तर्गत हैं, उसका स्वरूप प्राथमिक है और प्रमुख गतिविधि अथवा केवलमात्र आकस्मिक है या इसकी पोषक गतिविधि है। पहले वाले मामले में पूरा कारखाना कानून के दायरे में आता है, परन्तु दूसरे मामले में नहीं आता है। इस प्रकार के निर्धारण के लिए कानूनी कार्यवाही करने और अन्य विवादास्पद घटनाओं को हटाने के लिए यह परामर्श के योग्य है कि बोनस के लाभ को उन सभी संस्थानों के सभी श्रमिकों तक बढा देना चाहिये, जिनमें २० अथवा उससे अधिक लोग काम करते हैं और परिणाम स्वरूप सूची क्रमांक १ को हटा देना चाहिये।

२. सभी प्रकार के संदेहों को दूर करने के लिए यह नियम बनाना चाहिए कि कोई भी एक संस्थान जिस पर एक बार कानून लागू हो जाता है इस कानून के अन्तर्गत वह प्रशासित होता रहेगा, बिना इसको ध्यान दिये कि उसमें काम करने वाले व्यक्तियों की संख्या २० से नीचे है।

३. कानून की धारा १७ (१) के अन्तर्गत यह प्राविधान है कि उपयुक्त सरकार किसी भी संस्थान को प्राविडेन्ट फण्ड योजना से वंचित कर सकती है, यदि उस संस्थान के कर्मचारी प्राविडेन्ट फण्ड पेन्शन्स अथवा ग्रैच्युटी के रूप में लाभान्वित हो रहे हों और सम्बन्धित सरकार इस मत की हो कि इस प्रकार के सामूहिक और पृथक-पृथक लाभ, कानून के अन्तर्गत दिये गये लाभ अथवा किसी दूसरी संस्थान के कर्मचारियों के मुकाबले में किसी भी योजना के अन्तर्गत समान प्रकृति से अनुपात में कम लाभदायक नहीं है।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की एक श्रृङ्खला के अन्तर्गत अब यह अच्छी प्रकार से स्थापित हो चुका है कि श्रमिक ग्रैच्युटी के साथ प्राविडेन्ट फण्ड के दोहरे लाभ के हकदार हैं और सिद्धान्ततः इस दोहरे लाभ के ऊपर कोई रोक नहीं है तथा ग्रैच्युटी के दावे को माना जाना चाहिए, बशर्ते कि नियोजक इस बोझ को सहने की क्षमता रखता है।

प्राविडेन्ट फण्ड अधिनियम १९५२ के लागू होने के पश्चात् यह परिवर्तन महत्वपूर्ण है और प्राविडेन्ट फण्ड एक्ट की धारा १७ (१) के आधीन कुटकारा

प्रदान करने के उद्देश्य पूर्ति हेतु सामूहिक लाभ की मापांकन पद्धति में परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

इसलिए हम प्रस्तुत करते हैं कि कानून में इस प्रकार से संशोधन करना चाहिये कि छुटकारा प्रदान करने के लिये सामुहिक लाभ हेतु ग्रैच्युटी को अन्य अवकाश सुविधाओं से सम्बन्धित नही करना चाहिए।

४. वर्तमान काल में कानून के अन्तर्गत धारा १७ के आधीन छुटकारा प्रदान करने की मनाही के लिए कोई प्राविधान नहीं है। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि छुटकारा दिये जाने के बाद उसे निरस्त करने के लिए कानून में प्राविधान लाना चाहिए, यदि छुटकारा प्रदान किये गये वातावरण और परिस्थितियों में ठोस परिवर्तन हो गया हो। महाराष्ट्र सरकार ने इस प्रकार के संशोधन के लिए पहले से ही अनुमति मांगी है।

## सार्वजनिक क्षेत्र

प्रथम पञ्चवर्षीय योजना के प्रारम्भ में औद्योगिक संस्थानों और सार्वजनिक कारखानों में कुल पूँजी बड़ी मुश्किल से ५० करोड़ रुपये थी। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के प्रारम्भ में यह पूँजी ११० करोड़ तक हो गयी तथा तृतीय योजना के प्रारम्भ में ६०० करोड़ रुपये रही। तृतीय योजना में केवल सार्वजनिक क्षेत्र में ही १५०० करोड़ रुपये पूँजी से बढ़कर १९६५-६६ वर्ष के अन्त में २४०० करोड़ रुपये हो गयी और चतुर्थ योजना के अन्तर्गत ४००० करोड़ के जुड़ जाने से चतुर्थ योजना के अन्त तक कुल पूँजी ६४०० करोड़ रुपये तक हो जावेगी। उस समय तक यह अनुमान लगाया जाता है कि सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों के उद्योगों की सम्पूर्ण पूँजी में करीब-करीब ५६ : ४४ का अनुपात हो जायगी। १९५१ वर्ष के मुकाबले में सार्वजनिक क्षेत्र में लगायी गयी पूँजी १३० गुणा बढ़ जायगी। इसी प्रकार इन वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार पाने वालों की संख्या भी बढ़ गयी है। १९६१ और १९६६ के बीच यह ७० लाख ५० हजार से बढ़कर ९३ लाख ६४ हजार हो गयी है, जो कि ३३ प्रतिशत की बढ़ोतरी है।

इसलिये अब देश में सरकार सबसे बड़ी नियोजक बन गयी है। परिणाम स्वरूप जो कुछ भी नीतियाँ और कार्यक्रम औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र में अपनायी जाय, ऐसी आशा की जाती है कि उनका सार्वजनिक क्षेत्र में भी पालन होना स्वाभाविक होना चाहिए। और यह सरकार की नैतिक जिम्मेवारी है कि वह एक आदर्श नियोजक की तरह व्यवहार करे और निजी क्षेत्र के नियोजकों के लिए एक नमूना प्रस्तुत करे। सरकार को नियोजक के रूप में हर समय अग्रगण्य भूमिका निभानी होगी और यह भूमिका सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों के हितों के रक्षक के रूप में होनी चाहिए। उसे किसी भी श्रम कानून से किसी भी प्रकार का छुटकारा नहीं प्राप्त करना चाहिये। सार्वजनिक और निजी क्षेत्र में कोई मतभेद नहीं रहना चाहिये, जहाँ तक कि श्रम कानून और उसे क्रियान्वित करने का प्रश्न है।

प्रथम पञ्चवर्षीय योजना ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया था कि सभी प्रकार के श्रम कानूनों की सुविधाओं को जो निजी क्षेत्र के कारखानों में सेवारत श्रमिकों के लिये लागू थे, सार्वजनिक क्षेत्र में सेवारत श्रमिकों पर लागू होने चाहिए।

द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना ने एक कदम आगे बढ़ाया है और निःसन्देह रूप से इस प्रकार से कहा है—

"इस तथ्य को ध्यान में रखकर कि भविष्य में सार्वजनिक क्षेत्र बढ़ेगा, सार्वजनिक कारखानों में औद्योगिक सम्बन्धों को ध्यान में रखकर प्रशासकीय पद्धति कारखानों की सफलता के लिए और श्रमिकों की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए बहुत महत्व की है, इसलिए सार्वजनिक नियोजकों की ओर से नियोजक की जिम्मेवारी से हटने को इस आधार पर निरुत्साहित करना होगा कि वह लाभ हेतु काम नहीं कर रहा है। सर्वसाधारण सार्वजनिक कारखानों के प्रबन्ध को श्रम कानूनों से छुटकारा प्राप्त करने की कोशिश नहीं करनी चाहिये अथवा अन्य छूट, जो कि सार्वजनिक क्षेत्र में उपलब्ध नहीं है, को नहीं मांगना चाहिये। अन्तिम विवेचन के अन्तर्गत उसने बताया है कि सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों को कम से कम निजी क्षेत्र के कर्मचारियों के

समान होना चाहिये। और इसमें मौलिक स्वाभिमान का अनुभव करना चाहिये कि सार्वजनिक क्षेत्र में क्या उत्पादन करते हैं और उनकी क्या स्थिति है ?"

इस दृष्टि कोण को उस समय के केन्द्रीय श्रम मन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने और स्पष्ट कर दिया, जब उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों के प्रमुखों के सम्मेलन में जो जनवरी १९५६ में हुआ था, घोषणा की कि श्रम कानूनों के लागू होने में निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों में कोई अन्तर व मतभेद नही होगा।

तृतीय पंच वर्षीय योजना में यह कहा गया था कि "सार्वजनिक क्षेत्र के नियोजकों को उन श्रम नीतियों के अपनाने की विशेष जिम्मेदारी है जो एक तर्क संगत खर्चे पर एक सक्षम कर्मचारी बल को प्राप्त करने और बनाये रखने में सहायक होगा।"

श्रम मन्त्रियों के १६ वें सम्मेलन में यह आग्रह पूर्वक दुहराया गया कि सार्वजनिक क्षेत्र में श्रम कानूनों के लागू करने के लिए वही स्तर होना चाहिए, जो निजी क्षेत्र में है। और सिफारिश की कि सार्वजनिक क्षेत्र न केवल एक प्रबुद्ध नियोजक होना चाहिये वरन् एक प्रगतिशील नियोजक भी होना चाहिए और निजी नियोजकों के लिये नमूना प्रस्तुत करनी चाहिये।

इस घोषित उद्देश्य के बावजूद भी सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिनिधि श्रम कानूनों के पालन के मामले में एक सुविधा प्राप्त स्थिति की मांग करते करते हैं। बोनस आयोग के सम्मुख ऐसे प्रतिनिधियों द्वारा धारण की गयी स्थिति का एक नमूना इस प्रकार की है।

आयोग ने अपनी रिपोर्ट में पृष्ठ ८८ पर निम्नलिखित उद्धरण का उल्लेख किया हैं।

'हमारे सम्मुख सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों के कई प्रतिनिधि उपस्थित हुए और अपना प्रतिनिधित्व प्रस्तुत किया। उन्होंने एक अथवा दूसरे

प्रकार से सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों की विशेष प्रकृति पर आग्रह किया और बताया कि उनका प्राथमिक उद्देश्य देश की आर्थिक बढ़ोत्तरी में सहायक होना है। उन्होंने सर्व साधारण रोजगार को प्रोत्साहन करने और समुदाय के कल्याण करने का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, लाभ की दृष्टि द्वितीय स्थान मानी जाती है तथा अन्ततोगत्वा जो भी लाभ होगा-उसे सम्पूर्ण समाज के हित के लिए अधिक उपयोग किया जायगा, अत्यधिक कारखाने इस मौलिक प्रकृति के लिये बनाये गये हैं कि जिसके परिणाम स्वरूप निजी क्षेत्र में उन उद्योगों को जो सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो पर निर्भर करते हैं का प्रोत्साहन देगा, कुछ वित्तीय सस्थायें, जो वर्तमान काल में बनायी गयी हैं, इस उद्देश्य के लिय नहीं बनायी गयी हैं कि वे स्थापित निजी वित्तीय संस्थाओ की वाणिज्य गतिविधियों को रोक अथवा अवरोध पैदा करें बल्कि आधारभूत रूप से इसलिए बनायी गयी है कि निजी क्षेत्र मे उद्योगों के विकास के लिए सस्ते दर पर ऋण प्रदान करे, जब ऋण की स्थिति जटिल बनी हुई हो अथवा जहा अधिक खतरा मोल लेने की सम्भावना हो और इस हेतु स्थापित संस्थायें ऋण देने के लिय कुछ मात्रा में हिचकिचा रही हों ..... .....। इसलिए उन्होंने निजी क्षेत्र के उद्योगों के मुकाबले में बोनस के प्रश्न पर भिन्न प्रकार के व्यवहार के लिये तर्क प्रस्तुत किया।"

अनेक मामलों में बेतन ढांचे के निर्धारण में भी सार्वजनिक क्षेत्र यह तर्क प्रस्तुत करना चाहता हैं कि सरकारी कम्पनियों को सार्वजनिक क्षेत्र के कम्पनियों के समरूप नहीं देखा जाना चाहिये. जिसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) केन्द्रीय सरकार के साथ सम्बन्ध

(२) देश के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न सार्वजनिक उद्योगों में समानता अथवा कम से कम किसी भी प्रकार की असमानता रखने की आवश्यकता।

(३) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में लागू किये जाने वाले क्षमता,

लाभ और अतिरिक्त शब्दों से सम्बन्धित विषयों की व्याख्या जो निजी क्षेत्र के उद्योगों में लागू किये जाने वाले शब्दों के अर्थ से भिन्न है।

(४) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की समूची सुविधायें निजी क्षेत्र में दी जाने वाली सम्पूर्ण सुविधाओं के मुकाबले मे अधिक हे।

(५) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में कर्मचारियों की सुरक्षा निजीक्षेत्र के उद्योगों के मुकाबले में बहुत अधिक है।

फिर भी इसे उल्लेख करना संतोष जनक है कि हिन्दुस्तान एन्टी बायोटिक्स लि० के विरुद्ध उसके श्रमिकों के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने इन तर्कों को अमान्य कर दिया। न्यायालय का यह निर्णय था कि सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों का, जिनका एक स्पष्ट स्वायत्तशासी अस्तित्व है, उन्हों सिद्धान्तों द्वारा नियंत्रित होना चाहिए, जिस प्रकार निजी क्षेत्र के कारखानों के संदर्भ में औद्योगिक अभि निर्णय की व्यवस्था विकसित की गयी है।

जहाँ तक श्रम कानूनों के क्रियान्वयन करने का प्रश्न है, अनुभव बहुत ही निराशा जनक है। इस संदर्भ में क्रियान्वयन और मूल्यांकन विभाग के १९६६ के अध्ययन बहुत ही महत्व पूर्ण हैं। हम सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों में से एक नेशनल इन्स्ट्रूमेन्ट्स लि० के बारे में अध्ययन के निष्कर्ष को नीचे लिख रहे हैं।

"श्रम कानूनों के क्रियान्वयन सम्बन्धी स्थिति नेशनल इन्स्ट्रूमेन्ट्स लि० में बहुत ही असन्तोष जनक है। दुर्घटनाओं की रिपोर्ट्स समय पर नहीं भेजी जाती और कारखाना कानून व श्रमिक कम्पसेसन्स एक्ट के अन्तर्गत वार्षिक रिपोर्ट को भी सम्बन्धित अधिकारियों के पास भेजी नही जाती। कारखाने में सुरक्षा के उपाय उपयुक्त नहीं बनाये गये हैं। डाईकास्टिंग विभाग धुयें से भरा रहता है। शौचालय बहुत गन्दे हैं और कैन्टीन इतनी छोटी है कि सभी श्रमिकों को जो वहाँ भोजन करते हैं, बैठने का स्थान नहीं है। श्रमिकों को लीव बुक्स नहीं दी गयी हैं। कुछ मामलों में श्रमिकों के वेतन की कटौती कानूनी सीमा से अधिक थी और दो मामलों में तो श्रमिक कम्पन्सेशन एक्ट के

अन्तर्गत दिये जाने वाला मुआवजे का आधा ही दिया गया, यद्यपिपहली जनवरी १९६३ से प्राविडेन्ट फण्ड योगदान का दर सवा छ प्रतिशत से ८ प्रतिशत बढ़ा दिया गया था, किन्तु प्रबन्धक ने अभी जनवरी १९६३ से मई १९६५ तक बढे हुए दर के अनुसार अपना योगदान प्रस्तुत नहीं किया है।"

ऐसे ही व्यवहार अन्य कई इकाइयों द्वारा किया गया है. उदाहरणार्थ- कारखाना कानून के उल्लंघन अथवा अमुचित क्रियान्वयन के बहुत से उदाहरण निरीक्षण अधिकारियों द्वारा हिन्दुस्तान मशीन टूल्स पंन्जौर के प्रबन्धकों की जानकारी में लाये गये। इस उल्लंघनों को ठीक करने के लिये प्रबन्धकों को कई बार चेतावनी के पत्र दिये गये। क्रियान्वयन और मूल्यांकन विभाग ने १९६६ में किये गये अध्ययन में लिखा कि प्रबन्धक कारखाना कानून के महत्व पूर्ण प्राविधानों को ठीक प्रकार से क्रियान्वित करने के लिये उचित ध्यान नहीं दे रहे हैं, जैसा कि लिफ्ट के परीक्षण में, कारखाने कार्य स्थल पर की सुरक्षा के सम्बन्ध में, श्रमिकों को संरक्षण उपकरणों को मुहैय्या कराने में, प्राथमिक उपचार हेतु औषधियों के बारे में, देख-रेख के बारे में तथा शौचालय की सफाई आदि के बारे में उन्होंने ध्यान नहीं दिया है।

ऊपर लिखी परिस्थितियों के अन्तर्गत भारतीय मजदूर संघ यह प्रस्तुत करता है कि जहां तक श्रम सम्बन्धी विषयों का प्रश्न है, राष्ट्रीय श्रम आयोग को सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों के किसी भी रूप में अलग से किये जा रहे विशेष व्यवहार की विवादास्पद स्थिति को अन्तिम रूप से समाप्त करनी चाहिये और हम यह विचार रखते हैं कि निजी और सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों में किसी भी प्रकार पक्षपात नहीं करना चाहिए।

---

भाग ३ अध्याय १३

श्रमनीति

# वेतन निर्धारण के ढंग

प्रकाशक :—

भारतीय मजदूर संघ

२, नवीन मार्केट, कानपुर-१

फोन : 53550

[मूल्य—एक रुपया]

# प्रस्तावना

राष्ट्रीय श्रम आयोग को भारतीय मजदूर संघ द्वारा प्रस्तुत किये गये "LABOUR POLICY" नामक अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है। हिन्दी में इस पुस्तिका के सभी २० अध्याय अलग-अलग पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये गये हैं।

आपात्कालीन स्थिति के अन्तर्गत कानपुर जिला कारागार की बन्दीअवधि में इस अध्याय का हिन्दी अनुवाद आई० आई० टी० कानपुर के प्राध्यापक डा० भूषणलाल धूपड़ के सहयोग से किया गया है। मैं इनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

—रामनरेश सिंह

भाग ३ अध्याय १३

# वेतन निर्धारण के ढंग

## सामुहिक सौदेबाजी और सम्बन्धित वर्ग

वेतन निर्धारण में सामुहिक सौदेबाजी के ढंग का एक धुरी का रूप मानना चाहिये, परन्तु जब तक ट्रेड यूनियन आन्दोलन इस रूप में चल रहा है, जैसा कि आज कल उसका विभाजित और छिन्न भिन्न स्वरूप है, बहुत ही छोटी छोटी यूनियनें एक भौगोलिक इकाई में अथवा एक ही श्रेणी में एक दूसरे से मुकाबला कर रही हैं, इनमें से कोई भी बहुमत प्राप्त नहीं रहती, जिसके अन्तर्गत वे औपचारिक दृष्टि से सौदेबाजी के काम को निभा सके, जबतक सभी यूनियनें अपर्याप्त वित्तीय स्थिति में रहती हैं, तबतक यह स्वाभाविक ही है कि सामुहिक सौदेबाजी की गति धीमी रहेगी। वर्तमान स्थिति का एक कारण विद्यमान कानूनी प्राविधान कहा जाता है, जिसके अन्तर्गत कोई भी सात सदस्य एक यूनियन बना सकते हैं और एक विवाद को संराधन समिति के पास ले जा सकते हैं, इस विचार के प्रवक्ता जो बहुसंख्यक यूनियनों के हैं, वे इस कमजोरी की सारी जिम्मेवारी कानून के कन्धों पर थोपते हैं, वे यह नहीं चाहते कि किसी भी प्रकार के अल्पसंख्यक यूनियन को कोई अधिकार दिये जांय। वे एक उद्योग में एक यूनियन के कानून को लागू करना चाहेंगे अथवा समझौते के लिये एक यूनियन को प्रतिनिधित्व करने के लिये प्रमाणित करेंगे। वस्तुतः अनुशासन संहिता और बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध कानून' ने इसी प्रकार के एक नियम के प्रस्तावना की कोशिश की है, परन्तु सामुहिक सौदेबाजी के लिये उससे कोई प्रशसनीय लाभ प्रकट नहीं हुआ। बम्बई की टेक्सटाइल मिल्स में बारम्बार की हड़तालों ने उन्हें पंगु कर दिया। ये हड़तालें प्रतिनिधित्व प्राप्त यूनियन के स्थान पर दूसरी यूनियनों द्वारा करायी गयी थी, इतना ही नहीं बम्बई 'बेस्ट' अन्डरटेकिंग द्वारा वेतन सम्बन्धी मांग की सामुहिक सौदेबाजी कभी भी सफल नहीं हुई है और सामुहिक सौदेबाजी के खतरे से बचने के लिये वह मामला एक से दूसरे मध्यस्थ को दिया जाता रहा। अन्त में सर्वोत्तम यही हुआ है कि संघर्ष से थक जाने पर जो प्रशासकीय निर्णय आये, उन्हें समझौते के अन्तर्गत सफलता के रूप में मानकर जय जयकार किया गया। अनुशासन

संहिता की असफलता भी कानूनी प्राविधान की कमी के कारण नहीं है। अहमदाबाद में ऐसी एजेन्सी से दवाव पड़ने के कारण श्रमिको का जो उत्पीड़न हुआ और वह दवाव उनपर एक मात्र समझौते वाली एजेन्सी के द्वारा किया गया यह आश्चर्य का विषय है। यह सोचने का विषय है कि किसी भी यूनियन को इस प्रकार की अधोगति को प्राप्त होने से कैसे वंचित रखा जा सकता है। समझौते वाली एजेन्सी की कार्यवाही एक अधिनायकवादी अधिकार सम्पन्न नियम में परिणित हो जाती है और एक तरफा कार्यवाही से एकाधिपति की आज्ञा का स्वरूप धारण कर लेती है। बैंकिग उद्योग में हमने इमानदार और निष्ठावान कर्मचारियों के ऊपर बहुत बड़ी मात्रा में परेशानी को गुजरते देखा है और साथ ही बहुत से स्वतन्त्र वक्ताओं को सजा भुगतते भी देखा है इन बातों को देखकर सम्पूर्ण बैंक कर्मचारियों की एक राष्ट्रीय संगठन 'नेशनल आर्गनाइजेशन आफ बैंक वर्कर्स' की स्थापना हुयी, जिसकी आधारभूत जिम्मेदारी एकाधिकारी सत्ता की बुराइयों को कम करना था, जो बुराई इस एकमात्र सौदेबाजी करने वाली एजेन्सी में निहित थी। एक प्रशासक अथवा विचारक जो इस प्रकार के सर्वव्यापी कष्टों से बहुत दूर है अथवा एक जनता का नेता जो व्यक्तियों और छोटे समूहों की शिकायतों को ध्यान पूर्वक सुनने से अपने आपको कष्टमय महसूस करता है और ऐसी किसी भी व्यवस्था में अपने आपको आराम में अनुभव नहीं करता, जिसके अन्तर्गत उसे एक से अधिक पक्ष को सुनना पड़ता है, चूंकि यह उसकी समझ के ऊपर बोझ सा होता है, इन व्यक्तिगत और सामुहिक कष्टों में निहित प्राकृतिक पेचीदगी से दूर भागता है और सभी प्रकार के आवश्यक विभिन्नताओं को प्रशासकीय ढंग से दबाने के लिये प्रस्तुत होता है और उसे वही एकमात्र ग्राह्य होता है, जिसे वह व्यवस्था के सुगम, सरल व स्पष्ट सिद्धान्त के रूप में मानता है ऐसे व्यक्ति के लिये 'एक उद्योग में एक यूनियन' का कानून पसन्द आता है। परन्तु एक सच्चा कार्यकर्ता, जो व्यक्तियों के उत्पीड़न को दूर करने के लिये कार्य करता है वह इस प्रकार के अधिकार सम्पन्न कानूनी प्राविधान को अत्यधिक कष्ट व भय से भरपूर देखता है और इसे दो पाटों के बीच में पीसे जाने तथा काल कोठरी के समान मानता है। बस्तुतः बहुत रचनात्मक संघर्ष जो अल्प संख्यक यूनियन प्रस्तुत कर रही हैं, वे उन्हीं ऐतिहासिक संघर्षो के समान है, जैसा कि अति पीड़ित व्यक्तियों ने उन सब लोगों के विरोध में किया था, जो किसी प्रकार की सत्ता अथवा धार्मिक मान्यता अथवा बादशाहत तथा रइसी अथवा साहूकार और पूंजीपतियों के रूप में सत्ता पर विराजमान थे। हमें इन कुछ नेताओं के हाथ में पुनः इस प्रकार के दबाने वाली सत्ता को देने के पहले इतिहास के इस पक्ष को नहीं भूलना चाहिये, कम से कम आर्थिक योजना और उसके व्यवहार के विषयों में

जल्दी में विचार करके मानव मात्र की स्वतन्त्रता और सामाजिक न्याय के विचारों और इनके ऊपर आधारित प्रगति की आवश्यकता को ही हम न भूल जायं। अव्यवस्था, संघर्ष और विनाश को दूर करने हेतु स्वतन्त्रता को हटाना—सैनिकीय नियन्त्रण का विचार है। अन्ततोगत्वा व्यक्तियों और अल्पसंख्यक लोगों (यूनियन) ने समाज के उत्थान में बहुत से महत्वपूर्ण योगदान भी दिये हैं और यदि किसी एक अपरिवर्तनीय फार्मूले अर्थात् कानूनी सौदेबाजी की एजेन्सी को प्रस्तुत करने से विश्व के श्रमिक अपने योगदान से बचित हो जाते हैं, तो इस एक तरफा व्यवहार के लिये वे लोग अवश्य इंगित किये जायेंगे। श्रमिकों के सामुहिक जीवन का विकास-अल्पसंख्यकों के विचार को प्रस्तुत करने और उनकी गतिविधियों को दबाने से नहीं हो सकता। यह तभी फलदायी होगा, जब विभिन्नताओं को बड़ी चतुराई से एक सामन्जस्य के रूप में परिणित किया जायगा, दूसरे शब्दों में उन सब मानवी अधिकारों को सम्मानित करना होगा। जो प्रजातन्त्र को जन्म देते हैं। जब एक व्यापक और विभिन्न प्रकार की जनसंख्या वाले बड़े देश में और जहां पर औद्योगीकरण क्रमशः उत्पन्न हो रहा है तथा आर्थिक प्रगति के रास्ते पर चल रहा है तब इस मंदगति, कठिन और कष्टप्रद यात्रा के लिये बहुसंख्यक यूनियन की स्वाभाविक स्थिति को स्वीकार करना चाहिये। वेतन निर्धारण के लिये सामुहिक सौदेबाजी कितना ही उत्तम माध्यम क्यों न हो, पर उसे सर्वोच्च सिद्धान्त के स्तर तक नहीं उठाया जा सकता, जिसमें कि संस्थाओं और उनके अधिकारों के बारे में कानून बने और जो सामुहिक सौदेबाजी के सिद्धान्त को एक प्रमुख सेवा के रूप में प्रस्तुत करें। यदि वह मनुष्य के दूसरे अन्य उच्चतम आदर्शों को अपने में नहीं अपना सकती, तब उसे उस अवधि तक की इन्तजारी करनी चाहिये, जब उन आदर्शों के साथ स्वाभाविक रूप से वह अपने आपको ढाल सके। अन्ततोगत्वा भारत में यूनियनिज्म के बहुत से वैचारिक और सैद्धान्तिक पक्ष हैं। प्रतिनिधि सौदेबाजी की एजेन्सी के अलावा अन्य अल्पसंख्यक यूनियन अथवा यूनियनों को कानूनी ढंग से रोकना-कल्याण की रुकावट के समान मानना चाहिये। ऐतिहासिक घटनाओं के कारण यूनियन का वातावरण घृणा और सर्वनाश के 'हलाहल' से भरा हुआ है। अभी रचनात्मक और उत्पादन की दिशा से सम्बन्धित ट्रेड यूनियन को बनाना कठिन है, ऐसी परिस्थिति में एक यूनियन को कानूनी ढंग से प्रस्थापित करना, बुराई को बढ़ावा देने के रूप में ही माना जायगा, और वह देश की आर्थिक बिपत्ति के रूप में ही होगी। संघर्षात्मक तरीके और उसी प्रकार के गुण गाने से ही बहुमत बना है। केवल संख्यात्मक स्तर को लेकर कानून बनाना ऊपर लिखी हुई बुराइयों को सम्मानित करना है, जो राष्ट्रीय प्रगति में रुकावट के रूप में निन्दा करने योग्य है। उस यूनियन को जो

गुणात्मक स्तर रखती हैं, के सम्मुख जन समुदायों को जीतना एक अत्यधिक जटिल कार्य है। वह कानून जो ऐसी यूनियनों पर उनके केवल इस कसूर के कारण कि उन्होंने लोकप्रिय व सस्ते नारे को अस्वीकार कर दिया और रचनात्मक काम के लिये अधिक परिश्रम करने को स्वीकार किया, ऐसी यूनियनो को निरुत्साहित करना है। ध्यान रहे इस प्रकार के कानून राष्ट्रीय हितों के विरोध में होंगे। घटना चक्र के ऐतिहासिक और राजनैतिक पक्ष को भुलाकर सामुहिक सौदेबाजी के द्वारा आर्थिक प्रगति के सिद्धान्तों पर एक पक्षीय विचार करना माना जायगा। कानूनी प्राविधान के द्वारा जिसके अन्तर्गत गुप्त मतदान द्वारा एक सरल बहुमत प्राप्त हो, उसे सौदेबाजी की एजेन्सी मान्य करना आर्थिक सर्वनाश को निमन्त्रण देना है। आर्थिक प्रगति के कानूनों के बारे में हमारे देश में बहुत ही व्यापक अज्ञानता है। ऐसी परिस्थितियों में श्रमिकों का मस्तिष्क बड़ी ही सरलता से द्विविधा में पड़ जाता है और जनसमुदाय में मीर्गी के समान धृणात्मक बातावरण को सस्ते नारों के द्वारा उलझन में डाल देना है। ऐसे मौके पर सौदेबाजी की एजेन्सी के एक अविकसित और बुद्धिहीनता वाले कानून द्वारा हमारी प्रगति को रोक देने की अधिक सम्भावना है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सामुहिक सौदेबाजी के स्वभाव को पैदा करने के लिये कोई कदम नहीं उठाना चाहिये अथवा इसकी प्रगति के लिये कोई सक्रिय प्रोत्साहन न देना चाहिये। सामाजिक और आर्थिक जीवन के शेष सभी उद्देश्यों के साथ सामुहिक सौदोबाजी के उद्देश्य को निश्चित रूप से अपनाना चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये ट्रेड यूनियन आन्दोलन के सामुहिक ढांचे को धीमें धीमें और स्थिरतापूर्वक बदलना चाहिये। इसके पहले कि एक उद्योग में एक यूनियन अथवा एक राष्ट्रीय यूनियन का निर्माण हो, एक लम्बेकाल तक छोटी यूनियन को आपस में सम्मिलित होने और सुदृढ़ होने देना चाहिये। केन्द्रीय श्रम संगठनों को क्रमशः अपनी जिम्मेवारियों और क्षेत्र व कार्यो का परिसीमन कर गतिविधियों को पुनर्भासित करना चाहिये। इसी प्रकार से सामुहिक सौदेबाजी की एक स्वस्थ पद्धति पैदा होगी। इस प्रक्रिया को गतिशील करने के लिये हमारे लिये यह अच्छा होगा कि अपनी संख्यात्मक शक्ति के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार की यूनियनों के हकों को निर्धारित करें। अपनीं इस याचिका के ५वें अध्याय में 'ट्रेड यूनियन नेतृत्व और उसकी बहुसंख्या' में इस प्रश्न पर हम अपने विचार पहले ही दे चुके हैं। इस अध्याय में वेतन निर्धारण के पद्धतियों से सम्बन्धित प्रश्न पर कुछ और सुझाव प्रस्तुत कर रहे हैं। हमारे पिछले विवेचन से यह स्पष्ट ही है कि इस परिस्थिति में किसी व्यापक ढंग से अनिच्छित श्रमिकों पर सौदेबाजी के कानूनी प्राविधान को लागू करना ठीक नहीं

होगा, साथ ही हम यह अनुभव भी नहीं करते हैं कि सामुहिक सौदेवाजी के विकास में कानून को भाग नहीं लेना चाहिये। और इसे इतिहास के घटनाचक्र और सम्बन्धित पक्षों की मतमानी पर छोड़ देना चाहिये। हम यह नहीं सोच सकते हैं कि हर ओर सभी प्रकार के झगड़ों में थोड़ी सी उथल-पुथल होने पर अभिनिर्णय द्वारा हल करने के लिये श्रम विभाग की सेवाओं कों थोप देना चाहिये। श्रमिकों को यूनियन बनाने के लिये प्रोत्साहन देना चाहिये और सामुहिक सौदेवाजी पर पहुंचने के लिये कठिन श्रम करना चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सौदेवाजी के एजेन्ट अथवा एजेण्ट्स की नियुक्ति का एक ढंग होना चाहिये। अपनी याचिका के चौथे अध्याय में किसी ट्रेड यूनियन को मान्यता प्राप्त करने हेतु हमने विचार रखे हैं। हमारी याचिका के अध्ययन से यह मालूम किया जा सकता है कि किसी भी एक सौदेबाजी करने वाली इकाई में अधिकतम ३ मान्यता प्राप्त यूनियनों के भाग लेने की सम्भावना का अनुमान किया गया है और साथ ही यह अनुमान किया गया है कि राष्ट्रीय अथवा औद्योगिक स्तर या स्थानीय स्तर पर साथ ही परियोजना (प्लान्ट) व्यवसाय (ट्रेड) अथवा श्रेणी (कैटेगरी) स्तर पर इस सौदेबाजी वाली इकाई की सम्भावना होगी। हमें यह अवगत है कि राष्ट्रीय, औद्योगिक और परियोजना स्तर पर भी सामुहिक सौदेबाजी को तय करने में समस्या खड़ी होगी। अब हम इन विषयों से सम्बन्धित विवेचन करेंगे और दिखायेंगे कि किस प्रकार सामुहिक सौदेबाजी के इस प्रयत्न के द्वारा समस्याओं को हम हल करेंगे। इसके पहले कि हम इस विषय पर विवेचन करें, हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वेतन निर्धारण के विषय में हम यह नहीं सोचते कि केवल मात्र मान्यता का आधार ही किसी भी मान्यता प्राप्त यूनियन को सम्पूर्ण सौदेबाजी का एजेन्ट का स्तर प्रदान करने के लिये उपयुक्त है। अपनी याचिका के चौथे अध्याय में हमने यह रूपरेखा दी है कि किस प्रकार सौदेबाजी वाला समस्या के प्रश्न पर गैर मान्यता प्राप्त, परन्तु रजिस्टर्ड यूनियन के साथ वार्तालाप करने की जिम्मेवारी डाली जानी चाहिये और किस प्रकार सामुहिक सौदेबाजी की समस्याओं पर मान्यता प्राप्त यूनियन अथवा यूनियनों के साथ अन्तिम निर्णय हेतु वार्तालाप करनी चाहिये। उस समय हम यह अनुमान लगा रहे थे कि वेतन सम्बन्धी समझौते पर किस प्रकार व्यापक समर्थन और सहमति प्राप्त होगी, बजाय इसके कि किस प्रकार एकमात्र मान्यता प्राप्त यूनियन ही ऐसा कर सकती है, अब हम इस प्रोत्साहन और सहमति की प्रकृति का सम्पूर्ण विवेचन करेंगे। इसके पहले यह अनिवार्य हैं कि उन बहुत से हलों पर दृष्टिगोचर करें, जो एक सौदेबाजी वाली एजेन्सी के लिये मान्यता प्राप्त यूनियन द्वारा उस समस्या को हल करने के लिये प्रस्तुत की जाती है अथवा इस बात की वकालत की जाती है।

एक सुझाव अमेरिकन नमूने पर है, जो एक शाप सम्बन्धी अथवा यूनियन सम्बन्धी है और जिसकी वित्तीय स्थिति 'चेक आफ पद्धति' द्वारा समर्थित है, इसके साथ अक्सर गुप्त मतदान प्रणाली जोड़ दी जाती हैं, जब इसकी आवश्यकता पड़ती है। निश्चिततः इस पद्धति ने अमेरिका में परिणाम दिये हैं, परन्तु यह भुलाया नहीं जा सकता कि इस स्पष्ट सफलता का आधार 'टैफ्ट हार्टले एक्ट' (Taft Hartley Act) की धारा ९ यच में निहित है। कानून की इस धारा के अन्तर्गत सुविधाओं का जो प्राविधान है, जिसमें यूनियन्स को नेशनल लेबर रिलेशन बोर्ड का संरक्षण और उपयोग वर्जित है, जबतक कि बोर्ड की फाइल पर एक इस प्रकार का शपथ पत्र न हो जो उस श्रम संगठन के हर अफसर और किसी राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठनों के अधिकारी जिनके साथ यह यूनियन सम्बद्ध है या उसकी अंग है, तत्कालीन अथवा पिछले १२ मास के अन्तर्गत ऐसा शपथ पत्र सम्पादित किया गया है, कि वह किसी साम्यवादी दल का सदस्य नहीं है अथवा ऐसे किसी दल से सम्बन्धित भी नहीं है। यू० एस० ए० के सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्राविधान की सवैधानिकता को इस आधार पर मान्यता सुदृढ़ किया है कि सामुहिक सौदेबाजी को प्रोत्साहन करने हेतु यूनियन्स को यह कानूनी संरक्षण दिया जाय, और चूंकि यूनियन्स को क्रान्ति के प्रथम हथियार के रूप में मानते हैं और आकस्मिक रूप से इन्हें सामुहिक सौदेबाजी का संयंत्र मानते हैं—यह उचित माना गया कि कम्युनिस्ट प्रभावित यूनियन्स को कानून की सुरक्षा से बंचित रखा जाय। अमेरिकन पद्धति न केवल एक यूनियन को एक सौदेबाजी की इकाई ही मानती है, वरन् 'क्लोज्ड शाप' के नियम के अन्तर्गत हर एक कर्मचारी को एक ही यूनियन का सदस्य भी बनना पड़ता है। प्रजातन्त्र को बनाये रखने हेतु पद्धति में कानून द्वारा साम्यवादियों को दूर रखने की आवश्यकता सामाजिक जीवन के किसी भी शिक्षार्थी को स्पष्टता यह मालूम होना चाहिये कि ऐसी कानूनी रुकावटों द्वारा ऊपर लिखे खतरों को दूर करने की आवश्यकता को भारत में नजरन्दाज नहीं किया जा सकता। भारतीय साम्यवादी दल के सारे प्रयत्न 'वर्ग संघर्ष' के सिद्धान्तों की फैलाने में लगे हुये हैं, जिसके अन्तर्गत वे वर्ग चेतना को उभारने और वर्ग संघर्ष पैदा करने में लगातार लगे रहते हैं, जब तक वे क्रान्ति के परिणाम स्वरूप सत्ता में न आ जायं। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि साम्यवादी देशों में ट्रेड यूनियन की भूमिका इस प्रकार की नहीं है। इसका निष्कर्ष का अर्थ यह है कि वर्ग संघर्ष के साम्यवादी सिद्धान्त, क्रमशः साम्यवादी सत्ताओं की विदेशनीति बन गयी है, जिसके अन्तर्गत श्रमिकों को उद्योग के विरोधी बनाकर और उसकी अर्थ व्यवस्था को हानि पहुंचाकर उन गैर साम्यवादी देशों पर अधिकार किया जाय। ऐसी पद्धति को अपनाकर इस देश में साम्यवादी

इस प्रकार के वातावरण बनाने में काफी सफल हुये हैं, जिसके कारण ट्रेड यूनियन क्षेत्र के लिये नियोजक द्वारा किसी भी प्रकार की सहायता अथवा प्रबन्ध की ओर से किसी प्रकार की सदिच्छा की भावना व्यावहारिक रूप में नहीं रह गयी है। ऐसी परिस्थिति में सस्ती लोक प्रियता प्राप्त करने के उद्देश्य से जब यूनियन्स जोश को भड़काती हैं, तब अनिच्छा से ही क्यों न हो श्रमिक वर्ग नियोजकों की चरित्र हत्या करने की होड़ में लग जाता है। यह सत्यता से बहुत दूर न होगा, जब हम यह कहें कि बहुत से प्रसंगों पर जब कोई भी व्यक्ति प्रबन्ध नियोजक और सरकार के प्रति विरोध प्रकट करने के लिये अत्यधिक अश्लील गालियाँ देने की गैर जिम्मेदारी प्रगट करता है तो वही सबसे अधिक सम्मान प्राप्त करता है। औद्योगिक सम्बन्धों के प्रश्नों की यह भूमिका जो अनुशासन संहिता, कानून के अन्तर्गत मान्यता अथवा प्रतिनिधित्व की आवश्यकताओं के पश्चात् होता है, वर्ग संघर्ष को बढ़ाता है और घृणा को प्रोत्साहन देता है, परिणाम स्वरूप अन्तिम चुनाव कोई भी जीते, साम्यवादियों से मुकाबला करने की इस प्रकार की प्रजातांत्रिक पद्धति–सर्वव्यापी असहयोग की आदतों को उत्पन्न कर राष्ट्र विरोधी शक्तियों को प्रोत्साहन करती है। हम किसी भी ऐसे उदाहरण से अवगत नहीं हैं, जिसके अन्तर्गत किसी भी यूनियन को कानूनी अथवा अर्द्ध कानूनी (जैसा कि आचार संहिता के अन्तर्गत सम्भव है) मान्यता के परिणाम स्वरूप अधिक उत्पादन हुआ हो, जैसा कि सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया के अन्तर्गत लेन देन के सही उद्देश्यों में निहित हैं यदि इस दृष्टिकोण से बैंकिंग और अथवा जीवन बीमा के उदाहरणों का परीक्षण किया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि मान्यता की प्रवृत्ति करीब-करीब कानून विरोध (गुण्डागर्दी) को अधिकृत करने के समान है (क्योंकि उस यूनियन का बहुत अथवा मान्यता ही घृणा और विद्रोह पर आधारित संघर्ष के परिणाम स्वरूप है) और फलस्वरूप श्रम तथा उत्पादकता बड़ी तेजी से गिरी है, इसलिये इसका निष्कर्ष तो अनिवार्य रूप से सम्मुख ही हैं कि जब तक साम्यबादी इस क्षेत्र में हैं और साम्यवादी को प्रजातांत्रिक पद्धति में काम करने की अनुमति है, 'एक उद्योग में एक यूनियन' का खतरा–गुप्त मतदान अथवा किसी और पद्धति से क्यों न हो, बहुत व्यापक है और साथ ही उन वास्तविक समस्याओं को जो दिन प्रतिदिन के कार्य में उपस्थित होती हैं, को दुर्लक्ष्य करके उन्हें निम्न नहीं समझना चाहिये। एक उद्योग में एक राष्ट्रवादी यूनियन' एक अधिक स्वस्थ सिद्धान्त है। भारतीय मजदूर संघ इस सिद्धान्त का हामी है। परन्तु वह इसको कानून के सिद्धान्त पर स्थापित नहीं करना चाहता, जैसा कि अमेरीकन्स ने किया है, अमेरीकी कानून ने श्रम क्षेत्र से साम्यवादियों को पृथक कर दिया है। हमारे देश में ऐसा कोई निर्णय नहीं लिया गया है और न हम इसकी वकालत ही करते हैं।

साम्यवाद अन्ततोगत्वा एक जीवन दर्शन है—कोई संदेह नहीं कि यह एक अवैज्ञानिक और एकांकी जीवन दर्शन है—यह वह दृष्टि है, जो विभाजन से पैदा हुयी है और जिसमें अनेकता में एकता के स्वरूप को समझने का धैर्य नहीं है। पर चूंकि यह एक दृष्टि की चिन्गारी है, इसे कानूनी इनकार से समाप्त नहीं किया जाना चाहिये। अमेरीकन्स निश्चिततः ही इस मान्यता में गलत हैं कि वे साम्यवाद को कानूनी दबाव से समाप्त कर सकते हैं। इस प्रकार के कदम कुछ समय तक के लिये साम्यवादी दल की सदस्यता को बाहरी रूप से बढ़ाने में रुकाउट डाल सकते हैं, परन्तु अन्ततोगत्वा उनकी अन्तिम विजय में यह सहायक ही होगी। अमेरिकन की वास्तविक शक्ति उनकी स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम होना है, परन्तु वे यह नहीं जानते कि सत्य पर आधारित उनके सामाजिक ढांचे की बनावट को उस स्वतन्त्रता की परिपूर्णता के माध्यम से कैसे प्राप्त किया जा सकता है। आदिकाल से भारतीय पद्धति यह रही है कि अर्धसत्य की चेतावनी स्वीकार करें उन्हें समायोजित करें और उनकी वास्तविकता को आत्मसात करें। हजारों वर्ष तक के संघर्ष के कारण यह दुर्भाग्य रहा है कि भारतीय चिन्तन की यह क्षमता, जिसके अन्तर्गत जीवन के इन दर्शनों को आत्मसात कर लें, थकान के कारण कुछ समय तक के लिये कमजोर पड़ गयी है, परन्तु आन्तरिक शक्ति अभी तक पूर्णरूपेण ठोस रूप में है और अब पुनः भिन्न भिन्न प्रकार से प्रस्तुत हो रही है। इसलिये औद्योगिक स्तर पर जो अवैज्ञानिक और एकतरफा दर्शन ने अपने लिये संघर्ष का क्षेत्र चुना है, हम स्वतन्त्र वार्तालाप व कार्यवाहियों के सभी स्तरों पर—वैचारिक, संगठनात्मक, व्यावहारिक तथा ब्यूह रचनात्मक उपायों से साम्यवादियों की चुनौती का मुकाबला कर सकते हैं, वस्तुतः इसी ढंग से हम मानव को साम्यवाद के पंजे से मुक्त कर सकेंगे। साम्यवादियों के खतरे को कम न मानते हुये, जिसके लिये अमेरिकन्स ने 'टाफ्ट हार्टले एक्ट' को कानूनी सम्मति दी, हम इसको ध्यान में रखकर अनुभव करते हैं कि साम्यवादियों के संघर्ष को चुनौती देने का सबसे अच्छा ढंग यह है कि हम अपने मंच से लड़ें। परन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक भिन्न मंच आवश्यक है। एक उद्योग में एक यूनियन का कानून जो राष्ट्रवादी सरकार द्वारा पारित हो, राष्ट्रवादी यूनियन के मंच को समाप्त कर देती है। अमेरिकन पद्धति, जिसके अनुसार ट्रेड यूनियन को साम्यवादियों के लिये गैर कानूनी ठहराया गया की मनाही और अपने ट्रेड यूनियन्स में उन्हें काम करने की अनुमति देने का अर्थ होता है कि साम्यवादियों के तोड़-फोड़ के व्यवहार और वर्ग संघर्ष के दर्शन से उत्पन्न हुयी चुनौती से संघर्ष करने के लिये राष्ट्रवादियों को अपने लिये एक भिन्न और स्वतन्त्र मंच बनाना चाहिये। इसलिये भारतीय परिस्थिति में एक आवश्यक अवसर यह है कि औद्योगिक

सम्बन्ध के लिए अधिक से अधिक यूनियन वाली पद्धति को सम्मान दिया जाय व स्वीकार किया जाय –साम्यवादी चुनौती के प्रति हमारा यह विशेष दृष्टिकोण है। यदि प्रजातांत्रिक प्रणाली द्वारा सम्पन्नता राष्ट्रीय जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिये है, तब ट्रेड यूनियनिज्म में से साम्यवादी प्रभाव को उखाड़ फेंकने की हमारी आवश्यकता को राष्ट्रीय चिन्ता का विषय स्वीकार किया जाना चाहिए। परन्तु हम यह इच्छा नहीं करते और न यह विश्वास ही करते हैं कि ट्रेड यूनियन को चलाने में साम्यवादियों के ऊपर बन्दिश लगायी जाय। यह पूर्ण रूपेण आवश्यक है कि हर सौदेबाजी वाली इकाई में उन सभी के लिए जो साम्यवादी झंडे के नीचे आने के लिए इच्छुक नहीं है, उन्हें एक मंच पर आने का प्राविधान होना चाहिए। ट्रेड यूनियन को चलाने व नियन्त्रित करने के साम्यवादी ढंग के अन्तर्गत दिन प्रतिदिन की समस्याओं से सम्बन्धित जो वे मत प्रकट करते हैं, वे एक सही ट्रेड-यूनियन आन्दोलन से इतना भिन्न है कि दो प्रकार के मतों से लोगों को एक नाम और व्यवस्था की छत्रछाया में काम करना व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव हो जाता है। ऐसा प्रगट होता है कि उनकी गतिविधियां ट्रेड-यूनियन के लिए न होकर राजनैतिक हैं। इसलिए एक से अधिक यूनियनों (मल्टी यूनियनिज्म) का होना आवश्यक है। चूंकि सौदेबाजी के लिए एजेण्ट चुनने में यह खतरा है कि उस यूनियन की बहुत थोड़ी बहुमत होने पर भी उसे यह सब अधिकार प्राप्त हो जायगा, इसलिए सौदेबाजी हेतु एजेन्ट चुनने की प्रक्रिया और सामुहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया–दोनों को यह मार्ग अपनाना पड़ेगा कि वह 'एक उद्योग में एक यूनियन' जो स्पष्टतः सरल प्रशासकीय हल नजर आता है, को अमान्य कर दे। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी समस्याओं और इरादों के प्रति ईमानदार रहने के लिये हमें एक स्वतन्त्र मार्ग चुनना चाहिये और विश्व में विद्यमान ढांचों में से किसी एक की नकल नहीं करनी चाहिये।

इसलिये देश की वर्तमान परिस्थिति में एक उद्योग में एक यूनियन के सिद्धान्त की उपयुक्तता को अमान्य करने के पश्चात और साथ ही साथ केवल मात्र बहुमत प्राप्त यूनियन को सम्पूर्ण सौदेबाजी के अधिकार को देने के विचार को अमान्य करने के बाद एक नया प्रश्न खड़ा हो जाता है, जिसके अन्तर्गत एक माध्यम निकालने की बात आ खड़ी होती है और जिसके लिये एक प्रकार से सभी श्रमिकों को उस सौदेबाजी वाली एजेण्ट के लिए प्रतिबद्ध किया जा सके और साथ ही सर्वसाधारण ट्रेडयूनियन आन्दोलन की गतिविधियों के लिए भिन्न-भिन्न मंचों का सम्मान भी हो सके। इस प्रश्न पर भिन्न भिन्न ट्रेड यूनियन्स से अति निकट सम्पर्क रखने वाले सामाजिक कार्यकर्त्ताओं से बातचीत करने के

पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि इस प्रकार के फार्मूले को निकालने के लिये गम्भीर विचार और व्यावहारिक व्यक्ति भी बड़ी तत्परता और गम्भीरता से लगे रहे हैं। इण्डियन लेबर कान्फ्रेन्स की वर्तमान वार्तालाप में भी इस विचार के ऊपर प्रमुख रूप से प्रकाश डाला गया है। भिन्न भिन्न यूनियन्स की शक्ति के अनुपात में बनायी हुई मध्यस्थता समिति पर प्रतिनिधित्व प्राप्त यूनियन के द्वारा अल्पसंख्यक यूनियनों के प्रतिनिधियों के दाखिले के विकल्प को प्रस्तुत किया गया है। वर्क्स कमेटी के लिए अनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति को हमने भी सुझाया है, परन्तु वस्तुतः उस स्थिति को हल करने के लिए यह प्रशासकीय प्रबन्ध है, जहां पर बहुत सी यूनियन होती हैं। अन्य लोगों से बातचीत के दौरान हमें एक क्रान्तिकारी फार्मूला मालूम हुआ कि केवल एक ही यूनियन को पूर्णतः सौदेबाजी के एजेन्ट के रूप में नामजद किया जाय और मध्यस्थता करने वालों के चुनाव हेतु सभी कर्मचारियों को उसी यूनियन के अंग के रूप में माना जाय। हर एक कर्मचारी के तनख्वाह से एक नाम मात्र शुल्क काटा जाय और उसी यूनियन को दिया जाय ताकि सामुहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया में आने वाले सभी उचित खर्चों की आवश्यकता को पूरा किया जा सके। मध्यस्थता करने वालों को उन सभी श्रमिकों द्वारा चुना जाना चाहिये, जो सौदेबाजी से प्रभावित होने वाले हैं और चुनाव एक स्वतन्त्र न्यायाधिकरण के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र आयुक्त के निरीक्षण में हो (आयुक्त सरकारी हो तो उत्तम होगा)। अन्यथा कर्मचारी को अपनी स्वेच्छा से उस अथवा किसी दूसरी यूनियन में शामिल होने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। अपने विचारों को फैलाने और सौदेबाजी के मार्ग को प्रभावित करने के लिये संघर्ष, जिसमें हड़ताल भी सम्मिलित है, करने के लिए समान अवसर प्रदान होना चाहिए। ऐसा प्राविधान होना चाहिए जिसके अन्तर्गत मध्यस्थता के दौरान मध्यस्थता करने वालों द्वारा जो उन्होंने अपनी स्थिति बतायी अथवा जो समझौते का ब्योरा तय्यार हुआ, को गम्भीरता से चुनौती दी जा सके। और आवश्यकतानुसार अविश्वास प्रस्ताव लाया जा सके, परिणाम-स्वरूप मध्यस्थता करने वाले पुनः चुनाव कराये जा सकें। सर्व साधारण इस प्रकार की गम्भीर चुनौती के लिए निश्चित किया जा सकता है, अर्थात् जब श्रमिकों का बहुमत वापस बुलाने के लिये प्रार्थनापत्र दे अथवा प्रतिनिधित्व प्राप्त यूनियन के अलावा किसी दूसरी द्वारा बुलाई गयी हड़ताल से उद्योग पंगु हो गया हो। इस फार्मूले के कई प्रकार हैं, जिसको विस्तृत रूप से तय्यार किया जा सकता है, परन्तु सम्पूर्ण विचार का निष्कर्ष यह है कि एक उद्योग में बहुत सी यूनियनों के तालमेल से एक सौदेबाजी एजेन्सी के नामांकन करने में हमें रुकावट नहीं पड़नी

चाहिये और साथ ही साथ इस एजेन्सी के चुनाव में हर एक श्रमिक अनिवार्य रूप से कटिबद्ध हो और समझौते के उद्देश्य के लिए यूनियन को उचित रूप में वित्तीय सहायता दी जाय। इसमें कोई शक नहीं कि इस फार्मूले के अन्तर्गत श्रम क्षेत्र से बहुत सी यूनियनों का अस्तितत्व समाप्त हो जावेगा । परन्तु फिर भी एक अच्छी संख्या में वे यूनियन्स जिनके परिभाषित सिद्धान्त हैं, रह जायगीं और शेष बची हुयी यूनियन्स में जो किसी एक समय पर सौदेबाजी के एजेन्ट्स नहीं हैं, उन्हें भी अपने विचार फैलाने और श्रमिकों के विचार की दिशा को संघर्ष द्वारा प्रभावित करने के अवसर प्राप्त होंगे और मध्यस्थता करने वाले अथवा मध्यस्थता करने वाली एजेन्सी के रूप में नामांकित यूनियन के पदाधिकारी के चुनाव के लिये प्रत्याशियों को खड़ा कर सकेंगे। जैसा फार्मूले के भिन्न भिन्न प्रकारों में विचार किया गया हो । प्रत्याशी अनिवार्य रूप से कर्मचारी नहीं होने चाहिये, यद्यपि मतदान का हक केवल कर्मचारियों को ही होगा। प्रथम विचार में यह फार्मूला कुछ अटपटा सा मालूम होता है, परन्तु पुनर्विचार करने पर इसकी कुछ अच्छाइयां देखने को मिलती हैं। परन्तु यह कहा जा सकता है कि इस फार्मूले में अथवा इसी के मिलते जुलते फार्मूले में बहुत से खतरे निहित हैं और उपयोग करने के पहले किसी गम्भीर विचार के बिना ये तबाही मचा सकते हैं। हमारे देश में ट्रेड यूनियन बेचना बहुत कमजोर है, बहुत से ऐसे कर्मचारी हैं जो किसी यूनियन के सदस्य नहीं हैं अथवा यूनियन के विषयों में रुचि नहीं लेते हैं। एकता के नारे के समान इस प्रकार की दिलचस्पी अथवा चेतना को असहमत लोगों पर भी नही थोपी जा सकती। इस प्रकार की भूमिका ग्रहण करने में ऊपर लिखित फार्मूले के समान कोई भी अन्य फार्मूला मौन बहुमत को उस रास्ते पर ढकेल देगा जिससे वह सड़कों पर झगड़े करने के लिये बाध्य हो जाय । ट्रेड-यूनियन में इस प्रकार का चयन उन मान्यताओं के अन्तर्गत करना होगा, जिन्हें हम कम से कम बाधा डालने वाले माध्यम के रूप में जानते हैं। दूसरे यह भी है कि श्रम क्षेत्र में बहुत कम लोग इस विषय पर स्वस्थ संगत निर्णय ले सकते है कि किस सीमा तक सामुहिक सौदेबाजी को सही रूप में मान्य कराना चाहिए। परिणाम स्वरूप एक अनुभवी अथवा पूर्ण समर्थ मध्यस्थ के लिए भी कठिन होता है कि वह उच्चतम सौदेबाजी को जनता को स्वीकार कराये जिनकी अपेक्षायें बहुत ही ऊंचे स्तर पर रहती हैं अथवा इसके पूर्ण रूपेण उलटा भाव जिसके अन्तर्गत सर्वोच्च मध्यस्थ द्वारा की गई सौदेबाजी बहुत ही खराब रूप में प्रस्तुत करता है तथा परिणाम स्वरूप हड़ताल होती है और सामुहिक सौदेबाजी की असफलता के कारण तृतीय पक्ष के सम्मुख समस्याओं

के समझौते के लिये प्रस्तुत किया जाता है। वर्तमान स्थिति में ऐसी कोई नजीर अथवा वादा नजर नहीं आता, जो हमें यह दिखलाये कि सामुहिक सौदेबाजी के एजेन्ट की नियुक्ति का यह (अमुक) रास्ता है, फिर भी ऐसा करने से हड़ताल हीने का एक नियम सा बन जायगा और उसके पश्चात तृतीय पक्ष को फैसले के लिये सोचना भी अनिवार्य हो जायगा। सही सामुहिक सौदेबाजी के लिए यूनियन्स को सभी श्रमिकों का विश्बास प्राप्त होना चाहिए, इसके लिए ट्रस्टी शिप के समान कानून नहीं बनाया जा सकता। व्यापक विश्वास की अनुपस्थिति में यूनियनें एक अच्छे सौदेबाजी की स्थिति प्राप्त कर कुछ भी करने में समर्थ नहीं होंगी। आर्थिक स्थिति के बहुत से निरीक्षक व दर्शक यह अनुभव करते हैं कि हमारा देश एक ऐसी स्थिति में आ गया है कि श्रमिक जब तक उत्पादकता के माहौल में अच्छे परिणाम नहीं देते, उद्योग के लिब यह समय नहीं है कि असली वेतन के नीचे जाने वाले क्रम को भी रोक सकें। यह आशा करना व्यर्थ है कि श्रमिकों की कानूनी एकता कठिन चयन को स्वीकार करने के लिये विश्वास किया जा सकता है, जो सामुहिक सौदेबाजी के उन पक्षों से सम्बन्धित है, जोउत्पादकता के लक्ष्यों के आधार पर असली बेतन की बढ़ोत्तरी को सम्बन्धित करते हों। इस प्रकार से विचार किये गये सौदेबाजी के एजेण्ट उद्योग के हितों को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होंगे, वरन् यह केवल मात्र गड़बड़ करने वाले दृष्टिकोण के दुष्ट और अनभिज्ञ शक्तियों द्वारा नचाये जाने वाली कठपुतली के समान होगा। जन समुदाय की अनभिज्ञता विनाश के इस सिलवाड़ में सहयोग करती रहेगी और श्रमिक वर्ग उन नेताओं के द्वारा मूर्ख बनते रहेंगे, जो क्रान्ति के पवित्र नाम के अन्तर्गत अधिनायक बनने की इच्छा रखते हैं। हमारी सम-समस्याओं का सही निदान कानून द्वारा एक मात्र सौदेबाजी के एजेन्ट बनाने के विधि सुगम व सामान्य नियमों के अन्तर्गत नहीं है। सामुहिक सौदेवाजी के द्वारा प्राप्त समझौते की पवित्रता को बनाये रखने के लिये सुझाये हुए ढंगों में कोई विशेषता नहीं है, जिसमें उन्हें बन्धनकारी माना जाय, यदि बहुसख्यक श्रमिक सौदेबाजी के एजेन्ट द्वारा किये गये ठेके पर हस्ताक्षर करें अथवा समझौते के अन्तर्गत निर्णय किये गये धन को एक निश्चित अवधि में स्वीकार करें। परन्तु देश की बर्तमान परिस्थिति ऐसी है कि बहुत से उत्पादन केन्द्रों में जो गड़बड़ करने में तुले हुए हैं उन तत्वों के द्वारा की गयी अनुमानित तबाही के ब्योरे को एक योजना व बुद्धिपूर्वक एकत्रित की जा रही है उन तत्वों के इन सभी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए राष्ट्र निर्माण हेतु रचनात्मक ट्रेड-यूनियन आन्दोलन को जो आच्छादित किये हुये हैं उन्हें बहुत ही गहराई और

अच्छे ढंग से हमें संयोजित करना होगा। राष्ट्र को आगे बढ़ाने हेतु मार्ग प्रशस्त करने के लिए राष्ट्रीय श्रम आयोग को सौदेबाजी के एजेन्ट के लिए एक फार्मूला चुनना ही होगा, जो श्रमिक उद्योग और राष्ट्र हित के लिए एक रचनात्मक और प्रगतिशील सौदेबाजी के उत्कर्षण के लिए उत्तम व आवश्यक हो।

सम्पूर्ण घटना चक्र के व्यापक अनुभूति में वह मार्ग निहित है, जो उद्योग से सम्बन्धित समूह के साथ सौदेबाजी को भी शासित करता है। सौदेबाजी करते समय उद्योग को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वार्तालाप में केवल सौदेबाजी करने वालों के लिये ही बातचीत नहीं कर रहे हैं वरन् उन सभी श्रमिकों के लिए कर रहे हैं, जिनका वे प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। उस श्रमिक समुदाय का कोई एक स्थायी मत नहीं होता। किसी भी एक मध्यस्थ के लिए यह हमेशा सम्भव नहीं होता कि वह जन समूह के स्थायी मन को उपयुक्त रीति से प्रतिनिधित्व कर सके इसके पश्चात् भी यदि कोई सौदेबाज किसी राजनीतिक पार्टी से सम्बन्धित है, जो किसी भी एक सामाजिक कार्यकर्त्ता के समान ईमानदारी व प्रसंगावधान में विश्वास नहीं रखता और रचनात्कक राष्ट्र निर्माण की कार्यवाहियों के लिये खड़ा नहीं होता, तब वह निश्चित ही वह स्थान प्रस्तुत करेगा, जिससे श्रमिकों के सही मस्तिष्क से कोई मतलब नहीं अथवा अत्यल्प मतलब है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कि उद्योग श्रमिकों के सामुहिक वर्ग से वार्तालाप करके आगे बढ़ें– सर्वोच्च रास्ता यही है कि वे श्रमिकों के सभी प्रतिनिधियों से वार्तालाप करें, जो पर्याप्त मात्रा की शक्ति वाली यूनियन्स में संगठित रूप में शामिल हैं अथवा इस हद तक कि वे सभी यूनियनों से बातचीत करें। इस प्रक्रिया से देरी करने अथवा टालने की कार्यवाही (दीर्घ सूत्रता) को कारखाने द्वारा नियुक्त विशेषज्ञों द्वारा लगातार वार्ता होने से कम किया जा सकता है, तत्पश्चात हर एक श्रमिक से इस सम्पूर्ण वार्तालाप को बतलाने के लिए भिन्न भिन्न यूनियनों को सौंपा जा सकता है। इस प्रक्रिया से आम श्रमिक को सही जानकारी मिल जावेगी। आजकल रचनात्मक ट्रेड यूनियनिज्म का सही दुश्मन आम श्रमिक की अनभिज्ञता और उसके द्वारा बरती जाने वाली दुर्लक्षता है। इनमें से अनभिज्ञता के प्रश्न को सभी समस्याओं के ऊपर विस्तार से वार्तालाप की भूमिका अपनाकर हल किया जा सकता है। भिन्न भिन्न विचार रखने वाली यूनियन्स के साथ समझौते और सभी श्रमिकों से सम्पर्क बनाये रखने के प्रयत्न इस उद्देश्य की पूर्ति कर सकेंगे। श्रमिकों के दूसरे दुश्मन अर्थात् दुर्लक्षता पर एक सम्पूर्ण नियम से काबू पाया जा सकता है वह यह है कि जब तक सामुहिक सौदेबाजी द्वारा प्रस्तुत समझौता उन सभी यूनियन्स द्वारा जो श्रमिकों के कम से कम ७५ प्रतिशत का

प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं, लागू नहीं किया जायगा। यह व्यवस्था श्रमिकों को सही यूनियन के चयन करने के लिए बाध्य करेगी और सामुहिक सौदेबाजी में यूनियन्स को एक व्यावहारिक दृष्टि अपनाने के लिए भी विवश करेगी। वर्तमान समय में जहां पर प्रतिनिधित्व का स्थान उस यूनियन को दिया जाता है, जिसे अल्प बहुमत है अथवा उसका बहुमत सदस्य सूची में बोगस दाखिले पर आधारित है श्रमिकों की सही प्रतिबद्धता किसी समझौते के लिये इतनी कमजोर होती है कि दोनों पक्षों को लाभान्वित नहीं कर पाती। हमारे द्वारा सुझाया गया फार्मूला इस कठिनाई को दूर कर सकता है और श्रमिकों के मन से यूनियन के प्रति दुर्लक्ष करने के भाव को दूर कर सकता है। व्यापक सहमति पर आधारित सामुहिक सौदेबाजी के प्रमाण पत्र के लिये हमारे उक्त सुझाव हैं। इस पक्ष में दूसरा भी सुझाव है कि यूनियन की सदस्यता की शक्ति के आंकड़ों को यह तय करने के आधार के रूप में प्रयोग किया जाय, जिसमें कि सामुहिक सौदेबाजी के किसी एक समझौते को कितनी मान्यता अथवा स्थान देना चाहिये। एक समझौता अथवा उसके किसी अंश, जिसे एक परियोजना अथवा संस्थान के सभी यूनियनों द्वारा स्वीकृति प्राप्त हो, को उच्चतम स्थान देना और कानूनन बंधककारी मानना चाहिये। इससे कम की स्वीकृति को अधूरा समझौता माना जाना चाहिये और इसे कम मान्यता अथवा स्तर देना चाहिये। किसी यूनियन अथवा यूनियनों, जो विशेष समझौते पर हस्ताक्षर करती हैं अथवा मानती हैं, के सदस्यों की संख्या के अनुसार एक परिभाषित योग्यता प्राप्त हो सकेगी। इस सुझाव का व्यावहारिक ब्योरा हम अभी तय्यार नहीं कर पाये हैं, परन्तु इसकी अद्भुत दिशा है कि वह उद्योग और श्रमिकों के हितों में सभी यूनियनों को एक सामान्य आधार ढूंढने के लिये बाध्य करती है। यह योजना एक सही और संगठित ट्रेड यूनियन आन्दोलन के विकास के लिये उपयुक्त मनोवैज्ञानिक अनिवार्यता को भी लायेगी और साथ ही बहुमत प्राप्त यूनियन अथवा बहुमत के उस हक जिसके अन्तर्गत किसी भी समस्या का व्यावहारिक निदान अपनी ही शक्ति के आधार पर खोजने के हक हैं उसको भी बलि नहीं चढ़ायेगी। इस विचार में निहित दृष्टि पर अधिक गहराई से सोचने और प्रयोग करने की आवश्यकता है।

बहु यूनियनों के बीच चुनाव संघर्ष में प्रत्येक यूनियन की शक्ति मालूम करना बहुत कठिन हैं, जो कि ऊपर लिखित सुझाव में प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टिकोण से 'चेक आफ पद्धति' के कुछ लाभ हैं, बशर्ते कि श्रमिकों द्वारा चयन की गयी यूनियन की सदस्यता शुल्क को नियोजक द्वारा हर एक श्रमिक के वेतन से काट कर देने का प्राविधान हो और इसका जोड़ उपयुक्त यूनियन को

दे दिया जाय। इस पद्धति में एक खतरा भी है कि शुल्क कटौती के समय अथवा एक यूनियन से दूसरी यूनियन में बदलने के प्रार्थनापत्र में नियोजक अनायास ही अपने प्रभाव का उपयोग कर सकते हैं। परन्तु किसी भी समय पर हर एक यूनियन की शक्ति मालूम करने के लिए यह पद्धति बहुत ही सहायक है और यूनियन के प्रति श्रद्धा को बदलने में एक अंकुश भी रहता है, साथ ही यह वर्क्स कमेटी अथवा सामुहिक मैनेजमेन्ट कौंसिल के बनाने में भी सहायक हो सकती है और तब ऐसी कमेटी और कौंसिल में अपनी शक्ति को अनुपात में अपने प्रतिनिधि नियुक्त करने के यूनिवन के हक का एक आदर्श आधार बन सकती है। हमारे द्वारा सुझाये गये फार्मूले के आधार पर सामुहिक सौदेबाजी की वैधता को जांचने हेतु यूनियन की शक्ति को मालूम करने में भी सहायक होगी। इस पद्धति के दुष्परिणाम को इसके उपयोग करने के मूल्यांकन से ही जांचा जा सकता है। इस विषय पर राष्ट्रव्यापी कानून बनाने के पहले नमूने के तौर पर (Pilot basis) करना चाहिये।

अनुशासन संहिता के अन्तर्गत प्रतिनिधित्व प्राप्त यूनियन को मालूम करने हेतु यूनियन की सदस्य संख्या के जांच की वर्तमान प्रणाली पर नियोजकों और यूनियनों के बहुत से लोगों द्वारा हमला (निन्दा) किया गया है और गुप्त मतदान की पद्धति के लिए आग्रहपूर्वक दबाव डाला गया है। इसमें कोई शक नहीं कि वर्तमान पद्धति बड़ी ही सावधानी से बनायी गयी है, परन्तु इसके बाद भी प्रक्रिया का उद्देश्य और कभी कभी उसका सही होना भी विवाद का विषय बन गया है। कुछ नियोजकों द्वारा भी ऐसा कहा गया है कि यूनियन की प्रतिनिधित्व स्थिति को मालूम करने का एक मात्र तर्क संगत ढंग गुप्त मतदान है। अब हमने अल्प बहुमत प्राप्त यूनियन के प्रतिनिधित्व की स्थिति के विरुद्ध एक विचार प्रस्तुत किया है। इसलिये हमारी योजना के अन्तर्गत गुप्त मतदान को स्वीकार करने की आवश्यकता अथवा विपरीत काली स्थिति का एक भिन्न अर्थ है जहां कहीं भी 'चेक आफ पद्धति', जो कि हमारे द्वारा सुझाई गई है, काम में लाई जा रही है, उसकी आवश्यकता भी नहीं रहेगी। हमारे फार्मूले के अन्तर्गत जाँच की उपयुक्त पद्धति, जो आवश्यकताओं की पूर्ति करेगी, वह अखिल भारतीय संगठनों के द्वारा अपनाये जाने वाली पद्धति है- जिसके अन्तर्गत उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय कौन्सिल्स, कान्फ्रेन्सेज और कमेटीज, बेज बोर्ड आदि पर प्रतिनिधित्व मिलती है। यह पद्धति जिसे आम जांच पद्धति (General verification procedure) नाम से जानी जाती है, मई १९५८ में नैनीताल में हुई भारतीय श्रम सम्मेलन के सोलवें सेशन में तय हुयी थी। इस पद्धति के अन्तर्गत

सदस्यता के दावे की प्रतियां सभी केन्द्रीय श्रम संगठनों द्वारा केन्द्रीय श्रमायुक्त को दी गयी थी, वे प्रतियां सभी संगठनों को भी उपलब्ध होनी चाहिये, तब श्रमायुक्त आम जांच करें और विवादास्पद विषयों को सम्बन्धित संगठनों के पास पहले ले जाना चाहिए। जहां कहीं विभागीय संयंत्र (मशीनरी) द्वारा की गयी जांच के निष्कर्ष उन संगठनों को स्वीकार नहीं होते, केन्द्रीय श्रमायुक्त की अध्यक्षता में सभी केन्द्रीय श्रम संगठनों के प्रतिनिधियों से बनायी गयी समिति के उन विवादग्रस्त प्रश्नों को हल करने के लिए सौंप देना चाहिए। मंशा यह है कि यदि समिति विवाद को हल करने में सक्षम नहीं होती, तब उसे एक स्वतन्त्र एजेन्सी अथवा न्यायाधिकरण को श्रम और रोजगार मंत्रालय के द्वारा दी जानी चाहिये। अभी तक ऐसा कोई भी अवसर नहीं आया कि जिसमें यह अन्तिम पग उठाना पड़े और अभी तक चारों केन्द्रीय श्रम संगठनों की जांच की गई सदस्यता सर्वमान्य रही है। केन्द्रीय श्रम संगठनों की सदस्यता की जांच की पद्धति में कुछ कमियां हैं जो मुख्यतः देश की विशालता के कारण है, परन्तु परियोजना अथवा उद्योग स्तर पर यूनियनों की शक्ति की जांच करना बहुत ही सुविधाजनक होगा।

ऊपर लिखीं हुई सभी यूनियनों की समिति जब आंकड़ों की सहमति पर पहुंचने में असफल हो, तब इस निर्णय के लिये यह प्रश्न न्यायाधिकरण पर छोड़ा जा सकता है कि क्या अन्तिम निर्णय पर पहुंचने के लिये गुप्त मतदान करना आवश्यक है ? गुप्त मतदान की पद्धति भी अपनी अपूर्णताओं और खतरों से रिक्त नहीं हैं। सर्व प्रथम कठिनाई मत के हक के बारे में है। यदि मतदान का हक सभी श्रमिकों को प्रदान किया जाय, बिना यह ध्यान रखे कि किसी यूनियन के सदस्य हैं अथवा नहीं, तब यह भय है कि श्रमिक किसी भी यूनियन के सदस्य नहीं बनेंगे, फलस्वरूप ट्रेड यूनियन के उद्देश्यों को एक धक्का लगेगा। अगला प्रश्न यह है कि अस्थायी अथवा बदली श्रमिकों को वोट का हक दिया जाय अथवा न दिया जाय और क्या सेवा का कुछ समय जैसे १ वर्ष अथवा कुछ और का मतदान के हक के लिये योग्यता होनी चाहिए ? तीसरा प्रश्न श्रमिक सम्बन्धी धारा से सम्बन्धित है कि क्या उस श्रमिक को जो अनैतिक हरकतों के जुर्म में दोषी है या क़ैदी बन चुका है अथवा किसी ऐसे दूसरी प्रक्रियाओं में जैसे गैरकानूनी हड़ताल में भाग लेने के कारण दोषी घोषित किया गया है मत देने का हक रहे या न रहे ऐसा कहा जाता है कि इस प्रकार की अयोग्यताओं के कारण सदस्यता बनने हेतु रुकावट हो जाने से श्रमिकों के आम समूह के नैतिक स्तर को बढ़ायेगी तथा अनुशासन को प्रोत्साहित करेंगी। उस सम्बन्ध का चौथा प्रश्न, दो गुप्त मतदान के बीच के समय का है कि कितने दिन का हो।

चुनाव अक्सर कार्यस्थल पर तनाव पैदा करते हैं और सभी प्रकार की अनिश्चितता द्वेषभाव तथा लालच को बढ़ाते हैं, परिणाम स्वरूप भीतरी समरसता और शान्ति इसका सबसे पहला शिकार बनती है। चुनाव के लिये अन्तिम प्रश्न, गुप्त मतदान की पद्धति को समान रूप से लागू करने के अन्तर्गत चुनाव को कराने के लिए उसकी भिन्न भिन्न क्रमों व स्तरों की आवश्यकताओं को कार्यान्वित करने और पूर्ण करने हेतु एक व्यापक योजना और तय्यारी चाहिये। इन सब समस्याओं को हल करने की पद्धति की स्थापना के लिये एक बहुत व्यापक और योग्य प्रशासकीय ढांचा खड़ा करना अनिवार्य होगा। फिर भी क्या गारन्टी है कि इससे हमेशा के लिये औद्योगिक वातावरण में सुधार आयेगा ? और उस काम में जहाँ कि सम्बन्धित पक्षों के द्वारा विशेष दृष्टिकोण अपनाने पड़ते हैं। ऐसे अभ्यासों में नियम और ढांचे बहुत कम कामयाब हो पाते हैं। गुप्त मतदान की पद्धति में ऐसा कोई जादू नही है जिसमें कि वह सौदेबाजी के एजेन्ट निर्धारण करने के प्रश्न को सरलता से निपटा दे। इसलिए हम इस पद्धति पर स्थायी निर्भरता की वकालत नहीं करते, बल्कि इसे लाचारी के अन्तर्गत आवश्यक मानते हैं। इसकी आवश्यकता और प्रणाली न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित होनी चाहिये, जिसके बारे में हम पिछले पृष्ठ में उल्लेख कर चुके हैं। हमारे विचार में इस प्रकार की गुप्त मतदान की पद्धति का एक मात्र सौदेबाजी के एजेण्ट के निर्धारण में उपयोग नहीं करना चाहिए, वरन् यूनियन्स के उस समूह के लिए निर्धारण करना चाहिए, जिसकी सामुहिक सदस्यता ७५ प्रतिशत की सीमा तक पहुंचती है। यह सामुहिक सदस्यता सामुहिक सौदे के हस्ताक्षर के लिये अनिवार्य है, जो हम ऊपर कह चुके हैं। यह ठीक है कि उन अवसरो पर, जहां पर केवल एक मात्र यूनियन की सदस्यता अनिवार्य प्रतिशत से अधिक है, तो वह यूनियन एक मात्र सौदेबाजी के एजेन्ट के रूप में स्वाभाविक रूप से सामने आयेगी, जबकि शेष यूनियनें केवल मात्र प्रहरी के रूप में रहेंगी। कभी कभी यह सम्भावना व्यक्त की जाती है कि हमारे द्वारा सुझाई गयी ७५ प्रतिशत की सीमा की व्याख्या ऐसी है कि जिसे कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता, जब तक कि मान्यता प्राप्त करने के हमारे फार्मूले के अन्तर्गत सभी मान्यता प्राप्त यूनियनें सामुहिक सौदेबाजी को स्वीकार नहीं करतीं। भारतीय परिस्थिति के सन्दर्भ में सौदेबाजी के एजेन्ट के चयन और सामुहिक सौदेबाजी के प्रोत्साहन के जटिल प्रश्न को हल किया जा सकता है। ध्यान रहे कि देश के विकास और व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को बनाये रखने की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर यह किया किया जा रहा है। शेष विषयों पर हम लोगों ने ६ठें

अध्याय में सामुहिक सौदेबाजी के शीर्षक के अन्तर्गत अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

## वेतन मंडल और वेतन आयोग
## (Wage Board and Pay commission)

औद्योगिक प्रश्नों पर चर्चा करते समय वेतन निर्धारण के कई ढंगों के अन्तर्गत छठें अध्याय में संराधन, अभिनिर्णय और स्वेच्छित पंचाट के बिषयों पर हमें अपने बिचार प्रस्तुत करने का अवसर मिला है। इस विषय पर हमें कुछ नहीं कहना है, क्योंकि वेतन निर्धारण अधिकारी की भूमिका से कोई विशेष भिन्न विवेचन की आवश्यकता नहीं है अथवा औद्योगिक सम्बन्धों के दूसरे विषयों की अपनी भूमिका से इसमें कोई विशेष भिन्नता नहीं है तथा होनी भी नहीं चाहिये। फिर भी इसे गम्भीरतापूर्वक प्रस्तुत करने में असफल कहा जाऊगा, यदि वे बिचार जिसे लम्बे काल से 'गिरि दृष्टिकोण' कहा जाता रहा है, श्री वी० वी० गिरि, जो कि एक पुराने सम्माननीय कर्मठ ट्रेड यूनियन नेता हैं और वर्तमान समय में भारत के उपराष्ट्रपति हैं (इस समय राष्ट्रपति पद से भी हट चुके हैं), ने लगातार ये विचार रखे हैं कि अभिनिर्णय की व्यवस्था श्रमिक वर्ग का शत्रु नं० १ है और ट्रेड यूनियन्स को प्रायः समाप्त कर देता है, उनके अनुसार अभिनिर्णय दोनों ही पक्षों प्रबन्धक और श्रमिक के हितों को एक तीसरे के हाथ में दे देता है और सहयोगी और पारिवारिक भाव के स्थान पर दो मुकदमेंबाजों का रूप दे देता हैं। यह बहुत ही बुद्धिमानी वाला उनका सुझाव है, परन्तु इसे स्वीकार करने के लिए सम्बन्धित पक्षों की इच्छा पर छोड़ देना चाहिये। आज की परिस्थिति में हम तीसरे पक्ष के दखल को सम्पूर्ण रूप से नहीं हटा सकते। परन्तु यदि किसी विवाद को तीसरे पक्ष के सम्मुख प्रस्तुत करना ही है ता पहले द्विपक्षीय पद्धति को गम्भीरतापूर्वक अपनाने की जिद करनी चाहिए।

वेतन मंडल की पद्धति पूर्णत त्रिदलीय फैसला नहीं है। ये वेतन मंडल पचाट के स्थान पर सामुहिक सौदेबाजी की रूपरेखा को अपनाते हैं। वस्तुतः इसे 'सहयोगी सामुहिक सौदेबाजी (Assisted collective bargaining) कह सकते हैं, फिर भी एक अर्थ में वेतन मंडल सामुहिक सौदेबाजी से एक कदम आगे है। वेतन मंडल औद्योगिक सम्बन्धों में उपभोक्ता को एक पक्ष के रूप में लाते हैं। वर्तमान वेतन मंडलों की रिपोर्टस, जैसा कि कोयला सीमेन्ट और बकिंग जरनलिस्ट के उदाहरण हैं, उनको देखने से यह अनुभव होता है कि भारत में वेतन मंडल की पद्धति की भूमिका अभी भी पूर्ण रूपेण नहीं समझी गयी है। सुनने में जो आया है, उसका यह भी कारण है कि वेतन मंडल केवल उन्हीं उद्योगों

में नियुक्त किये जाँय जहां पर मेहनतकश (शारीरिक श्रम करने वाले) श्रमिक की स्थिति बनी हुई है ट्रेड यूनियन बहुत कमजोर हैं, यह लगभग भुला दिया गया है कि जब सामुहिक सौदेबाजी राष्ट्रीय स्तर पर होती है तो इसके कारण कीमतों में बढ़ोत्तरी होगी, फलस्वरूप लघु उद्योगों की क्रमशः कमी के कारण एकाधिपत्य की बढ़ोत्तरी भी होती है, यदि उपभोक्ता के हितों को अन्तिम निर्णय के पहले सम्मिलित नहीं किया जाता। निष्पक्ष अथवा नियुक्त सदस्यों की नियुक्ति इस उद्देश्य की पूर्ति करती है। इस प्रकार की व्यवस्था इग्लैंड, यू० एस० ए०, कनाडा नार्वे और दक्षिणी अफ्रीका में है। उपभोक्ता हितों के प्रतिनिधि के रूप में इन सदस्यों की उपस्थिति इस तथ्य की स्वीकृति करते हैं कि वे दिन बीत गये, जब किसी औद्योगिक विवाद को दो हित पक्षों के बीच में अर्थात् प्रबन्धक और ट्रेड यूनियन में प्रतिद्वन्दिता के रूप में माना जाता था। अब इसकी अनुभूति होती है कि जन समुदाय के हित भी इस संघर्ष में निहित हैं। ग्रेट ब्रिटेन में नियोजकों और श्रमिकों से स्वतन्त्र रूप से बैठकें भी करते हैं, ताकि दोनो के बीच के भेद कम किये जा सकें अथवा उस स्थिति को लाया जा सके जिसके पश्चात् सम्बन्धित पक्षों में से किसी भी एक को उससे आगे ले जाना सम्भव न हो। उपभोक्ता प्रतिनिधि की उपस्थिति और मत देने का अधिकार दोनों पक्षों को समझौता करने के लिये प्रेरित करता है। हमारे देश में सर्व साधारण दो स्वतन्त्र सदस्य होते हैं, जो प्रमुखतया अर्थशास्त्री और संसद अथवा विधान मन्डल के सदस्य होते हैं। परन्तु उपभोक्ता प्रतिनिधि के नाते इन दोनों स्वतन्त्र सदस्यों की महत्ता को पूर्ण रूपेण मानना अभी शेष है। उपभोक्ता दोनों पक्षों के बीच में कोई संघर्ष अथवा विवाद नहीं चाहते कि जिसके कारण औद्योगिक शान्ति के वातावरण में खराबी पैदा हो, न ही वे यह चाहते हैं कि संयुक्त औद्योगिक सत्ता के कारण, वे दोनों (श्रमिक व नियोजक) एक औद्योगिक साम्राज्य उत्पन्न कर लें और शेष लोगों के विरुद्ध एक लड़ाई छेड़ दें। भारत में वेतन मंडलों के बारे में अभी तक यह चिन्ता बनी हुई है कि वे एक उद्योग के लिये राष्ट्रव्यापी वेतन ढांचे का विकास करते रहे हैं और साथ ही उसी उद्योग में भिन्न भिन्न क्रियाओं से सम्बन्धित वेतन विषमताओं के प्रश्न को उचित रूप में हल करते रहे हैं। समय समय पर वेतन मण्डलों के कुछ दूसरी पेचीदी समस्याओं, जैसे कार्यभार को निकालने, अभिनवीकरण, कार्य की कुशल पद्धतियों, कार्य के घंटे, छटनी, न्यूनतम वेतन के निर्धारण से भी सम्बन्ध रहते हैं। यह भी इच्छा प्रगट की गई है कि वेतन मण्डल श्रमिकों को प्रोत्साहन देने श्रमिकों की कुशलता को बढ़ाने और उत्पादन के आधार पर अदायगी की पद्धति को व्यापक रूप से अपनाने का रास्ता

ढूंढें, परन्तु अन्तिम दो गतिविधियों के बारे में अभी तक लगभग कोई प्रगति नहीं हुई है, क्योंकि ऐसा समझा गया है कि ये विषय इकाई स्तर पर की सौदेबाजी के लिए अधिक उपयुक्त हैं।

एक व्यापक चिन्ता इस बात पर भी प्रगट की गयी है कि वेतन मण्डल के निर्णयों को बहुत सी इकाइयों ने कार्यान्वित नहीं किया है। इन निर्णयों (एवार्डस्) के पालन हेतु कोई भी कानूनी अधिकार नहीं दिया गया है। यदि नियोजक यह समझता है कि वेतन मण्डल की सिफारशों में वेतन निर्धारण के लिये अच्छी प्रकार से स्थापित सिद्धान्त का उलंघन हो रहा है, तो वे उच्च न्यायालय और संविधान की धारा १९ के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय में व्यापार करने के आधारभूत हकों पर असंगत बाधाओं के विरुद्ध अपील कर देते हैं। अस्तु हमारा यह विचार है कि सिफारिशों को कार्यान्वित करने की अनिश्चितता के कारण कई बार वेतन मण्डल के सदस्य भी अपनी जिम्मेदारियों को हल्केपन से निभाते हैं। उदाहरण के तौर पर कोयला उद्योग के वेतन मंडल ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि वेतन ढांचे के बदलने के कारण कोयले की कीमतों का पुनरीक्षण करना चाहिए परन्तु सुझाये गये वेतन ढांचे के कारण उत्पादन कीमत की बढ़ोत्तरी का अनुमान लगाने में उसने असमर्थता प्रकट की तथा इस हद तक वेतन मण्डल के सदस्य आग्रह करते रहे कि उद्योग उनकी सिफारिशों को लागू करने में समर्थ होगा, जब तक कोयले की कीमत में साथ साथ मूल्य में बढ़ोत्तरी न होगी और वह बढ़ोत्तरी इतनी हो कि उत्पादन की कीमतों पर पड़े प्रभाव को पूर्ण रूपेण निरर्थक कर दे। इस भूमिका के सन्दर्भ में और अपनी अन्तिम रिपोर्ट के फलस्वरूप वेतन मंडल क्या आशा करता व मंशा रखता था ? इसका तो कोई अर्थ ही नहीं निकलता। वह श्रमिकों के मन में अपेक्षाओं को पैदा करता है, परन्तु वह उसे अनुमान लगाने हेतु ही छोड़ देता है कि कब इसकी पूर्ति हो सकेगी। उद्योग को कितनी कीमत वृद्धि करनी चाहिए ? वेतन मण्डल के स्वतन्त्र सदस्यों ने कीमत बढ़ोत्तरी सम्बन्धी उपभोक्ताओं के मत के बारे में क्या सोचा था, जब इसकी मात्रा का भी निर्णय नहीं किया गया ? यह वह उदाहरण है जिसमें एक अच्छी पद्धति को खराब ढंग से प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार की बातें सीमेन्ट वेतन मण्डल के मामले में हुयी है, परन्तु इस मामले में सरकार ने वेतन मण्डल का यह इरादा अमान्य कर दिया कि उद्योग की क्षमता अतिरिक्त वेतन बिल को सहने की नहीं है। सरकार ने सीमेंन्ट उद्योग को यह आदेश दिया कि वेतन ढांचे के अन्तर्गत अतिरिक्त बिल को सहे, क्योंकि सरकार का यह मत है कि तकनीकी सुधार अच्छे काम करने की पद्धतियों और श्रम शक्ति के उपयोग

द्वारा क्षमता बढ़ाकर यह दिया जा सकता है। यह वह उदाहरण है जैसा कि उसे होना चाहिए। परन्तु इसकी कोई गारन्टी नहीं है कि इसे उस पद्धति से किया जायगा, जो दोनों पक्षों को स्वीकार हो और बढ़े हुए वेतन बिल को शीघ्र कार्यान्वित किया जायगा। दोनों पक्षों द्वारा सामुहिक सौदेबाजी में इस पर विस्तारपूर्वक निर्णय किया जा सकता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत कार्य-क्रियाओं में परिवर्तन, काम के बोझ में परिवर्तन और भिन्न भिन्न कार्यों के लिए व्यक्तियों की नियुक्ति के प्रमुख निर्णय निहित हैं। वर्किंग जरनलिस्ट और नान जरनलिस्ट से सम्बन्धित वेतन मंडल के परिणाम भी इसी प्रकार की समस्याओं को प्रस्तुत किये हैं। ऊपर लिखे हुए उदाहरणों से ऐसा मालूम होता है कि समस्यायें मुख्यतः इसलिए पैदा हुयीं कि सम्बन्धित पक्षों में वेतन मण्डल में अपनी उपयुक्त भूमिका को पूरी तरह से नहीं समझा। नियोजकों और कर्मचारियों के प्रतिनिधियों को यह अनुभव करना चाहिए कि वेतन मण्डल की कार्यवाही के दौरान उन्हें एक सामुहिक समझौते को तय करना है। अतिरिक्त पक्ष उपभोक्ता है, न कि एक स्वतन्त्र विशेषज्ञ, जैसा कि कई बार मान लिया जाता है। उद्योग की पेचीदीगियां उद्योग से सम्बन्धित दोनों पक्षो के प्रतिनिधियों को भली भांति मालूम है (स्वतन्त्र सदस्य अथवा अध्यक्ष कितनी ही क्षमता के क्यों न हों, दोनों आधारभूत पक्षों की जानकारी का विकल्प नहीं प्रस्तुत कर सकते)। दोनों पक्षों में मतभेद के समय स्वतन्त्र सदस्य की भूमिका कानूनी सलाहकार के रूप की है, ताकि पीछे लगकर मनवाने अथवा एक दल के पक्ष में मतदान कर निर्णय करवाने की कोशिश करें, ऐसा न हो सके तो उनकी भूमिका उपभोक्ता (राष्ट्रहित) का संरक्षण करना है, जबकि दोनों पक्ष राष्ट्र के हितों की कीमत पर हल निकालने की कोशिश करते हैं। इस सन्दर्भ में उनकी भूमिका एक मात्र आवश्यक प्रभाव लाने की है जिसके अन्तर्गत उत्पादकता के ढंगों के द्वारा जीवन स्तर को बढ़ा सकें, जिसका विशुद्ध द्विपक्षीय पद्धति के आधार पर निर्णय करना कठिन होगा। ऐसे सन्दर्भ में दूसरे जुड़े हुए प्रश्न जो वेतन मण्डल द्वारा लिए जाने चाहिए, जैसे-कार्य कुशलता पद्धतियां कार्यभार का हिसाब, अभिनवीकरण के कारण श्रमिकों की छटनी, उत्पादन के अनुसार वेतन अदायगी, काम के घण्टे तथा अन्य आदि उक्त विषय वेतन मंडल की विषय सूची में अपना स्थान पाती हैं। इन सभी विषयों के लिए पर्याप्त मात्रा में पूर्व तय्यारी (गृह कार्य), भिन्न भिन्न समस्याओं का गहरा अध्ययन और संघर्ष के सभी केन्द्र विन्दुओं पर विस्तृत वार्तालाप निहित हैं। वेतन मंडल के लिये नियुक्तियां करते समय इस अवश्यम्भावी परिश्रम से भागने और कोई भी कमजोरी दिखाने की बातों पर ध्यान रखना चाहिए। वेतन मण्डल की सही भूमिका यह होती है,

जब वह वेतन के न्यूनतम दर को स्थापित करने की पहली प्रक्रिया के साथ अपने प्राथमिक निर्णय पर पहुंचता है और ऐसा करने पर ही बड़ बेकार की मेहनत से बच सकता है। भारत में वेतन मंडलों की इस पहली प्रक्रिया का कुछ उद्योगों के लिए महत्ता है, जो असंगठित क्षेत्र में है, जबकि इसकी द्वितीय और अधिक स्थायी भूमिका संगठित क्षेत्र के लिए है, जब और जैसा कि राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था की संतुलित प्रगति के हितों के रूप में उपभोक्ता का हित भी शामिल किया जाता है।

इन भिन्न भिन्न भूमिकाओं को ध्यान में रखकर जो संगठित और असंगठित उद्योगों के वेतन मण्डलों के कार्य के लिए होती हैं, हम वेतन मण्डल और उनके निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिए एक बिल्कुल भिन्न पद्धति प्रस्तुत करते हैं, जिसमें उन्हें कानूनी स्तर दिया जाना जाहिए। सर्व प्रथम हम अनुभव करते हैं कि वेतन मंडल बनाने के निर्णय एक स्थायी वेतन मण्डल अथवा त्रिदलीय मण्डल के द्वारा लिया जाना चाहिये। इन मण्डलों का उल्लेख हमारी याचिका के ६ठें अध्या में किया गया है। इस मण्डल के पास सभी उद्योगों और उसकी इकाइयों तथा सभी प्रकार के व्यवसायों से सम्बन्धित एक दिए गये समय के लिये प्रचलित वेतन सम्बन्धी पूर्ण और अद्यतन (uptodate) आंकड़े होने चाहिए। आंकड़े इकट्ठे करने वाले विभाग को, सभी वेतन मंडलों और भिन्न भिन्न त्रिदलीय मंडलों को तथा यूनियन और प्रबन्ध संगठनों को अनुमानित शर्तों पर उचित जानकारी प्रस्तुत करने में वेतन मंडल का सहायक होना चाहिए। स्थायी त्रिदलीय मंडल के पास वेतन सलाहकार व्यवस्था होनी चाहिए, जो इसी प्रकार के कामों में लगा हो, जैसे नाम क्रम और जिम्मेवारियों के निश्चितीकरण, राष्ट्रीय व्यवसायों के वर्गीकरण तथा कार्य मूल्यांकन के लिए एक निश्चित स्तर की पद्धति से सम्बन्धित आंकड़ों के एकत्रीकरण के कार्य हैं और उन नियमों और स्तरों का विस्तृत उल्लेख किया जाना चाहिए। कार्य मूल्यांकन द्वारा कार्य समूह के भिन्न भिन्न प्रकार के लिये विभिन्न पक्षों और मात्राओं के आधार पर अंक देने की पद्धति को निर्धारण करना है। मूल्यांकन करने के लिए जो इस विषय से सम्बन्धित पक्षों को नियन्त्रित करेंगे उसका हमने पहले ही विस्तृत उल्लेख किया है जबकि वेतन विषमताओं के विषय की चर्चा की थी। राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार के वेतन सलाहकार की व्यवस्था उद्याग सम्बन्धी कार्यवाही में सम्बन्धित सभी पक्षों को बहुमूल्य जानकारी और सलाहकार सेवा प्रदान करने में एक लम्बी भूमिका निभाने में सक्षम होगी, साथ ही सामुहिक सौदेबाजी और त्रिपक्षीय मंडलों के कार्य हेतु यह समय व शक्ति के नुकसान को बचायेगी जो हर एक

पक्ष द्वारा आंकड़ों को इकट्ठा करने और उसकी सचाई की जांच करने में खर्च हो जाती है। वेतन मंडलों के मामलों में यह एक और सेवा करेगा, जो भिन्न-भिन उद्योगों में वेतन मण्डलों को बनाने और उनकी शर्तों को तैयार करने के प्राथमिक निर्णय से सम्बन्धित है। आजकल ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, जिसमें सामुहिक सौदेबाजी के समझौतों अथवा इकाई स्तर पर के फैसलों को पूर्ण रूप से दुर्लक्ष्य किया गया है, जब एक वेतन मण्डल को बनाया जाता है अथवा उसके विचारणीय विषय अथवा अन्तरिम रिपोर्ट या अन्तिम रिपोर्ट व सिफारिशों की रूपरेखा बनायी जाती है। इसने बहुत सी द्विविधा पैदा की है। विशेषतया जब किसी बहुप्रकार के श्रेणी के उद्योग–जैसे कि इन्जीनियरिंग के लिए वेतन मंडल बनाया जाता है, बहुत सी समस्यायें पैदा हो जाती हैं जब मंडल अथवा उसको बनाने वाली अधिकृत समिति भिन्न भिन्न व्यवसायों के वर्गीकरण और उसके मूल्यांकन सम्बन्धी वर्तमान आंकड़ों अथवा मार्गदर्शनों के बारे में अच्छी प्रकार से जानकारी नहीं रखती। इस प्राथमिक कठिनाई को हल किया जा सकता है, जब वेतन मण्डल और उनकी शर्तों को बनाने के कार्य को स्थायी त्रिदलीय मंडल को वेतन सलाहकार पद्धति के विभाग द्वारा उचित रूप से सहायक मिले। विभिन्न उद्योगों के वेतन मण्डलों की नियुक्ति के समय को निर्धारित करने के लिए भी यही तरीका उपयोगी होगा, परन्तु वेतन मण्डल के लिए नियुक्त होने वाले विभागीय लोगों (Personnel) को को सरकार चुनें। परन्तु सरकार उन संगठित उद्योगों में मान्यता प्राप्त यूनियनों के द्वारा नियुक्त प्रतिनिधियों अथवा उन केन्द्रीय श्रम संगठनों, जिनका उस उद्योग में पिछले लगातार ३ वर्षों से १० प्रतिशत तक की सदस्यता है, के प्रतिनिधियों को अनिवार्य रूप से नियुक्त करना चाहिए, शेष ढांचा मुख्यतः वर्तमान ढांचे के समान बना रहना चाहिए। अर्थात् नियोजक के प्रतिनिधियों की समान संख्या, २ स्वतंत्र सदस्य जो उपभोक्ता के हितों का प्रतिनिधित्व करें और जो इस काम के लिए उचित भूमिका के योग्य हों और पूरे समय में काम करने वाला एक स्वतन्त्र चेयरमैन तथा शेष प्राविधान जैसे उप समितियों को बनाने, चैम्बर बैठकों व सार्वजनिक बैठकों से सम्बन्धित नियम तथा शेष कार्य बिधि नहीं होनी चाहिए, जो वर्तमान समय में हैं। संगठित उद्योगों में इस प्रकार के वेतन मंडलों की सर्व सम्मति सिफारिशें अनिवार्य रूप से लागू होनी चाहिए और कानूनी अस्तित्व भी प्राप्त होनी चाहिए, शेष सिफारशें जो सर्व सम्मत नहीं हैं, के निर्णय के लिए सम्बन्धित विधान मंडल अथवा संसद ही अन्तिम अधिकार रखें। असंगठित उद्योगों में जहां कोई भी मान्यता प्राप्त यूनियन (यूनियन जिसकी ३० प्रतिशत सदस्यता न हो) नहीं है सभी

नियुक्तियां सरकार द्वारा होनी चाहिये, परन्तु वेतन मण्डल की रिपोर्ट जो सर्वमान्य हो अथवा न हो, की अन्तिम स्वीकृति हेतु उपयुक्त विधान मण्डल अथवा संसद को प्रस्तुत करना चाहिए।

सरकारी कर्मचारियों के मामले में जो एक मात्र सचिवालय सेवाओं के अन्तर्गत है और सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों से भिन्न हैं, एक निश्चितकाल में वेतन आयोग की निबुक्ति होनी चाहिये। इस सन्दर्भ में हम एक निश्चित रूप रेखा (चक्र) चित्रण करते हैं, जो अधिकतम समाधान को प्रस्तुत कर सके। चुनाव के तुरन्त बाद नई सरकार जो सत्ता में आती है, को सभी आर्थिक हित सम्बन्धी पक्षों का गोलमेज सम्मेलन बुलाना चाहिये, जिसमें सम्पूर्ण श्रम आन्दोलन, जिसमें कर्मचारी भी सम्मिलित हैं, को उपयुक्त प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। इस सम्मेलन का काम होगा कि वह आगामी योजनाकाल के लिए वेतन, कीमतों, आय और टैक्स सम्बन्धी एक सामुहिक और व्यापक नीति सुझाये। सम्मेलन की सम्पूर्ण कार्यवाही व वार्तालाप–जिसका निर्णय सर्वमान्य हो अथवा न हो, योजना की रूपरेखा के लिए योजना आयोग को वह प्रस्तुत करे। यह इसलिए कहा जा रहा है कि ट्रेड यूनियन आन्दोलन का भी आधारभूत आर्थिक नीति के बनाने में हाथ रहे। हम यह अनुभव करते हैं कि पंचवर्षीय योजना को अपनाने और उसे प्रकाशित करने का उपयुक्त समय आम चुनाव के पश्चात सरकार बनने के २ वर्ष बाद रहे। दो वर्ष की यह अवधि योजना के आकार को नई सरकार द्वारा प्रमाबित करने के लिये पर्याप्त है। इसी काल के केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संगठनों और सरकारी कर्मचारियों की यूनियनों को वह अवसर मिलेगा कि वे राष्ट्रीय वेतन आय नीति सम्बन्धी अपने नए विचारों को नई सरकार से वार्तालाप करके प्रस्तुत करे। सरकार द्वारा पंचवर्षीय योजना को स्वीकार करने और प्रकाशित करने के तुरन्त पश्चात् वेतन आयोग को अनिवार्य रूप से उसे नियुक्त करना चाहिए, ताकि नई योजना के व्यापक नीति व ढांचे के अन्तर्गत सरकारी कर्मचारियों के वेतन क्रम और दूसरी सेवाओं की शर्तों का पुनरीक्षण कर सके और तदनुसार सिफारशें कर सकें। इसलिए हर पांचवें साल और हर चुनाव के ३ वर्ष के बाद सहकारी कर्मचारियों को राष्ट्रीय विकास योजना और राष्ट्रीय वेतन नीति के सन्दर्भ में अपनी मांगों के लिए दबाव डालने का अवसर मिलना चाहिये ताकि इस वेतन नीति को बनाने में उन्हें पहले ही अवसर मिल सके। सरकारी कर्मचारियों के लिए यह अविवार्य नहीं है कि वे वेतन आयोग की नियुक्ति की मांग करें। हर ५ वर्ष बाद यह एक नियमित तथा नियत काल की पद्धति हो जानी चाहिये। आमतौर पर वेतन आयोग द्वारा सरकारी

कर्मचारियों को दी गई सुविधायें, सरकार के लिए बन्धनकारी होनी चाहिए, परन्तु जिस एवार्ड में सरकार परिवर्तन चाहती है, उसके लिए यह अनिवार्य होना चाहिए कि इन परिवर्तनों के लिए उचित बिधान मण्डल की वह स्वीकृति प्राप्त करे।

वेतन निर्धारण व्यवस्था की पद्धति संक्षेप में ऊपर लिखे संदर्भ में होनी चाहिए। सामुहिक सौदेबाजी को स्वाभिमान का स्थान मिलना चाहिए, परन्तु यह अनिवार्य रूप से व्यापक सहमति पर आधारित होनी चाहिए इकाई स्तर की सौदेबाजी के लिये अगला संयत्र निजी पंचाट होना चाहिए। उद्योग सम्बन्धी राष्ट्रीय सौदेबाजी के लिये एक वेतन मंडल होना चाहिए, यदि स्थायी त्रिदलीय ऐसा चाहता है। संगठित उद्योगों में वेतन मण्डलों के सर्वमान्य निर्णय अनिवार्य रूप से माने जाने चाहिए, जबकि शेष की विधान मंडलों अथवा संसद के लिए छोड़ देना चाहिए। जब सभी मार्ग बन्द हो जांय, तो अन्तिम प्रयत्न अभिनिर्णय और न्यायाधिकरण द्वारा होना चाहिए। सरकारी कर्मचारियों के लिए एक नियत समय का वेतन आयोग होना चाहिए। यह योजना बनने के पश्चात बनना चाहिए और यूनियनों उचित नीति को प्रभावित करने के लिये अपने दायित्व निभाने चाहिये। असंगठित उद्योगों के लिए वेतन आयोग, एवार्ड अथवा वेतन मडल के रिपोर्टों में परिवर्तनों की स्वीकृति के लिये बिधान मंडलों अथवा संसद के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहिए। इन सभी विषयों में विस्तृत जानकारी ऊपर दी जा चुकी है।

---

खण्ड—३ अध्याय—१४

# श्रमनीति

# श्रम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा

—भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

भारतीय मजदूर संघ द्वारा राष्ट्रीय श्रम आयोग को प्रस्तुत किये गये 'Labcur Policy' अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है।

हिन्दी में इस पुस्तक के सभी २० अध्याय अलग-अलग पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये गये हैं।

आपातकालीन स्थिति में जिला कारागार कानपुर की बन्दी अवधि के अन्तर्गत हमारे परम मित्र आई० आई० टी० कानपुर के प्राध्यापक डा० भूषणलाल धूपड़ के सहयोग से इस अध्याय का अनुवाद किया गया है।

भारतीय मजदूर संघ की ओर से मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

—रामनरेश सिंह

# अध्याय–१४ भाग ३

# श्रम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा

**पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः । ऋग्वेद ३।७५।१४**
**(मनुष्य को हर प्रकार से मनुष्य की सुरक्षा करनी चाहिए)**

## आधार—परिवार

आज जब हम श्रम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा के कई पक्षों पर दृष्टि-पात करते हैं और उस उद्देश्य व मन्तव्य की खोज करते हैं, जिसने उद्योग को खपत की वस्तुओं के ऊपर खर्च करने की प्रेरणा दी है जो कि उत्पादन और वितरण से सम्बन्धित गतिविधियों से भिन्न है तो हम पाते हैं कि मुख्यतः हमारी खोज व्यर्थ है। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि व्यापक मानववादी दृष्टिकोण अथवा पितातुल्य प्रबन्ध के विचारों से प्रेरित होने के बजाय कोई और उद्देश्य अथवा हेतु काम कर रहा है। ऐसी टिप्पणी करने का हमें कोई अवसर पहले नहीं मिला, जब हम विशेष सुविधाओं के विषय को १०वें अध्याय में प्रस्तुत कर रहे थे। उस टिप्पणी में इस विषय को कोई सबल वैचारिक आधार नहीं दिया गया। उस तर्क वितर्क का निष्कर्ष हमने इस सुझाव द्वारा प्रस्तुत किया था कि जिन्हें विशेष सुविधायें कहा जाता है, उसको सामुदायिक सेवाओं के नाम से कहा जाय और इसके बजट और प्रबन्ध को औद्योगिक परिवार के आधीन किया जाय किसी एक उद्योग में काम करने वाले सभी व्यक्तियों को मिलाकर औद्योगिक परिवार बनता है इस प्रकार स्वायत्त-शासी, स्व निर्धारित श्रमिक वर्ग के समुदायों के बनाने का रास्ता खड़ा होगा, जो एक आदर्श सामाजिक ढांचे का भाग होगा। अब समय आ गया है जब कि इसके पहले हम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित नियंत्रित करने वाले विचारों की रूपरेखा प्रगट करें, सामाजिक कल्याण के आधारभूत विचारों के बारे में कुछ अधिक ध्यान दें। यदि वेतन अथवा औद्योगिक सम्बन्धों से सम्बन्धित (ब्योरीज) को अर्थ शास्त्र और सामाजिक विज्ञान के सामूहिक विषय के रूप में सोचा गया और तीसर विषय "राजनीति" को इनसे जोड़ा गया तो ये ३ विषय त्रिभुज के कोने के रूप में माने जा सकते हैं। कल्याण और सामजिक सुरक्षा का विषय सामाजिक ज्ञान के सम्पूर्ण क्षेत्र

को आच्छादित करना है और मनुष्य मात्र की आधारभूत आवश्यकताओं से सम्बन्धित होना शुरू हो जाता है। यह वह क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत समुदाय के कार्यकलाप अपनी आय की खपत को व्यवस्थित करने के लिये नियन्त्रित कदम उठाता है, न कि जैसा व्यक्ति चाहता है बल्कि व्यक्ति जैसा सामाजिक व्यवस्था के उद्देश्य निर्धारित होते हैं। चूँकि हमने सामाजिक व्यवस्था में निहित विषयों को विस्तृत रूप से प्रगट नहीं किया है वरन् हमारी कल्याण और सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं का केवल संक्षेप में वर्णन किया गया है और यह उस विषय के संदर्भ में बहुत कम हैं, जिसमें कि काफी कुछ जोड़ा जा सकता है ताकि विदेशी संदर्भ में इसका कुछ अर्थ हो सके।

मानवीय कल्याण और सामाजिक सुरक्षा की सही आवश्यकताओं के संदर्भ में अथवा सामाजिक व्यवस्था के सयंत्र हेतु मानव विकास के संदर्भ में भी सर्वप्रथम यह अनुभव किया जाता है कि विदेशी तकनीकी को अविवेकी ढंग से अपनाना और केवल उसी पर छोड़ देना—मानवीय उत्थान पर सबसे गम्भीर हमला हो सकता है। इसके एक मात्र आर्थिक पक्षों ने पहले से ही आधुनिक महानगरों (मैट्रोपोलिटन) को बनाया है और इससे सम्बन्धित रोगग्रस्त सभ्यता, गन्दी बस्तियों तथा रहने व चलने हेतु स्थान की कमी, पानी की कमी, व्यक्ति के अमानवीयकरण और अपने स्वयं को ही भूले हुये व्यक्तित्व के समूह का निर्माण किया है। यह व्यक्ति को उसके सामाजिक मूल स्थान से उखाड़कर आरक्षित बनाता है और तत्पश्चात उसे जन-जीवन की होड़ के विरुद्ध सुरक्षा खोजने के लिये वाध्य करता है। यह व्यक्ति के स्वास्थ्य को नष्ट करता है, घुयें, तनाव, थकान व अनियमितताओं के कारण; 'शीघ्रता, चिन्ता और मौत' की संस्कृति के कारण; स्वास्थ्य और व्यक्तित्व के विनाश व पारिवारिक जीवन की कमी के कारण; नीरसता व अलगाव, नियमों और नियंत्रणों की श्रृंखला और यांत्रिकीय निर्जीव दिनचर्या के कारण उसकी मनोभूमिका नष्ट हो रही है। उसने उत्पादक प्रक्रियाओं को सामाजिक गतिविधियों का प्रभावी केन्द्र बना दिया है और उत्पादन माध्यम के लिये व्यक्तियों की नियुक्ति कर उनकी सेवाओं का अत्यधिक उपयोग किया जा रहा है। यह एक नग्न तथ्य है—एक व्यक्ति जैसा कि एक सक्रिय श्रमिक अपने आपको देखता है कि वह उस खपत की एक इकाई है, जिसके लिये वह परिश्रम करता है और जिसे अभी भी परिवार के रूप में देखा जाता है, किन्तु इस दृष्टिकोण को भी खो दिया जाता है और औद्योगिक अधिकारियों द्वारा बड़ी हिचकिचाहट और द्विविधा के अन्तर्गत इस भाव को स्वीकार किया जाता है। हम केवल एक मात्र ऐसे विषय का उल्लेख कर रहे हैं, जिसके अन्तर्गत यंत्र और उसके उपकरण ने हमारी दृष्टि को ही अंधा बना दिया है। यदि हम अपने लोगों के उत्थान के लिये कोई भी गम्भीर चिन्ता दिखाना चाहते हैं तो हमको इस तथ्य को आधारभूत रूप में स्वीकार करनी चाहिये कि हमने यंत्र को

अंधे होकर ईश्वर तुल्य बनाकर और सभी प्रकार के सुख व प्रगति को देने वाला सर्वशक्तिमान माना है। यही हमारी सामाजिक अव्यवस्था की जड़ हैं, जिसका प्रकटीकरण इन रूपों में है–अनुपस्थिति, अनुशासनहीनता, हड़ताल, कानून उलंघन, हिन्सा, मान्यताओं का नष्ट होना, गुण्डागर्दी और व्यापक हुल्लड़बाजी। इसका यह अर्थ नहीं कि हम यांत्रिकीकरण के विरुद्ध हैं अथवा यांत्रिकीकरण न होनी चाहिये पर हम इसके अविवेकपूर्ण उपयोग के विरुद्ध हैं। जिस समय एक मशीन अथवा प्लान्ट बैठायी जाती है, समाज की बचत को एक प्रोजेक्ट के लिये लगाया जाता है (क्योंकि सभी प्रकार की बचत अन्ततोगत्वा सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही सम्भव होती है), जो एक सामूहिक प्रयत्नों के द्वारा ही चलाई जा सकती है। परन्तु यदि यह प्रोजेक्ट उस सामूहिकता की सही आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता, तो यह माना जायगा कि योजना सामाजिक दृष्टि से दोषपूर्ण बनी हुई हैं। इस प्रकार सार्वजनिक कीमत का धन अत्यधिक मात्रा में लगाकर एक ईमानदार समाजवाद नहीं बनाया जा सकता। इसी प्रकार से मशीन व्यक्ति का मालिक बन गई है, परिणामस्वरूप मानव के सुख को नष्ट कर दिया है तथा स्वाभाविक उत्कर्ष में इसने बाधा उत्पन्न कर दी है। जब तक जड़ मूल से इस बीमारी को ठीक नहीं किया जाता तब तक कल्याण और सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना केवल मात्र पैबन्द लगाने समान रहेगी। मशीनीकरण की सभ्यता व्यक्ति को आग्रह पूर्वक बताता है कि वह अपने घर को भूल जाय। किन्तु इसके बदले में उसे परियोजना अथवा मशीन पर घरेलू वातावरण को वह अनुभव करने नहीं देता और न ही यह देखने की चिन्ता करता है कि उसके पहले वाले घर (वास्तविक घर) की क्या स्थिति है! आधुनिक कारखाने के श्रमिक अथवा कार्यालयों के क्लर्क को इतनी शक्ति भी नहीं रहती कि वे अपने बाल-बच्चों से घुल मिल सकें तथा उनके उत्थान और शिक्षा की देख-रेख कर सकें। उनका कोई सच्चा मित्र और सच्चा पड़ोसी भी नहीं होता फिर जीवन की कौन सी गरिमा उसको शक्ति प्रदान कर सकती है और उसका संतुलन ठीक बनाये रख सकती है? उसको यह बताया जाता है कि वह भाग्यशाली है क्योंकि उसे काम करने के स्थान से ७०–८० किलोमीटर दूर किसी स्थान पर एक कमरे वाला मकान मिल गया है। यदि उसके पत्नी व बच्चे अस्वस्थ हैं, तो यह निश्चित नहीं कि वह बीमारों की आवश्यकतानुसार देख-रेख कर सकेगा। ऐसा कर सकने के पहले उसे अपने अधिकारी (बास) की कृपा और दया के लिये प्रार्थना करना पड़ेगा। नियोजक की दृष्टि में उसके माता पिता अथवा अन्य सम्बन्धी–कोई भी नहीं हैं। कुछ मामलों में तो नियोजकों ने कर्मचारियों को दिये गये कोठरी में उनके माता पिता व अन्य सम्बन्धियों को भी ठहरने की अनुमति नहीं दी है। आमतौर पर उन्हें चिकित्सा और यातायात सुविधाओं के लिये नहीं गिना जाता। इसी भांति कर्मचारियों की मृत्यु के तुरन्त पश्चात उसकी

विधवा पत्नी और बच्चों को निराश्रित व असहाय बना दिया जाता है। उन्हें दूसरे लोगों के साथ आड़ लेने के लिये बाध्य किया जाता है, जबकि वे अपने साथ रहने की एक दिन तक की अनुमति देने में भी असमर्थ रहते हैं। क्योंकि अधिकांश कालोनीज में कर्मचारियों को अपने सम्बन्धियों मित्रों व अतिथियों को टिकाने की भी अनुमति नहीं हैं। अपने पूरे कार्यकाल की अवधि में एक कर्मचारी अपने घर पर नहीं रह पाता। कर्मचारी को घर से कार्य स्थल की दूरी तय करके पहुँचने की जिम्मेवारी उद्योग की नहीं है। उद्योग अपनी प्राथमिक जिम्मेवारी नहीं मानता कि अपने कर्मचारियों की सामाजिक व सामूहिक जीवन के प्रति उसे कुछ करना भी है। यदि वह श्रमिक के सामूहिक जीवन के लिये कुछ करता है तो उसकी श्रम कल्याण के रूप में प्रशंसा की जाती है। यदि वह श्रमिक को रुग्णावस्था सुविधा अथवा भविष्यनिधि या पेन्शन का वितरण करता है तो यह माना जाता है कि कर्मचारी की वृद्धावस्था अथवा रुग्णावस्था के लिये अपनी जिम्मेवारी उसने पूरी कर दी है। उसके सामने यह कोई प्रश्न नहीं है कि यह राशि उस अस्वस्थ व वृद्ध के लिये कितने वास्तविक मूल्य की है, जबकि कर्मचारी को उद्योग की सेवा के लिये अपना सम्पूर्ण कार्य जीवन अर्पण करना पड़ता है। वास्तविक रूप से उसे अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओं तथा जीवन के लिये उद्योग पर निर्भर रहना पड़ता है। आधुनिक उद्योग ने अपने प्रारम्भिक काल से ही जीवन मूल्यों में ऐसा परिवर्तन लाया है, जो मनुष्य के रहन सहन व उत्थान के लिये आवश्यक माना जाता है, और वह एक ही मूल्य है, जिसकी वेदी पर दबाकर उसे बलि चढ़ा दिया जाता है। वह मूल्य है–'धन'। उस धन के के लिये श्रमिक से निम्न बातों को करने के लिये कहा जाता है–पारिवारिक जीवन की आवश्यकता को छोड़ने के लिये, अपनी भावनाओं और सम्बन्धियों को छोड़ने के लिये, अपने व्यक्तित्व को भुलाने के लिये और पहिये व मशीन के दांत बनने की स्वीकृति देने के लिये, शहरी कोठरियों में रहकर अपने आपको दम घुटाने के लिये, गाड़ी और अन्य सवारियों व बसों की भीड़ में दौड़ने के लिये, शहरी खेलों से सबक सीखने हेतु अपने बच्चों को बुलाने के लिये, सही मित्रता के स्थान पर केवल क्लब की संस्कृति को अपनाने के लिये और दिशाहीन सभ्यता में बने रहने के लिये आदि। श्रमिकों को उक्त बातें इसलिये करनी पड़ती है, क्योंकि जो आर्थिक लक्ष्य को नियंत्रित करते हैं, वे प्रगति के रास्ते के लिये मशीनीकरण की शक्ति पर ही पूर्ण निर्भरता रखते हैं।

हमारी यह आलोचना एक विशेष कल्याणकारी कार्य के लिये है, उदाहरणार्थ आवास व्यवस्था। मनुष्य की एक प्राथमिक भौतिकीय आवश्यकता तो उसके पनाह लेने की रहती है। यदि उसका मकान उसके कार्य स्थल के निकट है तो वह समय

व धन-दोनो में उपयुक्त बचत कर सकता है। यदि उसे यह अनुभव कराया जा सके कि यह मकान उसका अपना वास्तविक घर है, तो उसकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इन सभी बातों को आज अच्छी प्रकार से मान्यता है और उसके लिये कोई सबूत नहीं चाहिये। परन्तु जिस समय उद्योग के सम्मुख इस गम्भीर सुझाव को प्रस्तुत किया जाता है तो वे इस विषय से दूर भागते हुये दिखाई देते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि उद्योगों ने कार्यस्थल को चुनने में मानव जीवन के इस पक्ष को प्राथमिक स्थान नहीं दिया है। वे सम्पत्ति के ही तथ्यों के परिणाम को ध्यान में रखकर यह तय करते हैं कि उन्हें किस स्थान पर सर्वाधिक लाभदायक रोजगार प्राप्त होगा। यदि हम उद्योग को मनुष्य जीवन और समाज का सेवक बनाना चाहते हैं, तो हमें हर एक श्रमिक के लिये एक उचित घर दिलाने के लिये दबाव डालना चाहिये इसके पहले कि उद्योग को काम करने की स्वीकृति दिया जाय। विषय यहां ही समाप्त नहीं होता, बल्कि प्रारम्भ होता है। उद्योग और राष्ट्र को स्वस्थ बनाये रखने के लिये नियोजक को यह देखना चाहिये कि श्रमिकों को उस स्थिति में रखे, जिसमें कि वे पूर्ण समाधान प्राप्त कर सकें जितना कि वे व्यक्तिगत रूप में सक्षम हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु नियोजक को जीवन की सही मान्यताओं के बारे में कुछ प्राथमिक दृष्टिकोण रखना चाहिये। पुराने दिनों में भी राजा जनता का एक पितातुल्य संरक्षक था। 'रघुवंश' राजा के बारे में इस प्रकार लिखता है –

"सं पिता पितरः तेषां केवलं जन्महेतवः।"

अब हमें इस पुरातन विचार से कोसों आगे जाना चाहिये, परन्तु हम अपने पूर्वजों के मुकाबले में वास्तव में पीछे हैं। हमारी कल्याणकारी गतिविधियों के प्रभाव का भी अध्ययन होना चाहिये। किसी नियोजक के लिये अपने कर्मचारियों और उनके बच्चों के लिये एक पुस्तकालय खोल देना ही पर्याप्त नहीं है और तत्पश्चात उपन्यास पढ़ने वाली आदतों से ही समाधान कर लें वह यदि क्लब की इमारत और नाच गाने के हाल बनाने के लिये उत्साहित है और एक मन्दिर अथवा चर्च बनाने के प्रति उसे चिढ़ है, जो कि उसके औद्योगिक आवास कार्यक्रम के भाग के रूप में है, तब यह अवश्यमेव कहना चाहिये कि उसने सच्चे उत्थान व कल्याण को बिलकुल ही नहीं समझा है एक औद्योगिक संस्थान का यह अर्थ नहीं है कि लगाई गयी मशीनें एक व्यापक श्रमिक वर्ग की कालोनीज से घिरी हुई हों, जो एक औद्योगिक साम्राज्य के रूप में नजर आयें वरन् एक व्यापक विश्व और परिवार में एक छोटा विश्व और परिवार के रूप में उद्योग का व्योहार होना अपेक्षित है। इसका अर्थ यह है कि यह एक पहलू में राष्ट्र है और दूसरे पहलू में उसमें रहने वाले परिवारों का समूह है। परिवार केवल मात्र स्थूल शरीर से नहीं है, वरन् उसके पास पारिवारिक मन और पारिवारिक आत्मा भी है। यह उस मनोभूमिका वाले

वृत्ताकार क्षेत्र की जो विभिन्न इकाइयों के नमूने पर बनती है-नहीं है, जिसके अन्तर्गत एक वृत उद्योग अथवा औद्योगिक परिवार के नाम से कहा जाय जो स्वतंत्र रूप से सोचे और योजना बनावे बिना किसी दूसरे वृत्त के लगाव से। यह दूसरा वृत्त वह है, जिसे व्यक्तिगत पारिवारिक जीवन अथवा राष्ट्रीय पारिवारिक जीवन कहा जाता है। यदि प्राथमिक पारिवारिक जीवन की यह आवश्यकता है कि परिवार में अथवा घर में व्यक्ति का जीवन अच्छे संस्कारों से भरा हो, तब औद्योगिक जीवन की गतिविधियों को पारिवारिक जीवन की इन आवश्यकताओं से किसी प्रकार सम्बन्धित किये बिना योजना नहीं बनानी चाहिये और न करनी ही चाहियें। बल्कि इसे जीव प्राणी के समान औद्योगिक सम्बन्धों को पारिवारिक जीवन के समान खड़ा होना चाहियें। जैसे एक पेड़ उसके तने, पत्तियां, फूल और फल-सब एक बीज से उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार जीवन के इस विचार के द्वारा ही जीवन के मूल्य, जैसे निष्ठा, सच्चाई, श्रम को आराधना मानने की वृत्ति, भक्ति, विश्वास, संतुलन, कर्तव्यनिष्ठा, उपयोगिता, सिद्धान्तवादिता आदि जो परिवार में पैदा होते हैं, उसे औद्योगिक और राष्ट्रीय जीवन में भी रोपा जा सकता है। भारतीय संस्कृति ने मानव के अन्तःकरण के विकास को हमेशा मनके अखण्ड मण्डलाकार रूप के विकास के समान माना है। यह जीवन को विभिन्न भागों में नहीं बाँटता है, जिसमें कि परिवार, उद्योग और राष्ट्र और दूसरी भिन्न-भिन्न संस्थायें जैसे-पेन्शनर्स कालोनी के स्वतंत्र रूप से प्रबन्ध किये जाय। इस प्रकार की प्रबन्ध व्यवस्था के अपनाने के लिये विदेशी विचार हमें उपदेश देने के लिये इच्छुक हैं। साथ ही जीवन के लिये भारतीय विचार ने अपने अर्थ और काम के ही प्रारम्भिक दो पुरुषार्थों तक नहीं सोचा है। उसके अनुसार सामाजिक जीवन के इस प्रकार के वर्गीकरण द्वारा अथवा पदार्थ और धन की पद्धतियों द्वारा मानव का समाधान नहीं किया जा सकता। उपनिषदों के अनुसार ठीक ही कहा गया है कि मनुष्य का प्राथमिक स्वरूप मन है, मनोमय प्राणशरीर नेता। यह बहुत से विदेशी मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि पश्चिम में मशीनीकरण की सभ्यता बहुत सी मानसिक अस्थिरताओं का कारण बनी हुयी है। एक शान्त मन और आन्तरिक सुख जो एक शिष्ट परिवार में स्नेह के आधार पर फैलता है, वह पश्चिम में अधिकाधिक रूप से कठिन प्रतीत हो रही है। विश्व की इन परिस्थितियों में हमारी बुद्धिमत्ता पर यह बहुत खराब टिप्पणी होगी यदि हम अपने विचारों को औद्योगिक सभ्यता के इस राक्षस द्वारा पर्दा डालने दें और अपने मन तथा मस्तिष्क को रसातल की ओर जाने दें। यदि हम विदेशी तकनीकी को बिना किसी विवेक के अपनी भूमि पर खड़ा करते जांय अथवा भारतीय रहन-सहन के स्थान पर सीमेन्ट कांकरीट की इमारतों को पसन्द करें तो ऐसा होना अवश्यम्भावी है। वह संस्कार जो मां घर में पैदा करती है, उसका टेलीवीजन कार्यक्रम द्वारा नकल नहीं

किया जा सकता अथवा एक क्लब हाउस में उपस्थित होने से भी उसका विकल्प नहीं हो सकता। क्या मां को अपने स्थान से हटा कर हमें मशीन को लाना चाहिये अथवा उन हाथों द्वारा जो उसे पूजते हैं, चलाया जाना चाहिये यह आधार भूत प्रश्न है। इस हेतु कि हम मशीन को उचित स्थान में रख सकें, जिससे कि वह हमारे जीवन की ठीक सेवा कर सके-हमारे लिये आवश्यक है कि हम सच्चे अर्थों में जीने की प्रक्रिया को समझें। हम बड़े आग्रह पूर्वक कह रहे हैं कि अगर हम अपने लोगों का उत्थान चाहते हैं, तो हमें यह अनुभूति करनी चाहिये कि यह तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक हम मशीन और औद्योगीकरण को यथास्थिति रखने के लिये तैयार हैं और तकनीकी को हम अपने जीवन और रहन-सहन के मूल्यों के अनुसार अपनी शर्तों पर ही नहीं अपनाते। मनुष्य मशीन नहीं है, बल्कि मनुष्य मात्र ही सभी योजनाओं का केन्द्र विन्दु है।

भारतीय संस्कृति की सामूहिक जीवन प्रणाली को भारतीय संस्कृति की उस आधार भूत विचार के छोड़ने पर कभी भी नहीं समझा जा सकता, जिसके अन्तर्गत आत्मा की अनुभूति और मनुष्य जीवन को दैवी जीवन में वदलने से सम्बन्धित है। इस याचिका में भारतीय अस्तित्व के इस केन्द्रीभूत तत्व को विस्तार पूर्वक लिखना आवश्यक नहीं है। ऋषि, महर्षियों व गुरुजनों द्वारा इसका आदिकाल से विस्तृत विवेचन किया गया है। और यदि कोई इसके बारे में कुछ नहीं जानता, तो उसे वास्तविक रूप में भारतीय नहीं माना जा सकता, व उसे आर्य नहीं माना जा सकता बल्कि अनार्य माना जायगा। आत्मानुभूति की इसी पद्धति को धर्म कहते हैं(वास्तव में हिन्दुस्थान में यह सर्वविदित है और यह वह शब्द है, जिसका अग्रेजी में समान शब्द नहीं मिलता)धर्म शब्द आत्मा और जीवन का सन्धि सदृश है, जो मानव उद्देश्यों व चरित्र से सम्बन्धित उक्त दोनो बातों को प्रथम और समूचे रूप से प्रस्तुत करता है। अर्थात, आध्यात्मिक आस्तित्व के रास्ते के ठीक सम्बन्धों में दिलचस्पी और सुख प्राप्ति की पद्धति की इच्छा से सम्बन्धित है। हिन्दुस्थान में यह अच्छी प्रकार से विदित है कि जन समूह एक व्यापक रूप में मनुष्यों का एकत्रीकरण है, जिसे समष्टि कहते हैं, जो सामूहिक रूप में या एक विशेष अथवा सामूहिक आत्मा, मन और शरीर के साथ एक जीव प्राणी के समान व्यवहार करता है। 'धर्म' इस घनीभूत सत्य की अनुभूति व हमारे आस्तित्व से सम्बन्धित न अनुभूति की गयी आध्यात्मिक क्षमताओं पर आधारित मनुष्य के सामूहिक जीवन के सम्बन्ध में उस के स्तर और गतिविधियों को ढूढ़ता है और जन प्राणी के जीवन को इस प्रकार आत्मलीन करता है कि मानव में स्व के इस विराट स्वरूप की लीला को उत्पन्न करता है तथा विराट चेतना का सामूहिक आत्मा और शरीर जिसे सार्वभौम आत्मा कहते हैं, बनाना है। यही समाज पुरुष है, संहस्त्रशीर्षा, सहस्त्राक्ष भगवान है। इसको ठीक-ठीक पूजा करने के लिये

यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है हम अपनी सारी सम्पत्ति, बुद्धिमत्ता प्रयत्न तथा ऐश्वर्य को इसके चरणों में समर्पित करें, वह चरण-पांव अर्थात् जिसे हम श्रमिक कहते हैं। और इस 'श्रमिक' को धनोत्पादन के लिये बलि न चढ़ाये वरन् इसी प्रकार से उसकी पूजा की जा सकती है, की जाती है और स्वीकार होती है। लक्ष्मी जिसे धन की देवी कहा जाता है, के लिये ठीक स्थान भगवान के चरण (श्रमिक) के पास है। इस सार्वभौम भगवान के चरणों में समर्पण के द्वारा मनुष्य के मन मे 'धर्म, पैदा होता है। यह कोई प्रतिबिम्ब स्वरूप नहीं है, बल्कि वास्तविक सत्यता है। इसलिये हमारे जीवन की कल्पना के अनुसार श्रमिक द्वारा उत्पादन का महत्व नहीं है, बल्कि उसकी सही पूजा एक तथ्य है, जिसके लिये सभी प्रकार की सम्पत्ति बहते पानी के समान होना चाहिये। श्रमिक कल्याण उद्योग के लिये आकस्मिक अथवा द्वितीय विषय नहीं है, वरन् यह उसके अस्तित्व का सम्पूर्ण विषय होना चाहिये।

किस पद्धति द्वारा आम श्रमिक इस 'स्वामित्व' तक पहुंच सकता है, उस सम्बन्ध में अर्थात् वेतन, वेतन विषमता, उत्पादकता और औद्योगिक सम्बन्ध आदि के बारे में हमारी याचिका में उल्लेख किया गया है। भारतीय पद्धति की यह सर्वविदित क्रम है, जिसके अन्तर्गत इस उत्थान के क्रमों को भिन्न भिन्न नाम दिया गया है। जैसा और जब एक असली श्रमिक पहले सौदेबाज फिर शासक और अन्ततोगत्वा अपने में परिपूर्ण, स्वअनुशासित, स्वचालित गुरु बनता है। इस अध्याय में उत्थान की एक दूसरी दिशा अपनाने का हमारा प्रयत्न है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस ऊपर उठने वाले पहले क्रम के सम्बन्ध में एक समानान्तर पक्ष का अनुमान लगाते हैं, जिसके अन्तर्गत ब्रम्हाण्ड तुल्य स्वभाव अथवा भगवान के साथ समरूप होने की हम कल्पना करते हैं। इस दूसरे मार्ग की परिपूर्णता, की दिशायें हमें हमारा सामाजिक दर्शन देती हैं, जो सामाजिक उत्थान सम्बन्धी हमारे विचारों और गतिविधियों का आधार बनती हैं। यह उत्थान की वह दिशा है, जिसे मानव आत्मा अपने विश्वयापी प्रगटीकरण हेतु प्राकृतिक रूप से चुनती है। इसका सूत्र स्वतंत्रता और एकात्मकता की अनिवार्य प्रकृति है, जो स्वतंत्रता पूर्वक जीव पद्धति के समान फलती फूलती है, जैसे-जैसे आत्मा की आवश्कता बढ़ती है। व्यक्ति का परिवार से, जाति या वर्ग से, व्यवस्साय से, समूह से, ग्राम अथवा शहर से, प्रान्त से, राष्ट्र से, अन्ततोगत्वा मानवमात्र और और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से एकात्मता की इस विचार को इस पद्धति के अन्तर्गत देखा जाता है, जो विकास का एक स्वाभाविक स्वरूप व क्रम है। इस व्यवस्था के अपनाने पर हम उद्योग अथवा आधुनिक तकनीकी को यह अनुमति नहीं दे सकते कि वह व्यक्ति और पारिवारिक जीवन की आवश्यकताओं पर प्राथमिकता दे और आत्मा की प्रगति के स्वतंत्र और स्वाभाविक उत्थान को एक औपचारिक ढांचे के अन्तर्गत समायोजित करे, जैसा कि औद्योगिक सभ्यता उस पर थोपना चाहती है। ऐसा प्रतीत

होता है कि वस्तुतः उत्थान की आधारभूत सच्चाई को पश्चिमी सभ्यता ने खो दिया है। इस लिये पाश्चात्य विचार ने समाज के जीवित उत्थान की आवश्यकता से परे देखने की चेष्टा की है। पश्चिमी विचार ने जीवन उत्थान को एक यंत्रणा के रूप में देखा है, जिसे इच्छानुसार तोड़ा मरोड़ा जा सकता है और सूखी लकड़ी अथवा लोहे के समान बनाया जा सकता है, जैसा कि स्वेच्छानुसार बुद्धि बतावें। इसलिये यह सभ्यता जीवन के गुप्त रहस्यों से अपने आपको हटा लिया है और जन समुदाय की प्रेरणा शक्ति के सरल सिद्धातों पर से अपनी सत्ता को खो दिया है। परिणाम स्वरूप पूंजीवाद अथवा साम्यवाद के अन्तर्गत (क्योंकि दोनों ही पद्धतियां समान रूप से जीवन की व्यवस्था से अनभिज्ञ हैं। पद्धति और संस्था के लिए कानून और प्रशासन की बढ़ रही निर्भरता बनी हुई है। और जीवन्त समाज के स्थान पर एक यांत्रिकीय राज्य के विकास की घातक प्रवृत्ति पर वे निर्भर हैं। जीवन के स्थान पर सामूहिक जीवन के संयंत्र ने स्थान ले लिया है। इसने एक सत्ताधारी परन्तु यांत्रिकीय कृत्रिम संगठन को पैदा किया है। और स्वतन्त्र तथा जीवित जन समुदाय के शरीर में स्वयं विकसित होने वाली सामूहिक चेतना की सचाई को पूर्णरूपेण खो दिया है। जब तक इस आधारभूत गलती को ठीक नहीं किया जाता, तब तक साम्यवादी देश एक राज्य विहीन समाज में कम्यून्स (गिरोह बन्दी) के अपने आदर्श की अनुभूति भी नहीं कर सकेंगे और न ही पूंजीवादी देश अपने सदस्यों को स्वातंत्रता के अपने आशाप्रद आदर्श को ला सकेंगे। अपनी वास्तविक महत्ता के मार्ग को भूल जाने के कारण बुद्धि के द्वारा जकड़े जाने वाली गतिविधियों ने पाश्चात्य देशों को उनकी आकांक्षाओं के धोखे में डाल दिया है। जब हम पाश्चात्य के इस विशाल वैज्ञानिक और औद्योगिक सभ्यता के ताजे, स्वच्छ अथवा बिना पूर्वाग्रह के सम्पर्क में आते हैं, तब इस विशाल चक्र के अन्तर्गत बिना किसी गलती के घायल आत्मा की करुण क्रन्दन और कष्ट के कारण एक गहरी वेदना सुनाई देती है। अवकाश प्राप्त कर्मचारियों की निराशावादी आवाज पाश्चात्य सभ्यता की दुःखद घटना को प्रतिबिम्बित करती है। ध्यान रहे कि पाश्चात्य देशों ने इन अवकाश प्राप्त कर्मचारियों को निराशावादी मार्ग पर अकेले में उद्देश्यहीन ढंग से छोड़ दिया है। पश्चिमी देशों के इस करुण दृश्य को देखकर उस कवि की याद आ जाती है, जिसने कहा है—

"उसकी प्रभुसत्ता सीमित है
और कहीं भी संतोष और शान्ति का विश्वास नहीं होता
जितना भी सौन्दर्य और गहराई उसमें निहित है
उसका आभास आत्मा की मुक्तता में नहीं दिखाई देता।"

(सावित्री, खण्ड द्वितीय, सर्ग ६, पृष्ठ २२२-२३)

इस लिये सर्व प्रथम हमें यह पक्का निर्णय लेना चाहिये कि हम जनसमुदाय के जीवन की स्वाभाविक व्यवस्था के स्थान पर मशीनी करण की अपूर्ण व्यवस्था नहीं लायेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु हम मैट्रोपोलिटन केन्द्रों को तोड़ देंगे और औद्योगिक केन्द्रों को विकेन्द्रीकरण के ढांचे के अन्तर्गत शहरों के जाल की योजना को प्रिय बनायेंगे। हम ऐसा कहेंगे कि भारत में बहुत से छोटे छोटे शहर होने चाहिये और किन्ही दो शहरों के बीच में स्वास्थ्य वर्द्धक कृषि भूमि होनी चाहिये। प्रत्येक शहर एक प्रमुख उद्योग के लिये हो और वह चारो ओर से पूरक इकाइयों से घिरा हुआ हो, साथ ही इससे आगे बढ़कर किसी प्रकार के केन्द्रीकरण की उसे अनुमति न दी जाय। उदाहरण के लिए चूंकि बम्बई भारत की प्राकृतिक बन्दरगाह है अस्तु बम्बई विदेशी व्यापार का केन्द्र स्थान होना चाहिए और इसके सिवाय कुछ नहीं होना चाहिए। तभी बम्बई के लोगों का स्वास्थ्य बना रहेगा। हमने पूना जैसे शिक्षा केन्द्र अथवा दिल्ली जैसे राजनैतिक केन्द्र (राजधानी) में अनावश्यक रूप से बहुत से उद्योग खड़े कर उन्हें अस्त-व्यस्त कर दिया है। ये उद्योग दूसरे स्थानों पर स्थापित किये जाने चाहिए ताकि सभी लोगों को आराम मिल सके। आणविक शक्ति की सस्ती संचार व्यवस्था से यह और भी सरल हो जायगा और आधुनिक सुरक्षा की आवश्यकताओं के साथ इसका मेल भी बैठ जायगा। ऐसा करने के उपरान्त हर शहर एक औद्योगिक परिवार का घर बन जायगा और उसमें रहने वाला जन समूह अपने आपको घरेलू वातावरण में पायेगा, जबकि वर्तमान परिस्थिति में उन्हें किसी भी प्रकार से एक हाते (चाल) में रहने के लिए विवश होना पड़ता है। यदि भारत जीवित है और गांव में रहता है तो भारतीयों को अपना जीवन बसर अपने घरों में ही करना चाहिए। 'घर' भारतीय संस्कृति का केन्द्र है। केवल यही वह स्थान है, जहां पर बच्चे को जो कल के नागरिक हैं, उन्हें सर्वोच्च संस्कार मिलते हैं। घर का स्थायित्व सामाजिक गतिविधियों की गतिशीलता के विरुद्ध नहीं है, बल्कि इसके विपरीत मनुष्य ही गतिविधियों का गतिशील केन्द्र हैं। तड़के से ही मां घर में गाय का दूध दुहती है, देर शाम तक बच्चा बगीचे में पानी देता है और अपने मां-बाप को दिन भर की दिन चर्या बतलाने हेतु उनके इर्द-गिर्द इकट्ठा बैठता है और उनके शब्द, विद्वता और स्नेह की कहानियां सुनता है, मां के ममत्व में मुग्ध होकर वह स्वाभाविक रूप से उसकी पजा करता हैं और खाता है। भारतीय घर सभी प्रकार के महत्वपूर्ण घटनाओं का वह केन्द्र है, जहां मानव मात्र की संस्कृति प्रस्फुटित होती है। इस राक्षसी, कठोर मशीन की वेदी पर इस घर को समाप्त कर देना और फिर मानसिक संस्कृति के लिए श्रमिक शिक्षा की कक्षा में भाग लेने जाना आपने आप में बड़ी क्रूरता व उपहास का विषय है। ऐसी स्थिति के कारण ही बुद्धि और विज्ञान ने मनुष्य के ऊपर आघात किया है। इस पीड़ित (घायल) मन

में सुख को ढूढ़ना इस अहंकारी बुद्धि की एक दूसरी अनोखी खोज व विड़म्बना है। विनाश के इस मार्ग पर जाने के स्थान पर, हमें मशीन को ही गुलाम बनाना चाहिए, जैसे कि हमने कालान्तर से कुत्ते, बिल्लियों और दूसरे जानवरों को पालतू बनाया है। एक शान्त घर पश्चिम की तीनों विशेष देन जैसे–प्रेस, मंच और प्रचार के मुकाबले में मन को एक अच्छा, दृढ़ शिक्षक बनाने वाला है। परन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु व्यक्ति को मशीन के पीछे नहीं भागने देना चाहिये, वरन् मशीन को व्यक्ति के उतने निकट लाना चाहिए, जितना सम्भव है। व्यक्ति को घरों में, छोटे समुदायों में, शहरों में रहना चाहिए और धीमे-धीमे प्रगति कर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खड़ा होना चाहिए। अभी भी वह एक छोटे दायरे में रहता है जो उसे उपलब्ध है अथवा जिसके वह खोज करने पर पा सकता है और अपने व्यक्तित्व को बनाता है और अपने को समूह के साथ समरस करता है। प्राकृतिक समूह के इसी वायुमंडल में वह अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिये समूह का ध्यान आकर्षित कर सकता है और स्वयं दूसरे व्यक्तियों अथवा समूह की मांगों को समझ सकता है और सहानुभूति दिखा सकता है। व्यक्ति से मानवता की ओर छलांग लगाने वाली गतिविधियों के अन्तर्गत मार्ग में बहुत से धोखे और अड़ंगे हैं। इस प्रकार की अस्वाभाविक छलांग ठीक और सही भातृभाव जो स्वतन्त्रता और समानता के बीच में समझौते वाला भाव है, को उत्पन्न करने में अयोग्य व असफल है। पाश्चात्य इस भातृभाव को भूल गया है। यही कारण है कि स्वतन्त्रता की खोज में उसने असमानता की बढ़ोत्तरी पाया है और उसे पूंजीवाद को धिक्कारना पड़ा है, साथ ही अब समानता की खोज में वह स्वतन्त्रता को नष्ट होना देख रहा है, तथा इस हेतु वह समाजवाद और साम्यवाद की भर्त्सना कर रहा है। भातृभाव के अन्तर्गत फ्रांसीसी क्रान्ति के तीन वेद वाक्य हैं–स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुभाव। भातृभाव घर और चूल्हे से उत्पन्न होता है। आदर्श पारिवारिक जीवन और एक आदर्श घर अर्थात "गृहस्थाश्रम", सामाजिक आर्थिक ढांचे की एक प्रथम स्व निर्धारित इकाई है। इस सामंजस्य व स्वनिर्धारण के स्वत्व को औद्योगिक परिवार, राष्ट्र अथवा इसी प्रकार की व्यापक समूह के एक विशाल दायरे के अन्तर्गत फैलाना होगा। एक जीव प्राणी के समान यह स्वनिर्धारित सामूहिक जीवन का सिद्धान्त, न केवल समूह में स्व निर्धारित है और न ही मत और प्रतिनिधियों के सम्मुख व्यवस्था के ही माध्यम से है, बल्कि अपने जीवन की हर घड़ी में है और अपने अस्तित्व के अन्तर्गत हर एक सदस्य में है साथ ही भारत में सही राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों के सभी सिद्धान्तों में से यही सर्वोच्च व स्थायी है तथा यही उसके निर्माण का आधार है। भारतीय मस्तिष्क की बुद्धि परस्पर आदतें, इन्हीं वातावरण में प्रकाश प्रेरणा पाती हैं और आत्मा की उच्चतम अनुभूति के रूप में फलती फूलती हैं, साथ

ही अपने स्व और आत्मा के इस विस्तृत स्वरूप के द्वारा एकात्मता और एकता की स्वाभाविक सत्ता, महानुभूति क्रमबद्ध विकसित स्वतन्त्रता, जीवन की लचीली व जीवित व्यवस्था, सामूहिक अस्तित्व की स्वतन्त्रता, पूर्णता व एकता के कानून प्रदान करती हैं। यही वह पद्धति है, जिसके आधार पर व्यक्ति की आत्मिक शक्ति की सबसे आधार भूत, सरल, सार्वभौम और समान भाव को राष्ट्रोत्थान के निर्माण में एक व्यापक और समूचे रूप से नियन्त्रित किया जाता है। एकात्म मानववाद का स्वप्न इसी निर्माण के आधार पर चरितार्थ होगा। थोड़ा सा धैर्य हमें यह दिखला देगा कि मानव अस्तित्व के इस 'निर्दोषं हि सम ब्रह्म' शक्ति से कोई भी दूसरा शक्तिशाली, गतिशील और सर्वव्यापी सत्ता नहीं है। इस परम्परागत भाव के अन्तर्गत निर्णीत व्यवस्था के सिद्धान्तों द्वारा रीति-रिवाज तथा संस्थाओं के रूप में स्पष्ट रूप से क्रमशः विकास होना है। यह मनुष्य के सुख को बढ़ाने के लिये सौ गुनी अधिक तेजस्वी और बुद्धि पूर्वक की गयी योजना है। इसके मुकाबले में अफसर शाही और औद्योगिक राजकीय कृत्रिम संगठनों के बारे में सोचा जा सकता है, ज यांत्रिकीय व तार्किक बुद्धिमत्ता से काम करते हैं और जो आधुनिक विज्ञान से ग्रहण करके हर प्रकार की सम्भव बुद्धि परस्पर चतुराई व कुशलता प्राप्त करते हैं। वस्तुतः हमें इस प्रकार के आधुनिक विज्ञान की देन को भी ग्रहण करना चाहिये और भविष्य के लिए व्यापक उपलब्धियों की कोशिशों में मानव जाति के नेता के रूप में खड़ा होना चाहिये। राष्ट्रीय श्रम आयोग के समान इस उच्चस्तरीय संगठन से यह अपेक्षा है कि वह श्रम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा की सही योजनाओं को प्रस्तुत करेगा, क्योंकि अपने राष्ट्रीय ध्येय की इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इस शताब्दी के बचे हुए वर्षों तक के लिये वह यह मार्ग दर्शन करेगा। इसी में मनुष्य कल्याण का सिद्धान्त और मार्ग निहित है।

## आवास

ऊपर की व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि हर एक श्रमिक के परिवार के लिये 'घर का प्राविधान' करना किसी भी कल्याणकारी कार्यक्रम का सर्व प्रथम व अति अनिवार्य कार्य है, किन्तु यह तब तक सम्भव नहीं है, जब तक हमारे औद्योगिक उत्थान के लिये विदेशी तकनीकी के अविवेकपूर्ण स्वीकृति को निश्चित और अन्तिम रूप से समाप्त नहीं किया जाता। वर्तमान काल में हम यह दृश्य देखते हैं कि किस प्रकार समुद्र से कुछ वर्ग मील भूमि के पुनर्ग्रहण हेतु बम्बई जैसे शहर में लाखों रुपया खर्च किया जा रहा है। इस प्रकार का महंगा पुनर्ग्रहण बहुसंख्यक आबादी को बसाने की कोई भी गारन्टी प्रदान नहीं कर सकता। बम्बई की सड़कों की पटरियों पर जो हजारों लोग पड़े हुये हैं, अथवा उन लाखों पुरुष श्रमिकों, जिनको आवास व्यवस्था की कमी है और जो १५ से २० व्यक्ति एक ही कमरे में भीड़ के

मान रहते है, और उनके बाल बच्चे हजारों मील दूर निवास करते हैं, उनकी रहने की व्यवस्था इस प्रकार के पुनर्ग्रहण से नहीं हो सकता। बम्बई में यातायात सुविधाओं को प्रदान करने के लिये भी ओव्हर हेड़ पुल, भूमिगत सुरंगे व रेलवे को बनाने के लिये करोड़ों रुपये झोंके जा रहे हैं, और दूसरी ओर मध्य प्रदेश का भीतरी क्षेत्र एक विशाल भूमि का दृश्य प्रस्तुत करता है, जहां मनुष्य देखने को भी नहीं मिलता, वहां की एक व्यापक प्राकृतिक देन (खनिज आदि) जिनका उपयोग नहीं किया गया तथा साधनों की प्राकृतिक देन जो बिना उपयोग किये हुये पड़ी है और वह भूमि जो किसी भी काम चलाऊ यातायात के अभाव में छोड़ दी गयी है। मानव कल्याण, राष्ट्रीय उत्पादन और समानता के लिये यह अनिवार्य है कि हम अपनी आबादी को अच्छी प्रकार से फैलाये और देश के सभी भागों में उनके रहने की आवास व्यवस्था करें। हर एक उद्योग को कानून से बाध्य करें कि वे अपने श्रमिकों के परिवार के लिये एक अच्छा घर दें। यह व्यवस्था बिना किये उन्हें अपने उद्योग में किसी व्यक्ति को रखने की अनुमति नहीं देनी चाहिये। सभी नये उद्योगों के लिए जो इसके पश्चात खड़े हों, उन्हें पूर्ण रूप से इस प्राविधान को लागू करने हेतु अनिवार्य करना चाहिये। औद्योगिक ढांचे की हमारी विकेन्द्रित प्रणाली में यह अनिवार्यता ठीक बैठती है, जो हमने इस अध्याय के शुरू में प्रस्तुत किया है। उन उद्योगों के लिए जो पहले से काम कर रहे हैं, श्रमिकों की लिये आवास व्यवस्था हेतु क्रमबद्ध कार्यक्रम अनिवार्य होना चाहिये। इस हेतु यदि आवश्यक हो तो उस उद्योग के स्थान को भी बदल देना चाहिये तथा सरकार को इस तबादले के लिये सहयोग प्रदान करने हेतु सम्मुख आना चाहिये। न्यूनतम शिक्षा के समान न्यूनतम आवास व्यवस्था को भी राष्ट्रीय कार्यक्रम का एक अनिवार्य विषय मानना चाहिये।

हमें यह अवगत है कि सरकार एक वित्तीय एजेन्सी है—मकान बनाने की भी वही एजेन्सी है और इस सन्दर्भ में वह एक व्यापक आवास व्यवस्था के कार्यक्रम को हाथ में ले रही है, जो विशेषत: औद्योगिक श्रमिकों, कम आय वाले समूहों व पिछड़े वर्ग और ट्राइब्स के उपयोग के लिये ही है। भिन्न-भिन्न हाउसिंग बोर्डस, स्थानीय और पोर्टट्रस्ट अधिकारी, हाउसिंग कोआपरेटिव और निजी क्षेत्र के कर्मचारीगण बड़े-बड़े ऋण केन्द्रीय और राज्य सरकारों, एल० आई० सी०, कामशियल बैंक्स और एपेक्स हाउसिंग कोआपरेटिव बैंकस् से पा रहे हैं और शहरी सहकारी समितियां भी आवास व्यवस्था के लिए वित्तीय सहायता प्रदान कर रहीं हैं यद्यपि व्यावसायिक बैंकों के समान इनकी सहायता तात्कालिक वित्तीय आवश्यकताओं पर काबू पाने के लिये वित्तीय व्यवस्था के रूप में ही होती है। एपेक्स कोआपरेटिव हाउसिंग फाइनेन्स सोसाइटीज, जिनका लम्बे अरसे तक ऋण देने का ढांचा दो क्रमों में विभाजित है और जो कोआपरेटिव हाउसिंग फाइनेन्स के क्षेत्र

में हैं, शुरुआत करने का पूरा क्षेत्र प्रसिद्ध प्रमुख संचालक श्रद्धेय श्री वी० एल० मेहता को है। ऐसा प्रतीत होता है कि बिल्डिंग सोसाइटी के रूप में सहकारी गतिविधियां मद्रास राज्य में कोयम्बटूर स्थान पर सन् १९१३–१४ में सर्व प्रथम प्रारम्भ हुयी और इसी प्रकार इसके पद चिन्हों पर ही बम्बई में सारस्वत कोआपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी बनायी गयी। हमारे देश के निर्मम विभाजन के बाद पाकिस्तान से हमारे लोगों के भारी संख्या में आने की समस्या के पैदा होने तक, इस क्षेत्र में सरकारी गतिविधियाँ लगभग नहीं के बराबर थीं। व्यापक संख्या में शरणार्थियों के पुनर्वास कार्यक्रम के ढाँचे के अन्तर्गत जिसमें वित्तीय सहायता व अनुदान भी सम्मिलित है, मकान बनाने की कार्यवाही को प्रथम पंचवर्षीय योजना में विचार किया गया और जो आवास व्यवस्था औद्योगिक श्रमिकों, कम वेतन पाने वाले समूह और क्षेत्रीय समुदाय के पीड़ित वर्गों के लिये की गयी थी, हमें ऐसा कहना चाहिये कि वही व्यवस्था औद्योगिक और सामाजिक शरणार्थियों के लिये साथ ही राजनैतिक शरणार्थियों के लिए भी हुई राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में हमारी व्यापक गतिविधियों का परिणाम यह हुआ है कि जनता की अपनी परम्परागत घरों में रहना असम्भव हो गया है. उन्हें आधुनिक शहरों की बहुत ही अपमानित परिस्थितियों में शरण लेने को बाध्य करती हैं तथा जिन्हें बड़ी संख्या में अंधी कोठरियों और कारागार की तनहाई के समान घरों में रहना पड़ता है, जिससे उनका स्वास्थ्य और नैतिकता दोनों बिगड़ती हैं। इतने पर भी जितनी ही अल्पमात्रा में इन असहाय परिवारों को एक कमरा दिया गया है, हमने उसे कल्याणकारी गतिविधियों का नाम दे दिया है।

अनुदान प्राप्त औद्योगिक आवास व्यवस्था की योजना जिसे सितम्बर, १९७२ में शुरू किया गया था, के अनुसार केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्यों को ऋण और अनुदान हेतु वित्तीय सहायता देने के लिये सोचा गया था, जिसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को-आवास बोर्डों, म्युनिसिपल बाडीज और औद्योगिक सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक श्रमिकों के लिये आवास व्यवस्था हेतु धनराशि मुहैय्या करनी थी। इस व्यवस्था को करने के लिये कारखाना कानून १९४८ के अन्तर्गत परिभाषित किया गया है और अथवा जिन पर कर्मचारी प्राविडेन्ट फण्ड एक्ट, १९५२ भी लागू होता है। औद्योगिक श्रमिकों द्वारा बनायी गयीं आवास सहकारिता सोसाइटीज पर ६५ प्रतिशत तक ऋण के तौर पर सहायता पा सकती हैं, साथ ही हर मकान की अनुमानित लागत पर २५ प्रतिशत अनुदान प्राप्त हो सकता है और शेष १० प्रतिशत प्राविन्डेन्ट फण्ड राशि से वापस न होने वाले ऋण के रूप में लिया जा सकता है। योजना के अन्तर्गत ये सब लगायी गयी हिसाब की धनराशि अधिकतम अनुमानित कीमत की सीमा पर आधारित है, किन्तु यह देखा गया है कि वास्तविक खर्चे सदैव इन सीमाओं से बहुत अधिक होते हैं। साथ ही सरकारी योजनाओं की स्वीकृति में आमतौर से

लगभग देरी होती ही है। किश्तों के भुगतान से सम्बन्धित बहुत सी कार्यवाहियों की औपचारिकता में बहुत अधिक देरी हो जाने से अत्यधिक चिढ़चिढ़ापन पैदा करती हैं। उपयुक्त स्थान और मकान बनाने की सामग्री के प्राप्त करने में जो कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं, वे समस्या को और अधिक उग्र एवं जटिल बनाती हैं। हर प्रकार की कमी और देरी के साथ-साथ उसमें अनैतिक व्यवहार का भी समावेश रहता है और इन तथ्यों के साथ जुड़ी हुयी बेइमानी के ढंग—जो खराब प्रकार की सामग्री के प्रयोग से सम्बन्धित हैं, अनुमानित स्तरों की प्राप्ति में बहुत अधिक कमी ला देती है, और योजना की उपयोगिता को अत्यधिक कमजोर बना देती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि औद्योगिक श्रमिकों के आवास के लिये बहुत सी धन-राशि जो एक निश्चित काल के लिये निश्चित की गयी है, का उपयोग नहीं किया गया हैं, जब कि पनाह लेने के लिये 'मुहताज' श्रमिकों के कष्ट लगातार बढ़ोत्तरी पर रहे हैं। इन योजनाओं की उपयोगिता को बढ़ाने के लिये कई राज्य सरकारों ने कार्यविधि की ब्योरे में बारम्बार परिवर्तन किये हैं, परन्तु इन सब परिवर्तनों का सामूहिक परिणाम अत्यधिक द्विविधा उत्पन्न करने में ही हुआ है और यह स्थिति योजना के कार्यान्वियन हेतु अधिकृत अधिकारी के निरन्तरता की अनुपस्थिति के कारण हुआ है। इसलिये जहाँ एक ओर यह देखा जाता है कि समाज का एक बड़ा भाग अच्छी आवास व्यवस्था के लिये आकांक्षा रखता है वहीं दूसरी ओर हमारी सरकार है, जो एक योजना के क्रियान्वयन हेतु बहुत बड़ी धनराशि देने की प्रतीक्षा कर रही है। इसी बात के आधार पर यह दावा करती हैं कि मकान बनाने की पूरी कीमत को वह बरदाश्त करेगी, साथ ही आवश्यकता से अधिक ऋण देने की भी वह घोषणा करती है। हमारे कल्याणकारी राज्य की कल्याणकारी प्रशासन के ऊपर ऊपर टिप्पड़ी के लिये यह आश्चर्यजनक एवं खेदजनक विषय है। यह देखने योग्य है कि एक ओर योजना और वायदे हैं और दूसरी ओर करनी। इनके बीच के अन्तर सभी स्तरों के कल्याण के सामूहिक पक्ष को चोट पहुंचा रहे हैं। जब कि कल्याण-कारी अधिकारियों (वेलफेयर आफीसर्स) के प्रभाव परियोजना स्तर पर के कल्याण-कारी बजट से लेकर राज्य और सरकार के कल्याणकारी योजनाओं तक रहता है। इस निराशाजनक प्रयत्नों की दूरी को दूर करने के अन्तर्गत बहुत सी सार्वजनिक समितियां जैसे—आवास मंडल, म्युनिसिपल अथारिटी तथा झुग्गी झोपड़ी हटाने की योजनायें अग्रसर हुयी हैं जो सेड्यूलडकास्ट, सेड्यूल ट्राइब्स, घूमन्तू जातियां (बन्जारा आदि) तथा अनामांकित जातियों से सम्बन्धित हैं, अग्रसर हुयी हैं। डाक लेबर बोर्डस, बागान लेबर बोर्डस, खदान वेलफेयर फण्ड आदि संस्थाओं ने भी इसमें उपयोगी योगदान दिया है। जहाँ कहीं भी इन एजेन्सीज ने वित्तीय एजेन्सी के स्थान पर मकान निर्माण एजेन्सी की भूमिका निभायी है, इसमें कोई शक नही है

कि कम आय वाले समूह को रहने का स्थान प्राप्त कराने में कुछ राहत मिली है। जीवन बीमा निगम ने इन्हें तथा अन्य दूसरी एजेन्सीज–एपेक्स हाउसिंग सोसाइटी और "अपना मकान करने की योजना" को काफी बड़ी मात्रा में कार्यरत पूंजी प्रदान की है। इसी प्रकार ठेकेदारों और दूसरी निजी मकान वाली एजेन्सीज के लिये कामर्शियल बैंक, मार्टेज बैंक और केन्द्रीय तथा शहरी कोआपरेटिव बैंकों ने भी निर्माण के काम को सहायता प्रदान करने के लिये अल्पकालीन वित्तीय सहायता दी है। श्रमिकों ने अपने द्वारा भी विशेष प्रयत्न किये हैं, जिसके अन्तर्गत उनकी अपनी विशेष सस्थायें सेवा के लिए सामने आयी हैं। मजदूर सहकारी बैंक लि० अथवा पीपुल्स कोआपरेटिव बैंक लि०–जो अहमदाबाद में है, ने इस दिशा में प्रयत्न किये हैं–जो उदाहरण के रूप में है, तथा उन्होंने औद्योगिक श्रमिकों के लिये की गयी आवास योजनाओं में वित्तीय सहायता देने में विशेषता प्राप्त की है। मकान निर्माण के संदर्भ में कुछ व्यक्तियों अथवा फर्मों ने भी जिन्होंने श्रमिकों के हितों को प्रिय मान लिया है, प्रशंसनीय योगदान दिये हैं। इस सन्दर्भ में सबसे उल्लेखनीय प्रयत्न कोयम्बटूर के जे० डी० नायडू के हैं, जिन्होंने औद्योगिक श्रमिकों के लिए सस्ते और स्वस्थ मकान बनवाये हैं। श्री वी० वी० गिरि ने श्री नायडू के प्रयत्नों की प्रशंसा की है और इसके व्यापक उपयोग के लिए अध्ययन की सिफारिश भी की है। कुछ नियोजक जिसमें कामर्शियल बैंक उल्लेखनीय हैं, अपने श्रमिकों और अधिकारियों को मकान बनाने हेतु बिना सूद अथवा सस्ते दर पर धनराशि देने की उदार सहायता हेतु सामने आये हुये हैं। कर्मचारी प्राविडेन्ट फण्ड संगठन, जो देश की द्वितीय व्यापक संस्थागत पूंजी लगाने वाली संस्था है, और जिसकी ९०० करोड़ रुपये के लागत की क्षमता है और जो मात्र जीवन बीमा निगम से ही पीछे है, (क्योंकि जीवन बीमा की लागत की क्षमता १००० करोड़ रुपये है ने भी यह निर्णय किया है कि वह भवन निर्माण हेतु और बने बनाये मकानों के खरीदने की ओर बढ़ने का निर्णय किया है। यह कार्य महत्वपूर्ण शहरों में होगा और लाभ के आधार पर वे भवन किराये पर दिये जायेंगे।

आश्रय पाने के लिये कम से कम आवश्यकताओं को पूरी करने के संघर्ष में श्रमिकों की सहायता के लिए उपर्युक्त कुछ प्रयत्न हैं, फिर भी ये प्रयत्न समस्या को केवल मात्र छू पाते हैं। तीव्रगति से होने वाले नगरीकरण रहने की कीमतों में लगातार बढ़ोत्तरी, नगरों में मकान बनाने हेतु स्थान की कमी, जमीन की ऊंची कीमत, निर्माण सामग्री की कमी व ऊंची कीमतों-जिनमें विशेष रूप से सीमेन्ट, लोहा और इस्पात और निर्माण उपकरण आदि हैं, ने साधारण मकान के बनाने में श्रमिक के लिये एक स्वप्न बना दिया है, और साथ ही स्थान के चयन तथा उसके रहने के अनुसार मकान के नक्शे अथवा पद्धति और शिल्पकारीगरी ने श्रमिक के लिए एक

असम्भव और असम्भव कल्पना बना दी है। एक कमरे वाले मकान जिसका मालिक किराया-उसके मासिक वेतन के आधे भाग को खा जाता है, वह भी नहीं मिलता, जब तक अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति पहली पगड़ी के रूप में वह गिरवी नहीं रख दे। सम्पत्ति का असमान वितरण अविवेकी औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण हुआ है, जिसके अन्तर्गत अमीरों के बड़े बंगलों और उच्च मध्यम वर्ग के रहायसी ब्लाकों के स्वरूप इस बात के सबूत व चित्रण के रूप में दिखाई देते हैं, जिन्हे उन लाखों ईर्ष्यामरी आंखों द्वारा देखा जाता है-जो सड़क पर अथवा घनी झुग्गी झोपड़ियों में अथवा एक कमरे वाले रहायसी मकानों में सोते हैं। निश्चित ही अब वह समय आ गया है, जब हर श्रमिक के लिये उचित आवास व्यवस्था के प्राविधान को हर एक उद्योग, व्यापारी समूह, फर्म व संस्थान अथवा सरकारी विभाग या उद्योग में अनिवार्य कर देना चाहिये साथ ही कुछ भी उत्पादन करने वाले व्यक्ति अथवा वेतन भोगी और उसके पूरे परिवार को रहने योग्य रहाइस की सुविधा कारखाना न दे सके तो उसे पाप करार कर देना चाहिये। इसी प्रकार यह आवास व्यवस्था केवल मात्र सीमेन्ट कांकरीट का अस्तबल नहीं होना चाहिये, जहां पर किसी प्रकार मनुष्यों के झुण्ड को घुसेड़ दिया जाय-जैसा कारागार की तंग तनहाई कोठरी अथवा तहखाने में होता है, बल्कि उसे एक अच्छा घर प्राप्त होना चाहिये, जिसमें वह जीवन पर्यन्त रह सके। किसी भी कल्याणकारी कार्यक्रम में यह न्यूनतम आवश्यकता है, इतना ही नहीं इस हालत में तो कल्याण शब्द भी लागू नहीं होता, यह तो मनुष्य को रहने की उसी प्रकार से न्यूनतम आवश्यकता है, जैसे कि खाना और वस्त्र। आत्मा और शरीर को इकट्ठा बनाये रखने के लिये यह आवास व्यवस्था अनिवार्य है। इसके पहले कि व्यक्ति काम के बारे में सोच सके। व्यक्ति का यह जन्म सिद्ध अधिकार है, और यह तब तक करना सम्भव नहीं जब तक हम विदेशी तकनीकी के अविवेक पूर्ण स्वीकृति और उसके भयानक शहरीकरण को समाप्त नहीं करते तथा अपनी योजना की प्रक्रिया को अधिक गम्भीर और अधिक मानवीय आधार पर पुनः व्यवस्थित नहीं करते। योजना की प्रक्रिया में मनुष्य जीवन ही केन्द्र देवता है, जिसको उसके कल्याण हेतु सभी कुछ समर्पित करना चाहिये। मनुष्य जीवन का सर्व प्रथम सामूहिक प्रगटीकरण उसके अपने घर में परिवारिक जीवन के विकसित होने में है। ज्यों ही औद्योगीकरण उसके घर और उसकी आवश्यकताओं की तिलाञ्जलि करता है अथवा उसको टाल देता है, मनुष्य के निर्माण को विनष्ट कर देता है, कोई भी कल्याणकारी गतिविधि एक अच्छे घर का स्थान लेने के योग्य नहीं है। इसलिए एक सही कल्याण का सर्वप्रथम विचार यह होना चाहिये कि औद्योगिक गतिविधियों के समूचे विस्तार के लिये यह अनिवार्य कर दिया जाय कि वे अपने आपको पारिवारिक जीवन की आवश्यकताओं के समरूप बनायें। मशीन को मनुष्य

का मालिक नहीं होना चाहिये, बल्कि मनुष्य को मशीन का पूर्ण अधिकारी होना चाहिये, तभी सही कल्याण प्रारम्भ होगा।

## स्वास्थ्य और अन्य सुविधायें

निर्माण कार्यक्रमों में अगला प्रश्न जो हमारे ध्यान को आकर्षित करता है, श्रमिक और उसके परिवार के स्वास्थ्य के बारे में है। पुनः यह प्रश्न भी एक 'अच्छी जीविका' का ही है। किसी भी स्वास्थ्य कार्यक्रम का उद्देश्य बीमारी व अल्पायु मृत्यु की घटनाओं को कम करना है। इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि बीमारी के पूर्व निदान को अत्यधिक महत्ता दी जाय बजाय इसके कि रोग होने पर उसे ठीक करने का उपाय हो। इसमें कोई शक नहीं है कि बीमारी को रोकने के लिए दवाइयों के उपयोग हेतु उपयुक्त प्रचार चाहिये और यह सन्तति उत्पन्न होने के पहले से ही प्रारम्भ होना चाहिये। पाठशाला अवधि बच्चों के बलवान और स्वस्थ आदतों के संस्कार के लिए एक आधारभूत महत्ता व स्थान रखती है। स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों के बारे में जितना राष्ट्रीय श्रम आयोग ने सोचा है, उसके मुकाबले में इसका क्षेत्र व्यापक है। इसकी आधारभूत महत्ता को ध्यान में रखना चाहिये। औद्योगिक आवास व्यवस्था और श्रमिक कालोनीज के खड़े होने के कारण सामूहिक जीवन में बच्चों के स्वास्थ्य सम्बन्धी देख-रेख औद्योगिक कल्याण गतिविधियों का उतना ही अंश बन रहा है, जितना कि अन्य किसी सामाजिक गठन का। बहुत से उद्योगों ने पहले से ही परिवार नियोजन को प्रोत्साहन करने में दिलचस्पी दिखाई है। यह और भी अच्छा होगा कि वे सामाजिक आरोग्य शास्त्र, स्वस्थ आदतों के विकास, शारीरिक संस्कृति तथा पूर्व निदान चिकित्सा की पद्धति हेतु श्रमिक के प्रति अपनी जिम्मेवारी निभाने के रूप में विचार करें। विशेष रूप से यह आवश्यक है कि हर एक उद्योग, हर एक श्रमिक के हर वर्ष में पूर्ण स्वास्थ्य निरीक्षण के खर्च को वहन करें अथवा उसे अनिवार्य रूप से प्रदान करें और स्वास्थ्य निरीक्षण में पाये गये कमजोरियों अथवा बीमारियों को ध्यान में रखकर उचित चिकित्सा को अपनावें। इस सुविधा को श्रमिक के परिवार तक भी बढ़ाना चाहिये। इससे ही स्वास्थ्य और उत्थान को बढ़ोत्तरी मिलेगी। श्रमिक के अनुपस्थित होने में कमी आयेगी तथा चिकित्सा सम्बन्धी खर्चे कम होंगे। साथ ही उद्योग को यह देखने की जिम्मेवारी होनी चाहिए कि कार्यस्थल पर पूर्ण रूपेण स्वच्छता और प्रकाश तथा स्वच्छ वायु प्रदान हो और कार्य स्थल के मानचित्र में किसी भी स्वाभाविक सुविधाओं को भुलाया न जाय, उक्त सुविधाओं को देने में लघु संस्थानों और दुकानों को विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये। कानून में कुछ न्यूनतम आवश्यकताओं की, जैसे पीने के पानी, शौचालय, प्राथमिक उपचार व्यवस्था, आवश्यक प्रकाश व स्वच्छ हवा, धूयें व इसी तरह की तंग करने वाली वस्तुओं से बचाव व स्वच्छता आदि प्रदान

करने का प्राविधान हो और साथ ही किसी भी व्यापार के करने वाले अथवा एक भी व्यक्ति को काम देने वाले नियोजक के लिए पूर्णरूपेण अनिवार्य हो। यदि ऐसा पाया जाता है कि किसी संस्थान का मालिक उक्त बातों की ओर दुर्लक्ष कर रहा है, तो सरकार को उक्त व्यवस्था के लिए इमारतें बनाकर इन प्राविधानों को अनिवार्य रूप से लागू कराना चाहिए तथा यदि आवश्यकता पड़े तो सम्बन्धित खर्चे को उन मालिकों से वसूल करें। कुछ और सुविधाओं जैसे–कैन्टीन अथवा स्वास्थ्य व चिकित्सा सम्बन्धी सहायता आदि देना हर छोटे संस्थान के लिए आर्थिक दृष्टि से सम्भव न हो तो भट्टी तथा भोजन पकाने की व्यवस्था तो उन्हें कर ही देनी चाहिए। सम्भवतः यह अच्छा होगा कि स्थानीय प्रशासन को यह घोषणा करने का अधिकार दिया जाय कि किसी एक क्षेत्र के लघु संस्थानों के समूह को कैन्टीन अथवा चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं को प्रदान करने के लिए एक उद्योग अथवा संस्थान के रूप में उस समूह को स्वीकार कर ले। कुछ अन्य सुविधायें, जैसे–महिला श्रमिकों के बच्चों के लिए सार्वजनिक खेलकूद व मन बहलाव की व्यवस्था अथवा उचित मूल्यों की दुकान अथवा कार्य स्थल से घर तक या निकटतम रेलवे स्टेशन तक यातायात की व्यवस्था आदि करने के लिए प्राविधान में बढ़ा देना चाहिये। संस्थानों के एक समूह को, जिनकी कर्मचारियों की संख्या एक परिभाषित संख्या से अधिक हो, इन सुविधाओं के देने हेतु एक संस्थान माना जाना चाहिए। इन संस्थानों के नियोजकों को इन लाभकारी सुविधाओं को देने में हिस्सा बटाना चाहिए व खर्चे में भागीदार बनना चाहिए और उसका आधार हर एक संस्थान के श्रमिकों की संख्या के अनुपात के अनुसार रहे। यह भी देखना आवश्यक है कि इन कैन्टीनों में दिए जाने वाला खाना सस्ता और स्वास्थ्यवर्द्धक होना चाहिए और उद्योग द्वारा नियुक्त चिकित्सक तथा चिकित्सा अच्छे स्तर की होनी चाहिए और इसे बड़ी खुशी व नम्रता पूर्वक दिया जाना चाहिये। कैन्टीन में अपूर्ण भोजन और चिकित्सकों के अहंकार भरे दुर्व्यवहार तथा चिकित्सा चिट्ठे को देने में दुर्लक्ष करने आदि की बहुत सी शिकायतें हमें मिली हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि एक कैन्टीन को स्थापित करने और डिग्री प्राप्त चिकित्सक की नियुक्ति करने के पश्चात उद्योग उनके ऊपर से अपने नियंत्रण को खो बैठता हैं और उन्हें चलाने के लिए कोई जिम्मेदारी नहीं लेता। उक्त स्थितियों से यह परिणाम निकल रहा है कि देश की सेवा संस्थाओं से श्रमिक वर्ग अपनी समूची आस्था खो रहा है और हृदयहीन बनकर कुन्ठित दृष्टिकोण से ग्रस्त हो रहा है। अच्छा भोजन और चिकित्सा मनुष्य जीवन के लिये रीढ़ की हड्डी के समान महत्ता रखती हैं। इस संदर्भ में जान बूझकर किसी भी प्रकार के दुर्लक्ष्य करने को फौजदारी का जुर्म मानना चाहिए। यह अच्छा होगा कि इन कल्याणकारी गतिविधियों के प्रबन्ध में श्रमिकों को एक

महत्वपूर्ण स्थान दिया जाय इन्हें औद्योगिक फण्ड से वित्तीय सहायता मिलनी चाहिए, जिसे उत्पादन अथवा बिक्री के ऊपर चुंगी या कार्यगत पूंजी के ऊपर एक निर्धारित प्रतिशत के निश्चित दर के रूप में खड़ा किया जाना चाहिए और इसे एक समुचित त्रिदलीय गठन, जो स्थानीय, राजकीय व राष्ट्रीय स्तर पर हो, को सुपुर्द करना चाहिए। सरकार व स्वायत्तशासी प्रशासन, जैसे–नगर पालिका को भी इस कल्याण-कारी कार्य में योगदान देना चाहिए। छोटे-छोटे संस्थानों को चाहिए कि वे प्राविडेन्ट फण्ड अथवा कर्मचारी राज्य बीमा निगम के समान कुछ उल्लिखित विषयों का प्रबन्ध करें और शेष दूसरों के लिए यह आवश्यक है कि वे संस्थानों के समूह को एक इकाई के रूप में घोषित करें –जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है। इन योजनाओं के खर्चे के लिए श्रमिकों से किसी प्रकार की धनराशि वसूल करने से कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि उद्योग अथवा सरकार के समान क्रमशः धनोपार्जन अथवा कर वसूली के कार्य को करने वाला श्रमिक नहीं होता। एक बार कल्याण के सम्पूर्ण उद्देश्य पूर्ति हेतु धनराशि की स्थापना हो जाती है, तो श्रमिकों की भिन्न-भिन्न गतिविधियों और धनराशि की उपलब्धता को ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार की गतिविधियां प्रयोग में लायी जा सकती हैं। जो सुविधायें उपलब्ध हो सकती हैं, वे निम्नलिखित हैं–शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न सुविधायें, खेलकूद, कला, मनोविनोद, विभिन्न आदतों व संस्कारों को पुरस्कार द्वारा बढ़ोत्तरी, कार्यस्थल अथवा घर पर कई प्रकार की सुविधाओं का प्राविधान, जैसे-सस्ती धुलाई, बीमार व वृद्ध लोगों के लिए चिकित्सा सम्बन्धी उपकरण, विश्रामगृह, पुस्तकालय, अवकाशकालीन पर्यटन और विश्राम गृह व अन्य सभी प्रकार की सहायता जैसे–बच्चों के लिए पुस्तक व दूध, महिलाओं के लिए सिलाई मशीन, पंगु व्यक्तियों के पुर्नवास व्यवस्था, वृद्धावस्था के लिए गृह व्यवस्था तथा श्रमिकों व जन-समुदाय के लिए भिन्न प्रकार के मनोविनोद का प्रबन्ध करना आदि। यह सूची इतनी लम्बी हो सकती है कि जिसका अन्त नहीं है, क्योंकि 'कल्याण' की एक व्यापक परिभाषा है इस सन्दर्भ में यह स्मरण रखना आवश्यक है कि बाहरी कर्मचारी जो अदृश्य हैं, को भुलाया नहीं जा सकता। उसे केवल मात्र बरसाती छाता सर्दी के कपड़े और वर्दी तथा गम बूट्स और एक सूटकेश दे देना मात्र पर्याप्त नहीं है, ये तो अनिवार्य रूप से उसे मिलनी ही चाहिए, और साथ ही उसके आवास व्यवस्था की विशेष कठिनाइयों, लगातार चलने के परिणाम स्वरूप भोजन और निद्रा में अनियमितताओं और उसके बच्चों की शिक्षा में कठिनाइयों और पारिवारिक जीवन से वंचित रहने आदि को उचित रूप से पूरा करना चाहिए। उसके कार्य के घंटे व कार्य के बोझ को ठीक प्रकार से नियंत्रण और विशेष सुविधाओं के प्राविधानों द्वारा पूरा करना चाहिए, ताकि वह सामूहिक जीवन में भाग ले सके। उसके भोजन व आवास की आवश्कताओं

को यात्री आवास व्यवस्था को व्यापकता देने से अच्छी प्रकार से पूरा किया जा सकता है। म्यूनिसिपिल तथा स्थानीय संस्थाओं के लिए यह अनिवार्य कर देना चाहिए कि वे चौबीसों घंटे की ड्यूटी तथा चलते फिरते रहने वाली जिम्मेदारी वहन करने वाले लोगों के लिए उचित भोजन और आश्रय स्थान प्रदान करें। सड़क व रेलवे निर्माण और रख रखाव करने वाले श्रमिकों की जो दयनीय स्थिति है, उसे देख कर इन कर्मचारियों के नियोजक अथवा सरकार की किसी भी प्रकार की प्रशंसा नहीं की जा सकती। अस्थायी व ठेके के श्रमिक के स्तर को देखकर, उनके लिए ऐसी कोई भी रुकावट नहीं होनी चाहिए कि उन्हें और उनके परिवार के लिए उपयुक्त कल्याणकारी सुविधायें न दी जांय। श्रमिक अक्सर अपने योगदान के स्तर के लिए कल्याणकारी प्राविधानों के स्तर से ही प्रेरणा प्राप्त करते हैं। यह कहना गलत न होगा कि भारतीय हस्त कला, कुशलता और उत्पादकता में कमी का एक प्रमुख कारण श्रमिकों की आवश्यकताओं के प्रति दिए जाने वाले ध्यान तथा कल्याणकारी गतिविधियों की कमी में निहित हैं।

## कल्याणकारी अधिकारी (श्रम कल्याण अधिकारी)

विशेषज्ञता के विकास से जिसने उत्पादन की व्यापक पद्धतियों को प्रस्तुत किया है, उद्योग में उस कल्याणकारी कार्य को एक विशेष एजेन्सी के हाथ में सुपुर्द किया गया है और वह एजेन्सी कल्याणकारी अधिकारी के आधीन रहती है। यह वैसा ही है, जैसा कि होना चाहिये। बहुत से नियोजक इसकी नियुक्ति करके कल्याणकारी कार्यों की समाप्ति समझ लेते हैं अथवा अधिकतम श्रम कल्याण हेतु कानूनी जिम्मेवारियों के पूरा करने के लिये कल्याणकारी अधिकारी को जिम्मेवार मानते अथवा वे इसका बन्दोबस्त कर लेते हैं कि कल्याणकारी सुविधाओं के बारे में जो शिकायतें हों वे एक व्यापक स्वरूप न धारण कर लें, जिनका कि वे प्रबन्ध नहीं कर सकते। भारतीय उद्योग में इससे भिन्न एक अन्य प्रकार की विचार श्रृंखला है, जिसमें कल्याणकारी अधिकारी को एक तीसरी शक्ति के रूप में देखा जाता है तथा जिसके अन्तर्गत उसे श्रमिक और प्रबन्धक जैसी परस्पर विरोधी शक्तियों के बीच में तटस्थ स्थिति पैदा करने वाला मानते हैं अथवा उसे लाइजन आफिसर (Liasion afficer) के रूप में मानते हैं। अक्सर कल्याणकारी अधिकारी की भूमिका और उसके कार्य के मूल्यांकन के लिये उपयोगी दृष्टि प्रस्तुत की जाती है और उसके योगदान को उत्पादन और लाभ के रूप में नापा जाता है, जैसी इसकी गतिविधियाँ कारखाने को प्राप्त होती हैं। नियोजकों का एक ऐसा वर्ग है, जो अपने आप को प्रगतिशील मानता हैं, वह कल्याणकारी अधिकारी को कुछ हद तक तटस्थता प्रदान करता है और इसकी भी चिन्ता नहीं करता कि संघर्ष की स्थिति

में उसका खुला मत श्रमिक के हक में चला जायगा। ऐसा प्रतीत होता है कि एक व्यापक मानवीय दृष्टिकोण अथवा दयालु भाव ही नियोजकों के इस दृष्टिकोण को बनाता है। परन्तु नियोजकों के सम्बन्ध में ये बखान जो अन्ततोगत्वा कुछ विशेष गतिविधियों को अनिवार्य रूप मे करने के लिये ही है अपने नियुक्ति के अन्तर्गत कल्याणकारी अधिकारी के वेतन का जब वे भुगतान करते हैं, तो इस तथ्य को नहीं छिपा सकते कि स्वच्छ कल्याणकारिता के स्थान पर कुछ और भी होता है, जो अभी भी कल्याण के नाम के अन्तर्गत अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु उनके द्वारा इच्छा व्यक्त की जाती है। यह द्वैतभाव बिना कारण के नहीं है। हर एक उद्योग में व औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र में एक समय आता है, जब कल्याणकारी अधिकारी के काम की इस भूमिका का, जिसके अन्तर्गत वह प्रबन्धक का अभिकर्ता होता है, भयानक रूप से पर्दाफाश हो जाता है और कल्याणकारी अधिकारी औद्योगिक सम्बन्धों के समूचे चित्रण में अत्यधिक अधम व्यक्ति बन जाता है। यही कारण है कि बहुत सी हड़तालों में कल्याणकारी अधिकारी ही श्रमिक नेताओं के हाथ का पहला शिकार बनता है।

एक वास्तविक कल्याणकारी अधिकारी को श्रमिकों के सेवक के रूप में देखा जाना चाहिये अथवा कम से कम एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में देखा जाना चाहिये, जो श्रमिक समूह के कल्याण की बढ़ोत्तरी के काम के प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पित है। श्रमिकों और उनके परिवार की खुशी के अलावा इसको कोई और काम नहीं होना चाहिये। श्रमिकों के प्रति इस जिम्मेवारी के निभाने के स्थान पर कोई और काम नहीं होना चाहिये यही भगवान के चरणों में सीधी पूजा है और एक सही पूजा के समान, इसे भक्ति भाव से करनी चाहिये और किसी भी प्रकार के बदले की भावना नहीं रखनी चाहिये। पाश्चात्य विचारों व दृष्टिकोण में इसे विशेषज्ञों की श्रेणी के समान तथा सामाजिक सेवा के रूप में मानना चाहिये। यह व्याख्या ठीक उसी प्रकार से है, जिसको बम्बई श्रम संस्थान के लेबर इकनामिक्स के प्राध्यापक श्री वी० जी० मेहत्राज ने अपनी अच्छी अत्युत्तम ढंग से लिखी हुई पुस्तिका 'लेबर वेलफेयर एण्ड वेलफेयर आफिसर इन इन्डियन इन्डस्ट्री' में कल्याणकारी अधिकारी के काम के बारे में उल्लेख किया है। इस पुस्तक के अन्त में दिये गए चार्ट्स के अन्तर्गत कल्याणकारी अधिकारियों और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में उनकी भूमिका के विश्लेषण के जो चित्रण हैं, उसे हम लोगो ने प्रशंसनीय रूप से स्वीकार किया है। परन्तु फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपने पूरे चित्रण में कल्याणकारी रुझान पर ही अत्यधिक आग्रह करते हैं, न कि इस प्रकार के कार्य के सम्बन्ध में जो एक संगठन के रूप में है और समझा बुझाकर तनाव कम करने की भूमिका के लिए है और अपनत्व के वातावरण को बढ़ाने के लिए हैं, किन्तु यह भी एक अपूर्ण भक्ति ही है, जिसके अन्तर्गत काम को बिना स्वाभाविक श्रद्धा के

किया जाय। इसकी असफलता का कारण तो इसकी कल्पना के समय ही बन गया था, जिसे बड़ी सरलता से पहले से बताया जा सकता है। श्रिमकों के उचित कल्याण के अलावा अन्य किसी भी प्रकार के कार्य की योजना इस अधिकारी के जिम्मे नहीं होनी चाहिए। यह कल्पना कि वह नियोजक का व्यक्ति है, पूर्णतः समाप्त हो जानी चाहिए। वह भगवान का आदमी है और मानवता की अच्छाई के लिए समर्पित है। उद्योग को यह विश्वास होना चाहिए कि औद्योगिक सम्बन्ध के कार्यक्रम के अन्तर्गत सभी के कल्याण हेतु बिना किसी हिचक और संस्कारों से युक्त यह एक ऐसी योजना जो स्वतः से अच्छे परिणाम प्रस्तुत करती है। वस्तुतः ऐसी भूमिका ही उद्योग को एक व्यापक विनाश से बचाएगी। 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'। इस भूमिका को श्रमिक अधिकारी अथवा कल्याण अधिकारी सभी प्रकार के अंकुश से मुक्ति के साथ निभा सकें तो यह एक अच्छा उदाहरण होगा। साथ ही उनकी नियुक्ति और छंटनी केवल मुख्य श्रमायुक्त अथवा किसी बाहरी एजेन्सी की सिफारिस व अनुमोदित करने पर ही की जानी चाहिए। इससे भी अच्छा होगा यदि उनकी नियुक्ति और छटनी एक ऐसे अधिकारी अथवा अधिकृत समिति द्वारा होनी चाहिए, जो स्थायी त्रिदलीय यंत्रणा के आधीन बनायी गयी हो। इस यंत्रणा का उल्लेख 'त्रिदलीय गठन' के अन्तर्गत हमारी याचिका के अध्याय क्र० ६ में किया गया है।

## अनुपस्थिति

भारत में उद्योग की कुशलता की अनुपस्थिति एक सबसे बड़ी बीमारी के रूप में मानी जाती है। हड़ताल द्वारा जो कार्य दिवस नष्ट होते हैं, वे सबसे अच्छे गिने गये वर्ष में ३० लाख और सबसे खराब वर्ष में १०० लाख कार्य दिवसों के नष्ट होने के बीच में रहते हैं। (सबसे अच्छा वर्ष १९६३ का था, जिसमें चीनी आक्रमण के कारण सभी श्रमिक आन्दोलन स्वेच्छा से छोड़ दिये गये थे)। परन्तु जो कार्य दिवस अनुपस्थिति के कारण नष्ट हुये हैं, उनकी संख्या बहुत अधिक है। एक अनुमान के अनुसार ये आकड़े प्रति वर्ष १५० लाख कार्य दिवस से अधिक हैं। इकनामिक टाइम्स के २८ दिसम्बर १९६७ के अपने लेख में श्री एन० बी० खोरे ने १९६०-६५ कार्यकाल की अवधि में भारत के कुछ उद्योगों व केन्द्रों में वार्षिक औसतन अनुपस्थिति के दर के बहुत रोचक आकड़े प्रस्तुत किये हैं। पूरे काल के लिये उनके निकाले गये आकड़े निम्नांकित हैं—

| उद्योग | स्थान | वर्ष १९६०-६५ की औसत अनुपस्थिति दर |
|---|---|---|
| सूती मिल्ल | बम्बई | :१२·७ |

| | | |
|---|---|---|
| सूतीमिल | अहमदाबाद | ·७·९ |
| ,, | शोलापुर | :१६·५ |
| ,, | कानपुर | ·१६·४ |
| इन्जीनियरिंग | बम्बई | १४.१ |
| ,, | पश्चिमी बंगाल | ·१३·२ |
| ,, | मैसूर | .:१२·९ |
| बागान | ,, | २०·३ |
| कोयला खदान | सम्पूर्ण भारत | ·१३·३ |

ये आकड़े स्वेच्छा और अनिवार्य रूप से अनुपस्थिति के जोड़ अथवा वार्षिक अवकाश, आकस्मिक अवकाश, रुग्णावकाश आदि के योग को मिलाकर है। परन्तु साप्ताहिक छुट्टियों को नही मिलाया गया है। इसलिये इन आंकड़ों को आवश्यक छूट देकर ही अध्ययन करना पड़ेगा, जिस पर भी ये आकड़े बहुत अधिक हैं। उत्पादन पर अनुपस्थिति के प्रभाव के संदर्भ में बताते हुये श्री खोरे ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वर्ष भर में एक प्रतिशत की दर से जो अनुपस्थिति होगी, वह एक ही समय पर भारत के सभी प्रमुख नगरों में सगठित औद्योगिक क्षेत्र द्वारा किये गये ५ अथवा ६ पूर्ण सफल बन्द के बराबर होगी। भिन्न प्रकार की अनुपस्थिति में सबसे उल्लेखनीय रुग्ण अनुपस्थिति अथवा प्रमाणित अनुपस्थिति है। यह कहा जाता है कि राज्य कर्मचारी बीमा योजना के लागू करने के बाद अनुपस्थिति का यह घटना चक्र बढ़ा है। अनुपस्थिति का यह घटना चक्र पर्याप्त मात्रा में व्यापक है और बढ़ते हुये विशाल हृदयता वाली रुग्णता लाभ योजना के कारण यह मनोवृत्ति और भी बढ़ी है तथा ऐसा ही परिणाम इग्लैन्ड, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, अमेरिका और जापान में भी हुआ है। साम्यवादी देश भी यह महसूस कर रहे हैं कि बीमारी की घटनायें बढ़ रही हैं। हंगरी में औसत औद्योगिक श्रमिक बीमारी के कारण वर्ष में १९ दिन से ऊपर काम पर नहीं उपस्थित होता, जब कि जेकोस्लोवाकिया में यह औसत १४·५ दिन है। पाश्चात्य देशों में यह देखा गया है कि अक्सर मनोभूमिका की अस्थिरता छोटी सी बीमारी होने के कारण बढ़ जाती है और काम पर न आने के लिये बाध्य करती है। काम से भगाने की आदत और डाक्टरों द्वारा सरलता से प्रमाणपत्र देना भी एक कारण कहा जा सकता है। यू० के० की इम्पीरियल केमिकल इन्डस्ट्रीज में जहां पर एक विशाल हृदयता वाली रुग्णता लाभ योजना पूर्णतः नियोजक के मूल्य पर लागू की जाती है, वहां की केमिकल उद्योग में अनुपस्थिति की दर उच्चतम है। यह ऐसा ही है जैसा होना चाहिये। पाश्चात्य देशों में भी कर्मचारियों की अनुपस्थिति के कारण उत्पादन हानि बहुत व्यापक है। ब्रिटेन की एक रिपोर्ट में इस विषय पर उल्लेख किया गया है कि ब्रिटिश उद्योग में हड़ताल

द्वारा नष्ट हुये दिनों का सम्पूर्ण योग ३० लाख दिवस बनता है, जबकि अनुपस्थिति के कारण यह ३० करोड़ दिवस होता है। एशिया और अफ्रीका में अनुपस्थिति का यह घटना चक्र काफी बड़ा है भारत के औद्योगिक समुदाय में अनुशासन की व्यापक कमी के कारण यह और भी खराब हो गयी है। यह भी कहा जाता है कि भारतीय कारखानों में औसत श्रमिक केवल ४ घंटे प्रतिदिन काम करता है और एक क्लर्क तो बड़ी मुश्किल से ३ घंटे काम में लगता है। एक एस० क्यू० सी० अध्ययन ने सामूहिक हानि को २५ प्रतिशत तक का अनुमान लगाया है और यह भी संकेत किया है कि अत्युत्तम ढंग से प्रबन्ध की गयी औद्योगिक इकाइयों में भी सामूहिक परियोजना की उपयोगिता ४० प्रतिशत से कम है।

औद्योगिक मनोविज्ञान के बहुत से छात्रों और लेखकों ने भी अनुपस्थिति के इस विषय पर ध्यान केन्द्रित किया है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रश्न के सभी प्रकार के निराकरण अभी बहुत दूर ही हैं। कुछ ही दिन पहले दिल्ली की टेक्सटाइल उद्योग में इस संदर्भ पर एक गहनशील शोध किया गया। अधिकृत छुट्टी और अनधिकृत छुट्टी के बीच के अन्तर के बारे में लेखक ने लगातार अनुपस्थित रहने वालों के व्यक्तिगत चरित्र पंजिका ब्योरे का ५ भागों में वर्गीकरण किया है। वे हैं–उद्यमी, सम्माननीय स्थान पाने वाले, विषयासक्त व्यक्तियों, परिवारिक सम्मान वाले तथा बीमार व बूढ़े। पहली दो श्रेणियां उस प्रकार की हैं, जो अत्यधिक गतिविधियां करती हैं। उद्यमी बहुत अधिक विषयों एवं उलझनों में जकड़ा रहता है, जिसके परिणाम स्वरूप कारखाने में होने वाली नित्य अनुपस्थिति की चिन्ता नहीं करता और सम्माननीय स्थान पाने वाले अपने पद के आधार पर अनधिकृत रूप से इसका दुरुपयोग करते हैं। शेष भगोड़े वर्ग के लोग हैं, जिनमें से विषयासक्त व्यक्ति अपने में ही एक वर्ग है। साथ ही पारिवारिक सम्मान वाले अपने ही घर के काम में लगे रहते हैं और बीमार व बूढ़े तो वैसे ही असहाय रहते हैं। फिर भी लेखक ने इन मनोवृत्तियों को ठीक करने के लिए केवल एक ही प्रमुख सुझाव दिया है – वह यह है कि ठीक काम के लिए ठीक व्यक्ति चुना जाना चाहिए। इस चयन कार्य के लिए वह सावधानी पूर्वक चुनाव कार्यक्रम का सुझाव किया है, जो कौशल परीक्षण पर आधारित हो और साथ ही व्यक्ति को काम के अनुसार समुचित समायोजन की सहायता से समझाने बुझाने वाली सेवा के लिए भी उसने सुझाव दिया है। अभी यह देखना शेष है कि किस हद तक यह सुझाव भारतीय वातावरण में व्यावहारिक है और इसकी अनुपस्थिति को कम करने में क्या उपयोगिता है। पर यह एक प्रमुख तथ्य की ओर इंगित करता है कि भारतीय श्रमिक अपनी वर्तमान स्थिति तथा वातावरण से खुश नहीं है और उसे यह वातावरण

रुचिकर नहीं लगता है। कोई भी ऐसा कारण नहीं है कि वह पहले से ही अपने कम वेतनों के एक भाग को गवां बैठे और काम से भागने को पसन्द करे। इस संदर्भ में यह उल्लेख करना बहुत ही महत्व पूर्ण है कि स्वयं रोजी कमाने वाले क्षेत्र (त्रिदव–कर्मा सेक्टर) में अनुपस्थिति की वृत्ति बिलकुल नहीं है। पट्टीवाला, रिक्साचालक, टैक्सी ड्राइवर, डब्बा वाला, दूध वाला, मोची, डाक्टर, वकील, राजनीतिक व ट्रेड यूनियन कार्यकर्ता जैसे वर्ग कभी भी काम से अनुपस्थित नहीं रहते, जब कि श्रमिकों के समान उन्हें अपने काम का विवरण भी नहीं देना पड़ता। अक्सर ये रविवार को भी काम करते हैं और स्वेच्छा पूर्वक देर रात्रि तक भी करते हैं ऐसा ही उदाहरण गृहणियों का है, जो देश की कार्यकर आबादी की आधी जनसंख्या की हैं और वे एक दिन के विश्राम के लिए भी नहीं सोचतीं। काम के प्रति दुर्लक्षता अथवा आलस्यपन पर पूर्वी देशों के लोगों का दृष्टिकोण बतलाना ठीक नहीं होगा। इसमें कोई शक नहीं है कि हमारे यहां मुद्रा सम्बन्धी प्रोत्साहन और औद्योगिक अनुशासन से प्रेरणा लेने के बारे में दूसरे देशों के मुकाबले में अधिक दुर्लक्ष किया जाता हैं, और इसलिए कोई भी बाहरी चिकित्सा एक लम्बी अवधि से अधिक काम करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती, जो केवल मात्र शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ही हो। परन्तु वह काम जो मन और उससे सम्बन्धित हितों को पसन्द है तथा वह काम जिसमें व्यक्ति अपने शरीर और आत्मा को लगा सकता है, भारतीय मस्तिष्क को बहुत अधिक मोहित करने वाला तथा साहस के रूप में प्रकट होने वाला होता है। कार्य के इस प्रकार के नियंत्रण में वह अपने आप की सब चीजों को भूल जाता है और इसी में उसके काम की आदतें बनाने की पूर्ण पद्धति भी निहित है।

मनुष्य मस्तिष्क में निर्माण की प्रवृत्ति सार्वभौम है। इस भीतरी मनोवृत्ति के प्रकटीकरण का सही रूप 'कर्म' है। यह वृत्ति भगवान की दी हुयी प्रवृत्ति है। जब निर्माण की पुकार होती है तो पेड़ में फूल आते हैं। इसी सन्दर्भ में मनुष्य के जन्म के साथ ही कर्म जुड़ा है। इसे 'सहज कर्म' कहते हैं। मनुष्य कर्म के बिना रह नहीं सकता।

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के लिए उसे कर्म करना पड़ता है। शरीर की यात्रा कर्म के बिना असम्भव है। शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्धयेद कर्मणः। इतना नहीं हर एक व्यक्ति के लिए उसके अन्दर भी स्वभाव के अनुकूल काम है। कर्म का प्रकार उसके व्यक्तित्व की विशेषता के अनुसार है और वह अपनी प्रवृत्ति के साथ पैदा हुआ है और उसे वह उस कर्म से स्वाभाविक रुप से बांधता है, जो उसके व्यक्तित्व के बिना ही उससे जुड़ा है। वह एक काम के लिए नियुक्त किया

गया है, जिसे अपनी पूर्णता के माध्यम के रूप में उसको मानना होगा। 'स्वभावजेन कर्मेण निबद्धः स्वेन कर्मणा'। जैसा गीता ने कहा है। यह हम सबके लिए है कि हम हर एक व्यक्ति को उसकी प्रवृत्ति के अति अनुकूल काम को पहचानें, जो उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। औद्योगिक परिवार के विवेचन में पहले ही यह अवसर प्राप्त किया है, जिसमें हमने स्वनिर्धारित, स्वप्रशासित सामुदायिक समूह के सामाजिक आर्थिक पद्धति के मौलिक सिद्धान्तों को रखा है। स्वयंशासित–समष्टि। काम के व्यक्तिगत रुचि के प्रश्न के सम्बन्ध में हमें यह समझना और आग्रह करना है कि स्वयं के स्वरूप को प्रकट करने और परिणाम स्वरूप स्व अनुशासित व्यक्तिगत उत्थान 'स्वाधीन व्यष्टि' की प्रक्रिया के बारे में कि वह क्या है और समाज के सर्वसाधारण उद्देश्यों के समकक्ष तरतम रूप के पूर्णतः भाव को भी समझें। वस्तुतः व्यक्ति के जीवन के बारे में बिना सोचे समाज के बारे में सोचना ही असंगत है और फिर भी इस मुक्ति को बुद्धिजीवियों द्वारा अक्सर उपयोग में लायी जाती है। ये बुद्धिजीवी समाज जीवन को सर्वप्रथम सोचते हैं और उसकी गतिविधियों की योजना बनाते हैं और तब निर्धारित ढांचे में नियुक्ति हेतु व्यक्ति को ढूढ़ते हैं। हर एक व्यक्ति को वे पहले से सिले सिलाये कपड़ों में फिट करना चाहते हैं और जब हर नियुक्ति में उपयुक्त व्यक्ति नहीं खोज पाते तब वे दूसरों की और समाज के बारे में शिकायत करते फिरते हैं और राज्य तथा दूसरी एजेन्सियों की सहायता के लिए आह्वान करते हैं, ताकि नियोजित आवश्यकताओं के अनुसार व्यक्ति की प्रवृत्ति को प्रशासित किया जाय। वे काम न करने पर दूसरों पर कड़ी टिप्पणियां करते हैं, जबकि वह काम इन दूसरे व्यक्तियों द्वारा कभी भी अनुमोदित न था। वे यह भूल जाते हैं कि ये अन्य लोग भी उन्हीं के समान मनुष्य मात्र हैं, उनकी भी काम और स्व विवेचना की प्रवृत्तियां हैं। अगर उन्हें अपने मार्ग के अनुसार बढ़ने की अनुमति न दी गयी और उन्हें पूर्ण न करने दिया गया तब उसका परिणाम व्यापक विनाश के लिए अवश्यभावी है। 'परधर्मो भयावहः।" पाश्चात्य प्रकार का औद्योगीकरण विदेशी तन्त्र है। यह अस्तित्व के उन उद्देश्यों और सिद्धान्तों को उत्पन्न करना चाहता है, जो हमारी संस्कृति को बाहरी (विदेशी) लगते हैं और जो हमारे जीवन में सामाजिक और आर्थिक गतिरोध, नैतिकता ह्रास और निष्ठुर समस्यायें पैदा करती हैं। भारतीय श्रमिक की अनुपस्थिति इस विदेशी और निष्ठुर नियन्त्रण के विरुद्ध घोषित शत्रु है। हर एक व्यक्ति की प्रवृत्ति सभी व्यावहारिक दृष्टिकोणों से जीवन की एक सुदृढ़ स्थापित और नियम बद्ध वास्तविकता के लिये है। हर एक बच्चे की स्वाभाविक और प्राकृतिक रुझान और गतिविधियां तथा उसको दी गयी शिक्षा एक प्रकार के मनुष्य का निर्माण करती है, जिसकी निर्माण क्षमता एक विशेष प्रकार से उल्लेख करने वाली बनती है। यह उस प्रकार का व्यक्ति बनता है, जिसे

जीवन में अपने उपयुक्त काम चुनने के लिये आमन्त्रित किया जाता है अथवा प्रोत्साहित किया जाता है। सामाजिक व्यवस्था माली का काम करती है, परन्तु उसे बीज की प्रकृति जिसे भगवान ने प्रदत्त की है, को स्वीकार करना पड़ता है। 'स्वभाव नियतं कर्म'। सामूहिक जीवन को व्यक्ति के साथ जोड़ने और उसे प्रस्थापित करने के कार्यकलाप जीवप्राणी के क्रम के साथ बढ़ना चाहिये, जैसे समाज और जैसा एक पेड़ अथवा मनुष्य शरीर ताजे खाद्य पदार्थ और उष्णता से बढ़ता है और जैसी प्राकृतिक विलीनीकरण की प्रक्रिया से प्राकृतिक रूप से उसका उत्थान नये स्वरूप खड़ा करता है, इसी प्रकार हर एक व्यक्ति को सामाजिक जीवन के जीव प्राणी उत्थान में अपनी प्राकृतिक स्थान को इस प्रकार से ढूढ़ना चाहिये, ताकि उसकी प्रवृत्ति निर्माणकारी आत्मा के व्यापक स्वेच्छा से भरपूर हो जाय। यह प्रक्रिया परिणामस्वरूप मनुष्य जीवन को जीवन प्रदान करता है. दूसरे शब्दों में यदि हम अपने समाज को यन्त्र और पूंजी की नींव पर न बनाना शुरू करें बल्कि मनुष्यों की भिन्न प्रकार की पूंजी और उसकी व्यापक प्रवृत्ति के अनुसार बनायें तो हम देखेंगे कि हर एक व्यक्ति पूरे समाज के लिये बहुत हितकारी है। हर एक मनुष्य जीवन में अपना स्थान ग्रहण करने के लिये निश्चित ही इच्छुक है और हर एक व्यक्ति निर्माणकर्ता है। पाश्चात्य देशों में वैज्ञानिक प्रबन्ध की तकनीकी पद्धतियों ने भी प्रशासन में हर एक व्यक्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार की देख-रेख की सर्वोच्च महत्ता की अनुभूति करना शुरू कर दिया है। उन्होंने व्यक्ति उत्थान कार्यक्रम का विकास अब तक कर लिया हैं जो कि हर एक व्यक्ति के विशेष विकास की आवश्यकताओं के भिन्न-भिन्न क्रमों और दिशाशों के अनुसार बैठता है। कार्यकलापों और सत्ता के वितरण की वर्तमान दिशा हमें यह बतलाती है कि वह पद के अनुसार नहीं बांधी जानी चाहिये, बल्कि भिन्न-भिन्न पदों पर रखे व्यक्तियों की क्षमताओं और विशेषताओं के अनुसार समय-समय पर बदलनी चाहिये। यह एक व्यक्ति को अपने व्यवसाय में दिलचस्पी पैदा करने की पूर्व निर्धारित आवश्यकता है, जैसा कि हम पहले ही दिखा चुके हैं कि वास्तव में हर एक मनुष्य को उसके स्वयं निर्धारित उद्देश्य के लिये काम मिलना चाहिये। एक पुराना संस्कृत सुभाषित कहता है—

अमंत्रम् अक्षरं नास्ति। नास्ति मूलमनौषधम्॥
अयोग्यः पुरुषो नास्ति। योजकः तत्र दुर्लभः॥

वस्तुतः कोई भी अनुपयुक्त व्यक्ति नहीं है, बल्कि यह योजना बनाने वाले की गलती है। उसको हर व्यक्ति को उसके उचित स्थान पर रखना चाहिए, जैसे कि 'पर्वत और गिलहरी' शीर्षक के कवि ने लिखा है कि गिलहरी पर्वत से ठीक ही कहती है—"हर एक वस्तु ठीक और बुद्धिमता पूर्वक बनाई गयी है, सबकी प्राकृतिक योग्यता भिन्न भिन्न है, यदि मैं अपनी पीठ पर जंगल नहीं उगा सकती तो

तुम भी एक नारियल तक नहीं फोड़ सकते।" हर एक अपने स्थान में पूर्ण है और कोई भी अपने क्षेत्र में किसी दूसरे को मान नहीं दे सकता। हर एक व्यक्ति की निर्माण कारी स्वेच्छा में विश्वास उसकी स्वेच्छा के प्रगटीकरण के लिए पोषक व उपयुक्त ढ़ाचे के लिए सतत प्रयत्न, हर एक व्यक्ति की कल्याणकारी स्वेच्छा के आधार पर सामाजिक जीवन के व्यापक ढ़ांचे, उसके जीवन और उसके स्व को पूर्ण करने की दिशाओं को इकट्ठा करने आदि ही वास्तविक रूप में वह मार्ग है, जिसके द्वारा अनुपस्थिति की बीमारी को ठीक किया जा सकता है, साथ ही अधिक सकारात्मक रूप से जाति अथवा समाज के हर समय ताजे और यौवनयुक्त जीवन धारा में हर व्यक्ति के उपस्थित रहने की पद्धति की पूर्णता का एक रास्ता प्राप्त हो सकता है।

## सामाजिक सुरक्षा

यह एक व्यापक और न समाप्त होने वाला विषय है। भारतीय संविधान इस संदर्भ में एक मौलिक चिन्तन को ही समाविष्ट करता है। संविधान की प्रस्तावना हर एक नागरिक के लिये न्याय-सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तथा हर प्रकार के सामाजिक स्तर, सम्मान और अवसर में समानता को प्राप्त कराने के लिये कटिबद्ध है। राजनीति के निदेशक सिद्धान्त प्रस्तुत करते है कि 'राज्य अपनी आर्थिक समताओं और विकास की सीमा में बेरोजगारी, वृद्धावस्था, बीमारी, अपंगावस्था और दूसरी इसी प्रकार की आवश्यकताओं के लिये प्रभावी प्राविधान करेगी।' पहली पंचवर्षीय योजना ने इस तथ्य को माना था कि इन निदेशक सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने अथवा गतिविधियों को बदलने के लिये सामाजिक आर्थिक ढांचे को ही इस प्रकार से बदलना होगा ताकि उन आधारभूत स्वेच्छाओं को क्रमशः बिठाने अथवा आत्मसात करने के योग्य हो सके, जैसे-काम करने का अधिकार, उचित आय का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, वृद्धावस्था बीमारी और अपंगता आदि के विरुद्ध बीमा के कदम आदि। पंचवर्षीय योजना यह संकेत करती है कि योजना काल में इम्पलाइज स्टेट इन्सोरेन्स एक्ट और प्राविडेन्ट फण्ड एक्ट के अनोखेपन के कारण प्रशासकीय, वित्तीय और दूसरी कठिनाइयों के कारण कोई भी नये कदम नहीं लेने चाहिये। प्रथम योजना ने अपने उद्देश्यों को पूर्ण किया है। दूसरी योजना ने इन योजनाओं को नये उद्योगों और सदस्यों तक व्यापक करने के लिये सोचा था और प्राविडेन्ट फण्ड के योगदान की दरों को बढ़ाया था तथा यह सिफारिश की थी कि प्राविडेन्ट फण्ड और ई० एस० आई० योजना को समाविष्ट कर एक सामाजिक सुरक्षा की व्यापक पद्धति बनायी जाय। यह एकीकरण अब कार्यान्वित होने वाला है। फिर भी इस संदर्भ में यह ध्यान रखना चाहिये कि प्राविडेन्ट फण्ड और ई० एस० आई० योजना को प्राथमिक कानून के रूप में प्रस्तावित करने के पश्चात दो

और लाभान्वित करने वाली योजनाओं-पेन्शन और ग्रेच्युटी को कानूनी स्तर देना शेष है। इस कानूनी कमी को अब पूरा किया जाना चाहिये। अभी तक सामाजिक सुरक्षा पद्धति संगठित उद्योगो के वेतन भोगियों तक सीमित था, किन्तु तृतीय पंचवर्षीय योजना ने घोषणा की कि क्रमशः राज्य और शहरी और ग्रामीण स्थानीय संगठनों को भी इन योजनाओं में जो कि सामाजिक सहायता और सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत हैं, में भाग लेने की आवश्यकता है। इन दिशाओं में तीन प्रकार के लोगों के लिए एक साधारण शुरुआत करने की बात थी। ये वर्ग शारीरिक कमियों वाले, बृद्धजन जो काम नहीं कर सकते और औरतें व बच्चे जो अपनी जीवन निर्वाह और सहायता के माध्यम में पूर्ण नहीं हैं, गिने गये हैं। यह भी प्रस्तावित किया गया था कि ई० एस० आई० योजना उन क्षेत्रों तक बढ़ायी जायगी, जहां पर बीमा जनसंख्या ५०० से १५०० तक के बीच में हो। सरकार ने तृतीय पंचवर्षीय योजना की महत्वाकांक्षी उद्देश्यों की पूर्ति में सराहनीय प्रयत्न किये हैं। वर्तमान काल में त्रिदलीय समिति ने श्री सी० आर० पट्टाभिरमन की अध्यक्षता में ई० एस० आई० योजना का पुनः निरीक्षण किया है। समिति ने सामाजिक सुरक्षा की एकीकृत कार्यक्रम के विकास की आवश्यकता पर पुनः बल दिया है। कुछ ही दिन पहले जून, १९६४ में भारत सरकार ने भिन्न-भिन्न सामाजिक सुरक्षा और कल्याणकारी योजनाओं को प्रोत्साहन करने के लिये एक प्रमुख कदम उठाया है, जिसके अन्तर्गत कानून और सामाजिक सुरक्षा के मंत्रालय के अन्तर्गत सामाजिक सुरक्षा का एक पृथक विभाग खोला गया है। इस विभाग द्वारा प्रथम वर्षीय रिपोर्ट में घोषणा की गयी है कि सरकार की यह इच्छा है कि सामाजिक सुरक्षा के इस संदर्भ को सुदृढ़ करने के लिए और योजनायें खोजी जानी चाहिये तथा अपनायी जानी चाहिये तथा जहां कहीं सम्भव हो, लाभ के स्तर को बढ़ाना चाहिये, इस संदर्भ में राज्य सरकारों द्वारा चलायी गयीं भिन्न-भिन्न योजनायें–६·५ करोड़ परिगणित जाति तथा ३ करोड़ अनुसूचित जनजाति को केन्द्रित वित्तीय सहायता दी जानी चाहिए। शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं को न केवल अनुसूचित समुदाय और घूमन्तू कबीले तक ही बढ़ाई गयी बल्कि उन परिवारों, जिनकी वार्षिक आय एक निर्धारित न्यूनतम आय से कम है, दी गयी है। अभी तक पेन्शनर्स को इस योजना में नहीं लिया गया था, परन्तु अक्टूबर, १९६४ में सरकार ने पेन्शन में थोड़ी सी बढ़ोत्तरी कर एक तदर्थ निर्णय करके इस सन्दर्भ में थोड़ी प्राथमिकता दिखाई है। सरकारी कर्मचारियों के लिए प्राविडेन्ट फण्ड की एक दूसरी पद्धति भी पहले से है। एक दशक से वे स्वयं के योगदान के आधार पर स्वास्थ्य सम्बन्धी योजना से भी लाभान्वित हो रहे हैं। पारिवारिक पेन्शन योजना में भी परिवर्तन आया है, जिसके अन्तर्गत कर्मचारी की मृत्यु के बाद उसकी विधवा को जीवन पर्यन्त पेन्शन दी जायगी और उनके नाबालिग

बच्चों को कुछ भत्ता दिया जायगा। सरकारी और निजी विद्यालयों में अध्यापकों के लिये कुछ दिन पहले से त्रिसूत्री योजना लागू की गयी है, जिसके अन्तर्गत पेन्शन और ग्रेच्युटी, योगदान सहित भविष्य निधि और अनिवार्य बीमा योजना है। दिसम्बर, १९६६ से विश्वविद्यालय वित्तीय आयोग ने स्वास्थ्य सेवा योजना प्रारम्भ की है, जिसके अन्तर्गत लगभग १२ लाख छात्र, ७० हजार अध्यापक तथा दूसरे अन्य स्टाफ व उनके परिवार वालों को लाभान्वित होने का अनुमान है। रेलवे ने भी अवकाश प्राप्त कर्मचारियों और उनकी पत्नियों को स्वास्थ्य व चिकित्सा सम्बन्धी सुविधा दी है। संसद ने कुछ ही समय पूर्व एक बेरोजगारी बीमा योजना को पारित किया है, जिसके अन्तर्गत कर्मचारी भविष्य निधि और कोल माइन्स प्राविडेन्ट फण्ड के [illegible] लाख सदस्यों को लाभ होगा। सन् १९५४ से बेरोजगारी बीमा के विषय प[illegible] सरकार का ध्यान गया हुआ है, जबकि श्रममंत्रालय के अन्तर्गत एक कार्यकारी समूह (working group) ने औद्योगिक श्रमिकों के लिये एक योजना की सिफारिश की थी, जिसमें हर श्रमिक को एक वर्ष में १३ सप्ताह के लिये लगभग आधे वेतन की दर से धनराशि का लाभ होना चाहिये। ऐसा अनुभव किया जाता है कि इन्जीनियरिंग और टेक्सटाइल उद्योगों में जहां पर लगातार तकनीकी अन्वेषण के कारण कुछ मात्रा में बेरोजगारी होती ही रहती है, उस छटनी के बढ़ोत्तरी में अथवा बन्दी में मुआवजा के स्थान पर बेरोजगारी बीमा योजना का सुझाव अति उत्तम है। ऐसा सुना गया है कि सम्पूर्ण देश के लिये एक उचित नमूने के आधार पर बृद्धावस्था पेन्शन योजना का विकास करना भी सरकार के विचाराधीन है। यदि यह योजना व्यवहारिक स्वरूप धारण करती है तो यह भारत सरकार की एक अनोखी उपलब्धि होगी। अभी भी वर्ष १९६६-६७ में सरकार ने अपंग व्यक्तियों और निराश्रित बूढ़े मर्द, औरत व बच्चों की सहायता हेतु वार्षिक बजट में २० लाख रुपये का प्राविधान किया है। ग्रामीण परिवारों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिये एक व्यापक एवं सामूहिक कार्यक्रम बनाया गया है। यह अवश्यमेव प्रशंसनीय है। पुनः आवास मंत्रालय ने अपने स्थान से हटाये गये व्यक्तियों और गर्भवती महिलाओं के लिये निःशुल्क राशन, कपड़े, औषधि, दूध आदि की सुविधा किया है। समाज द्वारा बहिष्कृत औरतों, बच्चों, विधवाओं, परित्यक्ता और दुर्लक्षित बच्चों, गूंगों व बहरों के लिये करीब एक सौ स्व प्रेरित संस्थाओं ने अपनी संस्था की ओर से एवं अन्य प्रकार से सेवा प्रदान की है। भिन्न-भिन्न सामाजिक सुरक्षा के कदम, जो कानूनी ढंग से सामाजिक सहायता और वित्तीय भत्ते के रूप में पहले से ही उस सीमा तक दी जा रही है, जिस सीमा तक आर्थिकस्थिति बहन कर सकती है। कर्मचारी राज्य बीमा योजना अब ११ लाख श्रमिकों को दी जाती हैं। स्वास्थ्य चिकित्सा सम्बन्धी सहायता भिन्न-भिन्न योजनाओं के अन्तर्गत ५ करोड़ १२ लाख लोगों को

दी जाती है। काम (ड्यूटी) पर चोट लगने पर आर्थिक व चिकित्सा सम्बन्धी सहायता ६५ लाख श्रमिकों के लिये स्वीकृत है, जबकि वृद्धावस्था में भिन्न-भिन्न प्राविडेन्ट फण्ड योजनायें एक करोड़ १० लाख लोगों पर लागू होती है। सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं का प्रशासन का अन्ततोगत्वा अधिकार त्रिदलीय गठनों के हाथ में है। यह इस प्रकार का है, जैसा कि उसे होना चाहिये। सामाजिक सुरक्षा का एक व्यापक कार्यक्रम, जिसके अन्तर्गत कर्मचारी राज्य बीमा को प्राविडेन्ट फण्ड योजना में विलीनीकरण करने के लिये है, पहले से ही सोचा जा रहा है। सरकार ने यह घोषणा करके अच्छा किया है कि सभी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा के कदम के एकीकरण को सर्वप्रथम प्राथमिकता दी जायगी, क्योंकि यह भविष्य की प्रगति के लिये एक सुदृढ़ प्रशासकीय और वित्तीय आधार प्रदान कर सकता है। सरकार के घोषित कार्यक्रम के अन्तर्गत पहले से ही निर्धारित निम्नांकित सूची है—इस सम्बन्ध के लिये गये कदमों में गुणात्मक सुधार, जैसे—उचित चिकित्सा और विशेषज्ञों की सेवा का प्राविधान, पुर्नवास का प्राविधान, अपंगों को पुनः काम देने और [illegible] की सेवाओं को बनाये रखने का प्राविधान, छोटे-छोटे कारखानों, दुकान व [illegible]य प्रतिष्ठान, व व्यवसायिक फर्मों को वर्तमान योजनाओं के आधीन लाना, शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं रोजी वाले और बेरोजगारों को शिक्षा का प्राविधान, [illegible] रोजी वालों को सम्पूर्ण सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं के अन्तर्गत क्रमशः [illegible] करना जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम जोखिमों जैसे कि अपंग होना, वृद्धावस्था व मृत्यु हो जाने पर सुरक्षा प्रदान करना और भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या के लिये राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा की योजना है। यह अवश्यमेव वह पक्ष है, जिसमें सरकार की सम्पूर्ण शक्ति इमानदारी और प्रशंसनीय ढंग से लगायी गयी है और योजना की गयी है। एक मात्र पीड़ित पक्ष, जो इस दीर्घकालीन प्रयत्नों पर एक धब्बे के समान है, वह यह कि कीमतों की लगातार बढ़ोत्तरी के कारण इन योजनाओं का समुचित लाभ दिन प्रतिदिन कम हो रहा है। यह माना जाना चाहिये कि इन योजनाओं के अंतर्गत राष्ट्रीय आय बजट से निर्धारित धन अच्छी लाभान्वित योजनाओं के लिये ठीक ढंग से लगायी जा रही है, यदि यह ऐसा है तो यह सरकार के लिये बहुत कठिन नहीं होनी चाहिये कि वह भिन्न-भिन्न वृद्धावस्था लाभान्वित योजनाओं और पेन्शन को मूल्य सूचकांक से न जोड़े। कुछ ही दिन पहले स्वीडन सरकार की वित्त मन्त्रालय ने एक पुस्तिका वितरित की है, जिसमें यह जानकारी दी गयी है कि किस प्रकार स्वीडिस सरकार प्राविडेन्ट फण्ड, ग्रैच्युटी और पेन्शन आदि योजनाओं को मूल्य सूचकांक से सम्बद्ध करके लागू करने में सफलता पाई है। हम जानते हैं कि अभी-अभी कर्मचारी भविष्य निधि प्रशासन ने भविष्य निधि की पूंजी को लगाने के बारे में कुछ ठोस विचार किया है, परन्तु यदि कुछ ठोस पूंजी लगाने के कार्यक्रमों का लाभ हुआ है, तो अभी तक यह श्रमिकों को प्राप्त नहीं हुआ है। ऐसी परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के अन्तर्गत होने वाले लाभ, उनके वास्तविक मूल्य को ही व्यापक रूप से बढ़ाते हैं। वस्तुतः यह प्रचुरता तो एक मृगतृष्णा के समान है। सरकार द्वारा आयोजित और क्रियान्वित सही सामाजिक सुरक्षा के आधारभूत कार्यक्रम वस्तुतः प्रशंसनीय हैं। तात्कालिक जो ढांचा है, वह सम्भावित पूर्णता के निकट है, परन्तु इसे अपने आधार और उपयोगिता में अधिक सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है, ताकि दिन प्रतिदिन के प्रशासन को बड़े ध्यान से देख सके, और इसके आधार अर्थात् सहायक पूंजी लगाने वाले ढांचे को सुदृढ़ कर सके। तभी दिये गये वायदों के समतुल्य इन योजनाओं के सही लाभ हो सकेंगे। ०००

खण्ड - ३

अध्याय - १५

# श्रमनीति

# औद्योगिक सम्बन्ध

—भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

राष्ट्रीय श्रम आयोग को भारतीय मजदूर संघ द्वारा प्रस्तुत किये गये "LABOUR POLICY" नामक अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है।

इस पुस्तक के सभी २० अध्याय अलग-अलग पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये गये हैं।

आपात्कालीन स्थति के अन्तर्गत कारावास की अवधि में इस अध्याय का अनुवाद आई० आई० टी० कानपुर के प्राध्यापक डा० भूषणलाल धूपड़ के सहयोग से लिया गया है।

हम उनके प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं।

—रामनरेश सिंह

खण्ड ३

# अध्याय १५

# श्रम सम्बन्धी जानकारी एवं शोध

विद्यां च अविद्यां च यस्तद् वेद उभयं सह ।
अविद्या मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥

[जो ज्ञान व अज्ञान दोनों को समझता है, वह अज्ञान से मृत्यु को प्राप्त करता है, ज्ञान से अमरता । ]

ईष उपनिषद् ॥११॥

## शोध (कार्यक्रम)

भारत सरकार के योजना आयोग और भिन्न भिन्न मंत्रालयों के अन्तर्गत शोध घटकों (Cells) द्वारा जो शोध कार्य आयोजित किये जा रहे हैं, उनका एकीकरण होना चाहिये—यह स्पष्ट है । एकीकृत शोध एजेन्सी योजना आयोग के आधीन होना चाहिये अथवा भारत सरकार को इस विषय का निर्धारण प्रशासकीय विज्ञान के विशेषज्ञों द्वारा सर्वोच्च ढंग से हो सकता है, परन्तु सम्पूर्ण विभाग को यदि भारत सरकार के आधीन किया जाय, तो योजना आयोग के लिये इस विभाग द्वारा अपना काम कराना कठिन न होगा ।

यह भी एक विषय है कि जो शोध कार्य केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों की शोध एजेन्सियों द्वारा आजकल किया जा रहा है, उन सभी कार्यों को एकत्रित किया जाना चाहिये । राज्य सरकारों के भिन्न भिन्न इकाइयों द्वारा किये जाने वाले कार्य को केन्द्रीय सरकार के सम्बन्धित विभाग को ले लेना चाहिये ।

यदि ये दोनो सुझाव क्रियान्वित किये गये, तो काम के दोहरापन होने से बचत होगी और कुशलता बढ़ेगी ।

जहाँ तक भारत सरकार के आधीन श्रम शोध का सम्बन्ध है, काम के अभिनवीकरण व पुनर्गठन के लिए बहुत स्थान है, उदाहरणार्थ— वहाँ इस प्रकार के कार्य के एकीकरण को सफल बनाने की आवश्यकता है । यह वह काम है, जो खदान सुरक्षा के मुख्य निदेशक और कारखाना सलाहकार सेवा एवं श्रम संस्थान के मुख्य निदेशक के आधीन किया जा रहा है । यह सत्य है कि सुरक्षा समस्यायें जो दोनों विभाग द्वारा की जा रही हैं, दोनों के स्वभाव में भिन्नता है, फिर भी दोनों में निकट का सहयोग बचत को लायेगा और कुशलता को बढ़ायेगा ।

यह भी सुझाव देने योग्य है कि शोध कार्य जो श्रम ब्यूरो रोजगार व प्रशिक्षण के मुख्य निदेशक एवं मुख्य श्रमायुक्त के कार्यालय के आधीन किया जा रहा है, को सम्मिलत करना चाहिये ।

सरकार की इस प्रकार की संगठित एजेन्सी को जहाँ एक ओर केन्द्रीय आकड़ा सम्बन्धी संगठन और राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे (Nation sample sarvey) से निकट का सम्बन्ध रखना चाहिये, वहीं दूसरी ओर केन्द्रीय राज्य कर्मचारी बीमा निगम, केन्द्रीय भविष्य निधि निगम, रेलवे बोर्ड डाक और तार आदि से भी सम्बन्ध रखना चाहिये । यह कहना आवश्यक नहीं कि भिन्न भिन्न राज्य सरकारी विभागों के शोध विभाग एक संगठित एजेन्सी के रूप में लाये जाने चाहिये । इस एजेन्सी को विश्वविद्यालयों, सामाजिक विज्ञान संस्थानों, भारतीय श्रम सम्बन्धी अर्थ व्यवस्था सोसाइटी, सामाजिक कार्य के शिक्षा केन्द्र, श्रमिकों और ट्रेडयूनियन संगठनों के शोध केन्द्र और भारत में यूनेस्को शोध केन्द्र से निकट का सम्पर्क बनाना चाहिए भिन्न भिन्न एजेन्सियों द्वारा किए गए शोध कार्य की एकीकरण की आवश्यकता को लोकसभा की अनुमान समिति (Estimates Committee) ने ठीक ही प्रशंसा की है और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सामाजिक विज्ञान शोध के लिए कौन्सिल के गठन का सुझाव दिया है । जब तक यह सुझाव पारित और कार्यान्वित नहीं होता, एकीकरण का काम हमारे द्वारा सुझाया एक सामूहिक एजेन्सी को कार्यान्वित करना चाहिये ।

इस संदर्भ में विश्वविद्यालय और सामाजिक विज्ञान संस्थाओं के अन्दर महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की क्षमता है, आजकल वे अपने आपको शास्त्रीय विषयों में ही व्यस्त रखते है, परन्तु उपयुक्त सहयोग, एकीकरण और अधिक वित्तीय सहायता से उन्हें विशेष व्यवहारिक समस्याओं पर शोध के काम को हितकारी ढंग से सौंपा जा सकता है। इससे उनकी खोज का स्वरूप तात्विक पक्ष के मुकाबले अधिक व्यावहारिक हो जायगा। यदि ऐसा किया गया तो औद्योगिक क्षेत्रों में इन संस्थाओं के शोधकर्ताओं को अधिक सम्मान प्राप्त होगा और निष्पक्ष होने के कारण नियोजकों और कर्मचारियों दोनों का वे आदर प्राप्त करेंगे। इस लाभकारी योजना के कारण एक निष्पक्ष विशेषज्ञों के वर्ग का विकास होगा, जो लम्बे काल से अनुभव होने वाली कमी को पूरा कर सकेंगे। इस वर्ग पर नियोजक और कर्मचारी दोनों ही तकनीकी और औद्योगिक विषयों पर सुझाव व मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए निर्भर हो सकेंगे। हमारे विश्वविद्यालयों और सामाजिक शिक्षा संस्थाओं द्वारा इस प्रकार के वर्ग को खड़ा करने के लिए चैतन्ययुक्त प्रयत्न करना चाहिए। पक्षपात न करने के कारण वे औद्योगिक सम्बन्धों के सभी पक्षों को दिशा दे सकेंगे एवं उनको दिशा दर्शन देने वाले सिद्ध हो सकेंगे।

नियोजकों और श्रमिकों में शोध भाव को पैदा करना और विकास करना–एक प्राथमिक आवश्यकता है। इस प्रकार की आम आकड़ों सम्बन्धी ज्ञान की अनुपस्थिति में शोध कार्य को ठीक प्रकार से और कुशलतापूर्वक करना बहुत कठिन होगा। हम यह नहीं सोचते कि इस प्रकार की चेतना ट्रेड यूनियन्स में इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु केवल वित्तीय सहायता प्रदान करने के कारण ही पैदा की जा सकती है। इस प्रकार की सहायता उसी समय अत्यधिक लाभदायक होगी, जब यह सहायता उचित चेतना व जिज्ञासा को पैदा करने के पश्चात दिया जाय बजाय इसके कि यह पहले दी जाय।

राज्य स्तर पर सरकारी एजेन्सी द्वारा, विश्वविद्यालयों द्वारा और अनधिकृत एजेन्सी द्वारा और श्रमिकों व नियोजक संगठनों द्वारा किये गये शोध कार्य का एकीकरण करने हेतु प्रत्येक राज्य में राज्य स्तर पर एक सहयोग करने वाली समिति बनायी जानी चाहिए।

भारत सरकार शोध और उससे सम्बन्धित कार्य में प्रशिक्षित व्यक्तियों को बढ़ाने के लिये योजनाबद्ध प्रयत्न कर रही है।

शोध कार्य की महत्ता को ध्यान में रखकर हम सोचते हैं कि इस क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्तियों को विशेष सामाजिक जिम्मेदारी प्रदान करना आवश्यक है, जिसके अन्तर्गत इन्हें कुछ अधिक आय और नौकरी की सुविधाजनक साधनों के साथ साथ इन्हें सामाजिक सम्मान भी देना चाहिये, ताकि इस प्रकार के काम के लिए प्रोत्साहन मिल सके।

यदि अपनी भिन्न भिन्न शोध एजेन्सीज को ऊपर लिखे सुझावों के आधार पर पुनः संगठित करने और उन्हें पनः सशक्त जीवन प्रदान करने के लिए सभी प्रकार के केन्द्रित प्रयत्न किए गए तो हम श्रमिक क्षेत्र में शोध व अध्ययन के लिए उपयुक्त व्यवस्थायें कर सकते हैं। ये उतने उपयुक्त होंगे कि श्रम और आर्थिक विषयों में नीति बनाने की आवश्यकताओं को उपयुक्त रूप से वे निभा पावेंगे। शोध भाव के बढ़ने के साथ सभी प्रकार के शोध कार्य का सम्पूर्ण उपयोग सभी पक्षों द्वारा जो अधिकृत अथवा अनिधिकृत हों, किया जा सकेगा। आजकल केवल सरकार ही श्रम सम्बन्धी उपलब्ध जानकारी को किसी व्यावहारिक उपयोग के लिए कर रही है, और वह भी मुख्यतः भिन्न भिन्न श्रमिक कानूनों के लागू करने में। अपनी श्रम नीतियों को बनाने में भी भिन्न भिन्न सरकारें उपलब्ध जानकारी का पूरा उपयोग नहीं कर रही हैं। नियोजक और श्रमिक इस नयी दिशा के कारण एकत्रित की गई, जोड़ी गई और प्रकाशित की गयी जानकारी पर अधिक निर्भर रहने की स्थिति को पैदा कर सकेंगे, क्योंकि वे अपने हितों की सुरक्षा एव बढ़ोत्तरी में इसके उपयोग को मानने लग जायेंगे। ऐसी परिस्थितियों में समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री और अन्य विशेषज्ञ भी इसकी सम्पूर्ण उपयोगिता को काम में लायेंगे। निश्चय ही इस प्रकार की जानकारी के शीघ्रतम प्रकाशन और व्यापक प्रकार की आवश्यकता अनिवार्य है, किन्तु अभी इस हेतु वर्तमान व्यवस्था अपूर्ण है।

राज्य और केन्द्र के भिन्न भिन्न कानूनों के आधीन एकमात्र ऐसा कानून होना चाहिये, जिसके अन्तर्गत सभी सम्बन्धित कागजात (Returns) को एक मात्र एजेन्सी के पास जमा करने का प्राविधान होना चाहिए। भिन्न भिन्न कानून और उनसे प्रभावित क्षेत्रों के अन्तर्गत विचारों और उनकी परिभाषाओं की असमानता की कठिनाइयां इस सुझाव के द्वारा दूर हो जावेंगे, साथ ही पर्याप्त मात्रा में यह व्यवस्था अनुपयुक्त व अनुउत्पादक दोहरेपन को हटायेगा, जो कि

भिन्न भिन्न आलेखों (रजिस्टरों) के बनाये रखने और कुछ भिन्न प्रकार के कानूनों के अन्तर्गत उन्हें जमा करने की भिन्न भिन्न कानूनी आवश्यकताओं के परिणाम स्वरूप है।

आकड़ों के एकत्रित करने का कार्य पूर्णरूपेण कानूनी आवश्यकताओं से सम्बन्धित नहीं होना चाहिए, न ही इन्हें कानून द्वारा थोपी गयी सीमाओं के अन्तर्गत निहित होना चाहिए। आकड़ों का व्यापक विस्तृत होना चाहिए, ताकि कानून में लाये गये संशोधनों अथवा विभिन्न कानूनों में इन आकड़ों की व्यापकता के अन्तर के कारण बुरा परिणाम न हो सके। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर आकड़े एकत्रित करने के वर्ष १९५३ के कानून में समुचित संशोधन करना चाहिये। इसके द्वारा समुचित विषयों से सम्बन्धित विचार, परिभाषा और व्यापकता में समानता लायी जानी चाहिये।

काम की रुकावट (हड़ताल और तालाबन्दी) के सम्बन्ध में आजकल जो आकड़े एकत्रित किये गये हैं और जो हिसाब लगाया गया है, औद्योगिक अशान्ति के प्रकार एव मात्रा का अनुमान लगाना कठिन है। काम बन्दी की सख्या, उसमें सम्मिलित श्रमिकों की सख्या, विनष्ट हुये काय दिवस की सख्या, कुल हानि का रुपयों में आंकलन, सम्पूर्ण उत्पादन का रुपयों मे ह्रास जो हड़तालों अथवा तालाबन्दी के अलावा अन्य मामलों के कारण जैसे कि बिजली की कमी, अनुपयुक्त कच्चे माल का आगमन, उपकरणों के लाने और माल के परिवहन मे कठिनाई, राजनीतिक आन्दोलन और सहानुभूति में की गई हड़तालें, बन्द, स्थानीय समस्यायें आदि व्यौरों को भी एकत्रित करना चाहिये। अनुपस्थिति, धीरे काम करो, नियमानुसार काम और घेराव आदि विषयक आकड़े भी उपलब्ध होने चाहिये। हड़ताल सम्बन्धी आकड़ो का काम भी विस्तृत होना चाहिये और हड़ताल के कारण तथा उसके निराकरण का वर्गीकरण भी किया जाना चाहिये।

वर्तमान आकड़े श्रमिकों के जीवन के आर्थिक पहलू से ही मुख्य रूप से सम्बन्धित है, परिणामस्वरूप ये आकड़े एकतरफा चित्रण प्रस्तुत करते हैं। सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पक्ष जिसके अन्तर्गत श्रमिकों को सर्वसाधारण नागरिक के रूप में देखना चाहिये। को भी उचित महत्ता में प्रदान करनी चाहिये। वर्तमान वर्गीकरण अव्यवहारिक है और यह सम्भव है कि यह गलत

परिणामों की ओर ले जाय। हमें श्रमिक की मानसिक आदतों पर सामाजिक कुरीतियों के प्रभाव से सम्बन्धित आकड़ों प्रस्तुत करना चाहिये और साथ ही औद्योगीकरण का उनके परिवारों की नैतिकता और उत्थान पर प्रभाव सम्बन्धी आकड़े भी प्रस्तुत करने चाहिये। श्रमिकों के सामाजिक रीति-रिवाज सम्बन्धी आकड़े भी बड़े लाभकारी होंगे।

आजकल जो अर्थ सम्बन्धी आकड़े मिलते हैं, अनुपयुक्त हैं। निर्माण कार्य काफी बागान, परिवहन, घरेलू उद्योग, लघु उद्योग, स्वयं रोजी क्षेत्र (विश्वकर्मा सेक्टर), कृषि, कोयला खादान को छोड़-शेष खदान और सभी संस्थान जो १० से कम श्रमिकों से काम लेते हैं, के सम्बन्ध में उपयुक्त और नियमित आकड़े एकत्रित करना चाहिये और उनका हिसाब लगाना चाहिये। इसी प्रकार देश में बेरोजगारी और अर्द्ध बेरोजगारी, श्रमिकों के ऋण और खर्चे सम्बन्धी विधियाँ, ठेके के कर्मचारियों की दशा, उत्पादकता आन्दोलन, बारम्बार औद्योगिक दुर्घटनाओं के होने की संख्या और उसकी तीव्रता, मृत्यु और स्थायी रूप की पंगुता के कारण समय का नष्ट होना और भिन्न भिन्न उद्योगों के वास्तविक काम के घण्टों से सम्बन्धित आकड़ों को भी एकत्रित करना चाहिये।

बेरोजगारी, रोजगारी, खपत, खर्चे आदि के बारे में क्रमबद्ध गणना (स्टैटिस्टकल डाटा) आदि जो शहरी आबादी के बारे में हर वर्ष राष्ट्रीय सेम्पुल सर्वे द्वारा इकट्ठे किये जाते हैं, उपयुक्त या पर्याप्त नहीं हैं। यह सम्भव है और परामर्श के योग्य है कि इस प्रकार के आकड़े हरएक राज्य/क्षेत्र में ग्राम श्रमिक के लिए पृथक रूप से उपलब्ध होने चाहिए। सम्बन्धित जानकारी, जिसमें कृषि संबन्धी श्रमिक के वेतन के दर भी सम्बन्धित हैं, को वार्षिक स्थिति के रूप में इकट्ठा करना चाहिए।

## सूचकांक आकड़े

वर्तमान काल में श्रमिक संगठनों ने अत्यधिक विस्तार से दर्शाया है कि किस प्रकार भिन्न भिन्न जीवन मूल्य निर्देशांकों के हिसाब और रख रखाव को गलत आधार पर किया जा रहा है। जीवन मूल्य निर्देशांक में संशोधन और

उसके शीघ्र प्रकाशन का होना—वेतन भोगियों के लिए अत्यन्त महत्व का विषय है, क्योंकि उनके सम्पूर्ण आय का बहुत बड़ा भाग मासिक अथवा द्वैमासिक सूचकांक से सम्बन्धित रहता है। श्रम नीति पुस्तक के अध्याय ६ और अध्याय १० में इसे इंगित करने का अवसर हम पहले प्राप्त कर चुके हैं कि कृषि व शहरी और ग्रामीण मेहनतकश व ग्रामीण मजदूर के उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों का हिसाब करने व उनको बनाये रखने तथा भिन्न भिन्न शहरों और क्षेत्रों की तुलनात्मक महंगाई के लिए मूल्य सूचकांक की बनावट को एक सामूहिक एजेन्सी के अन्तर्गत सुपुर्द करना चाहिए। इस एजेन्सी को राष्ट्रीय स्तरीय सामंति के आधीन और नियन्त्रण में काम करना चाहिए। यहां पर स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सभी श्रम सम्बन्धी क्रमबद्ध आकड़ों के समान और उससे भी अधिक जीवन मूल्य निर्देशांक के मामलों में सर्वे और प्रकाशन के सभी क्रमों पर श्रमिकों और उनके प्रतिनिधियों के सक्रिय सहयोग बहुत महत्व के हैं। सर्वे की प्रतिलिपि के क्रम से नमूने के तौर पर किये गये अध्ययन की दशा में प्रश्नावली को अन्तिम स्वरूप देने, सर्वे और खोज के स्टाफ के प्रशिक्षण को देने के साथ प्रारम्भ से ही यह सहयोग बने रहें और पूछ ताछ की लम्बी प्रक्रिया में भी सम्बन्धित रहें और तत्पश्चात निम्नलिखित विवरण को बनाने और रेखाचित्र को खींचने में वे सम्मिलित रहें, जैसे—तुलनात्मक महत्व और मासिक पूछ ताछ के फार्म तैयार करने, वस्तुओं के विशेष विस्तार पूर्वक विवरण को निर्धारित करने, अवश्यभावी पूरक वस्तुओं की पूर्ति की प्रक्रिया को निर्धारित करने सभी वस्तुओं की फुटकर कीमतों के सम्बन्ध में हर मास के क्रमबद्ध आकड़े को एकत्रित करने हेतु दूकानों के चयन, मकान किराया और यातायात कीमत, शिक्षा, औषधियों आदि विषयों को निर्धारित समय के भीतर निरीक्षण करने आदि। जब तक श्रमिकों को सूचकांक के क्रमबद्ध आकड़ों के हिसाब व रख रखाव के भिन्न भिन्न श्रेणियों, ऊपर लिखी प्रक्रियाओं और श्रमिकों के परिवार में काम करने और रहने की दशा को सर्वे से सम्बन्धित नहीं किया जाता और प्रत्येक दशक वर्ष में व्यापक रूप से सर्वे को नहीं किया जाता तथा इनके परिणामों को वेतन नीति और श्रम कानूनों को बनाने में व्यापक ढंग से प्रयोग नहीं किया जाता, सामाजिक पूछताछ के इस अत्यधिक महत्वपूर्ण पहलू और श्रम सम्बन्धी क्रमबद्ध आकड़ों की धुरी को अपना उचित और सही स्थान प्राप्त नहीं हो सकता। इन क्रमबद्ध आकड़ों के आधार पर बनायी गई कल्पना की जांच करना एक अच्छी बात होगी और यह जांच विस्तृत नमूने पर की

गई पूछताछ के आधार पर हो, जो समय समय पर रेन्डम (Random) के आधार पर अथवा वर्गीकरण के अधार पर हो। जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है, आवश्यकता के आधार पर न्यूनतम वेतन सूचकांक को भी दशक वर्षीय सर्वे और निर्धारित समय पर नमूने के तौर पर की गई पूछताछ की सहायता से भी जांचना चाहिए। वेतन सम्बन्धी भिन्न भिन्न विचारों, जैसे— न्यूनतम और जीवन वेतन तथा उचित वेतन में दूरी को भी इन विभिन्न जानकारियों के आधार पर मिले आकड़ों के प्रयोग से वित्तीय अंकीकरण का स्वरूप दिया जा सकता है। इसी भांति उपभोक्ता ऋण सम्बन्धी नीति, विशेषतया आवास व्यवस्था के कार्यक्रम के लिए ऋण, जीवन बीमा, सामाजिक सुरक्षा योजनायें, लघुबचत योजना, कर आदि सम्बन्धी नीतिमों को सम्बन्धित वार्तालाप और सेमिनार तथा अध्ययन के द्वारा तैयार किया जाना चाहिए, जो कर्मचारियो के जीवन व कार्य दशा के सर्वे के विश्लेषण से बना हो। इस सदर्भ में जानकारी सम्बन्धी क्रमबद्ध आकड़ों की एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

## शोध (आधारभूत)

और यह भी अनिवार्य है कि आधुनिक साथ भारतीय तकनीकी के शोध निम्नलिखित दृष्टिकोण से किए जाने चाहिए।

(१) विदेशी तकनीकी की इसलिए जाँच की जाय कि उसका कौन सा भाग हमारी सांस्कृतिक ढांचे के अनुकूल बैठती है और अपनायी जा सकती है तथा यह किस प्रकार सम्भव है।

(२) परम्परागत तकनीकी की जाँच करायी जाय—यह मालूम करने के लिए कि उसका कौन सा भाग आधुनिक परिस्थितियों में अपनाया जा सकता है।

(३) अपने सांस्कृतिक ढांचे के अनुरूप स्वत: के स्वदेशी तकनीकी के विकास को निम्नलिखित सावधानियों के साथ करना चाहिए—

[अ] विद्युत और आणविक शक्ति की सहायता से उत्पादन की प्रक्रियाओं के अन्तर्गत विकेन्द्रीकरण की दिशा प्राप्त हो।

[ब] उत्पादन के वर्तमान व परम्परागत पद्धतियों को बदलकर एकदम अकस्मात पूंजी निग्रह (Decapatalisation) को दिशा नहीं लेनी चाहिए, बल्कि इसके विपरीत इसके द्वारा बिना पूंजी निग्रह के यंत्रीकरण के उचित परिवर्तन लागू करनी चाहिये।

[स] हमारी परम्परागत शिल्पी और हस्तकलाकारों की वर्तमान कुशलता और बुद्धिमता तथा विद्वता का उपयोग करे और प्रोत्साहन दें, न कि उन्हें उत्पादन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बेकार बनाये।

[द] देश में उपलब्ध पूंजी की छोटी छोटी इकाइयों का सदुपयोग करें।

[इ] देश में प्राप्त प्रबन्धकीय कुशलता का उपयोग करें और प्रोत्साहन दें, न कि उन्हें नौकरी से उठा फेकें।

यह भी आवश्यक है कि प्राचीन भारत के औद्योगिक ढांचे को औद्योगिक सम्बन्धों और कानून में शोध इस दिशा में करें कि उसका कौन सा भाग आज भी लाभकारी रूप से उपयोग किया जा सकता है। चूंकि शोध एक विशेष दिशा देने में क्षम्य होता है, अतएव श्रमिक क्षेत्र इससे अछूता नहीं माना जा सकता। यह परामर्श के योग्य है कि भारतीय विद्वता और आधुनिक परिस्थितियों की सर्वोच्च उपयोगी प्रभावी सामाजिक आर्थिक ढांचे की रूप रेखा तय्यार की जाय। इस प्रकार की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था की आम रूप रेखा की अनुपस्थिति में यह सम्भव होगा कि श्रम क्षेत्र में हमारे प्रयत्नों को एक निश्चित दिशा दी जाय। सभी दिशाहीन गतिविधियों के उद्गम केवल मात्र पैबन्द लगे हुये हैं। इस कार्य को रूढ़िवादी राजनीतिज्ञों की सुरक्षा हेतु नहीं सौंपा जा सकता, क्योंकि हम जो आकांक्षाये बनाये है, उनके अनुसार पाश्चात्य और पूर्व के सम्पूर्ण ज्ञान का उसमें समावेश है और इस ज्ञान को परिवर्तित कर हमें उसे सामाजिक आर्थिक जागृति युग का आधार बनाना है। समावेश का अर्थ यह नहीं है कि हम यूरोपियन ढांचे को रूढ़िवादी ढग से लें, बल्कि हमें उस पक्ष की ओर ले जाना है जिसे वह प्रस्तुत करता है, जिस भाव को वह प्रकाशित करता हैं और उसके उच्चतम जीवन और अस्तित्व के अभिप्राय अपनी सांस्कृतिक कल्पना के अन्तर्गत तर्क संगत हो और इस प्रकाश में उसके

औचित्य, क्षेत्र, मात्रा, ढाँचे तथा दूसरे विचारों से इसके सम्बन्ध, इसक कार्यान्वयन के लिए हम ब्योरेवार रूपरेखा बनायें। किसी और के मुकाबले में शोध छात्र ही इस कार्य को करने में समर्थ होंगे।

क्या यह शोध परियोजना ऊपर लिखी एक व्यापक एकीकृत एजेन्सी के अन्तर्गत सौंपी जा सकती है ? प्रशासकीय निर्णय का यह विषय है ! परन्तु इस एजेन्सी को यह निश्चित प्रगट करनी चाहिए कि इस काम को लिया जा सकता है और उसे पूरा किया जा सकता है।

## समाचार व प्रकाशन

अपने दूसरे सदस्यों से सम्बन्ध बनाने व सचार व्यवस्था हेतु श्रमिक और नियोजक सगठन पत्रक, पत्रिकायें व समाचार बुलेटिन का प्रयोग करते हैं। प्रचार हेतु सम्मेलन, तध्ययन गोष्ठी, शिक्षण शिविर, पुस्तिकायें, पर्चे, भीतिपत्र, समाचार, प्रेस सम्मेलन, द्वार सभा, जुलूस, मोर्चा, प्रदर्शन, भूख हड़ताल आदि कार्यक्रम श्रमिकों द्वारा उपयोग में लाये जाते हैं। वर्तमानकाल में नियोजक अपने विवादों और दृष्टिकोणों को प्रचारित करने के लिये समाचार पत्रों में मूल्य देकर विज्ञापित करते हैं। इस प्रकार के प्रचार जैसा कि बम्बई के 'बेस्ट' प्रबन्ध ने पिछली हड़ताल के दौरान की थी— एक टिप्पणी करने योग्य उदाहरण हैं।

कुछ ट्रेड यूनियन केन्द्र अपनी मासिक और पाक्षिक पत्रिकायें चलाते हैं, परन्तु उनका वितरण उनके नियमित सदस्यों के एक भाग तक ही सीमित है। श्रमिक समाचार एवं प्रकाशन की अभी नींव रखी जा रही है। इसकी प्रगति समाधान के योग्य नहीं है। यह आवश्यक है कि श्रमिक समाचार और प्रकाशनों को श्रमिकों के प्रशिक्षण और अधिकृत सहायता द्वारा सुदृढ़ किया जाय।

पिछले दशक में भारतीय प्रेस ने श्रमिक विषयों में क्रमशः अधिक दिलचस्पी दिखलाई है। श्रमिक समाचारों की व्यापकता में उल्लेखनीय बढ़ोत्तरी हुयी है और कुछ नियमित रूप से श्रमिक विषयों पर कालम प्रस्तुत करते हैं। प्रान्तीय भाषाओं के समाचार पत्र आमतौर से श्रमिक समाचारों को अधिक उदार भाव से छापते हैं। कुछ विशेष विषय सम्बन्धी दैनिक समाचार पत्र जैसे— इकनामिक टाइम्स और फाइनेन्सियल इक्सप्रेस इस संदर्भ में अच्छी सेवा कर रहे हैं।

इसके पश्चात भी यह सत्य है कि श्रमिक विवाद और समस्यायें समाचार पत्रों द्वारा उपयुक्त ढग से प्रचारित नही किये जाते। जब कभी समाचार पत्रों मे प्रकाशित होता है तो वे आम तौर से हड़ताल, भूखहड़ताल, समाज विरोधी गतिविधियो व सार्वजनिक सम्पत्ति के नुकसान आदि के बारे म ही होते हैं, यह इसलिये, क्योंकि सम्पादकीय स्तरों के अनुसार सनसनीखेज घटनायें ही समाचार बनाती है। समाचार के दृष्टिकोण से औद्योगिक सामान्जस्य और श्रमिकों की रचनात्मक उपलब्धियां बहुत कम मूल्य रखती है। एक मनुष्य द्वारा कुत्ते को काट लेना— प्रथम श्रेणी का समाचार है, जबकि एक कुत्ते का मनुष्य को काट लेना, बिलकुल ही समाचार नहीं है। आम तौर से जन समुदाय की शिक्षा, विशेषकर औद्योगिक विषयों में श्रमिकों की शिक्षा को भारतीय प्रेस अपने उद्देश्यों में नहीं स्वीकार करता। उनके प्रयत्न सार्वजनिक रुचि के स्वार्थ तो है, किन्तु उन्हें ढालने के लिये प्रयत्नशील नहीं है। जब तक प्रेस इस वाणिज्य-कीय तौर तरीके पर चलता है, तब तक ऐसे अवसर उपलब्ध नहीं होंगे जिसमें कि शोध गतिविधियां और औद्योगिक रचनात्मक गतिविधियां समाचार पत्रों में अपना स्थान पायें। जिस वस्तु की आश्यकता है, वह है प्रेस की पद्धति और दृष्टिकोण के रुझान में परिवर्तन का होना। वर्तमान परिस्थितियों में प्रेस न श्रमिक विषयों पर जन सनुदाय को शिक्षित कर सकता है और नहीं औद्योगिक विवादों पर लिये गये निर्णयों को प्रभावित कर सकता है। वह न्याय सगत और ठीक औद्योगिक सम्बन्धों के प्रोत्साहन में प्रभावी भूमिका निभाने में न सहायक हो सकता है और न ही रुकावट बन सकता है।

समस्या का निदान श्रमिकों की श्रमिक प्रेस समाचार पत्र बनाने की शुरुआत में निहित है और राष्ट्र निर्माण में उनकी भूमिका की महत्ता को समझाकर आम समाचार पत्रों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन लाना है। यह किस हद तक व्यवहारिक है, कोई भी अनुमान लगा सकता है।

---

खण्ड-३

अध्याय-१६

# श्रमनीति

## विभिन्न संगठनों (AGENCIES) की भूमिका

–भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

राष्ट्रीय श्रम आयोग को भारतीय मजदूर संघ द्वारा प्रस्तुत "LABOUR POLICY" नामक अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है।

इस पुस्तक के सभी २० अध्याय अलग-अलग पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये गये हैं।

आपात्कालीन स्थिति के अन्तर्गत कारावास की अवधि में इस अध्याय का अनुवाद आई० आई० टी० कानपुर के प्राध्यापक डा० भूषणलाल धूपड़ के सहयोग से किया गया है।

हम उनके प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं।

-रामनरेश सिंह

खण्ड—३

अध्याय—१६

# विभिन्न संगठनों (Ayencies) की भूमिका

## केन्द्रीय श्रम संगठन

क्योंकि एक महत्वपूर्ण संगठन, जो श्रम क्षेत्र में परिवर्तन लाता है, श्रमिकों का केन्द्रीय संगठन ही है, अस्तु यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि इस संगठन के क्या अधिकार हैं और किस सीमा तक जिम्मेवारियों को निभाने के लिए उस पर निर्भर रहा जा सकता है, ताकि औद्योगिक सम्बन्धों से सम्बन्धित नीतियों और समझौतों के क्रियान्वयन हेतु अथवा प्रशिक्षण और प्रगति सम्बन्धी विषयों के लिए इसके कन्धों पर जिम्मेवारी डाली जा सके। इस प्रश्न पर विस्तार पूर्वक विवेचन करने के पहले हम यहाँ स्व० श्री बी० डी० अम्बेकर द्वारा प्रस्तुत किये गये विचार का उल्लेख करते हैं—'किसी भी यूनियन को किसी केन्द्रीय संगठन की सम्बद्धता के बिना नहीं रहना चाहिये।' उन्होंने असम्बद्ध यूनियनों को एक गैर जिम्मेदार यूनियनों के समूह के मुकाबले में अधिक खतरनाक सोचा था, क्योंकि असम्बद्ध यूनियन राष्ट्रीय स्तर पर किसी भी अनुशासन को पालन करने के लिये तय्यार नहीं होती। हम उस हद तक नहीं जाना चाहते, परन्तु कुछ हद तक इस आक्रमक भाव की हम प्रशसा करते हैं। श्रम सम्बन्धी किसी भी राष्ट्रीय नीति को अपनाने के लिये यह अत्यावश्यक है कि हम यूनियन्स को किसी केन्द्रीय संगठन अथवा संगठनों से सम्बद्ध होने के लिये प्रोत्साहन करें। हमारा देश इतना विशाल और विभिन्नता का है और भिन्न भिन्न विरोधी विचारों के कार्यकलाप इतनी गहराई तक तथा बहुमुखी रूप में फैले हैं कि श्रमिकों के ऊपर एक केन्द्रीय संगठन के

थोपे जाने से प्रश्न का हल नहीं निकलेगा ! हम इस याचिका के 'ट्रेड यूनियन आन्दोलन के इतिहास' के अध्याय में पहले ही प्रस्तुत कर चुके हैं कि भारतीय श्रमिकों ने अभी तक अपना विवेकपूर्ण ट्रेड यूनियन केन्द्र नहीं बनाया है। इसलिये यह अच्छा है कि वर्तमान काल में चल रही पद्धति के अनुसार भिन्न भिन्न केन्द्रीय श्रम संगठनों से स्वेच्छा पूर्वक सम्बद्ध होने की प्रक्रिया चालू रहनी चाहिये, पर जब तक एक बार किसी विशेष केन्द्रीय श्रम संगठन से यूनियन सम्बद्ध हो जाय, तो उसे उस श्रम संगठन के अनुशासन को मानना चाहिये। इसे किस प्रकार निश्चितता का स्वरूप दिया जा सकता है ? और इसको निश्चित किये बिना राष्ट्रीय स्तर पर किसी भी ठोस नीति का विकास सम्भव नहीं है'। सर्वसाधारण इसके दो भाग हैं—संविधान और वित्त। यूनियनों अथवा क्षेत्रीय व राष्ट्रीय महासंघों द्वारा कुछ अनिवार्यतायें प्रस्तुत करनी चाहिये, जैसे—यूनियन का सम्बद्ध होना, मतदान के अधिकार में कड़ाई अथवा पदाधिकारी बनने के लिये योग्यतायें आदि, जिससे कि केन्द्रीय नेतृत्व के निर्णयों व आदेशों के पालन करने हेतु अधिकार के रूप में वे काम करें अथवा दूसरे अर्थ में नीचे से लेकर ऊपर तक के कार्यकर्ता और भिन्न-भिन्न पदाधिकारी वर्ग महासंघ के संविधान को यूनियन अनुशासन के केन्द्र बिन्दु के नाते मानें और इस प्रकार महासंघ के निर्देशों को पालन करने की गारन्टी प्रस्तुत करें। महासंघ वित्तीय नियंत्रण और अनुशासन के सम्बन्ध में सोच सकता है, जिसके अन्तर्गत किसी गलत काम करने वाली इकाई को सभी प्रकार की वित्तीय और अन्य सहायताओं (जो कानून सम्मत हैं) को वह केन्द्रीय संगठन रोक सकता है, जहाँ कहीं भी इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो। यदि सर्वसाधारण प्रक्रिया में यूनियन्स राष्ट्रीय महासंघों से पर्याप्त बड़ी मात्रा में धन प्राप्त कर रही हैं तो इस सहायता के हट जाने की आशंका के कारण उन यूनियनों द्वारा केन्द्र के निर्देशों को अपनाना तो अवश्यक ही है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि केन्द्रीय श्रम संगठनों की बहुसंख्या और विभिन्न समस्याओं पर उनके विचार तथा उनकी क्षमताओं की तुलनात्मक स्थिति—इस प्रकार की अनिवार्यताओं के विरुद्ध अंकुश चलने वाले प्रभाव को कम करेंगे। इस संदर्भ में एक और टिप्पणी भी उल्लेख करने योग्य है, वह है ट्रेड यूनियन की वित्तीय स्थिति। ट्रेड यूनियन का कार्य, बिन प्रतिबिम्ब बद्ध विषय होने के कारण यूनियन की वित्तीय स्थिति की साधारण दशा इस प्रकार है की है कि धन को इकाई स्तर पर ही रखा जाय। धन एकत्रित करने की केन्द्र बिन्दु हमेशा इकाई ही रहती है,

साथ ही कुछ सीमा तक पीछे लगने और दबाव डालने पर ही इकाइयां अपनी एकत्रित धनराशि से उल्लेखनीय भाग को देती हैं। केन्द्रीय कार्यालय को चलाने के लिये साधारण सम्बद्धता शुल्क अत्यधिक अल्प होती है। यद्यपि केन्द्रीय संगठन भिन्न भिन्न समय पर धन की वसूली खोंपने में कुछ सफल हुये हैं, जो वार्षिक बोनस के समय पर अथवा मांगों की सफलतापूर्वक समाप्ति होने के पश्चात की जाती हैं, तो भी बहुत से ऐसे उदाहरण हैं जिसमें कि केन्द्रीय संगठनों के केन्द्रीय कार्यालयों से वित्तीय स्थिति में इकाइयां ही अधिक सुदृढ़ हैं। कुछ ऐसी भी घटनायें हैं, जिसमें केन्द्रीय श्रम संगठन वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिये अन्य केन्द्र, जैसे—राजनीतिक अथवा दूसरे एजेन्सियों पर निर्भर करते हैं। बहुत सी ट्रेड यूनियनों के पूर्णकालिक कार्यकर्ता भी उनके धनराशियों से सहायता प्राप्त करते हैं और जिन्हें इकाइयों को सेवायें लगभग निःशुल्क सेवा के लिये लगाया जाता है। ऐसी स्थितियों में इकाइयों को नियंत्रित करना अनुपातन: सरल रहता है, क्योंकि विशेषता प्राप्त पूर्णकालिक सशक्त कार्यकर्ता इकाइयों की सेवा के आधार पर एक अधिकृत स्थान सरलता से प्राप्त कर लेता है और उसके आधीन यूनियन के लिए उसके शब्द कानून बन जाते हैं। नियंत्रण के इस प्रकार के राजनीतिक प्रभाव स्पष्ट हैं और उसके विस्तृत उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। प्लान्ट स्तर पर रचनात्मक नीति के क्रियान्वयन में इस प्रकार की पद्धति से बहुत से नुकसान भी हैं, इस पद्धति से गुरुआई (बासिज्म) आ जाती है और साधारण श्रमिक यूनियन की नीति बनाने में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता, तब उसमें नीति को समझने में एक प्रकार की अरुचि भी उत्पन्न हो जाती है, यूनियन के नेता भी इस विषय में उसके द्वारा ली गई स्थिति की बुद्धिमता अथवा औचित्य के बारे में किसी प्रकार के प्रश्न नहीं होने देना चाहते। भारत में बहुत से ऐसे उदाहरण हैं, जिसमें बहुत से व्यक्तियों ने श्रमिकों की जोर शोर से सेवा करने हेतु ट्रेड यूनियन के कार्य को अपनाया, परन्तु अन्त में वे यूनियन के बास अथवा निरकुश अधिकारी ही बनकर रह गये। घृणा और मांग की शक्तियों को प्रस्तुत कर स्थायी आन्दोलन खड़ा करने की कितनी ही क्षमता ऐसे यूनियन अधिकारियों (बाश) के पास क्यों न हो, दिन प्रतिदिन के काम में समर्पित सेवा करने के लिये लोगों को वे प्रेरणा नहीं दे सकते। यदि इस प्रकार के नेतृत्व की और अवनति हो जाय और वह भाषण बाज, मचबाज तथा अखबारों में नाम छपवाने वाला पेशेवर आन्दोलनकारी नेता बन जाय तो उसके द्वारा सभी

प्रकार के निर्माण का अन्त अवश्यम्भावी है। तब महासंघ का संविधान और वित्त संयंत्र भी अपनी सीमित मान्यता को खो बैठते हैं और केन्द्रीय श्रम संगठनों के नाम पर जो शेष रह जायगा, वह वास्तव में संगठन नहीं होगा, अपितु एक भग्न जनसमूह अथवा जनता की भीड़ होगी और संगठन के नाम पर केवल एक व्यक्ति ही रह जायगा।

संगठन की सच्ची शक्ति, नेताओं द्वारा कार्यकर्ताओं के साथ व्यक्तिगत और अनौपचारिक व्यवहार सम्बन्धी बातों में निहित है। वस्तुतः नेता को अपने क्षेत्र में एक आदर्श सक्रिय कार्यकर्ता (Field worker) होना चाहिये और आन्दोलन के अगुआ के रूप में उसको खड़ा होना चाहिए। उसे एक आदर्शवादी एवं जुझारू होना चाहिये तथा अपने लोगों के साथ कन्धे से कन्धा लगाकर काम करना चाहिए। उसे अपने सहकारी कार्यकर्ताओं के परिवार में वरिष्ठ मुखिया के रूप में होना चाहिये। केन्द्रीय श्रम संगठन और उससे सम्बन्धित यूनियनों के सम्पूर्ण सक्रिय कार्यकर्ताओं को एक परिवार के रूप में मानना चाहिये, जिसका एक उज्ज्वल चारित्र हो, उन्हें एक दूसरे की विशेषताओं और कमजोरियों को पहचानना चाहिये और एक दूसरे से घनिष्ट मित्रता का सम्बंध रहना चाहिये, ताकि एक का परिवार दूसरे के परिवार पर आवश्यकतानुसार निर्भर रह सकें तथा जीवन की समान भावनाओं में हिस्सा बटा सकें, तभी इस प्रकार का एक केन्द्रीय श्रम संगठन के अन्तर्गत सूझ बूझ वाले समूह (Master mind group) ऐसी स्थिति में होंगे कि वे एक सामूहिक नीति के क्रियान्वयन के लिये कार्यकर्ताओं को जुटा सकेंगे। इस प्रकार के वातावरण में सभी सक्रिय कार्यकर्ता और भिन्न भिन्न श्रेणियों के श्रमिक सदस्य स्वाभाविक रूप से नीति-निर्धारण और निर्णय प्रक्रिया में भाग ले सकेंगे और उन पर छन्दसः और भावसः चल सकेंगे। संवैधानिक नियंत्रण और वित्तीय अधिकार के अन्तर्गत चलने वाला कार्यालय अथवा सशक्त व्यक्तियों द्वारा चलाये गये केन्द्रीय कार्यालय कुछ समय तक एक सुव्यवस्थित संगठन के रूप में मायाजाल सदृश्य रहेंगे, परन्तु ज्योंही नीति सम्बन्धी कठिन विषयों को कार्यान्वित करने का प्रश्न उठेगा तो उस संगठन को इसका गम्भीर रूप से सामना करना पड़ेगा और यह शीघ्र ही स्पष्ट हो जायगा कि उनका संगठन केवल मात्र कागजी है अथवा व्यवसायिक (कैरियरिस्ट) लोगों का एक झुरमुट है, जिसका श्रमिकों और अपनी इकाइयों पर कोई नियंत्रण नहीं, अथवा वह केवल मात्र आन्दोलन-

कारियों और तथाकथित क्रान्तिकारियों की एक सेना है, जिनकी नीति विषयक रचनात्मक उद्देश्यों को तय करने के लिये कोई क्षमता नहीं। इसके विपरीत एक केन्द्रीय श्रमसंगठन, जिसके नेताओं को किसी प्रमुख और केन्द्रीय स्थान पर पाना कठिन हो अथवा उच्चस्तरीय परामर्श हेतु समय लेना मुश्किल जान पड़े, परन्तु जो देश किसी कोने में अपने किसी भी कार्यकर्ता के लिये उपलब्ध हों, जिसका सामाजिक प्रगटीकरण और भाषण बहुत कम हुये हों, परन्तु वह अनेक हृदयों का विश्वास प्राप्त हो, तो वह श्रम सम्बन्धी राष्ट्रीय-नीति को सही प्रभाव और दिशा देने में अत्यधिक रूप से समर्थ सिद्ध होगा। केन्द्रीय श्रमसंगठनों के लिये गुणात्मक परीक्षायें ऊपर लिखित उद्धहरणों में समाविष्ठ हैं, जो राष्ट्र निर्माण की एजेन्सीज बन सकती है। सगठन के लिये संविधान और वित्त तो केवलमात्र द्वितीय मूल्य अथवा निचली श्रेणी की वस्तु-है। ट्रेड यूनियनिज्म की आन्तरिक शक्ति के रुप में उक्त तथ्यों के आधार पर एक राष्ट्रीय श्रमनीति के व्यवहारिक स्वरुप के कार्य को बनाने के लिये पूर्ण-रुपेण निर्भर करना —एक गलती होगी। नीति निर्धारण के क्षेत्र में श्रम संगठनों की शक्ति और सहयोग पर निर्भर रहने में ऊपर लिखे तथ्यों को न मानने के कारण बहुत सी अन्दरूनी तू तू मैं मैं, जनसमुदाय के विश्वास में कमी और श्रमसंगठनों की क्षमता में विश्वास की कमी खड़ी हो जाती है। यदि हम चाहते हैं कि देश के श्रमिक ट्रेड यूनियन आन्दोलन को चलाने में एक विशेष दिशा को अपनायें जो केन्द्रीय श्रमसंगठनों के परामर्श से बनाये गये हों, तो उन्हें केन्द्रीय श्रमसंगठनों के इन वास्तविक अधिकारों के बारे में ठीक रुप से परिचित होना चाहिये। प्रमुखतया श्रमसंगठन, व्यक्तियों का एक स्वतंत्र संगठन है, इसलिये इस सामाजिक संगठन के अधिकारों की प्रकृति राज्य अथवा उद्योग जैसी अधिकृतगठन से भिन्न रहना स्वाभाविक है।

ऊपर लिखित विवेचन हमें एक दूसरे विषय की ओर ले जाता है, वह है यूनियन का अर्थसम्बन्धी विषय। श्रम क्षेत्र के कुछ मित्र यह सुझाव देते हैं कि सशक्त ट्रेड यूनियन आन्दोलन को खड़ा करने के लिए ट्रेड यूनियन की सदस्यता प्रत्येक कर्मचारी के लिए अनिवार्य होनी चाहिये और कानूनी प्राविधान के अन्तर्गत सदस्यता शुल्क पर्याप्त मात्रा में बड़ी होनी चाहिये। इस विषय में हम बिल कुल बिपरीत विचार रखते हैं। हमारा यह दृढ़ बिचार है कि यूनियन की शक्ति व दृढ़ता का आकलन सदस्यता शुल्क को नियमित रुप से प्राप्त करने

के आधार पर नहीं किया जासकता। यूनियन की वास्तविक शक्ति उसके दिन-प्रतिदिन के व्यवहार से प्रगट होती है और उसके लिए सदस्यता पंजी अथवा मत से सिद्ध करने की अवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार यूनियन की वित्तीय स्थिति भी उसके संवैधानिक चन्दे पर नहीं खड़ी होती, बल्कि अपने ट्रेड यूनियन के उद्देश्य के लिए श्रमिकों की भक्ति और समर्पण में निहित रहती है। धन को जमा करने के शेष अन्य तरीके यूनियन के कार्य पर दूषित एवं निष्क्रियता वाले प्रभाव डालते हैं। इसलिये हम इस विचार के हैं कि यूनियन की सदस्यता का आकलन मासिक अथवा त्रैमासिक चन्दे के आधार पर नहीं किया जा सकता और न उसे वास्तविक काम का आधार ही माना जा सकता है। एक श्रमिक के लिये एक यूनियन की स्वेच्छा से सदस्य बनना पर्याप्त माना जाना चाहिये। एक बार नियमित रूप से सदस्य होने पर उस समय तक सदस्य बना रहना मानना चाहिये, जब तक किसी भी एक पक्ष से खुली घोषणा के अन्तर्गत सदस्यता समाप्त नहीं की जाती। एक लम्बे काल तक यूनियन कार्यों में सक्रिय भाग लेने में दुर्लक्ष्य अथवा यूनियन चन्दे के योगदान में दुर्लक्ष्य करना सदस्यता की समाप्ति का एक कारण हो सकता है, परन्तु पाक्षिक योगदान न देने के कारण स्वयं ही सदस्यता के छूट जाने को नहीं माना जाना चाहिये। यूनियन चन्दे के लिये एक निर्धारित दर नहीं होना चाहिये, बल्कि एक स्थायी यूनियन कोष होना चाहिये, जिसमें हर एक सदस्य को योगदान देने के लिये कहना चाहिए, अथवा वह धनराशि जो वह वर्ष प्रति वर्ष अथवा एक निर्धारित अवसर पर अथवा एक नियमित रूप से देने के योग हों, देना चाहिए। इस प्रकार की एकत्रित की गई धनराशि श्रमिकों के वास्तविक ट्रस्ट का रूप धारण करेगी और उनके उत्थान और विकास के लिये सामर्थ्यशाली सहयोगी होगी। केन्द्रीय श्रम संगठन भी इसी प्रकार अपने सम्बन्धित यूनियनों से धनराशि लेगा, जैसा श्रमिक की एक इकाई अथवा परिवार के अन्तर्गत होता है और इस प्रकार सदस्यों को जोड़ने अथवा मिलानेवाली शक्ति को आगे बढ़ायेगा, जो राष्ट्र निर्माण के लिए स्वस्थ और लम्बी अवधि तक टिकने वाली रचनात्मक स्वरूप को बनायेगी। इस कोष का एक पाई भी राजनीतिक उद्देश्य हेतु नहीं देना चाहिये, तभी वह केन्द्रीय श्रम संगठन को एक स्वतन्त्र राष्ट्र का प्रभावी और भरोसे वाला अंग बनावेगी।

## नियोजक संगठन

जैसे जैसे उद्योगसः सौदेबाजी, वेतन मंडल तथा न्यायाधिकरण अच्छी

प्रकार से उद्योग को अपनी पकड़ में लेना प्रारम्भ कर रहे हैं, वैसे ही वैसे नियोजकों के सुदृढ़ संगठनों द्वारा अपने सदस्यों पर अधिकार एवं नियंत्रण की आवश्यकता अधिकाधिक प्रगट हो रही है। वर्तमानकाल में बहुत से वेतन मंडल के निर्णय और व्यवस्थायें सम्मुख आयी हैं, जिनका अधिकांश नियोजकों ने एक या दूसरे आधार पर खुले रूप से उलंघन किया है। समाचार पत्र उद्योग के अधिकांश नियोजकों ने बर्किंग जरनलिस्ट और नानबर्किंग जरनलिस्ट के वेतन मंडल के निर्णयों को लागू करने के सम्बन्ध में अपनी शक्ति के बाहर की बात बतायी है। बैंकिंग उद्योग में भी द्विपक्षीय निर्णय के बहुत से प्राविधानों को कई बैंकों ने प्रशासकीय असुविधा के आधार पर कार्यान्वित नहीं किया है। यह अवश्यक है कि इन घटनाओं की जड़ों की खोज की जाय और एक चिरकालिक हल ढूढ़ा जाय। वर्तमान परिस्थिति के ३ प्रमुख कारण प्रतीत होते हैं, सर्व प्रथम भिन्न भिन्न नियोजकों के बीच की आपसी सदेह और प्रतिद्वन्दिता है, जिसके अन्तर्गत व्यवसायिक व्यवहार और वित्तीय स्थिति के बारे में जानकारी के आदान प्रदान के लिये वे तैयार नहीं है। दूसरी कठिनाई यह है कि एक उद्योग में सभी नियोजकों की ओर से सौदेबाजी के लिये एक एजेन्ट की नियुक्त अनिवार्य होती है, ताकि सभी नियोजकों को एक सौदेबाजी में पूर्ण-रूपेण प्रतिनिधित्व करने के लिये आवश्यक निर्देश प्राप्त हो सके अथवा किसी न्यायाधिकरण अथवा वेतन मंडल के सम्मुख पूर्ण विचार रखने के लिये अवश्यक निर्देश प्राप्त हो सकें किन्तु श्रमिकों के संगठन के समान नियोजकों के सगठनों की एकता भी उसी स्वरूप की है, जिसके अन्तर्गत दूसरे पक्ष को ही दोषी ठहराया जाता है, अतः आदान प्रदान के लिये आवश्यक कठोर स्वानुशासन पूर्णतया अनुपस्थित रहता है। इन परिस्थितियों में औद्योगिक सम्बन्धों की समस्याओं के हल की कोई भी गम्भीर पद्धति सम्भव नहीं है। इस संदर्भ में परिणाम निकालने का मार्ग यह हो सकता है कि सर्व साधारण नीति के अन्तर्गत नियोजकों को औद्योगिक बैठकों में प्रतिनिधित्व के उद्देश्य से ३ समूहों में बाटा जाना चाहिये। वे समूह हैं, लघु - मध्यम और भारी, यहविभाजन कार्यरत पूजी के आधार पर कारखानों में क्रमशः सख्या के आधार पर, लाभ के आधार पर अथवा किसी और उपयुक्त आधार की जानी चाहिये। इससे उद्योगसः सौदेबाजी की प्रक्रिया में छोटी मछली को बड़ी मछली द्वारा हड़पने की प्रवृत्ति में रुकावट हो सकेगी। नियोजकों के इन ३ स्पष्टतया विभाजन और जहां कहीं आवश्यक हो ग्रामीण और शहरी आधार पर और अधिक विभाजन किया

गया तो कर्मचारियों के विचारों को एक लम्बी अवधि तक प्रभावित कर सकेगी जिसके अन्तर्गत उनकी माँगों और अन्य समस्याओं को प्रस्तुत करने में परिवर्तन हो सकेगा। नियोजकों के श्रेणीबद्ध संगठन तब वार्तालाप के स्तर पर और सौदेबाजी की निर्णायक स्थिति के विषयों पर स्वतंत्र रूप से और विश्वास के साथ मुकाबला कर सकेंगे। समझौतों और एवार्डस के उलंघन करने वालों से ये अपने आपको प्रभावी अधिकारों से युक्त सुसज्जित हो सकेंगे। नियोजक संगठनों के अधिकार श्रमिकों के संगठनों से भिन्न होगे ही, वर्तमान परिस्थिति में उन्हें कानून पर आधारित होना पड़ेगा। उस अवधि तक जब तक कि औद्योगिक परिवार की कल्पना पुनः सर्व व्यापी नहीं हो जाती, इस विषय पर हम पुनः इसी अध्याय में उल्लेख करेंगे।

## अनुशासन और कुशलता

वर्तमान समय में कर्मचारियों के नीचे से ऊपर तक के कार्यकर्ताओं में अनुशासन और यूनियन नेताओं के गैर जिम्मेदार कार्यों के बारे में हम बहुत कुछ उल्लेख कर चुके हैं। इस संदर्भ में इससे इनकार नहीं किया जा सकता है कि श्रमिक नेताओं का एक वर्ग विशेषतया चीनी तानाशाह माओत्से तुंग के अनुयायी खुले रूप से कार्य स्तरों में सुधार का विरोध कर रहे हैं। जैसा कि ट्रेडयूनियनिज्म पर माओ के आधुनिक विचार इस प्रकार हैं, "यदि ५ तत्व धन, कल्याण, उत्पादन, विशेषज्ञ और पद्धति को प्रमुख स्थान प्राप्त होने दिया गया तो सर्वहारा राजनीति कोई स्थान प्राप्त नहीं कर सकती। धन सम्बन्धी ये प्रोत्साहन—अर्थ सम्बन्धी दुर्भावों को झकझोरते हैं, ताकि श्रमिक वर्ग की एकता को तोड़ा जा सके और समाजवादी आर्थिक आधार को दबाया जा सके श्रमिकों को उत्पादन में डुबो देने की दुर्भावनाओं का अर्थ है उन्हें क्रान्ति और राजनीति से दुर्लक्ष्य कराना, परिणामस्वरूप वर्ग संघर्ष और सर्वहारा की तानाशाही को भुलादेना होगा। और उत्पादन के ऊपर आग्रह उन्हें पूंजीवादी मार्ग पर ले जायगा," ट्रेड यूनियन के नेता, माओ के इन विचारों अथवा इन्हीं के समान विचारों को अपनाते हैं और निसंदेह रूप से असहयोग की आदतों और विध्वसक लड़ाकूपन को प्रोत्साहन करते हैं। इसे वे वर्ग संघर्ष कहते हैं, लड़ाई का अर्थ बरबादी होती है। अनुशासन और कुशलता के राष्ट्र-व्यापी चिन्तन में इस प्रकार के सभी विषैले तत्वों को राष्ट्र की राजनीतिक और आर्थिक गठनों से उखाड़ फेंकना होगा। औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र में वे अपनी प्रक्रिया के आधार पर खेमे गाड़ दिये हैं और श्रमिकों के नैतिक बल पर

दूषित प्रभाव डाल रहे हैं तथा उनके जोश को गलत दिशा दे रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत से नियोजक और राजनीतिज्ञ तथा कुछ राष्ट्रीय श्रमिक नेता भी साम्यवादी आन्दोलन की इस पद्धति को अभी तक नहीं समझा है, जिसमें उत्पादन में अनुशासनहीनता और अकुशलता को प्रोत्साहन मिलता है। इस पद्धति को अपनाने वाले लोगों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अलग करना होगा और अनुशासन तथा कुशलता के सुधार के लिये इनके साथ कड़े रूप में व्यवहार करना होगा।

जब एक बार अधिकाधिक अनुशासन और कुशलता लाने के लिये हम अपने विचारों और व्यवहारों से उनके उक्त प्रभावों को अलग कर देंगे, तब यह स्पष्ट हो जायगा कि सर्वसाधारण भारतीय श्रमिक देश के साधारण नागरिक के मुकाबले में न अधिक न कम अनुशासित है अथवा न अनुशासन हीन ही है, बल्कि वह देश की सर्वसाधारण मनोवैज्ञानिक भूमिका में भाग लेता है और अपने में कोई विशेष प्रश्न नहीं खड़ा करता। अनुशासित जीवन की कमी तो सर्वोच्च पदों पर विराजमान राजनीतिज्ञों व मन्त्रियो से प्रारम्भ होती है, जिनका देश की सेवा के लिये कोई आदर्श दिखाई नहीं देता, तथा जो सत्ता, सम्मान, और स्थान व पद के पीछे दौड़ते हैं। उद्योग में अधिकार का विचार तो तपस्या और कुशलता की क्षमता के आधार पर स्वाभाविक रूप से अधिकृत होना चाहिये, किन्तु उसके स्थान पर बासिज्म को बैठाया गया है तथा व्यवसायगत लाभ के सम्मुख औद्योगिक सर्वोच्चता को भुला दिया गया है। जीवन के मूल्यों में परिवर्तन अनिवार्य है। अन्ततोगत्वा उद्योग जनता है और प्रबन्ध व्यवहार, जो दृष्टिकोणों और मान्यताओं के आधार पर उत्पन्न होता है। नियोजकों का दृष्टिकोण वैसा होना चाहिये, जैसा जैन मुनियों ने प्रस्तुत किया है अर्थात् "परिग्रह परिमाण व्रत।" श्रावक गृहस्थ के लिये यह पांचवा शपथ है, जिसके अन्तर्गत अधिकतम धन एवं सम्पत्ति जो एक व्यक्ति को रखनी चाहिये, की सीमा निर्धारित करने का शपथ है और यह अधिक सीमा भी क्या है? जितना एक व्यक्ति का पेट भरने के लिये अनिवार्य है। मनुष्य जीवन के लिये आवश्यक स्वाभाविक व्यवस्था में जो वह अपने पेट भरने मात्र के लिये लेता है, वही मात्र उसकी निजी सम्पत्ति है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावद् स्वत्त्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

व्यक्तिगत सम्पत्ति की सीमा के बारे में ये विचार भारतीय विचारकों द्वारा पुनः पुनः रखा गया है, जैसे ईशा और अन्य उपनिषदों में तथा भिन्न-भिन्न संवादों में जैसे एक विख्यात सम्बाद 'जनक और सुलभा' के बीच महाभारत के शान्ति पर्व में दिया गया है। आश्रम धर्म की सम्पूर्ण दिशा व व्यवस्था जीवन में अभौतिक प्राप्ति के आधार पर की गई थी जब एक बार इन विचारों को समाज के औपचारिक ढांचे में सुशोभित किया गया, जैसा कि औद्योगिक परिवार का विचार इसे स्वाभाविक रूप से अंगीकार करता है, तब सम्पूर्ण दृष्टिकोण में एक आवश्यक परिवर्तन आता है, तब कार्य के फल अपने आपको अर्थ और काम के दो पुरुषार्थों से उठकर शेष दो पुरुषार्थों में परिणित हो जाते हैं। अर्थात् धर्म के द्वारा सम्पूर्ण स्वतन्त्रता और परिपूर्णता प्राप्त कर मोक्ष की प्राप्ति। इस दिशा में भारतीय श्रमिक की स्वाभाविक प्रेरणा गहरी जड़ें पकड़े हुई है। वास्तविक तथ्य यह हैं कि उसकी प्रकृति के सर्वोच्च भाग को या तो पूर्णतः दुर्लक्ष्य किया जाता है अथवा छोटापन प्रदान किया जाता है अथवा अमीर और श्री मन्त लोगों की लोभ पूर्ति के लिये उसको सेवा में लाया जाता है। अब भी जब वह ट्रेड यूनियन आंदोलन के उद्देश्य को अपने हाथ में लेता है, तो वह अपने तुच्छ छोटेपन के स्वार्थ के लिये उतना नहीं करता, वह इसको या तो सर्वसाधारण सामूहिकता के हित के लिये करता है अथवा अव्यवस्था "अधर्म" को ठीक करने की इच्छा से करता है, क्योंकि वह यह देखता है कि अधर्म के द्वारा सशक्त लोग धन, सम्पत्ति और सत्ता के दुरुपयोग करते हैं और अपने स्वार्थ हितों की पूर्ति करते हैं। वस्तुतः यह राज्य का कार्य है। दोषी अथवा अधर्मगामी को ढूंढ़ कर पकड़ने तथा दण्डित करने के नियम का उसे अधिकार है। यह ऐसा देखकर उपयुक्त कानूनी कार्यवाही कर सकता है, ताकि कोई भी सम्पत्ति के लोभ की उस सीमा से अधिक न रखे, जितनी अधिकतम सीमा समाज निर्धारित करता है। ट्रेड यूनियन का काम उसी समय पूरा हो जाता है, जब सरकार को नियोजकों अथवा किसी अधिकारी द्वारा 'धर्म' को दूषित करने का वह संकेत कर दे। वास्तव में भारतीय श्रमिक की सही इच्छायें इसी दृष्टिकोण तक सीमित है, वह धर्म जाति और संस्कृति के अनुशासन की स्थापना में रुचि रखता है। यही वह प्रेरणा है, जिसने भारतीय श्रमिकों के अन्तर्गत सर्वोच्च नेतृत्व को खड़ा किया है। यह वह नेतृत्व है, जिसने स्वयं के हित के लिए अथवा व्यवसायगत (कैरियर) और लाभ के लिये अपना प्रेरणा केन्द्र नहीं बनाया है, बल्कि यह नेतृत्व त्याग भाव से उत्पन्न हुआ है और इस-

लिये बहुत से लोगों द्वारा भक्तिभाव से अपनाया गया है। परन्तु सरकार और अर्थिक मशीन के प्रशासकों ने भारतीय मजदूर के मनोधर्म के इन उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिये कोई मार्ग नहीं दिया है। स्वअनुशासन व अनुशासन, जो अपने स्वत: से मन में विकसित होना है और जो बाह्य शासन के द्वारा थोपा नहीं गया है, एक पवित्र वेदी की मान्यता देता है, जिसके ऊपर वह बिना किसी हिसाब के अपने आपको समर्पित करता है और अर्पित करता है। इस प्रकार के आज्ञाकारी होने की प्रेरणा और कहीं से उत्पन्न नहीं हो सकती, क्योंकि वह दिशाहीन अधिकारी की बदलती हुयी झक के अनुसार काम करता है। ठीक ही कहा गया है 'पहले आज्ञा का पालन करो तब आज्ञा करो।' यह न केवल संकुचित अनुशासन अथवा व्यक्तिगत व्यवहार के लिये सत्य है, बल्कि राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों के महान कार्य के लिये भी सत्य है। उद्योग और राज्य के नेताओं को इस वास्तविक धर्म के आदेशों को भक्तिभाव एवं धार्मिक रूप से मानना चाहिये। परिणामस्वरूप श्रमिक स्वाभाविक रूप से अनुदायित्व ग्रहण करेंगे। श्रमिकों को अनुशासन और कुशलता के आदर्शों के लिये जोश दिलाने हेतु हमें पूरे वातावरण को त्याग और समर्पण की भावना से भर देना चाहिये और लोगो को यह दृष्टि देनी भी चाहिये कि इसके बिना वे सुगमता से नष्ट हो जावेंगे और इसका प्रारम्भ जन-समुदाय के लिये ऊपर से शुरू होनी चाहिये, क्योंकि जनता ऊपर के लोगों के दृष्टिकोणों को अपनाती है—

यद् यद् आचरति श्रेष्ठः तद् तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ॥

यही अनुशासन पैदा करने का मार्ग है। उच्चादर्शों का प्रभाव और ऊँचे स्तरों पर आदर्श उत्पन्न करने का भी यही मार्ग है, और कोई अन्य दूसरा मार्ग नहीं है।

## मध्य वर्गीय प्रबन्धन

औद्योगिक सम्बन्धों के समूचे क्षेत्र में मध्यम वर्गीय प्रबन्धन और तन्त्रज्ञ की भूमिका एक और केन्द्र विन्दु है, जिस पर किसी भी राष्ट्रीय कार्यक्रम में उचित ध्यान देना जरूरी है। वस्तुत: यह औद्योगिक गतिविधियों का एक प्रमुख विजय है, दिन प्रतिदिन के प्रशासन में रीढ़ की हड्डी के समान है तथा औद्योगिक जीवन ढांचे की रक्त वाहिनी सदृश्य है। पूंजीवादी और साम्यवादी

जगत के एक योग्य टिप्पणी में यह घोष वाक्य दिया गया है कि इन दोनों पद्धतियों ने पहले से ही एक प्रबन्धकीय राज्य (Managerial State) को स्थान दे दिया है, जिसमें दिन प्रतिदिन सम्बन्धी पूरे घटनाक्रम को कार्यकारी प्रभावित करते हैं। प्रबन्धकीय स्तरों जिसमें प्रथम पंक्ति वाले सुपरवाइजर से लेकर उच्चस्तरीय अधिकारी तक हैं उनका स्थान नियोजक कर्मचारी सम्बन्धों में बहुत ही नाजुक स्थिति में है। जब कि वे प्रबन्धक हैं, परन्तु नियोजकों के सामने श्रमिक हैं, क्योंकि अपनी समस्याओ के लिये बे कर्मचारी के रूप में ही हैं और साधारण श्रमिक के मुकाबले में बहुत ही खराब श्रेणी में है। इस नाजुक भूमिका के दुर्लक्ष्य होने से औद्योगिक सम्बन्धों पर बहुत ही निराशा-जनक प्रभाव पड़ते हैं। इस याचिका के दूसरे भागों में हम पहले ही बिचार व्यक्त कर चुके हैं कि उनकी समस्याओं और सम्बन्धों को अन्य कानूनी प्राविधानों के द्वारा अनुशासित होना चाहिये। यह आवश्यक है, परन्तु इतना ही पर्याप्त व उपयुक्त शर्त नहीं है। इस स्तर के व्यावसायिक लोगों के लिए जो इसके अतिरिक्त आवश्यक है, वह है उन्हें लगातार नैपुण्य कार्य-क्रमों द्वारा प्रशिक्षित किया जाना। ताकि जहां एक ओर उनकी सूझ-बूझ का विस्तार हो वहीं दूसरी ओर औद्योगिक नीति बनाने में एक सम्मानीय स्तर भी उन्हें प्राप्त हो। यही वह स्तर है, जहां कार्य के दिन प्रतिदिन सम्बन्धी दृष्टिकोण, औसत कुशलता को बनाये रखने, विकासोन्मुख नीतियों को क्रियान्वयन करने, उद्योग में मानवीय सम्बन्धों को बनाये रखने व बिकास करने आदि के व्यावहारिक स्वरूप धारण करते हैं। सत्ता और जिम्मेवारी का हस्तान्तर, प्रशासन का का विकेन्द्रीकरण व एकीकरण, उपभोक्ता का समाधान, लेखा-जोखा का विस्तृत ब्योरा, तकनीकी सम्बन्धी बारीकी व कुशलता, टेकनिकल चतुराई, उत्पादन के दिन प्रतिदिन के लक्ष्यों की प्राप्ति—ये सभी प्रभावी ढंग से प्राप्त करने हेतु उद्योग की प्रबन्धकीय व्यवस्था के इस मध्यमवर्गीय स्तर के व्यवहार पर निर्भर करता है। इनलिये यह वह क्षेत्र भी है, जहां विचारों के विरोधावासी व विभिन्न पक्षों की नीतियों के बिभिन्न प्रकार कई विकल्पों के आग्रह व प्राथमिकता का निर्धारण, वस्तुओं और घटनाओं के समय और स्थान का चतुराई से हिसाब करना—ये सभी गतिविधियाँ एक व्यापक गतिविधियों के समान विचारार्थ प्रस्तुत रहती हैं। खेल की इन पगडंडियों में प्रबन्धकों की विभिन्न शक्तियां अपने भाग्य और आकांक्षाओं, अहंकार व स्वाभिमान और पूर्वग्रहों को रखकर खेलती हैं, जो विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों और विशेषताओं

की भंडार है। मनुष्य व्यवहार की परख और कुशलता इसी स्तर पर अत्यधिक प्रभावी जिम्मेवारी को प्राप्त करता है। इस क्रम में जल्दी-जल्दी सत्ता हस्तांतरित होती है। यह व्यर्थ नहीं था, जब बादशाह औरंगजेब ने अपनी मृत्यु-शय्या पर यह कहा था, "एक पल में, एक मिनट में, एक श्वांस में संसार की परिस्थिति बदल जाती है।" इस स्तर पर इसके छोटे स्वरूप का निरन्तर अनुभव होता रहता है। इस प्रकार के स्थान पर बैठे लोगों के लिये अपने दिन प्रतिदिन के काम में किसी दूसरे व्यक्ति को एक पक्का वादा देने में अत्यधिक कठिन होता है, फिर भी यह वह स्तर है जो समाज के लिये एक स्थायी और निर्भर रहने वाली भूमिका निभा सकती है। यह कठिन कार्य तब तक सम्भव नहीं है, जब तक इस वर्ग के लोगों की क्षमता को निर्माण करने और बनाये रखने के लिये अत्यधिक चिन्ता नहीं की जाती। यहां यह ध्यान में रखना चाहिये कि ट्रेड यूनियन में भी सक्रिय कार्यकर्ताओं और यूनियन स्तर पर के नेताओं का एक समूह प्रबन्धकीय व्यवस्था में रहता है, जो इस प्रकार की कठिनाइयों का लगातार सामना करता रहता है, जब वह अपना ध्यान आन्दोलनात्मक स्वरूप से हटाकर दिन प्रतिदिन की समस्याओ के हल की ओर ले जाता है। जब निम्नलिखित बिषयों से सम्बन्धित शिकायतों में से उठने वाली समस्यायें उनका ध्यान आकर्षित करती हैं, जैसे किसी भी उचित ट्रेड यूनियन को करने के सम्बन्ध में। तो उन्हें मध्यवर्गीय प्रबन्धक समूह के समान एक मानसिक संस्कृति के विकास की आवश्यकता अनुभव होती है, वे शिकायतें ये हैं—कार्य विषय में परिवर्तन, कार्यभार में परिर्तन, वरिष्ठता में परिवर्तन, पदोन्नति, स्थानान्तरण, तुलनात्मक बरिष्ठता में परिवर्तन, विभिन्न श्रेणियों व क्षेत्रों के बीच के संघर्षों के समझौते, वेतनों के अन्तरों का निर्धारण, अभिनवीकरण की योजनाओं की स्वीकृति, विभिन्न व्यक्तिगत और सामुहिक मांगों के समाधान की प्रक्रिया, पक्षपातपूर्ण व्यवहार की शिकायतें, अनुशासनीय निर्णयों के मामलों में कटौती, प्रोत्साहन योजनाओं और उत्पादकता सम्बन्धी लक्ष्यों को बनाये रखना तथा व्यक्तिगत व्यवहार से उठने वाले विभिन्न प्रश्न। इसलिये इस संदर्भ में हमें दो सुझाव देने हैं। हमारा पहला सुझाव यह है कि राष्ट्रीय स्तर पर सुपरवाइजरी प्रशिक्षण और नैपुण्य वर्गों के कार्यक्रमों को बड़े जोश और क्षमता के साथ लिया जाय, ताकि राष्ट्रीय स्तर पर प्रशासकीय व्यवस्था को खड़ा किया जा सके। इन शिक्षा वर्गों में सुपरवाइजर सदृश्य ट्रेड यूनियन नेताओं को भी सक्रिय रूप से भाग लेने के लिये प्रोत्साहन करना चाहिये। इसी प्रकार श्रमिक

शिक्षा कार्यक्रमों के अन्तर्गत भी सुपरवाइजर्स के लिये इन कार्यक्रमों को लागू करना करना चाहिये। और साथ ही हर एक प्रशासक के लिये यह अनिवार्य होना चाहिये कि वह ट्रेड यूनियन काम में उचित प्रशिक्षण प्राप्त करे। इस अभ्यास से आपसी सूझबूझ को प्रोत्साहन मिलेगा। मानसिक विशालता खड़ी होगी और औद्योगिक सम्बन्धों में लगे प्रमुख व्यक्तियों को उस काम के लिये तैयार करेगा, जिनसे, राष्ट्र उनसे आशा करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु जनसमुदाय एक जीते जागते स्वरूप में प्रचलन करे तथा प्रबन्धकों और श्रमिकों के विभिन्न स्तरों के बीच की आर्थिक जातिवादिता को भी उसी प्रकार समाप्त करे, जिस प्रकार आज राजनीतिक दलों में नवीन प्रकार की जाति भेद और न छुओ वाली पद्धति को उखाड़ फेकने की आवश्यकता हैं। इस संदर्भ में हमारा दूसरा भी सुझाव है कि उद्योग के स्वामित्व और नियन्त्रण में तकनीकी एवं प्रबन्धक वर्ग का भी एक विशेष प्रतिनिधित्व होना चाहिये। पूंजी और श्रम जैसे दो पक्षों के बीच में तकनीकी और प्रशासकीय लोगों का श्रमिकों के अनुपात में पूरी पूंजी का कम शेयर होने चाहिये साथ ही इसमें से हर एक व्यक्ति का श्रमिक के औसतन शेयर से अधिक होना चाहिये। हमारी यह आशा हैं कि इन दो पद्धतियों से उद्योग में सभी व्यक्तियों को एक कड़ी के रूप में अथवा एक सामुहिक घेरे में लम्बी अवधि तक बांधने में सहायक होगी और एक दूसरी संस्था, जिसे ओद्योगिक परिवार कहेंगे, के विकास में सहायक होगी। महात्मा गांधी कहते थे, "सही सामाजिक अर्थ व्यवस्था हमें सिखायेगी कि श्रमिक, क्लर्क और नियोजक एक अविभाज्य जीवित संस्था के सदस्य हैं, कोई एक दूसरे से छोटा नहीं और बड़ा भी नहीं। उनके आपसी हित संघर्षयुक्त नहीं होने चाहिये, बल्कि समान और अन्योन्याश्रित होने चाहिये।" औद्योगिक सम्बन्धों के तथाकथित दो वर्गों के बीच के सम्बन्ध इतने गहरे हैं कि बहुत से देशों में अधिकांश रूप से यह प्रचलित है कि ट्रेड यूनियन नेता और प्रशासक एक दूसरे का स्थान प्राप्त करते हैं और यह अब अक्सर होता है। हमारे पास समानता और मातृभाव का एक अच्छा सांस्कृतिक पैतृक देन है, तथा यहां देर से औद्योगीकरण करने के कारण भी इस सम्बन्ध में लाभ है, क्योंकि पाश्चात्य की कमजोरियों और शिक्षा को हम प्रारम्भ से ही लाभदायक ढंग से प्रयोग कर सकते हैं, जिसके अन्तर्गत ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं और प्रशासकों की समस्याओं और उपकरणों को अब एक व्यापक आधार पर देखना चाहिये। यही व्यवस्था औद्योगिक परिवार की पद्धति की स्थापना की ओर हमारे कदम को गति देगा।

# औद्योगिक परिवार

भारतीय औद्योगिक परिवार की सर्वप्रथम कल्पना ने नियोजक कर्मचारी सम्बन्धों के अस्तित्व का विचार नहीं किया था। वरन् किसी भी एक वस्तु के उत्पादन अथबा बितरण की प्रक्रियाओं से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को मिलाकर परिवार बनता था। परिवार में हर एक सदस्य को समान स्थान प्राप्त था। वे अपनी कार्य समिति अथवा पंचायत को सर्वसम्मति से चुनते थे और वही परिबार का सामुहिककर्ता था। सभी सदस्यों की सह सहभागीदारी का स्तर प्राप्त था। जहां तक भीतरी प्रशासन अथवा सम्पत्ति सम्बन्धों के प्रश्न थे, हर एक औद्योगिक परिवार स्बायत्तशासी तथा स्वशासित थे। राज्य केवल इनकी भीतरी समस्याओं के सहायतार्थ प्रस्तुत होता था, बह भी उस समय आवश्यक होता था, जब परिवार के सदस्य अथवा उसके अधिकारी स्पष्ट रूप से सहायता मांगें। हर एक औद्योगिक परिवार की दूसरी औद्योगिक परिवारों से व्यवहार करने के लिये अपने प्रकार की स्वतन्त्रता थी। सर्व साधारण के हितो को ध्यान में रखकर राज्य को इन व्यवहारों के नियंत्रण करने का अधिकार था। हर एक परिवार से यह आशा की जाती थी कि वह अपने आपको सम्पूर्ण राष्ट्र के आगामी रूप में स्वीकार करेगा, जिसके कारण व्यवहारिक स्तर पर आपसी समानता, समरसता एकात्मता पैदा होती थी।

आज भारत में कोई भी इस प्रकार का औद्योगिक परिवार नहीं है, नियोजक कर्मचारी सम्बन्ध स्वयं रोजी वाले क्षेत्र के कुछ लोगों को छोड़कर एक प्रकार की स्थिरता को प्राप्त किये हुये है, और औद्योगीकरण की प्रक्रिया में प्रबन्धकों और तंत्रज्ञों का एक नया वर्ग भी उभर कर सामने आया है।

नई परिस्थितियों के अन्तर्गत प्रत्येक उद्योग में आन्तरिक स्वायत्तता के मूल सिद्धान्त के आधार पर इन लोगों के ३ प्रकार के वर्गों के लिए पृथक-पृथक औद्योगिक परिवार बनाना आवश्यक होगा। इन तीनों वर्गों को एक औद्योगिक परिवार में इकट्ठा करना तभी सम्भव होगा, जब श्रमिक, प्रबन्धक व तंत्रज्ञ अपने-अपने उद्योग में सह-सहभागीदार बनाये जायेंगे, जो अपने वर्तमान नियोजकों के साथ लाभ व प्रबन्ध में भागीदार ही नहीं होंगे, वरन् उन उद्योगों के स्वामित्व में भी भागीदार होंगे।

श्रमिकों को इन औद्योगिक परिवारों में इकट्ठा करना कम से कम उस

समय तक कठिन होगा, जब तक की उनकी ट्रेड यूनियनों को सशक्त नहीं किया जाता और अनुशासन पालन करने के योग्य नहीं बनाया जाता तथा उनके राष्ट्रीय औद्योगिक महासंघ भी यदि समुचित ढंग से संगठित किये गये तो इस प्रकार के औद्योगिक परिवारों की भूमिका निभा सकते हैं।

हर एक उद्योग में प्रबन्धकों और तन्त्रज्ञों की संस्थाओं के राष्ट्रीय महासंघ, जब संगठित किये जायेंगे तो इस आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है, किन्तु वे केवल मात्र विचार व अनुभव के आदान प्रदान तक ही अपने को सीमित न करें तथा इन महासंघों के संदर्भ में वे सभी विषयों को लायें, जो उद्योगों में उनकी भूमिका से जुड़े हुये हैं।

भिन्न-भिन्न उद्योगों में नियोजको की संस्थाओं के महासंघ के भी गठन किये जाँय और उनकी कार्यसमिति को वे अधिकार व हक दिये जाय, जो मूलभूत औद्योगिक परिवारों की कार्यसमिति के अधिकार और हकों के समान हों। एक उद्योग में भिन्न-भिन्न नियोजकों द्वारा लगाई गयी सम्पूर्ण पूँजी का प्रबन्ध राष्ट्रीय महासंघ के हाथ सुपुर्द करना चाहिये, जो अपने दायरे के सभी विषयों पर-नीति सम्बन्धी निर्णयों के बनाने और कार्यान्वित करने के उद्देश्य से इस पूँजी को सामान्य औद्योगिक धनराशि के रूप में समझें। नीति सम्बन्धी निर्णय ये हैं–अभिनवीकरण, वेंतन नीति, बोनस, श्रम कानूनों और उनके निर्णय (एवार्डस) के क्रियान्वित करना आदि। यद्यपि इस प्रकार के सभी महासंघों को आन्तरिक स्वायत्तता प्रदान हो, किन्तु उनके लिये यह मान्य होना चाहिये कि वे राष्ट्रीय वित्तीय अनुशासन का पालन करेंगे तथा योजनाओं के लक्ष्य को पूरा करने के लिये उन्हें लेखा जोखा देने होंगे। साथ ही हर नियोजक सदस्य को अपनी पूँजी रखने का अधिकार होगा, उसका प्रबन्ध और क्रियान्वित करने की नीति पूर्णरूप से उसके महासंघ के अधिकार में रहेगा जिसके निर्णय करने में उसे अपने अन्य नियोजक सदस्यों के साथ भाग लेने का अधिकार होगा। किसी नियोजक से सरकार द्वारा सीधी वार्तालाप करने के स्थान पर सरकार केवल उनके महासंघ के साथ ही वार्तालाप कर सकेगी।

निकट भविष्य के लिये संक्षेप में यही औद्योगिक परिवारों की व्यापक रूप रेखा हमारे द्वारा प्रस्तुत की गयी है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया हैं, इन तीनों पक्षों को एक में मिलाने के अपने भूलभूत विचार पर हम अधिक लाभकारी होने की आकांक्षा रखते हैं, जो अपने-अपने उद्योगों में श्रमिकों, प्रबन्धकों व तंत्रज्ञों को स्वामित्व में सह भागीदार बनाने के परिणामस्वरूप होगा।

यह आदर्श स्थिति होगी, जिसके लिये हमें प्रयत्न करना है, परन्तु हर उद्योग में इन ३ प्रकार के परिवारों के विचार को कार्यान्वित करते समय के उस परिवर्तन काल में तदनुसार अल्पकालीन व्यवस्था (Stop-gap arrangement) करनी पड़ेगी।

मूलभूत ढांचें को ध्यान में रखकर हम सभी औद्योगिक परिवारों का सरकार और प्रशासन में व्यवसायगत (पेशे के अनुसार) प्रतिनिधित्व के सिद्धान्तों पर भाग लेने हेतु हमारा मत है। क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व की वर्तमान पद्धति के साथ-साथ किस प्रकार इसको अपनाया जायगा, इसकी रूप रेखा बनायी जायगी और क्रियान्वित किया जायगा, जब ये परिवार संगठित होंगे।

इन परिवारों की आन्तरिक स्वायत्तता पर हम पर्याप्त आग्रह करते हैं, परन्तु ये परिवार अपने आपको राष्ट्रीय अनुशासन के अन्तर्गत रखेंगे। अपने अस्तित्व के हक और स्वतन्त्र कानून के अनुसार रहने की विधि स्वनिर्धारित परिवार का जीवनादर्श है। हम एक राज्य की कल्पना करते हैं, जिसका कार्य श्री अरविन्द के शब्दों में "समाज जीवन में अनुचित हस्तक्षेप करना नहीं हैं और अत्यधिक भाग में उसके प्रकृति व रीति-रिवाज में स्वेच्छित विकास के अनुसार काम करने की अनुमति रहे, इतना ही नहीं बल्कि इसकी स्वाभाविक प्रक्रिया का उसे निरीक्षण करना और सहयोगी होना है और यह देखना है कि धर्म को जोश खरोश से पालन किया जाता है और साथ ही नकारात्मक रूप में धर्म के विरुद्ध आक्रमण को रोकने के लिए दण्डित और दबाव डालना चाहिये, जितना कि सम्भव हो।"

## विशिष्ट जन (बाहरी व्यक्ति)

औद्योगिक परिवार अथवा श्रमिकों के कौन-कौन से अंग हैं ? श्रमिक जो एक उद्योग में काम करते हैं, उस उद्योग के पूर्व कर्मचारी हैं और उस उद्योग में ट्रेड यूनियन गतिविधियों में पूरा समय देने वाले कार्यकर्त्ता हैं। ट्रेड यूनियन गतिविधियों के उद्देश्य पूर्ति हेतु बाद वाले दो वर्गों को औद्योगिक परिवार का भाग मानना चाहिये, जबकि उनका सम्पूर्ण कार्य ट्रेड यूनियनिज्म ही हो।

हम इस मत के हैं कि ट्रेड यूनियन आन्दोलन से बाहरी व्यक्तियों को सम्पूर्ण रूप से समाप्त कर देना चाहिये। ट्रेड यूनियन गतिविधियां इन लोगों

के लिये चारागाह है, जिसे जितनी शीघ्रता से समाप्त किया जाय, अच्छा होगा, इनकी अनिवार्यता देश में ट्रेड यूनियन संगठन की कमजोरी अथवा पिछड़ेपन की द्योतक है। क्योंकि ट्रेड यूनियन श्रमिकों का संगठन है, श्रमिकों द्वारा है और श्रमिकों के लिये है, परन्तु पूर्व कर्मचारी और पूर्णकालिक कार्यकर्ता जैसे सही ट्रेड यूनियनिस्ट को बाहरी व्यक्ति नहीं मानना चाहिये।

## श्रमिक शिक्षा व प्रशिक्षण

## शिक्षा निदेशन (Boards) का कार्य

इस तथ्य को ध्यान में रखकर कि श्रमिकों की शिक्षा की योजना भारत में वर्तमान समय की है और अनोखी है, हम यह अनुभव करते हैं कि इसकी प्रगति की वर्तमान दर संतोषजनक है। यद्यपि वर्तमान काल में ये कार्यक्रम स्वायत्तशासी और क्षेत्रीय बोर्डों द्वारा नहीं चलाया जा रहा है, कालान्तर में ट्रेड यूनियन आन्दोलन द्वारा उसके हाथ में लिया जायगा, जैसा कि विशेषज्ञों की समिति ने प्रारम्भ में सिफारिश की थी। योजना का कार्यक्रम बिना किसी कानूनी अधिकार के है और अपने में एक उत्साहजनक और प्रारम्भिक प्रयोग है। यह सत्य है कि यह योजना अभी उपयुक्त रूप से ट्रेड यूनियन की रुझान के अन्तर्गत नहीं है। डा० ए० आर० चार्ल्स, जो अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I. L. O.) के विशेषज्ञ हैं, का यह सुझाव है कि क्षेत्रीय केन्द्रों पर सक्रिय ट्रेडयूनियनिस्ट को शिक्षा अधिकारी नियुक्त करना चाहिये अभी क्रियान्वित नहीं हुआ है। बोर्ड की रिव्यू कमेटी का सुझाव जिसमें ट्रेड यूनियनों, राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों को इस कार्यक्रम में अधिक रुचि के साथ भाग लेने के सम्बन्ध में है और शिक्षा के कार्यक्रम और परिणामों के मूल्यांकन में सीधे दखल देने के सम्बन्ध में है, को उपयुक्त सम्मान नहीं दिया गया, जितना कि दिया जाना चाहिये। बाम्बे समिति भी योजना को बनाने और दिशा देने में अभी सफल नहीं हुयी है। इसके पश्चात भी उपलब्ध समय, शक्ति और धनराशि को ध्यान में रखकर जो अभी तक प्रगति हुयी है, वह प्रशंसनीय है।

विशेष रूप से आधारभूत संगठनात्मक ढांचा--जो शिक्षाधिकारियों, श्रमिक शिक्षकों व प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को क्रमबद्ध कार्यक्रमों से उत्पन्न करता है, प्राथमिक स्तर पर उद्देश्य पूर्ति अनुकूल है। बम्बई उप समिति द्वारा दी गयी योजना का विस्तृत मापांकन करने में पहले ही देरी हो चुकी है, यह मापांकन,

योजना की भविष्य दिशा निर्धारण करने में सहायक होगी। वर्तमान योजना को नमूने के तौर पर परियोजना के अन्तर्गत देखना चाहिये और इसके कार्यान्वित करने में जो त्रुटियां आयेंगी, उसे सीखने और लाभान्वित होने का अवसर प्राप्त हो सकेगी हमारा अनुभव भविष्य काल में गुणात्मक सुधार की ओर दिशा निर्देश करेगा।

अनिवार्य रूप से यह स्वीकार करना चाहिये कि यह योजना इस संदर्भ में अभी तक तो असफल ही रही है, क्योंकि इसने ट्रेड यूनियनिस्ट को आकर्षित नहीं किया है। हम अनुभव करते हैं कि इस योजना से शिक्षित व्यक्ति अनिवार्य रूप से अच्छे ट्रेट यूनियनिस्ट नही होंगे, क्योंकि योजना के पाठ्यक्रम ट्रेड यूनियन के रुझान के योग्य नहीं हैं। ट्रेड यूनियनिस्टों ने बोर्ड द्वारा सहायतार्थ धनराशि को पर्याप्त रूप में नहीं लिया है, जो मुख्यत: योजना के नियमों व शर्तों के कठोरपन के कारण रहा। हमें यह उल्लेख करने में प्रसन्नता हो रही है कि बोर्ड ने इस तथ्य को पहचाना है और ठीक दिशा में कुछ कदम उठाये हैं परन्तु इससे भी अधिक नम्रता और सरलता की कार्यवाही की आवश्यकता है। ट्रेड यूनियनों को अपनी प्रेरणा के आधार पर इस प्रकार के वर्गों को चलाने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये और उन्हें बोर्ड के पाठ्यक्रम, सहायता धनराशि और देख भाल के आधीन करना चाहिये और यदि वे चाहते हैं तो ऐसे वर्ग बोर्ड के शिक्षाधिकारियों की सहायता से चलाना चाहिये तथा सक्रिय और उदीयमान ट्रेड यूनियनिस्ट की सेवायें भी इस योजना के लिये उपलब्ध होनी चाहिये। और इस उद्देश्य पूर्ति के लिये उल्लिखित शैक्षणिक योग्यताओं को निरस्त कर देना चाहिये।

विभिन्न वर्गों के लिये पाठ्यक्रम जो समिति द्वारा अनुमोदित हैं, हम उससे सहमत हैं। वर्तमान संदर्भ में उन विषयों के ऊपर अधिक आग्रह और एकाग्रता, जिनका ट्रेड यूनियन नेतृत्व की आवश्यक गुणों को पैदा करने में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव है, रखनी चाहिये। इसके अनुसार निम्नांकित विषयों पर ध्यान देना चाहिये–उत्पादकता भाव की जागृति; इन तीनों विषयों के लिये प्रमुख स्थान, जैसे–(१) ट्रेड यूनियन्स के उद्देश्य (२) ट्रेड यूनियन संगठन, प्रशासन और कार्यवाही और (३) ट्रेड यूनियन-प्रबन्ध और सामूहिक सौदेबाजी की समस्यायें, वर्तमान इकाई पर कक्षाओं, जिनमें एक श्रमिक-शिक्षक के ढांचे पर वर्ग चलाया जाता है, उसे ३ श्रमिक-शिक्षकों द्वारा चलाने हेतु

परिबर्तन कर देना, इकाई स्तर पर के वर्ग में अतिथि शिक्षक और शिक्षाधिकारी के भाषणों के लिए आग्रह, श्रमिक-शिक्षकों के लिये नैपुण्य वर्गों को व्यवस्था शिक्षाप्रद फिल्मों की व्यवस्था, फिल्म व चलती फिरती पुस्तकालयों के लिये व्यवस्था, प्रोजेक्टर्स आदि; आकर्षित करने वाले उपकरणों के गुणों व प्रकार में सुधार-फिल्म, चार्ट्स, फ्लैशकार्ड्स, आदि; वर्तमान प्रमुख व महत्वपूर्ण औद्योगिक विषयों के अध्ययन का प्रस्तुतीकरण नमूने के तौर पर बनाये गये शिक्षाप्रद पाठ्यक्रम की तैयारी; उद्योगों के आधार पर श्रमिकों का श्रेणीबद्ध विवेचन; शाप स्टडीवर्ड का तीन स्तरों पर प्रशिक्षण; एक ही उद्योग की यूनियन की कार्य समिति के विशेष प्रशिक्षण के कार्यक्रम, एक ही उद्योग में यूनियन्स के प्रमुख कार्य समिति के सदस्यों के लिये सेमिनार्स और सम्मेलन; यूनियन्स की शाखा इकाई की कार्यसमिति और कार्यसमितियों के प्रमुखों के लिये विशेष प्रशिक्षण के कार्यक्रम आदि ये हमारे द्वारा मान्य की गयीं सिफारिशें हैं। पर हम इस सुझाव से सहमत नहीं है कि उन व्यक्तियों, जो श्रमिक शिक्षक बनने वाले हैं और ट्रेड यूनियन के काम में लगने वाले हैं, के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रम हों। दोनों के लिए केवल एक ही पाठ्यक्रम होने चाहिए, जिसकी अवधि कुछ लम्बी रहे। यदि पाठ्यक्रम की अवधि को बढ़ा दिया गया तो यह भय नहीं होना चाहिए कि प्रशिक्षण के प्रमुख भाग में कमी आयेगी अथवा वह द्वितीय स्थिति को प्राप्त करेगा। सत्य यह है कि श्रमिकों के शिक्षण प्रशिक्षण की योजना का उद्देश्य-ट्रेड यूनियन आन्दोलन को व्यापक करना तथा उन्हें सशक्त बनाना है, ताकि ट्रेड यूनियन आन्दोलन का रचनात्मक नेतृत्व खड़ा हो सके और जो गतिशील तथा बढ़ती हुयी अर्थव्यवस्था में अपने हकों एवं जिम्मेदारियों दोनों को ही समझ सके तथा अपने आन्तरिक मामलों के प्रबन्ध में प्रजातांत्रिक नेतृत्व खड़ा हो सके और जो नियोजक, समाज और सरकार के साथ अपने सम्बन्धों में जिम्मेवार हो सके। परन्तु हम श्रमिक-शिक्षक और ट्रेड यूनियनिस्ट के पाठ्यक्रमों के विभाजन की उपयोगिता और ग्राह्यता की प्रशंसा नहीं कर सकते। इस प्रकार के विभाजन ट्रेडयूनिस्ट को संकीर्ण मनोवृत्ति और श्रमिक शिक्षकों को केवल मात्र शास्त्रीय व सैद्धान्तिक विवेचन (Acadeunic) तक ही सीमित करेंगे। एक व्यापक कार्यक्रम, जिसे दोनों ही आग्रहपूर्वक अपनाये और एक लम्बे काल तक का हो, ही उचित रास्ता है। हम बम्बई समिति की सिफारिशों की प्रशंसा करते हैं, परन्तु हम आशा करते हैं कि उसका क्रियान्वयन अनिवार्य रूप से पाठ्यक्रम के विभाजन की ओर

नहीं ले जायगा। हम और भी अनुरोध करते हैं कि सामूहिक पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाय, जिसमें ट्रेड यूनियन्स और प्रबन्ध की कार्यसमितियों को नीचे से लेकर ऊपर की श्रेणी तक के लोगों को भाग लेना चाहिये तथा उत्पादकता, औद्योगिक मनोविज्ञान तथा सामूहिक-सौदेबाजी आदि विषयों पर समान दृष्टिकोण रखकर समान पाठ्यक्रम निश्चित किये जाँय।

ऊपर के स्तर के श्रमिक कार्यकर्ताओं अथवा प्रबन्धकों के लिये सम्बन्धित उद्योग की विशेष आवश्यकताओं के अन्तर्गत पाठ्यक्रमों में परिवर्तन करना चाहिये। हर एक उद्योग के लिये भिन्न पाठ्यक्रमों की तैयारी निश्चित ही कठिन है, परन्तु वह ट्रेड यूनियनिस्ट को रुकिकर बनाने में लम्बी अवधि तक प्रभावित करेगी और प्रबन्धकों के उच्चस्तरीय लोगों के मन में सक्रिय दिलचस्पी पैदा करेगी, चाहे वे उच्च अधिकारी निजी क्षेत्र के हों अथवा सार्वजनिक क्षेत्र के। हर एक उद्योग में इकाई स्तर पर कक्षायें में चलाने के समय प्रतिदिन के अल्पकालीन अवकाश और अन्य सुविधाओं के प्राविधान करने में उतनी समस्या नहीं होगी, जितनी कि वह आज है। हमें यह मान्य है कि सर्वतोमुखी सहयोग सर्वोच्च ढंग से तभी प्राप्त हो सकता है, जब कक्षाओं के स्वरूप ढांचे के भिन्न भिन्न क्रमों के अनुसार बनाये गये पाठ्यक्रम पर आधारित हो।

विशेषज्ञों की समिति द्वारा दिये गये सुझाव, जिसके अनुसार अनधिकृत रूप से श्रमिक शिक्षा एसोसियेशन का बनना और प्रौढ़ शिक्षा आन्दोलन से सहयोग प्राप्त करना है, यह एक अच्छा सुझाब है। परन्तु हम अनुभव करते हैं कि इस योजना को कार्यान्वित करने का अभी उपयुक्त समय नहीं आया है, वह स्थिति आने दी जाय। पहले श्रमिक शिक्षा योजना को अनाधिकारी एजेन्सी को दिया जाय और तप्पश्चात ट्रेड-यूनियन केन्द्र को दिया जाय, तब जो योजना ट्रेड-यूनियन्स द्वारा बनायी जायगी, एक अच्छी स्थिति में होगी, और जिसके अन्तर्गत स्वेच्छापूर्वक एशोसियेशन्स को बनाने के लिये उत्साह और प्राथमिकता प्राप्त होगी। वर्तमान काल में उसप्रकार का पग उठाना, अपरिपक्वता का द्योतक होगा।

अभी तो कुछ काल तक बर्तमान श्रमिक शिक्षा योजना के संख्यात्मक विस्तार को भी स्थगित कर देना चाहिये और गुणात्मक विकास पर अधिक

बल देना चाहिये, जब एक बार छोटी ही मात्रा में क्यों न हो, इस प्रकार की योजना का नमूना परिपूर्ण होकर सामने आवेगा, तब इस नमूने के आधार पर विस्तार करना सरल हो सकेगा। यह समय तो एकत्रित करने व सुधार के लिए है, न कि विस्तार के लिये। जब हम इस संदर्भ में गुणात्मक लक्ष्यों तक पहुँच जायेंगे, तब हम लाभान्वित ढंग से विस्तार की योजना कर सकते हैं। केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थानों का एक श्रमिक विश्वविद्यालय के रूप में विकसित करना, योजना को नमूने के आधार पर तय्यार करके गिनी चुनी ट्रेड यूनियन्स को सौंपना, योजना को ट्रेड यूनियन आन्दोलन के हाथों में समूचे रूप से सौंपना– ये वे कदम हैं, जिन्हे बाद में लिया जा सकता है। योजना के लाभों को कृषि और अन्य श्रमिकों तक बढ़ाने के कार्य-क्रम को भी फिलहाल स्थगित किया जा सकता है। जो कुछ भी इस समय हाथ में लिया जा चुका है, उसमें गुणात्मक सुधार के लिये पूर्णरूपेण आग्रह किया जाना चाहिये।

विश्व विद्यालयों और श्रम संस्थाओं में चलाये जाने वाले ग्रीष्मकालीन श्रम विद्यालय–एक प्रशंसनीय विचार है। ट्रेड यूनियन केन्द्रों में श्रमिक शिक्षा के विभागों की स्थापना भी एक सहायक कदम है, परन्तु इन दोनों ही विषयों के लिये श्रम मंत्रालय को प्राथमिकता लेनी चाहिये और कम से कम कुछ भविष्य काल तक के लिये बोर्ड को सुपुर्द नहीं करना चाहिये।

यह स्पष्ट है कि कोई भी दीर्घकालीन श्रमिक शिक्षा के कार्य-क्रम व्यापक सफलता प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक की श्रमिकोंके बीच से निरक्षरता को पूर्ण-रूपेण दूर नहीं किया जाता। सरकार को भिन्न भिन्न संस्थाओं को प्रोत्साहित करना चाहिये और सहायता देनी चाहिये, ताकि वे इस दिशा के कार्य-क्रमों को गतिशील बना सकें। भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संस्थान का गठन होना ही चाहिये, परन्तु बोर्ड को इस अभियान में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित नहीं करना चाहिये। भारत सरकार को इसकी सारी जिम्मेदारी अपने कन्धों पर लेना चाहिये।

हम जिस विषय पर आग्रह करना चाहते हैं-वह है 'श्रमिक शिक्षा' का विचार। यह विचार बहुत व्यापक है और इस काम को उस स्थान तक, जिसे हम श्रमिक शिक्षा बोर्ड को सौपना चाहते हैं, सीमित नहीं रखना चाहते। बोर्ड का काम भी महत्व का है, परन्तु श्रमिक शिक्षा के सम्पूर्ण विचार का एक भाग

ही उससे सम्बन्धित है, जिसके अनुसार हर श्रमिक को अपने उद्योग में कुशल बनाने के लिये पर्याप्त हैं, और परिणाम स्वरूप देश का एक आदर्श नागरिक बनाने के योग्य है। इसलिये इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु भिन्न-भिन्न अन्य एजेन्सियों को भी इस कार्य में लाने की आवश्यकता है। यह भारत सरकार की जिम्मेदारी होनी चाहिये कि वह इन एजेन्सीज को इस दिशा में सक्रिय करे।

## कार्य पर श्रमिक का प्रशिक्षण

श्रमिक शिक्षा का एक दूसरा विषय कार्य (ड्यूटी) पर श्रमिक प्रशिक्षण का कार्य-क्रम है, जो हर उद्योग अथवा कारखाने को भी चलाना चाहिये। द्वितीय महायुद्ध के काल में उद्योग के अन्दर कार्य करते समय प्रशिक्षण, अल्पकालीन विशेष वर्ग अथवा पुनः प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमों आदि की पद्धतियों का प्रशंसनीय विकास हुआ, जिसमें श्रमिक नयी हुनर को प्राप्त कर सके अथवा प्रचलित कुशलता का विकास कर सके। भीषण महायुद्ध के दौरान भी कई प्रकार के ढंग-जैसे कि प्रदर्शनार्थ डाकूमेन्टरी तथा छोटे-छोटे मशीनों के नमूने आदि के माध्यम से प्रशिक्षण दिये गये वे प्रशिक्षण तकनीकी शिक्षा को प्रदान करने हेतु तीव्र और प्रभावी ढंग थे। एक गतिमान विकासशील विश्व के लिये इसी प्रकार के प्रशिक्षण अनिवार्य हैं। पाश्चात्य देशों के ये सभी प्रयोग हवा में नहीं, अपितु व्यावहारिकता की धरती पर किये गये हैं। तकनीकी शिक्षा से सम्बन्धित विज्ञान और तकनीक, की जानकारी साधारण श्रमिक के लिये तकनीकी बारीकियों को बतलाने के लिये ढंग और तकनीकी शोध तथा विकास के लिये उसकी रुचि उत्पन्न करने के तरीके आदि प्रयोग जो सभी अच्छाई के लिये हैं और जिसे आर्थिक दृष्टि से विकसित देशों ने अपने यहाँ लागू किया है, उनकी नकल की जा सकती है। हम पहले ही किसी अन्य स्थान पर उल्लेख कर चुके हैं कि हमें विदेशी तकनीक को संकीर्णता-पूर्ण अविवेक से नही अपनाना चाहिये, बल्कि अपनी क्षमता पर तकनीक का बिकास करना चाहिये। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं हैं कि हमें वैज्ञानिक स्वभाव के विकास, तकनीकी कुशलता की व्यापकता और विज्ञान के वर्तमान विकाश के लिये अपने जन समुदाय में सम्मान न दे, वरन् उसे दुर्लक्ष्य करें। यह तो आत्म-हत्या के समान गलती करना होगा। पाश्चात्य देशों ने द्रव्य की विशेषताओं, द्रव्य और ऊर्जा की केमिकल क्रियाओं और प्रक्रियाओं के ढंगो को समझने और उपयोग करने के लिये अध्यात्मिक जिज्ञाशा दिखाई है और उसकी सूक्ष्मता को ध्यान में रख कर उसके सदुपयोग के शास्त्र को धार्मिक ढंग से विकसित किया है। उसने यांत्रिकीय शक्ति के निर्माण और रखरखाव, स्तुति और बढ़ोत्तरी के लिये विस्तृत

धार्मिक क्रिया प्रदान किया है। उसने उस शक्ति की उत्तेजनाओं और भिन्न-भिन्न स्वेच्छाओं का भी अध्ययन किया है और उस देवता (शक्ति) को खुश करने और व्यवस्थित रखने के लिये उसने सभी सावधानियों और देख रेख को लगातार प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य देशों के विज्ञान और तकनीकी के बारे में ये सभी धार्मिक जोश खरोश वास्तव में पूर्व के लिये योगदान है। इसे अच्छी प्रकार से अध्ययन करना चाहिये। और अपने हित के लिये अपनाना चाहिये। पाश्चात्य देशों द्वारा इन विकसित विचारों और व्यवहारों को श्रमिक के सम्पूर्ण शिक्षा के अन्तर्गत सम्मिलित करना चाहिये।

इस विषय में हम एक नई और महत्वपूर्ण पहलू जोड़ना चाहेंगे। इसे पाश्चात्य देशों ने भी स्वीकार किया है और श्रमिकों की मनहूसियत को तोड़ने में इसका अत्यधिक उपयोग किया है तथा श्रमिकों को उसके कार्य में अभिरुचि उत्पन्न करता हैं। बस्तुत: इसमें बहुत बड़े पैमाने पर विकसित करने की क्षमता है। इस पक्ष के अन्तर्गत हर एक श्रमिक को एक परिपूर्ण विचार प्रदान करना है, ताकि उद्योग में अन्य कार्यों के एकीकरण के अन्तर्गत उसके कार्य को महत्व मिल सके। वे अपनी त्रुटियों के सही प्रभावों अथवा गम्भीरता को नहीं समझते, जब तक वे अन्तिम परिणाम की महत्ता और उस अन्तिम परिणाम में उसके काम के योगदान को नहीं देखते। सम्पूर्ण काम के सन्दर्भ में जो उसकी कम्पनी द्वारा उल्लेखनीय प्रकार की वस्तु को पैदा करके विशेष अच्छाइयाँ उत्पन्न होती हैं, कुल धर्म और जाति धर्म, ये श्रमिक की प्रशिक्षण कार्य-क्रम में वे पक्ष है, जिन्हें कार्यस्थल पर प्रशिक्षण की संकीर्ण परिभाषा को स्वीकार करने के अन्तर्गत, आंख से ओझल नहीं होने देना चाहिये। दृष्टिकोण को बदलने से श्रमिक को एक व्यापक दृष्टिकोण मिल सकता है, जो वस्तुत: जीवनदानी हो सकता है, उसके बिना वह केवल शरीर का ढांचा मात्र ही रहेगा। बड़े कारखानों में जहां कार्य का विभाजन और कार्य की विशेषज्ञता होती है कारखानों के स्तर पर इस प्रकार के पक्ष को दुर्लक्ष किया जाता है। यह दुर्लक्षता जन साधारण और ऊपरी कार्य समिति के बीच उस सीमा तक दूरी उत्पन्न कर देती है, कि वे अपने परियोजना के बारे में इकट्ठा होकर जब बोलते हैं तो वे दो भिन्न भिन्न भावों में बोलते हैं और एक दूसरे को समझने में असमर्थ रहते हैं। इसलिये कार्य के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इस प्रकार की सूझ बूझ और सम्पूर्ण योजना में हर बारीकी की महत्ता के लिये कार्यस्थल पर प्रशिक्षण की योजनाओं को आवश्यक रूप से लागू करना चाहिये। इस संदर्भ में तीन श्रमिकों की कहानी बतलायी जाती हैं, जो पत्थर

तोड़ने के एक समान कार्य को कर रहे थे। एक अन्य व्यक्ति द्वारा प्रत्येक श्रमिक से अलग अलग उसके काम की प्रकृति के बारे में प्रश्न पूछे जाने पर पहले गुस्से से उत्तर दिया "क्या तुम देख नहीं रहे हो कि मैं पत्थर तोड़ रहा हूँ!" दूसरे ने दुखी होकर कहा "और क्या करूँ? अपना पेट भरने के लिये मुझे कुछ तो करना ही पड़ेगा, इसलिये पत्थर तोड़ रहा हूँ।" परन्तु तीसरे मेनहतकश श्रमिक ने बड़े हर्ष के साथ बताया, "हम यहाँ पर एक सुन्दर मन्दिर बना रहे हैं, अपने जन समुदाय के स्वप्न को साकार करने के लिये यह कार्य कर रहा हूँ।" पहला व्यक्ति उस प्रकार का है जो अपने काम से ही झगड़ा करता है। दूसरे ने अपने को भाग्य पर छोड़ दिया है जब कि तीसरे का भाव ही वस्तुतः सही शिक्षा का निचोड़ है। सभी श्रमिकों के लिये शिक्षा का यहउ द्देश्य होना चाहिये कि वे इस तथ्य की महत्वपूर्ण अनुभूति कर सकें कि वे किस प्रकार अपने दिन प्रतिदिन की दिनचर्या की परिपूर्णता से राष्ट्र द्वारा बनाई जा रही राष्ट्रवाद और भारत शक्ति के मन्दिर का निर्माण कर रहे हैं। इस प्रकार तकनीकी और सामाजित दोनों ही पक्षों में उद्योग का विकास तथा उसमें समृद्धि हो सकती है, और स्थिति कार्यस्थल पर प्रशिक्षण के कार्यक्रम में अपने राष्ट्रीय उद्देश्यों के दृष्टिकोण को अपनाने से प्राप्त हो सकती है। यद्यपि कार्यस्थल पर प्रशिक्षण देने की एजेन्सी उद्योग ही है, किन्तु वह श्रमिकों के तकनीकी प्रशिक्षण के कार्य-क्रम को पूर्ण नहीं बना सकेगा, जब तक कि वह अपने तकनीकी प्रशिक्षण की रूप रेखा में राष्ट्र के व्यापक दृष्टि-कोण का समावेश नहीं करता।

## नागरिक के रूप में श्रमिक शिक्षण

श्रमिक शिक्षा की कोई भी योजना पूरी नहीं हो सकती अथवा अपेक्षित परिणाम नहीं ला सकती, जब तक औसतन श्रमिक का स्तर आदर्श नागरिक के रूप में और राष्ट्र के जिम्मेदार घटक के रूप तक नही लाया जाता। औपचारिक शैक्षणिक शिक्षा के बावजूद भी आदर्शवादी दृष्टिकोण और पद्धति का निर्माण करना इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अनिवार्य है। यह पहले से ही मान्य है कि सभी नागरिक राष्ट्र निर्माण के उद्देश्य को स्वेच्छा से अपनाते हैं और साथ ही उद्देश्य की पूर्ति हेतु सब प्रकार के मूल्य पर पूरी मेहनत करते हैं। केवल इसी प्रकार के वातावरण ही श्रमिक को राष्ट्रीय उत्पादन और समृद्धि के लिये सर्वोच्च सम्भव योगदान देने के लिये प्रेरणा दे सकते हैं।

भिन्न भिन्न शैक्षणिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थायें, जो देश में आज

काम कर रही हैं, उन्हें इस काम को अपने हाथ में लेना चाहिये। इन सभी संस्थाओं, जो सामाजिक भूमिका को बनाती हैं, के द्वारा होने वाले केन्द्रित प्रयत्नों का स्वागत करना होगा और यह अवश्यम्भावी भी है। इन संस्थाओं का नाम लेना अथवा गिनना हमारा काम नहीं है, शायद बहुत सी अन्य सस्थाओं को भी स्थापित करना पड़े। हम जो आग्रह करना चाहते हैं, वह यह है कि एक खराब नागरिक एक अच्छा श्रमिक नहीं बन सकता और यह कि श्रमिक से अपनी भूमिका को उसी समय एक आदर्शवादी ढंग से निभाने की आशा की जा सकती है, जब देश का सर्वसाधारण नागरिक अपने दिन प्रतिदिन के मामले में उच्च उद्देश्यों की भावनाओं को अपनायें और प्रकट करें। यह समस्या बहुत व्यापक है, जो देश के वास्तविक नेताओं द्वारा हल किये जाने की प्रतीक्षा में है, चाहे ये नेता कोई भी क्यों न हों।

## सफलता का आधार

हर एक बीज अपने फल द्वारा ही पहचाना जाता है। हमने श्रमिक शिक्षा के कई पहलुओं पर विवेचन किया है। इसकी सफलताओं का आधार क्या है?

पिछले विवेचन के अन्तर्गत आधार व्यक्ति है। क्या शिक्षा ने श्रमिक को एक अच्छा व्यक्ति बनाने में सफलता प्राप्त की है? क्या एक अच्छे नागरिक ने अपने आपको राष्ट्र के साथ एकात्म किया है? क्या उद्योग के एक अच्छे प्रोत्साहन कर्ता ने अपने आपको उद्योग के साथ एक रूप किया है? क्या एक अच्छे ट्रेड यूनियनिस्ट ने अपने सहायक कार्यकर्ताओं के साथ अपने को एक रस किया है? क्योंकि सभी अच्छाइयों का निष्कर्ष अपने आपको व्यापक बनाना और उससे भी बढ़कर अपने को सामाजिक अंगांगी भाव के रूप में समझना है। इसके सर्वोच्च स्वरूप का अर्थ होता है कि वह अपने अस्तित्व को मिटा दे अथवा दूसरे शब्दों में व्यक्ति अपने आपको वैश्विक स्वरूप से एकात्म हो जावे। इस प्रकार के व्यक्ति न केवल अपने आपको बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के लिये आग्रह करते हैं बल्कि वस्तुतः 'सर्वभूत हितेरतः' होते हैं। वह समाज के साथ पूर्ण रूपेण एक रस हो जाता है और इसलिये मैं नही, तू ही के भाव के प्रति समर्पित हो जाता है। उसकी सम्पूर्ण आकांक्षायें दूसरे को सुखी बनाने के लिये होती हैं। अपने ज्वाज-ल्यमान पूर्वजों के समान वह भी घोषणा हैकरता —

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।

"न यह राजनीतिक सत्ता है, न स्वर्ग है और न ही पुनर्जन्म है, जिसके लिये मैं आकांक्षा करता हूँ। मेरी केवल मात्र आकांक्षा–सभी पीड़ित व्यक्तियों को उनके कष्ट से निवारण करना है।"

भावनाओं में वह राजा शिवि, बुद्ध, महाबीर, फादर डामियन (Father Damien), आसीसी के सेन्ट फ्रान्सीस अथवा विवेकानन्द है।

वह एक आदर्श नागरिक है, उद्योग का एक आदर्श प्रोत्साहनकर्ता है, एक आदर्श ट्रेड यूनियनिष्ट है और आदर्श शिक्षा से परिपक्व है। शिक्षा को उसी सीमा तक सफल माना जायगा, जिस सीमा तक वह एक औसत श्रमिक को इस उद्देश्य को समझाने में, उसके लिये प्रयत्न करने और उसकी अनुभूति कराने में सहायक होती है।

—×—

खण्ड—३

अध्याय १७

# श्रमनीति

## नागरिक

## एवं

## राजनीतिक अधिकार

●

—भारतीय मजदूर संघ

'राष्ट्रीय श्रम आयोग' को भारतीय मजदूर संघ द्वारा प्रस्तुत किये गये 'Labour Policy' नामक अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है।

इस पुस्तक के सभी २० अध्याय अलग अलग पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये गये हैं।

आपात्कालीन स्थिति के अन्तर्गत कारावास की अवधि में इस अध्याय का अनुवाद आई० आई० टी० कानपुर के प्राध्यापक डा० भूषणलाल धूपड़ के सहयोग से किया गया है।

हम उनके प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं।

—राम[illegible]

# नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार

निजी क्षेत्र के मुकाबले में सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों और उनके आश्रित लोगों को अपने हकों को स्वतन्त्र रूप से अपनाने में बहुत सी बाधायें हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों, विशेषकर उनमें जो सरकार द्वारा चलाये जाते हैं, के कर्मचारियों को राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने पर सेवा नियम के अन्तर्गत रोक है, उन पर सार्वजनिक हित के आधार पर रोक लगायी गई है। म्युनिसिपल कारपोरेशन और राज्य नियंत्रित निगम के कर्मचारियों को भी राजनीतिक हक की सुविधा नहीं है। ऐसा भी सुना गया है कि भिन्न-भिन्न सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों को नागरिक चुनाव में भी खड़े होने के लिए नियोजकों से अनुमति लेनी पड़ती है। यही नियम विधान सभा और लोकसभा के चुनाव के लिये प्रत्याशी बनने अथवा चुनाव में प्रचार करने के लिये लागू है।

भारत के सभी नागरिक बराबर हैं और उन्हें समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए, चाहे वे अधिकार राजनीतिक हों अथवा अन्य। इसलिये सार्वजनिक क्षेत्र के श्रमिकों अथवा सरकारी नौकरों या उनके आश्रित लोगों पर किसी भी राजनीतिक हक या अन्य हकों की मनाई अथवा रोक लगाना किन्चित भी तर्क संगत नहीं है और भारत जैसे स्वतन्त्र प्रजातांत्रिक देश में इसे नहीं माना जाना चाहिये। निजी क्षेत्र के कर्मचारियों के मुकाबले में उन्हें किसी भी प्रकार की अयोग्यता का पात्र नहीं समझना चाहिये। इसलिये इन सभी प्रकार की अयोग्यताओं और रोकों को दूर कर देना चाहिये।

फिर भी जहाँ तक राजनीतिक हकों का प्रश्न है, दो वर्गों को उसे नहीं देना चाहिये। एक सेना को, जहाँ पर सैनिक अनुशासन की आवश्यकता है तथा दूसरे प्रथम श्रेणी के सरकारी अधिकारियों को जिन्हें राज्य के प्रशासन के सन्दर्भ में उच्चस्तरीय व्यूह रचना एवं गोपनीय नीति सम्बन्धी निर्णय लेने पड़ते हैं।

# संशोधन के लिये सुझाव

श्रमिक कानून में संशोधन हेतु हम निम्नलिखित अन्य सुझाव प्रस्तुत करते हैं–

(१) न्यायालयों ने यह घोषणा की है कि समझौतों व निर्णयों से उत्पन्न सुविधाओं को समझौतों की अवधि समाप्त होने के पश्चात भी लागू रहना चाहिये तथा इसको नियम के अन्तर्गत मानना चाहिए।

(२) औद्योगिक विवाद अधिनियम में समुचित संशोधन कर ऐसा प्राविधान बनाना चाहिए, जिसके अन्तर्गत श्रमिक को अपनी बरखास्तगी के विवाद को अभिनिर्णय संयंत्र से सीधा सम्बन्धित करने का अधिकार मिले और इन मामलों में अभिनिर्णय संयंत्र को ही निर्णय लेने का पूरा अधिकार रहे। अभिनिर्णायक को निम्नांकित विषयों के लिए पूरे अधिकार रहें (अ) नये तथ्यों को स्वीकार करने। (ब) यदि प्रबन्ध द्वारा कोई पूछ ताँछ की गई है, तो वह न्यायिक थी अथवा नहीं। (स) उतनी मात्रा में दण्डित करना तर्क संगत एवं उचित था अथवा नहीं (द) पुनर्नियुक्ति, इस सुविधा के साथ-जिसमें पूरी तनख्वाह और मुआवजा दिया जाय।

(३) औद्योगिक विवाद अधिनियम में छटनी सम्बन्धी प्राविधानों में संशोधन किया जाय, जो नौकरी सम्बन्धी बरखास्तगी के विवादों से सम्बन्धित हों, किन्तु दंडित होने अथवा अवकाश ग्रहण करने की आयु तक पहुंचने या श्रमिक के लगातार अस्वस्थ्य रहने के कारणों को छोड़कर। नौकरी से हटाये जाने के मामले में जो बड़ी सरलता से और कानूनी ढंग के अधीन से किया गया है, छटनी के संदर्भ में लेना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो अध्याय ५ ए के सम्पूर्ण वाक्यांशों से भी छटनी शब्द को हटाकर उनके स्थान पर नौकरी से बरखास्तगी शब्द लाना चाहिये।

(४) औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्राविधानों में समुचित परिवर्तन करना चाहिये, ताकि छटनी सम्बन्धी शर्तें, जो सेक्शन २५ एफ में लिखी हुयी हैं, बिना पूरा किये हुये, श्रमिक अपने पूरे वेतन और भत्ते सहित नौकरी में बना रहे।

(५) सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के परिणाम-स्वरूप परिस्थिति को बदलने के लिये (इस निर्णय के अनुसार एक छोटी यूनियन भी समझौतों व निर्णयों को समाप्त कर सकती हैं) औद्योगिक विवाद अधिनियम, १९४७ को औद्योगिक विवाद (संशोधित) अधिनियम १९६४ में संशोधित किया गया है और एक्ट की १९ वीं धारा में उपधारा ६ जोड़ी गई है, जिसके अनुसार उपधारा २ अथवा ६ के अन्तर्गत दिये गये नोटिस के कोई प्रभाव नहीं होंगे, जब तक समझौते अथवा निर्णय (जैसे

भी मामले उससे सम्बन्धित हों) से सम्बन्धित बहुमत के प्रतिनिधित्व करने वाले समूह द्वारा वह नोटिस नहीं दी जाती । ऐसा प्रतीत होता है कि इससे बहुत सी पेचदिगीयां पैदा होंगी, विशेषतया जब एक यूनियन समझौते अथवा निर्णय के निरस्त होने के लिये नोटिस देगी और ऐसा अधिकांश मामलों में होगा, क्योंकि सम्बन्धित उद्योग में कुल श्रमिकों का ५० प्रतिशत से अधिक इसके सदस्य नहीं होंगे और यह सम्भव है कि हर एक यूनियन श्रमिकों की ओर से औद्योगिक विवाद को खड़ा करे । इसलिये यह अनिवार्य प्रतीत होता है कि धारा १९ की उपधारा ७ में उचित संशोधन होना चाहिए, ताकि सम्बन्धित संस्थान के कर्मचारियों में उल्लेख की हुई सदस्य संख्या वाली यूनियन के श्रमिक समझौते अथवा निर्णयों को निरस्त करने के योग्य हो सकें । सम्बन्धित सरकारों को इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु श्रमिकों के प्रतिशत को कानून द्वारा निश्चित करना चाहिये, जो लगभग उसी व्यवहार के समान हो, जो सरकार द्वारा विवादों को लेने के लिये निश्चित है और यह यूनियन द्वारा संराधन हेतु एक विशेष न्यूनतम सदस्य संख्या से सम्बन्धित है । इसका भी प्राविधान होना चाहिये कि जहां एक संस्थान में एक से अधिक यूनियन कार्यरत हैं और उनमें यदि कोई मान्यता प्राप्त यूनियन है, तो उसे ही समझौते अथवा निर्णय की बरखास्तगी की घोषणा करने का हक होना चाहिये ।

(६) यह कानूनी अदालतों में रोका गया है । जिसमें यह कहा गया है कि भिन्न-भिन्न कानूनों के अधीन निरीक्षण करने वाले अधिकारियों को अपने दफ्तर में रिकार्डस और डाकूमेन्ट्स मंगाने और प्रस्तुत करने के हक नहीं हैं । यह विचार करना बहुत जरूरी है कि कारखाना कानून व न्यूनतम वेतन कानून आदि जैसे कानूनों के प्राविधानों को ठीक प्रकार से लागू करने के लिए निरीक्षण करने वाले अधिकारियों को अपने दफ्तर में भी रिकार्डस व डाकूमेन्ट्स आदि मंगवाने और प्रस्तुत करने के हक होने चाहिये ।

(७) ऐसा भी ध्यान में आया है कि कई बार श्रमिक दीर्घकालीन समझौते कर लेते हैं, जो नियमबद्ध नहीं होते अथवा आवश्यक वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाने के कारण उनकी उपयोगिता नहीं रह जाती, और विवाद उस समय उठाये जाते हैं, जब श्रमिक यह अनुभव करते हैं कि पुराना समझौता लाभकारी नहीं है, परन्तु वे दीर्घकालीन समझौतों के अन्तर्गत बंधे हुये रहते है । अस्तु औद्योगिक विवाद अधिनियम में उचित संशोधन करना चाहिये, ताकि सरकार को समझौतों की कार्यवाही में कमी करने का अधिकार हो, जैसा कि एवार्डस के मामले में होता है ।

(८) औद्योगिक विवाद अधिनियम की उपधारा ९ ए को निकाल देना चाहिए किसी भी नियोजक को केवल मात्र शर्तों में बदल के लिये नोटिस देकर सेवा नियमों में परिवर्तन करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। सेवा नियमों में बदल केवल मात्र समझौते अथवा एवार्डस के द्वारा किया जाय।

(९) औद्योगिक रोजगार अधिनियम १९४६ (स्थायी आदेश) अब केवल मात्र औद्योगिक संस्थानों पर ही लागू होता है और बहुत से संस्थानों को वह अपने दायरे के बाहर छोड़े हुये हैं। औद्योगिक विवाद अधीनियम के अर्थ के अन्तर्गत सभी उद्योगों को इस नियम के आधीन लाना चाहिए।

(१०) स्थायी आदेशों का अधिनियम केवल उन्हीं संस्थानों पर लागू होता है, जहां १०० अथवा उससे अधिक श्रमिक काम करते हैं। साधारणतः श्रमिक कानून सभी संस्थानों पर लागू होते हैं, जहाँ २० या उससे अधिक श्रमिक कार्यरत हैं। यह आवश्यक और ठीक है कि इस कानून के अन्तर्गत मिलने वाली सुविधा को अधिकाधिक सम्भव संस्थानों के श्रमिकों तक बढ़ाया जाय। इस लिये इस कानून के प्राविधानों को उन सभी संस्थानों पर लागू करना चाहिये। जहाँ २० अथवा उससे अधिक श्रमिक काम करते हैं। अथवा पिछले १२ मास में किसी भी एक दिन इतनी संख्या में वे काम पर लगे हुये थे।

## एवार्डस (निर्णयों) के क्रियान्वित न करने और कानून सम्मत अदायगी न करने की समस्या

श्रमिकों को लोभी व स्वार्थी नियोजकों द्वारा वेतन और कानूनी अदायगी (Dues) के न अदा करने और एवार्डस को न कार्यान्वित करने की समस्या से सम्पूर्ण सामाजिक ढांचा गम्भीर असंतुलन में पहुंच रहा है तथा अन्ततोगत्वा इससे स्थिति विस्फोटक और सर्वनाश की ओर जा रही है। गरीब श्रमिकों को परेशान करने की दृष्टि से एक अथवा दूसरे बहाने बनाकर वेतन और कानून अदायगी में देरी करने व कानूनों को शर्मनाक ढंग से न मानने की वृत्ति को शीघ्र और आवश्यक रूप से रोका जाना चाहिये, अन्यथा श्रमिकों का धैर्य समाप्त हो जावेगा और तीव्र रूप से हिन्सक प्रतिक्रिया करने से लिए बाध्य होकर भिन्न भिन्न माध्यमों/ कानूनी अथवा गैरकानूनी मार्गों को अपनावेगा। प्रशासन पर यह दुखद टिप्पणी है कि स्वतंत्रता के इतने वर्षों के बाद भी असामाजिक नियोजकों द्वारा कानून का इतने व्यापक ढंग से उल्लंघन हो रहा है तथा सरकार उसे टाल रही है और गरीब को अपने ऊपर लागू कानूनों को कार्यान्वित करने और कमाई गई अपनी मजदूरी की प्राप्ति के लिये न्यायालय में जाने के लिये उसे बाध्य होना पड़ता है।

नियोजकों द्वारा देरी करने के दुराग्रह की खराब आदतें वस्तुतः पुरानी हैं, वर्ष १९२६ में भारत सरकार ने स्थानीय सरकारों को यह आदेश दिया था कि वे कर्मचारियों को वेतन की अदायगी में देरी होने के बारे में स्थिति का आकलन करे। उस आकलन में दुरुपयोग की अनेक घटनायें सामने आयी थी। एकत्रित की गई उस जानकारी को वर्ष १९२९ में 'रायल कमेटी आन लेबर' के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। इस आयोग ने इस विषय पर अपनी ओर से और अधिक जानकारी भी एकत्रित किया और उसकी सिफारिशों के परिणाम स्वरूप ही वेतन अदायगी अधिनियम (Payment of wages act) को पारित किया गया।

कानून का सर्वसाधारण उदेश्य यह था कि श्रमिकों द्वारा कमायी गयी धनराशि को नियोजकों द्वारा एक निर्धारित अवधि के पश्चात अर्थात अदायगी में देरी को रोकना था, जो एक अथवा दूसरे परिपेक्ष में ही क्यों न हो। कानून में यह प्राविधान है कि काम करने की अवधि के ७ दिनों में एक काम करने वाले दिन में वेतन दिया जाय अथवा १० दिन के भीतर यदि १ हजार अथवा उससे अधिक लोग काम करते हों तो दिया जाय। इसका भी प्राविधान है कि बरखास्त किये गये व्यक्ति को उसके बरखास्त करने वाले दिन के दूसरे दिन के भीतर ही अदायगी कर दिया जाय।

भिन्न-भिन्न दूसरे कानून भी यही प्राविधान देते है कि श्रमिक को कानूनी बकाये धन की अदायगी अथवा कानूनी ढंग से निर्धारित अधिकारी जैसे प्रावीडेन्ट फण्ड कमिश्नर अथवा राज्य कर्मचारी बीमा निगम आदि को दिये जाने वाले योगदान के लिये निश्चित समय सीमा निर्धारित है। औद्योगिक विवाद अधिनियम यह व्यवस्था करता है कि एवार्डस की घोषणा करने की तिथि से ३० दिन के भीतर एवार्डस को लागू करना चाहिये। इसका अर्थ है एवार्डस से उत्पन्न होने वाली सभी धनराशि को एवार्ड के छपने के एक मास के भीतर अदायगी होनी चाहिये।

जहाँ तक बोनस अदायगी का प्रश्न है, कानून में यह प्राविधान है कि आर्थिक वर्ष के बाद से ८ मास के भीतर अदायगी हो जाना चाहिये। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा २५ के अन्तर्गत न्याय संगत छटनी के पहले छटनी के मुख्य मुआवजे की अदायगी एक शर्त के रूप में है और पूरे किये गये सेवा वर्ष अथवा कोई भी वर्ष जिसमें ६ मास से अधिक सेवा की गयी है, की संख्या को ध्यान में रखकर १५ दिन प्रति वर्ष के हिसाब से वेतन के मुआवजे की अदायगी, छटनी की तिथि से पहले होनी अनिवार्य है।

इन सभी कानूनों के बावजूद वेतन, बोनस, छटनी, मुआवजा, समझौते

अथवा एवार्डस से उत्पन्न होने वाली कानूनी धनराशि के भुगतान का समय निर्धारित है। यह आम तौर से अनुभव में आता है कि भिन्न भिन्न दोषी नियोजकों द्वारा अदायगी नहीं की जाती और एवार्डस समय पर कार्यान्वित नहीं किये जाते। उदाहरणार्थ-राज्यस्थान राज्य के भीलवाड़ा के माइका माइनिंग फील्ड (अवरक खदान क्षेत्र) में श्रमिकों को ६ से ९ मास तक के नियमित वेतन भी नहीं दिये गये। बम्बई में यूनाइटेड इन्जीनियरिंग वर्क्स के प्रबन्धकों ने औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा मान्य एवार्डस को भी क्रियान्वित करने से इनकार कर दिया और सहायक श्रमायुक्त के सम्मुख भी इसी प्रकार की हरकतों को दुहराया जबकि प्रबंधकों को एवार्डस के क्रियान्वित करने के लिए कहा गया। इसलिए एवार्डस को क्रियान्वित करने हेतु श्रमिकों को हड़ताल करने के लिए बाध्य होना पड़ा उस समय भी लेबर आफीसर की प्रार्थना और सुझाव के बावजूद भी प्रबन्धकों ने उनकी कमायी हुयी वेतन को देने से इनकार कर दिया। बम्बई की प्रसिद्ध कर्नाटक प्रिंटिंग प्रेस ने व्यापक रूप से छटनी करने की प्रक्रिया को अपनाया और श्रमिकों को छटनी मुआवजा की अदायगी करने से मना कर दिया, यद्यपि लेबर आफिसर्स ने व्यक्तिगत रूप से प्रेस का निरीक्षण किया और अदायगी के लिये सुझाव दिया, इतना ही नहीं प्रेस ने प्राविडेन्ट फण्ड अधिकारियों को सूचित किया कि सभी निकाले गये श्रमिक वस्तुतः बरखास्त किये हुए हैं, इस प्रकार श्रमिकों को प्रावीडेन्ट फण्ड की पूरी धनराशि की अदायगी करने के लिए प्रावीडेन्ट फण्ड अधिकारियों को उसने रोका। ये वे उदाहरण है-जिसमें नियोजकों द्वारा श्रमिकों को अपनी ओर से दी गयी प्रावीडेन्ट फण्ड धनराशि की भी अदायगी नहीं की गयी है और संरक्षित अदालती कार्यवाही के लिए बाध्य होना पड़ा है। इसके पहले कि उल्लेख की गई धनराशि को वापस लेना सम्भव हो. कानून के इस प्रकार के उल्लंघन और खराब आदतों के बहुत से उदाहरण और भी दिये जा सकते हैं।

# कारण

नियोजक द्वारा कानून का खुले रूप से उल्लंघन करने की बढ़ती हुई इस मनोवृत्ति के क्या कारण है ? ये मुख्यतया निम्नांकित कारणों से हैं—

## (१) अनुपयुक्त अप्रशिक्षित और अधिकार विहीन कार्यान्वित करने वाले संयंत्र

अनुभव में आया है कि यद्यपि वेतन और अन्य अदायगी के समय बद्धता पर कानून प्रस्थापित हैं उनके क्रियान्वयन करने वाले प्रशासकीय संयंत्र उपयुक्त ढंग

से सशक्त नहीं हैं । वे बढ़ी हुई औद्योगिक संस्थानों की बढ़ती हुई श्रमिकों की संख्या के कारण बढ़ी हुई जिम्मेवारियों और कार्यकलापों के निभाने के लिए उपयुक्त नहीं है। बढ़ते हुए औद्योगीकरण के कारण व्यापक क्षेत्रों में अधिक संख्या में औद्योगिक संस्थानों का विस्तार क्रमशः व गतिशः बढ़ रहा है, साथ ही साथ उपयुक्त संख्या में उचित शिक्षित और योग्यता प्राप्त आफिसरों की संख्या में कमी आ रही है, इसके परिणाम स्वरूप और न्यायालयों के अधिक समय लेने की प्रक्रिया के कारण कोई भी निरीक्षक उपयुक्त न्यायालय में विवादों को दाखिल करने की प्राथमिक रूप से सामने नहीं आता है, यद्यपि उन्हें दोषी नियोजकों के विरूद्ध कार्यवाही करने के लिये अधिकार मिले हुए हैं। कार्यान्वयन करने के अनुपयुक्त अधिकार, कानून को तोड़ने की दशा में नियोजकों को रुकावट हेतु दंडित करने की कमजोरी और कानूनी प्राविधानों की अनुपयुक्तताओं के कारण कार्यान्वित करने वाले संयंत्र कई बार कानून को लगातार अमान्य करने और लगातार तोड़ने को रोकने में स्वाभाविक रूप से असमर्थ होते हैं।

## (२) सस्ती, गतिशील और सरल, निदान की कमी

वर्तमान कानूनों के अन्तर्गत श्रमिकों को शीघ्र सहायता मिलने में अनावश्यक देरी होती है।

उदाहरणार्थ—यदि श्रमिकों को उनके वेतन निश्चित तिथि तक नहीं मिलते हैं तो उन्हें वेतन की अदायगी हेतु अधिकारी के सम्मुख अथवा न्यूनतम वेतन वेतन कानून के अन्तर्गत अथवा श्रम न्यायालय में अपने दावों के लिये प्रार्थनापत्र देना पड़ता है। पूंछ ताछ शुरू होती है, निश्चित अवधि के पश्चात बयान दाखिल किये जाते हैं, शरारती नियोजकों द्वारा झूठे और आधारहीन बचाव के लिये प्रयत्न होते हैं, मौखिक या लिखित सबूत प्रस्तुत होते हैं, तर्क दिये जाते हैं और अन्ततोगत्वा लम्बे समय के पश्चात निर्णय घोषित किये जाते है। इस पर भी हल्के से हल्के आधार क्यों न हो श्रमिकों को अदायगी न करने हेतु और श्रमिकों को दी जाने वाली धनराशि से स्वयं लाभ प्राप्त करने के लिए असामाजिक नियोजक उच्च न्यायालयों में अपील अथवा रिट पीटीशन दाखिल करने स्टे आर्डर लेने के लिए प्राथमिकता देते हैं। इन न्यायालयों के कार्यों में पर्याप्त लम्बा समय लगता है। इसके पश्चात कही धनराशि के प्राप्त करने की कार्यवाही प्रारम्भ होती है और ये सभी कार्यवाहियां लम्बी अवधि लेती हैं। अर्थात न्याय में देरी, न्याय का न देना चरितार्थ होता है श्रमिक को न्याय नहीं मिलता है, वे असहाय, निराश और निरुत्साहित हो जाते हैं। उनके मन में कानून के प्रति अनादर का भाव बढ़ता है और परिणाम स्वरूप पूरे समाज और कानूनी पद्धति के विरोध में बगावत करने की उनकी इच्छा होती हैं। क्योंकि समाज और कानूनी पद्धति दोनों ही उनके कानूनी हकों को उपयुक्त संरक्षण देने में असफल रहते है।

किसी एवार्ड में अथवा समझौते में, जो उनके वेतन निर्धारण के सम्बन्ध में हैं, जितना भी औचित्य हो, वेतन ढाँचे की स्थापना का उदेश्य पराजित हो जाता है, क्योंकि वेतन की अदायगी में इन बुरे व्यवहारों को रोका नहीं जाता। ट्रेड यूनियनिस्ट और कार्यन्वयन करने वाले संयंत्र का बहुत सा समय इस प्रकार से बुरे व्यवहार के बारे में शिकायतों की खोज बीन करने तथा पैरवी करने में लग जाता है।

## (३) अभियोग लगाने की वेढंगी पद्धति

वर्तमान समय में भिन्न-भिन्न श्रम कानूनों के आधीन के प्राविधान साधारण रूप से यह प्रदान करते हैं कि कोई भी न्यायालय कानून के आधीन आक्रमण अथवा किसी भी कानून, एवार्ड अथवा समझौते के तोड़ने की कटिबद्धता को मान्यता नहीं देगा, जब तक कि उपर्युक्त सरकारी अधिकारी के अधीन अथवा उसके द्वारा शिकायत नहीं की जाती। कोई भी श्रमिक अथवा यूनियन दोषी नियोजक को किसी भी परिस्थिति के अन्तर्गत सीधे अभियोग नहीं लगा सकती। वेतन अदायगी कानून में यह प्राविधान है कि सीधी शिकायत दाखिल की जा सकती है उस समय जबकि अपराध सम्बन्धी तथ्यों के बारे में धारा १५ के आधीन प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया हो और उसे पूर्णरूपेण अथवा कुछ अंशों में स्वीकृति दी गई हो और इस प्रकार के प्रार्थना पत्र देने की अनुमति के अधिकारी ने शिकायत करने की अनुमति दी हो।

वर्तमान आवश्यकताओं के अन्तर्गत कानूनी कार्यवाही स्थापित करने के लिए भी असाधारण लम्बा समय लगता है। श्रमायुक्त कार्यालय अदायगी हेतु कई बार भेंट करके नियोजकों को समझाने और मनाने की कोशिश करता है और ट्रेड यूनियनिस्ट को वेतन अदायगी न्यायालयों और अन्य मंचों के पास जाने के लिए कहता है तथा यह तर्क देता है कि नियोजकों आदि को केवल मात्र दंडित करने से श्रमिकों को कोई लाभ नहीं होगा। संक्षेप में सरकारी श्रमाधिकारी श्रमिकों को अभियोग लगाने व दंडित करने के दबाव को पूर्णतः निरुत्साहित करते हैं। साथ ही नियोजकों के बिरूद्ध बहुत तगड़े अभियोग क्यों न हों, जिनकी जानकारी भी सरकार को अच्छी तरह रहती है, किन्तु सरकार किसी भी नियोजक को दंडित नहीं करती अथवा बड़ी कठिनाई से दंडित करती है

इसके अतिरिक्त उक्त कार्यवाहियां फौजदारी के न्यायालयों में प्रारम्भ की जाती हैं, जो श्रमिकों की दबाव डालने वाली आवश्यकताओं से भली भांति परि-

चित नहीं होते हैं और साथ ही एवार्ड्स एवं समझौतों के तोड़ने की गम्भीरता और अनिवार्यता आदि से भी परिचित नहीं रहते। इसीलिए फौजदारी न्यायालय बहुत बार कड़े दण्ड देने के स्थान पर नरमी का दृष्टिकोण अपनाते हैं और नाम मात्र के जुर्माने ही करते हैं। परिणाम स्वरूप श्रमिक एवं श्रमाधिकारी पूर्ण रूपेण निराश होते हैं, क्योंकि शिकायतों के लिए ठीक प्रकार से पैरवी करने पर भी उनके कठिन प्रयत्नों को ठीक प्रकार से स्थान व सम्मान नहीं दिया जाता। इस प्रकार नियोजक को कानून तोड़ने से नहीं रोका जा सकता।

## (४) नाम मात्र का जुर्माना व मुआवजा

वेतन अदायगी कानून की धारा १५ (३) में यह प्राविधान है कि अधिकारी नियोजकों को देरी से वेतन देने पर वेतन और ऐसे मुआवजे, जो अधिकारी ठीक समझें और जो दस रुपये से अधिक न हो, देने की नियोजकों को आज्ञा दें। भिन्न-भिन्न धाराओं को तोड़ने के लिये २०० रुपये से ५०० रुपये तक अधिकतम जुर्माना दिया जा सकता है। न्यूनतम वेतन अधिनियम के अन्तर्गत अधिकतम जुर्माना ५०० रुपये ही है, परन्तु इसका भी प्राविधान है कि कोई भी जुर्माना करने के पहले न्यायालय को न्यूनतम वेतन अधिनियम से सम्बन्धित अधिकारी के सम्मुख किसी भी कार्यवाही में दोषी नियोजक के विरुद्ध पहले से दिये गये निर्णय के अन्तर्गत दिये गये मुआवजे की धनराशि को ध्यान में रखना चाहिए। इसी प्रकार औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत १०० रुपये से १००० रुपये तक अधिकतम जुर्माना करने का प्राविधान है, कुछ मामलों में कैद का भी प्राविधान है। परन्तु यह केवल शोभा मात्र के लिए ही है। सर्व प्रथम यह उल्लेखनीय है कि ऊपर लिखा जुर्माना अथवा मुआवजा अधिकतम है, जो साधारण रूप से नहीं लगाया जाता है। दूसरे कि यह कर्मचारियों की संख्या के बावजूद भी है अथवा दोषी नियोजक द्वारा रोके गये श्रमिकों की कानूनी बकाया धनराशि के बाद भी है। तीसरे यह कि इसका कोई प्राविधान नहीं है कि नियोजक द्वारा गैर कानूनी ढंग से रोके रखने और उपभोग करने के फलस्वरूप श्रमिकों के धन पर ब्याज दिये जाँय इसीलिए नियोजक मामलों के अन्तिम निर्णय को देरी करने में रुचि रखता है।

इन सभी प्राविधानों का अन्तिम परिणाम यह है कि नियोजक कभी भी कानून को तोड़ने से नहीं डरते। क्योंकि व्यापारिक व वाणिज्यकीय दृष्टि से जुर्म करने वाले नियोजक को एक लम्बी अवधि तक बिना ब्याज दिये श्रमिकों के धन को उपयोग करने की अनुमति है और एक बहुत थोड़े जुर्माने तथा अथवा मुआवजे के मुकाबले में श्रमिकों के धन को रोकने पर नियोजक को अधिक धन का लाभ प्राप्त हो

जाता है। वर्तमान जुर्माने-नियोजक के लिए हतोत्साहित करने वाले जुर्माने के रूप के अर्थ नहीं रखते।

एक ओर गरीब श्रमिकों को प्राप्त होने वाली कानूनी अदायगी को न करने सरकार के कठोर दृष्टिकोण और दूसरी ओर बिक्री कर, आयकर और दोषी व्यक्तियों पर लिखे दंड के अन्तर्गत धनराशि को इकट्ठा करने की सरकार की चिन्ता और इस प्रकार के दोषों में धन एकत्रित करने की अधिकारियों को दिये गए अधिकार उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण हैं।

(अ) बम्बई सेल्स टैक्स अधिनियम, १९५९ के प्राविधान निम्नलिखित हैं :—

## (१) धारा ३६ (३)

बिना कोई तर्क संगत कारण प्रस्तुत किये यदि कोई व्यापारी निर्धारित समय में टैक्स नहीं अदा करता, जो इस कानून की धाराओं के द्वारा अथवा अन्तर्गत अपेक्षित है वह टैक्स की धनराशि के बावजूद जुर्माना भी अदा करेगा, जिसका योग निम्नांकित के बराबर होगा।

(अ) कर अदायगी की आखिरी तिथि के पश्चात पहले ३ महीनों में हर पूरे महीने के कर की धनराशि का एक प्रतिशत।

(ब) कर अदायगी के दोषी बने रहने की अवधि में पहले ३ मास के बाद हर पूरे मास के लिए कर की धनराशि का डेढ़ प्रतिशत।

## (२) धारा ६७ (२)

जाब्ता फौजदारी के कानून १८९८ में जो कुछ लिखा है, उसको छोड़कर इस कानून के अन्तर्गत अथवा इसके पश्चात बनायी गयी धाराओं के अन्तर्गत दंड हस्तक्षेप करने और जमानत करने योग्य होगा।

## (३) धारा ६८ (१)

उन सभी शर्तों के अन्तर्गत जो घोषित की जाय, धारा २० के अन्तर्गत नियुक्त आयुक्त किसी भी अधिकारी को अधिकृत कर सकता है, जो आम तौर पर किसी विशेष मामले के संदर्भ में अथवा कई मामलों के एक श्रेणी के अन्तर्गत हो, इस कानून के अन्तर्गत अथवा किसी भी दण्डनीय अपराध की खोज हेतु सहायता

के लिये वह कह सकता है।

## (४) धारा ६८ (२)

किसी भी अधिकारी को जो इस प्रकार से अधिकृत हो, खोज करने में उन अधिकारों का उपयोग करे, जो एक हस्तक्षेप करने योग्य अपराध की खोज के लिए पुलिस स्टेशन इन्चार्ज को जाब्ता फौजदारी कानून १८९८ के अन्तर्गत अधिकार दिये जाते हैं —

(ब) आय कर अधिनियम १९६१ में निम्नांकित प्राविधान हैं—

## १- धारा १३९

हर एक व्यक्ति जिसकी पूरी आय अथवा किसी अन्य व्यक्ति की पूरी आय, जिसके अन्तर्गत इस कानून के आधीन पिछले वर्ष के लिये अनुमानित है, जब उसकी आय उस अधिकतम धनराशि जो आयकर के अन्तर्गत नहीं आती से अधिक है। पिछले वर्ष के दौरान अपनी आय अथवा उन दूसरे व्यक्तियों की आय का विवरण एक निश्चित प्रपत्र में प्रस्तुत करेगा और एक निश्चित ढंग से घोषणा करेगा तथा निर्देश के अनुसार अन्य उल्लेखनीय ब्योरा प्रस्तुत करेगा।

(अ) इस कानून के अन्तर्गत प्रत्येक उस व्यक्ति के मामले में उसकी कुल आय अथवा किसी दूसरे व्यक्ति जिसके अन्तर्गत वह अनुमानित है, की कुल आय जिसमें व्यापार अथवा व्यवसाय से कमायी गयी सम्मिलित है, जो पिछले वर्ष के अन्त से ६ मास की अवधि पूरी होने तक अथवा अनुमानित वर्ष के जून के ३०वें दिन से पहले, जो भी बाद की तिथि हो, थी।

(ब) अन्य सभी व्यक्तियों के मामले में अनुमानित वर्ष के ३० जून के पहले, ऊपर लिखी निर्धारित तिथि के अन्तर्गत आयकर के विवरण (Return) के दाखिल करने में देरी अथवा न दाखिल करने पर, सम्बन्धित व्यक्ति को सम्बन्धित अनुमानित वर्ष के १ अक्टूबर से विवरण जमा करने की तिथि तक आय कर दिये जाने की धनराशि पर ६ प्रतिशत ब्याज की दर से अदा करना पड़ेगा।

## २- धारा २७१

(अ) यदि कोई भी व्यक्ति बिना तर्क संगत कारण के अपनी पूरी आय का

स्वेच्छा से धारा १३९ (१) के अन्तर्गत रिटर्न जमा करने में असफल होता है, अथवा धारा १३९ (२) के अन्तर्गत दिये गये आदेश अथवा धारा १४८ के अन्तर्गत दिये गये आदेश अथवा बढ़ायी गयी तिथि और उल्लेख किये गये ढंग के अनुसार रिटर्न प्रस्तुत करने में असफल हुआ है तो सम्बन्धित व्यक्ति को जब तक वह दोषी, है, हर मास के करों का २ प्रतिशत ब्याज के साथ जुर्माना देने को कहा जा सकता है।

## ३- जुर्माना धारा २७६

धारा २७६ यह प्राविधान करती है कि कोई व्यक्ति तर्क संगत कारण देने में असफल होता है अथवा अदायगी करने में बहाना करता है या रिटर्न देने में असफल रहता है तो उसे जुर्माना लगाकर दंडित किया जा सकता है, जो दोषी अवधि में १० रुपये प्रतिदिन के हिसाब से हो सकता है।

## ४- धारा २२०

कब कर दिया जाय और कब करदाता को दोषी ठहराया जाय—

[१] कोई भी धनराशि, जो अग्रिम कर के रूप में नहीं है, धारा १५६ के अन्तर्गत मांग की सूचना में उल्लिखित अदायगी की धनराशि को नोटिस के मिलने के ३५ दिन के भीतर नोटिस में लिखे हुए व्यक्ति और स्थान पर दिया जाना चाहिए।

[२] यदि धारा १५६ के अन्तर्गत अदायगी की किसी भी नोटिस में उल्लिखित धनराशि को उपधारा १ के आधीन उल्लेख किये गये समय के भीतर नहीं दी जाती, तो करदाता उपधारा १ में लिखित अवधि के अन्त के पहले दिन से ४ प्रतिशत प्रतिवर्ष के साधारण ब्याज को देने के लिए बाध्य होगा।

## ५- धारा २२१

जुर्माना—जो कर न अदा करने के फलस्वरूप देना पड़ेगा—

[१] जब कर दाता दोषी होता है अथवा कर की अदायगी में दोषी होने की सम्भावना होती है, तो उसे न दिये गये कर की धनराशि और धारा २२० के अन्तर्गत उपधारा २ के आधीन दिये जाने वाले ब्याज की धनराशि के साथ-साथ उसे जुर्माना के रूप में अदायगी करने का जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, वह धनराशि

दोषी बने रहने पर समय समय पर बढ़ाई जा सकेगी, परन्तु इस प्रकार जुर्माने की पूरी धनराशि शेष कर की धनराशि से अधिक न बढ़े; किन्तु इसका प्राविधान होगा कि किसी प्रकार जुर्माना करने के पहले करदाता को सुने जाने का पर्याप्त अवसर दिया जाना चाहिए ।

६– दूसरी सूची के अन्तर्गत आयकर कानून १९६१ के आधीन कर की वसूली की पद्धति दी गयी है ।

टैक्स रिकवरी अधिकारी द्वारा दोषी व्यक्ति को एक नोटिस देनी पड़ती है, जिसके अनुसार नोटिस की प्राप्ति के १५ दिन के भीतर धनराशि की अदायगी करनी होगी, यदि धनराशि की १५ दिन में अदायगी नहीं होती तो टैक्स रिकवरी अधिकारी को यह अधिकार होगा कि धनराशि को निम्नलिखित तरीकों में से किसी एक के अनुसार कार्यवाही करके उसे प्राप्त करे ।

[अ] अभियुक्त की चल सम्पत्ति को बंधक रखे और बिक्री करे ।

[ब] अभियुक्त की अचल सम्पत्ति को बन्धक रखकर और बिक्री से ।

[स] अभियुक्त को पकड़ने और जेल में बन्दी बनाकर ।

[द] अभियुक्त की अचल व चल सम्पत्ति के प्रबन्ध हेतु रिसीवर (नियंत्रक) की नियुक्ति द्वारा ।

इसके साथ ही ब्याज, जुर्माना (फाइन) पेनाल्टी, कास्ट और कानून के अन्तर्गत अदा किये जाने वाली कोई भी अन्य धनराशि, जो कर की धनराशि के अतिरिक्त है, को भी दोषी से प्राप्त करना ।

संक्षेप में ब्याज की वसूली और भारी जुर्माना लगाने, कर की धनराशि जो नहीं अदा की गयी है, की अदायगी हेतु वे कार्यवाही कर सकते हैं । साथ ही ब्याज, जुर्माना आदि की वसूली के लिए अभियुक्त की सम्पत्ति को बन्धक रखने व बिक्री करने का और अभियुक्त को पकड़ने और जेल में बन्दी बनाने का अधिकार उन अधिकारियों को दिये गये हैं । इन सभी प्राविधानों का सामूहिक हितकर प्रभाव यह होता है कि कर दाता को कर की अदायगी में बहुत ही शीघ्रता व नियमितता बरतने के लिए बाध्य होना पड़ता हैं और वह स्वेच्छा से निर्धारित समय के भीतर कर अदायगी को प्राथमिकता देता है, बजाय इसके कि वह कर वसूलने के कानूनों की कठोरता को झेले ।

# निदान

इसलिए प्रचलित वातावरण में भलीभांति विचार करने के पश्चात नियोजकों के बुरे व्यवहारों को रोकने की आवश्यकता की अनुभूति करके और कर की अदायगी की शीघ्रतम वसूली करने के प्राविधानों से निर्देशित होकर हम यह प्रस्तुत करते हैं कि अवार्डस को न क्रियान्वित करने और वेतनों की न अदायगी करने तथा श्रमिकों को उनके कानूनी बकाया धनराशि को न देने की वर्तमान गम्भीर समस्या को हल करने के लिए निम्नलिखित प्राविधान बनाना चाहिए—

१. 'वेतन' शब्द की परिभाषा को और विस्तृत व व्यापक बनाना होगा, जिसमें कि सभी प्रकार के अमौद्रिक लाभ व सुविधायें अथवा अन्य पूर्व निश्चित सुविधाओं की राशि को नकद मूल्य के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए, (इस विषय पर श्रम कानून की व्याख्या में हमारे विचार उल्लेख किये गये हैं)

२. रिकवरी अधिकारियों की नियुक्ति इसलिये होनी चाहिए कि वे नियोजक से कर्मचारी के प्रार्थना पत्र पर ऊपर लिखे वेतन को प्राप्त करायें।

३. प्रार्थना प्रपत्र बहुत ही सरल होना चाहिए और उसमें वेतन के विवरण के साथ बकाया धनराशि की तिथि, नियोजक का नाम व पता तथा अन्य आवश्यक जानकारी जो वेतन की वसूली के लिए आवश्यक है, को ही प्राप्त करे।

४. नियोजक द्वारा जो धनराशि रोकी गयी है, रोकने वाली तिथि से अदायगी वाली तिथि तक के काल के लिये बाजारी ब्याज के दर पर जो सवा प्रतिशत प्रतिमास है, के हिसाब से चक्रवृद्धि ब्याज दिया जाय।

५. जब नियोजक वेतन की अदायगी न करने का दोषी बने, उक्त क्र० ४ के आधीन दिए जाने वाले ब्याज और वेतन की धनराशि के साथ-साथ वह न अदायगी किये गये वेतन पर २ प्रतिशत प्रतिमास की दर पर जुर्माना देने का भागी हो, जो उस अवधि तक के लिए होगी जब तक वह अदायगी नहीं करेगा।

६. जुर्माने को नहीं थोपा जाना चाहिए, यदि रिकवरी अधिकारी अथवा वेतन अदायगी न्यायालय को यह समाधान हो कि आपात् स्थिति के कारण अथवा विशेष परिस्थितियों के होने पर वेतन अदायगी में देरी हुई है। जिसके अन्तर्गत नियोजक शीघ्र अदायगी करने में असमर्थ थे, यद्यपि पर्याप्त प्रयास किया गया था अथवा यदि वेतन अदायमी न्यायालय को यह समाधान हो कि देरी

कानून सम्मत विवादों के कारण हुई थी, जिसमें कि कर्मचारियों को अदा किए जाने वाली पूरी धनराशि भी सम्मिलित थी।

७. जुर्माने की धनराशि में से आधा प्रार्थी कर्मचारी को मुआवजे के रूप में दिया जाना चाहिए।

८- प्रार्थना पत्र की प्राप्ति पर रिकवरी अधिकारी निम्नलिखित नियमों के लिये कार्यवाही जारी करेगा—

(अ) मांगों की सूचना—जिसके अन्तर्गत प्रार्थी कर्मचारी द्वारा दावा की गयी बकाया वेतन की सम्पूर्ण धनराशि अथवा न अदायगी किये गए वेतन की निर्विवाद धनराशि के साथ नोटिस की प्राप्ति के १५ दिन के पश्चात सवा प्रतिशत प्रति मास चक्रवृद्धि व्याज के सहित नियोजक को जमा करने के लिए आज्ञा देगा।

(ब) नियोजक को कारण बताओ नोटिस देगा, जिसके अन्तर्गत नोटिस प्राप्त होने के १५ दिन के भीतर कारण बतलाने के लिए कहेगा कि प्रार्थी श्रमिक द्वारा दावा की गयी धनराशि और व्याज के साथ साथ उस पर जुर्माना क्यों न किया जाय।

९- यदि १५ दिन के भीतर उल्लेख की गयी धनराशि नहीं दी जाती तो रिकवरी अधिकारी दावा की गयी धनराशि अथवा निर्विवाद धनराशि जो भी न्यूनतम हो, के साथ व्याज, जुर्माना, मुआवजा और कास्ट (खर्चा) की वसूली हेतु निम्नांकित एक अथवा अधिक तरीकों के अनुसार कार्यवाही करे।

(अ) दोषी नियोजक की चल अथवा अचल सम्पत्ति को बन्धक रखकर अथवा बिक्री करके।

(ब) दोषी नियोजक को पकड़ने और जेल में बन्द करके।

(स) दोषी नियोजक की सम्पत्ति के प्रबन्ध हेतु एक नियंत्रक [रिसीवर] की नियुक्ति करके।

१०- विवादास्पद धनराशि के दावे के निर्णय करने के हेतु रिसीवर अधिकारी वेतन अदायगी न्यायालय को शीघ्र सौंप देगा।

११- वेतन अदायगी न्यायालय विवाद की प्राप्ति पर तुरन्त और तेजी से निर्णय हेतु कार्यवाही करेगा ओर ऊपर लिखे व्याज और जुर्माने के साथ साथ नियोजक को यह आदेश देगा कि वह प्रार्थी को उपयुक्त मुआवजे की धनराशि और विवाद सम्बन्धी खर्चेको दे।

१२- वेतन अदायगी से सम्बधित कानून के लगातार तोड़ने की प्रक्रिया को जैसाकि श्रम कानून में व्यापक रूप से व्यवस्था की गयी है, उचित संशोधन के साथ हस्तक्षेप करने योग्य अपराध मानना चाहिए। और इन सभी मामलों में अदायगी न करने के सभी जिम्मेदार व्यक्तियों को कानून के अन्तर्गत जेल की सजा दी जानी चाहिए।

१३- रिकवरी अधिकारी अथवा वेतन अदायगी न्यायालय या औद्योगिक न्यायाधिकरण अथवा तकनीकी न्यायाधिकरण की आज्ञाओं के विरुद्ध कोई भी अपील अथवा रिट पीटीशन दाखिल नहीं की जानी चाहिये, ज्यों और जब तक नियोजक पूरी धनराशि जमा नहीं करता। और इस जमा की गयी धनराशि की मूल भूत रसीद पीटीशन के साथ अथवा अपील के दरखास्त के साथ जब तक जमा नहीं की जाती तब तक रिट अथवा पीटीशन दाखिल नहीं की जा सकती।

१४- एवार्ड्स जिसके अन्तर्गत नियोजक की वेतन की बढ़ोत्तरी के लिये निर्देश दिया जाता है, के विरुद्ध अपील अथवा रिट पीटीशन के दाखिल होने पर नियोजक को हर मास वह धनराशि जमा करने के लिए कहा जायगा, जो एवार्ड्स के अन्तर्गत श्रमिक को बढ़े हुये वेतन के अन्तर्गत मिलता है और यह अपील अथवा पीटीशन के अन्तिम रूप से निर्णय होने तक की जानी चाहिए।

१५- वेतन प्राप्ति के उद्देश्य से की गयी कोई भी हड़ताल कानूनी और न्यायसंगत होगी और दोषी नियोजक उस हड़ताल की पूरी अवधि के पूरे वेतन की अदायगी करेगा।

## १६—वसूली के लिए विशेष माध्यम-

आयकर कानून के अनुसार वसूली के लिए निम्नलिखित तरीकों का प्राविधान है—

वसूली के अन्य तरीके—१-धारा २२२ के अन्तर्गत कर वसूली अधिकारी (टैक्स रिकवरी आफिसर) को प्रमाण पत्र के मिलने के बाद भी आयकर अधिकारी कर की वसूली के लिये इस धारा में लिखे एक अथवा एक से अधिक तरीकों से वसूली कर सकता है।

३-१–किसी भी समय पर अथवा समय समय पर किसी भी व्यक्ति को जिस पर धन की अदायगी शेष है अथवा कर दाता के नाम पर धनराशि बकाया है अथवा किसी व्यक्ति जो कि करदाता की ओर से अथवा उसके कारण धन को रोके उस अवस्था में आयकर अधिकारी लिखित रूप से सूचना देकर धनराशि की अदायगी के लिये कह सकता है। आयकर अधिकारी के पास या तो धन के बकाया होने के तुरन्त बाद अथवा सूचना में निर्धारित समय के भीतर अथवा समय पूरा होने पर (धनराशि के बकाया होने के पहले नहीं होनी चाहिये) उतनी मात्रा में धनराशि जमा होनी चाहिए, जो करदाता के द्वारा बकाया धनराशि की अदायगी के लिये पर्याप्त हो अथवा पूरी धनराशि जो लिखित धनराशि के बराबर हो अथवा कम हो।

४–वह आयकर अधिकारी न्यायालय में प्रार्थना करेगा, जिसके अधिकार में करदाता का धन रखा हुआ है, कि उस धन में से अदायगी की पूरी धनराशि उसे दे दी जाय अथवा यदि यह बकाया कर से अधिक है, तो उसकी धनराशि जो कर की अदायगी के लिये पर्याप्त है, दे दी जाय।

५–आयकर अधिकारी, यदि वह आयुक्त से अधिकृत हो, तो कर की वसूली के लिए करदाता की चल सम्पत्ति की कुर्की व बिक्री से प्राप्त करने के लिये कार्यवाही जैसा कि सूची क्र० ३ में निर्धारित किया गया है।

बम्बई बिक्री कर कानून–निम्नांकित विशेष पद्धतियों का प्राविधान करती है।

## धारा ३९ : वसूली के विशेष ढंग

किसी भी कानून अथवा ठेके में कोई भी वस्तु लिखित होने के बावजूद अथवा इसके विपरीत, आयुक्त किसी भी समय अथवा समय समय पर लिखित सूचना देगा जिसकी एक प्रति आयुक्त की जानकारी वाले व्यापारी के आखिरी पते पर भेजी जायगी, इसके लिए यह आवश्यक होगा—

(अ) कोई भी व्यक्ति जिसके नाम पर धनराशि बकाया है, धारा ३८ के आधीन उपधारा ४ के अन्तर्गत किसी भी व्यापारी जिस पर धनराशि बकाया हो जाय, उसे सूचना दी गयी हो अथवा,

(ब) कोई भी व्यक्ति जो इस व्यापारी के लिए अथवा उसकी ओर से धन रखता है अथवा बाद में धन रखेगा।

आयुक्त को अदा करेगा, या तो धन का बकाया होगा अथवा होने पर या नोटिस में निर्धारित समय के होने पर या निर्धारित समयके भीतर (परन्तु धन के

बकाया होने के पहले नहीं अथवा जैसा कि ऊपर कहा गया है, बकाया हो गया है) व्यापारी द्वारा इस कानून के अन्तर्गत कर व जुर्माने की शेष धनराशि और वह धनराशि जो जब्त कर ली गयी है, की अदायगी के लिए पर्याप्त है अथवा पूरी धनराशि जो अदायगी के लिये के लिए शेष है के बराबर है अथवा कम है।"

इसी प्रकार के प्राविधान श्रम कानून में भी बनाने चाहिए, जिसके अन्तर्गत रिकवरी अधिकारी को यह अधिकार दिया जाय कि वह दोषी नियोजक की देनदारी से वेतन की धनराशि को वसूल करे अथवा उस न्यायालय से जिसकी जमानत में इस दोषी नियोजक का धन रखा गया है अथवा इसकी चल सम्पत्ति की कुर्की और बिक्री द्वारा वेतन की धनराशि वसूल करे।

## श्रम कानूनों की नियमबद्धता

जिस प्रकार एक फौजदारी कानून है, जिसे इन्डियन पेनल कोड कहते हैं, और जो पूरे देश के लिए है, समानता, स्पष्टता और सरलता को ध्यान में रखकर पूरे देश के लिये एक समान श्रम कानून होना चाहिये, तथा इस उद्देश्य पूर्ति हेतु सभी श्रमिक समस्याओं को सुलझाने के लिए एक समान श्रम न्यायालय भी होना चाहिए, जो न्याय को शीघ्र प्रदान करने में सहायक हो। नियोजक व श्रमिक साथ ही लागू करने वाले संयत्र के लिये भी यह सुविधाजनक रहेगा। यह भी आवश्यक और सुखप्रद होगा कि वर्तमान कानून के दोहरेपन और टेढे मेढे स्वभाव को हटाया जाय और प्रमुख शब्दों जैसे–'नियोजक, 'कर्मचारी', 'उद्योग', 'वेतन' आदि की समान परिभाषा करने के लिये उसे उसे विकसित किया जाय। इस प्रकार से असमानताओं को दूर किया जा सकता है और अनावश्यक द्विविधा को हटाया जा सकता है, साथ ही इस हेतु भिन्न-भिन्न नाम (Term) और भिन्न-भिन्न सेवार्थ शर्तों के लिये न्यूनतम प्राविधान होना चाहिए। साथ ही संविधान में संशोधन होना चाहिए और श्रम विषय को केन्द्र सरकार सम्बन्धी सूची (Union list) में सम्मिलित करना चाहिए और समवर्ती अधिकार सूची (Concurrent list) से इसको निकाल लेना चाहिए।

श्रम कानूनों की नियमबद्धता निम्नलिखित विषयों पर भिन्न-भिन्न अध्यायों में की जा सकती है—

(१) परिभाषायें (२) ट्रेड यूनियन और उसकी मान्यता (३) वेतन अदायगी का कानून (४) भिन्न भिन्न दावे और सुविधा, जैसे–छटनी, बैठकी,

ग्रैच्युटी, अतिरिक्त काम (ओव्हर टाइम) आदि के मुआवजे (५) कार्य की दशा (६) सेवा की शर्तें (७) प्रशिक्षार्थी हेतु कानून, [८] गणनाक्रम आकड़े सम्बन्धी कानून, [९] औद्योगिक विवाद हेतु कानून (हड़ताल सहित) [१०] कानून एवं पद्धति हेतु अधिकार और अधिकारियों के अधिकार और कर्त्तव्य, [११] एकीकृत सामाजिक सुरक्षा योजना [१२] जुर्माना और अपराध और [१३] विविध।

## परिभाषायें

भिन्न-भिन्न कानूनों में समान महत्वपूर्ण शब्दों जैसे–'उद्योग' 'औद्योगिक विवाद', 'कार्यकर', 'नियोजक' और 'वेतन' की भिन्न भिन्न परिभाषाओं ने द्विविधा को पैदा किया गया है, इसलिये यह आवश्यक एवं परामर्श के योग्य है कि ऊपर लिखे शब्दों के समान और समान रूप में परिभाषायें हों, जहाँ कहीं किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति हेतु इन परिभाषाओं को बदलना आवश्यक है, उपयुक्त स्थान पर उचित परिवर्तन करके उन परिभाषाओं को सम्मिलत करना चाहिए।

श्रम कानून में ऊपर के शब्दों को समान रूप से सम्मिलत करने के उद्देश्य से हम निम्नलिखित समान परिभाषायें प्रस्तुत करते हैं :—

### (अ) उद्योग :

'उद्योग' शब्द को बहुत ही व्यापक और परिपूर्ण रूप से परिभाषित करना चाहिए ताकि प्रत्येक रोजगार के हर प्रकार के कर्मचारियों तक श्रम कानून की सुविधाओं को बढ़ाया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु हम सुझाव प्रस्तुत करते हैं कि उद्योग शब्द को इस प्रकार से परिभाषित किया जाय; अर्थात् कोई भी गति-विधि जहाँ पर नियोजक-कर्मचारी सम्बन्ध उपस्थित होता है।'

### (ब) नियोजक :

'नियोजक' शब्द की औद्योगिक विवाद अधिनियम अथवा बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम में ठीक ढंग से व्याख्या नहीं की गयी है। वेतन अदायगी कानून में कहीं भी नियोजक शब्द की परिभाषा नही मिलती, फिर भी श्रम कानून के उद्देश्य की पूर्ति हेतु समान परिभाषा होना अनिवार्य है। इसीलिए हम सुझाव देते हैं कि नियोजक शब्द को इस प्रकार से परिभाषित किया जाना चाहिए—'कोई भी व्यक्ति जो सीधे रूप से अथवा किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा या अपनी ओर से या

किसी दूसरे व्यक्ति के माध्यम से किसी उद्योग में एक अथवा एक से अधिक कर्मचारी को काम देता है। उसकी परिभाषा निम्नलिखित है—

१- नियोजक का कोई भी अभिकर्ता

२- नियोजकों की कोई भी संस्था अथवा समूह

३- मृतक नियोजक का कानूनी प्रतिनिधि

४- किसी भी उद्योग का मालिक जो काम को चलाने के उद्देश्य से अथवा काम को चलाने की अवधि में किसी भी काम का सम्पूर्ण अथवा उसमें से कोई भी भाग एक ठेकेदार के आधीन अथवा एक ठेकेदार द्वारा काम पूरा करने हेतु किसी भी व्यक्ति को ठेका देता है, उस उपरोक्त काम उस उद्योग का सर्वसाधारण अंग माना जाना चाहिए और ऐसे उद्योग का स्वामी।

५- "नियोजक" शब्द का अर्थ है कोई भी व्यक्ति अथवा कई व्यक्ति जो कानूनी ढंग से सम्मिलित किये गये हैं अथवा नहीं और नियोजक का कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता और मृत नियोजक का कानूनी प्रतिनिधि [जब एक श्रमिक सेवार्थ किसी व्यक्ति के द्वारा जिसके साथ श्रमिक सेवार्थ अथवा प्रशिक्षण के लिये ठेका किया है व किसी दूसरे व्यक्ति को अल्पकालीन समय के लिये किराये पर देता है अथवा किराये पर देने के लिए देता है] और इस प्रकार के अन्य व्यक्ति जिसके लिये श्रमिक काम कर रहा है।

६—उद्योग के सम्बन्ध में, जिसका स्वरूप कारखाना हो गया है—कारखाने का मालिक अथवा उसको अधिगृहीत करने वाला, इस प्रकार का मालिक अथवा अधिगृहीत करने वाले का अभिकर्त्ता, मृत मालिक और अधिगृहीत करने वाले का कानूनी प्रतिनिधि और जहाँ कारखाना कानून १९४८ (१९४८ का ६३) के अन्तर्गत धारा ७ की उपधारा १ क्लाज एक के अधीन वह व्यक्ति, जिसे प्रबन्धक घोषित किया गया है, वह व्यक्ति जो इस प्रकार से नाम जद है; और

७—किसी दूसरे उद्योग के सम्बन्ध में वह व्यक्ति अथवा अधिकारी जिसका संस्थान के मामले में अन्तिम नियंत्रण है और जहाँ उल्लेख किये गये विषयों के लिए एक प्रबन्धक, एक प्रबन्ध निदेशक अथवा प्रबन्ध अभिकर्ता को न्यास [ट्रस्टी] बनाया गया है।"

## स--कर्मचारी

'कार्यकर', 'कर्मचारी', 'नियोजित' शब्दों की परिभाषा भिन्न-भिन्न श्रम

कानूनों, कारखाना कानून, बोनस अदायगी कानून, इन्डियन ट्रेड यूनियन्स कानून, औद्योगिक विवाद अधिनियम आदि में भिन्न-भिन्न है और जबकि सबसे व्यापक परिभाषा कारखाना कानून, इन्डियन ट्रेड यूनियन एक्ट में दे रखी है तथा वेतन की परिधि सीमा वेतन अदायगी कानून और मुआवजा कानून में निर्धारित है, चूँकि हम श्रम कानूनों की सुविधायें सभी कर्मचारियों तक पहुँचाना चाहते हैं, हम कर्मचारी शब्द का सबसे व्यापक भाव में परिभाषा करना चाहते हैं। फिर भी हम इस विचार के हैं कि प्रबन्धक अथवा अधिकर्ता या इस प्रकार के अन्य कर्मचारी अथवा कर्मचारियों, जिन्हें नियोजक की ओर से काम करने की नियुक्ति की जाती है और जो व्यक्तियों की नियुक्ति सम्बन्धी विषयों के मामले, प्रशासन, नियन्त्रण और निर्देशन के संदर्भ में नियोजक के सभी अधिकार का प्रयोग करते हैं तो उन्हें कर्मचारी की श्रेणी से निकाल दिया जाना चाहिये।

इसलिए हम सुझाव देते हैं कि 'कर्मचारी' शब्द को इस प्रकार से परिभाषित किया जाय—कोई भी व्यक्ति जो वेतन हेतु किसी भी उद्योग में नियोजित हैं, परन्तु उन सभी व्यक्तियों को जिनके हाथों में प्रमुखतया प्रबन्धकीय अधिकार हैं, को सम्मिलित न किया जाय, और मृत कर्मचारी के कानूनी प्रतिनिधि (वारिश) को सम्मिलित किया जाय।

वे सभी व्यक्ति जिन्हें प्रबन्धकीय अधिकार और जिम्मेदारी दी गयी है, सुपरवाइजरी और टेक्निकल स्टाफ आदि सभी को जिनका प्रमुखतया काम प्रबन्धकीय है, को सम्मिलित कर, अपने काम की प्रवृत्ति के अनुसार, उस प्रकार की जिम्मेदारी और अधिकार तथा विशेष व्यूह रचना करने वाले लोगों के रूप में, जो एक उद्योग में व्यवस्था हेतु स्थिति प्राप्त किये हुए हैं—ये सभी लोग नियोजक और कर्मचारियों से भिन्न एक विशेष वर्ग के हैं। इसलिए इनके हकों और हितों की सुरक्षा हेतु एक विशेष कानून की आवश्यकता अनिवार्य है। वे सभी सुपरवाइजरी और टेक्निकल स्टाफ जो प्रबन्धकीय काम करता है और ७५० रुपये प्रतिमास आधार भूत वेतन पाता है, को इस प्रकार के श्रम कानून के आधीन लाया जाना चाहिए इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु 'कर्मचारी' शब्द की परिभाषा में उचित परिवर्तन किया जाना चाहिए।

किसी भी ऐसे विवाद, जो अवकाश ग्रहण के पश्चात की सुविधाओं के सम्बन्ध में है, के लिये पेन्शनर को कर्मचारी के रूप में ही देखा जाना चाहिए।

## द--वेतन

'वेतन' शब्द की पुन: व्याख्या करनी चाहिए और सभी धनराशि जो कर्मचारियों को निम्नांकित कारणों के लिए दी जाती है, को इस सन्दर्भ में लाकर व्यापक रूप देना चाहिए।

### १. विशेष भुगतान (Preferential Payment)

प्रेसीडेन्सी टाइन इनसालवेन्सी एक्ट १९०९ की धारा ४९ के अनुसार सरकारी अथवा स्थानीय संस्थाओं के अन्तर्गत बकाये धनराशि और किराये को छोड़कर, सभी प्रकार के ऋण के मुकाबले में वेतन को प्राथमिकता दी गई है। इसी प्रकार कम्पनीज एक्ट १९५६ की धारा ५३० के अधीन सरकारी अथवा स्थानीय संस्थाओं को दिये जाने वाली शेष धनराशि जो एक कारखाने की समाप्ति की स्थिति में होती है, को छोड़कर शेष सभी ऋणों के मुकाबले में एक कर्मचारी के वेतन को प्राथमिकता प्रदान की गयी है। 'वेतन' शब्द की वर्तमान संकुचित परिभाषा को ध्यान में रखकर सरकार ने उल्लिखित धारा में संशोधन करके उसमें छटनी मुआवजा और बैठकी मुआवजा सम्मिलित किया है। समय-समय पर 'वेतन' के एक अथवा दूसरे अंग को प्राथमिकता देने के लिये इन कानूनों के संशोधन के स्थान पर वेतन की परिभाषा को व्यापक बनाना चाहिए। ताकि विशेष भुगतान की सुविधा को कर्मचारी के लिये किये जाने वाले सभी प्रकार की अदायगी तक बढ़ाना चाहिए।

### २. शीघ्र और प्रभावी निदान की सुविधा :—

इसके पहले लिखे पैरा में वेतन की रिकवरी के लिये हमने विस्तृत पद्धति, गतिशील, कुशल और प्रभावी निदान प्रस्तुत किये हैं। भिन्न-भिन्न दावों से उठने वाली सब प्रकार की अदायगी के लियें भी व्याख्या की गई सुविधा को व्यापक करने के उद्देश्य के लिये परिभाषा को परिपूर्ण बनाना चाहिए।

### ३. सम्पत्ति का बिक्री करने से रोकना :

कोड आफ सिविल प्रोसिजर १९०८ की धारा ६० के अन्तर्गत डिग्री के कार्यान्वित करने के उद्देश्य से सम्पत्ति के बन्धक रखने और बिक्री करने से सम्बन्धित है, में यह प्राविधान है :

धारा ६० (पी) जहाँ कहीं किसी मद्यून को कोई रुपया बतौर मालगुजारी की अदायगी करनी है तो उस मालगुजारी की शेष अदायगी की रिकवरी के लिये उसकी कोई भी चल सम्पत्ति बेची नहीं जा सकती जो किसी कानून के अन्तर्गत मालगुजारी की अदायगी से बरी है।

हम सुझाव देते है कि वेतन की रिकवरी के लिए भी इसी प्रकार के प्राविधान होने चाहिये और सम्पूर्ण वेतन जो नियोजक (मद्यून) द्वारा कर्मचारियों को सभी प्रकारकी अदायगी को जोड़कर बनता है, किन्तु जो चल सम्पत्ति इस वेतन की वसूली से बरी होगी उसको व्यापक और विस्तार रूप से परिभाषित करना होगा।

इसलिये हम निम्नलिखित परिभाषा प्रस्तुत करते है :—

'वेतन' का अर्थ कोई भी धन जो श्रमिक को एक उद्योग में अपनी रोजी के एवज में दिया जाता है, और जिसमें ये सम्मिलित हैं।

[अ] आरक्षित वेतन (Bare wages)'—वह वेतन है, जो वर्तमान काल में आधार भूत वेतन के नाम से प्रसिद्ध है।

[ब] 'मँहगाई वेतन'—वह वेतन है, जो कीमतों के परिवर्तन पर निर्भर करता है।

[स] 'प्रोत्साहन वेतन'-वह वेतन है जो उत्पादकता परिवर्तन पर निर्भर करता है।

[द] 'वृत्ति' (Stipend)—जो प्रशिक्षार्थी को दिया जाता है।

[इ] कोई भी धनराशि जो रोजगार (स्पष्टतया अथवा अर्थ से) एवार्ड, समझौता, कानन, न्यायालय के निर्णय अथवा किसी अन्य कानून के अन्तर्गत बनायी गयी योजना की शर्तों के अन्तर्गत अदा की जाती है।

[फ] किसी भी सुविधा अथवा पूर्वआकांक्षित का नकद मूल्य—जिस प्रकार आयकर कानून के अन्तर्गत परिभाषित है, जिसका रोजगार (स्पष्टतया अथवा अर्थ से), एवार्ड, समझौता, कानून, न्यायालय के आदेश अथवा किसी भी कानून के अन्तर्गत बनाई गई किसी भी योजना के शर्तों के अन्तर्गत पाने का अधिकार है।

**टिप्पणी :-** पूर्व आकांक्षित में निम्नलिखित सुविधायें सम्मिलित हैं—बिना किराये की आवास व्यवस्था, बिजली, पानी व स्वास्थ्य चिकित्सा सुविधा अथवा अन्य सुविधायें अथवा सेवा या किसी भी प्रकार की रियायत और अन्य धनराशि जो नियोजक द्वारा किसी अनुग्रह के एवज में दिये जाते हैं, साथ ही इस प्रकार की कर्मचारी को अदायगी न करने पर जो नियोजक को भुगतान करना पड़ता है, उसका मूल्य।

(ग) कोई भी भत्ता, पारितोषिक अथवा अन्य प्रतिफल ।

[ह] कोई भी धनराशि जो कर्मचारी की ओर से दी गयी हो अथवा दी जाने वाली हो अथवा उसकी नौकरी की प्रकृति के आधार पर उस पर किये गये विशेष खर्चे के भुगतान के लिये हो ।

[ई] कोई भी बोनस जिसमें त्योहार, परम्परागत रीति रिवाज और उपस्थिति बोनस सम्मिलित है; और ग्रेच्युटी ।

[ज] कोई भी योगदान जो नियोजक द्वारा किसी भी पेन्शन फण्ड अथवा प्राविडेन्ट फण्ड अथवा इम्पलाइज इन्सोरेन्स फण्ड या बेरोजगार फण्ड अथवा कोई अन्य फण्ड जो कर्मचारी की सुविधा के लिए किया गया हो और इस प्रकार के फन्डों में से किसी भी कर्मचारी की बकाया धनराशि दी गयी हो अथवा दिया जाने वाला हो ।

[क] कोई भी वर्तन (Commission) जो कर्मचारी को दिया जाने वाला हो ।

रिकवरी की उद्देश्य पूर्ति के लिए पूरी धनराशि जो कर्मचारी द्वारा नियोजक को जमा करने अथवा किसी दूसरे काम के लिए दी गयी हो परन्तु जो कर्मचारी को वापस दी जाने वाली हो, को वेतन के रूप में मानना चाहिए ।

बोनस, ग्रेच्युटी, प्राविडेन्ट फण्ड जैसे योगदान आदि के हिसाब लगाने के लिए ऊपर लिखे वेतन के भिन्न-भिन्न भागों में से कुछ भागों को इकट्ठा होने पर उसे "आंशिक वेतन" के नाम से कहा जाना चाहिए । इस प्रकार के आंशिक वेतन का स्वरूप उसी मात्रा में लचीला होना चाहिए जिस प्रकार कि उन भागों में विशेष उद्देश्य की पूर्ति हेतु विशेष आवश्यकताओं के लिए बदलता हो ।

## इ. औद्योगिक विवाद :

औद्योगिक विवाद का विचार श्रमिकों के रोजगार व बेरोजगार होने के सदर्भ के मतभेदों तक ही सीमित नहीं होना चाहिए । ट्रेड यूनियन्स को यह हक प्रदान होना चाहिए कि वे सम्पूर्ण उद्योग के हित को प्रभावित करने वाले किसी भी औद्योगिक विषय के सन्दर्भ में औद्योगिक विवाद को उठा सकें । इस सन्दर्भ में बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम १९४६ की परिभाषा को विस्तृत रूप देने पर आधार बन सकता है ।

इसलिये हम 'औद्योगिक विवाद' और 'औद्योगिक विषयों' के लिये निम्नलिखित परिभाषायें प्रस्तुत करते हैं।

'औद्योगिक विवाद' का अर्थ है कोई भी विवाद अथवा नियोजक और एक कर्मचारी में मतभेद अथवा नियोजकों और कर्मचारियों के बीच में मतभेद या कर्मचारियों और कर्मचारियों में मतभेद जो किसी भी औद्योगिक विषय से सम्बन्धित है।

'औद्योगिक विषय' का अर्थ है रोजगार, कार्य, वेतन, कार्य के घंटे, सुविधायें, नियोजक अथवा कर्मचारी के अधिकार व कर्त्तव्य या श्रम और पूंजी के लगाने की पद्धति, शर्तें एवं स्थितियों के सम्बन्ध में कोई भी विषय और जिसमें निम्नलिखित विषय भी आते हैं—

(अ) वे सभी विषय जो नियोजकों और कर्मचारियों के बीच के सम्बन्ध से तात्पर्य रखते है अथवा किसी भी व्यक्ति की बरखास्ती अथवा बेरोजगार करने के बारे में है।

(ब) किसी भी कर्मचारी अथवा कर्मचारियों की किसी भी श्रेणी के कर्मचारियों की सीमा निर्धारित करने से सम्बन्धित सभी विषयों से है।

(स) वे सभी प्रश्न, जिनके बारे में यह तय करना है कि वे उचित और न्याय संगत हैं और जो औद्योगिक विषयों से सम्बन्धित हैं और सम्बन्धित व्यक्ति और पूरे समुदाय के हितों से सम्बन्धित हैं।

(द) स्थानान्तरण, पदोन्नति अथवा नियुक्ति नीति।

(इ) नियोजक द्वारा बनाई गयी बैलेन्स शीट (तुलन-पत्र) की दुरूस्तता।

(फ) उत्पादन बोनस आदि योजनाओं को लागू करना।

(ज) लगाई गयी पूंजी में स्थायी अथवा अल्प स्थायी बढ़ोत्तरी अथवा कमी करने से सम्बन्धित सभी विषय।

## ट्रेड यूनियन और उनकी मान्यता

श्रमिकों को यूनियन बनाने और अपने नेता को चुनने की आजादी होनी चाहिये और इस हेतु उनके रजिस्ट्रेशन के लिये पद्धति निर्धारित होनी चाहिये। ट्रेड यूनियन के हक व जिम्मेदारियाँ निर्धारित होनी चाहिये। पदाधिकारी बनने के लिये बाहरी

व्यक्तियों को अनुमति होनी चाहिये और उनकी अधिकतम संख्या का प्राविधान किया जाना चाहिये ।

ट्रेड यूनियन की प्रगति के साथ साथ अनेक यूनियनों के होने के प्रश्न पर मान्यता सम्बन्धी और एक ही उद्योग अथवा इकाई में भिन्न-भिन्न यूनियन के हकों को कानून द्वारा हल करना चाहिये । हमारे सुझावों को विचार करने के पश्चात समुचित प्राविधान बनाना चाहिये ।

## वेतन भुगतान हेतु कानून

इस अध्याय में न्यूनतम वेतन और कीमतों की बढ़ोत्तरी तथा कमी के अनुसार कर्मचारियों के उचित वेतन में शत प्रतिशत समतोलीकरण के प्राविधान सम्मिलित होने चाहिये, साथ ही साथ 'बोनस' को 'देरी से दिया गया वेतन' के रूप में माने जाने वाले सिद्धान्त के आधार पर बोनस आदायगी के बारे में प्राविधानों को इस अध्याय में सम्मिलित करना चाहिये । वेतन अदायगी के लिये समय की सीमा निर्धारित होनी चाहिये और अनुमति प्राप्त कटौतियों के लिये प्राविधान बनाना चाहिये ।

## विभिन्न दावे और सुविधायें

बैठकी और छटनी के बारे में प्राविधान बनाना चाहिये । इस याचिका में हमारे सुझाव के अनुरूप छटनी की परिभाषा को व्यापक बनाना चाहिये । 'अन्त में आना पहले जाना' के सिद्धान्त को कानूनी ढंग से सम्मिलित करना चाहिये और छूट वेतन पर पुनः नियुक्ति के अधिकार को कानूनी रूप से मानना चाहिये । 'औसत वेतन' के प्राविधान को निकाल देना चाहिये । प्रत्येक कर्मचारी के लिये ग्रैच्युटी की अदायगी हेतु प्राविधान होना चाहिये । मृत्यु होने की दशा में मृतक कर्मचारी द्वारा किये गये नामांकित व्यक्ति को ग्रैच्युटी दिया जाना चाहिये । इसी प्रकार रविवार-छुट्टी कार्य-भत्ता, रात्रि-ड्यूटी भत्ता के लिये कानूनी प्राविधान बनाने चाहिये । ऊपर के प्राविधानों को औद्योगिक व्यवहार, न्यायालय के निर्णयों और इस याचिका में भिन्न भिन्न स्थानों पर दिये गये हमारे सुझावों को ध्यान में रखकर बनाने चाहिये ।

## सेवा व रोजी की शर्तें

रोजी की शर्तों का पूर्णरूपेण बारीकी से परिभाषित करने और उन शर्तों को श्रमिकों को बतलाने के लिये यह अनिवार्य है कि स्थायी आदेश बनाये जाय । कम से

कम नीचे लिखे अथवा संलग्न सूची में औद्योगिक विषयों के बारे में इसके लिये प्राविधान बनाने चाहिये। यह आदेश सभी संस्थानों के लिये लागू होने चाहिये और भिन्न भिन्न संस्थानों की विशेष आवश्यकताओं के लिये उसमें परिवर्तन करने की कार्यवाही के लिये भी प्राविधान होने चाहिये। तीन मास की सेवा के पश्चात अपने आप स्थायी हो जाने का प्राविधान चाहिये। बदली श्रमिकों को न्यूनतम वेतन और न्यूनतम छुट्टी की गारंटी होनी चाहिये। गैर कानूनी हड़ताल में केवल मात्र भाग लेने की क्रिया को खराब आचरण नहीं माना जाना चाहिये।

## सूची

१—श्रमिकों का वर्गीकरण, इसका अर्थ है—स्थायी, अस्थायी, प्रशिक्षणार्थी, परीक्ष्यमान व्यक्ति (Probationer), बदली आदि और कर्मचारियों के टिकट, कार्डस्, रजिस्टर, सेवा के प्रमाण पत्र, नौकरी प्रारम्भ करने की तिथि के रिकार्ड और जन्मतिथि।

२—कार्य के घंटे की अवधि, अवकाश, वेतन के दिन और वेतन के दर के बारे में कर्मचारियों को जानकारी देने की पद्धति।

३—पाली की कार्यवाही (Shift working), जिसके अन्तर्गत कर्मचारियों को पाली के शुरू होने, बदलने अथवा एक विभाग में अथवा विभागों में दो अथवा उससे अधिक पालियों का परिवर्तन व विभाजन अथवा समाप्ति।

४—एक विभाग अथवा एक विभाग के उपविभाग अथवा पूरे कारखाने के बन्द होने अथवा पुनः खुलने के बारे में।

५—उपस्थिति और देरी से आना।

६—अवकाश स्वीकृत करने की पद्धति और सम्बन्धित अधिकारी।

७—छुट्टियों के प्रदान करने की पद्धति और सम्बन्धित अधिकारी।

८—कारखाने के गेट में घुसने और खोजबीन करने की जिम्मेदारी।

९—काम के स्थायी रूप से बन्द होने, जिसमें छँटनी भी शामिल है और इसके परिणामस्वरूप नियोजकों और कर्मचारियों के हक तथा जिम्मेदारियाँ।

१०—नौकरी से बरखास्तगी, जिसके अन्तर्गत नियोजक द्वारा कर्मचारी को और कर्मचारी द्वारा नियोजक को नोटिस देना सम्मिलित है।

११—अवकाश ग्रहण की आयु अथवा निवृत्ति ।

१२—दंड, जिसमें चेतावनी, रोक, जुर्माना, निलम्बन अथवा बरखास्तगी सम्मिलित है । जो अधिक अथवा साधारण दुर्व्यवहार के कारण है, सम्बोधित दुर्व्यहार के लिये पूछताछ के पूर्व निलम्बन और पूरी न करने की गतिविधियाँ और जिम्मेदारियों जैसे दुर्व्यवहार ।

१३—नियोजक अथवा उसके एजेन्ट या उसके नौकर द्वारा किये गये दुर्व्यवहार अथवा गलत निर्णयों के विरोध में कर्मचारी की समस्या के निदान के माध्यम ।

१४—कोई भी अन्य विषय, जिसे उल्लेख किया जा सकता है ।

## कार्य की दशायें

इस विषय पर निम्नलिखित प्राविधान करने चाहिये सुरक्षा, कल्याण, कार्य के घंटे, साप्ताहिक सवेतन छुटियों, मध्याह्न समय का अल्प विश्राम, व्यापकता (Spread over), ओवर टाइम का अतिरिक्त वेतन, महिलाओं, बच्चों अथवा युवकों को नौकरी देने और वार्षिक अवकाश, रुग्णावकाश, आकस्मिक अवकाश तथा सवेतन छुट्टियों के बारे में कर्मचारी को उसकी इच्छा के विरुद्ध ओवर टाइम काम करने के लिये नहीं कहा जाना चाहिये । भिन्न भिन्न कानूनों, जैसे—कारखाना कानून, खदान कानून, बागान श्रमिक कानून, मोटर यातायात श्रमिक कानून, व्यापारिक समुद्री जहाज कानून, डाकवर्कर्स (सुरक्षा स्वास्थ्य और कल्याण) योजना, कोयला खदान श्रमिक कल्याण फण्ड कानून, बम्बई कल्याण श्रमिक फण्ड कानून के प्राविधानों को सरल करना चाहिये और उसको इकट्ठा करना चाहिये ।

कोयला खदान में हर एक श्रमिकों को हर दूसरे वर्ष के बाद स्वास्थ्य चिकित्सा परीक्षण करना चाहिये, यह मालूम करने के लिये कि क्या वह न्यूमोकोनाइसिस से पीड़ित है, विशेषतया आथराइसिस से । इसे कानून द्वारा अनिवार्य बनाना चाहिये ।

नियोजक की जिम्मेदारी पर छुट्टियाँ बिताने के लिये विश्रामगृह की सुविधा और पौष्टिक आहार व औषधियों की अन्य सुविधाओं को कानूनी रूप से प्राप्त होनी चाहिये ।

उन सभी उद्योगों में जहाँ की प्रक्रियायें व्यवसायिक बीमारियों को उत्पन्न करती हैं, को निश्चित अवधि के पश्चात स्वास्थ्य चिकित्सा परिक्षण को कानूनी रूप से लागू करना चाहिये ।

## प्रशिक्षण और गणनाक्रम आंकड़ों के लिये कानून

प्रशिक्षणार्थ कानून १९६१ में दी गयी धाराओं का निरीक्षण करना चाहिए और इस अध्याय में सम्मिलित करना चाहिए। इसी प्रकार गणनाक्रम आँकड़ों के लिये कानून में भी दी गयी प्राविधानों को दुहराना चाहिए और इस कानून में उन्हें सम्मिलित करना चाहिए।

## औद्योगिक विवाद सम्बन्धी कानून

इस अध्याय में किसी भी औद्योगिक विषय के सम्बन्ध में परिवर्तन लाने की कार्यवाही सम्मिलित होनी चाहिये, जो नियोजक, कर्मचारी अथवा यूनियन में जिस प्रकार का विवाद हो, उसके अनुसार व्यवहार करने के सम्बन्ध में।

औद्योगिक विषयों को निम्नलिखित ३ भागों में विभक्त करना चाहिये—

१. वे विषय, जो श्रम न्यायालय के क्षेत्र में हैं।

२. वे विषय, जो तकनीकी न्यायाधिकरण के क्षेत्र में हैं।

३। वे विषय जो औद्योगिक न्यायाधिकरण के क्षेत्र में है।

निजी समझौते पर आने के लिए कड़ी पद्धति अपनानी चाहिये और यह स्पष्ट रूप से होना चाहिए कि कोई भी नियोजक किसी भी औद्योगिक विषय में निर्धारित पद्धति को अपनाये बिना परिवर्तन नहीं करेगा।

किसी भी औद्योगिक विवाद के परिणामस्वरूप हड़ताल और तालाबन्दी के प्रश्न को कानून के इस अध्याय में सम्मिलित करना चाहिए ?

## सूची क्रमांक-१

श्रम न्यायालय के क्षेत्र में आये विषय—

१. स्थायी आदेशों के आधीन नियोजक द्वारा पारित कोई भी आदेश।

२. स्थायी आदेशों को क्रियान्वित करने और उनका अर्थ लगाने से उत्पन्न कोई भी औद्योगिक विषय।

३. श्रमिकों को दी जाने वाली सामग्री और उपकरण की उपयुक्तता और गुणवत्ता।

४. संस्थान के भीतर श्रमिकों को काम देने और स्थानान्तरण करने।

५. कर्मचारियों के स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण (इनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं—जल, भोजनार्थ बैठने का स्थान, आराम करने का स्थान, शौचालय, पेशाब-

घर, श्रमिक महिलाओं के बच्चों के खेलने कूदने का स्थान, जलपान गृह और इसी प्रकार की अन्य सुविधायें ।

६ एवार्ड्स, समझौते व सुलहनामों की रचना और परिभाषाओं के संदर्भ में श्रमाधिकारियों द्वारा पारित आदेशों से उत्पन्न होने वाले विषयों पर अपील ।

७–रोजी, जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित है ।

(१) पुनर्नियुक्ति और भरती

(२) सम्बन्धित उद्योग में पूर्व लगे हुये व्यक्तियों का बेरोजगार होना ।

८–श्रम कानून में परिभाषा के अनुसार वेतन के संदर्भ में कोई भी दावा जो वेतन रिकवरी अधिकारी द्वारा अनुमोदित किया गया हो ।

९–किसी भी औद्योगिक विषय के संदर्भ में सभी व्यक्तिगत मामलें ।

१०–श्रम कानून के अधीन कोई भी जुर्म ।

## सूची क्रमांक—२

तकनीकी न्यायाधिकरण के क्षेत्र के विषय—

१. वेतन अन्तरों के उद्देश्य पूर्ति हेतु कार्य मूल्यांकन ।

२. काम क्रमों का निश्चितीकरण ।

३. कार्य विवरण और श्रेणीकरण ।

४. वेतनक्रम, स्थानान्तरण, वरिष्ठता और पदोन्नति की विधियों हेतु कार्यों का वर्गीकरण करना ।

५. प्रोत्साहन योजनायें और भुगतान (पीस रेट सहित) ।

६. परिवार के जीवन स्तर सम्बन्धी सर्वे तथा जीवन मूल्य सूचकांक को लागू करना ।

७. क्षेत्रसः मुआवजे ।

८. पेशे के अनुसार वेतनों में अन्तर और अनुपात ।

९. उत्पादकता हेतु लाभ का विस्तृत विवेचन (उद्योग के आधार पर उत्पादन का आकलन) ।

१०. अभिनवीकरणण ।

## सूची क्रमांक—३

औद्योगिक न्यायाधिकरण के अन्तर्गत आने वाले विषय—

१. किसी भी व्यवसाय में अथवा प्रक्रिया में अथवा विभाग में अथवा विभागों में या एक पाली में स्थायी अथवा अर्द्ध स्थायी प्रकृति वाले रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या में की जाने वाली छटनी या नियुक्ति की जाने वालों की संख्या।

२. किसी भी व्यवसाय या प्रक्रिया अथवा विभाग या विभागों अथवा एक पाली में नियुक्त हुए या नियुक्ति होने वाले स्थायी अथवा अर्द्ध स्थायी की संख्या में बढ़ोत्तरी।

३. इस कानून के अन्तर्गत स्थायी आदेशों के प्राविधानों, को छोड़कर किसी भी कर्मचारी की बरखास्तगी।

४. वे सभी मामले, जो पाली के कार्यकलापों से सम्बन्धित हैं, परन्तु जो इस कानून के अन्तर्गत स्थायी आदेशों में निहित नहीं हैं।

५. कर्मचारियों की यूनियन की मान्यता को वापस लेना।

६. परम्परागत सुविधा अथवा विशेष सहूलियतों को वापस लेना या उसके प्रभाव में परिवर्तन करना।

७. अनुशासन के नये नियमों को लागू करना अथवा प्रचलित नियमों और उनकी व्याख्या मे बदल लाना, जो इस कानून के अन्तर्गत लागू होने वाले स्थायी आदेशों के प्राविधान में नहीं आते।

८. वेतन, जिसमें अवधि भी सम्मिलित है और भुगतान करने की पद्धति।

९. कार्य के घटे और मध्यावकाश।

१०. स्थायी आदेशों में उल्लिखित नियमों को छोड़कर अवकाश और छुट्टी संबन्धी सभी मामले।

११. पूँजी को लगाने की पद्धति, शर्तें, और स्थिति।

१२. सम्बन्धित व्यक्ति और/अथवा सम्बन्धित समूचे समुदाय के हित के सम्बन्ध में किसी भी विषय की समुचितता और दुरुस्तता सम्बन्धी सभी प्रश्न।

१३. स्थानान्तरण, पदोन्नति व भर्ती की नीतियां।

१४. नियोजक द्वारा तय्यार की गयी बैलेन्स शीट का सही होना।

१५. लगायी गयी पूँजी में स्थायी अथवा अर्द्ध स्थायी बढ़ोत्तरी अथवा कटौती सम्बन्धी सभी विषय ।

१६. मुआवजा और अन्य भत्ते ।

१७. बोनस, लाभ में हिस्सा, प्राविडेन्ट फण्ड और ग्रैच्युटी ।

१८. स्थायी आदेशों के नियमों को छोड़कर पाली के कार्य कलाप ।

१९. वेतनक्रम का वर्गीकरण ।

२०. अनुशासन के नियम ।

२१. श्रमिकों की छटनी और संस्थान का बन्द होना ।

२२. वे सभी विषय, जो सूची क्र० १ और २ में उल्लिखित नहीं हैं ।

## कानून सम्मत अधिकारी (अधिकृत समिति) और उनके अधिकार

अधिकृत समिति (अधिकारी) निम्नलिखित होंगे—

१. वर्क्स कमेटी अथवा श्रम समिति :—कोई भी अनुशासन सम्बन्धी कार्यवाही, स्थानान्तरण अथवा पदोन्नति इस समिति द्वारा पूर्व पारित होने पर ही सम्भव होगी ।

२. श्रम निरीक्षक :—श्रम कानूनों को लागू करने और उनके निरीक्षण करने के लिए स्वास्थ्य निरीक्षक भी होंगे और उन निरीक्षकों में महिलायें भी होंगी ।

३. संराधन अधिकारी अथवा श्रमाधिकारी :—इन्हें कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही और एवार्ड्स व समझौतों की व्याख्या करने के लिये उसी स्थान पर और तुरन्त निर्णय करने के अधिकार होने चाहिए ।

४. लेबर प्रोजेक्यूटर:—ट्रेड यूनियन से सम्बन्धित सभी मामलों में असंगठित श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करना । यदि ऐसा करने के लिये किसी एक कर्मचारी अथवा कर्मचारियों और असंगठित श्रमिकों द्वारा प्रार्थना पत्र दिया गया हो और यदि ऐसा श्रमाधिकारी द्वारा सिफारिश किया गया हो ।

५. रिकबरी आफिसर :—हमारी याचिका के पूर्व भाग में उल्लिखित किये गये वेतन की रिकवरी करना, इसे किसी समय की सीमा निर्धारित किये बिना ही करनी चाहिए ।

६–श्रम न्यायालय : सूची क्र० १ में लिखे हुये औद्योगिक मामले को देखना।

७–तकनीकी न्यायाधिकरण : सूची क्र० २ में लिखे गये औद्योगिक विषयों को देखना।

८–औद्योगिक न्यायाधिकरण : सूची क्र० ३ में लिखे गये सभी औद्योगिक मामलों को देखना।

९–तकनीकी अपिलेट न्यायाधिकरण (आल इन्डिया) : तकनीकी न्यायाधिकरण के निर्णयों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के बारे में होने वाली अपीलो को देखना।

१०–पंच निर्णायक : नियोजक और कर्मचारियों द्वारा लिखित समझौते के अन्तर्गत किसी भी मामले को सामूहिक रूप से प्रस्तुत करना।

११–वेतन मण्डल : सरकार द्वारा गजट में छपे आदेश के अन्तर्गत प्रस्तुत किए गये विषयों को देखना।

श्रम निरीक्षक, श्रमाधिकारी, श्रम अभियोजक और रिकवरी अधिकारियों को सरकार नियुक्त करेगी। श्रम न्यायालय, औद्योगिक न्यायाधिकरण, तकनीकी न्यायाधिकरण और तकनीकी अपिलेट न्यायाधिकरण के सदस्यों की नियुक्ति समुचित न्याय विभाग के अधिकारियों द्वारा होनी चाहिए।

कोई भी कर्मचारी-श्रमाधिकारियों, रिकवरी अधिकारियों, श्रम प्रोजेक्यूटर और श्रम न्यायालयों में जैसा भी मामला हो, सीधे पहुंचे। औद्योगिक न्यायाधिकरण अथवा तकनीकी न्यायाधिकरण के सम्मुख श्रमिक और नियोजक सामूहिक रूप से सीधे सम्पर्क करें अथवा श्रमाधिकारियों के माध्यम से सम्बन्ध करें इन श्रमाधिकारियों के लिए अनिवार्यता होगी कि विवादों के न हल होने की स्थिति में सम्बन्धित न्यायाधिकरण के सम्मुख विवादों को अभि–निर्णयार्थ प्रस्तुत भेजने के लिए बाध्य हों। ध्यान रहे कि सरकार इसमें कोई हस्तक्षेप न करे। कानून के अन्तर्गत दण्डनीय अभियोग की सुनवाई के लिए कोई भी नियोजक ट्रेड यूनियन अथवा श्रम प्रोजेक्यूटर–श्रम न्यायालय में जा सकें।

औद्योगिक विषयों की प्रकृति को ध्यान में रखकर किसी भी विषय के निर्णय हेतु भिन्न भिन्न अधिकारी तर्क संगत समय निर्धारण करने के लिये कानूनी रूप प्रस्तुत करेंगे।

न्यायाधिकरण अथवा पंच निर्णायक–अपने निर्णयों को पीछे जी तिथि से कार्यान्वित करने के लिये एवार्डस प्रस्तुत करेंगे। कम से कम सामूहिक प्रस्तुतीकरण की तिथि से यह लागू होगा अथवा श्रमाधिकारियों द्वारा अभिनिर्णय हेतु विवाद के स्थानान्तरण की तिथि से लागू होगा।

यदि किसी भी कर्मचारी की सेवाओं की बरखास्तगी अवैध ठहरायी गयी है तो उसे पिछले सम्पूर्ण वेतन के साथ पुनर्नियुक्त की जायगी।

## एकीकृत सामाजिक सुरक्षा योजना

भिन्न भिन्न कल्याणकारी योजनाओं, जैसे–कर्मचारी प्राविडेन्ट फण्ड, कर्मचारी राज्य बीमा योजना और मातृत्व हित लाभ आदि का एकीकरण करना चाहिये और उसे राष्ट्रीय त्रिदलीय म्मेलन के सर्वसाधारण निरीक्षण के आधीन काम करना चाहिये। बेरोजगारी बीमा की योजना को भी सम्मिलित करना चाहिये इस योजना के अन्तर्गत भिन्न भिन्न सुविधायें जैसे–रुग्णावस्था, चिकित्सा, दुर्घटना, अपंगता, मातृत्व सम्बन्धी और बेरोजगारी आदि विषयों को नहीं सौंपना चाहिये अथवा नहीं सम्मिलित करना चाहिये।

## जुर्म और जुर्माना

कानून के अनुसार अभियोग निर्धारित होने चाहिये और परिणाम स्वरूप जुर्माने भी अंकित होने चाहिये। नियोजकों को गलत श्रमिक व्यवहार के लिये दण्डित करना चाहिये और इसे भी अंकित करना चाहिये। यदि कोई कर्मचारी नियोजक के जुर्म से चोट खाता है तो लगाये गये जुर्माने का ५० प्रतिशत मुआवजे के रूप में कर्मचारी को दे देना चाहिये। इस कार्यवाही को कोई भी कर्मचारी, यूनियन अथवा श्रम प्रोजेक्यूटर प्रारम्भ कर सकता है। सभी प्रकार के अभियोगों को श्रम न्यायालय में सिद्ध करना चाहिये।

## विविध प्राविधान

१—इस अध्याय में रजिस्टर और रिकार्डस, मुकदमा के प्रस्तुत करने की विधि और सम्बन्धित व्यक्ति, नियम बनाने के अधिकार, सत्ता के अधिकारों को सौंपने आदि से सम्बन्धित प्राविधानों को सम्मिलित करना चाहिए।

२—ठेके के श्रमिकों की पद्धति को समाप्त करना यदि न रोके जाने वाली परिस्थितियों के कारण ठेके के श्रमिकों को नियुक्त किया जाता है। तो उन्हें कानून के

अन्तर्गत वेतन, दावे और सभी सुविधाओं को सर्वसाधारण श्रमिकों के समान मुहैय्या करना चाहिये।

३—इण्डियन ट्रेड यूनियन एक्ट के अन्तर्गत प्राप्त हुये संरक्षण के क्षेत्र को बढ़ाना चाहिये और इसमें भिन्न भिन्न सरकारी विभागों जो वाणिज्य कीय गति विधियाँ करते हैं, को सम्मिलित करना चाहिये।

४—निम्नलिखित संस्थाओं में काम करने वाले श्रमिकों के हितों की रक्षा हेतु विशेष औद्योगिक विवाद अधिनियम बनाने चाहिए, जो उनके काम की विशेषताओं को ध्यान में रख सकें—

१—शिक्षा संस्थान

२—सामाजिक कल्याण संगठन

३—घरेलू कर्मचारी (घरेलू नौकर)

४—चिकित्सालय

५—सहकारी समितियां (श्रमिक सहकारी समितियों को छोड़कर)

६—निर्माण कार्य

७—लघु उद्योग

८—गृह उद्योग

९—मौसमी उद्योग

१०—रिक्सा चालक

११—मल्लाह (नाविक कार्य)

१२—कृषि

१३—वन

१४—भिन्न भिन्न कलाओं की संस्थायें और व्यापार

१५—पूर्व प्रशासकों (राजाओं) के कर्मचारी

१६—वकीलों के फर्म, कानूनी सलाहकार और दूसरी कानूनी एजेन्सियाँ।

५—प्रत्येक राज्य में पुलिस कर्मचारियों की समस्याओं के निदान हेतु उपयुक्त संयंम स्थापित किया जाना चाहिए।

६—इसी प्रकार का संयंत्र केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा दल (Central Industrial

(Security force) के सदस्यों की सहायता के लिये और उनकी समस्याओं के निदान के लिये भी विकसित करना चाहिये।

७—प्रत्येक राज्य में धार्मिक क्षेत्र के प्रसिद्ध जनों को मिलाकर एक पृथक समिति बनानी चाहिये, जो पुजारियों के मामलों को देखेगा और राज्य के अन्तर्गत धार्मिक संस्थानों को भी देखेगा। विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के लिए भिन्न-भिन्न समितियों की भी स्थापना होनी चाहिए। उक्त कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए ये समितियाँ नियम बनाने व नियंत्रण करने के लिए अधिकृत होनी चाहिए और साथ ही उन्हें क्रियान्वित करने का भी अधिकार होना चाहिए। इन समितियों के आन्तरिक प्रशासन में सीधे हस्तक्षेप न करके सरकार को इन नियमों के क्रियान्वयन की प्रक्रियाओं में समितियों को सहायता देनी चाहिए।

८—जहाँ तक ट्रेड यूनियन कानून की सुरक्षा का प्रश्न है, पेन्शनर्स और अवकाश प्राप्त सैनिकों के संगठनों को यूनियन अथवा एशोसियेशनों के समान देखा जाना चाहिए। ये वे संस्थायें हैं, जिनके सैनिक या अन्य कर्मचारी वर्ग सक्रिय सेवा की अवधि में सदस्य बनने के अधिकारी थे।

९—विचार करने के पश्चात हमारा यह दृष्टिकोण है कि भारत जैसे देश में श्रम नीति को स्वयं रोजी कमाने वाले शिल्पी और हस्तकलाकार तथा औद्योगिक श्रमिकों की स्थिति को समान रूप से ध्यान में रखना चाहिए। श्रम और रोजगार मंत्रालय का एक अलग विभाग होना चाहिए, जिसके अन्तर्गत इन स्वयं रोजी कमाने वाले शिल्पी और हस्तकलाकारों के कल्याण की देख-रेख और हितों की सुरक्षा कर सके। इस वर्ग को भारतीय मजदूर संघ के अनुसार 'विश्वकर्मा क्षेत्र' कहा जा सकता है। विभाग को इस क्षेत्र का शिल्प व हस्तकला के आधार पर जनगणना करानी चाहिए। इस क्षेत्र में ऋण देने की सुविधा के स्रोत और उनके कच्चे माल की कीमतों की पूरी जानकारी इक्ट्ठी करनी चाहिए; सामान बनाने की उनकी वर्त्तमान पद्धति और उनकी सुविधा के लिए मंत्रालय द्वारा कराई गयी शोध कार्य के परिणाम जो हमने अपनी याचिका के शोध विषय के शीर्षक में उल्लेख किया है, उनकी वर्तमान मार्केटिंग सुविधायें और आन्तरिक व विदेशी बाजार के भविष्य की क्षमता; इन भावी बाजार की आवश्यकता और मांगों की प्रकृति और इस हेतु बनाये जाने वाले सामानों की विस्तृत जानकारी और प्रमाणीकरण; कानूनी सुरक्षा—जो उन्हे आज उपलब्ध है और भविष्य की कानूनी सुरक्षा। यह इस विभाग की जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वह इनकी आर्थिक गतिविधियों को निमंत्रित करे; उनके बनाये गये

सामान की विविधता और विशेषता तथा उनके विस्तृत उल्लेख के सम्बन्ध में उन्हे मार्गदर्शन करें; उनके उत्पाद की बिक्री देश और बिदेश में बढ़ाये; उनके भिन्न-भिन्न प्रकार के सहकारी समितियों के बनाने में उत्साहित करे और सहयोग प्रदान करे।

१०–पूरे देश के लिए सहकारिता पर एक केन्द्रीय कानून होना चाहिए जो न्यूनतम समान, और एक रूप प्राविधानों को आच्छादित करें और राज्य सरकारों को नियम बनाने और नियन्त्रण करने के लिए अधिकृत करें-ताकि अपने अपने राज्यों में वे सहकारिता को चला सकें।

११–रेयान्स, जिन्हें गलती से टेक्सटाइल की श्रेणी में मिला लिया गया है, उसे भारी केमिकल्स में सम्मिलित करना चाहिए। उनके काम की प्रकृति उनकी इस माँग को न्याय संगत बनाती है। 'विस्कोस कमेटी' को कानूनी प्राविधान दिया जाना चाहिए।

१२–कानून के अन्तर्गत किसी भी कर्मचारी को ठेके पर देने के लाभकारी अधिकार को रोक देना चाहिए।

## कुछ कानूनों का संशोधन

### विशेष सहायतार्थ कानून (Specific relief Act)

विशेष सहायतार्थ कानून (Specific Relief Act) की धारा १४ में में उचित संशोधन करना चाहिए, ताकि बरखास्त अथवा निष्कासित कर्मचारी अपनी पुर्नियुक्ति की सहायता के लिए सिविल कोर्ट्स में मुकदमा दायर कर सकें।

### जाब्ता कानून (Civil procedure Code)

वेतन अथवा आय की न्यूनतम सीमा जो जाब्ता दीवानी की धारा ६० के कारण बन्धक रखने से वंचित है, १०० रुपये है। जो धन बन्धक रखने से बंचित हो, वह श्रमिक के परिवार की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। इसलिए हम यह सुझाव प्रस्तुत करते हैं कि यह न्यूनतम सीमा एक सौ रुपये से बदलकर आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम वेतन के मूल्य के समान धनराशि कर देनी चाहिए, जैसा कि १५ वें त्रिदलीय सम्मेलन में परिभाषित किया गया है।

## बम्बई दुकान एवं वाणिज्य प्रतिष्ठान अधिनिमय

ऊपर लिखे कानून की धारा ५४ के अन्तर्गत 'यदि कोई कर्मचारी दुकान अथवा संस्थान में काम पर एक दिन के लिए भी जाता है, जबकि दुकान व संस्थान

बन्द रहता है, तो उसे जुर्माने से दंडित करना चाहिये, जो १० रुपये से कम न हो और अधिकतम ५० रुपये तक हो।'

वस्तुतः यह बड़ी हैरानी और धक्का देने वाली बात है कि नियोजक की गलती पर कर्मचारी को दंडित किया जाता है, जबकि नियोजक ही कर्मचारी को काम पर बुलाता है। व्यापक बेरोजगारी की वर्तमान परिस्थितियों के अन्तर्गत एक कर्मचारी के लिए यह असम्भव है कि वह नियोजक की गैरकानूनी आज्ञा को न माने, जबकि नियोजक एक बड़ी प्रभावी स्थिति में रहता है।

इसलिए इस प्राविधान को तुरन्त हटा देना चाहिये।

## कम्पनीज कानून और दिवालिया अधिनियम
## (Companies Act & Insolvency laws)

दिवालिया होने पर अथवा काम समाप्ति की स्थिति में सरकारी बकाये धनराशि को छोड़कर, ऋण के मुकाबले में वेतनों को कुछ मात्रा में प्राथमिकता दिया जाता है, फिर भी हम इस विचार के हैं कि हमारी याचिका में व्यापक रूप से परिभाषित वेतन की पूरी धनराशि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रेसींडेन्सी टाउन इन्डस्ट्री एक्ट Presidency Town Industry Act) की धारा ४९ और कम्पनीज एक्ट की धारा ५३० में उचित संशोधन करना चाहिए।

## आयकर अधिनियम

(१) आयकर कानून १९६१ की धारा १० में निम्नलिखित प्राविधान दिया गया है। किसी भी व्यक्ति की पिछले वर्ष की कुल आय का हिसाब लगाते समय, किसी भी निम्नलिखित धाराओं में निहित आय को नहीं मिलाना चाहिए :—

उपधारा (१०) : कोई भी मृत्यु होने के साथ अवकाश प्राप्ति की ग्रैच्युटी, जो केन्द्रीय सरकार के परिवर्तित पेन्शन कानून के अन्तर्गत हो अथवा राज्य सरकारों के अन्तर्गत इसी प्रकार की योजना के आधीन, एक स्थानीय अधिकारी अथवा एक निगम जो केन्द्रीय व राज्य अथवा राज्य कानून के अन्तर्गत स्थापित हो अथवा अवकाश प्राप्ति ग्रैच्युटी की अदायगी जो १ जून १९५३ के बाद दी गयी हो, और जो सैनिक सेवा के सदस्यों को लागू होने वाले नये पेंशन कानून के आधीन है अथवा कोई भी दूसरी ग्रैच्युटी जो कि पूरी की गयी सेवा के हर अर्द्ध के आधे मास

के वेतन से अधिक न हो और जो ग्रैच्युटी प्राप्त होने वाले वर्ष के पिछले ३ वर्ष की औसत आय के आधार पर हिसाब की गयी हो और जो अधिकतम २४ हजार रुपये अथवा ऊपर लिखे नियम के अनुसार १५ मास के वेतन के बराबर हो, इन दोनों में को भी कम हो।

उपधारा (१२) : एकत्रित की गयी बकाया धनराशि और जो मान्यता प्राप्त प्राविडेन्ट फण्ड में भाग लेने वाले कर्मचारी को दी जाने वाली हो और जो सूची क्र० ४ के भाग अ के नियम ८ में प्राविधान किया गया हो, की अधिकतम सीमा तक।

ऊपर लिखे प्राविधानों की उचित रूप से संशोधन करना चाहिए ताकि ग्रैच्युटी की सम्पूर्ण धनराशि और मान्यता प्राप्त प्राविडेन्ट फण्ड में से इकट्ठी की गई शेष बकाया धनराशि को कर्मचारी की पूरी आय में से निकाला गया हो।

(२) धारा ८७ के अन्तर्गत कर्मचारी द्वारा दिये गये प्राविडेन्ट फण्ड अथवा सुपरएनुयेशन की धनराशि का ६० प्रतिशत आयकर से वंचित है। हम सुझाव देते हैं कि ऊपर लिखे फण्ड में योगदान की पूरी धनराशि को आयकर से मुक्त रखा जाय।

किसी भी कर्मचारी द्वारा इसी प्रकार के योगदान, जो कर्मचारी राज्य बीमा योजना अथवा अन्य किसी योजना में दिया जाता है, की पूरी धनराशि को आयकर से मुक्त रखा जाय।

(४) रजिस्टर्ड ट्रेड यूनियन को दिये गये सभी प्रकार के चन्दे आयकर से वंचित रखे जाँय।

## फौजदारी कानून

औद्योगिक कानून एक विशेष प्रकार का कानून है और एक लम्बे काल से हकों और जिम्मेदारियों की स्थापना के लिये उसने प्रयत्न किया है, जो सर्वसाधारण कानून के अन्तर्गत विद्यमान नहीं थे। कोई भी विवादास्पद स्थिति जो श्रमिकों और नियोजकों के बीच है और जो 'श्रमिक अथवा अन्य किसी व्यक्ति की परिस्थितियों से सम्बन्धित है' और जो श्रमिक द्वारा नियोजक के सम्मुख खड़ी की गयीं माँग के केवल मात्र तथ्य से उत्पन्न हुयी हो और नियोजक द्वारा मना की गयी हो, के ऊपर अभिनिर्णय हेतु न्यायाधिकरण के क्षेत्र में देने अथवा लाने के ढंग और रास्ते

निम्नलिखित है विषयों के लिए हैं—अमीर के विरोध में गरीब का संरक्षण करना, सबल के विरुद्ध कमजोर का संरक्षण करना, सुविधा प्राप्त व्यक्तियों के खिलाफ सुविधाओं से वंचित लोगों को सुरक्षा देना और पूँजीपति के मुकाबले सर्वहारा की मदद करना; कानून समानता, न्यायालय और अच्छी मनः स्थिति के सिद्धान्तों के अनुसार विवादों के निर्णय करने के लिए न्यायालयों को बहुत व्यापक अधिकार प्रदान करने में छूट देना; श्रमिक के विरोध में नियोजक की असमान आर्थिक स्थिति के कारण श्रमिक की ठेके के अन्दर की जिम्मेदारियों के प्रति दुर्लक्ष करना उपयुक्त मामलों में सम्बन्धित पक्षों के बीच में ठेके को दुहराना अथवा अधिकार में में लेना, औद्योगिक शान्ति के हितों के लिए ठेके में संशोधन करना अथवा नई जिम्मेदारियों को पैदा करना, कानूनी ट्रेड यूनियन गतिविधियों की सुरक्षा करना और अनुचित व्यवहार अथवा दंडित करने को रोकना; ठेके की शर्तों के बाहर–जिसे न्यायालय उचित और तर्कसंगत मानता है कर्मचारियों को प्रदान करना और जो शर्तें औद्योगिक शान्ति को बनाए रखने के लिए न्यायालय ठीक समझता है, को लागू करना, परिवर्तित परिस्थिति और तथ्यों में अपने दृष्टिकोण को बदलना, श्रमिकों और नियोजकों के बीच में उठी विवादास्पद स्थिति को लेकर 'पुनः विचार नहीं किया जा सकता है (प्राँग न्याय के सिद्धान्त) (RESJUDICATA)' को दुर्लक्ष्य करने पुनः संघर्ष करना–जो इस आधार पर हैं कि यदि औद्योगिक विवादों पर लागू किया है तो बहुत से मामलों पर यह आधार भूत विचारों के साथ संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करेगा, यह आधार भूत सिद्धान्त औद्योगिक शान्ति को बनाये रखने, पूँजी और श्रम के बीच सामञ्जस्य सम्बन्धों को प्रोत्साहन देगा ताकि अधिकतम उत्पादन उपलब्ध हो सके अन्यथा इसके विपरीत स्थिरता को उत्पन्न करेगा या निराशा के भाव को पैदा करेगा, जिसके कारण औद्योगिक क्षेत्र में अधिक अशान्ति पैदा होगी उक्त सभी इसके अनोखे स्वभाव को प्रकट करते हैं। इतना ही नहीं ट्रेड यूनियन कानून, रजिस्टर्ड ट्रेड यूनियन के सदस्यों और अधिकारियों को भारतीय दंड संहिता की धारा १२० (ब) की उपधारा २ के अन्तर्गत फौजदारी के षड्यंत्र के लिए दंडित होने के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करनी है, जो यूनियन की किसी भी कानूनी उद्देश्य की पूर्ति हेतु सदस्यों के बीच किसी भी समझौते के सन्दर्भ में है, जब तक समझौते के अतिक्रमण होने का प्रश्न खड़ा नहीं होता है। यह एक रजिस्टर्ड ट्रेड यूनियन का अथवा इसके सदस्यों को अथवा इसके पदाधिकारियों को किसी भी सिविल न्यायालय में एक मुकदमें के खिलाफ अथवा दूसरी कानूनी कार्यवाहियों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता है, जो एक व्यावसायिक विवाद को बढ़ाने के लिये अथवा तिर-

स्कार करने के किसी भी गतिविधि के सम्बन्ध में है और जिसमें सदस्य गण एक पक्ष के रूप में हैं और जो केवल इस आधार पर है कि इस प्रकार की कार्यवाही किसी दूसरे व्यक्ति को रोजगारी के ठेके को तोड़ने के लिये प्रेरित करती है अथवा किसी दूसरे व्यक्ति की रोजगारी अथवा व्यापार वाणिज्य के साथ इसका हस्तक्षेप है या किसी दूसरे व्यक्ति के उस अधिकार से सम्बन्धित है जिसमें अपनी पूँजी अथवा श्रम को लगाने से सम्बन्ध है और जो उसकी इच्छा के अनुसार है। साथ ही यह कानून एक रजिस्टर्ड ट्रेड यूनियन को एक मुकदमें के विरुद्ध अथवा किसी भी सिविल कोर्ट में अन्य कानूनी कार्यवाही के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है और यह कार्यवाही यूनियन के किसी भी एजेन्ट के द्वारा व्यवसाय गत विवाद को बढ़ाने और उसकी योजना बनाने के अन्तर्गत उत्पीड़न कार्य के सम्बन्ध में है। यदि यह सिद्ध हो जाता है कि सम्बन्धित व्यक्ति यूनियन की कार्यसमिति की जानकारी के बिना अथवा स्पष्ट सूचनाओं के बिना कार्यवाही किया है। कानून के अनुसार रजिस्टर्ड ट्रेड यूनियन सदस्यों के बीच केवल इस तथ्य के कारण अवैध नहीं है अथवा अवैध होने योग्य नहीं है, कि समझौते के अन्तर्गत कोई भी मामला व्यवसाय के लिये अंकुश के अन्तर्गत है। यह विशेष कानून ट्रेड यूनियन्स और उसके सदस्यों को इस प्रकार के दीवानी अथवा फौजदारी के मामलों से सुरक्षा प्रदान करता है।

हम सुझाव प्रस्तुत करते हैं कि फौजदारी कानून में निम्नलिखित संशोधन करके कुछ और सुरक्षा प्रदान किये जांय।

१—धारा ५०६ जो कि बुरी नियत से धमकाने जैसे फौजदारी कानून में दण्डित करने से सम्बन्धित है, को हटा देना चाहिए अथवा कम से कम ट्रेड यूनियन क्षेत्र में और उसके सदस्यों पर इसे लागू नहीं करना चाहिये।

२—फौजदारी कानून की धारा १०७ शान्ति बनाये रखने के लिये सुरक्षा से सम्बन्धित है और उसमें निम्नलिखित प्राविधान हैं—

"जब एक प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट, जो राज्य सरकार द्वारा विशेष प्रकार से नियुक्त किया जाता है अथवा एक जिलाधिकारी अथवा परगनाधीश या तहसीलदार जो राज्य द्वारा विशेष रूप से नियुक्त हो, को सूचना दीं जाती है कि कोई भी एक व्यक्ति द्वारा शान्ति भंग करने अथवा सामाजिक शान्ति को नष्ट करने या कोई ऐसा खराब काम करने, जिसके परिणामस्वरूप शान्ति भंग हो अथवा सामाजिक शान्ति के नष्ट होने की सम्भावना हो, मजिस्ट्रेट यदि उसके विचार के अनुसार पर्याप्त आधार हैं। इस कानून में लिखे प्राविधान के अनुसार सम्बन्धित व्यक्ति को कारण बताओ नोटिस देगा कि उसे एक बाण्ड भरने के लिए क्यों न आज्ञा दी जाय, बाण्ड जमानत

के साथ हो सकता है अथवा उसके बिना भी हो सकता है, जिसके अनुसार उस व्यक्ति को यह अनिवार्य है कि एक विशेष काल के लिए जिसे मजिस्ट्रेट उचित समझता है और जो एक वर्ष से अधिक न हो, के लिए शान्ति बनाये रखे ।"

इस धारा को औद्योगिक क्षेत्र और ट्रेड यूनियन गतिविधियों में लागू नहीं करना चाहिए ।

३—फौजदारी कानून धारा १४४ को फिर से बनाना चाहिए, यह धारा उन अधिकारों से सम्बन्धित है, जो सम्भावित खतरे के आवश्यक मामले में तुरन्त आज्ञा देने के लिए सम्पूर्ण अधिकार से सम्बन्धित है। जब कभी इस धारा को लगाया जाना उन कारणों से होता है, जो औद्योगिक अशान्ति, सभायें, इक्ट्ठा होने, भीड़ रहने व जुलूस आदि के अलावा है अथवा श्रमिकों की ट्रेड यूनियन की गति विधियों को साधारण रूप से इस कानून के लागू करने के संदर्भ से बाहर रखना चाहिए। इसे श्रमिकों के समूह पर केवल मात्र विशेष आज्ञाओं के द्वारा ही लागू करना चाहिए और वह भी उस समय जब औद्योगिक अशान्ति इसे अनिवार्य बनाती है।

४—फौजदारी कानून (संशोधित) की धारा ७, जो कि शान्तिपूर्ण पिकेटिंग से सम्बन्धित है, को हटा देना चाहिए अथवा कम से कम ट्रेड यूनियन्स के क्षेत्र को इस धारा की परिधि में नहीं रखना चाहिए ।

—०—

खण्ड—४

अध्याय १८

# श्रमनीति

## सरकार की भूमिका

•

भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

'राष्ट्रीय श्रम आयोग' को भारतीय मजदूर संघ द्वारा प्रस्तुत किये गये '**Labour Policy**' नामक अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है।

इस पुस्तक के सभी २० अध्याय अलग अलग पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये गये हैं।

आपात्कालीन स्थिति के अन्तर्गत कारावास की अवधि में इस अध्याय का अनुवाद आई० आई० टी० कानपुर के प्राध्यापक डा० भूषणलाल धूपड़ के सहयोग से किया गया है।

हम उनके प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं।

—रामनरेश सिंह

# सरकार की भूमिका

## प्रस्तावना

अभी तक हम लोगों ने राष्ट्रीय श्रम आयोग की प्रश्नावली के अध्यायों का शीर्षकानुसार विवेचन किया है तथा आयोग के सभी प्रश्नों का व्यावहारिक उत्तर दिया है तथा प्रश्नावली के उन भागों को जान बूझकर छोड़ दिया है, जो उद्योग अथवा श्रम सम्बन्धी विषयों पर सरकारी भूमिका होनी चाहिये। इस पर केवल इतनी मात्र टिप्पणी की गयी है, जो अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावी भूमिका डालने वाली थी। जो विषय छोड़ दिये गये हैं, वे मुख्यतया औद्योगिक सम्बन्धों में सरकार की भूमिका के बारे में हैं अथवा मुख्यतया व्यक्ति, समूह तथा संस्थाओं के ईश्वर प्रदत्त स्वतंत्रता से सम्बन्धित हैं, साथ ही आर्थिक, औद्योगिक सम्बन्ध तथा समाजिक महत्व के प्रमुख विषयों में सरकार के द्वारा पूर्णतः अथवा विशेष दिशा के निर्धारण की जिम्मेदारी से भी सम्बन्धित हैं, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष क्रिया, उससे सम्बन्धित उचित ढाँचे और सरकारी हस्तक्षेप के रूप में हैं। उपर्युक्त बातें राष्ट्रीय नीतियों, उनके आधारभूत सिद्धान्तों, ढांचों और कार्यान्वित करने वाली इकाइयों के सामूहिक प्रश्नों से सम्बन्धित है अतएव यह विषय राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय विवाद का एक महत्वपूर्ण प्रश्न बना हुआ है। औद्योगिक और आर्थिक विषयों के सम्बन्ध में एक प्रकार की नीति निर्धारित करते समय सर्वहारा अथवा श्रम का स्थान देने हेतु जो राज्य सम्बन्धी मत मतान्तर खड़े हुये हैं, उनमें साम्यवाद और समाजवाद का जन्म हुआ है। ये उन सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों, जैसे–सामाजिक जीवन में निर्णय लेने वाली पद्धति व ढाँचे से सम्बन्धित हैं। इससे सम्बन्धित एक प्रमुख विषय यह भी है जिसके अन्तर्गत निर्णय करने वाली पद्धति व ढाँचे में अफसरशाही तथा तकनीकी (Bureaucrats and Technocrats) का स्थान क्या होना चाहिये ? इस प्रश्न की प्रकृति को खोजने और उसका निदान निकालने के लिये साम्यवादी अथवा पाश्चात्य देशों के किसी भी प्रबुद्ध व्यक्ति के लिये समान रूप से कठिन है। इन प्रश्नों का यूनियन व व्यवस्थापिका के दिन प्रतिदिन के कार्यों से सीधा सम्बन्ध है। ये लोग यूनियन और प्रबन्धक के विषयों से सम्बन्धित निम्नलिखित मामलों में सरकार की जिम्मेदारी निर्धारित करते हैं। वे विषय हैं–

(१) योजना स्तर पर कार्य की दशा निर्धारित करना जैसे सुरक्षा, कार्य के घंटे, स्वास्थ्य, बाल श्रमिक आदि आदि।

(२) द्विपक्षीय पद्धति की सीमा निर्धारित करना, जो कि सरकारी नीतियों व निर्णयों से पूर्णतः भिन्न हो।

(३) सरकार, ट्रेड यूनियन और नियोजक संगठनों के बीच वार्तालाप की पद्धति निर्धारित करना।

(४) हड़ताल एवं ताला बन्दी के हटने या चलने से सम्बन्धित प्रश्नों पर सरकार की स्थिति को पारिभाषित करना।

(५) औद्योगिक प्रश्नों के सम्बन्ध में सामाजिक हितों को ध्यान में रखकर कानूनी एवं सामूहिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत लोकसभा और राजनीतिक दलों की जिम्मेदारी के बारे में संकेत करना।

नियोजित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत कई और प्रश्न खड़े हो जाते हैं। वस्तु स्थिति यह है कि सरकार द्वारा योजना के उद्देश्य व साधनों तथा उनके प्रभावों को ठीक प्रकार प्रगटीकरण न होने के कारण समस्या औरभी जटिल हो जाती है चूंकि इन उद्देश्यों व पद्धतियों का औद्योगिक सम्बन्धों के हर क्षेत्र पर दूरगामी प्रभाव पड़ते हैं, जैसे–न्यूनतम वेतन का निर्धारण, ठीक प्रकार से समतोलीकरण, मंहगाई भत्ता, एक ही उद्योग में तथा भिन्न व्यवसायों के अन्तर्गत वेतन विषमता, इकाई उद्योग तथा राष्ट्रीय वेतन नीति आदि के सम्बन्ध में उपर्युक्त समस्या और भी जटिल हो जाती है, जब हम क्षेत्रीय विभिन्नता तथा एक ही उद्योग के भिन्न भिन्न फर्मों में देने की क्षमता को ध्यान में लाते हैं। न्यायपालिका द्वारा वेतन निर्धारण, बोनस एवार्ड और उत्पादकता लाभ का मापन व वितरण के सम्बन्धों में जो निर्णय लिये जाते हैं, वह योजना हेतु तर्कसम्मत आधारों पर प्रभाव डालते हैं। खेतिहर, अकुशल और असंगठित मजदूरों के न्यूनतम वेतन और संगठित व उन्नत क्षेत्रों द्वारा योगदान की सीमा निर्धारित करने के सम्बन्ध में योजना की प्राथमिकताओं के प्रभाव को नापने के लिये प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय आदि का असर पड़ता है। स्पष्ट है कि जिस हद तक मजदूर संगठन और नियोजक संगठन योजनाओं की प्राथमिकताओं के निर्धारित करने में योगदान दे सकें, वही स्वतः से सहयोग देने का कानूनी आधार बन सकता है। योजना की पद्धति औद्योगिक क्षेत्र में त्रिदलीय सम्बन्धों की पद्धति को मूलभूत दिशा देगी।

सैकड़ों ऐसे विषय जो नहीं लिखे गये है और जन नीति से सम्बन्धित हैं, वे

इस ज्ञापन में स्पष्ट नहीं किये गये हैं, किन्तु मान लिये गये हैं। साथ ही जो उल्लेखनीय हैं वे निम्नलिखित हैं–सामाजिक और राजनीति विचार जैसे केन्द्रीय और राज्य सरकारों का सम्बन्ध, संस्थागत ढांचा, सामाजिक व आर्थिक उद्देश्य, व्यक्ति और समूह के सम्पत्ति के अधिग्रहण एवं निष्क्रमण के अधिकार, संगठित होने के अधिकार, व्यक्तियों के आकांक्षाओं में सन्निहित विरोध उदाहरण के रूप में स्वतंत्रता और समानता, आर्थिक प्रगति के नियमों की आवश्यकतायें, तकनीकी एवं बाजार के स्तर का प्रभाव, कुछ प्रमुख क्षेत्रों जैसे सार्वजनिक, सहकारी एवं लघु उद्योगों को सामाजिक मान्यताओं के अन्तर्गत विशेष सुविधा देने, संसाधनों एवं व्यक्तियों की पूर्ण रोजगार की आवश्यकता, प्रशासन की समस्यायें जैसे–अधिकार, निर्देश एवं प्रतिनिधित्व के केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीकरण, मानवीय क्रिया कलापों के सम्बन्ध में नियमों की सीमितता, न्यायालयों के निर्णय द्वारा कानून के विकास का विस्तार इत्यादि। इन सबके बावजूद भी हमें यह अवगत है कि जिन मान्यताओं को हमने इस संदर्भ में प्रतिपादित किया है, उनके विषय में गम्भीर मतभेद एवं विचार विमर्श हो सकता है इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की मान्यताओं के आधार पर नीतियों एवं श्रम आयोग की अन्तिम अनुशंसाओं के सम्बन्ध में भिन्न निष्कर्ष निकल सकते हैं। हमें यह स्पष्ट नहीं है कि राष्ट्रीय श्रम आयोग किस सीमा तक अपने वर्तमान गठन में आज की सरकार के उद्देश्यों से निर्देशित होगा, वशर्ते कि वह सरकार अपने निर्देशों को स्पष्ट रूप से देने में समक्ष हो, अथवा आयोग अनिर्णीत मामलों में अपने स्वयं के विचार प्रस्तुत करेगा। चूँकि ये सब विषय आयोग के समग्र दृष्टि कोण से मौलिक महत्व के हैं, इसलिये यह विचार किया गया कि अपने अन्तिम ज्ञापन में अपने ठोस सामाजिक नीतियों के आदर्श एवं उद्देश्यों के संदर्भ में एक संक्षिप्त विचार प्रस्तुत किया जाय।

इस दिशा में भारतीय मजदूर संघ बड़े स्वाभिमान पूर्वक कहता है कि इन सब प्रश्नों पर हमारे कोई निजी विचार नहीं हैं, वरन् वे सभी भारतीय परम्परा के अनादिकाल के अनुभव व प्रबुद्धिता के आधार पर निश्चित हुये हैं। हमारा एक पुरातन राष्ट्र है, जिसने असंख्य राजनीतिक उतार चढ़ाव और काल प्रवाह देखे हैं। भारतीय संस्कृति हमको शाश्वत मूल्यों के सिद्धान्त देती हैं। हमारे इस समाज के परिपक्व अनुभव रहे हैं कि सभी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अथवा अन्य विचार प्रणाली व इज्म जिन्होंने हमारे इस प्रकार के परिपक्व विचारों को ध्यान में नहीं रखा है, कालान्तर में असफल हुये हैं और उनका जीवन काल सौ अथवा दो सौ वर्ष का रहा तथा अपने प्रसिद्धि की चरम सीमा दिखाने के पश्चात मृत प्राय हो गये और आज कहीं पर भी देखने को नहीं मिलते। आधुनिक विचार प्रणालियाँ जैसे

साम्यवाद व समाजवाद भी इस प्रकार की आधारभूत एवं मौलिक सिद्धान्तों को प्रगट नहीं करती हैं। दूसरी ओर हमारे राष्ट्र में जीवन के इन शाश्वत मूल्यों को अति प्रिय समझा व अपनाया है, और इस हेतु वह हजार साल के सर्वव्यापी आघातों को झेलने में सभल रहा है। स्वतंत्रता पाने के पश्चात अब समय आ गया है कि हम पुनः अपनी संस्कृति के इन अनोखे पक्षों को प्रसन्नता से स्वीकार करें और पुनः उद्घोषित करें अथवा इन मूल्यों के आधार पर आधुनिक ढंग से प्रगटीकरण करें। भारतीय मजदूर संघ आग्रह करता है कि राष्ट्रीय श्रम आयोग को इस अपने पुरातन राष्ट्र के सर्वोच्च जीवन मूल्यों को, जो कि देन के रूप में मिले हैं, स्वाभाविक ढंग से मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिये।

## राज्य की प्रकृति और उसकी सही भूमिका

आधुनिक काल में राज्य सभी प्रकार के विचार व कार्य प्रणाली पर हावी है। अक्सर राज्य को समाज अथवा राष्ट्र के समकक्ष माना जाता है। और व्यक्ति को इस विश्वास से कि राज्य की कुशलता और संगठन में समाज का हित एवं प्रगति निहित है, राज्य के प्रति उसे क्रमशः अधिक समर्पण करने को कहा जा रहा है। व्यक्ति एवं समूह के ऊपर राज्य के इस घोषणा की बैधता को बारीकी से जांचने की जरूरत है और यह देखने की आवश्यकता है कि क्या राज्य को उन कार्य कलापों के निभाने की योग्यता पर विश्वास किया जा सकता है, अथवा क्या आधुनिक राज्य की कार्य प्रणाली एवं संगठन में कुछ आधार भूत कमियाँ हैं ?

भारत के आधुनिक ऋषियों में से एक श्री अरविन्द ने अपनी ३ पुस्तकों में इस समूचे तत्वज्ञान के आधार पर एवं उससे सम्बन्धित अन्य प्रश्नों पर विवेचन किया है। ये पुस्तकें हैं–The Ideal of Human Unity, Human Cycle, and The Foundations of Indian Culture. उनके विचारों की पूर्ण प्रशंसा व जानकारी इन मूल पुस्तकों के पढ़ने से ही हो सकती है, परन्तु हम ऊपर लिखित विषयों पर उनके कुछ विचारो को ही उद्धृत करते हैं।

'अन्ततोगत्वा वह क्या हैं, जिसके अन्तर्गत राज्य शब्द की कल्पना संगठित समूह से है, जिसमें व्यक्ति के अस्तित्व को मिटा दिया जाता है ? इसका सैद्धान्तिक रूप में अर्थ हुआ कि समूह के उत्थान के लिये व्यक्ति के समर्पण की मांग की जाती है, परन्तु इसका जो व्यावहारिक स्वरूप खड़ा होता है, वह है व्यक्ति का सामूहिक राजनीतिक सैनिकी व आर्थिक अहंकार के प्रति समर्पण होना। जिसके अन्तर्गत कुछ सामूहिक उद्देश्यों एवं आकांक्षाओं की पूर्ति की मांग की जाती है, जिसका व्यावहारिक अर्थ व्यक्तियों के समूह के ऊपर कुछ गिने चुने वर्ग का सत्ताधारी होना है, यह निरर्थक

है कि ये लोग किसी सत्ता धारी वर्ग के हैं अथवा वर्तमान राज्यों में जनता द्वारा अपने व्यक्तित्व से अथवा वातावरण के कारण बने हैं। अपने उद्देश्यों व सिद्धान्तों को वार्तालाप के चमत्कारों के आधार पर अथवा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शक्ति के आधार पर लादे जाने में कोई आधार भूत अन्तर नहीं पड़ता। दोनों प्रकार की पद्धतियों में ऐसी कोई गारन्टी नहीं है, जिसके अन्तर्गत सत्तारूढ़ वर्ग या सत्तारूढ़ संगठन समाज के सर्वोच्च बुद्धिजीवी वर्ग का अथवा अति उत्तम उद्देश्यों का अथवा उच्चतम मूल प्रवत्ति का प्रतिनिधित्व करे।

विश्व के किसी भाग में आधुनिक राजनीतिज्ञ के बारे में ऐसी कोई बात आग्रह पूर्वक नहीं कही जा सकती। वह न ही जन की आत्मा का प्रगटीकरण करता है और न ही उसकी आकांक्षाओं का। समाज में जो औसतन छोटा पन स्वार्थभाव, अहंकार, अपने को धोखा देना आदि है, जिससे वह स्वयं भी सम्बन्धित है, को ही प्रकट करता है तथा वह बहुत हद तक मानसिक अपूर्णता और परम्परागत नैतिकता आदि का ही प्रतिनिधित्व करता है। निर्णय हेतु महत्वपूर्ण विषय उसके सामने आते हैं, किन्तु वह उन्हें उतनी महत्ता देकर नहीं निभाता। बड़े शब्द और उच्च विचार उसके ओठों पर रहते हैं परन्तु वह शीघ्र ही दल के चंगुल में फंस जाता है। विश्व के हर देश में आधुनिक राजनीतिक जीवन में यह दुर्गुण एवं झूठापन पाया जाता है। केवल उन सबकी चमत्कारिक स्वरूप मात्र ही इस बुराई को ढकती है एवं बढ़ाये रखती है, ये बुराइयाँ प्रबुद्ध वर्ग के साथ एक बड़े संगठित रूप में देखी जाती है। यह अभ्यस्तता ऐसी है कि ये लोग हर एक के सामने घुटने टेक देते हैं। उनका यह स्वभाव बन जाता है तथा उनके जीवन की दिनचर्या बन जाती है। फिर भी यही बुद्धिजीवी वर्ग सर्व साधारण के हित का निर्णय करते हैं और इन्हीं हाथों में इस प्रकार के कार्य सौंपे जाते हैं तथा ऐसी संस्थाओं द्वारा जो अपने आपको राज्य कहती हैं, व्यक्ति से मांग करती हैं कि अपनी गतिविधियों को अधिक से अधिक सरकार को सौंपे। वस्तुतः किसी भी प्रकार से अत्यधिक अच्छाई प्राप्त नहीं हो पाती, बल्कि बहुत मात्रा में संगठित रूप में गलतियाँ एवं बुराइयाँ खड़ी होती है। इनके साथ कुछ मात्रा में अच्छाई होती है, जिसके अन्तर्गत ठीक प्रकार की प्रगति होती है, क्योंकि सब प्रकार की कठिनाइयों में भी स्वाभाविक रूप से प्रगति ठीक दिशा में चलती ही है और अन्ततोगत्वा अपने उद्देश्यों को प्राप्त करती है तथा व्यक्ति के अपूर्ण दृष्टिकोण के होते हुये भी यह सम्भव होता है।

यदि सरकारी सयंत्र अच्छे प्रकार से बनाये जाय और उनमें उच्चस्तरीय मस्तिष्क वाले तथा चरित्रवान लोगों का योगदान हो, और यदि कुछ एसे रास्ते अपनाये जा सकें जिसके अन्तर्गत जो कुछ पुरातन सभ्यताओं ने अपनी राजकीय

(सत्ताधारी) वर्ग की उच्च सिद्धान्तों व अनुशासन द्वारा प्राप्त की थी, और एक राज्य व्यवस्था खड़ी की जा सके तो भी राज्य वह नहीं हो पावेगी जिससे 'राज्य' शब्द का भाव प्रकट होता है। सैद्धान्तिक रूप से यह सामूहिक बुद्धिमत्ता और शक्ति का प्रादुर्भाव है, जिसका संगठित स्वरूप जन समुदाय के हित के लिये है। व्यावहारिक रूप से समाज की अथाह बुद्धिमत्ता एवं शक्ति में से राज्य संगठन जो प्रगटीकरण होने देता है, वह बहुत ही सीमित है, परन्तु इसमें भी राजकीय संयंत्र में फंसकर उसकी काफी मात्रा व्यवस्था की गलतियों एवं स्वार्थपरता के कारण नष्ट हो जाती है। निःसंन्देह, वातावरण के अन्तर्गत यही सर्वोत्तम है, जैसा कि प्रकृति का नियम है—बची हुई शक्ति का अति उत्तम उपयोग करती है। परन्तु परिस्थिति और भी खराब हो जायगी। जब उन सभी क्षेत्रों में, जिनमें राज्य कुछ नहीं करता, व्यक्ति को अपनी क्षमताओं के प्रगटीकरण का अवसर नहीं दिया जाता। साथ ही परिस्थिति उससे भी अधिक खराब हो जायगी, जब उन सभी कार्यों में जिनमें राज्य के पास करने की न बुद्धिमत्ता, साहस है और न प्रयास है, सर्वोच्च व्यक्तियों को अपनी इमानदारी, क्षमता एवं सिद्धान्तवादिता का उपयोग नहीं करने देती। मात्र यही व्यक्ति की वह क्षमता है, जो सामूहिक प्रगति के लिये व्यावहारिक रूप से प्रभावी संयंत्र सिद्ध होती है। कभी-कभी राज्य इस शक्ति के सहयोग के लिए आती है और तब यदि यह सहयोग अनुचित नियंत्रण के रूप में लादा नहीं गया तो साध्य की प्राप्ति के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है। कभी-कभी यह राज्य नियंत्रण में रोड़ा बनकर खड़ी हो जाती है, और प्रगति को रोक देती है। अक्सर ऐसा भी होता है कि जो यह नवीन वस्तु या पद्धति का निर्माण किया जा रहा है और सरकारी सहयोग उसके लिये अनिवार्य होता है, सहायक न होकर उसके सामने एक संगठित विरोध एवं घर्षण के रूप में खड़ा हो जाता है। परन्तु हम जिस ओर बढ़ रहे हैं, उससे एक संगठित राज्य शक्ति का प्रादुर्भाव होता है और ऐसी विशाल अपराजय एवं पेचीदा राज्य गति-विधियां व्यक्ति विशेष के प्रयत्नों को समाप्त कर देती हैं और उसको असमर्थता तथा बौनेपन का बोध कराती हैं। इससे राजकीय संयंत्र की कमियों, सीमाओं तथा अकुशलता पर जो अनिवार्य अंकुश एवं दिशा चाहिए, वह समाप्त हो जाती है।

संगठित राज्य, न ही समाज का सर्वोच्च मस्तिष्क है और न ही असंख्य समूहों की शक्ति का समुच्चय है। अपने संगठित क्रिया-कलापों में से महत्वपूर्ण अल्प संख्यक की सोचने और काम करने की शक्ति को वह छोड़ देता है या दबा देता है। अक्सर यह देखा गया है कि उन अल्प संख्यकों की शक्तियां उस काल में सर्वोच्च होती है और भविष्य के लिये विकासशील होती हैं। राज्य का सामूहिक अहंकार किसी एक सम्प्रदाय के अहंकार से कम होता है। इस अहंकार का क्या स्वरूप है? इसका स्वरूप तो मानवता की दूर दृष्टि एवं अन्तरात्मा के ऊपर जिस रूप से थोपा

गया है, उसका भद्दापन अभी अभी दिखाई दिया था। सर्वसाधारण माना जाता है कि व्यक्ति की आत्मा है और किसी न किसी प्रकार से इस आत्मा की कमजोरियों को वह नैतिकता के आधार पर अथवा किसी सामाजिक मान्यता के भय से पूरा करता है। इसमें भी यदि वह असफल रहता है तो उसे बिरादरी के नियम के भय से जो उसे सर्वसाधारण रूप में अपनाना पड़ता है या बचना पड़ता है, पूरा करना पड़ता है। इतना ही नहीं इस नियंत्रण से बचने में जो कठिनाई है, वही उसके ऊपर काफी अंकुश है; जो बहुत ही उग्र (हिंसक) अथवा धूर्त (चालबाज) होते हैं, उनको छोड़कर सर्वसाधारण सभी पर यह लागू होता है। परन्तु राज्य एक सर्वशक्तिमान इकाई है, जो भीतरी तिकड़मबाजी और बाहरी अंकुशों से कम से कम प्रभावित होती है। इसकी कोई आत्मा नहीं होती। यह एक सैनिकी, राजनैतिक व आर्थिक सत्ता है। परन्तु कुछ अल्प एवं अविकसित मात्रा में बुद्धिमत्ता एवं नीतिज्ञता भी प्रकट करती है, किन्तु ऐसा अनिवार्य नहीं है। दुर्भाग्य वश यह अपने अविकसित बुद्धिमत्ता का सर्वोच्च उपयोग कुण्ठापन (मोथरापन) से करती है, और इस हेतु वह आकर्षक नारे एवं सनसनी खेज कहानियों, आधुनिक काल के राजकीय दर्शन अथवा गलत तरीके से विकसित हुई नीतियों द्वारा प्रकट करती है।

आधुनिक युग में कुछ दिशाओं में अवनति होने के बावजूद भी काफी विकास हुआ है। वर्तमान काल में राज्य अपने अस्तित्व को प्रगट करने के लिये व्यक्ति एवं समूह की सामान्य आर्थिक एवं पाशविक उत्थान के संगठन की आवश्यकता का अनुभव करती है। परन्तु अब राज्य को व्यक्ति स्वतः के उत्थान एवं अप्रत्यक्षतः समूह के नैतिक विकास की आवश्यकता का अनुभव होने लगा है। आधुनिक सभ्यता की सबसे महत्वपूर्ण कार्य कलापों में से एक के अन्तर्गत राज्य अपने आपको एक नैतिक एवं प्रबुद्ध के रूप में विकसित करने का प्रयत्न कर रहा है। मानवता के ऊपर यूरोप की विनाशकारी घटनाओं के परिणाम ने राज्य को अपने वाह्यस्वरूप के अन्तर्गत स्वतः को प्रबुद्ध एवं नैतिक इकाई के रूप में खड़ा करने के लिये बाध्य कर दिया है। परन्तु राज्य का यह दावा कि व्यक्ति की सारी स्वतन्त्र क्रिया-कलापों को वह आत्मसात करले जैसे जैसे ये नये विचार और नई धारायें बढ़ती जा रही हैं, वैसे-वैसे यह भी भावना बढ़ रही है कि व्यक्ति की स्वतन्त्र क्रिया पर वह छा जाय? यद्यपि यह अभी अपरिपक्व अवस्था में है। परन्तु यदि यह पूर्ण हो गया तो निश्चित रूप से मानवीय प्रगति अवरुद्ध हो जायगी अर्थात् एक संगठित जड़ता व्याप्त हो जायगी। जैसे रोमन साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् ग्रीको रोमन विश्व के साथ हुआ है।

राज्य की यह मांग कि मानव अपने व्यक्तित्व को समाप्त करके अपनी स्वतंत्र क्रियाओं को एक संगठित व सामूहिक गतिविधियों के लिये अर्पित कर दें हमारे

उच्चतम उद्देश्यों की मांग से बिलकुल भिन्न है। यह तो व्यक्तिगत अहंकार के वर्तमान स्वरूप को त्यागकर सामूहिक अहंकार में परिवर्तित करना है, जो किसी प्रकार से भी व्यक्तिगत अहंकार से श्रेष्ठ नहीं है बल्कि कई तरह से उच्चतम व्यक्तिगत अहंकार से तुच्छ है। परन्तु परहितार्थ का आदर्श, व्यक्तिगत त्याग का अनुशासन और अपने बन्धुओं के बीच में एकात्मकता की भावना का निर्माण साथ ही मानवता में सामुहिक भावना के निर्माण के सम्बन्ध में किसी प्रकार का विवाद नहीं है। साथ ही इन उच्च उद्देश्यों का यह अर्थ नहीं है कि व्यक्ति राज्य में तिरोहित हो जाय, न ही इनकी प्राप्ति करने का यह तरीका है। व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को न दबाने और न उसे विकृति करना ही सीखे। बल्कि मानवता की पूर्णता में अपने व्यक्तित्व की पूर्ति समझे। मनुष्य यह जरूर सीखे कि अपने व्यक्तित्व को नष्ट एवं विकृति न करते हुये भी अपने अहंभाव को इतना विस्तृत कर ले कि वह किसी महान उद्देश्य की पूर्ति में समाहित हो जाय। एक राज्य पद्धति के द्वारा व्यक्तित्व का समाप्त किया जाना पूर्णता से बिलकुल भिन्न है। हमारे सामुहिक विकास के लिये राज्य एक सुविधा है, एक भद्दी सुविधा। इसे अपने में ही एक उद्देश्य नहीं मान लेना चाहिए।

राज्य कल्पना का यह दूसरा दावा कि मानवीय प्रगति के लिये एक संगठित राज्य पद्धति सबसे अच्छी प्रणाली है भी एक अतिशयोक्ति एवं कल्पना मात्र है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है और उसके विकास के लिये समाज अनिवार्य है। क्या यह सत्य है कि राज्य द्वारा नियन्त्रित प्रक्रिया व्यक्ति को पूर्ण विकास करने तथा समुदाय के पारस्परिक साध्य के योग्य है ? नहीं, यह असत्य है। किन्तु यह सत्य है कि उचित सुविधा देकर कठिनाइयों व अयोग्यताओं को दूर करके यह समुदाय में व्यक्ति के सहयोगी गतिविधियों के योग्य है। यहाँ राज्य की वास्तविक उपयोगिता समाप्त हो जाती है। मनुष्य सहयोगिता की क्षमता की सम्भावनाओं को मान्यता देना अंग्रेजी व्यक्तिवाद की कमजोरी थी। राज्य द्वारा सामुहिक गतिविधियों की क्षमताओं को कठोर गतिविधियों के नियंत्रण में मोड़ देना एक बहाना है, जो कि सामुहिकीकरण के टूटानिक (Teutonic) विचार की कमजोरी है। जब राज्य समुदाय के सामुहिक गतिविधियों को अपने नियंत्रण में लेने की कोशिश करता है, तब यह एक राक्षसी यंत्र व्यवस्था बनाकर अपने आपकी भर्त्सना करता है। क्योंकि यह यंत्र व्यवस्था मनुष्य मात्र की स्वतन्त्रता, प्रेरणा एवं गम्भीर उत्थान को नष्ट कर देती है।

राज्य, सामूहिक ढंग की क्रूरता से व्यवहार करने के लिये बाध्य होती है, ऐसा करना स्वतंत्रता, सामंजस्यता, बुद्धिमत्ता अथवा मुल प्रवत्ति के भिन्न भिन्न कार्य-कलापों, जो कि स्वाभाविक उत्थान के लिये उचित हैं, के अयोग्य है। क्योंकि राज्य एक जीव प्राणी नहीं, यह एक यंत्र है और यंत्र के समान, बिना चतुराई, रुचि,

नाजुकता एवं प्रेरणा के काम करता है। यह उत्पादन करता है, परन्तु मानवता तो उत्थान और निर्माण के लिए क्रियाशील होती है।

जब तक राज्य मनुष्य जीवन और उसके उत्थान के लिये अनिवार्य है, राज्य के कार्यकलाप सामूहिक गतिविधियों, कठिनाइयों को दूर करने तथा सभी प्रकार के घातक घर्षण एवं बरबादी को बचाने आदि सुविधाओं को देने के लिए होने चाहिये। ध्यान रहे कि सभी प्राकृतिक क्रियाओं में घर्षण एवं बरबादी अनिवार्य एवं लाभ-दायक है। राज्य के लिये अनिवार्य है कि वह अन्याय को दूर करे तथा हर व्यक्ति को उसकी क्षमताओं के समाधान हेतु तथा उसकी प्रकृति के अनुसार विकास के लिये न्यायिक एवं समान अवसर दें। अभी तक आधुनिक समाजवाद के उद्देश्य ठीक और अच्छे हैं, परन्तु व्यक्ति के उत्थान में आजादी में अनुचित हस्तक्षेप घातक है अथवा हो सकता है। सामूहिक गतिविधियाँ भी हानिकारक हो सकती हैं, जब वह व्यक्ति उत्थान की आवश्यकता के अनुकूल नहीं होती। साथ ही सभी के लिये व्यक्ति उत्थान के बिना कोई सही और स्थाई कल्याण नहीं हो सकता। वह व्यक्ति को सामूहिक अहंकार में स्वाहा कर देता है और इतना स्थान तथा प्रेरणा तक नहीं छोड़ता जितना कि मानव के पूर्ण विकास हेतु अनिवार्य है। जब तक मानवता का पूरा विकास नहीं होता, जब तक वह उत्थान की ओर जाना चाहती है और जब तक यह परि-पूर्णता के अयोग्य है, तब तक समूह के सभी प्राणियों का स्थायी उत्थान नहीं हो सकता। सभी अधिनायकवादी विचार व्यक्ति को अनावश्यक रूप से आधीन बनाना चाहते हैं। वस्तुतः एक स्थाई परिस्थिति, जो कि वर्तमान काल में पायी जाती है या जिसकी वह स्थापना करना चाहता है और जिसके अन्तर्गत समाज में कोई भी गम्भीर परिवर्तन उसकी शान्ति एवं सुरक्षा के विरुद्ध एक अपराध माना जायगा, को पाना चाहता है हमेशा यह एक व्यक्ति ही है, जो प्रगति करता है और शेष सभी को प्रगति के लिए बाध्य करता है। सामुहिक जीवन अपने आप में कोई प्रेरणा नहीं रखता। समूह की प्रगति, उत्थान तथा मनुष्यमात्र की अनुभूति व्यक्ति को सुख का आभास कराती है, तथा उसको समाधान देती है और यह ऐसा ही होना चाहिये, जब तक कि राज्य एक स्थूल और आर्थिक इकाई है, बावजूद इसके कि वह एक जीवित अन्तरात्मा न हो।

हमारा यह उपर्युक्त विचार राज्य की भूमिका एवं उपयोगिता का प्रमाणित विचार है। राज्य एक यन्त्र है, जीवधारी प्रणाली नहीं है। यह उत्पादन करता है पर उसके उत्थान के कोई सिद्धान्त नहीं है। उत्थान के इस सिद्धान्तों के बीज मनुष्य परिवर्तनशील स्वभाव एवं हर प्रणाली के अनोखेपन में निहित है। राज्य और व्यक्ति

की भूमिका पर ऊपरी व पाश्चात्य दृष्टिकोण यह निर्णय निकालता है कि चूँकि भारतीय विचार व्यक्ति की महत्ता की प्रशंसा करता है। यह निजी सम्पत्ति के विचार को स्वीकार करता है। इससे बढ़कर और कोई झूठ नहीं हो सकता। यह केवल भारतीय पाण्डित्य की गम्भीरता का मजाक उड़ाना है। भारतीय विद्वता के अध्ययन का अर्थ हुआ सन्यास सांसारिक माया अथवा मोहजाल के विचारों का अध्ययन, जो कि भौतिकवादी एवं सम्पत्ति के अपनाने एवं स्वार्थपरता की वाणी से सम्बन्धित है। भारतीय विचार में विवेचनात्मक केन्द्र बिन्दु यह है कि व्यक्ति अपने जीवनकाल में अपनी सुख सम्पदा के उद्देश्यों को एक स्थूल स्वरूप देना चाहता है और चूँकि यह व्यक्ति के व्यवहार एवं दृष्टिकोण में निहित होती है, जिससे सामाजिक गतिविधियाँ एक विशेष स्वरूप ग्रहण करती हैं। अतः व्यक्ति स्वभाव की बनावट में जो उसके असंख्य स्वरूप बनते हैं उनको क्या स्थान अथवा सम्मान दिया जाय? स्वतन्त्रता और नियम तथा भावात्मक एकता एवं आर्थिक समानता के बीच के झगड़े असंख्य स्वरूप की क्षमताओं एवं वास्तविकताओं पर निर्भर करते हैं। राज्य की गतिविधियों एवं व्यक्ति स्वतन्त्रता की मर्यादाओं के बीच की सीमायें तभी जान सकते हैं, जब हम अपने आत्म विकास, सच्चाई एवं सत्ता के नियमों को समझें। इन नियमों की सूझ बूझ व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार के समूह और मानवता के बीच के ऊपरी झगड़ों के ताल-मेल के आधार पर है। मनुष्य मात्र की सम्पूर्ण समृद्धि बढ़ाने का स्वाभाविक रूप से अति उत्तम रास्ता यह है कि जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अपना विकास कर सके, सभी व्यक्तियों के पूर्ण विकास में समुदाय एवं समूह का विकास हो और सभी समूह के बहुमुखी और अस्तित्व क्षमताओं का विकास सम्भव हो, जिसमें वह अपनी विभिन्नताओं का भी प्रगटीकरण कर सके और इस प्रकार सभी विभिन्नताओं के पूर्ण विकास में जन के सामूहिक जीवन का विकास हो। 'विभिन्नता में एकता' के सिद्धान्त का यही अर्थ है।

## प्रकृति के नियम

मानवता को अपनाने के लिए भारतीय प्रबुद्धता के ऊपर लिखित निर्देशों के अनुसार क्रमिक उत्थान के सिद्धान्तों का हमेशा आग्रह रखा है और भिन्न-भिन्न अवस्थाओं पर अनिवार्यता रखी है। इस दिशा में प्रकृति के रहस्यों को खोलने हेतु अरविन्द कहते हैं, प्रकृति उत्पादन नहीं करती, कोई एक पद्धति या बाहरी नियम नहीं थोपती। यह जीवन के विकास के लिए अपने भीतर से ही प्रकट होती है और अपने प्राकृतिक नियमों और विकास को अपने आग्रह से कराती है। यह नियम अपने वातावरण से ही उत्पन्न होते हैं। अपने अस्तित्व के मौलिक सिद्धान्त के ऊपर व्यक्तिगत, राष्ट्रीय धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक आजादी निर्भर करती है। अपने अस्तित्व के नियमों के पालन करने, अपनी प्राकृतिक परिपूर्णता को पालन करने हेतु विकास तथा वाता-

वरण के साथ प्राकृतिक और स्वतन्त्र रूप से सामञ्जस्य बैठाने को ही आजादी कहते हैं। यह स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता अव्यवस्था, प्रयत्न, द्विविधा और बरबादी के नुकसान और हानियों इन नियमों के दुरुपयोग से खड़ी होती हैं तथा व्यक्ति व्यक्ति के बीच तथा समूह समूह के बीच एकात्म भाव की अनुपस्थिति एवं कमजोरी से यह पैदा होती हैं, क्योंकि व्यक्ति-समूह एक दूसरे के परस्पर उत्थान के स्थान पर बन्धु-समूह स्वतन्त्र विकास का हनन होता है तथा अपने अधिकारों का हद से बाहर आग्रह एवं उपयोग करता है। यदि एक सही आध्यात्मवादी और भावात्मक एकता प्रभावी होती तो स्वतन्त्रता को किसी भी प्रकार के विनाश एवं हानियों का सामना न करना पड़ता। क्योंकि स्वतन्त्र व्यक्ति जो कि एकता से अनुरक्त है, अपने आप में अपने विकास को अपने बन्धुओं के विकास में पूर्णत: सामञ्जस्य बैठाने की आवश्यकता से बाध्य होता और बन्धुओं के स्वतन्त्र विकास के बिना अपनी पूर्णता का अनुभव न करता। हमारे मस्तिष्क और मनोबल की वर्तमान कमजोरियों और अनजाने पन के कारण ही नागरिक व सैनिक अनुशासन से हमें शान्त करने और बाहर से बाध्य करने के लिये विवश किया गया। कड़े नियमों और कठोरता से सुगम लाभ तो स्पष्ट ही है, परन्तु इतनी हीं मात्रा में उसके दुष्परिणाम भी हैं। वह पूर्णता जो इसके पैदा करने में सफल होती है यांत्रिकी प्रकृति की है और इसके थोपने से जो माहौल बनता है, वह कृत्रिम होता है। और जब इसका नियंत्रण कम कर दिया जाता है या हटा दिया जाता है तो वह टूट जाता है। इसके अधिक थोपने और लादने पर स्वाभाविक उत्थान के सिद्धान्त को निरुत्साहित होना पड़ता है, क्योंकि स्वतन्त्रता जीवन के उत्थान के लिये एक सही तरीका है और इसकी अपूर्णता उसके वास्तविक उत्थान को समाप्त कर देगी। हम जीवन को जब दबाते हैं अथवा नम्ने के स्तर प्रमाणित करते हैं, तो यही उसका विनाश है। हम अधिक सैनिक अनुशासन से स्वाभाविक प्रेरणा और उसके स्वत: की आदत को दबाते हैं। लचीलेपन के समाप्त अथवा कम होने पर अचेत व्यक्तित्व का बाहरी स्वरूप ठीक दिखाई देता है किन्तु भीतर से नष्ट रहता है। नियंत्रण जो, कि अपना नहीं है और जिसे हमारी प्रकृति ग्रहण नहीं कर सकती के लम्बे काल तक बने रहने के मुकाबले में अराजकता अच्छी है। सभी दबाने वाले और रोकने वाले नियम क्षणिक उपयोग के हैं। और सही नियमों के स्थान पर रखे गये हैं। सही नियम स्वतन्त्रता के अन्तर्गत होने चाहिये न कि उसके ऊपर रुकावट के रूप में खड़े होने चाहिए। मनुष्य मात्र स्वाभाविक रूप से एवं सचेत होकर उसी अनुपात में प्रगति करता है, जितना कि नियन्त्रण तथा नियम बालक की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में कहा जाता है। वह अपनी पूर्णता को तब पहुंचेगा, जब व्यक्ति, मानव मात्र के साथ आध्यात्म रूप से होने और उसके एक रूप जानने के बारे में ज्ञान प्राप्त करेगा और तभी वास्तविक स्वतन्त्रता के नियन्त्रण का ढाँचा समाज के स्वाभाविक

नियमों का रूप धारण करेगा।

मनुष्य विचार स्वातन्त्र्य, जीवन और उसकी गतिविधियों की स्वतन्त्रता चाहता है, ताकि वह उत्थान कर सके, अन्यथा वह यथास्थिति में एवं कुण्ठित बुद्धि का बना रहेगा। यदि व्यक्ति की तार्किक शक्ति एवं बुद्धि का अपूर्ण विकास हुआ तो वह अपने समूह के अन्तर्गत भेड़िया-धसान में ही विकास करने के लिये मान्यता देगा, क्योंकि अल्प विवेकी मस्तिष्क ऐसा ही करता है। प्रकृति में अल्प विकसित प्रक्रिया ऐसा ही व्यवहार करती हैं। जब व्यक्ति अपने तर्क एवं इच्छा शक्ति का विकास करता है, उसे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और अपने अनुरूप बदलने की क्रियाओं की आवश्यकता है और समाज को उसके लिये स्थान देना चाहिए एवं वातावरण मुहैय्या करना चाहिए, कम से कम यह तब तक देना चाहिये, जब तक वह अपने विकास से दूसरों एवं सम्पूर्ण समाज को नुकसान नहीं पहुंचाता। यदि मानव मन को एक पूर्ण विकास एवं स्वतन्त्र गतिविधियों के लिये छूट दी गई तो स्वतन्त्रता की आवश्यकता असंख्य दिशाओं में फैलेगी, जो कि इस विकास में ही निहित है और यदि केवल विचार और तर्क में स्वतन्त्र गतिविधियों की अनुमति दी गई तथा जीवन के अन्तर्गत बुद्धिमत्तापूर्ण स्वतन्त्र गतिविधियो को बहुसंख्यीय नियन्त्रणों से रोका गया तो एक असहनीय विरोधाभास एवं मिथ्यापन पैदा होगा। व्यक्ति कुछ काल तक इन विरोधाभास एवं मिथ्यापन को इसलिये सहेगा, कि उसे व्यवस्था आर्थिक उत्थान कुशलता के ढंग एवं तर्क के वैज्ञानिक समाधान नजर आते हैं क्योंकि समाज में अधिनायकवादी व्यवस्था ऐसा पैदा करती है पर जब इसके लाभ प्रचलित हो जायेंगे और इसकी हानियाँ अधिक से अधिक अनुभव में सम्मुख आयेगी, तो समाज के ठीक दिशा में सोचने वाले (विचारवान) व्यक्तियों में असन्तोष एवं विद्रोह पैदा होगा, जो कि जन समुदाय में फैल जायगा। इन परिस्थितियों में यह प्रबुद्ध और जीवमान असमाधान अराजकतावादी विचार को जन्म देगा। जो कि इस अन्तरात्मा के बहुमुखी आवश्यकताओं को ठीक रुप से भाता है। और इसका वाह्य प्रगटीकरण विद्रोह को जन्म देता है। ध्यान रहे कि अराजकवादी तत्व समाजवादी व्यवस्था में पंचमांगी के रूप में काम करते हैं। इस संघर्ष से राज्य केवल उस शिक्षा प्रणाली के माध्यम से लड़ सकता है, जो कि जीवन में एक स्थिर रूप में अपनायी जाती है और जो नागरिकों के विचारों, दृष्टिकोण प्रवृत्तियों में एक रूप पैदा करने के लिये ढूंढ़ी जाती है, तथा जो प्राचीनकाल में अविकसित अवस्था में अपनाई गई थी और जो स्वतन्त्रता और विचार करने की आजादी को दबाकर सभी व्यक्तियों को एक प्रकार के मस्तिष्क, विचार एवं भावनाओं के पैदा करने के लिये अपनायी गई थी। परन्तु यह इलाज एक तर्क संगत समाज में अपने में ही विरोधाभाषी एवं अप्रभावी है और जिस दुर्गुण से संघर्ष करना चाहती है, उससे भी खराब है। परन्तु यदि विचार की इस प्राथ-

मिकता से इनकार किया जाता है तो यह तर्क एवं तर्क संगत समाज के सिद्धान्त के काल का अन्त है। मनुष्य एक प्रबुद्ध प्राणी है, इसको अपने मस्तिष्क और इच्छा शक्ति के उपयोग की अनुमति न दी गई अथवा एक सीमित एवं बधी रूप में दी गई तो उसका विकास रुक जायगा और वह एक पशु अथवा कीड़ों की श्रेणी के समान हो जायगा।

उपर्युक्त प्रमुख दोषों के कारण समाजवादी राज्य अपूर्णता का शिकार बने बिना रह नहीं सकता और एक नवीन विचारधारा के उत्थान के पूर्व ही उसका नाश होना अवश्यम्भावी है। पहले से ही व्यक्ति के जीवन पर राज्य व्यवस्था का दबाव इस हद तक पहुँच चुका है, कि वह असहनीय है। यदि यह जैसा है, वैसा चलता रहता है, जिसके अनुसार व्यक्ति का जीवन कुछ चन्द लोगों द्वारा नियन्त्रित होता है और उस स्वरूप का नहीं, जिसका वह बहाना करता है और जिसके अन्तर्गत यह सामूहिक इच्छा एवं तर्क से नियन्त्रित होता है तो यह स्पष्ट रूप से अप्रजातांत्रिक है अथवा नाम मात्र को प्रजातांत्रिक बना रहेगा। यही इसका खोखलापन है, जिसके अन्तर्गत अराजक तत्व इसके अस्तित्व पर हमला करेंगे। इतना ही नहीं यदि यह समाजवादी राज्य वास्तविक रूप से प्रजातांत्रिक बन जाय, जिसके अनुसार बहुमत की सहमति के अनुसार तर्क संगत इच्छा प्रगटीकरण करे तो भी आन्तरिक कठिनाई दूर नहीं होगी। वस्तुतः किसी भी प्रकार का सही विकास सम्भव नहीं है और यह असम्भव कल्पना को ही प्रकट करता है, जिसके अन्तर्गत सामुहिकीकरण जीवन को न केवल कुछ आधारभूत सिद्धान्तों और अपनी मुख्य दिशाओं के नियन्त्राण का बहाना करता है। जिसे हर संगठित समाज करना चाहता है। इसका उद्देश्य विस्तृतरूप में सम्पूर्ण रूप से वैज्ञानिक नियन्त्राण ही है और जीवन के हर विस्तृत पहलू पर करोड़ों लोगों के स्वतन्त्र तर्क संगत इच्छा की सहमति दिखाना ही अपने में विरोधाभास है। संगठित समाज कितना ही पूर्ण हो, बहुमत एवं अल्पमत की इच्छा से व्यक्ति स्वातन्त्र्य का दबना या दबाना उपस्थित रहेगा। और यह अपने सिद्धान्तों को दूषित करने वाला प्रमुख दुर्गुण है। इससे भी अधिक भयंकर यह हो सकता है, क्योंकि जीवन का सम्पूर्ण मशीनीकरण जीवन के सम्पूर्ण वैज्ञानिक नियन्त्राण से ही लाया जा सकता है। राज्य कल्पना और उसके प्रयोग में यन्त्रीकरण की प्रवृत्ति ही स्वाभाविक कमजोरी है। पहले से ही यह वह कमजोरी है, जिस पर व्यक्तिवादी विचारकों और अध्यात्मवादी विचारकों की दृष्टि ने संकेत करना शुरू कर दिया है। और इस विजय का आग्रह राज्य कल्पना के अधिक प्रयोजन के अन्तर्गत बनना ही चाहिये। यह तर्क की स्वाभाविक कमजोरी है कि यह जीवन को नियन्त्रित करता है, और प्रवृति को दबाकर एक तर्क संगत व्यवस्था को लादना चाहता है।

जीवन भौतिकी ब्रह्माण्ड के नियन्त्राण से भिन्न है और इस नियन्त्राण के साथ तर्क ने सफलतापूर्वक निर्वाह किया है, क्योंकि यह यांत्रिकी स्वभाव का है और स्थायी जगत सम्बन्धी व्यवहार के चक्र में स्थिर रूप से चलता है। जबकि दूसरी ओर जीवन गतिशील, प्रगतिशील एवं परिवर्तनशील शक्ति है। और यह शक्ति मानववाद की आत्मा को बहुरूप में प्रकट करती है। तथा जब यह प्रगति करती है, अपने सूक्ष्म भिन्नताओं एवं आवश्यकताओं तथा अभिन्नताओं से अधिक से अधिक सजग होती जाती है। जीवन अनेक पक्षों के विकास एवं आलिंगन में निहित है और ये वस्तुयें आपस में विवादग्रस्त है और ऐसा देखा गया है कि इनमें पूर्ण विरोधाभाष भी है इन विरोधाभाषों में एकता के कुछ स्थायी आधार और सिद्धान्त, संराधन के कुछ व्यावहारिक तन्त्र में, जिसके अन्तर्गत विरोधाभास एवं संघर्षों को छोड़कर सामञ्जस्य का आधार ढूढ़ने चाहिये तथा सक्रिय जीवन विकास में मानवता के सर्व साधारण उद्देश्यों को खोजना चाहिये। जिसका अर्थ है जीवन के द्विविधापूर्ण कष्टदायक, अस्पष्ट गतिविधियों तथा मन की नादानी एवं जड़ पदार्थ के गूढ़ तत्वों के साथ प्रकृति के समझौता का होना। यह तभी सही रूप से तथा समाधानपूर्वक किया जा सकता है, जब आत्मा अपने आपको उच्चतम एवं परिपूर्ण वास्तविकता में पाती है। और अपने जीवन मूल्यों के परिवर्तनों को अपनी आत्मा के परिवर्तनों के साथ प्रभावित करती है, क्योंकि ऐसा होने पर वह अपने आपको अध्यात्मिक सत्य के साथ एक रूप हो जायगी, जो कि आपसी मान्यता, और संराधन के आधार पर प्राप्त होंगी। अध्यात्मवाद एक सत्यता है, तथा इसका प्रगटीकरण सभी छिपे हुए अथवा प्रशंसनीय स्वरूपों में निहित है, जिनके अन्तर्गत ठीक प्रकार के आकार और सम्बन्ध पाये जाते हैं। विवेचन करने की प्रक्रिया ऊपर लिखे दोनों स्वरूपों के बीच है। इस जीवन को बुद्धि से अवलोकन करना और समझना ही इसका अर्थ है तथा इसकी वह दशा खोजनी है, जिस ओर यह गतिशील है। अथवा जो इसके अशने विकास के नियम हैं। भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों को स्थाई रुप से अपनाना इसके लिये लाभप्रद है। ध्यान रहे कि भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण अपूर्ण रूप से ही सत्य है और इनसे पद्धतियां निर्माण होती हैं जो कि जड़ पदार्थ के सम्पूर्ण सत्य के भाव को प्रगट नहीं कर सकती। जड़ जगत की सम्पूर्ण सत्यता तर्क संगत नहीं है, बल्कि अध्यात्मवादी है।

न्याय संगत विचार, एक पक्षीय प्रवृत्ति तथा किसी भी वाद (इज्म) के द्वारा आत्मा को प्रकट करने की अक्षमता के अलावा ऐसा प्रतीत होता है कि हम एक मार्ग ढूंढ़ पाते हैं, जिसके अन्तर्गत इस अन्तरात्मा को बचाने की बात निहित है। ध्यान रहे कि आत्मा सभी प्रकार की श्रेणियों से ऊपर है। समस्या का निदान तर्क में नहीं, अपितु व्यक्ति की आत्मा और उसकी आत्मिक प्रवृत्तियों में निहित है। केवल मात्र

सम्पूर्ण मानववादी व्यवस्था, आध्यात्म तथा उसकी अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता के आधार पर ही बनायी जा सकती है। आध्यात्मवाद जो तर्क संगत ज्ञान से बड़ा है। मनुष्य की चेतन शक्ति को प्रकाशित करता है और उसके स्वार्थ प्रेरक विरोधाभास तथा फूट में सामञ्जस्य पैदा करता है। एक प्रखर बन्धु भाव तथा स्नेह भाव के अज्ञात नियम से ही सम्पूर्ण सामाजिक विकास का आधार सम्भव है और इस पक्ष का कोई और पक्ष स्थान नहीं ले सकता। परन्तु यह बन्धु भाव व स्नेह भाव उन आधार भूत प्रेरणा भावों तथा तर्क से आगे नहीं बढ़ पायेगा, क्योंकि यह सब भाव विरोधाभाषी तर्क और फूट डालने वाले भावों से समाप्त किये जा सकते हैं, एवं कम किये जा सकते हैं। साथ ही इन भावों को मनुष्य के उस मनोभूमिका में नहीं पाया जायगा, जहाँ पर बहुत अधिक कामुकता से संघर्ष करना पड़ता है। यह केवल आत्मा के जड़ मूल में ही पाया जा सकता है। अपने अस्तित्व की वास्तविक सत्यता, भातृ भाव या ऐसा कहा जाय जो भातृ भाव के व्यावहारिक एवं सांसारिक भाव से ऊपर है, के आधार पर 'स्नेह भाव' है। अधिक शान्तिमय एवं स्थायी प्रेरक शक्ति, आध्यात्मवादी बन्धुभाव के एकात्मकता की आन्तरिक अनुभूति को प्रकट करती है। केवल इसी ढंग से अहंकार भाव दूर हो सकता है और मानव जाति में ईश्वर भाव के साथ सही विलीनीकरण को ध्यान में रखकर एक ईश्वर प्रदत्त व्यक्तिवाद की खोज को पाना है। क्योंकि हर प्राणी में आत्मा, अन्तरात्मा और ईश्वर है, तथा उसमें प्राकृतिक विभिन्नताओं की एकता के भाव ही निहित हैं और यह प्रकृति एवं व्यक्तिजीवन की परिपूर्णता की अनुभूति है, जोकि प्रकृति और सम्पूर्ण जीवन में पायी जाती है।

यह एक ऐसा उपाय है, जिस पर इतराज किया जा सकता है कि इसके अनुसार एक अच्छे मानव समाज की परिपूर्णता, जाति के भावी विकास में ही काफी देर से सम्भव होगा। क्योंकि इसका अर्थ है कि तर्क द्वारा बनाई गयी कोई यंत्रणा अथवा व्यवस्था मनुष्य अथवा समुदाय को सम्पूर्ण नहीं बना सकती है। मनुष्य के स्वभाव में ही एक भीतरी परिवर्तन की आवश्यकता है, जो सभी के द्वारा सम्भव नहीं, परन्तु कुछ लोग ऐसा अवश्य कर सकते हैं। यह निश्चित नहीं है, परन्तु यदि यह हल नहीं है, तो कोई हल हो ही नहीं सकता और यदि यह रास्ता नहीं है तो मनुष्य मात्र के लिये और कोई रास्ता नहीं है। पृथ्वी में विकास का क्रम मनुष्य मात्र से आगे है, जैसा कि यह पशुओं से आगे है और एक ऐसी महान जाति का जन्म होना चाहिये, जो अध्यात्मिक परिवर्तन के योग्य है। जीवन को एक नये प्रकार का जन्म होना चाहिये, जो दैवी जीवन के समीप हो। यथा यह निर्णय करने की कोई तर्क संगत आवश्यकता नहीं कि चूँकि परिपूर्णता तुरन्त सम्भव नहीं; इसलिये इसे शुरू ही न किया जाय। मानवता की आध्यात्मवादी दृष्टिकोण की ओर एक निर्णायक

परिवर्तन के लिये यदि एक स्थायी नियमित मार्गदर्शन प्राप्त करने पर भी परिपूर्णता सम्भव न हो और कुछ अग्रसर मनुष्यों द्वारा परिपूर्णता सम्भव हो तो शेष मानव जाति को उनके पद चिन्हों पर चलने देना ही श्रेयस्कर होगा। इसके प्रारम्भ होने से एक प्रभाव दिखाई देगा, जिसके अनुसार मानवता के सम्पूर्ण जीवन के दृष्टिकोण में बदल होगा तथा जो बढ़ता ही जायगा, उसी प्रकार जैसा कि तर्क के आधार पर तर्क, उसकी क्षमतायें और उसके ढाँचे में विकास हुआ है।"

भारतीय ऋषियों एवं मनीषियों के सोचने का स्पष्ट दृष्टिकोण उपर्युक्त है। इसकी विश्वस्तता की परख व्यक्ति एवं सामूहिक जीवन में कई बार हो चुकी है। इसने हमें सत्यता का आधार एवं ज्ञान की सुदृढ़ नीव प्रदान की है। इसलिये यही केवल मात्र हमारे विचार हैं और जो हमारे विचारों पर प्रकाश डालने में सिद्ध हैं।

हमने अपने विचार प्रस्तुत करने के लिये जीवन की इस आधारभूत सत्यता को आधार माना है। इस विषय पर यह हमारे अन्तिम शब्द हैं और जो हमारी प्रस्तुति इन विचारों को प्रकट करने में असमर्थ है, वह हमारी ही कमजोरी है। हमारी प्रस्तुति का आधार यह हैकि हमारे सामूहिकअस्तित्व के ठीक संगठन को भातृभाव के सिद्धान्तों पर आधारित करना। ध्यान रहे कि यह भातृभाव आत्मा की प्राकृतिक प्रेरणा है। यह सिद्धान्त हमें स्वतन्त्रता व समानता के साथ न्यायिक सम्बन्ध या जिसे हम पक्षपात रहित एवं न्यायिक भाव कहेंगे, प्राप्त कराता है। ठीक भातृभाव एकात्म भाव पर आधारित है। और यह उसी समान है, जैसे एक मनुष्य प्राणी अथवा जड़ जगत में भिन्न-भिन्न अंग अपनी विशेषताओं ओर मतभेदों को भूलकर सामूहिक ढंग से काम करते हैं और अपने विकास में हर एक अंग को उपयुक्त स्वतन्त्रता देते हैं। सामूहिक जीवन के हर संयंत्र (क्षेत्र) की भूमिका जैसे ट्रेड यूनियन, एम्प्लायर एसोशियेशन अथवा राज्य को यह समझना चाहिये तथा सच्चा भातृभाव एवं एकात्म भाव के सिद्धान्त के भाव को अनुमोदित करना चाहिये और इस हेतु राज्य को नैसर्गिक नियमों की बढ़ोत्तरी में सभी प्रकार की मनुष्य की कमजोरियों और द्विविधाओं को दूर करके सेवा करनी चाहिये। यह राज्य की उपयोगिता है और ऊपर लिखित कठिनाईयाँ उसकी सीमा हैं। मनुष्य द्वारा निर्मित संसद जो नियम बनाते हैं, उनसे भी परे एक नियम, जिसे संसद नहीं बना सकती और उस सच्चाई के सर्वोच्च नियम के अपनाने में राज्य, संसद व कार्यपालिका एवं न्यायपालिका को लगना चाहिये, क्योंकि सही नियम हमको वे सभी वस्तुयें एवं सुख प्राप्त करा सकती हैं, जिनकी हमें आकांक्षा होनी चाहिये। यह नियम धर्म है, जिसके अंतर्गत सभी कुछ जो हम पाना चाहते हैं, इस नियम के आधीन कार्यान्वित होनी चाहिये। राज्य की ठीक गतिविधियाँ 'धर्म' को बनायेरख ने एवं अपनाने में ही निहित हैं।

---

भाग ४ अध्याय १९

# श्रमनीति

## ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका

और

## दृष्टिकोण

प्रकाशक
भारतीय मजदूर संघ, उ० प्र०
१, नवीन मार्केट, परेड, कानपुर-२०८००१
दूरभाष-५३५५०

# प्रस्तावना

राष्ट्रीय श्रम आयोग को भारतीय मजदूर संघ द्वारा प्रस्तुत किये गये **"Labour Policy"** नामक अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है ।

हिन्दी में इस पुस्तक के सभी २० अध्याय अलग–अलग पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये गये हैं ।

आपातकालीन स्थिति के अन्तर्गत कानपुर जिला कारागार में बन्दी अवधि में हमारे परम मित्र आई० आई० टी० कानपुर के प्राध्यापक डा० भूषणलाल धूपड़ के सहयोग से इस अध्याय का हिन्दी अनुवाद सम्भव हो सका है । मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ ।

रामनरेश सिंह

# ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका

## एक दृष्टिकोण

क्या वर्तमान ढांचे के अन्तर्गत ट्रेड यूनियन एक विशेष भूमिका निभा रही है ? वर्तमान काल में क्या वह परम आवश्यक है ? हिटलर, मुसोलिनी फ्रैन्को, सालाजार तथा माओ इसको आग्रहपूर्वक अस्वीकार करेंगे। विशेष प्रतिष्ठित लोग यह तर्क प्रस्तुत करेंगे कि उदारवादी अधिनायकवाद के अन्तर्गत श्रमिकों के हितों की सुरक्षा और बढ़ोत्तरी करने के लिये किसी भिन्न संगठन की जरूरत नहीं है। आज भी तन्जानिया के राष्ट्रपति श्री नेआरे (Nyeyere) ने अपने आपको श्रमिकों के संरक्षक की भूमिका निभाने की घोषणा की है तथा अपने देश में सभी ट्रेड यूनियनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया है और सभी कारखाने के श्रमिकों को उनके द्वारा बनाई हुई एकमात्र राष्ट्रीय श्रमिक संगठन में सम्मिलित होने के लिये बाध्य किया है। इस एकमात्र श्रमिक संघठन को भिन्न-भिन्न उद्योगों के अनुसार विभाजित किया गया है और वे यह निश्चित कर लिये हैं कि यह संगठन उनके निर्देशों को ईमानदारी से निभाये। इस नई व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रपति के संरक्षण में श्रमिकों के भाग्य में

निश्चित रूप से लाभ पहुंचा है। कुवैत जो कि एक छोटा सा देश है और जहां प्रति व्यक्ति आय काफी ऊंची है, उसने अपने श्रमिकों को अच्छी आवास व्यवस्था, सामाजिक सुरक्षा एवं उच्च वेतन दिया है। यद्यपि वहाँ के श्रमिक ठीक ढंग से संगठित नहीं हैं, जिस पर भी उक्त दोनों देशों में सजग श्रमिक अपने स्थाई उत्थान के लिए इस सरकारी कृपा रूपी निर्भर करने वाली पद्धति को स्वीकार नहीं करते। वे अपने स्वावलम्बन को यथा ट्रेड यूनियन के द्वारा अपने अधिकार को प्रगट करने वाली पद्धति को छोड़ना बहुत हानिकारक समझते हैं, क्योंकि आत्मनिर्भरता की कोई और पूरकता नहीं होती। यदि किसी देश में श्रमिक सत्ता में आ जाय, तो भी वे अपने संगठन को तोड़ देने को सहन नहीं करेंगे, ऐसी दशा में भी जिसमें श्रमिक हित, जिनकी सरकार द्वारा सुरक्षा होगी तथा श्रमिक संगठनों के द्वारा हित मिलगे, उसके समकक्ष नहीं होंगे। ट्रेड यूनियनों को एक विशेष भूमिका अदा करनी ही है।

भारतवर्ष में ट्रेड यूनियन गतिविधियों की भूमिका के बारे में कोई एक मत दिखाई नहीं देता। यह बात सही है कि एटक, जिसका मार्क्सवादी लेनिनवादी स्वरूप है जब से साम्यवादियों के आधिपत्य में आई, ट्रेड यूनियन गतिविधियों को साम्यवादी विचारधारा के अन्तर्गत व्यवहार कर रही है। यद्यपि इस दृष्टिकोण ने एक तात्विक एकीकरण प्रगट किया है और अब तक वह संगठन का केन्द्र बना रहा है, किन्तु अब यही उसके संगठन की कमजोरी हो गई है—उस समय से जब से साम्यवादी दल में मार्क्सवाद-लेनिनवाद की व्याख्या पर मतभेद पैदा हो गया। ध्यान रहे कि अभी दोनों पक्ष एक ही संगठन के अन्तर्गत काम कर रहे हैं, अब ऐसा आभास होता है कि शीघ्र ही एक अलग वामपंथी ट्रेड यूनियन केन्द्र की शुरुआत होगी। (नोट-अब CITU (सीटू) नामक अलग संगठन बन चुका है) साम्यवादी दल द्वारा राज्य स्तर पर सत्ता प्राप्त करना, जबकि केन्द्र पर उनकी सत्ता नहीं है उन्हें और भी घाटे में डाल दिया है। ऐसा होने के कारण साम्यवादी दल को एक विरोधी दल के रूप में काम करना पड़ रहा है। जब वह पूरे देश की राज्य सत्ता को हथिया लेगा तभी वह शीघ्र और उग्र अधिनायकवाद के अन्तर्गत सरकार की भूमिका को बदल सकता है। ऊपर लिखी गई परिस्थिति के कारण दल को क्रांति के पूर्व और क्रान्ति के पश्चात् भूमिका अदा करनी पड़ रही है, यही उसकी कष्टप्रद एवं विरोधाभासी भूमिका है। केरल में सी० पी० एम० द्वारा निर्वाचित राज्य में श्रम विभाग द्वारा जो ज्ञापन राष्ट्रीय श्रम आयोग को दिया गया है कि एटक

द्वारा वर्तमान प्रस्ताव में की गई भर्त्सना इसी संदर्भ में देखने योग्य है। इन्टक जो कि गांधी जी के द्वारा दिये गये राष्ट्रीय विचार धारा पर आधारित मजदूर महाजन लाभ के लिए बना, ने अपने आपको कांग्रेस संगठन एवं सरकार के साथ एक रूप करके अपनी आत्मा को खो बैठा है, जिसके फलस्वरूप कांग्रेस के अंदर के मतभेद इन्टक के संगठनात्मक ढांचे में प्रगट होते हैं। इन सब कारणों ने इसको कमजोर और भिन्न-भिन्न स्तरों पर विभाजित कर दिया है तथा आज यह प्रगट होना भी कठिन हो गया है कि इसकी सदस्य संख्या कितनी है? हिन्द मजदूर सभा की शाखायें अपने में बहुत सशक्त हैं, पर सामूहिक दृष्टि से कमजोर हैं क्योंकि इन यूनियनों के नेता प्रजातान्त्रिक ट्रेड यूनियनिज्म के सिद्धान्तों को ईमानदारी से निभाते तो हैं, परन्तु ऐसा करते हुए वे राष्ट्रीय उत्थान में केन्द्रीय श्रम संगठन तथा सामूहिक श्रम कल्याण को प्राप्त करने की भूमिका के बारे में कम ध्यान देते हैं। युटुक जो अपने आपको पूर्णतः अराजनीतिक स्वरूप तो प्रकट करता है, वस्तुतः आर०एस०पी० व बोलशेविक पार्टी द्वारा निर्देशित होती थी, परन्तु दोनों दलों के अंदर भीषण फूट के कारण इसे काफी हानि हुई है और आज वह बहुत पीछे हो गई हैं। हिन्द मजदूर पंचायत ही एक ऐसा संगठन है जो बड़े दावे से घोषणा करता है कि ट्रेड यूनियन को एक राजनीतिक दल की शाखा के रूप में काम करना चाहिये और इस व्यवस्था से यूनियन एवं दल को बहुत लाभ होगा (नोट : अब हिन्द मजदूर पंचायत हिन्द मजदूर सभा में विलीन हो गया है।) अखिल भारतीय सिद्धार्थ श्रमिक संघ अभी प्रारम्भिक स्थिति में है और रिपब्लिकन पार्टी ही एक मात्र खेतिहर श्रमिकों का अ० भा० संगठन के रूप को प्रगट करती हैं। दल की उद्योगों तथा कृषि क्षेत्र में पहले से ही सम्भावित सदस्यता बनी हुई है और वे श्रम-क्षेत्र में सम्भावित नेताओं की इन्तजारी कर रहे हैं। डी० एम० के० ने भी श्रम क्षेत्र में बड़े जोर शोर से प्रवेश किया है और इसके ट्रेड यूनियन नेता जो कि इस आन्दोलन में नये हैं तथा अपने राज्य तमिलनाडु तक ही सीमित हैं और राज्य की आर्थिक समस्याओं को हल करने हेतु उपयुक्त पद्धतियों को अपनाने में इमानदार हैं। लाल निशान ग्रुप अथवा पीजेन्ट्स एण्ड वर्कर्स पार्टी के श्रमिक संगठन केवल स्थानीय स्तर पर ही प्रभावी हैं और कोई राष्ट्रीय भूमिका अथवा विचार रखने की स्थिति नहीं रखते और वे दावा भी नहीं करते तथा हिन्द सेना से सम्बन्धित भारतीय कामगार सेना की भी यही स्थिति है और इसके सिद्धान्त और नीतियों की घोषणा करना शेष है। संगठित मजदूरों का एक बहुत बड़ा भाग भिन्न-भिन्न यूनियनों व औद्योगिक संस्थाओं के अन्तर्गत है,

जिनका स्वरूप स्वतंत्र है तथा किसी भी अ० भा० श्रमिक संगठन से सम्बद्ध नहीं हैं। यद्यपि हर एक को उसकी अपनी उपयोगिता के अन्तर्गत तौलना होगा पर आमतौर से यह कहा जा सकता है कि इन संगठनों का ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका के लिये कोई विशेष विचारधारा का आधार नहीं है। इण्डियन फेडरेशन आफ फ्री ट्रेड यूनियन्स इसी श्रेणी की है और यद्यपि इसने अपनी सुविधा हेतु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्था 'इन्टरनेशनल फेडरेशन आफ क्रिश्चियन ट्रेड यूनियन' से वार्तालाप की थी, ध्यान रहे कि अब 'क्रिश्चियन' शब्द की परिभाषा 'बिलीवर' (आस्तिक) शब्द से कर दी गई है। अ० भा० सेकूलकास्ट एवं सेकूल ट्राइब्स वर्कर्स वेलफेयर एशोसियेशन ने अपने उद्देश्यों की सफलता के लिये जगजीवन राम का योग्य नेतृत्व प्राप्त किया है, किन्तु किसी भी रूप में इसे ट्रेड यूनियन संगठन नहीं कहा जा सकता। साम्यवादियों द्वारा प्रभावित किसान सभा ने खेतिहर मजदूरों के हितों की सुरक्षा के लिये कई आन्दोलन किये, परन्तु इसने अपने आपको नियमित रूप से चलने वाली ट्रेड यूनियन नहीं कहा। इस हेतु यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका किसी एकमत को प्रगट नहीं करती।

विश्वव्यापी स्तर पर ट्रेड यूनियन आन्दोलन इधर कुछ वर्षों से एक संस्था के रूप में उत्पन्न हुई है। यह आन्दोलन औद्योगीकरण के प्रारम्भ में एक विरोधी संगठन के रूप में शुरू हुआ और मुख्यतः सफल पूंजीवाद एवं प्लोटोक्रेट (व्यापारियों की सरकार) के नियन्त्रण के विरोध में विद्रोह के रूप में खड़ा हुआ, परन्तु यह आन्दोलन अब इस ओर गतिशील हो रहा है कि वह एक विशेष भूमिका निभा सके। अब ऐसे संगठन हैं, जो अपने आपको निर्णय लेने वाली पद्धति से, जनमत्री इकट्ठा करने के उद्देश्य से अथवा परामर्श देने वाली भूमिका के सामने आ रहे हैं। कुछ और संगठन भी हैं, जो प्रशासन में भाग लेते हैं अथवा लाभकारी रचनात्मक सहयोग देते हैं। अब ऐसा भी एक चित्र खड़ा हुआ है, जिसके अन्तर्गत उद्योग का सामूहिक प्रशासन एवं नियन्त्रण ट्रेड यूनियन द्वारा किया जा रहा है। ट्रेड यूनियन आन्दोलन से लिये गये प्रमुख व्यक्तियों द्वारा राष्ट्र की अर्थ अवस्था के सम्पूर्ण प्रशासन की कल्पना अब स्वप्न मात्र नहीं रह गयी है। राष्ट्रीय उत्थान की गतिशीलता में ट्रेड यूनियन आन्दोलन की सही भूमिका को समझने के लिये यह लाभदायक रहेगा कि हम विश्वव्यापी श्रम संगठनों की भूमिका को भी अपने सम्मुख रखें।

## अफ्रीका

अफ्रीका के ट्रेड यूनियन आन्दोलन के अध्ययन से एक दिलचस्प व चिन्तोजन्य स्थिति देखने को मिलती है, जिसके अनुसार वहां की राष्ट्रीय सरकारें ट्रेड यूनियन-गतिविधियों को प्रोत्साहन करने में हिचकिचाहट प्रकट करती हैं, क्योंकि इन गतिविधियों को वहां की सरकारें राज्य नीति का संयंत्र बनाना चाहती हैं। उपनिवेशवाद के प्रभाव के कारण अफ्रीका की ट्रेड यूनियन की गतिविधियां फ्रान्स और ब्रिटेन के नमूने पर विभाजित की जा सकती हैं। परन्तु फ्रान्सीसी क्षेत्र, पश्चिमी अफ्रीका और केन्द्रीय तथा पूर्वी अफ्रीका की नवनिर्वाचित सरकारें राष्ट्रीय श्रम सम्बन्धी नीति निर्धारित करने व क्रियान्वित करने में एक अलग की भूमिका अदा कर रही हैं। प्रारम्भ में इन सरकारों ने श्रमिकों के विरोध को संस्था में संगठित करने की आवश्यकता महसूस की और क्षणिक गतिविधियों को ट्रेड यूनियन की ओर मोड़ दिया, परन्तु बाद में इन सरकारों ने हड़तालों के विषय को एक कड़े नियन्त्रण में जकड़ दिया। अफ्रीका में सार्वजनिक क्षेत्र बहुत बड़ा है और इस हेतु श्रम सम्बन्धी प्रस्तावना व विकास के लिये उन उद्योगों को अग्रगामी उद्योग (पायलट सेक्टर) माना गया है। इसके साथ-साथ निजी क्षेत्र में काफी मात्रा में ऊंचे प्रबन्धक के स्थान अभी भी यूरोपियन के हाथ में है। इन सबके सामूहिक प्रभाव से अफ्रीका में ट्रेड यूनियन काफी मात्रा में राजनीति से सम्बन्धित है। उनकी नीतियां और उन नीतियों के प्रभाव समाज शास्त्री एवं अर्थशास्त्री लोगों के लिये एक विषय बने हुये हैं। ट्रेड यूनियन गतिविधि मुकाबले में कमजोर है, क्योंकि श्रमिक और उसके औद्योगिक जीवन के साथ के सम्बन्ध एक खेदजनक स्थिति में हैं। यह मान लिया गया है कि परम्परागत जीवन से आधुनिक जीवन में बदलने की पद्धति के लिये प्रमुख मनोभूमिका सांस्कृतिक परिवर्तन द्वारा ही सम्भव है। अर्थशास्त्री श्रमिकों के वेतन बढ़ाने के लिये ट्रेड यूनियन को सहयोग दे रहे हैं, ताकि श्रमिक को उसके परम्परागत वातावरण से दूर किया जा सके और अपने परिवारों को औद्योगिक केन्द्रों के निकट बसाकर औद्योगिक जीवन से समरस हो सके। यद्यपि इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये वेतन वितरण की पद्धतियों में व्यावहारिक रूप अपनाया जा सकता है, जो कि ट्रेड यूनियनों के दृष्टिकोणों पर निर्भर करता है, जिसके अन्तर्गत मतभेदों को सहयोग में बदला जा सकता है। इस विचार को अब स्थान दिया जा रहा है कि जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय आर्थिक प्रगति की

योजनाओं में नियोजक एवं श्रम संगठन भाग ले सकें। इस हेतु सहयोग और परामर्श के लिये द्विपक्षीय व त्रिपक्षीय संस्थायें खड़ी की जाय, मोरको, घाना, दक्षिण अफ्रीका, रोडेसिया, नाइजीरिया, तनगान्का, कीनिया, सूडान और जो पहले वेल्जियम कान्गो था, इन देशों में इस दिशा में मूलभूत परिवर्तन किये गये हैं।

ये सभी अफ्रीकी देश बहुत गरीब हैं। उदाहरणार्थ घाना की औसत आय २०० डालर (१५०० रुपये) प्रति व्यक्ति है, नाइजीरिया की १०० डालर (७५० रुपये) से कम है तथा माली की ५० डालर (३७५ रुपये) के करीब है। ट्रेड यूनियन गतिविधियां कुछ ही काल की हैं। बहुत से ट्रेड यूनियन अधिकारी लेखा जोखा के तरीके व विधि की सुविधाओं से बहुत कम परिचित हैं। परन्तु ये सभी देश शीघ्रता से आगे बढ़ना चाहते हैं। राज्य के पास यह सोचने का समय नहीं है कि वह कौन सी गतिविधियां हाथ में ले और कौन सी न ले। मुख्य बात सर्व साधारण के जीवन स्तर और सामाजिक उत्थान के लिये सम्पूर्ण संगठित प्रयत्नों की आवश्यकता है। इस हेतु राज्य ने ट्रेड यूनियन अधिकारियों को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करने के लिये बड़ी परियोजनायें हाथ में ली हैं। घाना के गणराज्य ने कनाक्रि में एक अफ्रीकी श्रमिक विश्वविद्यालय १९६० से प्रारम्भ किया है। इन प्रशिक्षित श्रमिक नेताओं से कानून बनाने में परामर्श किया जाता है। इन कानूनी सलाहकार समितियों में नियोजक, सरकार के समान श्रमिक प्रतिनिधि समान संख्या में रहते हैं। जैसा कि नाइजीरिया में गणतन्त्रीय श्रमिक सलाहकार समिति अथवा घाना की श्रम के लिये राष्ट्रीय सलाहकार समिति या गिनी की तकनीकी श्रमिक समिति की व्यवस्था की गई है। अफ्रीका के कई देशों के संविधान में ट्रेड यूनियन के संगठन करने का अधिकार श्रमिकों को दिया गया है। परन्तु इन संगठनों को अपना संविधान बनाने के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं दी गयी है। कुछ अवरोध अनिवार्य रूप से लगाये गये हैं, उदाहरणार्थ वे शर्तें जिनके अन्तर्गत एक यूनियन के सदस्य को यूनियन द्वारा प्राप्त लाभ की शर्तें, नियुक्ति की पद्धति, अधिकारियों को निरस्त करना, सदस्यों को मत देने, हड़ताल करने तथा एक यूनियन का दूसरी यूनियन में विलीन होने की गारन्टी आदि आदि। कीनिया और युगाण्डा के नियम के अन्तर्गत हर यूनियन को एक निश्चित परीक्षार्थकाल (प्रोविसनरी पीरियड) तक काम करना पड़ता है, जबकि घाना के कानून के अनुसार एक ट्रेड यूनियन कांग्रेस, २४ यूनियनों

के सदस्यों की होती है (अब यह संख्या २४ के स्थान पर १६ रह गयी है) और सभी श्रमिक जो इस कांग्रेस को आयोजित करते हैं, इन्हीं यूनियनों के सदस्यों में से रहते हैं अफ्रीकी यह विश्वास नहीं करते कि एक सर्वव्यापी संगठित संस्था होनी चाहिये। वे सरकारें खुले आम घोषणा करती हैं कि दो या अधिक यूनियनों के होने पर श्रमिकों के पारस्परिक स्वस्थ प्रतियोगिता के कारण श्रमिकों के हितों की अधिक सुरक्षा की जा सकती है। परन्तु यह एक आम धारणा पायी गई है कि यूनियन्स सरकार के एक अंग के रूप में काम करें। इसका एक दूसरा भी परिणाम हुआ है कि ट्रेड यूनियन्स बड़ी आजादी से राजनीतिक गतिविधियों में भाग ले रही हैं। ऐसा अब अफ्रीका के सभी देशों में पाया जा रहा है। इस दिशा में सबसे अधिक परिवर्तन विरोधी देश घाना था, जहां पर १९४१ के ट्रेड यूनियन अध्यादेश के अनुसार यूनियन का राजनीति में भाग लेना प्रत्यक्ष रूप से प्रतिबन्धित था। अन्ततोगत्वा यह परिस्थिति बदल गयी। फ्रांसीसी कालोनीज में यूनियन ने सभी प्रकार के रुकावटों को दूर कर दिया और राजनीति में भाग लेने के लिये अग्रसर हुये। अब सभी ट्रेड यूनियन कानून राजनीतिक गतिविधियों में ट्रेड यूनियनों को भाग लेने की सुविधा देते हैं। गिनी में राष्ट्रपति ट्रेड यूनियन गतिविधियों का प्रभावी नेता बना हुआ है, जबकि कीनिया और तंगानिका में ट्रेड यूनियन नेतृत्व सरकार की गतिविधियों के साथ एक रूप है। कहने का तात्पर्य है कि राज्य की समितियों में ट्रेड यूनियन गतिविधियां बड़े विश्वास और रुचि से भाग लेने हेतु खड़ी की गई हैं और इस हेतु यह राज्य की नीतियों पर प्रभाव डालती हैं और राष्ट्रोत्थान में अपनी शक्तियों का सदुपयोग करती हैं। कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं, जिनके अन्तर्गत यह प्रश्न किया जाता है कि क्या राज्य का साध्य यूनियन के साध्य के समकक्ष है ? उनके सम्मुख वर्ग संघर्ष एक प्रमुख विषय नहीं है, वरन् गरीबी तथा सभी उपनिवेशवाद के विरोध में सम्पूर्ण संघर्ष ही प्रमुख विषय है। वे संसार के तात्विक संघर्षों से दूर रहते और है आई० सी० एफ० टी० यू० एवं डब्ल्यू० एफ० टी० यू० दोनों को ही विदेशी कालोनाइजर मानकर उनके प्रति अविश्वास प्रगट करते हैं। अब एक अफ्रीकी श्रमिक आन्दोलन के बनाने व सुदृढ़ करने की ओर उनका सम्मान है। अफ्रीका में अब ट्रेड यूनियनें इस अपनी स्वतन्त्रता को पवित्र मानते हैं और इनमें से बहुत से इस दृष्टिकोण को बड़े प्रशंसनीय रूप से प्रगट भी करते हैं कि राष्ट्रोत्थान के मसलों में राज्य उनका नेता है। राज्य की इस

गतिविधि और ट्रेड यूनियन्स के इस सहयोगी एवं सकारात्मक भूमिका को ट्रड यूनियन पर टिप्पणी करने वाले अफ्रीकी लेखक बड़े स्पष्ट रूप से लिख रहे हैं। और इस विषय पर आई० एल० ओ० को भी बाध्य किया है कि वह अफ्रीका के राष्ट्रीय उत्थान में ट्रेड यूनियन की भूमिका पर अपनी जानकारी और दृष्टिकोण बदले। श्री टी० एम० युसुफ, सचिव नेशनल मैनपावर बोर्ड, आर्थिक उत्थान मन्त्रालय, लैगोस, नाइजेरिया ने आई० एल० ओ० को बताया है कि :—

"संगठनों पर टिप्पणी करने वाले लोगों को जैसे कि आई० एल० ओ० को आलोचना करने के पहले समझना चाहिये। उनकी आलोचना काफी लाभदायक और स्वागत योग्य हो सकती है, जब वह अफ्रीका में विकासशील देशों के श्रमिक सम्बन्धी क्षेत्र के बारे में उचित जानकारी रखें और राजनीतिक अन्ध विश्वासों में केवल मात्र रुचि न लें, क्योंकि अफ्रीका में ट्रेड यूनियन द्वारा नई दिशा को जन्म दिया जा रहा है। उनकी समस्यायें व्यावहारिक है और वे जानते हैं कि वह पद्धति सर्वोच्च लाभ की है, जिसके अन्तर्गत श्रमिक और उसके प्रबन्धक राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर उत्पादक पद्धतियों में सामुहिक दृष्टि प्रगट करें। हम (जो कि उपनिवेशवाद के अन्तर्गत बनाये गये थे) किसी भी दूसरे से अपनी प्राथमिक स्वतन्त्रता को कम पोषण नहीं करते। लेकिन हम हड़ताल एवं सामुहिक सौदेबाजी के हक जैसी चीजों पर अनावश्यक रूप से भावनाओं को नहीं उभाड़ते, क्योंकि यह हमारे देश के लिये घातक होगा। विकसित देशों में एक ढर्रा है, जिसके अन्तर्गत राज्य के वे सभी प्रयत्न जिसके अन्तर्गत ट्रेड यूनियन गतिविधियों से सम्बन्ध होता है, बड़ शक के निगाह से देखा जाता है। परन्तु हम ऐसा विश्वास करते हैं कि श्रमिक सम्बन्धी पद्धति का कोई एक ढांचा अनिवार्य रूप से सर्वोच्च नहीं है। वह राष्ट्र जो जल्दी प्रगति करना चाहता है (हम वे राष्ट्र हैं), के लिये वही तर्क संगत है, जिसके अनुसार काम पूरा होता है और आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।"

इसमें कोई शक नहीं कि श्री युसुफ की टिप्पणी अधिक आग्रह वाली है। आजकल के आर्थिक उत्थान के कार्यक्रम की प्रकृति ऐसी है कि जनसमुदाय के विशेष आवश्यकताओं से उत्पन्न नहीं होती। ऐसी दशा में आर्थिक

उत्थान के अन्तर्गत, जो सामाजिक कीमत देनी पड़ती है, राज्य इस भाव को सुगमता से प्रगट करने की आदत में पड़ सकता है। वह राज्य जो जल्दी प्रगति करना चाहते हैं, डिटरमिनिज्म (वह सिद्धान्त जिसके अन्तर्गत सभी वस्तुयें किसी कारणवश घटित होती है, जिसमें इच्छा शक्ति भी निहित है। के आधारभूत सामाजिक मान्यताओं पर समझौता कर सकती हैं। ऐसी परिस्थिति में ट्रेड यूनियन की स्वतन्त्रता की आवश्यकता एक प्रमुख महत्व की बन जाती है। बहुत से विकास करने वाले राष्ट्र के लिये अफ्रीकी जीवन के प्रयास एवं तथ्य उसी प्रकार के प्रयास एवं तथ्यों को अपनाने के लिये एक तर्क संगत बहाने नहीं हो सकते। अफ्रीका में ट्रेड यूनियन गतिविधियां अपने प्रारम्भिक जीवन में हैं और जैसा कि विश्व के दूसरे देशों में विरोध व संघर्ष के लिये खड़ी हुई हैं। उनके समान केवल मात्र विरोध के लिये यहां नहीं हो सकतीं। प्रजातांत्रिक राज्य एवं राष्ट्रीय ट्रेड यूनियनिज्म को राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुरूप, अपने उद्देश्यों को अपनाना है। बढ़ती हुई आशाओं के गतिशील परिवर्तन को ध्यान में रखकर सामूहिक व व्यावहारिक जिम्मेदारियां कन्धों पर आती हैं। यह जननीति एवं गतिविधियों के लिये बहुत बड़ा क्षेत्र है। और इसको ध्यान में रखकर भी युसुफ की टिप्पणियां औद्योगिक सम्बन्धों के एक नये ढांचे के लिये पूर्ण उपयुक्त हैं और गम्भीर विचार करने योग्य हैं। अफ्रीका के प्रयोग आधुनिक ट्रेड यूनियन गतिविधियों की महत्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डालते हैं।

यह विषय के संदर्भ के बाहर न होगा कि अफ्रीका में राज्य व ट्रेड यूनियन के संयोग में शेष सम्बन्धित क्षेत्र पर पड़े प्रभाव पर एक टिप्पणी की जाय। इन प्रभावों का भावी राष्ट्रीय उत्थान में ट्रेड यूनियन गतिविधियों को जो स्वरूप खड़ी होगी, उसके ऊपर एक प्रबल प्रभाव पड़ता है। यद्यपि भावी मार्ग की रूपरेखा को चित्रण करना बहुत कठिन नहीं है, क्योंकि बहुत से मार्ग खुले हुये हैं, जो आधुनिक उद्योगों में ट्रेड यूनियन गतिविधियों की भूमिका को प्रभावित करने वाली सिलसिलेवार वातावरण को प्रगट करते हैं। हम पहले ही कह चुके हैं कि अफ्रीका में सरकारें ट्रेड यूनियन नेता के रूप में! ह बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं, इसके कारण सामाजिक कार्यकर्त्ताओं पर एक प्रकार का दुष्प्रभाव पड़ा है। इस प्रगति का एक हास्यास्पद उदाहरण अफ्रीका वेजेज (१९५३) पर कीनिया कमेटी की नियुक्ति में दिखाई देता है जिसने वेतन नीति पर दूरगामी अनुशंसा दी है। इस समिति के

सदस्यों में कोई अर्थशास्त्री नहीं था और न ही इस कमेटी ने किसी अर्थशास्त्री से राय ली, क्योंकि ये अर्थशास्त्री एक दूसरे से सहमत नहीं होते, और अलग-अलग विचार रखते हैं। समिति ने बिना इनकी सेवाओं के ही अच्छा समझा। यद्यपि यह एकमात्र अनोखा उदाहरण है तो भी आर्थिक नीति सम्बन्धी समस्याओं में ट्रेड यूनियन नेताओं को एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की दिशा को सर्वत्र अपनाया जाता है। इस नीति का एक परिणाम यह हुआ है कि अफ्रीकन देशों की वेतन नीति में उच्च वेतन नीति की दिशा अपनाई गई है। कीनिया, तन्गानिका, यूगाण्डा व दक्षिण अफ्रीका के वेतन निर्धारण को अधिकृत समितियों ने इसे माना है, ऊंचे स्तर के वेतन होने पर नियोजक उत्पादन के लिये अधिक पूंजी प्रधान साधन अपनायेंगे और व्यक्तिगत कुशलता की बढ़ोत्तरी के कारण मुकाबले में वेतन वृद्धि कम होगी। यद्यपि इस वेतन नीति के तर्कों को बहुत अर्थशास्त्री नहीं मानते और इन नीतियों को मंहगी तथा अनिश्चित मानते हैं। क्योंकि दूसरे क्षेत्रों पर इस नीति के प्रभाव प्रगट होने शुरू हो गये हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि बहुत से अफ्रीकी देशों में पिछले १५ वर्षों में वेतन भोगियों की स्थिति काफी मात्रा में ठीक हुई है। पश्चिमी अफ्रीका के शहरों में १९४५–५० से १९६०–६५ में असली वेतन में ३० से ५० प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। कांगो में सन् ५० से ५८ तक मूल वेतन दुगुने हो गये। दक्षिणी रोडेशिया में १९४९ से १९५८ तक लगभग ७० प्रतिशत बढ़े (हम जानते हैं कि भारत में मूल वेतन कम हो रहे हैं) परन्तु विश्वकर्मा सेक्टर। (Non-Wage) क्षेत्र में अनुपात में जो मजदूरी बढ़ी है, वह बहुत अधिक बढ़ी है। उदाहरणार्थ बेलजियम, कांगो में १९५८ में प्रति व्यक्ति आय वेतन क्षेत्र में ३८०० फ्रैन्क्स था और विश्वकर्मा सेक्टर (Non-Wage क्षेत्र) में १४०० फ्रान्क्स और सेनिगल में १९५५ से १९६० के बीच में प्रति व्यक्ति वेतन व्यापारी और कारीगरों के मुकाबले में अनुमानतः दुगुनी थी तथा किसानों व मछुआरों की मजदूरी से तिगुनी थी। हर स्थानों पर किसानों की आमदनी के मुकाबले में शेष श्रमिकों के वेतन में अधिक बढ़ोत्तरी हुई। यह सरकारी नीति से ट्रेड यूनियन को जोड़ने के प्रभाव के कारण हुआ है। बहुत बार यह कहा गया है कि अफ्रीका में वेतन का निर्धारण मध्यस्तता से नहीं होता वरन् मुख्यतः कानूनी कार्यवाही से होता है। श्रम विभागों से यह आशा की जाती है कि वह नियोजकों को समझाने बुझाने वाले दबाव से प्रशिक्षित करेंगे, ताकि उन मांगों को, जिनको घोर विरोधी मांगे कही जाती हैं, की ओर सकारात्मक रुख अपनावें। यद्यपि

यूनियन सदस्यों की संख्या के हिसाब से कमजोर हैं, किन्तु राजनैतिक सत्ता में शक्तिशाली हैं। यह अनुभव किया गया है कि ट्रेड यूनियनिज्म के अन्दरूनी दबाव में कुशल एवं शिक्षित श्रमिकों का दबाव अधिक है। पूरे अफ्रीका भर में कम अथवा अर्द्धकुशल एवं कुशल श्रमिकों तथा कुशल कार्यकर्त्ताओं की अपर श्रेणी के वेतन के फैलाव का गुणात्म स्वरूप बढ़ा है। ऊपर के श्रेणी के अफ्रीका के नागरिक प्रशासकों को बहुत से विशेष (Fringe) सुविधाओं व भत्ते जैसे कि मुफ्त आवास, कार भत्ता, स्वेच्छा की छुट्टी, चिकित्सा सम्बन्धी देखभाल आदि प्राप्त होते है। ये भेद गम्भीर भ्रमजाल पैदा कर रहे हैं। इन भेदों को कम करने से सामुहिक त्याग भाव के प्रगट होने में काफी योगदान होगा। इस प्रतिक्रिया के कारण १९६२ में कम से कम एक देश ऐवरीकोस्ट में आर्थिक सहायता प्राप्त आवास व्यवस्था को एक ही झटके में समाप्त कर दिया गया यह सुविधा अनुमानतः वेतन के ३० प्रतिशत के बराबर थी। इसी प्रकार फ्रांसीसी बोलने वाले देशों ने कार्य वर्गीकरण के लिये एक विशेष पद्धति बनाई है। वेतन नीति के छिन्न-भिन्न स्वरूप से अब सर्वसाधारण आर्थिक नीतियों एवं विकास की व्यूह रचना पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। इसलिये यह बतलाना कठिन है कि किस हद तक ट्रेड यूनियनिज्म के सहयोगी और प्रशासकीय भूमिका के मुकाबले में विश्लेष और गतिरोध की भूमिका रहेगी जो कि इस नवीन दृष्टिकोण एवं पद्धति से उत्पन्न हुई है, जैसा कि अफ्रीकन नेताओं द्वारा दावा किया गया है कि असमान आर्थिक प्रगति की पद्धति के प्राकृतिक प्रभाव से पैदा हुई है। ऐसा सम्भव है कि ये दोनों पक्ष एक साथ उपस्थित हों। जैसा भी हो, जो भूमिका अफ्रीका के देशों में ट्रेड यूनियन निभा रही हैं, विकास होने वाले अर्थव्यवस्था के लिये एक सकारात्मक विषय है, और अपनी विशेषताओ व कमियों तथा सुविधाओं व सीमाओं के लिये लाभप्रद हैं।

## मध्य पूर्व (अरब आदि देश)

मिडिल इस्ट के मुसलिम अरब देशों में कुछ भिन्न समस्यायें आती हैं जहां श्रमिक अपने आपको मजहब के आधार पर उद्योगीकरण के साथ पूर्ण माहौल में नहीं रखा है। इजराइल इसका अपवाद है, जो अपने में एक विशेष स्थान रखता है। लगभग सभी मुसलिम देशों पर लेखकों की यह राय है कि आर्थिक प्रगति में गतिरोध मुसलिम धारणाओं के कारण है। सामुहिक

प्रेरणा, और औद्योगीकरण के आदर्श की अनुपस्थिति मध्यम वर्ग की न्यूनतम और परम्परागत दृष्टिकोण जिसके अन्तर्गत विदेशी पद्धति से शिक्षित व्यक्ति समाज में अपने आपको अकेला पाता है, ने एक मनोवैज्ञानिक रिक्तता पैदा कर दी है, जो कि सैनिक व्यक्तियों द्वारा पूरी की जा रही है। कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ट्रेड यूनियन कमजोर और विभाजित हैं तथा सेना और प्रबुद्ध जनों से अपने को हीन महसूस करते हैं। फिर भी बाहरी जगत का प्रभाव काफी तेजी से पड़ रहा है और ऐसे उदाहरण देखे गये हैं, जिसके अन्तर्गत राज्य ने स्वयं श्रमिकों और नियोजकों दोनों के संगठनों को कानून के द्वारा विकसित किया है। राष्ट्रीय सम्मान के कारण क्षेत्र के किसी भी देश में ट्रेड यूनियन गतिविधियाँ रोकी नहीं गई हैं, परन्तु सरकार इसको बड़ी सतर्कता से देखती है कि संस्था बनाने की स्वतन्त्रता को घोर वामपंथी तत्व दुरुपयोग न कर लें। परन्तु वहां विकास के आकार प्रकार को निश्चित करने के लिये चिन्ता की जाती है कि किस भांति ट्रेड यूनियन को राज्य का सम्भागी बनाया जाय। समाजवादी अर्थव्यवस्था में ट्रेड यूनियन की भावी भूमिका उत्पादन पद्धति में एक सम्भागी के रूप में परिभाषित की जाती है। इस दिशा का एक विशेष उदाहरण यूनाइटेड अरब रिपब्लिक (यू० ए० आर०) हैं। अफ्रीका के प्रयोगों से भिन्न मिडिल इस्ट में ट्रेड यूनियन्स को राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने से रोका जाता है, फिर भी बहुत से यूनियन नेता व्यक्तिगत रूप से राजनीतिक जीवन में सक्रिय हैं। चूंकि राजनीतिक दल वर्ग के आधार पर संगठित नहीं हैं, अतएव वे नियोजकों व ट्रेड यूनियन नेताओं के बीच में एक मैत्री सम्बन्ध की भूमिका निभाते हैं, ताकि मतभेदों को दूर करने और राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने में सिद्ध हो सकें। मिश्र में 'राज्य' विकास का एक आधारभूत प्रेरक माना जाता है और उद्यमी व सामुहिक प्रयत्नों के संगठन का सहयोगी माना जाता है। मुसलिम अर्थव्यवस्था के लिये वह क्रमशः एक नमूना बन रहा है। परन्तु यह स्पष्ट नहीं हुआ है कि श्रमिकों ने इस प्रक्रिया में क्या भूमिका स्वीकार की है। नियम के अन्तर्गत बनाई गई वर्क्स कमेटियों के प्रयासों में भी श्रमिकों के द्वारा संदेह प्रगट हुआ है और अक्सर ट्रेड यूनियनों को इसका विरोध करना पड़ता है।

मिश्र में १९५२ से राष्ट्र के सामाजिक आर्थिक विकास को गतिशील करने के लिये सरकार अत्यधिक प्रयत्न कर रही है। अपनी आर्थिक नीतियों को स्वीकार कराने के लिये मिश्र की सरकार ने प्रबन्ध एवं मुनाफे में श्रमिकों

को भागीदार बनाने की पद्धति को अपनाया है। आर्थिक सत्ता का पर्याप्त मात्रा में विकेन्द्रीकरण किया गया है। सभी फर्मों के निदेशक मण्डल (Board of Directors) के आकार व स्वरूप निर्धारित कर दिये गये हैं और जिनमें ९ सदस्य रहते हैं, उनमें से ४ श्रमिक प्रति दो-दो वर्ष की अवधि के लिये चुने जाते हैं। वे उच्चतम न्यायालय के सामने पेश किये बिना नौकरी से निलम्बित व बरखास्त नहीं किये जाते। शुद्ध लाभ का २५ प्रतिशत मजदूर और कर्मचारियों में अधिकतम ५० डालर प्रति व्यक्ति की सीमा में बांटा जाता है, इसका १० प्रतिशत नकद दिया जाता है, ५ प्रतिशत संस्थान में काम करने वालों के सामाजिक सेवा तथा शेष १० प्रतिशत सभी श्रमिकों की विशेष सेवा के लिये दिया जाता है। सभी उद्योगों अथवा फर्मों के महाप्रबन्धकों की नियुक्तियां सम्बन्धित मन्त्री के अनुमोदन पर राष्ट्रीय घोषणा से की जाती है। इस व्यवस्था के कारण वे सामूहिक ढंग से अंशधारियों (शेयर होल्डर्स) के प्रति जिम्मेवार नहीं होते, परन्तु उनकी जिम्मेवारी फर्म की मौलिक सार्वजनिक संगठन (Public Organisation) की ओर होती है। प्रबन्धक की मुख्य जिम्मेदारियां योजना के अन्तर्गत निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना है और दिन प्रतिदिन के कार्य निदेशक मण्डल के नियंत्रण में उन्हें करना पड़ता है, उनकी नियमित ढंग से बैठकें होती है। किसी भी संस्थान में जहां ५० अथवा ५० से ऊपर श्रमिक हैं, कई औपचारिक समितियां होती हैं, जैसे कि ट्रेड यूनियन समिति, परसोनेल समिति, सामूहिक परामर्शदात्री समिति, निदेशक मण्डल, समाजवादी यूनियन शाखा आदि। इन संगठनों की गतिविधियां एक दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती हैं।

श्रमिक गतिविधियों का सम्पूर्ण संगठनात्मक ढांचा कानून पर आधारित है। १९५९ की घोषणा के अन्तर्गत एक श्रमिक नियमावली बनाई गई, जिसके आधार पर सारे देश में सर्वसाधारण संगठन उन्हीं व्यक्तियों द्वारा बनाये जाते हैं। जो कि एक विशेष पेशे, ट्रेड अथवा कला के हों। व्यवसायिक औद्योगिक व खेती की गतिविधियां २७ श्रेणियों में विभाजित हैं। इन सभी समूहों को मिलाकर एक आम यूनियन बनाई गई है, जो कि यूनियन समितियों द्वारा निर्मित होती है। ५० या उससे अधिक श्रमिक मिलकर एक व्यवसाय में एक यूनियन समिति बनाते हैं, ये सभी समितियां एकत्रित होकर एक आम यूनियन बनाती हैं। नियम के अन्तर्गत हर यूनियन समिति अपने

प्रतिनिधियों द्वारा प्रतिनिधित्व करेगी, जिसकी संख्या अपनी यूनियन की सदस्यता के आधार पर १ से ३५ के बीच में होगी । नियम के अन्तर्गत हर यूनियन सदस्य को यूनियन अधिकारियों के चुनाव में मतदान करना ही पड़ता है, और ऐसा न करने पर उस पर जुर्माना किया जाता है यह एक विचित्र सनिकी पद्धति प्रचलित है । सत्ता की केन्द्र बिन्दु साधारण यूनियन है । अनिवार्य सदस्यता व मतदान करना (Check off) की प्रणाली प्रचलित है । साधारण यूनियन की आय के ३० प्रतिशत से ज्यादा साधारण यूनियन और यूनियन समितियों के खर्च से अधिक नहीं बढ़नी चाहिये । ३० प्रतिशत साधारण यूनियन द्वारा हर एक समितियों में उसके द्वारा इकट्ठा किये गये आय के अनुपात में बाँटा जाता है । इस धन को सदस्यों के कल्याण के लिये प्रयोग करना पड़ता है । शेष ४० प्रतिशत में से २५ प्रतिशत शिक्षा एवं कल्याण गतिविधियों में खर्च किया जाता है, १० प्रतिशत राष्ट्रीय श्रम संगठन को दिया जाता है तथा ५ प्रतिशत सुरक्षित रखा जाता है । यूनियन के धन की कानूनी ढंग से निगरानी की जाती है । विधान में यूनियन के निरस्त होने का प्राविधान है । पहले श्रम संगठनों को मंत्रालय के निर्देश से निर्देशित किया जाता था, किन्तु अब केवल न्यायालय के निर्णय के द्वारा ही किया जा सकता है । नियमावली के प्राविधान के अन्तर्गत एक कर्मचारी को विशेष काल के लिये पूर्णकालिक अधिकारी नियुक्त किया जाता है, अवधि समाप्त होने के पश्चात उसे अपने पूर्व रोजगार के स्थान पर जाना पड़ता है । बाहरी व्यक्ति (विशिष्ट व्यक्ति) यूनियन के पदाधिकारी नहीं हो सकते । इसी प्रकार एक व्यक्ति दो ट्रेड यूनियन संगठनों में अधिकारी नहीं हो सकता ।

सभी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण और प्रशासन में श्रमिक को भाग लेने वाली पद्धतियों के विकास के पश्चात यह आमतौर से चर्चा की जाती है कि सामुहिक सौदेबाजी का समाजवादी अर्थव्यवस्था में कोई स्थान नहीं होता है । उत्पादन के साधन जनता के हैं और हर व्यक्ति की जिम्मेवारी है कि वह उत्पादन के साधनों का संरक्षक (कास्टोडियन) है । श्रम संगठनों की मुख्य भूमिका उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाना और श्रमिक की कार्य दशा Working condition) को सुधारना है साथ ही प्रशासन एवं श्रम संगठनों के मतभेद कम किया जाना चाहिये और वे आपसी समझौते पर न पहुंच सके अथवा मध्यस्थता की सहायता न पा सके, तो वे मामले अनिवार्य

रूप से अभिनिर्णय के लिये भेजे जाँय। इतने पर भी वेतन निर्धारण हेतु एक तर्क संगत आधार को बनाने के लिये आवश्यकता महसूस की जा रही है, जिसके अन्तर्गत कार्य विश्लेषण पद्धति की स्थापना है। १९६३ में मिश्र की सरकार ने एक विशेष मन्त्रालय समिति की नियुक्ति की है जो विशेष कार्य विश्लेषण पद्धति को अपनाने के लिये सिफारिश करेगी। इसके साथ संगठन और प्रशासन के लिये एक स्थाई केन्द्रीय अधिकृत समिति बनाई गई है। ऐसा करने के पश्चात उस दिन से बहुत से कार्य निर्धारण, वेतन और भत्तों के सम्बन्ध में बहुत से वक्तव्य दिये गये हैं। इसके लिये सरकार ने न केवल ट्रेड यूनियन को नियंत्रित किया है वरन् प्रशासन (प्रबन्ध) को भी नियंत्रित किया है। नियुक्तियों की प्रणाली नियम के अन्तर्गत बनाई गई है, जिसके अनुसारसभी नियुक्तियां कार्य सम्बन्धित शिक्षण, योग्यता और परीक्षाओं के आधार पर होती हैं। सम्भवतः ट्रेड यूनियन्स के व्यवसायिक ढांचे ने ही इस एकमात्र राष्ट्रीय प्राविधान को प्रभावित किया है। इसी प्रकार निरस्तता पर भी अंकुश है और ट्रेड यूनियन के सक्रिय कार्यकर्त्ताओं को न्यायपालिका के निर्देश पर पुनः नियुक्त किया जा सकता है। सर्वव्यापी और नियंत्रित विधि के परिणामस्वरूप श्रमिक और नियोजक दोनों ही अपने मतभेदों को दूर करने के लिये सरकार पर अधिकाधिक आश्रित हो रहे हैं। दूसरी ओर सरकार भी ट्रेड यूनियन गतिविधियों के लिये तत्पर रहती है। मिश्र की 'राष्ट्रीय घोषणा' (National Character) जो १९६२ में अपनायी गई थी, राष्ट्रीय, सामाजिक व आर्थिक विकास के आधारों के अन्तर्गत निर्देशन करता है, के अन्तर्गत किसी भी राष्ट्रीय गतिविधियों जैसा कि राष्ट्रीय कांग्रेस अथवा स्वेच्छिक संगठनों के नेतृत्व को अपनाने के लिये है, ट्रेड यूनियन की सदस्यता अनिवार्य है। मिश्र अब सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन के निकट भली-भांति आ गया है और इन परिवर्तनों के मुख्य आधार स्तम्भ ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ता तंत्रज्ञ व कलाविधि विशेषज्ञ हैं। यू० ए० आर० का इस हेतु १९६२ का ज्ञापन ठीक प्रकार घोषणा करता है।

"नई पद्धति ने श्रम संगठनों की जिम्मेवारी को बढ़ा दिया है। ये संगठन अब उत्पादन गतिविधियों में प्रशासन के केवल मात्र विरोधी नहीं है, बल्कि विकास के लिये प्रमुख अग्रणी की भूमिका निभाते हैं ··· ···। उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये नये समाज में श्रमिक का स्थान औद्योगिक विकास उसकी कार्य विधि, क्षमताओं और कुशलता की सफलता के नापने का आधार

बन सकता है।"

मिस्र अब क्रमशः अरब मुसलिम देशों का एक नमूना बन रहा है। मिस्र के ट्रेड यूनियन नेतृत्व की भूमिका को ध्यान में रखकर प्रश्न उठते हैं कि क्या श्रम संगठनों को समझौते के लिये अथवा प्रशासन के लिये संगठन माना जाय ? सरकार से पैदा होने वाले दबाव व नीचे से ऊपर तक के कार्यकर्त्ताओं के दबाव से कैसे पेश आना चाहिये ? तथा वह किस प्रकार स्वतन्त्र सामाजिक व आर्थिक सत्ता को बनाये रख सकते हैं ? औद्योगीकरण के परिवर्तन की स्थिति पर मुसलिम मस्तिष्क में मजहबी परम्परा काफी दबाव डालती है, यह हम लोग देखें। उदाहरणार्थ ट्यूनीसिया के अल हबीब बुर्जीबा ने मुसलमानों से अभी-अभी प्रार्थना की है कि रमजान की अवधि में रोजा रखना छोड़ दें, क्योंकि इसके अन्तर्गत काम के घण्टे कम होते हैं, फलस्वरूप उत्पादन में कमी होती है। ट्रेड यूनियन को इस प्रकार की प्रार्थनाओं को किस प्रकार लेना चाहिये ? इन विषयों में नेतृत्व हेतु वह कितनी मात्रा में राज्य पर निर्भर करें ? मिस्र जैसे देश में, जहां संविधानतः एक दलीय राज्यसत्ता है—ये सब प्रश्न एक विशेष दिशा की ओर ले जाती हैं। ट्रेड यूनियन के आशाप्रद, स्वीकृत माने हुये और वास्तविक भूमिका को जो सामाजिक तथा आर्थिक संगठन के रूप में है, जब एक दल अथवा संन्यकीय राज्य सत्ता से वह अनाश्रित है, उसके सम्मुख एक पेचीदा व पारस्परिक सम्बन्धों को निर्णय करने वाली स्थिति है।

## दक्षिण पूर्व एशिया

पूरे एशिया में विशेषतः दक्षिण पूर्व एशिया में ट्रेड यूनियन गतिविधियों की भूमिका निश्चित करना एक और कठिन समस्या है। एशिया में संस्कृति, इतिहास, परम्परा एवं भौगोलिक वातावरण श्रम एवं प्रशासकीय दृष्टिकोण को निर्धारित करने में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। सम्पूर्ण विचार परिवार के आधार पर दिशा निर्देश करते हैं। अप्रत्यक्ष और भौतिक प्रोत्साहन इस हद तक काम नहीं करते, जिस हद तक विश्व के शेष भाग में वे करते हैं। अक्सर व्यक्ति से सम्बन्धित, उसके परिवार जाति, प्रान्त और नैतिक समूह को ध्यान में रखकर प्रभावी सम्बन्ध खड़े होते हैं। प्रबन्धक की नियुक्ति और उसकी तरक्की, की नीतियां राजनीतिक अथवा ट्रेड यूनियन

नेताओं के चुनने के प्रकार पर बहुत हद तक प्र भावित होती हैं । कई नौकरियों की कुशलता भी परम्परागत चली आई है और पारिवारिक विशेषता से युक्त है । यहां करीब-करीब बहुजातीय समाज है और औद्योगिक समाज में परिवर्तन होने पर न केवल अर्थशास्त्रियों के लिये समस्या हो सकती है वरन् समाज शास्त्री, मनोवैज्ञानिक, प्राचीन सामाजिक अन्वेषक, औद्योगिक विशेषज्ञ तथा राजनैतिक एवं वैज्ञानिकों के लिये भी समस्या बनी हुई है, यहां तक कि व्यवसायों के नाम भी जाति के आधार पर रखे गये हैं । उदाहरणार्थ मलाया और लंका में मजदूरों की भर्ती करने वालों को 'कंगानी', जो कि ए क तामिल शब्द है, कहा जाता है तथा जो व्यक्ति अकुशल श्रमिकों के लिये फोरमैन अथवा ओवरसियर है, उसे 'मैंडोर', जो एक पुर्तगीज शब्द है, उद्बोधित होता है। नियोजक अथवा सम्पत्तिवान के लिये चीनी शब्द 'टाउके' प्रयोग में लाया जाता है और नियोजकों के संगठन को भी चीनी शब्द 'कांगसी' कहा जाता है । हर जातीय समूह की अपनी श्रम धारणायें हैं, उदाहरणार्थ सूखा, अकाल, बाढ़, विनाश में चाइनीज में कम खर्चीले व 'बचाने हेतु काम' के भाव एक आधारभूत प्रभाव रखते हैं । प्रचलित परम्परा में उस समय बहुत सी समस्यायें खड़ी हो गयीं, जब नौकरी में औरतों ने प्रवेश करना प्रारम्भ किया। इन पक्षों की सही कार्य प्रणाली को तथा एशिया के ट्रेड यूनियन एवं आर्थिक उत्थान की समस्याओं को समझने व पहचानने के लिये ठीक प्रकार से खोज नहीं की जा सकती है । विश्व के इस भाग में पुरातनकाल से जीवन की प्रगति परिवार और पूजास्थल के आधार पर विकसित हुई है, जिसने बहुत सी विशेषताओं को पैदा किया है । परन्तु सामाजिक नीति के उद्देश्य की पूर्ति के लिये सामाजिक शिक्षा के इन केन्द्रों के सदुपयोग के स्थान पर पाश्चात्य औद्योगीकरण और ट्रेड यूनियनिज्म के सिद्धान्त इसे ही समाप्त कर रहे हैं, इसलिये पैदा हुई कमियों को यह पूरा नहीं कर सकता । यही मुख्य समस्या और इसी का मनुष्य की प्रेरणा नैतिकता और सामाजिक संगठन पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। 'श्रम सम्बन्धी अध्ययन की अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान' (International Institute for labour studies) द्वारा जिनेवा में हुई १९६६ की बैठक की कार्यवाही की भूमिका लिखते समय लेखक श्री एम० रास ने इस समस्या पर अत्युत्तम ढंग से टिप्पणी एकत्रित की है। वे कहते हैं–

"यदि आर्थिक उत्थान को एक सम्पूर्ण सिद्धान्त के स्तर तक बढ़ा दिया जाय तो परम्परागत संस्थायें जैसा कि मजहब परिवार, ट्राइबलिज्म

और दार्शनिक विचार किन्तु लोलुपता और भौतिकवादी विचारों को छोड़कर प्रगति के बीच में एक रोड़े के समान दिखाई देते हैं। लेकिन यदि आर्थिक उत्थान को सामाजिक कल्याण के संयन्त्र के रूप में माना जाय तो यह स्पष्ट नहीं है कि बनाई गई संस्थाओं और मान्यताओं को लक्ष्य की प्राप्ति के अन्तर्गत रोड़े के रूप में देखने की दृष्टि नकारात्मक है। आर्थिक उत्थान के इतिहास में सर्वत्र उस जन समुदाय के लिये, जो उसमें भाग लेता है, एक क्रूर प्रक्रिया बनी हुई है। आधुनिककाल की चुनौती है कि क्या प्रगति प्राप्त करने के मार्ग में जीवन के जो भिन्न पहलू आते हैं, को समझे बिना प्रगति कैसे एक समाधान गति से बढ़ सकती है।"

अराजनीतिक और अनार्थिक दृष्टिकोणों को ऊपर वाली टिप्पणी में प्रमुख प्रभाव डालने वाले औद्योगीकरण की पद्धति पर बहुत अच्छी प्रकार से प्रकाश डाला गया है। राष्ट्रीय जीवन में ट्रेड यूनियन की भूमिका को विचार करने के लिये यह बहुत महत्वपूर्ण विषय है, क्योंकि यह भूमिका सरकार और आर्थिक प्रगति के आपसी विरोध के कारण नहीं है, वरन् ट्रेड यूनियन की राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान में सामाजिक संस्था के रूप में एक भूमिका है। सरकार और इसकी श्रम मशीनरी की भूमिका को भी इसी दृष्टिकोण से देखना होगा कि अर्थ यदि रोटी है, तो संस्कृति जीवन है। सांस्कृतिक पक्ष दूर नहीं किया जा सकता। इन पहलुओं के दुर्लक्ष्य से सामाजिक जीवन में बहुत पाखण्ड उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ, औद्योगिक मध्यस्थता न्यायालय (Industrial arbitration court) सिंगापुर के अध्यक्ष श्री चार्ल्स गाम्बा ने एक थीसीस (शास्त्रीय लेख) का विकास किया है कि सम्मान को बनाये रखने के लिये औद्योगिक समूहों के बीच के सम्बन्ध के लिये वह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की ओर अग्रसर हो रही है। वे वक्रोक्ति भाषा के अन्तर्गत 'Face' शब्द का लज्जाजनक परिस्थिति से बचाये रखने के लिये प्रयोग किया है। नाक बचाने वाली भूमिका इसलिये पैदा होती है क्योंकि आर्थिक प्रक्रियाओं एवं संस्थाओं पर अनार्थिक पहलुओं के अन्तर्गत प्रश्न खड़े किये जाते हैं, जिनके अन्तर्गत स्पष्टवादिता और सही मूल्यांकन नहीं हो पाता। दक्षिण पूर्व एशिया में ट्रेड यूनियन इन्हीं वातावरण के अन्तर्गत काम कर रही हैं।

जातीय विचारों की भूमिका राजनीतिक जीवन को व्यक्तिगत लड़ा

हथियाने का स्वरूप देती है। परिणामस्वरूप तत्व ज्ञान को नारों के रूप में प्रयोग किया जाता है, परन्तु उसे व्यवहार में नहीं लाया जाता। इसने श्रम आन्दोलन को भी प्रभावित किया है। उदाहरणार्थ मलाया और सिंगापुर के श्रम आन्दोलन पर एक लेखक लिखते हैं कि ट्रेड यूनियन नेता एक रात्रि में ही अपने श्रमिक तत्वज्ञान को बदल देते हैं। कुछ नेता लोग स्वतन्त्र ट्रेड यूनियन आंदोलन को अपने लड़ाकू सहयोग देने के कारण बिना मुकदमा के ही बन्दी बनाये गये हैं, इतना होने पर भी यह कहा गया कि ये ही नेतागण अब दलगत व सीमित कानूनी कार्यवाही को प्रोत्साहन देते हैं। सरकार की श्रमनीति हर यूनियन के लिये अलग-अलग भी हो सकती है तथा यह व्यक्ति-व्यक्ति पर भी निर्भर करती है। औद्योगिक न्यायाधिकरण, भावात्मक, राजनीतिक व आर्थिक वातावरण में अपना काम करते हैं। दक्षिण पूर्व एशिया में बहुत से देशों के लेखक वेतन की अदायगी में हुये दुराचार के बारे में समाचार दिये हैं। सदस्यता और नेतृत्व में साम्प्रदायिकता द्वेषभाव को पैदा करती है, जिसके फलस्वरूप सारा ट्रेड यूनियन आन्दोलन छिन्न-भिन्न हो जाता है। जातीय आधार यूनियन्स के इकट्ठा होने में बाधक हैं। श्रम आन्दोलन की आड़ में चीनी गुप्त संगठन व संस्थाओं के काम करने के कारण स्थिति बड़ी पेचीदा हो गयी है। ये संगठन समुदाय पर, जो सर्वसाधारण कानून का पालन करने वाले हैं, एक भीषण रोग के सदृश्य खड़े हो गये हैं। ट्रेड यूनियन्स में घुसकर ये गुप्त संगठन साम्प्रदायिक विषयों को उभाड़कर दल के लिए दुरुपयोग करते हैं। जातीय समूह का एक दूसरा दिलचस्प भाग है, जो परिवार की परम्परा के अन्तर्गत कुछ कार्यों के लिए परम्परागत कौशल्य प्रगट करता है। ऐसे भी उदाहरण हैं, जब कार्य विश्लेषण के आधार पर वेतन के दावे को तय करने में औद्योगिक ट्रिब्युनल की कुशलता की मात्रा को नापना कठिन हो गया है। एक खास निपुण जाति वाले श्रमिक अपने ऊंचे वेतन निर्धारित करने के लिए आग्रह करते हैं और वे उसकी कुशलता को पाने के लिए मेहनती प्रशिक्षण में से गुजरते भी हैं, और इस कुशलता को परम्परागत बनाये हुए हैं। परन्तु वे इस कार्य के लिए, जो देन उसे मिली हुई है, उससे अनभिज्ञ हैं। इन प्रतिद्वन्दिता की स्थितियों के कारण कुछ कार्यों के लिए भरती करते समय न्यायाधिकरण को उनकी जातीय भावनाओं की विशेषताओं को स्वीकार करना पड़ा। यहां तक कि सामुहिक सौदेबाजी को भी अपना स्वरूप बदलने के लिए बाध्य होना पड़ता है। जब वह दो समूहों

में एक ही समान जातीय मूल से अथवा दो भिन्न-भिन्न जातीय आधार के लिए होती है। इसी प्रकार संराधन अधिकारी तथा मन्त्री भी अपने जातीय आधार पर काम करते हैं। समानता और सम्बन्धित नीतियों (Coherent) की अनुपस्थिति में औद्योगिक नीति के माहौल को भी यह प्रभावित करती है। इस प्रश्न पर औद्योगिक गतिविधियां भी एक तर्क संगत चर्चा के विषय नहीं हैं। वहां अक्सर हड़तालों के कारण रहते हैं नियोजक की शक्ति की परीक्षा करना, यूनियन को शक्तिशाली बनाना, यूनियन के सदस्यों को तत्पर (सिद्ध) स्थिति में रखना तथा मुकाबले वाली यूनियन की मांगों का प्रत्युत्तर देना। अक्सर राजनीतिक हड़तालों को औद्योगिक हड़ताल से पृथक करना कठिन रहता है, इसलिए सरकार की श्रमनीति में यह कोशिश की है कि विरोधी समूह को अलग रखा जाय और एक स्वतन्त्र ट्रेड यूनियन आन्दोलन के स्थान पर सहयोगी आन्दोलन का विकास हो। हड़ताल की अवधि में पुलिस का कम या अधिक उपयोग भी एक कारण बना हुआ है, जो अध्ययन करने योग्य है। सर्वसाधारण कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में राजनीतिक जीवन अस्थिर है और इसलिए ट्रेड यूनियन दृष्टिकोणों का स्रोत भी समान रूप से आर्थिक पक्ष का नहीं है। भिन्न-भिन्न उद्योग सम्बन्धी संस्थायें और मशीनरी एक औपचारिक अथवा परामर्शदात्री भूमिका अदा कर रही हैं। आर्थिक परिस्थिति से कोई भी तर्क संगत सम्बन्ध वास्तविक परिस्थिति नहीं रखती। औद्योगिक समाज की ओर बढ़ने वाली प्रक्रिया में वास्तविक रास्ता औद्योगीकरण की आवश्यकताओं और पूर्व स्थित संस्कृति के बीच की प्रक्रिया है। संघर्ष कई पक्षों और स्तरों, जातीय मान्यतायें, परिवार पद्धति, वर्गीय सांठगाठ, शिक्षा प्रणाली, सरकारी ढांचा और यांत्रिक पद्धति के अन्तर्गत है। विदेशी पुस्तकों से लिए गए कानून, परम्परागत विचारों के साथ कोई तालमेल नहीं बैठा पाते और विधान के यान्त्रिकी ढंग से लागू करने के अन्तर्गत उन्हें कोई सम्मान प्राप्त नहीं है। नियम और परिस्थितियां गलत रूप से समझी जाती हैं। बारीकियों व कानूनी ढांचों को श्रमिक नापसन्द करता है। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत उसे एक भय सा बना हुआ है कि कानूनी बारीकियां कुछ हानिकारक भाव छिपाये हुये हैं। उन्हें चिन्ता सी बनी रहती है कि कानून के अज्ञात और अस्पष्ट अर्थ खराब परिणामों को ला सकते हैं। अज्ञान का आधारभय है और भाषा इसको और गम्भीर बनाती है तथा सम्पूर्ण वातावरण को दूषित करती है। औद्योगिक निर्णय

विदेशी भाषा में दिये जाते हैं। श्रमिक इन निर्णयों के अर्थ और उसकी बारीकियों को समझने में असमर्थ हैं। शब्दों के अर्थ के ऊपर कानूनी गतिविधियाँ लगातार चलती रहती हैं और इन गतिविधियों में व्यक्तिगत प्रमाणिकता को चुनौती दी जाती है। बहस के अन्तर्गत विवाद की समस्याओं को प्रगट करने में श्रमिक को सहायता व प्रोत्साहन करने के स्थान पर न्यायलय का वातावरण उसके प्रति अन्यायपूर्ण रहता है। औद्योगिक न्यायाधिकरण राजनीतिक द्विविधाओं का आधार बन जाते हैं और उनके निर्णय न्याय के स्थान पर दबाव के रूप में लागू किये जाते हैं. इस भूमिका के अन्तर्गत न्यायाधिकरण की स्वतन्त्रता, कार्यपालिका से लड़कर ही बनाई जा सकती है। न्यायालय के चेम्बरों में घुसखोरी घुस रही है। और एक गम्भीर समस्या खड़ी कर रही है। यह घुसखोरी विदेश से शिक्षित वर्गों में प्रवेश कर परम्परागत विचार को तोड़ने का काम कर रही है। अब समाजवादी नारे बोलना कोई एक अपूर्व घटना के रूप में नहीं लिया जाता। सांस्कृतिक रिक्तता जिसे परम्परा के तोड़े जाने के भय के रूप में लिया जाता है, एक अज्ञात डर नहीं है, परन्तु एक सही तर्क संगत विषय लगती है। वस्तुतः यह एक आश्चर्य है कि इन समस्याओं के बावजूद भी इस क्षेत्र के बहुत से विकासशील देश कुछ प्रगति कर रहे है। औद्योगीकरण को अपनाने के स्वरूप और प्रकार बहुत से हैं। और इस कारण ट्रेड यूनियनिज्म की भूमिका बहुरूप धारण कर रही है। वस्तुतः इसके बहुत से स्वरूपों की स्पष्ट परिभाषा करना शेष है। यह सम्भव है कि इन सभी पक्षों से सम्बन्धित समस्याओं को जिस समय हल किया जायगा, उस समय बहुरूपी हीरे के समान यह प्रगट होगा। इन्डोनेसिया के बारे में लिखते हुए श्री जे० एच० बोइके ने अपनी चिन्ता को यह कह कर प्रगट किया है कि पाश्चात्य ज्ञाता इस द्विविधा को समझने के लिए उपयुक्त गहराई की क्षमता नहीं रखते। राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन के लिये, आर्थिक समानता के आधार को लेकर प्रशिक्षित हुए ये ज्ञाता, पूर्व भाग के रहने सहने की विशेषताओं में बहुत सी कमजोरियों को देखने की गलती कर सकते हैं। जैसा कि ऊपर कही गयी टिप्पणी में श्री आर्थर० एम० रास० ने कहा है कि जब आर्थिक विकास को समाज कल्याण के संयंत्र के रूप में देखा जाता है और इसे सम्पूर्ण अथवा सबसे महत्वपूर्ण संयंत्र नहीं देखा जाता तब पूर्वी ढाँचे की औद्योगीकरण की पद्धतियों को लेकर बहुत से तात्विक विषय खड़े होते हैं। यहां पर परम्परा शब्द का अर्थ पश्चिमी बारीकी को सामने रखकर पिछड़ेपन से नहीं है, बल्कि परिवार और मन्दिर से सम्ब-

न्धित जीवन के आधार पर खड़ा हुआ एक सकारात्मक सामाजिक पक्ष है। पूर्व और पश्चिम के तत्व ज्ञान का विवाद आधुनिक उद्योगों के रूप में लड़े जा रहे हैं और ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका संस्कृति के आधीन अधिक है और राजनीतिक तथा सामाजिक उद्देश्यों के रूप में गौड़ ही है।

## साम्यवादी गुट

ट्रेड यूनियन गतिविधियों की भूमिका के अन्तर्गत साम्यवादी विचार धारा को बढ़ाने के लिए उपाय चीन के माओत्से तुंग के विचारों में पूर्णतः प्रतिबिम्बित है। इस भूमिका के अलावा अन्य सभी प्रकार के विचार कितने ही श्रेष्ठ, व्यवहारिक और राष्ट्रवादी हों, मूल साम्यवादी विचारों से स्पष्टतः भिन्न हैं और उन्हें समावेश करने की एक दिलचस्प कहानी है, जिसे माओ 'एकोनामिज्म' (Economism) कहते हैं। चीन में भी ट्रेड यूनियन गतिविधियों पर वहां के राष्ट्रपति ल्यूशा ची के विचार-एक घोर विरोधी के रूप में सिद्ध हुए हैं। ल्यू का यह विचार है कि ट्रेड यूनियन की भूमिका औद्योगिक उत्पादन के सुधारने व बढ़ाने तथा यूनियन के सदस्यों के कल्याण में निहित है तथा वह भिन्न रूप से उत्पादन बढ़ाने के लिये श्रमिकों में उसके लेाभ के वितरण में विश्वास रखता है। माओ के अनुयायियों ने इन विचारों को 'महिलाओं के विचार' कहकर तीक्ष्ण भर्त्सना की है, क्योंकि उन विचारों के अनुसार ट्रेड यूनियन के कार्य रोगग्रस्त लोगों को स्वस्थ होने के लिये सेवा करने, शव यात्रा पर रोने, दुःखित परिवार को शोक संवेदना भेजने या या उच्चतर स्तर पर मकानों को सजाने तथा बन बिहार के कार्यक्रमों में आनन्द लेने के काम को ही माना है। माओ ट्रेड यूनियन्स को विश्व में क्रान्ति पैदा करने हेतु पुरुषोचित काम को देना माना है और इस विचार में वह किसी भी प्रकार से समझौता करने को तैयार नहीं है। क्योंकि किसी भी एक राज्य में साम्यवाद के विजय की स्थापना तब तक सम्भव नहीं, जब तक पूरे विश्व में यह स्थापित न हो जाय और तब तक भिन्न-भिन्न पद्धतियों के सह अस्तित्व को भी अस्वीकार किया जाय। साम्यवादी देश में ट्रेड यूनियन की तर्क संगत भूमिका एक साम्यवादी अर्थव्यवस्था के आधार को पैदा करने के लिए होगी और संसार के सभी श्रमिकों से सम्बन्ध बनाने में होगी, ताकि सर्वहारा की तानाशाही के संघर्ष को चलाया जा सके। यदि इस सर्वहारा राजनीति के बजाय श्रमिकों का ध्यान उनके अपने हित व भौतिक लाभ के लिये

खींचा जायगा, तब सिद्धान्त वादिता के स्थान पर स्वार्थपरता का ही राज्य होगा। इसलिये माओ ने श्री ल्यू के विचारों का ठीक ही खण्डन किया है, क्योंकि ल्यू के विचार 'इ कोनामिज्म' की खराब दिशा को ही पैदा करती है। ये कुछ संशोधनवादी विचार निश्चित ही संसार भर में श्रमिक वर्ग के हितों की जड़ में पानी देगा। और धन, कल्याण, उत्पादन, क्षमता तथा तकनीकी को ही सर्वप्रथम प्रस्तुत करेगा। तब ट्रेड यूनियन्स के पास न समय रहेगा और न शक्ति, जिसके अन्तर्गत वे राजनीति को प्रधानता दें सकें और जनता के विचारों को क्रान्तिकारी ढंग से बदल सकें। वे तब विश्वव्यापी वर्ग संघर्ष को भूल जायेंगे, विश्वबन्धुत्व की कड़ियों को भुला देंगे और बुर्जुआ राष्ट्र-वादिता में खो जायेंगे। तब उत्पादन भी उत्पादन और उसके शीघ्र खपत के लिए होगा और एक सैनिक सत्ता को नहीं बनाया जा सकेगा, जो कि विश्व में श्रमिकों की जीत के लिये अनिवार्य है ! एक असली साम्यवादी देश में ट्रेड यूनियन्स श्रमिकों के हितों को देखने के लिये ही नहीं हो सकती वरन् वे एक विश्वव्यापी संघर्ष के बीच में एक कड़ी के रूप में होती हैं। उन्हें श्रमिकों को कम से कम आवश्यकताओं पर गुजर करने के लिये तैयार रखना चाहिये और अपना पूरा ध्यान विश्वव्यापी साम्यवादी क्रान्ति के सर्वग्रासी विचार को फैलाने के लिये समर्पण करना चाहिये। और इस हेतु कला, साहित्य, विवाह के रीति रिवाज, शिक्षा आदि के सम्पूर्ण विचारों में गतिशील परिवर्तन लाना होगा और जनता को माओं के विचारों से प्रेरित करना होगा। विश्व के पूंजीवादी व्यवस्था को उठा फेंकने के लिये सर्वहारा को इस सर्वव्यापी भूमिका के लिए तैयार करने हेतु तत्पर करना ही साम्यवादी देशों में ट्रेड यूनियन गतिविधियों का केन्द्र व सम्पूर्ण काम है। ट्रेड यूनियन की इस भूमिका को माओ ने स्पष्ट रूप से परिभाषित किया है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि चीन में केन्द्रीय ट्रेड यूनियन को निरस्त करना ही ठीक माना जायगा।

यह स्पष्ट नहीं है कि किस हद तक सोवियत रूस ने विश्वभर के के साम्यवाद के इस ऐतिहासिक भूमिका के लिये ट्रेड यूनियन गतिविधियों को विकसित किया है। लेनिन के अन्दर निश्चित ही पूर्णरूपेण क्रान्तिकारी जोश है (था)। उसका व्यक्तिगत जीवन व उसका ढंग, जिसके अन्तर्गत रूस में श्रमिक गतिविधियों को पनपाया हर समय के लिये उन ट्रेड यूनियन कार्य कर्ताओं के लिये एक आदर्श है जो राष्ट्र निर्माण के काम के लिये आन्दोलन की क्षमताओं को उपयोग में लाना चाहते हैं। परन्तु लेनिन एक वास्तविक साम्यवादी नेता के स्थान पर राष्ट्रीय नेता के रूप में प्रगट हुये हैं। जो कुछ

भी हो, साम्यवादी दल शक्तिशाली जार की सत्ता को बदलने में कभी भी सफल नहीं हुआ, जैसा कि सब दूर विश्वास किया जाता है। जार की सरकार, केरेन्सकी की सरकार द्वारा बदली गई थी, जो कि भिन्न-भिन्न शक्तियों का एक समूह था, जो सभी प्रजातन्त्र के लिये प्रेरित थे। इन सब शक्तियों में से एक साम्यवादी दल भी था। चूंकि केरेन्सकी की सरकार एक सर्वदलीय सरकार थी और काफी कमजोर थी, इसलिये साम्यवादियों द्वारा परिवर्तित की जा सकी। लेनिन ने ऐसा किया। परन्तु यह भुलाया नहीं जा सकता कि लेनिन के बहुत से सहयोगियों द्वारा उसे सुझाव दिया गया था, साम्यवादियों द्वारा सत्ता लेने का यह परिपक्व समय नहीं है, साथ ही रसियन साम्यवादी दल भी विश्वव्यापी आंदोलन की सफलता हेतु उतनी शक्ति की आवश्यकता को पूर्ति नहीं कर सकता। उस समय लेनिन की अधीरता रूस के राष्ट्रीय लाभ के लिए लाभकारी थी, किन्तु विश्वव्यापी श्रमिकों के हित को आगे बढ़ाने के आधार को बनाने के लिए नहीं थी। इतिहास की घटनाओं के अन्तर्गत इस अपूर्णता को आमतौर से यह महत्ता नहीं दी जाती, जो वह स्थान रखती है। इसलिये हम आधारभूत विचारों के लिये गलत निर्णयों पर पहुंचते हैं। जिस प्रकार हिन्दुस्तान में ब्रिटिस साम्राज्य को उठा फेकने के लिये कोई भी कांग्रेस आंदोलन सबल नहीं था, रूस में भी साम्यवादी विचार 'जारडम' को पराजित करने के लिये मौलिक रूप से सबल नहीं था। इसलिये जब उसे सत्ता में आने का पहला मौका मिला उसने उस अवसर को हथियाया और राज्यमद में तात्विक जोश ढीला होना शुरू हो गया। अपने आपको स्थायी बनाने के लिये इसने कदम उठाये, जैसा कि हर एक समूह अथवा राष्ट्रकर्ता है और अपने राष्ट्र के हित के लिये सिद्धांत वादिता के कोरे नारों पर विश्वव्यापी दृष्टिकोण को बढ़ाया। बड़ी कठिनाई से आधुनिक रूस एक साम्यवादी देश के रूप में माना जा सकता है और रूस में क्रमिक संगठन वास्तविक साम्यवाद के लिये कुछ नहीं कर सकते हैं।

आधुनिक रूस के इतिहास में सामाजिक गतिविधियों के वास्तविक स्वरूप और साम्यवादी सिद्धांत की खींचातानी हर जगह पायी जाती है। लेनिन ने सर्वप्रथम विद्युतीकरण हेतु इलेक्ट्रीसियनों को सम्मान देना शुरूकिया, तत्पश्चात रूसियों को। उसने कहा कि एक तकनीकी बीस साम्यवादियों के बराबर है। उसकी क्रांति के अग्रदूत सर्वहारा नहीं थे, बल्कि विशेषज्ञ व तंत्रज्ञ थे। लेनिन की नई आर्थिक नीति पर कुछ लोगों ने टिप्पणी की, कि इस नीति को अपनाने का अर्थ मार्क्सवाद के रास्ते से हटना है। किन्तु इस पर लेनिन

का एक मात्र जवाब था कि मार्क्स ने समाजवाद की अर्थव्यवस्था पर एक शब्द भी नहीं लिखा है। इस प्रकार राजकीय पूंजीवाद का रूस में उद्घाटन (जन्म) हुआ और राजकीय पूंजीवाद के विकास की प्रक्रिया का जनता की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव पड़ा। जैसा कि सर्वविदित है, पूंजीवादी विकास की पुरानी पद्धति तभी संभव होती है, जब जनता उस हेतु सामाजिक मूल्य चुकाती है। मार्शल स्टालिन ने इस कीमत को बड़े क्रूर ढंग से चुकाया। ट्रेड यूनियन्स को पूर्णतः दल के अन्तर्गत कर दिया और इस प्रकार स्टालिन के एक विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत ट्रेड यूनियन्स को सैनकीय नियंत्रण, दबाव, डर, गुप्तचर पुलिस और श्रम शिविरों के अन्तर्गत रख लिया गया। इस प्रकार एक ऐसे ढाँचे को कार्यान्वित किया गया, जिसका आधार उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण, कन्द्रीय योजना, एकमात्र राजनीतिक दल एवं श्रमिक संगठन, एक विशेष आर्थिक व्यवस्था और एक सामाजिक सिद्धाँत था तथा आर्थिक नीति के स्वरूप हेतु भिन्न भिन्न रास्तों के बहस को एक व्यक्तिवादी दृष्टिकोण (Personality cult) के अपनाने के कारण पूर्णतः समाप्त कर देना पड़ा।

स्टालिन के काल के बाद प्रशंसनीय परिवर्तन देखने को मिलते हैं और इसलिये ट्रेड यूनियन की भूमिका में परिवर्तन आना भी शुरू हो गया है, फिर भी स्टालिन के सैनकीय अधिनायकवाद और मत प्रणाली के प्रभाव व दबाव अभी भी जीवित है, परिणाम स्वरूप आधुनिक चित्र मिश्रित रूप में हैं। सम्पूर्ण साम्यवादी देशों में श्रमिक संगठनों का स्वरूप एक ही समान माना जाता है और दूसरे देशों में जैसा होता है उसके समान नहीं माना जाता। दल, समाज अथवा श्रमिक समितियां तथा सहकारी समितिया–श्रमिकों के प्रवक्ता के रूप में माने जाते हैं। परिणाम स्वरूप जिन्हें ट्रेड यूनियन कहते हैं, उन्हें श्रमिकों के कल्याण के ही कुछ काम दिये जाते हैं। परन्तु बढ़ रहे विकेन्द्रीकरण और उदार भाव के कारण श्रमिकों की आवाज में धीमें-धीमें परिवर्तन आ रहा है, किन्तु इस परिवर्तन को स्वीकार करने अथवा इसे प्रचारित करने में अधिकृत हिचकिचाहट है। सोवियत रूस की मंत्रि परिषद की श्रम और वेतन समितियाँ देश में सभी वेतनों की दिशा निर्धारित करती हैं। सरकार हर प्रकार के श्रमिकों के न्यूनतम वेतन और हर प्रकार के श्रमिकों के वेतन क्रम के भिन्न-भिन्न स्तरों को परिभाषित करता है। वेतन समितियों को सलाह देने हेतु कई संगठन हैं, उदाहरणार्थ श्रम हेतु शोध संस्थान तथा श्रम हेतु पद्धति

निर्माण केन्द्र आदि । राज्य योजना समिति और राज्य वित्त मन्त्रालय के सामीप्य और सहयोग में यह समितियां काम करती हैं। वर्तमान न्यूनतम वेतन ४५ रूबल्स प्रति मास है और १९७० तक ७० रूबल्स तक बढ़ाने का सुझाव है। परन्तु कहा जाता है कि अगर वर्तमान न्यूनतम वेतन में सम्पूर्ण सुविधाओं का मूल्य जोड़ दिया जाय, तो यह १३० रुबल्स तक बैठता है। हर उद्योग में न्यूनतम शिक्षास्तर और विशेषताओं के आधार पर प्रति घण्टा न्यूनतम उत्पादन का स्तर निर्धारित है और श्रमिक का वेतन बढ़ा दिया जायगा, अगर वह अच्छे गुणों (Quality) से युक्त अधिक उत्पादन करता है। भिन्न -भिन्न उद्योगों में वेतन भिन्न-भिन्न हैं, इसका क्रमशः घटाव इस प्रकार से है—कोयला, लोहा और इस्पात, कागज, पल्प आदि और नीचे श्रेणी में क्रम है—टेक्सटाइल, छपाई और चमड़ा तथा सबसे कम वेतन खाद्य प्रक्रियाओं तथा वस्त्र बनाने वाले उद्योगों में है। उन क्षेत्रों व व्यवसाय में जहां श्रमिक की कमी है, अधिक वेतन दिये जाते हैं और इस हेतु आय मांग और पूर्ति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। अध्यापकों को सप्ताह में १८ घण्टे काम करने के लिए न्यूनतम वेतन ८० रूबल्स मिलता है और अपनी आमदनी को पूरा करने के लिए उन्हें दूसरा अतिरिक्त काम करना पड़ता है। टैक्सी चालक को दिन में ७ घण्टे तथा सप्ताह में ४१ घण्टे काम करना होता है और ८० रूबल्स प्रति मास उसे औसतन वेतन मिलता है, फिर भी उसका वेतन उसकी शिक्षा और दैनिक इकट्ठी की गई धनराशि के अनुसार बढ़ सकती है। कुछ काल से राष्ट्रीय संगठन के भिन्न-भिन्न अंग वेतन और श्रम कानून के प्रमुख निर्णयों में औपचारिक जिम्मेदारी निभाने हेतु अग्रसर हो रहे हैं। वेतन क्रम की बढ़ोत्तरी उत्पादकता से सम्बन्धित है और परियोजना सम्बन्धी यूनियन को उत्पादकता आधारित वेतन वृद्धि हेतु काम करना पड़ता है। इसने परियोजना सम्बन्धी सामूहिक सौदेबाजी का अवसर लाया है। एक पोलिस (पोलेण्ड) लेखक ने सामूहिक सौदेबाजी की भावी क्षमताओं पर एक अध्ययन प्रकाशित किया है। सामूहिक सौदेबाजी की यह शुरुआत है। ऐसे उदाहरण हैं, जब ट्रेड यूनियन ने वेतन निर्धारण समिति से भिन्न विचार रखा है, परन्तु वर्तमानकाल में इन सब भेदों पर सरकार की अन्तिम आवाज ही प्रभावी होती है। सोवियत जनता के सम्मुख यह हमेशा रखा जाता है कि उत्पादन लक्ष्यों की पूर्ति और श्रमिकों की बढ़ती हुई उत्पादकता वास्तविक वेतन के हित के लिए अनिवार्य आधार हैं, फिर भी कई हड़तालें होती हैं। उत्पादन

स्तर के विरोध में आवाज तथा वेतन और मर्यादाओं के ऊपर हो रही हड़तालों की भली-भाँति जानकारी सबको है। यद्यपि सोवियत समाचार पत्र हड़तालों के इन समाचारों को प्रकाशित नहीं करते। इसके पश्चात भी सोवियत प्रवक्ता यह लगातार आग्रह करते हैं कि काम के रुकावटों की बिलकुल आवश्यकता नहीं है, क्योंकि विवाद को तय करने के लिए बहुत से रास्ते हैं। फिर भी बहुत से प्रमाण हैं, जिनके अनुसार प्रबन्धकों ने तानाशाह के समान व्यवहार किया है, उन्होंने सभी कीमतों पर उत्पादकता को बढ़ाया श्रम नियमों को तोड़ा, श्रमिकों और यूनियनों की राय को ठुकराया, आलोचनाओं को दबाया और श्रमिकों के अधिकारों के नियमों को तोड़ा है। इसका यह भी अर्थ है कि वहां ट्रेड यूनियन के एक प्रकार के विरोध का भी स्थान है।

राज्य और दल के ये ट्रेड यूनियन अधिकृत अंग होने के कारण उनके बहुत से कार्य और अधिकार सरकारी गतिविधियों से पूर्णत मिले जुले हैं। यूनियन श्रमिकों से उनके वेतन का अधिकतम एक प्रतिशत शुल्क के रूप में ले सकते हैं। यूनियन को हर संस्थान वेतन राशि का ४ से १० प्रतिशत तक देता है (यह संस्थान-संस्थान में भिन्न है)। वेतन राशि का ०-१५ प्रतिशत श्रम संगठनों के मनो-विनोद सम्बन्धी राशि के लिये योगदान देते हैं। इनका मुख्य काम श्रमिकों के जीवन स्तर को बढ़ाने के लिये है। ध्यान रहे कि इस व्यवस्था को समाजवादी प्रतियोगिता के माध्यम से शुरुआत किया जाना चाहिये। उदाहरणार्थ जन आन्दोलनों के माध्यम से श्रमिकों द्वारा दूसरे श्रमिकों के मुकाबले में अधिक और अच्छा काम करने की सद्भावना पैदा करना, इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु क्लब, सिनेमा, पुस्तकालय आदि, जो उनके अधिकार के लिये प्राप्य हैं, के द्वारा शिक्षा कार्य को कराना है। ट्रेड यूनियन के अपने समाचार पत्र हैं, कई पत्रिकायें छपवाते हैं और इस संदर्भ में छापाखाने के वे मालिक हैं और उससे लाभ भी कमाते हैं। सामाजिक सुरक्षा की सम्पूर्ण योजना इन्हीं यूनियन द्वारा क्रियान्वित होती है, वही पेन्सनर्श को पेंशन ओर भत्ते देते हैं। हर नागरिक को वृद्धावस्था, बीमारी और असमर्थता के कारण कार्य क्षमता की कमी होने पर उस हेतु सुरक्षा प्रदान करते हैं, अस्थाई अक्षमता, मातृत्व हित लाभ, वृद्धावस्था पेन्सन, अपंग पेन्सन, उत्तराधिकारी पेन्सन आदि की सुविधा देते हैं। इस सामाजिक सुरक्षा का सम्पूर्ण व्यय सरकार वहन करती है, जो कि उद्योग के वेतन फण्ड में से एक विशेष धनराशि

के रूप में अथवा एक विशेष राजकीय स्वायत्तीकरण के द्वारा एकत्रित की जाती है। श्रमिकों के वेतन से धन नहीं काटा जाता। संस्थान भी अपने लाभ का कुछ प्रतिशत ट्रेड यूनियन्स को श्रमिकों के पेन्सन और भत्ते तथा सुविधाओं के लिये देता है। उदाहरणार्थ-कोयले के उद्योग में ९ प्रतिशत, जबकि सामूहिक और राजकीय फार्मों में ४ प्रतिशत किया जाता है। हर क्षेत्रीय स्तर पर पेन्सन हेतु एक विशेष कमेटी बनाई गई है, जिसमें ट्रेड यूनियन का एक प्रतिनिधि नियुक्त किया जाता है। हर श्रमिक अपनी परियोजना स्तरीय यूनियन का सदस्य होता है और सभी यूनियनों के सदस्य औद्योगिक महासंघ से सम्बद्ध होते हैं। उद्योग के आधार पर कुल २५ औद्योगिक महासंघ हैं। सभी महासंघों के समूचे शुल्क एक ही स्थान पर जमा होते हैं। राज्य नागरिकों को निशुल्क चिकित्सा की सुविधा देती है, परन्तु मंहगी दवाइयां मरीज को ही खरीदनी पड़ती हैं। शिक्षा पूर्णतः निशुल्क है। राज्य बच्चों और उनकी माताओं के हितों को देखती है। अविवाहित माताओं को गर्भवती होने पर वेतन सहित अवकाश दी जाती है। अधिक सन्तान होना-एक विशेषता मानी जाती है और उन माताओं को, जिनके १० या उससे अधिक बच्चे होते हैं, उन्हें 'मदर हीरोइन' का पदक दिया जाता है। हर बच्चे के जन्म पर मां को कुछ धनराशि व मासिक भत्ता दिया जाता है। और ये दोनों सुविधायें बच्चों की संख्या के साथ-साथ बढ़ती जाती है। इस प्रकार की सामाजिक देखभाल सोवियत राज्यों में होती हैं और इस सामाजिक क्षेत्र में ट्रेड यूनियन्स को एक प्रमुख भूमिका निभानी पड़ती है। इस सामाजिक कार्य का बहुत बड़ा भाग ट्रेड यूनियन्स को सीधे ही करने पड़ते हैं और शेष सभी में वे अप्रत्यक्ष रूप से दखल रखते हैं। परियोजना स्तर पर दिनपर दिन के अनुशासन के मसले व अनुशासन हीनता के व्यवहार को देखने हेतु यूनियनें अपने प्रभाव का उपयोग करती हैं। इन गतिविधियों और उत्पादकता सम्बन्धी कार्यों के कारण ट्रेड यूनियनों को प्रशासनिक व आर्थिक भूमिका निभानी होती है।

अब यह अच्छी प्रकार से समझा जाता है कि समाजवादी गुट के देशों में विशेषता पूर्वी योरोप के देश यह अनुभव कर रहे हैं कि उनके द्वारा विकसित पद्धति में परिवर्तन होना चाहिये। केवल कुछ काल के लिये ही सोवियत रूस को एक नमूने के रूप में माना गया था। यूगोस्लाविया ने एक विशेष बुद्धिमत्ता दिखाकर एक पद्धति का निर्माण किया है, जिसके अध्ययन को हम

बाद में लिखेंगे। पूर्वी जर्मनी और पोलैन्ड अभी भी रूसी प्रभाव के अन्तर्गत चल रहे हैं। रूमानिया और जेकोस्लोवाकिया शीघ्र परिवर्तित हो रहे है। जेक्स ने सरकार को दल से अलग कर लिया है, वहां पर काफी मात्रा में बोलने तथा संगठित होने आदि की स्वतंत्रता है। समाचार पत्रों को अपनी स्वतंत्रता दी गयी है। प्रजातांत्रिक चुनाव में अब एक से अधिक प्रत्याशी को मना नहीं किया जाता और संसद को सर्वोच्च माना जाता है। आर्थिक विकास के क्षेत्र में केन्द्रीय योजना के सिद्धांतों में काफी ढील दी है। बाजारी अर्थव्यवस्था के बहुत से पहलुओं को अपनाया गया है। इस नये आर्थिक सुधारों के लागू करने के फलस्वरूप उससे लाभ होने के दृष्टिकोण के प्रति सोवियत रूस के साम्यवादी दृष्टिकोणों में भी जमीन आसमान का अन्तर आ रहा है। सबसे अन्त में रूमानिया में परिवर्तन हुआ है, जिसने आर्थिक प्रोत्साहन देने के प्रयोग शुरू किये हैं। कारखानों को अधिक स्वतंत्रता दी जा रही है, जिसमें सम्पूर्ण नियोजित वेतन कोष के अन्तर्गत श्रमिक समुदाय के कार्यपद और वेतन स्तरों का मूल्यांकन करके लागू कराना है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस वर्ष के अन्त तक रूस के सारे उद्योग इस नई अर्थनीति को अपना लेंगे। इतना ही नहीं ख्रुश्चेव की विकेन्द्रीकरण की नीति, जोकि ५० क्षेत्रीय आर्थिक समितियों पर आधारित थी, को कोसीजिन ने इसे बहु स्तरीय, कष्टकारी व द्विविधापूर्ण माना है और क्षेत्रीय प्रोत्साहन के विकास के लिये उसे अब और विकेन्द्रित किया है। निश्चित ही समाज को नई दिशा देने के लिये यह एक विचारपूर्ण निर्णय है और अधिक स्वतंत्रता के संघर्ष के लिये यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन भी है।

किताबी तथा सिद्धान्त सम्बन्धी दिशा अपनाने के बाद, अब साम्यवादी देशों के लिये परिवर्तनों के अनुकूल अभ्यस्त करना आसान नहीं है। इन परिवर्तनों के सर्वसाधारण सर्वेक्षण एवं विवरण के कारण बहुत सी सैद्धांतिक समस्यायें खड़ी हो रही हैं। इस प्रकार की खोज को जान बूझकर कम प्रचारित किया जाता है और जो कुछ भी प्रकाशित होता है, वह आर्थिक ढांचे और पद्धतियों के समूचे विवरण, जो कि मुख्यतः तात्विक एवं सैद्धांतिक है, के अन्तर्गत रखा जाता है। व्यावहारिक रूप में आंकड़ों को छिपाया जाता है और श्रम आन्दोलनों की प्रगति को द्वितीय स्थान दिया जाता है। ट्रेड यूनियन गतिविधियां अब सर्वसाधारण विवरण के विषय नहीं हैं। परन्तु बहुत से शोध कार्यकर्त्ताओं को ट्रेड यूनियन्स की गतिविधियों और उनकी बदलती

भूमिकाओं के अन्तर्गत समस्याओं को खोज निकालने के लिये लगाया जाता है। रूसियों की अब बढ़ती हुई महत्ता इस विषय पर है कि राज्य रहित (राज्यहीन) समाज के बनाने और कानून को साम्यवादी नैतिकता से बदलने के विषयों का ढिंढोरा पीटते रहना। पोलैण्ड ने शोध आधारित विशेष लाके प्रकाशित किये हैं, जिनमें समाजवादी श्रम कानून की विशेष गतिविधियों और श्रम सम्बन्ध का विवेचन किया गया है। उदाहरणार्थ नीति और नैतिक मूल्यों के नये 'सेट' की स्थापना, जिसके अन्तर्गत कानून के आधार पर सभी सम्बन्धों के समाप्त होने के कदमों का उल्लेख है। साम्यवादी गुट में इस सिद्धान्त और व्यवहार के विकास के लिये ट्रेड यूनियन्स के ऊपर एक नई जिम्मेवारी डाली जा रही है, जिसके अन्तर्गत उन्हें नैतिक नियमों को बनाये रखना होगा। परन्तु वे कानून अभी राज्य और दल के विचारार्थ ही हैं और अभी भी दैवी आधारभूत नियमों की श्रृंखला में क्रमबद्ध नहीं हैं, जैसा कि प्राचीन भारत में था।

## दक्षिणी अमेरिका

साम्यवादी जगत की सुसंगठित स्थिति के चित्रण के पूर्ण विरोधी चित्र हम दक्षिण अमेरिका के देशों में पाते हैं, जहां पर राज्य और समाज बिलकुल ही संगठित नहीं है, जिसके अन्तर्गत किसी भी विचार को सम्मुख रखने अथवा कार्यान्वित करने की कोई तर्कसंगत विकास को सम्मुख ला पाये हैं। दक्षिण अमेरिका के देशों में दबाव डालने वाले समूह (सेना, चर्चा और छात्र समूह) की संख्या बहुत कम है, अथवा वे इतने अधिक संख्या में हैं कि उनका व्यावहारिक रूप से भेद कर पाना कठिन है क्योंकि यह पता लगाना मुश्किल होता है कि वे व्यक्ति स्वार्थों को प्रगट करते हैं या किसी समूह स्वार्थों को। नगरीकरण अनुपात में उद्योगीकरण से बहुत तेजी से बढ़ रहा है। यह विकास किसी आर्थिक कार्यक्रम पर निर्भर नहीं है। संसार की सामाजिक स्थिति पर राष्ट्रसंघ की १९६३ की रिपोर्ट में चित्रण किया गया है कि दक्षिणी अमेरिका के सामाजिक ढांचे और सामाजिक उथल-पुथल के आधुनिक अध्ययन पर बहुत से लेखक यह चिन्ताजनक प्रश्न कर रहे हैं कि क्या परम्परागत करीब-करीब यथास्थितिवाद के अन्तर्गत दो वर्गों वाले समाज जिसमें काफी गड़बड़ी पैदा हो गई है, एक नये समाज द्वारा बदला जायगा, जिसमें बहुत से वर्गों का एक मिला जुला समाज होगा और जिसमें एक वर्ग

से दूसरे वर्ग में अदल बदल काफी मात्रा में होगी और जो राष्ट्रीय विषयों में भाग लेने हेतु एक सर्वव्यापी मिश्रित दृष्टिकोण रखेगा। श्रमिक वर्ग सर्वत्र संगठित है और लोकप्रिय राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेता है, परन्तु फिर भी इसकी स्थिति बहुत ही गम्भीर बताई जाती है। इस स्थिति का प्रमुख कारण है एक उचित विकसित मध्यम वर्ग की कमी। दक्षिण अमेरिका के सम्बन्ध में आर्थिक आयोग अनुभव करता है कि समाज का मध्यम वर्ग सत्ता में आने के लिये जब श्रमिक वर्ग के आम समुदाय की सहायता पायेगा, उसके बाद ही यह सम्भव होगा और तभी पूरी जनसंख्या के शेष वर्ग राष्ट्रीय जीवन में सक्रिय भाग लेना शुरू करेंगे। इसके अभाव में ये कार्य सम्बन्ध, जिनमें निजी सम्बन्ध स्थान नहीं रखते और संस्थागत ढांचे ने ट्रेड यूनियन को केवल मात्र विरोधी अंगों के रूप में छोड़ दिया है। इस कारण दोनों पक्षों में स्थिरता हुई है। दक्षिणी अमेरिका के भविष्य के लिये शहरी मध्यम वर्ग को एक बहुत महत्वपूर्ण व्यूह रचना के रूप में माना जाता है। अर्जेन्टाइना, ब्राजील और चिली पर करीब सभी लेखकों ने इसी पक्ष की पुष्टि किया है।

दक्षिणी अमेरिका के ट्रेड यूनियन्स का एक विशेष महत्व है क्योंकि बहुत से मामलों में राज्य ने ट्रेड यूनियन्स को प्रोत्साहन करने के लिये एक सक्रिय नीति की शुरुआत की है। इसने बहुत सी परियोजना स्तरीय यूनियन को जन्म दिया है, परन्तु वहां पर कोई भी उद्योग सम्बन्धी यूनियन नहीं है और राष्ट्रीय स्तर पर महासंघ प्रायः ढीले और निष्क्रिय रूप में हैं, फलस्वरूप ट्रेड यूनियन नेतृत्व राष्ट्रीय निर्णयों के करने में भाग लेने हेतु दबाव नहीं डाल पाते। यह कहा गया है कि ट्रेड यूनियन आन्दोलन में आर्थिक और राजनैतिक विषय के संदर्भ में सामूहिक दृष्टिकोण अपनाने की कमी है। इसी भूमिका पर सरकार और निजी क्षेत्र की गतिविधियां आधारित हैं। तत्स्वरूप श्रमिकों में केवल अंधविश्वास है और आर्थिक उत्थान की और प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में उनकी समझ में कमी हैं। अभी तक सरकार और नियोजन संगठनों के बीच अथवा सरकार और केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संगठनों में कोई वार्तालाप हेतु मंच नहीं है। यूनियन्स वित्तीय क्षमताओं की दृष्टि से कमजोर हैं। अर्जेन्टाइना के श्रम और सामाजिक सुरक्षा मंत्रालय तथा चिली के विश्व विद्यालय ने ट्रेड यूनियन्स की सम्पत्ति की खोज कराई और इस निर्णय पर आये हैं कि अनिवार्य

सदस्यता की पद्धति यूनियन के वित्तीय स्तर को ठीक करने के लिये आवश्यक है। ट्रेड यूनियन का वैचारिक सम्मान बहुत ही अस्पष्ट है और संख्या की शक्ति व शहरों में आबादी के केन्द्रीकरण ऐसे दो प्रमुख कारणों से वे कुछ राजनीतिक प्रभाव रखते हैं। चूंकि स्वराजकीय संगठन, क्षमता और अनुभव आवश्यकताओं के मुकाबले में कम हैं व बाहरी प्रभावों से जल्दी दब जाते हैं इसलिए यूनियन्स, जो कि समान उद्देश्य, कार्यक्रम और व्यूह रचना भी रखते हैं, वे भी अकेले-अकेले ही काम करते हैं। श्रमिकों और यूनियनों के प्रति नियोजकों के दृष्टिकोण कुछ मात्रा में कभी-कभी तानाशाही तथा पैत्रिक भाव को प्रकट करते हैं और सर्वसाधारण एक अनुदारवादी दृष्टिकोण को ही अपनाते हैं। ट्रेड यूनियन्स को प्रोत्साहन करने के लिये राज्य को दिलचस्पी लेने से एक विचित्र परिणाम निकला है, जिसके अन्तर्गत उसके द्वारा एक बड़ी मात्रा में श्रम कानूनों पर शोध हो रहा हैं। राज्य न केवल ट्रेड यूनियन्स को सुरक्षा प्रकट करता है, बल्कि नियंत्रण भी रखता है। वह ट्रेड यूनियन्स को संगठित करने की इच्छा प्रगट करता है। सरकार इस निर्णय पर पहुंची है कि राष्ट्रीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही श्रमिक समस्याओं के परिपूर्ण विवेचन पर श्रम कानून आधारित होने चाहिये और विदेशी पद्धतियां जिन्हें काफी कुशल माना जाता है, को अंधविश्वासी ढंग से नहीं अपनाना चाहिये। एक और नया चित्र प्रगट हुआ है, जो बोलेबियन-इण्डियन्स, क्वीबन किसान, ब्राजील, इक्वोडोर, पीरू और वेन्जुएला के किसान संगठनों के द्वारा प्रगट हुआ है। जिसमें ग्राम जन समुदाय भी अपने आपको संगठित कर रहे हैं। सम्भव है इसका आय व वितरण की प्रक्रियाओं पर प्रभाव पड़े। फिर भी सारा प्रश्न यह बना हुआ है कि किस प्रकार इन संगठनों को सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रों में कार्य करने दिया जाय और राष्ट्रोत्थान में इन समूहों के द्वारा प्रभावी परामर्श, दखल और प्रतिबद्धता को निश्चित किया जाय। यहां पर मध्यम वर्ग की आवश्यकता सबसे अधिक अनुभव की जाती है। इस पक्ष में मेक्सिको एक अपवाद है। इस अपवाद आन्दोलन को हम एक अन्य शीर्षक के अन्य शीर्षक के अन्तर्गत उल्लेख करेंगे।

## पश्चिमी प्रजातंत्रीय देश

भारतवर्ष में विकसित देशों पश्चिमी से ट्रेड यूनियन आन्दोलन केलिए बहुत बड़ी मात्रा में साहित्य लाया जाता है। भारत के ट्रेड यूनियन क्षेत्र में बहुत सी

यूनियनों और यूनियन नेताओं के नाम का उल्लेख भी किया जाता है। और यह कोई असाधारण बात नहीं है जिसमें कि भारतीय न्यायालयों में इंग्लैण्ड, अमेरिका और आस्ट्रेलिया के 'Case Laws' (केस लाज) को विस्तारपूर्वक उल्लेख किया जाता है। हमारे बहुत से कानून इन्हीं अध्ययनों पर आधारित हैं। पश्चिमी देशों की ट्रेड यूनियन्स एक अच्छी विकसित, सशक्त और ताकत के रूप में विद्यमान हैं और सामूहिक सौदेबाजी के लिए अच्छी प्रकार से सुसंगत व समर्थ हैं। अमेरिकन्स ने प्रशासनिक विशेष अधिकारों से संबंधित विचारों पर अपने को केन्द्रित किया है तथा अपने सम्मुख सामूहिक सौदेबाजी हेतु कई विषय रखे हैं। पश्चिमी योरोप में इस विषय पर कोई समान विचार नहीं है। सिद्धान्तः उनका एक चलता-फिरता दृष्टिकोण है कि यदि श्रमिक अपने कारखानों को चलाने के योग्य हैं, तब सभी प्रकार के विवादों का अन्त स्वाभाविक रूप से होगा परन्तु श्रमिक नियन्त्रण के इस आन्दोलन को, जो स्वनियंत्रण के सिद्धांत से प्रेरित हैं, श्रमिकों द्वारा भी समान रूप से समर्थन प्राप्त नहीं है तथा उपभोक्ता मंचों से भी घोर विरोध है। सरकार, राज्य और उपभोक्ता के स्वार्थों के बीच के समझौते श्रमिक नियंत्रण की वकालत करने वालों के लिये समस्यायें पैदा कर रही हैं। सत्ता का श्रमिकों में विभाजन और इस हेतु प्रशासन तथा तकनीकी नियंत्रण के बीच की कठिनाइयों को पता लगाने में दिन प्रतिदिन की भी समस्यायें हैं 'Guild Socialists' (गिल्ड सोशलिस्ट्स), जिसका नेतृत्व जी० डी० एच० कोल कर रहे थे, ने इस समस्या का निदान किया है, जिसके अन्तर्गत इस गिल्ड में श्रमिकों के सभी वर्ग शामिल थे। उसने उद्योग में श्रमिकों की सत्ता को क्रमशः बढ़ोत्तरी पर आग्रह किया है, जो भिन्न-भिन्न नियंत्रण व्यवस्थाओं को हथियाने के माध्यम से सम्भव है। यह वह पद्धति है, जो सार्वजनिक मालिकाना के क्रमशः बढ़ोत्तरी के लिए 'Fabian' (फेबियन) विचार के समानान्तर है। फिर भी सोवियत रूस में सामाजिक संगठन के आधारभूत सिद्धान्त के अनुसार प्रशासन एक ही व्यक्ति के आधीन है। बहुत प्रयोगों के पश्चात, जो अभी भी चल रहे हैं, ऐसा लगता है कि प्रशासन के विचारों में श्रमिकों की भूमिका के बारे में प्रशंसनीय परिवर्तन हुआ है। यूगोस्लाविया के प्रयोग के पश्चात भी जिसे अभी उल्लेख करना शेष रह गया है, श्रमिक नियंत्रण की उग्रवादी स्थिति ने रास्ता निकाला है, जिसके अंतर्गत प्रशासन और उपभोक्ताओं के साथ श्रमिकों को सम्मिलत करने के लिए स्वायत्तशासी बोर्ड की पद्धति बनाई गई है। अमेरिका में प्रशासन ने इस पद्धति का श्रीगणश शुरू किया है और परियोजना

के सभी स्तरों पर वैज्ञानिक प्रशासन की पद्धति का विकास ठीक और प्रभाव डालने वाले संचार व्यवस्था की प्रगति के अन्तर्गत किया है। अमेरिकन नियोजकों ने प्रतिनिधित्व योजनाओं को अपनाया है, जिसके अन्तर्गत श्रमिकों को उत्पादन में साझेदारी के रूप में माना है और विश्वव्यापी श्रम सम्बन्धी संविधान को बदलकर मानव सम्बन्धी समस्याओं में व्यावहारिक विज्ञान (Behaviourial Science) की पद्धति लाया है। औद्योगिक प्रजातन्त्र के विचार धारा का विरोध नहीं किया गया, बल्कि भागीदारी प्रशासन के द्वारों को खोलकर इसे अपनाया गया। अमेरिका में प्रबुद्ध पूंजीवाद के इस निर्णय से श्रमिको को आत्म रक्षा की स्थिति में डाल दिया है और सामूहिक सौदे-बाजी के लाभों को बनाये रखने हेतु वे नियोजकों से कार्यकलापों के विभाजन सम्बन्धी एक समझौते पर पहुंचे हैं। साथ ही श्रमिकों के जीवन स्तर में बढ़ोत्तरी होने के कारण अपने-अपने कारखानों में वे शेयर होल्डर बने हैं। और इस पद्धति ने उन पक्षों को जन्म दिया है, जो कुशल प्रशासन में सहायक सिद्ध हुई हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई० एल० ओ०) के क्रमशः सिफारिशों ने प्रशासन और श्रमिकों के बीच की सहयोग की आवश्यकता पर भी आग्रह किया है, जिससे उत्पादन कुशलता में लगातार वृद्धि, सामाजिक व आर्थिक कदमों की तैयारी और प्रयोगात्मक पहलुओं में श्रमिकों और नियोजकों में सहकारिता के भाव पैदा हो सकें। तकनीकी अथवा शोध की तीव्र गतिविधियों ने यंत्रीकरण और स्वचालितीकरण के आधार पर कार्य सामग्री में तेज परिवर्तन किये हैं, प्रतियोगिता के प्रभाव में बाजार में भी गतिशील परिवर्तन हुए हैं और किसी एक उद्योग अथवा उत्पादन प्रक्रिया में मनुष्य श्रम की कुशलता और क्षमता के बदलते आधारों ने कार्य की सुरक्षा पर काफी चिन्ता प्रगट की है। इस पक्ष ने फ्रांस, जर्मनी और स्कैन्डनेवियन देशों में सहप्रशासन और सह निर्णायक पद्धतियों को जन्म दिया है। अनुभव के इन सारे उथल-पुथल से एक सबक मिलता है कि किसी भी समाज में कोई कृत्रिम ढांचा नहीं खड़ा किया जा सकता और जब तक समाज के परम्परागत मान्यताओं में से एक विशेष प्रकार की पद्धति का निर्माण नहीं होता और वह उस समाज पद्धति में पूर्णतः समिश्रित नहीं हो जाती, तब तक उपयुक्त परिणामों की कभी भी आशा नहीं की जा सकती।

## फ्रांस

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात स्वतन्त्रता की जो एक लहर खड़ी हुई,

उसके अंतर्गत फ्रांस में विभिन्न प्रकार की श्रम समितियां व परिषदें एकदम खड़ी हो गई। १९४५ में यह स्थिति पैदा हुई और सामूहिक परामर्श को कानून के अन्तर्गत मान लिया गया। फ्रांस में इन सामूहिक समितियों के श्रमिक प्रतिनिधियों को प्रत्याशियों की सूची के आधार पर चुना जाता है। प्रत्याशियों की सूची श्रमिकों व वेतन भोगी कर्मचारियों के भिन्न-भिन्न ट्रेड यूनियनों द्वारा बनाई जाती हैं, ये सभी सरकार से नियंत्रित न होने वाले संगठनों, जिनमें ५० से अधिक श्रमिक काम करते हैं, के लिए अनिवार्य है। इन चुने हुए प्रतिनिधियों के अलावा हर मान्यता प्राप्त यूनियन बोर्ड की बैठक के लिए एक सलाहकार भेजती है। सार्वजनिक क्षेत्र में प्रत्येक उद्योग अथवा व्यवसाय के लिए तथा हर एक राष्ट्रीयकृत संस्थान के निदेशक मंडल का निर्माण राज्य के प्रतिनिधि, अत्यधिक प्रतिनिधित्व वाली ट्रेड यूनियन द्वारा नियुक्त समिति के प्रतिनिधि, राष्ट्र के सर्व हितार्थ चुने गये प्रतिनिधि जो अक्सर ट्रेड यूनियन के महासंघ द्वारा चुने जाते हैं, बड़े विस्तार वाले पारिवारिक संगठन अथवा उपभोक्ता और वस्तुओं के उपभोग करने वाले समूह के प्रतिनिधियों को मिलाकर बनता है। हर एक उद्योग को इकाई के रूप में मानकर राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर त्रिदलीय समितियां समितियां बनाई जाती हैं। कानून और वातावरण की अनिवार्यता के अन्तर्गत इस पद्धति की शुरुआत की गई थी और सामूहिक सूझबूझ जो वर्षों विकसित हुई है, उसमें पक्के आधार की कमी थी। इससे साम्यवादियों ने श्रमिक समितियों की राजनीतिक प्रचार के फैलाने के लिये अधिक स्थान बना लिया। इस कारण से श्रम समितियों में श्रमिक प्रतिनिधि एक सामूहिक स्वरूप के अन्तर्गत बड़ी कठिनाई से बन पाते हैं। एक दूसरे के ऊपर शक और एक दूसरे की गतिविधियों पर निगाह रखने के कारण अक्सर श्रम सदस्य एक दूसरे की खींचतान की कोशिश करते रहे, जिसके कारण सकारात्मक सहयोग के वातावरण को अनिवार्य रूप से दूषित होना पड़ा साथ ही औद्योगिक समस्याओं के पेचीदेपन, अनुपयुक्त प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता की कमी और व्यावसायिक गुप्तता के कारणों ने राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन्स को उक्त पद्धति में विश्वास पैदा करने में भी रुकावटें डाली। कुछ मात्रा में श्रम समितियों के कार्य क्षेत्र समान होने के कारण बहुत सी पेचीदी व संगठनात्मक समस्यायें भी पैदा हुयीं। फ्रांस में यह आम धारणा है कि साम्यवादी वर्ग संघर्ष के लिए कटिबद्ध हैं, तो भी शेष गैर साम्यवादी यूनियनों ने अपनी जिम्मेवारी निभाने में अक्षमता दिखाई है। फ्रांसीसी राष्ट्रीय भावना यह है कि किसी

प्रकार सामाजिक नीति के लिये नये रास्तों की खोज की जाय, जो इस आशा से किए जा रहे हैं कि इतिहास की गतिविधियां अन्ततोगत्वा दूसरे देशों को अपनाने के लिये बाध्य करेगी। वर्तमान प्रयोग अनिवार्य रूप से लाभ में साझेदारी की राष्ट्रव्यापी योजना है। इसमें प्रमुख विचार यह है कि कम्पनियां हर साल अपनी सम्पत्ति की बढ़ोत्तरी में से कुछ भाग श्रमिकों को नये शेयर्स के रूप में अनिवार्य रूप से दें। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इस पद्धति से २५ वर्ष के भीतर कर्मचारी बहुत से कम्पनियों के प्रमुख शेयर होल्डर्स बन जायेंगे, जिसके अन्तर्गत श्रम और पूंजी में नई साझेदारी पैदा होगी तथा श्रमिकों को उत्पादकता हेतु नई प्रेरणा मिलेगी। जनरल डीगाल का यह विचार कि इस नीति को क्रियान्वित करने से वर्ग संघर्ष अति शीघ्र समाप्त हो जायेगा और फ्रांस को वह एकता प्रदान करेगा, जो कि राष्ट्रीय बड़प्पन के लिये अनिवार्य है। इस योजना पर जनता की राय हेतु क्रमबद्ध गणना सम्बन्धी गणित विज्ञान (Statistics) की एक विशेष पद्धति (Opinion poll) के अनुसार लिए गए आंकड़ों ने प्रस्तुत किया है कि ५१ प्रतिशत जनता इस योजना के प्रति उदासीनता दिखाई है तथा करीब-करीब श्रमिकों के दो तिहाई भाग ने अनुभव किया है कि यह योजना कोई विशेष परिणाम देने वाली नहीं होगी अथवा बुरे परिणाम लायेगी। कहा जाता है कि लाभ हास्यप्रद मात्रा में होंगे और लाभ के विभाजन ठीक आंकड़ों के आधार पर नहीं होंगे। बाद वाली टिप्पणी के विषय को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है। क्योंकि फ्रांस की १९५९ की घोषणा है कि श्रमिक समितियों को हक है कि वे कम्पनी के बही खाते व लेखा जोखा का निरीक्षण कर सकते हैं, किन्तु कहा जाता है कि इस आदेश को कभी भी व्यावहारिक स्वरूप नहीं दिया गया और यह लाभ विभाजन योजना नियोजकों को एक वह आधार देती है जो श्रमिकों के कानून सम्मत हकों का वे विरोध करें। इस हेतु फ्रांस की जनता एक उचित सामाजिक व आर्थिक ढांचे को खोजने का प्रयास कर रही है। फ्रांस में आधुनिक उत्तेजना के भाव, संघर्षों की परिस्थितियों में साम्यवाद। यूनियन्स का प्रभाव, स्थायित्व के लिए सामाजिक मत का दबाव—ये सभी स्पष्ट रूप से फ्रांसीसी विचार के उथल-पुथल को प्रगट करते हैं, जिसके अंतर्गत ट्रेड यूनियन आन्दोलन की सही भूमिका को खोजने में सहायता होती है। यूनियन्स के लिये संघर्ष का स्वरूप धारण करना सरल है, परन्तु यह उतनी मात्रा में ही ठीक है, जितनी मात्रा में वह रचनात्मक आर्थिक योजना और प्रशासन में प्रभावी भागीदारी की भूमिका के निभाने में असमर्थ हैं और

और उतनी ही मात्रा में वे जनता की धारणाओं के सम्मुख अपने मामले को कमजोर बनाते हैं। इतने पर भी वे नियोजकों को दोषी ठहराने में सफल हो जाते हैं और इसलिए संघर्ष अब बढ़ते-बढ़ते त्रिपक्षीय स्वरूप धारण कर रहा है।

## इंग्लैण्ड

सतर्क और व्यावहारिक इंग्लैण्ड की जनता इस तथ्य को स्वीकार करने में सन्तोष का अनुभव करती है कि राष्ट्र निर्माण में ट्रेड यूनियन की भूमिका के लिए कोई एक विशेष प्रकार के ढाँचे और सिद्धांत नहीं हैं। वे इसे वरीयता देते हैं कि इस विषय में, जैसा कि शेष विषयों में भी है, कानून को परम्परा, आचार और दृष्टिकोण की महत्ता देकर बनाया जाना चाहिये, न कि एक नुस्खे के रूप में। यह पक्ष उस टेढ़े मेढ़े रास्ते में भी स्पष्ट आभास होता है, जो आधुनिक ब्रिटेन में प्रशासन में श्रमिकों के भाग लेने वाले विचार ने अपनाया है। सम्भवतः ब्रिटेन पहला राष्ट्र था, जिसने औद्योगिक सम्बन्धों में 'सामूहिक सौदेबाजी' की यंत्रणा के समानान्तर 'सलाहकार व्यवस्था' को बनाने के लिए वकालत की। १९१७ की 'ह्विटले रिपोर्ट' ने यह मान्यता दी कि संघर्ष और सहयोग के अपने-अपने क्षेत्रों को प्रशासन व श्रमिकों के बीच में दो समानान्तर संचार व्यवस्थाओं के द्वारा अत्युत्तम ढंग से निपटाया जा सकता है। प्रारम्भ में इस विचार को कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई देती, परन्तु दूसरे महायुद्ध ने सार्वजनिक राष्ट्रीय हितों को देखकर श्रम और प्रशासन के बीच में सामीप्य सहयोग की आवश्यकता पर ब्रिटिश जनता का ध्यान आकर्षित किया। 'श्री अर्नेस्ट बेवेन' जो उस समय श्रम मन्त्री थे, और काफी प्रभावशाली ट्रेड यूनियन नेता भी थे, सामूहिक उत्पादन समितियों की स्थापना की और वे समितियाँ लड़ाईके काल में सफलतापूर्वक काम करती रहीं। इसने समाजवादी ट्रेड यूनियनिज्म को जन्म दिया। परन्तु लड़ाई के अंत से अब तक ब्रिटिश लोग संघर्ष के प्रति सम्मान रखने वाले ट्रेड यूनियन्स के लड़ाकू व वृढ़भाव के बीच में सहयोगी प्रयत्नों का स्थान ढूंढ़ने में कठिनाई का अनुभव करते रहे। फिर भी इंग्लैण्ड ने औद्योगिक सम्बन्धों के ठीक ढांचे के विकास में प्रशंसनीय बुद्धिमत्ता दिखाई है। इस समय की परिस्थितियाँ यद्यपि पूर्णता से बहुत दूर हैं, परन्तु उन्होंने एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय के आधार भूत पक्ष को पकड़ लिया है।

इंग्लैण्ड में संयुक्त सलाहकार समितियां प्रशासन और ट्रेड यूनियन्स के समझौते पर आधारित हैं। उसके बहुत से ढांचे हैं। परन्तु संयुक्त सलाहकार समिति के संगठन के लिये मुख्य पक्ष यह है 'हर उद्योग को अपनी पद्धति का विकास करना' और कहा जाता है कि इस पक्ष का विकास स्वयं होना चाहिये ब्रिटेन की श्रम और राष्ट्रीय सेवा मंत्रालय ने अपने अधिकृत प्रकाशन में कहा है 'यद्यपि सलाहकार समिति की एक अच्छी तरह से सहयोग देने वाली पद्धति के मूल्य पर्याप्त हैं तो भी प्रबन्धक और श्रमिकों के दृष्टिकोण आधारभूत महत्व के बने हुये हैं। सफल सामूहिक सुझाव के दो स्तम्भ हैं, पहला यह कि प्रशासन द्वारा श्रमिकों को बुद्धिमान तथा जिम्मेदार श्रमशक्ति के रूप में माना जाना और दूसरा श्रमिकों द्वारा आपसी समस्याओं के हल में जिम्मेदार योगदान को स्वीकार करने की स्वेच्छा प्रगट करना'। सभी स्थानों पर ठीक दृष्टिकोण के विकास की अनिवार्यता पर आग्रह किया गया है। यदि सामूहिक सलाहकारिता को एक थकाने वाली आववयकता के रूप में माना गया, एक सुविधा जिसे बड़ी अनिच्छा से स्वीकार किया गया अथवा केवल मात्र प्रगतिशील प्रशासन की एक नई पद्धति के रूप में माना गया, तब ब्रिटिश जनता स्वीकार करती है कि यह प्रारम्भ से ही अप्रभावी रही। जब यह स्थिरनियमों के अन्तर्गत लागू किया जाता है, तब कोई भी पक्ष न जानता है और न परवाह करता है कि इसका क्या अर्थ है। संघर्ष समिति (Action conmittee) कहती है, 'इस स्थिर नियमों द्वारा बनाई गई कमेटी की कार्यवाही केवल मात्र एक कप चाय पीना, भत्ता लेना और समिति की अगली बैठक की तिथि तय करने तक सीमित है।' साथ ही वे यह भी जानते हैं कि श्रमिकों के प्रतिनिधियों के अन्दर औद्योगिक सम्बन्धों के बारे में उपयुक्त सूझबूझ व जानकारी के बिना प्रभावी सलाहकारिता नहीं हो सकती, अन्यथा सलाहकारिता को दबाव डालने की एक दूसरी पद्धति के रूप में माना जायगा न कि विचार विमर्श हेतु। किसी भी ढांचे में कोई भी परिवर्तन इस स्थिति को बदल नहीं सकता। ब्रिटिश ट्रेड यूनियन आन्दोलन ने माना है कि शाप स्टेवार्ड्स (विभागीय छोटे प्रबन्धकों) (Shop Stewards) के विकास ने श्रमिकों को प्रभावी परामर्श हेतु कारखाने में ही नेतृत्व प्रदान किया है। मध्यमवर्गीय प्रशासन, फोरमैन, लघु प्रबन्धक और शाप स्टेवार्डस को समझौते हेतु एक मेज पर इकट्ठा करने की महत्ता को ठीक प्रकार से मान्यता दी गई है। ऐसा महसूस किया जाता है कि इसके विपरीत सामूहिक सलाहकार समिति के कारण उद्योग में संचार व्यवस्था और आदेश पद्धति के साधारण

रास्तों में रुकावट आ सकती है और दोनों प्रशस्त ताकतों के बीच में विरोध उत्पन्न कर सकती है। श्रमिक सर्व साधारण रूप से इसे मानते है कि सलाहकार समितियों में चुने हुये सदस्यों के साथ-साथ शाप स्टेवार्डस को पदेन प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये, परन्तु बहुत सी स्थानीय यूनियन्स ने भय प्रगट किया है कि इसके कारण शाप स्टेवार्डस बहुत शक्तिशाली हो जायेंगे, यूनियन के प्रति विश्वास टूट जायेगा और स्थायी यूनियन के अधिकार कमजोर हो जायेंगे। अक्सर इस भय के कारण शाप स्टेवार्डस को घेर कर कहा जाता है कि वे दो नावों पर पैर न रखें। फिर भी ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने अति उच्च स्तर पर महसूस किया है कि शाप स्टेवार्डस प्रशासन और श्रमिकों के बीच में एक सैद्धान्तिक कड़ी है। ब्रिटेन में श्रम विशेषज्ञ यह विचार रखते हैं कि सलाहकार मंत्रणा की सफलता और सशक्त ट्रेड यूनियन के बीच में कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं हैं। हर एक का अपना तर्क है। सामूहिक सौदेबाजी का धीमें-धीमें केन्द्रीकरण हो रहा है और अब उद्योग स्तर पर यह की जाती है, जबकि कहा जाता है कि सलाहकार मंत्रणा शाप फ्लोर (प्रथम सीढ़ी) पर ही विकसित होनी चाहिये तथा संचार व्यवस्था की पद्धति में यह निहित होनी चाहिये और सभी स्तरों तक जिनमें तंत्रज्ञ सुपरवाइजर भी शामिल हैं, तक पहुंचनी चाहिये। इस पक्ष हेतु सुपरवाइजर और श्रम प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण को बहुत महत्व दिया जाता है, इस लिये श्रमिक प्रतिनिधियों को सुपरवाइजरों के विषयों में अध्ययन हेतु दाखिला दिया जाता है, परन्तु यह मालूम नहीं कि इसका परिणाम विपरीत होता है कि नहीं। श्रमिकों के ट्रेड यूनियन के प्रशिक्षण में एक नई दिशा यह है कि उनके प्रशिक्षण केन्द्र ट्रेड यूनियन कांग्रेस द्वारा नहीं चलाई जानी चाहिये, बल्कि सम्बन्धित यूनियन्स को चलाना चाहिये, ताकि उद्योग से सम्बन्धित पद्धति प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम को भी नियंत्रित कर सकें। एक दूसरा दिलचस्प सुझाव भी ट्रेड यूनियन प्रतिनिधियों को दिया जाता है कि वे प्रतिनिधियों को मौखिक वार्तालाप से जानकारी दें, जैसा कि ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने भी निर्धारित किया है ट्रेड यूनियन आन्दोलन मौखिक वार्तालाप पर बढ़ा है और इसी से वह जीवित रहेगा।' ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने श्रमिक नियंत्रण के विचार को अस्वीकार कर दिया है और वह यह अनुभव करता है कि उसकी जिम्मेदारी श्रमिकों के लिये ऊंचे वेतन प्राप्त करता है और उपभोक्ता के प्रति की जिम्मेदारी को इससे जोड़ना अनुचित है। किन्तु यदि श्रमिक नेता निदेशक मंडल विशेषतः राष्ट्रीयकृत उद्योगों में सदस्य हैं, तो उनसे यह आशा की जाती है कि वे वहाँ मजदूरों का ही नेतृत्व

नहीं कर रहे हैं वरन् पूरे समुदाय का कर रहे हैं और स्वनिश्चय का विचार अमान्य है। श्रम पर १२ सदस्यीय रायल कमीशन जिसके प्रमुख लार्ड डोनोवन थे, इसी वर्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है, उन्होंने भी कम्पनियों के निदेशक मण्डलों में श्रमिकों भागके लेने के विरुद्ध विचार प्रगट किया है। ऐसा लगता है कि ब्रिटिश लेबर पार्टी सामाजिक स्वामित्व और प्रजातांत्रिक प्रशासन की कल्पित भूमिका को छोड़ने के लिये तैयार है। ऐसा विचार किया जाता है कि सामाजिक स्वामित्व उत्पादन कुशलता को अत्यधिक करने में स्वयं में समर्थ नहीं हैं। यह अनिवार्य नहीं है कि वह श्रमिकों को अपनी अत्यधिक क्षमताओं को देने के लिये प्रेरित कर सके। प्रजातांत्रिक प्रशासन के समानात्मक भाव को भी एक काल्पनिक कथा मानी जाती है। प्रबन्धकीय विशेषज्ञता कोई सर्वविदित गुण नहीं है और हर एक को यह विशेषता नहीं मिली है कि वह पुकारने पर इस नेतृत्व को प्रगट कर सके। राष्ट्रीय आर्थिक नीति और सामाजिक सेवाओं के प्रबन्ध के विस्तार में ट्रेड यूनियन के भाग लेने की परम्परा इंग्लैण्ड में अब पक्के पांव जमा चुकी है और उस स्तर पर अनिवार्य अनुभव और सहयोग के भाव स्पष्टतया मालूम होते हैं। यही कारण है कि ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस, लेबर प्रधान मन्त्री श्री विलसन को समर्थन दे सकी, जब वि० २० जुलाई १९६६ के दिन उन्होंने वेतन, कीमतों और लाभ को पूर्णतः स्थिर रखने की घोषणा की। परन्तु इस वेतन स्थिरीकरण, जिसे सम्पूर्ण स्थिरीकरण के अन्तर्गत ५ हिस्सों में लाया गया था तथा कड़े नियन्त्रण और संयम के साथ जो प्रत्येक ६ मास की अवधि के लिये लागू किया गया था, ने लेबर पार्टी के भाग्य को चुनाव में प्रभावित कर दिया। यह देखने की बात है कि किस हद तक केन्द्रीय श्रम संगठन इस प्रकार के प्रयोगों के लिये खड़े हो सकते हैं। इसी बीच में कानूनी बारीकियों के आधार पर उद्योगों में निर्णय करने वाली विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता के कारण एक आधुनिक श्रम रायल कमीशन बनाया गया, जिसके अनुसार उद्योगों में राष्ट्रव्यापी वेतन समझौतों को रद्द करने का सुझाव दिया गया तथा इसके स्थान पर यह सिफारिश की गयी कि कारखाने स्तर पर ही स्थानीय समझौते के ढांचे का विकास किया जाय। ऐसा अनुभव किया जाता है कि इस शताब्दी के अन्त तक रायल कमीशन द्वारा मुख्य उथल-पुथल के अन्तर्गत यूनियन की सौदेबाजी करने की व्यवस्था से औद्योगिक श्रम ढांचे के सभी पहलुओं में बदल आवेगी। आजकल पूरे यूरोप में इटली को छोड़कर

विशेषकर ब्रिटेन में प्रति व्यक्ति उत्पादन बहुत कम है, इसने स्वाभाविक रूप से ब्रिटिश स्वाभिमान को चोट पहुंचाई है और यह देखने की बात है कि राष्ट्र भक्त ट्रेड यूनियन कांग्रेस औद्योगिक सम्बन्धों की भावी पद्धतियों में अपनी भूमिका को किस प्रकार से निभाती है।

## स्कैंडनेवियन देश

स्कैन्डनेवियन देशों में व्यावहारिक ट्रेड यूनियन गतिविधियां एक आदर्शवादी चित्रण प्रस्तुत करती हैं। योरोप के शेष देशों के मुकाबले में संसार के इस भाग में उद्योगीकरण कुछ बाद में हुआ है। इन देशों ने इस तथ्य का पूरा लाभ उठाया और दूसरे देशों के अनुभव को पूर्व और गहराई से अध्ययन किया। इसीलिए औद्योगीकरण के प्रारम्भ से ही इन्होंने सबल ट्रेड यूनियन के विकास को बढ़ावा दिया और स्थापना के साथ ही संघर्ष के स्थान पर सहयोग की परम्परा को स्थापित किया। परिणाम यह हुआ कि सन् ५८ से ६६ तक के काल में स्कैन्डनेवियन श्रमिकों के वेतन बड़ी तेजी से बढ़े। इस काल में स्वीडन में प्रति घंटा वेतन ६.५० kr. से बढ़कर ११ kr. हुआ। डेनमार्क में ४.८६ kr. से बढ़कर ८.९५ kr., नार्वे में ५.२६ kr. से बढ़कर ८.५६ kr. और फिनलैन्ड में ४.२१ kr. से ७.१४ kr. तक बढ़ा। इसी काल में ब्रिटेन में अनुमानतः वेतन ४.७१ kr से बढ़कर ६.९५krहुआ। स्वीडन में वेतन अब व्यावहारतः उसी स्तर पर पहुंच रहे हैं, जितना अमेरिका में है। स्वीडन में वेतन सौदेबाजी राष्ट्रीय स्तर पर होती है और एक सामूहिक प्रकार की होती है। उदाहरणार्थ १९६६ में जो तीन वर्षीय वेतन समझौते पर हस्ताक्षर हुए थे, के अनुसार १९६६ और १९६७ में ५ प्रतिशत और सन् ६८ में ३ प्रतिशत की वेतन वृद्धि दी गयी। अभी-अभी कुछ क्षेत्रों से शिकायतें आई हैं कि वेतन वृद्धि के इस अनुपात ने मुद्रास्फीति को पैदा किया है, फिर भी स्वीडन ने विश्वव्यापी बाजार के साथ मुकाबला बनाये रखने में अभी तक सफलता प्राप्त की है और यही स्थिति दूसरे स्कैंडनेवियन देशों पर भी लागू होती है। औद्योगिक सम्बन्धों के इस कीर्तिमान के प्रमुख कारण एकदम स्पस्ट हो जाते हैं, जब हम स्वीडन के इतिहास और स्कैंडनेवियन समूह के नेतृत्व का अवलोकन करते हैं, जिसने कि एक हड़ताल रहित समाज को लम्बे काल तक के लिए प्राप्त किया। यद्यपि यह कहना कठिन है कि यह प्रगति कब तक बनी रहेगी तो भी स्वीडन की परम्परा हमारे विशेष अध्ययन के योग्य है।

# स्वीडन

द्वितीय महायुद्ध ने स्वीडन में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों में एक व्यापक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन लाये हैं। युद्धकाले में श्रमिकों और नियोजकों ने एक दूसरे के साथ बड़े गम्भीर विचार-विमर्श व परामर्श से काम किया और दोनों ने यह अनुभव किया कि आपसी सहयोग दोनों ही पक्षों को अत्युत्तम ढंग से लाभान्वित करता है। इसने औद्योगिक प्रजातन्त्र और स्वायत्तशासी के भाव को जन्म दिया। स्वायत्तशासी शब्द के अर्थ को स्वीडीस ट्रेड यूनियन आंदोलन उसके स्वायत्तशासी कार्य से रखते हैं। एक ट्रेड यूनियन नेता के शब्दों में 'इस देश में' ट्रेड यूनियन्स और नियोजकों के सामूहिक संगठनों की गतिविधियों में बाहरी दखल को हम दोनों पक्ष बड़े जोर शोर से विरोध करते हैं। हम लोगों ने संगठन के ढांचे और कार्य कलाप सम्बन्धी किसी भी प्रकार के कानूनों का विरोध किया है। हम किसी भी प्रकार के अनिवार्य मध्यस्थता के विरोधी हैं।' यह स्थिति इस तथ्य के पश्चात भी चलती रही कि २० साल से अधिक श्रमिकों का अपना दल सत्ता में बनी थी। यह बात मुख्यतः उच्च स्तरीय संगठन के कारण बनी रही, जो स्थानीय अथवा केन्द्रीय स्तर पर विद्यमान रही, और जो श्रमिकों और नियोजकों में बुद्धिमत्ता की चरम सीमा के कारण बनी रही, जिसके आधार पर औद्योगिक सम्बन्धों को बनाये रखा गया।

३० अगस्त, १९४६ को एक तरफ स्वीडीस इम्पलायर्स फेडरेशन और दूसरी ओर वेतन भोगी श्रमिकों के ट्रेड यूनियन्स और केन्द्रीय संगठनों के महासंघ (कन्फीडरेशन) में श्रम समितियों की स्थापना करने हेतु एक ऐतिहासिक समझौता हुआ। ये श्रम समितियां स्वीडन में अत्यधिक सफल रही हैं और वे औद्योगिक सम्बन्धों के आधार की चरम सीमा की केन्द्र बिन्दु हैं तथा यह उस आधार पर बनायी गयी थीं, जो दोनों पक्षों पक्षों को मान्य था। स्वाभाविक ही उन्हें अपनी समस्याओं को अपने बीच हल करने में योग्य होनी चाहिये और राष्ट्र तथा एक नागरिक के आधार भूत स्वार्थों को सम्मुख रखकर व्यवहार करने के गुण चाहिए। इन समितियों के निर्माण का एक दूसरा कारण यह भी था कि श्रमिक विवादों के क्षेत्र में कानूनी गतिविधियों को लगभग रोका जाना। समझौते ने आधार भूत ढांचे के लिये एकमात्र मार्ग दिया और यह सदस्य संगठनों पर छोड़ दिया कि वे उस आधार को व्यान

में रखकर सामूहिक समझौतों पर पहुंचे। यह समझौता शीघ्र ही सर्वमान्य हो गया और सामूहिक समितियां उन सभी कारखानों में स्थापित की गयीं, जहां २५ अथवा उससे भी अधिक श्रमिक थे। श्रमिकों के प्रतिनिधि साधारणतः उस स्थानीय ट्रेड यूनियन द्वारा चुने जाते थे, जिसको सर्वाधिक श्रमिक मानते थे। मतदान का हक उन्हीं ट्रेड यूनियन्स के सदस्यों तक सीमित था, जिन्होंने इस समझौते को माना था। समितियां पद्धति, संगठन, योजना और विकास अथवा उत्पादन सम्बन्धी प्रश्नों से सम्बन्धित समझौते करने में सक्षम थीं तथा कारखाना सम्बन्धी आर्थिक तथा वित्तीय समस्याओं पर सुझाव देने के योग्य थीं। ये समितियां-निरसन, निलम्बन अथवा तालाबन्दी के विषयों पर भी चर्चा कर सकती हैं परन्तु वेतन और दूसरे कार्य सम्बन्धी शर्तें उनके अधिकार के क्षेत्र से बाहर हैं और वे राष्ट्र व्यापी सौदेबाजी के लिये छोड़ दी गई है। स्वीडन में दोनों ही पक्ष स्वेच्छापूर्वक समझौतों को बहुत अधिक महत्व देते हैं। यह अनुभव किया जाता है कि न्यायविधि कानून के मुकाबले में ये समझौते अधिक लचीलेपन तथा प्रभावशाली ढंग से सदैव कार्यान्वित किये जाते हैं। दूसरी ओर इस बात पर भी बड़ा शक किया जाता है कि बड़े ध्यान पूर्वक बनाये गये कानून क्या ठीक मूल्य दे सकेंगे, जबकि वे सामूहिक विश्वास पर आधारित न हों। इन समितियों में नियोजक और श्रमिकों के प्रतिनिधियों के अलावा स्वीडीस सामूहिक समिति व अन्य तकनीकी स्टाफ जैसे कि ओवरसियर अथवा फोरमेन हैं, शामिल होते हैं। ये समितियां कारखाने के अन्दर अथवा बाहर के विशेषज्ञों के बयान भी लेती हैं। प्रारम्भ में नियोजक संगठित परामर्श की महत्ता और मान्यता पर एक मत नहीं थे, परन्तु उनकी केन्द्रीय समिति में शुरू से ही श्रम समिति के विचार के प्रति सकारात्मक दृष्टि अपनाया है। संस्था के मुख्य कार्यालय स्टाकहोम में श्रमसमितियों के लिए एक विशेष विभाग शुरू किया है और याटाहोल (Yxtahol) में एक विशेष प्रशिक्षण स्कूल खोला गया है ट्रेड यूनियन संगठनों ने भी अपने मुख्य कार्यालय पर सम्बन्धित विभाग स्थापित किये हैं और श्रमिकों के प्रतिनिधित्व करने वाली श्रम समितियों के सदस्यों के लिए दूरगामी जानकारी और सूचना हेतु कार्यक्रमों की शुरूआत की है। ट्रेड यूनियनों के पाठ्य क्रम के विषय-जैसे कि कारखाना अथवा वर्कशाप का प्रजातंत्र, प्रबन्धकीय लेखा जोखा और विशेष औद्योगिक विषयों को उसमें प्राथमिकता दी गई है। इन विशेष आर्थिक समस्याओं पर कर्मचारियों के दृष्टिकोण सर्वदा वास्तविक और यथार्थवादी रहे हैं। श्रम समितियों के दिन प्रतिदिन के कार्यों में श्रमिक उत्पादन और

आर्थिक प्रश्नों पर नियोजकों द्वारा प्रस्तुत जानकारी को काफी महत्व देते हैं। स्वीडिस नियोजकों का एक बड़ा समूह इस बात की महत्ता को पहचानता है कि उन्हें अपने कारखाने और उसके बहुरूपी समस्याओं के बारे में नियमित और विश्वस्त जानकारी मिलती रहे वे इस बात की भी चिन्ता करते हैं कि कहीं ऐसी धारणा न बन जाय कि कोई जानकारी नियोजकों द्वारा छिपाई जा रही है। वे कहते हैं कि कार्य को करने का सर्वोच्च ढंग यह है कि नियोजक पूर्णतः स्पष्ट और इमानदार हों तथा इसके सिवाय कोई दूसरा समाधान जनक रास्ता अथवा विकल्प नहीं है। इन अभ्यासों ने एक सर्व हिताय परम्परा को स्थापित किया है और आर्थिक विषयों में एक सर्व व्यापी दिलचस्पी पैदा की है। भड़काने वाले तत्वों को आम तौर से बुरा भला कहा जाता है और दोनों पक्षों के नेतृत्व बहुत ही विशाल दृष्टिकोण वाले हैं। नियोजकों और यूनियन्स दोनों का ही एक प्रमुख सिद्धान्त है कि सरकार के हस्तक्षेप को दूर रखना चाहिये और औद्योगिक सम्बन्धों में स्वायत्तता को बनाये रखना चाहिए। राष्ट्रीयकरण किसी भी यूनियन के लिये एक ज्वलत प्रश्न नहीं है। वे जानकारी प्राप्त करने के लिये दबाव डालते हैं, परन्तु प्रबन्ध में भाग लेने हेतु दबाव नहीं डालते। करीब-करीब कोई भी विवाद श्रम न्यायालयों को प्रेषित नहीं किया जाता और कोई विवाद अकस्मात सरकार के पास दिया भी गया तो उसने अधिकारियों को सूचना दे रखी है कि वे जानबूझकर देर करें तथा कोई सक्रिय दखल न दें, ताकि इसी बीच समस्याओं का हल स्वयं निकल सके। इस क्षेत्र में स्वीडन की सफलता का रहस्य यह है कि दोनों पक्षों ने शिक्षा हेतु बड़े जोश से अभियान चलाया। शुरुआत में विरोध भाव वाले दृष्टिकोणों को पनपने से रोका और संघर्ष के स्थान पर सहयोग की परम्परा के विकास में शीघ्रता की। ट्रेड यूनियन प्रशिक्षण का उद्देश्य एक कार्यकर्त्ता को अच्छा ट्रेड यूनियनिस्ट, एक अच्छा नागरिक और समिति की बैठक में भाग लेने वाला एक कुशल सदस्य बने। इस अदृश्य गतिविधियों के कारण नियोजकों के पास दिन प्रतिदिन के अभिनवीकरण के सम्बन्ध में सकारात्मक और आग्रह रखने वाले स्टैस्टिकल (Statistical) बयान पाये गये हैं, जिनके परिणामस्वरूप परियोजना और यंत्र की अधिक देखभाल, खपत होने वाली वस्तुओं के उपयोग में बचत, बारीकी से व्योरों में प्रगति, उत्पादन के औसतन गुणात्मक प्रगति आदि के परिणाम सम्मुख आये हैं। श्रमिक द्वारा प्रस्तुत सुझावों के स्वीकार होने और व्यावहारिकता में अपनाये जाने के

फलस्वरूप एक मनोवैज्ञानिक समाधान होता है जो कि उसके मनोबल पर एक गहरा प्रभाव डालता है। यही कारण है कि स्वीडन की कम्पनियां अपने श्रमिकों को उच्चतम वेतन देने के बाद भी विश्वव्यापी बाजार के मुकाबले में सामना करने में सक्षम हैं। यह सूक्ष्मता, जिसको स्वीडिस उद्योग के दोनों पक्षों ने सामूहिक समितियों के धीरे-धीरे और पद्धति द्वारा विकसित किया है, जिसके लिए सकारात्मक शिक्षा, प्रचार और साधनों का उपयोग किया गया और समितियों के बनाने की गति को बलपूर्वक नहीं रोका गया, साथ ही उनके औद्योगिक सम्बन्धों के स्वायत्तशासी तथा इस क्षेत्र से सरकार को दूर रखने की पद्धति के सम्बन्ध में स्वीडीस विचार और अभ्यास की परिपक्वता पर बहुत सी पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि स्वीडन को औद्योगिक सम्बन्धों के मसलों की सफलता पर अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। स्वीडिस सम्बन्धो सभी अन्तर्राष्ट्रीय पर्यवेक्षक इस बात पर एकमत है कि स्वीडन में औद्योगिक प्रजातंत्र सुदृढ़ नीव पर बनाया गया है। फिर भी स्वीडिस श्रमिक कहते हैं कि पूर्ण औद्योगिक प्रजातंत्र की ओर उन्होंने पहला ही कदम उठाया है, जबकि नियोजक आमूलचूल परिवर्तनों के मुकाबले में इस पद्धति को एक स्वस्थ उत्पादक कवच मानते हैं।

## पश्चिमी जर्मनी

पश्चिमी जर्मनी जो कि एक बहुत ही मेहनती राष्ट्र है, औद्योगिक सम्बन्धों की अनोखी पद्धति के निर्माण करने में उसका ऐतिहासिक पक्ष काफी हद तक जिम्मेवार है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात जो द्विविधा और उथल-पुथल की स्थिति बनी, उसके लिये श्रम समिति एक क्रांतिकारी पक्ष के रूप में पैदा हुई, जो कट्टर पंथी ट्रेड यूनियन आन्दोलन से अप्रभावित थी। हिटलर तानाशाही के काल में ये सब समाप्त हो गयीं। द्वितीय महायुद्ध के के बाद उद्योगों को बनाने और अर्थव्यवस्था की पुनर्स्थापना करने की आवश्यकता शीघ्र और अनिवार्य रूप से थी। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के पुर्न-स्थापना में साधारण जर्मन श्रमिक ने असाधारण भूमिका को निभाया। कम वेतन और खराब भोजन के पश्चात भी उसने आश्चर्यजनक काम किया, जिसने दोनों अर्थात् नियोजकों और विधायकों को प्रभावित किया। अपने उद्योग के प्रति जर्मन श्रमिक के भक्तिभाव और काम करने की उत्कट इच्छा पूरे यूरोप एवं संसार में प्रशंसा का विषय बन गया है। इसमें कोई आश्चर्य

नहीं कि जर्मनी की जनधारणा पूर्ण रूप से उसके पक्ष में है और नियोजक अथवा सरकार कोई भी उद्योग में उसके सह भागीदारी के दावे को न रोक सकीं। विपरीत परिस्थितियों में भी उसने जो महान कार्य किया है, अपनी अनिवार्यताओं को जन्म दे दिया है और अपनी मांग को रखने के लिए कोई विरोध और हड़ताल की आवश्यकता नहीं रह गई। जर्मनी में सम्पूर्ण जनता का मत था कि श्रमिकों के समूह को महत्वहीन रूप में नहीं मानना चाहिए वरन् अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिये। उन्हें अवश्य जानना चाहिए कि उद्योग उनके जीवन स्तर को बढ़ाने हेतु उन्हीं की इच्छा के अनुसार काम कर रहे हैं। उन्हें नीति निर्धारण में कुछ हक अवश्य मिलने चाहिये, इस सबका परिणाम सह निर्णयिक की अनोखी पद्धति का निर्माण है।

यूरोप के दूसरे भागों के विपरीत और विशेषतः स्कैण्डनेवियन देशों के, जर्मनी में औद्योगिक सम्बन्धों के सभी पक्षों के मामलों का कानून की धाराओं के अन्तर्गत निर्णय किया जाता है, परन्तु कानून असाधारण है। यहां द्विपक्षीय पद्धति को अनिवार्य और आवश्यक माना गया है और राज्य को इससे बाहर रखा गया है, सह निर्णय के सिद्धांत को आधार बनाकर तीन प्रमुख पक्षों को रखा गया है। वे निम्नलिखित हैं (१) अर्थ व्यवस्था में सह निर्णायकता (२) व्यक्ति विषयक सहनिर्णायकता और (३) सामाजिक सहनिर्णायकता। व्यक्ति विषयक सह निर्णायकता तथा सामाजिक सह निर्णायकता सम्बन्धी गतिविधियों में अधिकार प्रगट करने हेतु श्रम समितियां हैं। इन समितियों का स्वरूप सामूहिक गठन जैसा नहीं है, वरन् केवल मात्र श्रमिकों द्वारा चुने प्रतिनिधियों से बनी है। इनको नियम द्वारा निर्धारित विषयों, जैसे कार्य के घंटे, अवकाश, प्रशिक्षण, कार्य और पीस रेट, नियुक्तियां बदली, निरसन, अभिनवीकरण तथा मिश्रितीकरण (कई संगठनों को मिलाकर एक करना) आदि में सहनिर्णय का अधिकार है। परिणामस्वरूप इन सभी विषयों में वे अपने वीटो का प्रयोग कर सकते हैं परन्तु गम्भीर विषयों में संराधन समिति द्वारा निर्णय देने की सुविधा है। उनकी दूसरी जिम्मेदारियां हैं, जैसे परियोजना सम्बन्धी कार्यवाही, सिफारिशें देना, कानून और समझौते को लागू कराना, अपनी असुविधाओं के सम्बन्ध में नियोजकों से समझौता करना, बचाव के उपायों को क्रियान्वित करने में भाग लेना और अपंग लोगों

को रोजगार के लिए बढ़ावा देना। श्रम समितियों का अधिकार क्षेत्र आर्थिक क्षेत्र में नहीं जाता, जैसे कि उत्पादन और श्रम के ढंग, उत्पादन कार्यक्रम, कारखाने की आर्थिक स्थिति, उत्पादन और व्यापार की परिस्थिति आदि हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दो समितियां हैं—प्रबन्धकीय बोर्ड तथा सुपरवाइजरी बोर्ड। सुपरवाइजरी बोर्ड आमतौर से ११ सदस्यों का बनता है, जिनमें से ४ शेयर होल्डर्स चुनते हैं, २ श्रम समितियों द्वारा और २ ट्रेड यूनियन द्वारा नियुक्त होते हैं साथ ही दो स्वतन्त्र रूप से विशेष व्यक्ति, जो कि विश्वस्त हैं नियुक्त किये जाते हैं। कुल मिलाकर १० बनते हैं। ११ वां सदस्य दोनों पक्षों के समझौते से नियुक्त होता है और इस पद्धति में खूब सौदेबाजी होती है। इस मार्ग से बहुत से प्रमुख राजनीतिज्ञ और ट्रेड यूनियन नेता औद्योगिक प्रबन्ध के क्षेत्र में पहुंचते हैं। सुपरवाइजरी बोर्ड, प्रबन्धकीय बोर्ड को नियुक्त करता है तथा कोयला और इस्पात के उद्योगों के श्रम निदेशक को भी शामिल करता है। श्रम निदेशक की नियुक्ति यूनियन द्वारा परियोजना श्रम समिति के परामर्श से होती है। प्रबन्धकीय बोर्ड के शेष सदस्यों की संख्या आमतौर से २ होती है और वे वाणिज्यकीय और तकनीकी पक्षों के प्रमुख होते हैं। इस समय जर्मनी में एक बहुत बड़ा विवाद श्रम निदेशक के कोयले और इस्पात उद्योग से आगे कार्य क्षेत्र बढ़ाने के ऊपर चल रहा है। ट्रेड यूनियन के महासंघ इस पद्धति का विस्तार कर सभी कम्पनियों, जिसमें बैन्क्स और बीमा कम्पनियां भी शामिल हैं, को सम्मिलित करने के लिये दबाव डाल रही हैं। उनकी इस इच्छा को काफी राजनीतिक समर्थन है, परन्तु विरोध भी उतना ही उग्र है। इस संदर्भ में उस ऐतिहासिक पक्ष को पुनः स्मरण करने से लाभ होगा, जिसने जर्मनी में सह प्रबन्ध की पद्धति को लाया था। अर्थ व्यवस्था के पुनर्स्थापन में श्रमिकों द्वारा जो सम्मान प्राप्त हुआ, वह एक विषय है, परन्तु जर्मनी के तानाशाही अनुभवों को सुगमता से नहीं भुलाया जा सकता। सुपरवाइजरी समिति में श्रमिकों के पूर्ण नियंत्रण पर इस देश में विरोध था, क्योंकि केन्द्रीकृत व शक्तिशाली यूनियन्स के होने के कारण एक भय था कि इस कारण नई तानाशाही का काल न शुरू हो जाय! जर्मन जन समुदाय सोचता है कि राजनीतिक प्रजातंत्र इस बात में सक्षम नहीं है कि वह उद्योगों के प्रमुख उद्योगपतियों को राजनीतिक अपराध के लिये धन देने और प्रजातंत्र का गला घोंटने से रोक सके। वे यह निश्चित नहीं कर सकते कि औद्योगिक प्रजातांत्रिक पद्धति उस ढर्रे पर नहीं चलेगी! इस हेतु सह निर्णयात्मक पद्धति का उद्देश्य न केवल

श्रमिकों के नियंत्रण वरन् नियोजकों के नियंत्रण के लिये भी न थी, बल्कि सत्ता के बलाबल रखने में निहित है। जर्मनी में आजकल सर्व साधारण यह विचार पाया जाता है कि शान्तिप्रिय प्रजातंत्र को बनाये रखना इस बात पर निर्भर करता है, कि किस प्रकार जन समुदाय के सभी वर्गों को एक उपयुक्त ढंग से एकीकरण करने में सफल हो सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति करने हेतु भिन्न भिन्न समितियों जैसे कि श्रम समिति, सुपरवाइजरी समिति व प्रबन्ध समिति के सदस्यों के चुनाव की पद्धति कानून के अनुसार निदेशित है, जो कि बहुत पेचीदे प्राविधानों के अन्तर्गत आपसी अवरोध और सन्तुलन की पद्धति अपनाये हुये है। इन प्राविधानों के अन्तर्गत श्रमिकों की हितों की रक्षा के लिये ट्रेड यूनियन्स और उच्चस्तरीय महासंघ सक्रिय रूप में समर्थन करती हैं साथ ही ट्रेड यूनियन के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं और शेयर होल्डर्स प्रतिनिधियों को अत्यधिक महत्ता न देने का भी उसमें निर्देश है। बहुत से प्राविधान हैं जो कि बाहरी लोगों के चुनाव का नियंत्रण करते हैं, साथ ही दोनों प्रकार के श्रमिकों, वेतन भोगी तथा मजदूरी पाने वाले श्रमिकों के प्रतिनिधित्व तथा महिला श्रमिकों के प्रतिनिधित्व को निश्चित करते हैं, साथ ही श्रम समिति, ट्रेड यूनियन और केन्द्रीय महासंघ के चुनाव को नियंत्रित करते हैं। उदाहरणार्थ–ट्रेड यूनियन्स की केन्द्रीय महासंघ, श्रम समितियों के प्रतिनिधियों की नियुक्ति का इस आधार पर विरोध कर सकती है कि "व्यक्ति के ऊपर बोर्ड आफ सुपरविजन के कार्य, कारखाना और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण हितों की जिम्मेदारी में सहयोग देने के लिए निर्भर नहीं किया जा सकता।" जर्मनी में एक प्रशंसनीय बात है कि कर्मचारियों के भिन्न-भिन्न श्रेणियों के बीच में किसी भी प्रकार की श्रेणी की अहंभाव नहीं के बराबर है जबकि हमारे देश में अधिकारी और शेष लोगों में इसके विपरीत स्थिति है। परिणाम यह है कि बहुत बार उच्च वेतन पाने वाले सदस्यों को श्रमिकों के हित के लिए स्टाफ कमेटी में चुना जाता है। वस्तुतः स्वनिर्णयात्मक पद्धति की सफलता की एक व्याख्या यह है कि यूनियन्स द्वारा स्वनिर्णयात्मक व्यवस्था के अंगों को नियंत्रण करने के लिये यूनियन द्वारा भेजे व्यक्ति अत्यधिक गुणवान हैं और ये व्यक्ति उद्योग की समस्याओं से भली प्रकार परिचित हैं तथा ट्रेड यूनियन के समर्पित नेता हैं। जर्मन महासंघों को यह स्वाभिमान है कि उनके साथ उच्चतम स्तर के लोग हैं, जिनको सत्ता का आकर्षण दूषित नहीं कर सकता, इसके विपरीत यह व्यवहारतः असम्भव ही था कि किस प्रकार श्रम निदेशकों की पद्धति की

शुरुआत की जाय और प्रोत्साहन दिया जाय। स्वनिर्णयात्मक पद्धति की सफलता का एक दूसरा कारण जर्मन श्रम-स्वभाव और मनोवृत्ति में निहित है। जर्मन श्रमिक अपनी अर्थव्यवस्था के पुनर्स्थापना में इतने निमग्न हैं कि वे किसी और चीज पर जो कि उत्पादन को रोकती है उस पर रोष व्यक्त करते हैं। परिणामस्वरूप बोर्ड के चुनाव में शेयर होल्डर प्रतिनिधियों के विरोध में श्रम प्रतिनिधियों के मत विभाजन बहुत कम पाये जाते है। सफलता का तीसरा कारण दलों के लेनदेन के लिये अपनाये गये दृष्टिकोण पर निर्भर है। सत्ता के क्षेत्र अनौपचारिक ढंग से विभाजित हैं–श्रम प्रतिनिधियों की आवाज कुछ विषयों में अधिक है और शेष में शेयर होल्डर प्रतिनिधियों की। आपसी अन्योन्याश्रित भाव को मान्यता है और एक पक्ष दूसरे पक्ष को अपने प्राथमिक दिलचस्पी के क्षेत्र में अधिक आजादी से काम करने की अनुमति देता है। कभी-कभी इस आजादी ने अचम्भे पैदा किए हैं, उदाहरणार्थ–जब कुछ ही काल पहले रूहर के कोयले और इस्पात उद्योग में मन्दी को रोकने के लिये उद्योग को उचित आर्थिक इकाई के रूप में काम करने की आवश्यकता पड़ी थी, जिसके अन्तर्गत कोयले के गड्ढों (पिट्स) को बन्द करना पड़ा और बड़े पैमाने पर श्रमिकों को बरखास्त करना पड़ा तो श्रम निदेशक ने इसे बिना किसी हड़ताल अथवा बड़े प्रदर्शन के स्वीकार कर लिया। श्रम निदेशक श्रमिकों के एक लम्बे काल की अनुपस्थिता के विरोध में शिकायत कर रहा था और उसने इस मन्दी के काल में सुस्ती से काम करने वाले कई लोगों को बुलाने का और धमकी देने का भी अवसर लिया। इस उदाहरण का उल्लेख कर यूनियन्स पद्धति के विस्तार की वकालत किया जाता है। जर्मन ट्रेड यूनियन्स स्वचालितीकरण का विरोध नहीं करतीं, क्योंकि बेरोजगार व स्थानान्तरण के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं की वे देखभाल कर सकते हैं। वे श्रमिकों को राजनीतिक और सामाजिक शिक्षा देने के लिए विश्व विद्यालयों को काफी सहयोग करती हैं। वे किसी राजनीतिक दल से सम्बन्धित नहीं हैं, फिर भी जर्मन संसद में ट्रेड यूनियन्स का प्रतिनिधित्व ४८ प्रतिशत तक तथा राज्य विधान मण्डलों में ५० प्रतिशत तक है। यह स्थिति जर्मन फेडरल रिपब्लिक के भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों के द्वारा प्राप्त है। ट्रेड यूनियन बनाने की पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता है। सेना और प्रशासकीय श्रमिकों के विभिन्न स्तरों के लोग पब्लिक सर्विस यूनियन्स के सदस्य हैं, परन्तु एक विचित्र प्रलोभन की क्रिया है, उदाहरणार्थ जर्मन रेलवे में श्रमिकों को सिविल सर्वेन्ट्स और वेतन भोगियों

में विभाजित किया गया है। वेतन भोगियों के कार्य की दशायें ट्रेड यूनियन समझौते के द्वारा निर्धारित होती है, परन्तु सिविल सर्वेन्ट्स की कार्य की दशायें कानून के द्वारा निर्धारित होती हैं, इन्हें हड़ताल का कोई हक नहीं है। इन्हें अच्छे वेतन मिलते हैं और नौकरी भी स्थाई रहती है तथा निवृत्ति होने के पश्चात पेन्शन की सुविधा मिलती है। सिविल सर्वेन्ट्स–संज्ञा एक सम्माननीय स्थान के अंतर्गत मानी जाती है और यह स्तर श्रमिक के प्रार्थना पत्र देने पर भी उसे प्राप्त हो सकता है। उस दशा में वह ट्रेड यूनियन के अधिकार क्षेत्र से बाहर आ जाता है और हड़ताल करने के हक को खो बैठता है। सामाजिक सेवार्थ सर्विसेज में भी हड़ताल के ऊपर कोई अंकुश नहीं है, परन्तु रिकार्ड से मालूम होता है कि सन् १९५२ से जर्मनी में आवश्यक सेवाओं में कोई भी हड़ताल नहीं हुई। न्यायालय में ले जाई गई शिकायतों की संख्या भी बहुत कम हैं तथा वर्षानुवर्ष कम होती जा रही है। रेलवेज में बहुत सी यूनियनें हैं। वर्कशाप के लिए जिला और केन्द्र स्तर पर भिन्न-भिन्न समितियों के सदस्य अनुपातिक आधार पर प्रतिनिधित्व हेतु चुने जाते हैं और हर समूह के लिए अलग-अलग प्राविधान है। जर्मन्स ने औद्योगिक सम्बन्धों में अपने ही प्रकार की पद्धति का विकास किया है। सहनिर्णय की पद्धति नीचे से ऊपर के आधार पर बनाई गई है। अब राष्ट्रीय स्तर पर सह निर्णय हेतु आर्थिक समिति द्वारा मांग की जा रही है, जो कि आर्थिक नीति सम्बन्धी विशाल सम्बन्धों और कोयला तथा इस्पात कारखाने को छोड़कर श्रम निदेशकों की पद्धति को अपनाने हेतु विषयों से सम्बन्धित है। सहनिर्णय की पद्धति एक सर्वव्यापी और मजबूती के साथ जड़े पकड़ रही है। यद्यपि व्यापक ढांचे के निर्णय हेतु कानूनी पद्धति का अपनाना परम्परागत हो गया है। किन्तु काम चलाऊ हल इस प्रकार निकाले जाते हैं कि स्वनिर्णय के क्षेत्रों में वीटो के उपयोग को कम किया जा सके और अनौपचारिक सूझ-बूझ और मर्यादित रोकथाम के अन्तर्गत वह सम्पन्न किया जा सके।

## उल्लेखनीय चित्रण (Special cases)

विश्वव्यापी आज के औद्योगिक सम्बन्धों का यह एक व्यापक स्वरूप है। इस चित्रण में जहां औद्योगिक महाद्वीपों के रूप में अफ्रीका, मध्य पूर्व (Middle East), दक्षिण पूर्व (South East Asia), दक्षिण अमेरिका, साम्यवादी गुट और पश्चिमी प्रजातांत्रिक देश (अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा

स्कैण्डनेवियन देश, उल्लेख किया गया है, वहीं पर ४ और ऐसे देश हैं, जिन्होंने सहाहनीय परन्तु विभिन्न प्रकार के स्वभाव प्रगट किये हैं और जो हमारे लिए शिक्षाप्रद हैं, साथ ही उनके व्यापक क्षेत्रीय अध्ययन भी कुछ लाभ-प्रद संकेत देते हैं। ये देश हैं–मेक्सिको, जापान, यूगोस्लाविया और इजराइल। यद्यपि ये देश हिन्दुस्तान के मुकाबले में बहुत छोटे हैं, फिर भी वे प्रयोग जिन्हें वे किए हैं और कर रहे हैं, काफी लाभप्रद हैं और कुछ विशेष पक्ष रखते हैं, किन्तु जो किसी व्यापक श्रेणी में नहीं बिठाये जा सकते। ये देश ट्रेड यूनियन आंदोलनों के विभिन्न प्रकार की भूमिका की ओर संकेत करते हैं। हम उनके इन पक्षों पर कुछ उल्लेख करेंगे।

## मेक्सिको

मेक्सिको हमारे सामने एक साम्यवादी विचारों से अप्रभावित औद्यो-सम्बन्धों की पद्धति को प्रस्तुत करता है, इस पद्धति के कुछ पहलू हैं। जो मनुष्य कार्ल्स मार्क्स को नहीं जानता उन्हें पाश्चात्य देशों में साधारण ढंग से विकसित हुए मेक्सिको में औद्योगिक सम्बन्धों की पद्धति को समझने में बहुत कठिनाई हो सकती है। जब तक हम वर्ग संघर्ष के सभी विचारों को एक ओर नहीं रख देते और मेक्सिको की परिस्थिति के भूमिका की प्रशंसा नहीं करते तब तक हम उसे नहीं समझ सकेंगे। मेक्सिको के सम्बन्ध में करीब-करीब सभी लेखकों का कहना है कि मेक्सिको के औद्योगिक जीवन के सम्बन्धों के पेचीदे ढांचे के बारे में पर्याप्त चित्रण करना बहुत ही कठिन और कलात्मक है। वहां पर एक शताब्दी से अधिक के काल में औपचारिक संस्थाओं का क्रमशः विकास हुआ और इन औपचारिक संस्थाओं के धरातल के नीचे रीति रिवाज और रहन-सहन की पद्धति का एक ढांचा खड़ा हुआ है। मेक्सिकन इस अपने स्वाभिमान को तर्क संगत बताते हैं कि उनकी पद्धति जीवमान (Organic) है, इसकी पेचीदगी मनुष्य शरीर के समान है और कार्यकलापों में मनुष्य के श्वांस लेने वाली क्रिया के समान सरल है। मेक्सिकन द्वारा आमतौर से यह कहा जाता है कि उनकी पद्धति का मुकाबला केवल बेईमानी ही कर सकती है, उस समय जब एक लम्बे काल के अन्तर्गत वह उत्पन्न होकर एक दुष्परिणाम लाने में समर्थ हो सके।

दक्षिण अमेरिका में मेक्सिको ही एक ऐसा देश है, जिसने औद्योगिक

क्रान्ति के बहुत शुरू के ही काल में राजनीतिक स्थिरता और आर्थिक प्रगति को प्राप्त किया। इसके साथ ही उस क्षेत्र में मेक्सिको हीं एक पहला देश है, जहां औद्योगीकरण हुआ। १९३५ से ही मेक्सिको में श्रमिक संगठन बनाये गये और तब से लगातार काम कर रहे हैं। सन् १८१० की मेक्सिकन क्रांति अपने में अकेली है और उसके कुछ अलौकिक पक्ष हैं। मेक्सिकन के लिए यह एक स्वाभिमान का पक्ष है क्योंकि यह क्रान्ति रूस की क्रान्ति से पहले आई। यह क्रान्ति किसानों के आंदोलन द्वारा लाई गई, जिसका नेतृत्व मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी कर रहा था और कामा ओबरेरो मुन्डियाल (Cama Obrero Mundial) के नेतृत्व में गणित श्रमिकों के बटालियन के द्वारा योग्य रूप से सहायता दी गयी। कामा ओबेरेरो मुन्डियाल ट्रेड यूनियनिस्ट की अराजकवादी संगठन था। अपने में एकमात्र क्रान्ति होने के कारण इसको किसी से स्पर्धा करने की आवश्यकता नहीं थी। वहीं से उत्पन्न मूल स्रोत होने के कारण वह व्यावहारिक हो सकी। यह अन्तर्मुखी थी और इसे किसी भगवान रूपी परिवर्तन के स्वरूप को नहीं दिया जा सकता। यह उस समय हुई, जब धैर्य रखना असम्भव था और परिपक्वता जो धीमें-धीमें प्रगति से उत्पन्न हुई, देश के संस्थाओं के ढांचे को मोड़ सकी। मेक्सिकन पद्धति को आधुनिक, औद्योगिक और राजनीतिक उपयोग के आधार पर प्रगट करना उसके ठीक स्वरूप को तोड़ना मरोड़ना है और प्रस्तुति में हिन्सात्मक पक्ष प्रस्तुत करना है। करीब-करीब सभी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम क्षेत्र के लेखकों ने मेक्सिको के ढांचे को इस रूप में चित्रण किया है, जैसे कि वे कहीं अन्यत्र अपने मूल रूप में नहीं अपनाये जा सकते। यही विचार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I. L. O.) के क्षेत्र में पाया जाता है, परन्तु हम यहां यह प्रस्तुत कर रहे हैं कि शीघ्रता से हम एक सामान्य धारणा पर कैसे आ सके हैं।

मेक्सिको में केवल एकमात्र राजनीतिक दल है, जो कानून से नहीं, वरन् प्राकृतिक विकास से बनी है। इस दल की कोई एक व्यक्ति सम्बन्धी सदस्यता नहीं है, वरन् सभी राजनीतिक और सामाजिक प्राणी इसी के अन्तर्गत प्रगट होते हैं। दल का ढांचा ४ प्रकार के हित स्वार्थ समूहों के संगठन को मिलाकर बना है, जो कि आधार भूत क्षेत्र-श्रम, कृषि, सेना और जन समुदाय (Popular) को मिलाकर बनता है। अन्तिम पक्ष सम्बद्ध संगठनों का एक मिलाजुला समूह है, परन्तु इसकी आधार भूत शक्ति सरकारी कर्मचारियों की यूनियन्स में निहित है, जो किसी भी ट्रेड यूनियन के

महासंघ से सम्बद्ध नहीं है। दल का यह आधार भूत भाग काल के अन्तर्गत एक के पश्चात दूसरे को पुर्नसंगठित करके लाया गया है। जिसके अंतर्गत यह अत्यधिक ध्यान रखा गया है कि दल के बाहर राजनीतिक सत्ता के प्रभावी स्वायत्तशासी केन्द्रों के विकास को रोका जाय। परिणामस्वरूप देश एक राष्ट्र पुरुष के रूप में खड़ा रहा। यह विकास क्षेत्रीय संगठनों के अत्यधिक उपयोग की ओर संकेत करता है, जिसके अंतर्गत लेबर यूनियन्स के द्विपक्षीय संचार व्यवस्था और स्वनियंत्रण के संयंत्र के माध्यम बने। इस महत्वपूर्ण बात को भी ध्यान में रखा गया है कि कोई भी शक्तिशाली हित स्वार्थ समूह, दल और उसकी नीतियां नियन्त्रण का माध्यम न बन सकें। इसका अर्थ यह नहीं होता कि श्रम आन्दोलन को कार्य करने की कोई स्वतन्त्रता न हो। यूनियन्स ने उपयुक्त मात्रा में अपनी स्वतन्त्रता सर्वमान्य मान्यताओं के अन्तर्गत बनाये रखी हैं और सरकार ने प्रबन्ध द्वारा नियन्त्रित यूनियन्स को बढ़ावा देने की भी कोशिश नहीं की। दल की आर्थिक नीतियों द्वारा व्यापक सीमाओं के अन्दर, श्रम आंदोलन अपने सदस्यों के आर्थिक लाभ हेतु पूर्णतः स्वतंत्र है। श्रम आंदोलनों को उन सीमाओं को पहचानने की आवश्यकता है, जिसके अंतर्गत वह सरकार से बिना संघर्ष किये अपनी गतिविधियां चला सकते हैं। ये सीमायें दोनों आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों की

हैं। उदाहरणार्थ १९४६ की तेल हड़ताल और १९५८ की रेल हड़ताल सरकार के आधार स्तम्भों पर आघात थीं और मेक्सिकन सरकार ने इन्हें बुरी तरह से दबा दिया। आर्थिक विषयों में आजादी की सीमा व्यापक है और सौदेबाजी इसका नियम है, परन्तु श्रम सचिव को इस जानकारी से अवगत कराया जाता है। किसी भी सौदेबाजी में अर्थव्यवस्था पर्याप्त मात्रा में महत्व रखती है और जिस सौदेबाजी का भीतरी अर्थव्यवस्था पर अथवा मेक्सिको के अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय स्थिति पर भावी प्रभाव पड़ने वाला हो, उसको असह्य माना जाता है और समझौते के अन्तर्गत उस दल पर जो अरक्षणीय स्थिति के लिए आग्रह करता है अथवा जो सामाजिक हितों और नीतियों के अनुकूल नहीं है, पर अत्यधिक प्रभाव डाला जाता है। परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं। सर्व साधारण यूनियन अपने समझौते के उद्देश्यों को आजादी से और बिना किसी दखल के प्रस्तुत करते हैं। वे वितरण व्यवस्था पर उचित अंकुश पैदा कर उपभोक्ताओं का ध्यान आकर्षण करते हैं और इस हेतु सामूहिक सौदेबाजी को बड़े उग्र रूप से क्रियान्वित कराते हैं। उन परिस्थितियों में,

जब कि किसी एक समूह की स्थिति बड़ी नाजुक दिखाई देती है, दल के अन्तर्गत उचित मंत्रणा की व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत सभी सम्बन्धित लोगों को सम्मान जनक हल मिल जाते हैं। यूनियन्स और नियोजक दोनों को ही औद्योगिक क्षेत्र के तनाव से मुक्त वातावरण में एक दूसरे से वार्तालाप करने के लिए उचित और उपयुक्त मंत्र है। दोनों को ही सरकारी नीति को प्रभावित करने का समान स्थान है। किसी भी पक्ष के सामाजिक समर्थन को दल के सामूहिक मंच जो कि दल के क्षेत्रीय संगठन के अन्तर्गत है, के आधार पर गतिशील किया जाता हैं और यह औद्योगिक सम्बन्धों की पद्धति को काफी व्यावहारिकता और लचीलापन प्रदान करता है। यह लचीली पहुंच और दल का वातावरण ही औद्योगिक सम्बन्धों के मुख्य भाग का निर्माण करता है, साथ ही बहुत सारे अनोखे पक्षों का भी यह सृजन करता है।

इस शताब्दी के प्रारम्भ में मेक्सिकन दल के श्रमिक प्रतिनिधि इस बात पर आग्रह कर रहे थे कि श्रमिकों के हकों को देश के संविधान में शामिल किया जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि वर्ष १९१७ के संवैधानिक संशोधन, जो कि मैक्सिकन संविधान की धारा क्र० १२३ में संयुक्त की गई थी, मैक्सिकन श्रमिकों के हकों की गारन्टी को एक व्यापक सूची के अन्तर्गत ला दी गई। उस काल में संविधान की यह धारा बड़ी अनोखी थी और अपने ब्योरे में अभी भी यह असाधारण ही है। इस धारा के अनुसार काम के लिए अधिकतम ८ घंटे प्रतिदिन और ६ दिन के सप्ताह का प्राविधान है तथा शेष संवैधानिक प्राविधान इस प्रकार से हैं—ओवरटाइम हेतु पारितोषिक, रात्रि ड्यूटी के लिये न्यूनतम निर्धारण, कारखानों के कई पहलुओं में महिलाओं व बच्चों के काम के सम्बन्ध में नियम, न्यूनतम मातृत्व हित लाभ, महिला श्रमिकों के लिये सुविधायें, न्यूनतम वेतन निर्धारण के स्तर और नियम, बिना लिंग एवं जातीय भेद के समान काम के लिये समान वेतन वेतन के आडम्बर और दूसरे दुरुपयोग से बचाव, नियोजकों द्वारा सुविधा जनक आवास व्यवस्था, बच्चों के लिये स्कूल, श्रमिकों की चिकित्सा हेतु सुविधायें, काम के समय की दुर्घटना और बीमारी पर नियोजक की जिम्मेवारी निःशुल्क इम्प्लायमेन्ट एक्सेन्ज सुविधा, सामाजिक सुरक्षा फण्ड और आवासीय प्रबन्ध हेतु सहकारी समितियां, विदेशी नियोजकों तथा मैक्सिकन के बीच समझौते के आधार, श्रमिकों के संगठित होने और हड़ताल करने के अधिकार। श्रमिकों के हितों के लिये संवैधानिक गारन्टी का स्वरूप बड़ा

व्यापक है और वे सभी विस्तृत रूप से लिपिबद्ध भी हैं। उदाहरणार्थ हड़ताल के बारे में यह लिखा हुआ है, हड़तालें कानूनी होंगी, जब वे उत्पादन के बहुत से पहलुओं, श्रमिक और पूंजी के अधिकारों में समानता पैदा करने में संतुलन प्राप्त करने के उद्देश्य हेतु होंगी तथा इन्हें कानून विरोधी तभी माना जायगा, जब अधिकांश हड़ताली व्यक्ति, सम्पत्ति या युद्ध काल में जबकि श्रमिकों को संस्थान अथवा सरकार की सेवाओं हेतु सम्मिलित किया जाता है, उसके विरुद्ध हिन्सात्मक गतिविधियों में वे शामिल होंगी।" संवैधानिक प्राविधान की और अधिक व्याख्या करने हेतु एक व्यापक श्रम न्यायालय, जिसे फेडरल श्रम कानून कहते हैं, १९३१ में पारित किया गया। किन्तु यह कानून संवैधानिक अधिकारों की गारण्टी के १४ वर्ष बाद पास किया गया। मेक्सिकन श्रम कानून की गति काफी धीमी थी, तो भी इसका पूर्ण उपयोग किया गया है। बाद में पारित किये गये इस कानून के द्वारा ( Closed Shop ) (क्लोज्ड शाप जब नियोजक और यूनियन में यह समझौता होता है कि कोई भी नई भरती यूनियन की रजामन्दी के बिना नियोजक नहीं कर सकता और न ही किसी कर्मचारी को निकाल सकता है) की वैधानिकता की विशेष रूप से पुष्टि हो जाती है और यूनियन को यह वर्चस्व भी मिल जाता हैं, क्योंकि उसके अन्तर्गत यूनियन के जो सदस्य नहीं हैं, उन कर्मचारियों के बरखास्तगी की मांग की भी पुष्टि हो जाती है। चूंकि औद्योगीकरण के प्रारम्भिक काल से ही हड़ताल का हक एक संवैधानिक अधिकार के रूप में बना हुआ है और हड़ताल तभी गैर कानूनी हो सकती है जब अधिकांश हड़ताली हिन्सक रूप धारण कर लें इन कारणों से वर्ष १९१७ के पश्चात के काल में कानूनी एवं संवैधानिक हड़तालों में दखल देने में बड़ी कठिनाइयां पैदा होती रहीं। इस हड़ताल वाली परिस्थिति से निपटने हेतु बहुत बड़ी संख्या में रीति रिवाजों और नियम व कानूनों के अन्तर्गत विकाश हुये। इस नियमावली की आवश्यकता हड़ताल के कानूनी घोषित होने से ही सम्बधित हैं। उदाहरणार्थ नियमावली में यह लिखा हुआ है कि एक हड़ताल को तभी कानूनी घोषित किया जायगा, जब हड़ताल के पहले अधिकांश कर्मचारियों हड़ताल के पक्ष में अनिवार्य रूप से मत दें यह कानून नियोजको, कर्मचारी तथा तीसरे पक्ष को श्रम न्यायालय के सामने प्रार्थना पत्र देने का हक भी प्रदान करता है, किन्तु यह हक उस बात के लिये है जबकि घोषणा सम्बन्धी नियमों की आवश्यकता को किसी पक्ष ने पूरा नहीं किया है। श्रम न्यायालय के को यह घोषणा करने का अधिकार है कि हड़ताल की परिस्थिति उपस्थित नहीं

है, तदनुसार हड़तालियों को ४८ घंटे की नोटिस पर काम पर प्रस्तुत हो जाना होगा अथवा उन्हें दण्ड का भागी होना पड़ेगा। हड़ताल नियोजक के लिये कलंक का कारण भी सिद्ध हो सकती है और उस हालत में श्रमिको को हड़ताल के पूरे काल का उसे वेतन देना पड़ता है। हड़ताल नियोजक के लिये उस समय भी कलंकित बन जाती है जब वह श्रम न्यायालय की मध्यस्थता के सम्मुख श्रमिको की मांग को न मानने हेतु न्यायसंगत तर्क देने से इनकार करता है अथवा यूनियन की हर मांग को एवार्ड स्वीकृत करता है। कोई कानूनी हड़ताल यदि राष्ट्र के आर्थिक जीवन के लिये भावी खतरा बन सकती है तो मैक्सिको के राष्ट्रपति एक घोषणा के अन्तर्गत काम की रुकावट को समाप्त कर सकता है और औद्योगिक प्रबन्ध को सरकारी प्रशासन में ले सकता है। उस अवस्था में कनूनी ढंग के अनुसार हड़ताल चलती रहती है, परन्तु श्रमिक ड्यूटी पर आते हैं तथा सरकार विवाद को निपटाने के लिये सीधी जिम्मेवारी को वहन करती है। हड़ताल का यह कानूनी स्वरूप उस समय तक बना रहता है, जब तक फेडरल श्रम न्यायालय इसे मान्यता दे यह प्राविधान उसी प्रकार का है, जिसे श्री दंडेकर निदेशक, गोखले स्कूल आफ इकनामिक्स एण्ड पालिटिक्स ने भारतीय मजदूर संघ के महाराष्ट्र शाखा के १९६७ के वार्षिक अधिवेशन में अनुमोदित किया था। इस संविधान के अन्तर्गत श्रम विषय राज्यों से हटकर केन्द्रीय सूची में बदलने का उल्लेख और उद्योग के लाभों में श्रमिक के हिस्सों के हक को विस्तृत रूप विवेचन किया गया है। संविधान के अन्तर्गत ही अब एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना लाभ के वितरण को तय करने हेतु की गयी है। यह आयोग श्रमिकों, नियोजकों और सरकार के प्रतिनिधियों को मिलाकर बनता है। श्रमिकों और नियोजकों के प्रतिनिधियों के चुनाव की प्रणाली निर्धारित है। स्थानीय और क्षेत्रीय संगठनों को, उनकी सदस्यता के अनुपात में प्रतिनिधियों की संख्या निर्धारित है। राष्ट्रीय अधिवेशन के लिये प्रतिनिधियों को सदस्यों के चुनाव का अधिकार है इन चुने हुये सदस्यों को राष्ट्रीय आयोग के लिये नियुक्ति होती है। अपनी स्थापना से ही राष्ट्रीय आयोग की कार्यवाही यह संकेत करती है कि भावी काल में श्रमिकों के लिये दिन प्रतिदिन के प्रशासन में भाग लेने हेतु दिशा निर्धारित करनी चाहिये। वहां बड़ी दिलचस्प बात देखने को मिलती है कि किस प्रकार उद्योग में दिन पर दिन के काम में ट्रेड यूनियन्स ने भागीदारी बनने हेतु विकास किया। मेक्सिकन यूनियन्स का परियोजना में और श्रमिक के दिनचर्या पर बहुत ही सक्रिय और शक्तिशाली

प्रभाव है । चूंकि वे कला, उद्योग व भौगोलिक आधारों पर संगठित हैं, इसलिये किसी भी महासंघ का एकाधिकार नहीं है और बहुत सी यूनियनों के कार्य क्षेत्र की सीमायें एक दूसरे के अन्दर प्रवेश करती हैं। यूनियन्स को उद्योग के प्रबन्ध एवं प्रशासन में दखल देने का अभी तक कोई हक नहीं है, तो भी यूनियन के नेता आर्थिक निर्णयों को दल के क्षेत्रीय संगठन द्वारा प्रभावित करते हैं। कुछ काल से यह चर्चा का विषय है कि श्रम नेतृत्व की नीची श्रेणियों में दुर्गुण एवं बेईमानी पैदा हो रही है और इस हेतु औद्योगिक प्रबन्ध में श्रमिकों के सीधे दखल को हटाकर उसे संस्थागत रूप देना चाहिये। इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वर्ष १९६१-६२ के संवैधानिक परिवर्तन द्वारा बहुत से कदम उठाये गये हैं। औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र में औद्योगिक समाज के मानवीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिये यह एक महत्वपूर्ण विवरण है। लाभ में भागीदारी हेतु त्रिदलीय राष्ट्रीय आयोग और ट्रेड यूनियनिस्ट की राष्ट्रीय अधिवेशन, जो श्रमिकों के प्रतिनिधियों को इस आयोग हेतु चुनते हैं, दोनों ने अत्यधिक क्षमताओं के लिये रास्ता खोल दिया है। मेक्सिको एक बार पुनः उस रास्ते पर आ गया है, जिसके अन्तर्गत अपनी अनोखी संस्कृति की मान्यताओं और परम्परा के आधार पर ट्रेड यूनियन को प्रबन्ध में भागीदारी बनने के लिए धैर्यपूर्वक विकास की पद्धति सम्भव है।

## जापान

जापान में औद्योगिक सम्बन्धों की पद्धति एशिया के जन समूह की पुरानी एवं परम्परागत मान्यताओं पर आधारित है, जहां पर नौकर की अपने मालिक के प्रति स्वामिभक्ति स्वाभाविक रूप में स्वीकार की जाती है और साथ ही साथ नियोजक द्वारा अपने कर्मचारियों के प्रति पिता तुल्य वर्ताव भी समान रूप से स्वीकृत किया जाता है। इस प्रकार के सम्बंधों में नियोजक अथवा सरकार प्राकृतिक रूप से संरक्षक की स्थिति धारण करते हैं और अक्सर इस विचार को पूर्णतया निभाते भी हैं। परन्तु वे अपने इस अधिकार को जरा भी चुनौती मिलने पर अथवा श्रमिकों द्वारा योजना पूर्वक उपद्रव करने वे परेशान व असहिष्णु हो जाते हैं, इसलिये जापान में हम परस्पर विरोधी मत पाते हैं कि जहां सरकार और नियोजक श्रमिकों की आकांक्षाओं को पनपाने में काफी चिन्ता करते हैं, वहीं उन्होंने ट्रेड यूनियनिज्म को बड़ी कड़ाई से दबाया है। ट्रेड युनियन के विरुद्ध धार्मिक युद्ध के समान लगातार की गई

कार्यवाहियों ने उसे काफी मात्रा में दबाया है। क्योंकि साम्यवादियों ने जो ट्रेड यूनियन्स में घुस गये, इन सांस्कृतिक मूल्यों के विरुद्ध काफी मात्रा में गड़बड़ करने की कोशिश की। ये सांस्कृतिक मान्यतायें, जिन पर गतिशील व पिता तुल्य भाव की सर्वोच्च गतिविधियां आधारित हैं, कुछ राष्ट्रवादी ट्रेड यूनियन संगठन खड़े हुये थे, जिन्होंने परम्परागत मान्यताओं को ध्यान में रखकर ट्रेड यूनियन ढांचे को बनाया और वे कुछ मात्रा में सफल भी हुये। इसी प्रकार द्वितीय महायुद्ध के पश्चात बाहरी अधिकार रखने वाली शक्ति (अमेरिका) ने पाश्चात्य नमूनों के आधार पर कुछ श्रम कानून भी लागू किये, फिर भी जापान ट्रेड यूनियन को सामाजिक जीवन की किसी उचित और लम्बे काल तक चलने वाली प्रक्रिया के रूप में मान्यता देने से झिझक रहा है। उद्योग आधारित अथवा राष्ट्रव्यापी यूनियन के बनाने के सभी प्रयास लगातार असफल हुये हैं और ट्रेड यूनियन की आर्थिक गतिविधियां अभी भी कारखानों के दीवारों के अंदर ही सीमित हैं। जापान सरकार और नियोजक दोनों ही निश्चित रूप से और कड़े रूप में ट्रेड यूनियन विरोधी हैं, परन्तु यदि सच्चाई कहनी है तो उन्हें श्रमिक विरोधी कहना ठीक नहीं होगा।

आर्थिक योजना के विशाल क्षेत्र में सरकार ने यह चिन्ता की है कि अत्यधिक रोजगार देने की स्थिति बनाई रखी जाय, परम्परागत कुशलता को सर्वोच्च उपयोग की जाय और औद्योगीकरण हेतु एक सक्रिय और नियंत्रित अभियान को एक व्यापक व योजना पूर्वक ढंग से क्रियांवित किया जाय। इस विस्तृत योजना की सफलता का सबसे उल्लेखनीय प्रमाण यह था कि एक बहुत लम्बे काल तक परम्परागत और आधुनिक उद्योग के क्षेत्र साथ-साथ चलते रहें और वे एक दूसरे के पूरक भी रहें। परम्परागत क्षेत्र, जैसे कृषि उत्पादन (Manufacturing) और फुटकर व्यापार बड़ी मात्रा में आर्थिक विकास के केंद्र थे। लघु उद्योगों ने अपनी परम्परागत मानवीय सम्बंधों से और उद्योग के श्रम प्रधान पद्धति के पुराने ढंगों के कारण से अत्यधिक कुशलता प्राप्त की। इस परम्परागत उत्पादन की पद्धति, जो आधुनिक उद्योग के समकक्ष बनी हुई थी, वे अपने को द्वितीय स्थान होने को स्वीकार किया और औद्योगीकरण में एक सहायक परिस्थिति पैदा किया। यह मेयाजी (Meije) राज्यकाल में तकनीकी परिवर्तन के लिये सार्वजनिक वित्त का एक प्रमुख केन्द्र था और सरकार की आधुनिकीकरण की योजना की पूर्ति में इसके योगदान ने सफल बनाया ध्यान रहे कि आधुनिकीकरण

पहले हल्के उद्योग में और बाद में भारी उद्योग में किया गया। फलस्वरूप सामाजिक अनुशासन, मानव शक्ति और दूसरे राष्ट्रीय सम्पत्तियों को दुर्लक्ष्य नहीं किया गया, वरन् नई दिशा हेतु इनका उपयोग किया गया। परिवर्तन की प्रमुख एजेन्सी-समाज के सम्माननीय और सक्षम लोगों को ऊंची स्तर की तकनीकी शिक्षा और वित्तीय प्रोत्साहन के आग्रह थी। सभी उपलब्ध बचत को पूंजी संग्रह और शिक्षा हेतु धन लगाने के लिये उपयोग किया गया और लाभान्वित होने वाले स्थानों के लिये उद्योगपतियों को दिया गया। ढांचे के सुधार के लिये आधारभूत नीति बचन-अन्तर्राष्ट्रीय वार्तालाप तथा मेल मिलाप के द्वारा आधुनिक संस्कृति को प्रोत्साहन देना था। और इस हेतु मार्गदर्शक निर्देश इस नारे में था, "देश को अमीर बनाओ और सैन्य शक्ति को सबल करो।" सरकार ने औद्योगीकरण को प्रोत्साहन दिया। विदेश से जितना जल्दी सम्भव था, उतनी जल्दी विज्ञान और तकनीकी के अग्रिम स्तर को लाकर स्थापित किया गया और राष्ट्र तथा समाज के स्वत्याग को अपनाकर, परन्तु विदेशी देशो पर न निर्भर रहकर तथा भीतरी परिस्थितियों को ध्यानपूर्वक विचार कर उसका उपयोग किया गया। मानवशक्ति के प्रमुख केन्द्र—समुराई से निवृत्त सैनिक (समुराई Saummrai जापान के पुरानी सामन्तशाही पद्धति में सैनिक वर्ग का एक सदस्य), परम्परागत कला विशेषज्ञ, किसान तथा कैदी थे। तत्कालीन श्रम शक्ति के गुण और बाहर से लाये गये नये व आधुनिक उद्योग के लिये उपयुक्त श्रम शक्ति में बहुत अन्तर था। इस अन्तर को दूर करने के लिये कार्य प्रशिक्षण दिये गये। प्रथम वरीयता वाले क्षेत्र से द्वितीय वरीयता वाले क्षेत्र में श्रम शक्ति को बदला गया तथा परम्परागत और आधुनिक उद्योगों के बीच श्रमिक के वास्तविक आय में काफी अन्तर उत्पन्न करके उस कुशलता को प्राप्त किया गया। तकनीकी प्रशिक्षित श्रमिकों को उच्चस्तरीय व सम्मानित स्थान, कार्य की सुरक्षा, बड़ी बड़ी पदोन्नतियाँ और व्यापक अन्य सुविधायें आदि दी गई। शिक्षित श्रमिकों को २-३ वर्ष के पाठ्यक्रमों द्वारा प्रशिक्षित किया गया और इस प्रशिक्षण हेतु निजी तकनीकी प्रशिक्षण स्कूलों में बड़े उद्योगों ने बड़ी मात्रा में पूंजी लगाया। शिक्षार्थियों को प्रशिक्षण के काल में काम पर माना जाता है अथवा उपयुक्त प्रशिक्षण के काल में, कारखाने के साथ जीवन भर के वादे से बन्धा हुआ वह प्रमुख श्रमिक माना जाता है। तब उसे बहुत अच्छी सुविधायें और व्यवहार अच्छी आवास व्यवस्था, चिकित्सा व देखभाल और कल्याणकारी सुविधायें मिलती हैं और उनके इस सामाजिक स्थान हेतु हुए प्रशंसनीय अन्तर को

बड़ी प्रशंसा की जाती है। जो दूसरों के लिए उपयुक्त कुशलता को प्राप्त करने और प्राकृतिक योग्यता के विकास करने के लिए खुला नियंत्रण होता है।

परन्तु ये सभी बातें ट्रेड यूनियन के भारी दमन की नीति के साथ-साथ किया गया है। वर्ष १८८० से जापान ने श्रमिकों के बहुत से संगठित विरोध देखे हैं। इन झगड़ों में सर्व प्रथम कोयले खानों के उपद्रव, घरेलू कारीगरों द्वारा विरोध तथा महिला श्रमिकों द्वारा किए गए रोष उल्लेखनीय है। इन विरोधों के अध्ययन से तथा उस पद्धति से, जिसके अनुसार विदेशियों ने इस समस्या को हल किए, जापानी सरकार ने यूरोपियन ढांचे पर श्रमिक सुरक्षा अधिनियम बनाये परन्तु इसे संसद ने समर्थन नहीं दिया। पाश्चात्य देशों में जो प्रगतिशील श्रमनीति मानी जाती है, जापान में उसे औद्योगीकरण में रुकावट के रूप में समझा जाता है, क्योंकि इस बाद वाली नीति की पूर्ति के लिए कुर्बानी की आवश्यकता होती है, जिन्हें यूनियन्स प्रोत्साहन देने से कतराती हैं। प्रबन्ध और सरकार दोनों ने यूनियन्स के प्रति बहुत ही विरोधी तथा आक्रमण नीति अपनाया है वर्ष १९१० की सुरक्षा नीति सम्बन्धी कानून ने सभी व्यक्तियों को यूनियन में शामिल होने अथवा नियमानुसार काम करने तथा कार्य की दशाओं के समझौते की उद्देश्य की पूर्ति के लिए हड़ताल करने से रोका। उलंघन करने वालों को कैद अथवा भारी जुर्माने की सजा थी। तत्पश्चात बहुत से सामाजिक तथ्य मिल जाने के कारण श्रमिकों की खराब कार्य दशा के सम्बन्ध में जब चिन्ता उत्पन्न हुई तो सरकार ने वर्ष १९११ के कारखाना कानून को स्वीकृति कराने में मदद की और इस कानून में श्रम सम्बन्धी सामाजिक नीति को सार्वजनिक ढंग से स्वीकार करने के एक माप के रूप में सम्मिलित किया। परन्तु इस कानून के लागू होने में ५ वर्ष की देरी की गई, जबकि इसकी वैधानिकता को स्वीकार किया जा चुका था। और इसे १५ वर्षों के प्रयोगात्मक काल तक के लिए क्रियान्वित करना था। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर एक श्रमिक यूनियन यूवाकाई (yualkai) को वर्ष १९१२ में संगठित किया गया, जिसका नारा था, "समझौते द्वारा सहयोग।" इस यूनियन ने प्रशासन की यूनियन विरोधी नीति के प्रति एक सजग दृष्टि अपनायी और संयम से काम लिया। सुधार की परम्परा को स्थापित किया और यह श्रमिक यूनियन आन्दोलन का स्रोत बन गयी, जो कुछ परिवर्तनों को अपनाकर सोडामी फेडरेशन Sodomei Federation) के रूप में चल रही है। अपने संयम के बाद भी बढ़ती हुई हड़ताल की संख्या में यूनियन फंस गयी, जैसे जैसे इसकी सदस्य संख्या बढ़ती गयी। प्रथम महा-

युद्ध के पश्चात वर्ष १९१७ के रूसी क्रान्ति से प्रेरणा लेकर यूनियन ने खुले रूप से आक्रामक दृष्टिकोण कोण को अपनाया और बहुत सी शाखाओं को हड़ताल की गतिविधियों द्वारा संगठित किया। इसी काल में इस यूनियन का नाम यूवाकाई से सोडोमाई में बदला गया। यूनियन के बीच वामपन्थी गुट ने अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू किया तथा दक्षिण पंथी व वामपन्थियों के बीच में शत्रुता दिन प्रतिदिन का काम बन गई और यूनियन के संस्थापकों में भीतरी खींचतान शुरू हो गया। इसने विभाजन कर दिया और वामपंथियों ने हरमेड (Hyrmed) रेडिकल यूनियन के आन्दोलन को शुरू किया। इस क्रान्तिकारी यूनियन के पहले ५ वर्ष सरकार से भीषण सघर्ष में बीते। सरकार ने वर्ष १९२८ में साम्यवादी दल के समान इस पर भी कानूनी पाबन्दी लगा दी। तब इसने एक गैर कानूनी भूमिगत संगठन जिसका नाम फैन्क्यो (Fenkyo) था, के रूप में काम करना शुरू किया। द्वितीय महायुद्ध ने ट्रेड यूनियनिज्म की सहकारिता को एक भिन्न प्रकार के स्थान व दिशा दी। राष्ट्रवादी तत्वों ने वर्ष १९३८ में संग्यों मूको कूकाई (Sangyo Mokokukei) नामक एक नये श्रम संगठन की स्थापना की, जिसका उद्देश्य उद्योग में काम द्वारा श्रम व प्रबन्ध में सहयोग, कम्पनी को परिवार के रूप में मानना तथा राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति का साधना स्वीकार करना था। श्रमिकों की स्वतंत्र यूनियन को हटाकर प्रत्येक कम्पनी में इसे संगठित किया गया। युद्ध सहायता हेतु श्रमिकों द्वारा आयोजित सहयोग परमावश्यक था। जापान में सभी श्रम यूनियन्स से नियंत्रित श्रमिकों ने युद्ध काल में एक सहयोगी दृष्टिकोण दिखाया, परन्तु इस पर भी सरकार ने श्रमिकों को यूनियन से दूर करने की ही कोशिश की। बहुत ही अल्प संख्या में श्रमिक और प्रबन्धक मानने योग्य प्रजातांत्रिक समझौते करने में सफल हुए। सरकार और प्रबन्धकों की वेतन नीति बहुत स्पष्ट थी। इस आधुनिक क्षेत्र और उसके आधार स्तम्भ श्रमिकों, जिन्हें नई तकनीक सम्बन्धी यंत्रों के चलाने हेतु कुशलता प्राप्त करनी थी, के संरक्षण में औद्योगीकरण को प्रोत्साहन करना था। आधुनिक उद्योग के क्षेत्र में भी एक सुविधा भोगी श्रमिकों का समूह था, जबकि दूसरी ओर आम श्रमिक था जिसे लघु और माध्यम वर्गीय परम्परा उद्योग के कारखाने के समांतर वातावरण में काम करना पड़ता था। यदि कोई वेतन समझौता होता था तो यह कारखाने के सर्वसाधारण वेतन स्तर को ही निर्धारित करता था, जबकि हर क्षेत्र के काम का वेतन निर्धारण नहीं किया जाता था। इस कारण प्रबन्धक इस नीति को अपनाने के लिये स्वतंत्र रहते थे जिससे कि

तकनीकी कुशलता को प्राप्त करके भारी लाभ के लिये प्रोत्साहन मिल सके। ज्यों ज्यों सहयोग की भावना बढ़ती गई, सरकार ने अपनी आक्रामक नीति में ढीलाई कर श्रमिकों को कुछ अधिकार देने की कोशिश की, पर हर बार साम्यवादियों ने इन हकों को अपने उद्देश्य हेतु दुरुपयोग करने की कोशिश की और इस पर सरकार ने दमन नीति का अवलम्बन किया। कुछ समय तक अनिवार्य मध्यस्थता अधिकृत समिति पुलिस के संरक्षण में ही कार्य करती रही तथा सरकार और प्रबन्धकों द्वारा यह लगातार कोशिश भी होती रही कि एक राजनीतिक रुझान वाली वर्ग संघर्ष की उत्पत्ति रोकी जाय। चूँकि इस प्रकार की भावना की उत्पत्ति ट्रेड यूनियन के जन्म और विकास में निहित थी अस्तु सरकार और उच्चतम प्रकार की सहयोगी ट्रेड यूनियन के बीच में भी एक छिपा हुआ तनाव विद्यमान रहा। यही जापानी समाज की एक विशेषता रही है। द्वितीय महायुद्ध के प्रभावों ने इस परिस्थिति में एक नया पक्ष जोड़ा। युद्ध के अन्त के तुरन्त बाद जापान की अर्थ व्यवस्था महा-युद्ध की थकान और तबाही के कारण पूर्णतः छिन्न-भिन्न हो गयी। विजयी सेना ने राजनीति, अर्थव्यवस्था और जीवन के हर पहलू में प्रजातांत्रिक पद्धति को अपनाने हेतु जोरदार दबाव डाला। इन अधिकारियों द्वारा लिये गये प्रमुख कदमों के फलस्वरूप सरकार और व्यापार की गतिविधियों से बहुत मात्रा में पुराने सम्माननीय जनों को कम कर दिया गया तथा ट्रेड यूनियन्स को कानूनी सुरक्षा दी गयी और जापान के इतिहास में पहली बार उनके हकों की गारन्टी दी गयी। कुछ ही वर्षों में संगठनों के प्रगति की गति और हड़-तालों की संख्या उस स्तर तक पहुंच गयी जिस स्तर तक सम्पन्न देशों के मुकाबले में सम्माननीय स्थान प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु यह स्थिति अल्प समय के लिये ही थी। पश्चिमी प्रजातंत्र द्वारा वह घुस पैठ उस देश में हुई, जहां के समाज में परम्परा का स्थान बहुत ही सशक्त थी। सरकार में उन सम्माननीय स्थान प्राप्त करने वाले लोगों का स्थान एक स्रोत के रूप में था, जिनके घुटे (आधार) पर उत्पादन की गतिविधियाँ बनी हुई थीं। विजयी सेना के अधिकारियों द्वारा इस परम्परागत नेतृत्व को दूर कर देने के कारण तत्कालीन नेतृत्व में यथा स्थितिवादिता, द्विविधा और अनुशासन हीनता की भावना फैली। नया नेतृत्व उभर कर सामने आने में असफल रहा और ट्रेड यूनियन्स भी आर्थिक गतिविधियों के पुनः उत्थान में नेतृत्व देने में असफल रहीं। वे हड़ताल कर सकती थीं, परन्तु स्वसरकार के लिये वे योग्य व प्रशिक्षित न थीं। दिन प्रतिदिन के जीवन में कठिनाइयों का दबाव बढ़ने

लगा और वर्ष १९४८ के अन्तर्गत यूनियन्स ने एक बहुत व्यापक आम हड़ताल की घोषणा कर दी। घोषित तिथि के पहले ही विजयी सेनाधिकारियों ने इस सम्भावित हड़ताल पर प्रतिबन्ध लगा दिये। अभिनवीकरण की प्रक्रिया को पुनः चालू किया गया। छोटे व्यापार को भी तकनीकी के उच्च स्तर के उपयोग के लिए बाध्य किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय सहायता सम्मुख लायी गयी और उसका अत्यधिक उपयोग किया गया। उत्पादकता केन्द्र ने भी एक प्रमुख भूमिका निभाई। इस परिवर्तन का तुरन्त परिणाम अधिक उपज अथवा अतिरिक्त उत्पादन के रूप में हुआ, जिसने आर्थिक स्थिति में एक गम्भीर मंदी का जन्म दिया उस समय तक जापान के अर्थशास्त्री नेता यह अनुभव कर चुके थे कि घरेलू बाजार को बढ़ाने के लिये श्रमिकों को अच्छे वेतन तथा किसानों को अच्छे दाम देना आवश्यक है। यूनियन की माँगों द्वारा जो नई प्रजातांत्रिक प्रवृत्ति पैदा हो गई थी, को कुछ हद तक सान्त्वना मिली, परिणामस्वरूप जन समुदाय के हाथ में खरीदने की शक्ति दी गयी, जिसने उत्पादन के लिए बाजार मुहैय्या किया। कोरिया युद्ध शुरूआत ने जापान को आर्थिक दृष्टि से पुनः प्राप्ति का अवसर भी प्रदान किया, परिणाम स्वरूप वर्ष १९५५ तक जापान के आर्थिक विकास हेतु पूर्ण रूप से आधार बन गये थे। व्यापार और सरकार के बीच की साझेदारी पुनः प्रगट हुई और इसके साथ साथ पितृ तुल्य औद्योगिक सम्बन्ध भी खड़े हुए। इन सम्बन्धों का आधार था। श्रम के साथ प्रबन्धकों का सहयोगी सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश और कारखाने के अन्दर सामूहिक परामर्श पद्धति को सुदृढ़ बनाना ऐसा कहा गया था कि जापानी परम्परा में सामूहिक परामर्श गहरी जड़े जमा लिया है और इस विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई० एल० ओ०) की सिफारिशें जापानी प्रबन्धकों द्वारा संहर्ष स्वीकार की गयीं थीं फिर भी यूनियन्स कारखाने स्तर तक ही सीमित रहीं, वे समाजवादी व साम्यवादी गुटों में विभाजित भी हैं। अतएव सर्वत्र उद्योगों में और राष्ट्रव्यापी स्तर था सौदेबाजी अभी भी उनके लिये एक स्वप्न ही है। बाजार के परिवर्तनों को ध्यान में रखकर बहुत बड़ी संख्या के अस्थायी कर्मचारी और ठेके के मजदूरों की सख्या को संरक्षण द्वार के रूप में माना जाता है। तथा उस अनुसार उन्हें समायोजित किया जाता है। औद्योगिकरण के अभनवीं करण प्रक्रिया के लिये उन्हें अनिवार्य सामाजिक मूल्य के रूप में माना जाता है। अब यह सार्वमान्य है कि ये परम्परागत और पितृ तुल्य व्यवहार बहुत लम्बे काल तक नहीं चल सकेगें। किन्तु आधुनिकीकरण की वास्तविक

आवश्यकतायें क्या हैं और उनकी पूर्ति हेतु क्या कदम अपनाने चाहिए। इन प्रश्नों पर जापान में आज सामाजिक चर्चा का प्रमुख विषय है। यूनियन संगठनों के विस्फोटक विस्तार के आधार की नीति को चूंकि विजयी सेना के अधिकारियों ने निर्धारित की थी, अतएव वह परिवर्तन जापानी सामाजिक सम्बन्धों के प्राकृतिक विकास के अनुरूप नहीं हो पायी। अभी भी जापान की जनता ट्रेड यूनियन्स को एक विदेशी संस्था के रूप में मानती है।। औद्योगीकरण की आवश्यकताओं और परम्परागत आवश्यकताओं के बीच में जापान में अब भी मतभेद बना हुआ है और भविष्य में क्या होगा यह अनुमान लगाना कठिन है। विजयी सेना के अधिकारियों की नीति की असफलताओं के बाद जापान में अब यह मान्यता दी जा रही है कि श्रम कानूनों को समाज के विशेष आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिका को प्रगट करना चाहिए, अन्यथा उनकी असफलता अवश्यम्भावी है, परन्तु आयात की हुई तकनीक और परम्परागत आवश्यकताओं के कारण जो दोनों के बीच में दरार पड़ती है, उसकी समस्यायें जापानी विचारकों के लिए एक न होने वाली समस्या के रूप में ही महसूस की जा रही है।

क्या इन परिस्थितियों में यह कहा जा सकता है कि जापानी सरकार जो कि सर्वमान्य ट्रेड यूनियन विरोधी है, अर्थात् श्रमिक विरोधी है ? परम्परा का जनता पर अभी भी इतना दबाव है कि नौकर की मालिक के प्रति स्वामिभक्ति, जन समुदाय द्वारा एक मानवीय गुण के रूप में मानी जाती है और ट्रेड यूनियन्स को विदेशी उत्पत्ति के रूप में हेम भाव से देखा जाता है। यह भी नहीं भुलाया जा सकता कि एक के बाद दूसरी सरकार द्वारा बनाये गये प्रगतिशील श्रम कानूनों को संसद ने बिलकुल ही अमान्य कर दिया। कम्पनी के पारिवारिक भाव पर आधारित परम्परागत सामाजिक सम्बन्धों को औद्योगिक सम्बन्धों के पितृ तुल्य भाव के अत्यधिक समर्थन के लिये उपयोग किया गया। नई तकनीक को पुरातन सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक मान्यताओं के आधार पर ही उपयोग करने के लिए आग्रह किया गया साथ ही काम और मालिक के प्रति श्रमिक के समर्पण, जो कि इस पद्धति की आवश्यकता है, परम्परागत सम्पत्ति के रूप में पहले से ही प्राप्त था। प्रिन्स ओटो द्वारा लिखी पुस्तक 'Whither going Japan' में जापान की साम्यवादी आन्दोलन के इतिहास के बारे में यह स्पष्ट बतलाता है कि साम्यवाद विश्वविद्यालय में ज्ञान समाज के वातावरण में ही पनपा और

जीवन की वस्तुस्थिति से बहुत दूर रहा। जापानी युवक ने शुरू में इसका खण्डन किया कि "जापान में साम्यवाद एक धोखा है, न कि एक विश्वास।" किन्तु साम्यवाद कभी भी जापान की भूमि में जड़ें नहीं जमा पाया। बहुत से जापानी श्रमिकों ने बिना किसी ननुनच के अनुशासन को स्वीकार किया। उनके इस पक्ष की प्रशंसा हेतु जापानी कारखाने के नित्य प्रति काम को देखना चाहिये। कोई भी जापानी श्रमिक काम के समय सिगरेट नहीं पीता, कोई भी गप नहीं मारता, कोई चाय नहीं पीता, कोई पेशाब करने नहीं जाता वरन् काम करता है। उदाहरणार्थ एक तकनीकी जर्नलिस्ट ने विवरण दिया है, "होन्डा प्लान्ट जो कि एन ६०० मिनी कार्स बनाता है, में एक पोस्टर में लिखा है कि ७ बजे प्रातः तक ६० ब्रेक ड्रम्स बन जावेंगे, ७॥ बजे तक १२१ और ८ बजे तक १८२ आदि बन जावेंगे।" यहाँ औद्योगिक पारिवारिक सम्बन्धों को भी देखना आवश्यक है। दोपहर के भोजन के समय जापानी श्रमिक (पुरुष और महिला) को कम्पनी के हरे भरे मैदान में खुशी से गीत गाते देखा जा सकता है और इस हेतु कम्पनी उन्हें संगीत उपकरण और ध्वनि वर्धक यन्त्र की व्यवस्था प्रदान करता है, जब श्रमिक विवाह करता है तो कम्पनी उसके पूरे शादी के खर्च को वहन करती है, जब एक श्रमिक को स्थाई कर दिया जाता है तो उसे कभी बरखास्त नहीं किया जाता, चाहे जो भी उसके ऊपर अभियोग व दोष हों। हर रोज ८ वर्ष से १२ वर्ष के बच्चों के समूह कारखाने के पर्यटन हेतु देखे जा सकते हैं और वे धीमें-धीमें कारखाने में श्रमिक के नाते भी घुसते जाते हैं तथा जीवन भर के लिये जीविकार्जन हेतु वे काम करते हैं। यही जापान है–एशिया के एक विशेष पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर खड़ा हुआ औद्योगिक सम्बन्धों का एक नमूना।

## यूगोस्लाविया

यूगोस्लाविया के श्रमिकों द्वारा प्रबन्ध की व्यवस्था अथवा स्वायत्त-शासी प्रबन्ध के बारे में हिन्दुस्थान और अन्य सभी स्थानों पर काफी चर्चा है। जब वर्ष १९४८ में टीटो ने स्टालिन से अपने सम्बन्ध तोड़े, उस समय यूगोस्लाविया ने अपने आपको अकेला पाया। पश्चिमी देशों की अपने आप में साम्यवादी सत्ता के रूप में अविश्वस्त की स्थिति और पूरब से रूसी सैन्य शक्ति के वास्तविक भय के कारण यूगोस्लाविया ने एक अलग पद्धति का निर्माण किया, ताकि उसे जन समर्थन प्राप्त हो सके। उसने एक प्रकार की श्रमिक प्रबन्धक व्यवस्था को अपनाने का रास्ता चुना। ये विचार पूर्वी

यूरोपियन श्रमिकों के अन्दर घर की हुई है। वर्तमान दशक में यह देखा जा रहा है कि यूगोस्लाविया की विकेन्द्रीकरण और सीधी प्रजातंत्र (Direct Democracy) में एक सर्वव्यापक दिलचस्पी है और इस प्रकार की मनोवृत्तियां दूसरे समाजवादी देशों में भी स्वतः से उत्पन्न हो रही हैं। इस व्यवस्था में श्रमिक स्वयं ही प्रबन्धक का रूप धारण करते हैं, अतः निजी पूंजी के प्रतिनिधियों से परामर्श अथवा सत्ता में हिस्सा लेने का प्रश्न नहीं उठता। कानून के अनुसार श्रमिकों को हक प्राप्त है। कारखाने, खदान, संचार व्यवस्था, यातायात व्यवस्था, व्यापार, कृषि, बन, स्वायत्त शासन और अन्य राजकीय अर्थव्यवस्था सम्बंधी कारखानों को राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप में माना जाता है और राजकीय आर्थिक योजना के तत्वावधान में सम्प्रदाय के नाम पर श्रमिकों के समूह (Workers Collectives) द्वारा प्रबंध किया जाता है। इन उद्योगों का श्रम समितियों और प्रबंधक बोर्ड द्वारा वर्कर्स कलेक्टिव्स प्रबंध करते हैं। इस विषय पर वर्कर्स कलेक्टिव्स द्वारा उद्योगों के प्रबंध हेतु १९५० का आधार भूत कानून है। जिन कारखानों में ३० से कम श्रमिक काम करते हैं, वहां श्रनिकों का सामूहिक वर्ग श्रमिक समितियों के कार्य को करता है। समिति की सदस्य संख्या कारखाने के अनुसार निर्धारित होती है। ये सदस्य गुप्त मतदान द्वारा हर वर्ष चुने जाते हैं। सभी श्रमिकों और तकनीकी व्यक्तियों, जिनमें इंजीनियर और दूसरे विशेषज्ञ भी शामिल हैं, को मत देने का अधिकार है। ये प्रबंधन बोर्ड अथवा उसके निजी सदस्यों को चुनते हैं व वापस बुला सकते हैं तथा परिवर्तन कर सकते हैं। समिति अपना चेयरमैन चुनती है, जो कि प्रबंधन बोर्ड का सदस्य नहीं हो सकता। निदेशक को मिलाकर प्रबंधन बोर्ड के सदस्यों की संख्या ३ से ११ के बीच होती है। निदेशक जो कि बोर्ड का न मत देने वाला सदस्य होता है, कारखाने का चीफ इक्जीक्यूटिव होता है। समिति के ६ सदस्यों द्वारा निदेशक की नियुक्ति होती है। ६ सदस्यों में ३ सदस्य श्रमिक समिति के प्रतिनिधि और शेष ३ उस जन समुदाय के होते हैं, जहां पर यह कारखाना अवस्थित होता है। यूगोस्लाविया की सीधी प्रजातंत्र का आधार विकेन्द्रीकरण है। प्रशासन के क्षेत्र में सीधी प्रजातंत्र व्यवस्था ने जन समितियों (People's committee),जिला समितियों और समूह (Communes) को बनाया है। इन सब में वास्तविक सत्ता निहित है। अपने-अपने क्षेत्र में स्थित कारखानों के प्रबंध के लिये प्रजातंत्र के ये सभी अंग सम्पूर्ण रूप से

भाग लेते हैं। इनमें जो अंतिम अंग है, जिसका नाम कम्यून है, उस कारखाने के निदेशक को चुनने में श्रमिकों के समकक्ष अधिकार हैं और परिणामस्वरूप निदेशक को जनता का एक व्यक्ति माना जाता है। श्रमिकों की आम सभा अपनी इच्छा के अनुसार किसी एक सदस्य को अथवा समूची समिति को वापस बुला सकती है। आम सभा की बैठक ट्रेड यूनियन द्वारा अथवा समिति द्वारा बुलाई जा सकती है, जहां पर कारखाने के उत्पादन व अन्य स्थितियों तथा संगठन और प्रक्रिया आदि जैसी प्रमुख समस्याओं पर बहस होती है। श्रमिक समिति इस बैठकों की शिफारिशों को अपनाने के लिये बाध्य नहीं है, परन्तु उसके अस्वीकार करने के कारण बताने पड़ते हैं। संगठन और प्रबन्ध के आधारभूत और अनिवार्य विषयों पर समिति निर्णय लेती है, जैसे कारखाने के स्थाई नियम (Statutes) को बनाना और उनमें संशोधन करना, वेतन और मजदूरी के क्रम, आर्थिक कार्यक्रम, मुनाफे के उस अनुपात का वितरण जो उस कारखाने के अधिकार में है और बना रहता है, उस निधि का उपयोग, जिसको स्वायत्तशासी ढंग से उपयोग किया जा सकता है, प्रबन्धन और सुपरिविजन बोर्ड के चुनाव / प्रशासनप्रबन्धन बोर्ड के हाथ में है। प्रबन्धन बोर्ड की उचित रचना को निर्धारित करने हेतु यह लिखा गया है कि बोर्ड के सदस्यों की कम से कम तीन चौथाई संख्या उन श्रमिकों में से होनी चाहिये, जो कि उत्पादन में अथवा कारखाने के आधारभूत आर्थिक प्रक्रियाओं में सीधा भाग लेते हैं। बोर्ड के शेष सदस्य टेक्निकल परसोनेल, इन्जीनियर और शेष कर्मचारियों में से चुने जाते हैं। बोर्ड की जिम्मेदारी है वार्षिक आधारभूत योजना के सुझावों को निर्धारित करना और मासिक कार्यकलाप योजना को बनाना यह कारखाने के भीतरी संगठन, जिसमें कार्य का वर्गीकरण शामिल है, की देखभाल करता है। इस पर उपयुक्त उत्पादन के लिये तकनीकी पद्धतियों के सुधार की और श्रम द्वारा उत्पादकता को बढ़ाने की, उत्पादन की कीमत को कम करने की और उत्पादित वस्तु के गुणों में सुधार करने की गारन्टी देने की जिम्मेदारी है। नीति का क्रियान्वयन करना निदेशक के हाथ में होती है। वह न केवल श्रमिकों के प्रबन्ध का अंग होता है बल्कि राज्य का भी प्रतिनिधि होता है। उसकी यह सीधी जिम्मेदारी होती है। कि कारखाना राज्य के नियमों के अनुसार काम करे और यदि उसे किसी ऐसे निर्णय को कार्यान्वित करने को कहा जाय, जो उसके निर्णय के अनुसार कानून का विरोधी है, तो वह उसे कम्यून की जन समिति के समक्ष प्रस्तुत करने को बाध्य है। निदेशक

नियुक्तियों और कार्य के बंटवारे का जिम्मेदार है। वह बरखास्त करने के लिये भी निर्णय ले सकता है, केवल उन लोगों को छोड़कर जो कि प्रशासक हैं। जिन्हें केवल प्रबन्धन बोर्ड ही बरखास्त कर सकता है। किसी भी श्रमिक को कार्य सम्बन्ध हेतु निदेशक के निर्णय के विरोध में प्रबन्धन बोर्ड के सम्मुख शिकायत करने का हक है। यूगोस्लाव यह इंगित करते हैं कि इन रचनाओं से उन्होंने प्रबन्ध के उत्तराधिकार पद्धति (Hieraschical Principle) जो कि कुशलता के लिये अनिवार्य है और प्रजातान्त्रिक नियन्त्रण के सिद्धान्त के बीच उचित समझौते को करना है, उसका विकास किया है। नियम, जो श्रम शक्ति द्वारा निर्धारित होते हैं, को जिला की जन समिति व ट्रेड यूनियन द्वारा परामर्श देना अनिवार्य है, मतभेद होने पर मध्यस्थता का प्राविधान है। सर्व साधारण भुगतान कारखाने के परिणाम से सम्बन्धित रहते हैं और यह दावा किया जाता है कि वेतन क्रम कार्य मूल्यांकन पर आधारित किये गये हैं। रेलवे, डाक व तार संचार व्यवस्था और बिजली, जहां पर केन्द्रीयकरण अनिवार्य है, इन सेवाओं के लिये स्वनियन्त्रण की भिन्न-भिन्न रचनायें की गयी हैं। उदाहरणार्थ रेलवे को विभिन्न भागों में बांटा गया है, एक भाग है–पैसेन्जर (सवारी) व माल ट्रान्सपोर्ट का दूसरा है–रोलिंग स्टाक (Rolling Stock) व उपकरण आदि का, ये सभी दोनों भाग श्रम समितियों, प्रबन्धन

बोर्ड और निदेशक की व्यवस्था में होते हैं। स्टेशन व वर्कशाप के आधारभूत इकाई स्तर पर भी इसी प्रकार के संगठन हैं। ऊंचे स्तर पर प्रबन्धक प्रशासन समितियों जो २० से ३० सदस्यों की होती है, के हाथ में होता है। हर एक भाग की कमेटी श्रम समितियों द्वारा चुनी जाती है। यह कमेटी समान यातायात व तकनीकी नियम को लागू कराने, समय सारणी को संयोजन करके एकीकरण करने और देखरेख करने के कार्यों को निश्चित करती है तथा यूगोस्लाव रेलवे के भिन्न-भिन्न भागों को एक फेडरल समुदाय में इकट्ठा भी करती है। यह एक प्रशासनिक समिति द्वारा प्रशासित होती है, जो कि भिन्न-भिन्न रेलवे की प्रशासनिक समितियों द्वारा चुनी जाती है। डाक व तार संचार व्यवस्था तथा विद्युत में भी इसी प्रकार की रचना है। इसी प्रकार बड़े-बड़े कारखानों के समूह (Complex) को भी खण्डों में विभाजित किया जाता है। एक ऐसी धारणा रही है कि इन स्तरों पर सीधी प्रजातान्त्रिक पद्धति के अपनाने से प्रबन्ध की एकता को हानि पहुंचेगी, फिर भी एक बहुत सबल विचार यह है कि इकाइयों में स्वप्रबन्ध के अंगों को निर्णय का अधिकार होना

चाहिए, जब तक पूरे कारखाने की सम्पूर्ण नीति को हानि नहीं पहुंचती।

आम अर्थव्यवस्था की समस्याओं को ध्यान में रखकर कारखानों के हितों में समरसता पैदा करने के लिए व्यापक विचार भी किए गए हैं। इस उद्देश्य के लिये नियन्त्रण की दिशा को स्पष्ट करना अनिवार्य है, नहीं तो स्वशासन की इन बहुत सी इकाइयों के कारण द्विविधा पैदा होती। परियोजनाओं के प्रबन्ध और राष्ट्रीय व्यवस्था की नीति के अन्तर्गत योजना मुख्यतया इस वाक्य से सम्बन्ध रखती है, 'आर्थिक विकास की आधारभूत दिशा और उद्योग की आम स्थिति के जांचने और उद्योग का समुदाय के प्रति भौतिक पदार्थों की आवश्यकता की पूर्ति।' यह दिशा सामाजिक योजनाओं के द्वारा निर्धारित होती हैं, जो कि फेडरल नेशनल असेम्बली, रिपब्लिकन नेशनल एसेम्बली और जन समितियों द्वारा अपने-अपने क्षेत्र में अपनाई जाती है। राज्य के प्रशासन के विभिन्न अंगों के हक कानून और नियम के अपनाने तक सीमित हैं, जो कि कारखानों के संगठन और कार्य विधि एवं इन नियमों के लागू करने के लिये देखरेख की व्यवस्था को निर्धारण करना है। इन नियमों और सामाजिक योजनाओं के अनुरूप कारखानों को अपनी कार्य विधि के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता है, इसके साथ ही सम्पत्ति और लाभ हेतु नियम हैं, कारखाने के पास अपनी नींव रखने के समय जो स्थाई सम्पत्ति रहती है, का मूल्य बनाये रखना पड़ता है। लाभ के ऊपर फेडरल सरकार को टैक्स अदा किया जाता है, इसके कुछ प्रतिशत रिजर्व फण्ड (सुरक्षित कोष) में जमा किया जाता है और कुछ हिस्सा समूह (कम्यून) एवं जिले को दिया जाता है, शेष में से कुछ श्रमिकों को और बची राशि को उत्पादन के अभिनवीकरण, आवास व्यवस्था और दूसरे कल्याणकारी कार्यों के लिये दिया जाता है। यदि कोई कारखाना घाटे में चल रहा है तो उसे अपने रिजर्व फण्ड पर निर्भर होना पड़ता है। यदि रिजर्व फण्ड अपर्याप्त है, तो स्वायत्त शासन की जन समिति आकर देखती है कि क्या वह कारखाने को बचा सकती है ? यदि उसकी दिवालियापन होने की स्थिति है, तो उस कारखाने को समाप्त कर दिया जाता है। ये नियम और साथ ही खुले बाजार और प्रतियोगिता की स्थितियां उद्योग पर कुछ मात्रा में अवरोध और संतुलन पैदा करती हैं। वेतन के अत्यधिक बढ़ने और परिणामस्वरूप कारखाने के दिवालियापन होने की सम्भावना द्वारा समूह के ऊपर बोझ डालने को रोकने हेतु सामाजिक योजना में प्राविधान है, जो कि पूरी धनराशि

में से वेतनों के वितरण हेतु भाग से सम्बन्धित हैं। तीसरे उद्योग सम्बन्धी संगठन हैं, इकनामिक्स चैम्बर्स और एकनामिक्स एसौशिएशन। इनको राज्य प्रशासन की कुछ जिम्मेवारियां सुपुर्द की गयी हैं। इनका कार्य है–राज्य को उद्योग सम्बन्धी समस्याओं से अवगत कराना और कानून और सामाजिक योजनाओं को बनाने में सहयोग करना। साथ ही इनकी शेष गतिविधियां इस प्रकार हैं–उत्पादन के तकनीक सम्बन्धी विकास की गतिविधियों का एकीकरण विभिन्न उद्योगों के बीच सहयोगी भाव के लिए सहायता, सामूहिक रूप से विशेष समस्याओं के लिए सहायक संगठन और कारखाने के भिन्न-भिन्न श्रमिकों के प्रशासन हेतु संगठन। हर आर्थिक क्षेत्र के लिए भिन्न-भिन्न चैम्बर हैं और हर चैम्बर के लिये एसेम्बली तथा प्रशासन समिति हैं। एसेम्बली कारखानों के सदस्यों के लिये बनती है, जिन्हें श्रम समितियां चुनती हैं। अच्छे व्यापार के व्यवहार के उल्लंघन से जो विवाद उठते हैं, उन विवादों के लिये ट्रिब्यूनल्स आफ आनर (Tribunals of Honour) निर्णय करता है। यूगोस्लाव की दोस्तरीय एसेम्बली का एक प्रशंसनीय पक्ष यह भी है कि इसका एक चैम्बर, जिसे उत्पादकों की समिति कहते हैं, उत्पादकों के प्रतिनिधियों द्वारा चुनी जाती है। यही पद्धति समूह, जिला व रिपब्लिक के सभी स्तरों पर अपनाई गई है। जिले व समूह की उत्पादक समितियां–श्रम समितियों और उत्पादकों की स्वप्रबन्ध की समितियों के सदस्यों द्वारा चुनी जाती हैं और जिला समितियां रिपब्लिक स्तर के सदस्यों को चुनती हैं। प्रतिनिधित्व हेतु उत्पादकों को दो भागों में बाटा गया है। पहले भाग में उद्योग, व्यापार व हस्तकला और दूसरे भाग में कृषि आता है। हर स्तर पर इन समूहों की सदस्य संख्या उस अनुपात में रहती है, जितना वे राष्ट्रीय आय में योगदान करते हैं। इस क्रिया का इस आधार पर प्रतिवाद किया जाता है कि अपने समुदाय के भाग्य हेतु उस मात्रा में जनता की आवाज होनी चाहिये, जितने मूल्य का योगदान राष्ट्रीय आय में वह करता है। दोनों ही चैम्बर्स को सामाजिक योजनाओं और दूसरे नियमों तथा सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था संबंधी निर्णयों को पारित करने हेतु समान अधिकार हैं, परन्तु आर्थिक इकाइयों के कार्यों, सरकारी संगठनों और उत्पादन समितियों के विभिन्न क्षेत्रों के अन्तर्गत स्वप्रशासन हेतु संस्थाओं से संबंधित प्रश्नों को छोड़कर। इस तरह अत्यधिक विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था को जन के सामाजिक व आर्थिक अंगों का सभी स्तरों पर एकीकरण किया गया।

राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था का ढांचा और कार्य प्रणाली उस समय अत्यधिक स्पष्ट हो जाती है, जब हम यूगोस्लाविया की आय वितरण के सिद्धान्त व प्रक्रियाओं का निरीक्षण करते हैं। सोशलिस्टिक फेडरल रिपब्लिक आफ यूगोस्लाविया की वर्ष १९६३ के संशोधित संविधान की धारा ६ के अन्तर्गत सामाजिक उत्पादन के श्रमिक संगठन और शेष समुदाय के बीच में वितरण हेतु स्व प्रशासन की कार्य विधि निर्धारित है। संविधान में आय और आय के वितरण शब्द का प्रयोग किया गया है, न कि वेतन, मजदूरी और लाभ में भागीदारी का। आय वितरण के दो क्रम हैं। पहले क्रम में आय का पूरे समाज और श्रमिक वर्ग में वितरण और दूसरे क्रम में जो आय श्रमिकों की है, उसका प्रत्येक श्रमिक में वितरण करना है। समाज और श्रमिक वर्ग में आय के विभाजन का प्रश्न यूगोस्लाव पद्धति की एक प्रमुख समस्या है। इस वितरण के लिये निश्चित पहला क्रम श्रमिकों के वास्तविक आय का सर्व साधारण स्तर निर्धारित करता है। संविधान की धारा ९ प्रस्तुत करती है कि श्रमिक वर्ग अपने हकों व जिम्मेवारियों की स्व प्रशासन को निर्धारित करें और श्रमिक वर्ग की सामूहिक आय को वितरण करें, न कि सम्पूर्ण आय जो कि श्रमिक संगठन पैदा करते हैं। पहले क्रम की अनिवार्यता नीचे लिखे कारणों से है–निजी कारखानों में उपकरणों की भिन्नता के परिणामस्वरूप उत्पादन में अन्तर है, भूमि की उत्पादकता के भिन्न-भिन्न स्तर और कारखाने तथा उत्पादित वस्तु से संबंधित बाजार में निहित विभिन्न एकाधिपत्य, उत्पादकता के साधनों का सामाजिक स्वामित्व और आय से उत्पन्न संपत्ति के समाप्त करने के परिणाम। कारखाने की आय का पहला खर्च उपकरण सामग्री की कीमत व घिसावट (ह्रास) के मूल्य हैं। शेष बचे हुए को शुद्ध उत्पादन कहते हैं। कारखाने के शुद्ध उत्पादन (नेट प्रॉडक्ट) में से सेल टैक्स, स्थाई पूंजी एवं चालू पूंजी के ऊपर ब्याज और भूमि पर मालगुजारी दिया जाता। बचे हुए को शुद्ध आय (नेट इनकम) कहा जाता है। इसका उपयोग सदस्यता शुल्क देने में, युवक श्रमिकों के प्रशिक्षण में, और कुछ विशेष व्यक्तिगत खर्चे जैसे कि मार्ग व्यय आदि है, उसमें किया जाता है। इन सबसे बची हुई आय को कारखाने की आय कहते हैं। वर्ष १९६२ के आंकड़े यह प्रस्तुत करते हैं कि सम्पूर्ण आय का ७६.२ प्रतिशत ऊपर लिखे उपयोगों के के लिये स्वायत्तीकरण किया गया। शेष २३.८ प्रतिशत शुद्ध उत्पादन को १०० के बराबर मानने पर सेल टैक्स १३.५ प्रतिशत, स्थायी एवं चालू पूंजी

पर ब्याज ९.३ प्रतिशत तथा भूमि मालगुजारी ०.५ प्रतिशत के बराबर थी। समितियों द्वारा अपने विवेक के अनुसार लिये गये निर्णयों पर आधारित भुगतान ६.५ प्रतिशत हुये और कारखाने की आय शुद्ध उत्पादन का ७०.२ प्रतिशत रही। प्रत्येक उद्योग की आय के लिये ३ प्रमुख कारण हैं–(१) भूमि (२) उपकरण और (३) एकाधिकार शक्ति। इन तीनों विषयों के योगदान उत्पादकता पर भिन्न-भिन्न समय पर विभिन्न रहते हैं, परन्तु यदि इन्हें समान रूप से मान लिया गया और इन सबका योगदान कारखाने के उस आय के योग के बराबर मान लिया गया, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है तो शेष बची हुई आय करीब-करीब प्रत्येक कारखाने के श्रम और प्रबन्ध के अनुपात में उचित मानी जा सकती है। यह श्रमिकों के बीच में बिना किसी भय के कि "काम के अनुसार मजदूरी" वाले समाजवादी सिद्धान्त को तोड़ा जा रहा है। वितरण किया जा सकता है। परन्तु जो शेष आय बचती है वह सम्पूर्ण रूप से श्रमिकों को नहीं मिलती। ये सम्पूर्ण व्यक्तिगत आय के समान है, जिसमें से सामाजिक सुरक्षा, आवास व्यवस्था, यातायात व्यवस्था आदि कई टैक्सेस काट लिये जाते हैं। ये सभी टैक्सेस शेष योगदान का जो कि सामूहिक व्यक्तिगत आय का ४५ प्रतिशत है, जिन्हें व्यक्तिगत वेतन लेने से पहले ही काट लिया जाता है। कारखाना सम्बन्धी पहले क्रम के स्तर के निर्णय, वितरण अनुपात के उन नियमों के अनुसार हैं, जो व्यक्तिगत आय के सामूहिक योग (जोड़) और पूंजी संग्रह में है और जिसका औसत अनुपात ३:१ है। इन नियमों के सिद्धान्तों के आधार पर वर्ष १९६३ में एक विस्तृत विवेचन तैयार किया गया, जो श्रम सम्बन्धी फेडरल सचिवालय, योगोस्लाव ट्रेड यूनियन कान्फीडरेशन की केन्द्रीय समिति और फेडरल इकनामिक चैम्बर के बीच समझौते के रूप में था। इन नियमों के अनुसार हर कारखाने को अपने काम और प्रबन्ध के परिणामों का विवेचन करना है। ताकि यह खोज की जा सके कि किन-किन बातों व विषयों ने शुद्ध आय के उत्पादन और किस अनुपात में योगदान दिया है। अपनी लम्बे काल की विकास योजनाओं को ध्यान में रखकर कारखाने को निर्णय करना चाहिये कि वह अपनी शुद्ध आय को किस प्रकार से व्यक्तिगत आय और सामूहिक व्यय के बीच में बांटे और किस प्रकार अपने उत्पादन फण्ड का भी वितरण करे। कार्य और प्रबन्ध के परिणामों का विवेचन चालू वर्ष के फल और पिछले वर्ष के योगदान देने वाले विषयों के आधार पर करना चाहिये और

दूसरा विवेचन अपने समान दूसरे कारखानों के फल एवं योगदान देने वाले विषयों से करना चाहिये। वितरण का जो सूत्र उपयोग में लाया जाता है, वह निम्नांकित है :–

$$y_P = \frac{P_n}{1 + x\,K}$$

जहां $y_P$ = व्यक्तिगत आय भुगतान

$P_n$ = कारखाने की शुद्ध आय

K = एक पक्ष (Factor) जो कि वह कारखाना अपने कार्य और प्रबन्ध के परिणाम के विवेचन को परिभाषित करता है। और

$$x = \frac{C.X_o}{C_o}$$

जहां पर C = चालू वर्ष में प्रति व्यक्ति पूंजी

$C_o$ = पिछले वर्ष में प्रति व्यक्ति पूंजी और

$X_o$ = पिछले वर्ष का वितरण सम्बन्ध

कारखाने की आय वितरण के सम्बन्ध के निर्णय को साधारण देखरेख समूह की आम सभा (Communal Assembly) करती है, वह अपने क्षेत्र में किसी भी कारखाने को अपने शुद्ध आय के वितरण सम्बन्धी नियमों के परीक्षण हेतु कह सकती है। जांच के पश्चात् समूह कारखाने के सम्बन्ध में उठाये हुए आपत्तियों की जानकारी देता है और उचित संशोधन अपनाने के लिये सिफारिशें करता है। यदि श्रमिक समिति इससे सहमत नहीं होती, तो उसे अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण समूह की बैठक के सामने करना पड़ता है। यदि एसेम्बली इससे असन्तुष्ट रहे, तो इस विषय को रिपब्लिकन एसेम्बली के सम्मुख अन्तिम निर्णय के लिये भेजा जाता है। इसका यह अर्थ हुआ कि यद्यपि श्रमिक समिति सिद्धान्ततः स्वायत्तशासी है तो भी अपने आय वितरण नीति की परिभाषा करते समय राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के सर्वसाधारण हितों को सम्मुख रखना चाहिए। मतभेद की परिस्थिति में सामाजिक और राजनीतिक समूहों के विभिन्न अंग ही राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के हितों की अधिकृत

व्याख्या करते हैं। हम पहले देख चुके हैं। कि बड़े-बड़े कारखाने, छोटे-छोटे आर्थिक इकाइयों में विभक्त हैं। बड़े कारखानों की शुद्ध आय को छोटी आर्थिक इकाइयों में वितरण हेतु नियम परिभाषित हैं। हर इकाई को कुछ मात्रा में तकनीक सम्बन्धी स्वतंत्रता है और भीतरी एकीकरण की भी व्यवस्था है। हर एक इकाई का अपना लेखा जोखा रखने की पद्धति है। वह दूसरी इकाइयों से कच्चा माल खरीदता है और अपने उत्पादन को दूसरी इकाइयों को भेजता है। इकाइयों के बीच में बहुत से सम्बन्ध ठेकों के आधार पर नियंत्रित हैं, उदाहरणार्थ फालतू मजदूर, उत्पाद (वस्तु) की कुशलता और उत्पादन का समय। इनसे कारखाने की शुद्ध आय का इकाइयों में विभाजन हेतु सहायता मिलती है। कारखानों के अर्द्धस्वायत्त शासी इकाइयों में इस प्रकार के विभाजन इसलिये अनिवार्य पाया गया है कि स्व प्रबन्ध के सिद्धान्त को वास्तविक स्वरूप दिया जा सके। जब एक कारखाने में ३०० अथवा ४०० से अधिक श्रमिक होते हैं, इनकी श्रम समितियां उत्पादन प्रक्रियाओं को प्रभावी ढंग से नियंत्रित नहीं कर सकतीं, उस अवस्था में किसी एक श्रमिक से सीधा सम्बन्ध और उत्पादन सम्बन्धी मानवीय सम्बन्धों को रख पाना कठिन हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में श्रमिक समिति केवल मात्र कारखाने की नीति को परिभाषित करने का अंग बन जाती है तथा भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं के लिए। व्यवहारिक रूप से समिति द्वारा समिलित होने के लिए एक आर्थिक इकाई ही अनिवार्य है। यूगोस्लाव ने इसे किया है। और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु बहुत से नियमों का विकास किया है। उदाहरणार्थ-कारखाने की शुद्ध आय, को विभिन्न आर्थिक इकाइयों के बीच में बांटना, भीतरी लेखा जोखा पद्धति, खरीद फरोख्त की कीमत, नियोजित व्यक्तिगत आय, उत्पाद (वस्तु) की नियोजित प्रति इकाई शुद्ध आय, परियोजना हेतु श्रमिकों की संख्या के लिए औसत मासिक आय, काम के घंटे उत्पाद (वस्तु) की प्रति इकाई कीमत के लिये अन्य खर्च और उत्पाद की कुशलता। श्रमिकों को हर एक आर्थिक इकाई अपनी आय का वितरण करती है और इस वितरण हेतु अपने नियम बना सकती है। आर्थिक इकाइयों को दिशा देने के लिए कारखाने स्तर पर नियम बनाये जाते हैं, जो केवल आम प्राविधानों से सम्बन्धित होते हैं और न्यूनतम समानता की गारन्टी के लिये भी अनिवार्य हैं। निम्नांकित प्राविधानों से ये सम्बन्धित होते हैं-सभी आर्थिक इकाइयों के लिए व्यक्ति के उच्चतम और न्यूनतम आधारभूत वेतन के बीच में आय का अन्तर (Income

Differentials), कार्य मूल्यांकन के आम सिद्धान्त, गुणावगुण पर आधारित वेतन क्रम, पीसवर्क तथा स्टैन्डर्ड टाइम, कुशलता, माल की बचत और बोनस हर इकाई के नियम भिन्न-भिन्न कार्य और श्रमिकों की भिन्न-भिन्न श्रेणियों के ठोस मूल्यांकन में निहित होते हैं, जो कि 'दीनार' अथवा अंकों में, सर्व-साधारण अंकों में, प्रगट किये जाते हैं। ये नियम प्रत्येक प्रकार के काम के लिये निर्धारित वर्कपीस रेट अथवा स्टैन्डर्ड टाइम को भी निर्धारित करते हैं और ये सब संख्यात्मक प्रोत्साहन पद्धति, उत्पाद की कुशलता के सुधार हेतु बोनस की विशेष स्थिति, माल और बिजली की खपत में बचत, व्यक्तिगत आय का सुरक्षित कोष के सम्बन्ध में निर्धारित बटवारा और इस राशि के उपयोग की शर्तों के अन्तर्गत क्रियान्वित किये जाते हैं। कार्य सम्बन्धी भिन्न भिन्न पक्ष ये हैं–आर्थिक इकाई और कारखाने की योजनाओं की पूर्ति हेतु योगदान, कार्य सम्बन्धी अनिवार्य कुशलता और अनुभव, शिक्षा, जिम्मेदारी परिश्रम, कार्य की दशा। योग्यता सम्बन्धी जो विषय मान्य हैं, योग्यता, वरिष्ठता (सिनीयारटी) कार्य प्रेरणा, कार्य के प्रति दृष्टिकोण तथा आर्थिक इकाई की सफलता में योगदान। इसी पद्धति द्वारा आधुनिक कारखानों के व्यापक निष्पक्षता को यह स्वरूप दिया जाता है कि हर एक श्रमिक यह अनुभव कर सके कि उसके साथ हर विषय पर व्यक्तिगत रूप से पूछ ताछ की जाती है और उसे यह महसूस कराया जाता है कि वह उद्योग के हर कार्यकलाप में महत्व का स्थान रखता है तथा अपने लिए न्याय प्राप्त कर सकता है इनसे भी अधिक महत्त्व के विषय न्यूनतम वेतन सम्बन्धी राज्य के नियम हैं। वर्ष १९६२ में लागू की गयी न्यूनतम और गारन्टी वेतन घोषणा के अनुसार हर श्रमिक की सम्पूर्ण आय ६१ दीनार प्रति घंटा से कम नहीं हो सकती अथवा १२७०० दीनार प्रति मास + २० प्रतिशत जो कमुनल एसेम्बली के निर्णय पर निर्भर करती है, से कम नहीं हो सकती। किसी उद्योग में सम्पूर्ण व्यक्तिगत आय को उतने घंटों जो कि किसी निर्धारित समय में किये गए हैं, से गुणा करने पर किसी व्यक्ति की न्यूनतम सामूहिक बिल की स्थापना होती है, जोकि हर उद्योग द्वारा श्रमिक के योगदान को बिना किसी भेदभाव से अदा किया जाता है तथा यदि उद्योग में धनराशि की कमी हो तो कमुनल सुरक्षित कोष से दिया जाता है।

ऊपर का विवरण किसी भी कट्टरपन्थी ट्रेड यूनियन कोयह धारणा पैदा कर सकती है। कि यूगोस्लाविया के ढांचे में ट्रेड यूनियन के निभाने योग्य कोई भूमिका नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि सामूहिक सौदेबाजी का कोई प्राविधान

नहीं है। मांगों और समस्याओं के निदान की भी कोई मान्य पद्धति नहीं है, परन्तु यूनियन के लिए वास्तविक राष्ट्रोत्थान हेतु बहुत कुछ करणीय है। ट्रेड यूनियन्स कारखानों में श्रमिकों के स्व प्रशासन के अंगों को सहायता देने के लिये सेवा करती हैं तथा इन अंगों के काम के ऊपर नियन्त्रण रखती हैं और इन अंगों में भाग लेने हेतु श्रमिकों को प्रशिक्षण भी देती हैं। वेतन और मजदूरी के निर्धारण हेतु कानून बनाने में जो कि हर प्रकार के काम व कार्य पदों से सम्बन्धित है, श्रम समिति, जन समिति और यूनियन तीनों ही सामूहिक रूप से भाग लेती हैं। इनके समझौते सामूहिक समझौतों से न केवल इस बात में भिन्न हैं कि ये उन दो पक्षों के बीच में जिनके स्वार्थ परस्पर विरोधी हैं, किये जाते हैं, बल्कि इनमें भाग लेने वाले जो कि वेतन और आय की स्थाई स्थिति को निर्धारित करते हैं, आपसी प्रतिबद्धता का रूप नहीं लेते जैसा कि सामूहिक समझौते में किया जाता है। यूनियन आमतौर से जिले स्तर पर संगठित की जाती है और ये संगठन अपने क्षेत्र में पेरेट्स को निर्धारण करने में मदद देते हैं, जो कि एक ही प्रकार के उद्योग के भिन्न-भिन्न कारखानों में और यूनियन्स तथा कम्यून्स के बीच सम्बन्धित रहते हैं। वे इस बात के लिये सिद्धान्ततः प्रतिज्ञित हैं कि समान काम के लिये समान पारितोषिक मिलना चाहिये और वेतनों में अन्तर अच्छे कार्य और अच्छे प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप होने चाहिये। यदि किसी दशा में वेतन आयोग अथवा वेतन मध्यस्थता अनिवार्य हो जाय तो इस पूर्ति के लिये यूनियन इन समितियों पर अनिवार्य रूप से प्रतिनिधित्व करती है। यूनियन्स श्रमिकों के मध्यस्थता केन्द्रों में प्रमुख वाहक और प्रबन्धक बनने की तैयारी करती हैं। यूनियन श्रमिकों के दृष्टिकोण को सरकार और संसद के सम्मुख प्रस्तुत करती हैं, साथ ही श्रमिकों को राष्ट्रीय नीतियों का विवेचन करके बतलाती है। ये सत्ता के अंग नहीं हैं, वरन् स्वप्रशासन में दिशा वाहक हैं। वे साधनों के वितरण, एकाधिपत्य को रोकने में सहायक और श्रमिकों के भिन्न-भिन्न श्रेणियों के हितों में सहयोग हेतु सुझाव देते हैं। वे श्रम समितियों के सदस्यों के चुनाव में प्रभाव डालते हैं। ट्रेड यूनियन की सदस्यता स्वेच्छा पर आधारित है, परन्तु बहुत बड़ी संख्या (८५ प्रतिशत तक) में सदस्य होते हैं। इस पर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि यह कोई स्वतन्त्र ट्रेड यूनियन आंदोलन है, क्योंकि सभी यूनियन अनिवार्य रूप से एक राष्ट्रीय केन्द्र से सम्बद्ध हैं। श्रमिकों को अपने प्रकार की ट्रेड यूनियन जो कि साम्यवाद के प्रभाव से स्वतन्त्र हो, उसे संगठित करने की अनुमति नहीं है। श्रमिक शिक्षा को बहुत महत्व दिया जाता है। तकनीकी

जानकारी ट्रेड यूनियन द्वारा संगठित औद्योगिक पाठशालाओं में दी जाती है और बहुत से मामलों में श्रमिकों के लिए उद्योग स्वयं आयोजित करता है, उसके साथ ही प्रबन्ध सम्बधी आर्थिक विषयों की जानकारी दी जाती है। श्रमिक विश्वविद्यालयों में जाने वाला दर्शक शीघ्र ही यह अनुभव कर सकता है कि सर्वत्र इमानदारी वाले प्रयत्नों का वातावरण है। शिक्षण बहुधा गोष्ठी (सेमिनार) एवं सामूहिक वार्तालाप के माध्यम से होता है। जो विषय पढ़ाये जाते हैं, वे हैं–कारखानों का प्रबन्ध, श्रमिक समितियों और प्रबन्धन बोर्ड के संगठन तथा उनकी बैठकें, भिन्न-भिन्न कारखानों में उत्पादन हेतु संगठन, उत्पादन का मूल्य, उद्योग की सर्वसाधारण और वाणिज्यकीय संगठन और इसकी वित्तीय कार्यकलाप, औद्योगिक सम्बन्ध, उत्पादन की योजना, माल का सही उपयोग, लागत लेखाकार की रिपोर्ट के अर्थ, वार्षिक चिट्ठा और अन्य कागजात।

यूगोस्लाव के पूरे चित्रण के बहुत से अनोखे पक्ष हैं। इन पक्षों की व्यावहारिक दृष्टि, कला कौशल व हस्त कला अथवा सीधी प्रजातन्त्र संबंधी विशेष बातों के लिए शिक्षाप्रद उपयोग है। वहां अपनाई गई पद्धति बिना त्रुटियों के नहीं है। पद्धति में बदल हेतु लगातार स्व आलोचना की जाती है, इस हेतु सुधार की आशा बनी रहती है। यूगोस्लाव के लिए यह साहसी प्रयोग करना सम्भव हो गया है, क्योंकि पद्धति के पीछे एक सुदृढ़ दल काम करता है, जिसकी बहुत बड़ी संख्या में तत्व निष्ठ सदस्य संगठित है वह अनुशासन हेतु बहुत प्रबल प्रभाव डालता है और स्वशासी समितियों की नींव बनाता है। तंत्रज्ञों को भी बहुत सम्मान दिया जाता है। कुछ श्रमिकों के समूह ने यह सोचा था कि निदेशक अनिवार्य नहीं है तथा दिन प्रतिदिन के प्रबन्ध को कार्य समिति द्वारा क्रियान्वित किया जा सकता है, अनुभव के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि निदेशक आवश्यक हैं और क्षमता सिद्ध निदेशकों की बहुत मांग रहती है, साथ ही उच्च शिक्षित तंत्रज्ञों के मूल्यों को भी अब बहुत अधिक मान्यता दी जाती है। नये उद्योगों और नये कारखानों की जिम्मेवारी स्थानीय समुदाय अथवा रिपब्लिक पर डाली जाती है। परन्तु इसमें तथा उद्यम के अन्य क्षेत्रों में जहां पर वे काफी मात्रा में जोखिम उठाते है और दूरगामी योजना की पूर्ति में सावधानी एवं बुद्धिमानी की योग्यता रखते हैं, यूगोस्लाव लोग इस प्रकार के व्यक्तियों की खोज के लिये अब भी प्रयत्नशील हैं। वर्तमान समय में ऊचे वेतन की मांग और भावी

लागत की आवश्यकताओं में संघर्ष है। सरकार की प्रशुल्क नीति (Fiscal Policy) विकासोन्मुख होने के नाते कड़ी मानी जाती है। श्रमिक प्रतिनिधि बेचैनी का अनुभव कर रहे हैं कि श्रमिक नियंत्रण स्वयं अपने में पूंजी का निर्माण नहीं करता। श्रमिक समितियों ने स्वप्रेरित भाव से अल्पकालीन परिणाम निकालने की कोशिश की जो स्वयं में ही असफलता लाने वाली थी। इस हेतु कीमतों के बढ़ाने, चुंगी की दर में सुरक्षा की मांग, कारटल्स (Cartels बड़े-बड़े उद्योग एवं व्यापारिक निगमों के समूह) बनाने की मांग वाले कदम हैं। साधारण श्रमिक के लिये श्रमिक प्रबन्ध किसी अन्य प्रबन्ध से भिन्न रूप का नहीं रहा है। इस तथ्य की चिन्ता न कर कि प्रबन्ध उनका अपना है, वेतन मांगों के लिए बहुत बार वे हड़ताल पर जाते हैं। बड़े-बड़े कारखानों में श्रमिक अपने चुने गये प्रतिनिधियों से दूर चले गये हैं, का अनुभव करते हैं। बड़े पैमाने पर बेरोजगारी की भी समस्या है। बेरोजगारों को स्वप्रबन्ध किसी भी समाधान का विषय नहीं है। समानता के नाम पर श्रम समितियों की एक प्रवृत्ति है कि वह अकुशल और कुशल श्रमिकों के वेतनों में बहुत थोड़े अन्तर की अनुमति देते हैं, परिणामस्वरूप कुशल श्रमिक देश छोड़ रहे हैं। यूगोस्लाव इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। वर्ष १९६८ की आर्थिक नीति सम्बन्धी घोषणा अधिक उत्पादन और राष्ट्रीय आय के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक प्रमुख घोषणा है। फेडरेशन ने अर्थ व्यवस्था को ठीक करने के लिए अपने नियंत्रण से बहुत बड़ी मात्रा में धनराशि दी है। इसने राष्ट्रीय बैंकों से अपनी साख के आधार पर धन निकालने के हक को छोड़ दिया है। व्यक्तिगत आय में फेडरल बजट के योगदान को कम कर दिया गया है। अंकेक्षण (auciting) हेतु दिये जाने वाले वर्तन (कमीशन) में भी कमी कर दी गयी है और वे सभी आय जो कि विदेशी स्रोतों से आती है, को समाप्त कर दिया गया है। एक बड़ा परिवर्तन यह भी किया गया है कि आय वितरण सम्बन्धी सभी समस्याओं को सार्वजनिक कर दिया गया है, ताकि महत्वपूर्ण समस्याओं और कमजोरियों के ऊपर प्रकाश डाला जा सके। उपयुक्त नियमों के अपनाने के लिये एक बहुत महत्व का विषय बनाया गया है। समाचार पत्रादि वितरण के इन नये सिद्धान्तों को पाठकों की जानकारी के लिये विस्तृत रूप से लिखते हैं। ये सफल कारखानों के उदाहरणों का उल्लेख कर जनता का ध्यान आकर्षित करते हैं तथा जिन कारखानों में काम पूरा नहीं होता और निर्देशों का ठीक

पालन नहीं होता, उसकी ये आलोचना करते हैं। निर्णय सम्बन्धी पद्धति पर समाचार पत्र एक प्रगतिशील भूमिका अदा कर रहे हैं। आर्थिक इकाइयों को समूह ने भी सामूहिक समितियों अथवा आयोगों जो कि उनके भीतरी विवादों का निपटारा करेंगी, स्थापना करना शुरू कर दिया है। परियोजना स्तर पर व्यक्तिगत विवादों को हल करने हेतु एक विशेष पद्धति का निर्माण हो रहा है। असन्तुष्ट श्रमिक अपने सहकारी श्रमिक से पूछता है कि वह उसकी व्यक्तिगत समस्याओं पर क्या विचार रखता है? यदि उसे सकारात्मक प्रतिवचन मिलता है तो वह अपने सहकारी की सहायता लेने की कोशिश करता है। यदि यह सहायता उपयुक्त व सुदृढ़ है तो वह अपने पक्ष को आग्रह पूर्वक रखता है और यदि ऐसा नहीं है तो वह इस विषय को छोड़ने का निर्णय करता है। अधिक खपत करनी चाहिये या अधिक पूंजी लगानी चाहिये, इन दोनों के बीच का मनोवैज्ञानिक और सामाजिक संघर्ष एक व्यापक रूप धारण कर रहा है। पूंजी को अधिक लगाने हेतु जो अप्रत्यक्ष स्वरूप खड़ा हुआ है, उससे श्रमिक असन्तुष्ट है। उसको एकमात्र ढांढस यह है कि सभी एक ही नाव में सवार हैं। लगाई गई पूंजी से किस प्रकार तेजी से समृद्धि का रूप दिया जाय बजाय इसके कि वह बोझ का रूप धारण करे, यूगोस्लाव श्रमिक के लिये विवश करने वाली एक समस्या बनी हुई है।

## इजराइल

इजराइल के विकास की कहानी, उस विकास की रूप रेखा, उसकी कार्य विधियों की परियोजित गति इजराइल की चारित्रिक भूमिका और उनके आपसी सम्बन्ध और आपसी कार्यकलाप बड़े ही अनोखे प्रकार के हैं और उपर्युक्त भाव को हर पहलू में प्रगट करते हैं। इस चित्रण की रूप रेखा राष्ट्रभक्ति रही है और इसकी जो शिक्षा रही है, वह राष्ट्रीय दृष्टिकोण और भावनाओं की संदेश थी। इसमें कोई शक नहीं, जिस छोटे से काल में यह वर्तमान प्रगति हुयी है, बहुत ही अल्प है तथा इसको कोई स्थाई नियम का रूप नहीं दिया जा सकता, परन्तु जो इस पक्ष से भिन्न है, कुछ मात्रा में दूसरे वाद (इज्म) के बारे में भी यह कहा जा सकता है। देश बहुत छोटा है, परन्तु बाधायें बहुत अधिक हैं। विश्व के यहूदियों ने यह ऐतिहासिक निर्णय लिया कि वह अपनी मातृभूमि को जिसे सदियों से दुर्लक्ष्य किया गया है, की कमी को पूरा करेंगे। उन्हें हर एक चीज शुरूआत से शुरू करनी पड़ी।

शरणार्थी अपने पहने हुए कपड़े को छोड़कर अपने साथ बहुत काम ले आ पाये। 'डेडसी' (Dead Sea) में और उसके चारों तरफ भी खनिज पदार्थों की बहुत कमी थी तथा प्राकृतिक बहुतायत केवल मात्र धूप ही थी। आर्थिक उत्थान के लिये आवश्यक वस्तुओं में से बहुत की कमी थी, परन्तु जन समुदाय की मानसिक क्षमता और शारीरिक योग्यता बहुत प्रभावशाली थी। इसमें उन सभी कमियों को पूरा किया और हर कार्य के निर्धारण करने की प्रमुख आधार सबल राष्ट्रभक्ति की भावना थी। साथ ही यह भी सत्य है कि सहायता के लिए बहुत बड़ी धनराशि विश्व के यहूदियों से, मित्र देशों से और जर्मन में हुई क्षतिपूर्ति के एवज से आयी। साथ ही जो पूंजी विदेश से आयी उसका बहुत बड़ा भाग एक तरफ हस्तान्तरण के नियम से विश्व के दूसरे भागों में काम करने वाले यहूदियों द्वारा मातृभूमि के प्रति समर्पण हेतु धनराशि प्राप्त हुई। वस्तुतः एक समय था, जब बहुत से अर्थशास्त्री इजराइल के आर्थिक विकास को विदेश से आने वाली पूंजी के अर्थ में ही व्योरा देते थे। तथ्यों के व्यापक और गहराई से अध्ययन करने के पश्चात अब बहुत कम अर्थशास्त्री हैं, जो इस तर्क को मानते हैं। परम्परागत आर्थिक विचार के अन्तर्गत यह माना जाता है कि रोजगार, पूंजी और सभी उत्पादों में एक निश्चित सम्बन्ध है। कहने का अर्थ यह है कि थोड़ी पूंजी लगाने के अनुपात में यदि अधिक श्रम शक्ति का विकास किया तो इसका आर्थिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है किन्तु इजराइल के वास्तविक अनुभव ने इस विवेचन को अमान्य कर दिया है। उसने दिखा दिया है कि श्रम शक्ति की बढ़ोत्तरी के लिये प्रति व्यक्ति उत्पाद में स्थिरता अथवा बढ़ोत्तरी का कोई सीधा अनुपात नहीं है। इजराइल का अनुभव है कि आर्थिक विकास की अनिवार्य परिस्थितियाँ जन समूह की बहुत बड़ी मात्रा में काम करने की तैयारी, अधिक घंटे काम करना और अधिक कुशलता से करना तथा सहयोग के प्रति स्वेच्छा प्रगट करना, जिसके परिणामस्वरूप विकास हेतु उचित सामाजिक, राजनीतिक और संस्थागत वातावरण पैदा होता है। इजराइल ने दर्शाया है कि जो कुछ भी आर्थिक प्रगति उसने प्राप्त की है, उसे किसी भी प्रकार उसके जन समुदाय, उसकी संस्थाओं, विशेष तथा सरकार, नियोजक एवं ट्रेड यूनियन संगठन के दृष्टिकोण से नहीं नापा जा सकता। वर्तमान समय में दूसरी ओर बहुत से कम विकसित स्थानों का यह अनुभव है कि पूंजी और श्रम उत्पादन को संगठित करने वाले तथ्यों को न जानने के कारण नष्ट हो जाते हैं। यह

मुख्यतः उत्पादन के प्रति उस देश, कुछ संस्थाओं और श्रम शक्ति तथा उस देश की संस्थाओं व जन समुदाय, जो कि उपलब्ध साधनों का उपयोग कर सकती हैं, के लिये सहायक प्रेरणादायक भूमिका के अनुपस्थिति के कारण घटित होती है। इजराइल के प्रयोग के पश्चात आर्थिक विकास के बहुत से छात्र अब यह विचार रखने लग गये हैं कि किसी भी प्रकार से आर्थिक विकास उस देश की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक ढांचे और उसकी जन शक्ति के गुण से कम प्रभावित नहीं होती, जितनी कि वह आर्थिक सम्बन्धों के आधार पर होती है। इंजराइल की संस्थागत सम्बन्ध और पद्धति जिसके आधार पर नीतियां, कार्यविधि और कार्यक्रम अपनाये गए हैं की प्रकृति की समझ के आधार पर ही उसके विकास में प्रकृति अथवा अड़चन को समझा जा सकता हैं। और सामाजिक, आर्थिक नीतियों के बनाने के लिये कुछ निष्कर्ष निकालने में लाभान्वित हो सकते हैं। यह स्पष्ट कर देना उपयुक्त है कि इन सब पहलुओं में बहुत कुछ करना शेष है और उन सब उद्यम एवं श्रम समस्यायें और मांगें जो कि दूसरी अर्थव्यवस्था को भी खराब करती हैं, इजराइल में अनुपस्थित नहीं हैं। इसके बाद भी यह निष्कर्ष निकलता है कि श्रम शक्ति और आर्थिक संगठनों के दृष्टिकोण और व्यवहार उसके विकास हेतु योजनाओं पर अनिवार्य रूप से एक सकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

इजराइल की प्रगति के कुछ विशेष अनोखे कारण थे, जिनसे बहुत बहुत से सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा हो सके। जिन राजनीति स्थितियों में इजराइल ने अपने आपको पाया, उसमें ही एक सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा करने की दिशा ग्रहण की शुरू काल बहुत कठिन था, इसलिये कुछ हितों को छोड़ने और निर्माण करने तथा सामूहिक भावनाओं के विकास करने में दिशा देने में काफी मात्रा में प्राकृतिक ही था। एक गहरा दर्शन ही इसका विश्लेषण कर सकता है कि इन दृष्टिकोणों को कैसे स्थाई बनाया जाय। दूसरा पक्ष भी बहुत ही असाधारण सुरक्षा के बोझ का था। इस हेतु आयात की हुई उपभोक्ता सामग्री के खर्चे को कम से कम करना था और स्थानीय उत्पादन पर ही आत्म निर्भर होना था। तीसरा पक्ष यह था कि सभी लोगों को एक राष्ट्र में सम्मिलित करने का ऐतिहासिक निर्णय व अनुभव था किन्तु सामाजिक ढांचे की परम्परा पूर्ण रूप से आलोप थी इस समस्यों को समझने के बाद आर्थिक उत्थान के लिये अनिवार्य रूप से

सामाजिक निर्णयों पर पहुँचना सरल हो गया। दूसरी ओर जन संख्या में कई समूह थे, एक समूह आर्थिक विशेषज्ञों का और दूसरा पिछड़े समूह का इस पिछड़े समूह की यह विशेष भूमिका थी। कि वह आर्थिक विशेषता हेतु अपने आपको ढालने में योग्य था बहुत से ऐसे शिक्षक थे, जो भिन्न-भिन्न मुहल्लों और क्षेत्रों में जाकर स्थानीय समस्याओं के अध्ययन, बाहर से आये हुए नये लोगों को पढ़ाने और स्थानीय नेतृत्व का बहुत व्यापक आधार पर विकास करने को तैयार थे। इस स्थानीय नेतृत्व के आधार पर नये सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन के काल को कम किया जा सकता था। अन्ततः उच्च स्तरीय राष्ट्रीय नेतृत्व का एक अनोखा स्वरूप यह था कि वे सभी के सभी अत्युत्तम व्यक्तित्व वाले ट्रेड यूनियन क्षेत्र से आये थे। इन लोगों ने ट्रेड यूनियन्स के साथ नजदीकी के सम्बन्ध बनाये रखा और सामाजिक संगठन तथा सामूहिक कार्यक्रमों में अपने अनुभवों के आधार पर यह देखा कि श्रमिकों के राष्ट्रीय आन्दोलन का विकास श्रम के आधार पर था और उनका आग्रह सकारात्मक था न कि नकारात्मक। इसका परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक यूनियनिज्म की बनावट में एक सकारात्मक पक्ष विद्यमान था। यह सरकार समर्थक और आर्थिक विकास समर्थक था, परन्तु सरकार के आधीन नहीं था। यह स्थिति ट्रेड यूनियन के प्रजातान्त्रिक प्रवृत्ति के सबल होने, सदस्यों के बहुत अधिक कोलाहल मचाने और आधार भूत जीवित दबाव होने के कारण सम्भव हो सकी। इस भूमिका में इजराइल अपने जीवन के लिए सामाजिक आर्थिक संगठन, अपने साधनों के इकट्ठा करने और दिशा देने की योजना, योजना के लिये व्यूह रचना और पद्धति, जिस कारण उचित निर्णयों पर पहुंचने और उसके कार्यान्वित करने में सफलता मिल सकती थी, विकास कर सका।

एक पहलू में यह कहा जा सकता है कि वास्तव में इजराइल की कोई बनी बनाई योजना नहीं थी। कहने का अर्थ यह है कि यदि योजना का अर्थ होता है कि कोई एक निश्चित कार्यक्रम बनाना और जिसको सम्पूर्ण रूप से कार्यान्वित करना सरकार के ही हाथ में रहता है, वह नहीं थी। इजरायल की राष्ट्रीय योजना एक उचित सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों के कार्यक्रमों से बनी है, जिन्हें एक निश्चित काल में पूर्ण करने का अनुमान किया गया है और साथ ही उन ढंगों और पद्धतियों को, जिनके आधार पर एक सक्रिय सरकार इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रभाव डालने का अनुमान लगाए है।

इजरायल की योजना के लिये जनता का प्रभावी समर्थन पक्का करने हेतु बहुत से हित समूहों को योजना की तैयारी में परामर्श देने के लिये परामर्श-दात्री समिति और आयोग में शामिल किया गया है और इन्हीं समितियों को उद्योग स्तर पर, क्षेत्रीय स्तर पर और कारखाने स्तर पर योजना को कार्यान्वित करने के लिये सम्मिलित किया गया है। योजना को क्रमबद्ध ढंग से बनाया जाता है और यह बहुत से व्यक्तियों, समितियों, आयोगों, संगठनों संस्थाओं और मन्त्रालयों की उपज है। भिन्न-भिन्न समितियों एवं संगठनों को आर्थिक योजना अधिकृत समिति द्वारा एकीकरण (co-ordinate) किया जाता है। यह समिति प्रधान मन्त्री के कार्यालय का भाग होती है। अनौपचारिक एवं प्रारम्भिक वार्तालाप सरकारी अधिकारियों और सामाजिक संस्थाओं के प्रमुख व्यक्तियों और भिन्न-भिन्न हित समूहों जैसा कि लेबर फेडरेशन (Histadrut), नियोजकों की संस्थाओं, किसानों के समूह आदि हैं, के बीच होती है। परिणामस्वरूप आर्थिक योजना अधिकृत समिति योजना के ढांचे की आम रूप रेखा तैयार करती है, जिसमें वर्तमान आर्थिक सूचनाओं सम्भावित दिशाओं और लक्ष्यों, जिन्हें भावी काल के लिए निर्धारित करना है, को तैयार किया जाता है। तदनुसार यह निश्चित होता है कि लक्ष्यों की पूर्ति हेतु क्या कदम उठाने चाहिए, इसके लिए कौन जिम्मेवार होगा, लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु योजना कैसे बनाई जायगी और उसे कैसे कार्यान्वित किया जायगा, साथ ही भिन्न-भिन्न क्रम के लिये किस प्रकार की समय सारणी अपनानी होगी। इसके पश्चात इस योजना की रूपरेखा योजना हेतु मन्त्रिमण्डल को प्रस्तुत की जाती है, जो सम्बन्धित मन्त्रिमण्डल के ६ सदस्य और बैंक आफ इजरायल के गवर्नर को मिलाकर बनी होती है। मन्त्रिमण्डल समिति, आर्थिक विषयक समिति से परामर्श लेती है। यह समिति सरकार द्वारा नियुक्त होती है, जो सरकार के ५ सदस्यों, श्रम महासंघों के ३ सदस्यों, प्रबन्धकों के ३ सदस्यों तथा ५ सामाजिक जनों को मिलाकर बनती है। विस्तृत परामर्श और विवेचन एवं वार्तालाप के पश्चात मन्त्रिमण्डल समिति योजना के ढाँचें पर अपना दृष्टिकोण निर्धारित करती है और सभी मंत्रालयों को यह निर्देश देती है कि योजना सम्बन्धी अपने हिस्से का अवलोकन व उसका विकास करें। प्रत्येक मन्त्रालय अपने से सम्बन्धित राष्ट्रीय योजना को भिन्न अन्तर मन्त्रालय और सार्वजनिक समितियों के परामर्श से तैयार करती है। ये समितियां नीचे लिखे सदस्यों से बनी होती हैं–(१) नीति सम्बन्धी

योजना आयोग–जैसे जनसंख्या के फैलाव सम्बन्धी आयोग, मानव शक्ति और प्राविधिक प्रशिक्षण आयोग और कुशलता एवं उत्पादकता आयोग (२) शाखा स्तरीय आर्थिक योजना समितियां। व्यावहारिक रूप से इन सभी आयोगों और समितियों में सभी प्रकार के हित समूह प्रतिनिधि रहते हैं और इनमें ट्रेड यूनियन के प्रतिनिधि तो रहते ही हैं। ध्यान रहे कि सभी संगठनों के प्रतिनिधियों की नियुक्तियां प्रतिनिधि के नाते नहीं होती, वरन् एक व्यक्ति के नाते से होती है। यह इसलिये किया जाता है कि वे भिन्न-भिन्न हित समूह की ओर से दबाव डालने हेतु निर्देश लेकर न आयें। सभी मन्त्रालय अपनी योजनाओं के मशविदे की रूप रेखा भिन्न-भिन्न हित समूहों के पास उनके टिप्पणियों और सुझावों के लिये प्रस्तुत करती हैं तत्पश्चात अपनी योजना को आर्थिक योजना समिति के लिए देती हैं। इस प्रकार मशविदे बनते हैं और पुनः बनाये जाते हैं तथा परिवर्तन भी किए जाते हैं। इतना होने के बाद मंत्रिमण्डल समिति इसे अन्तिम रूप देकर सरकार को अनुमोदन करने हेतु राष्ट्रीय विकास योजना के रूप में प्रस्तुत करती है और इसे बजट बिल में शामिल करती है। योजना के भिन्न भिन्न क्रमों पर वस्तुतः सैकड़ों लोगों से परामर्श लिया जाता है और भिन्न भिन्न हित समूहों द्वारा विचार प्रगट कराया जाता है। औपचारिक अथवा अनौपचारिक दृष्टि से योजना को अन्तिम रूप देने हेतु भिन्न भिन्न समूहों का प्रभाव, तर्क और आंकड़े प्रभावी होते हैं। समाचार पत्रों में, जो कि दलगत तथा स्वतंत्र विचार प्रगट करने वाले हैं, योजना के भिन्न भिन्न विषयों पर तर्क प्रस्तुत करते हैं। समिति साधनों की अर्थ व्यवस्था के लिये एक प्रजातांत्रिक योजना में स्वभावतः भिन्न भिन्न गम्भीर विरोधी हितों को समिल्लित करना पड़ता है। ये विरोधी हित होते हैं–नियोजक बनाम श्रमिक, बचत बनाम खपत, पूर्ण रोजगार और उच्चस्तरीय वेतन भोगी बनाम मूल्य स्थिरता, अल्पकालीन उद्देश्य बनाम वृहदकालीन उद्देश्य। कोई भी एक प्रजातांत्रिक योजना जब तक बनाई नहीं जाती अथवा क्रियान्वित नहीं की जाती, तब तक जनता और उसके प्रवक्ताओं को इसके बारे में जानकारी नहीं दी जाती। इजरायल के प्रधानमन्त्री श्री लेवी एसकाल ने समस्या को इन शब्दों में कहा है, "केवल मात्र वही लोग जो दिन प्रतिदिन के आधार पर इन समस्याओं के हल में लगे होते हैं, ही जान पाते हैं कि किस प्रकार भिन्न भिन्न इकाइयों को इकट्ठा करके एक चेन बनायी जाती है, क्योंकि जानकारियों का जो एक सीमित अंश

जनता तक पहुंचती है और इसके ही साथ उन [illegible] प्रकाशित नहीं किया जाता के पीछे आर्थिक नीति रहती [illegible] को दिशा प्रदान करती है। ..... और, यह विशेष [illegible] आर्थिक सम्बन्धों के आधार पर रहती है, जो सरकार को आर्थिक [illegible] के क्रियान्वित करने में और दूरगामी राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा करने के अन्तर्गत सीमाबद्ध होते हैं।" इस हेतु योजना की व्यूह रचना के लिए आवश्यक रहता है कि सरकार के मन्त्री और दूसरे सरकारी अधिकारी विशेष हित समूह संगठनों से सम्पर्क बनाये रखें और इनके द्वारा जनता की आर्थिक परिस्थितियों, उसमें उत्पन्न होने वाली समस्याओं, सरकार द्वारा किये गये और परिणामस्वरूप सरकार की सामाजिक व आर्थिक कार्यक्रमों के लिए प्रतिवचन और समर्थन के बारे में जनता को जानकारी दें। राष्ट्र के सामने पैदा हुयी अर्थ समस्याओं की पेचदिगियों को जनता समझ सके, इसके लिये अक्सर अनिवार्य रूप से उन्हें जनता के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए बोधगम्य रूप दिया जाता है और इस रूप को राष्ट्र के अनुभवों, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किया जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सरकार और ट्रेड यूनियन के सूचना विभागों को अतिरिक्त काम करना पड़ता है, क्योंकि यह कोई सरल काम नहीं है। जनता इन्हें समझ भी ले तो भी यह सन्देह बना रहता है कि वह सर्व हितों से टकराने वाले विशेष-गत हितों के बारे में चिन्तित हो सकती है, वह साधारण हितों को किस प्रकार से परिभाषित कर सकती है अथवा उन माध्यमों से जो इस हेतु आवश्यक है, को भी भिन्न रूप से परिभाषित कर सकती है। सहमति अधिकांशतः नहीं है, परन्तु उन नीतियों को अनुमोदित करना और उद्देश्यों के बारे में [illegible] रहने के विचारों को व्यक्त कराना आवश्यक रहता है। उस सीमा [illegible] विषयों से सम्बन्धित सूझ बूझ को पैदा करना भी अनिवार्य रहता है, किस हद तक सरकार इन्हें अपनी योजना को क्रियान्वित करने में [illegible] करती है। ताकि वह हित समूह की विशेष आवश्यकताओं को [illegible] कर सके, साथ ही उस हद तक हित समूह को सरकार के प्रयत्नों में [illegible] कराया जा सके, ताकि वह दूरगामी और सम्पूर्ण उद्देश्यों के साथ [illegible] पैदा न कर सके। यह करीब-करीब संतुलन व्यवस्था को एक पूर्वकल्पना [illegible] है और जो अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों के लिए उत्तम आधार है। [illegible] आश्चर्य नहीं कि सकारात्मक दृष्टिकोणों का तभी आधारभूत स्तर [illegible] सम्भव होगा।

इजराइली योजना पद्धति [illegible] और [illegible] व्यावहारिक स्वरूप पर आधारित है, क्योंकि जनता की [illegible] केवल मात्र भावी होने वाले लाभ दिखावे पर नहीं किया जा सकता। [illegible] के कार्यक्रम न केवल देश के दूरगामी आर्थिक उद्देश्यों व साधनों और [illegible] सम्बन्धित अंकुशों पर आधारित है, बल्कि जनता की वर्तमान आवश्यकता व इच्छाओं पर भी आधारित है, साथ ही यह भी ध्यान में रखा गया है कि दूरगामी उद्देश्यों को उसी हद तक प्राप्त किया जा सकता है, जिसके लिए जनता लम्बे काल के लिए आवश्यक त्याग हेतु तैयार की जा सकती है। [illegible] है। विकास योजना के पीछे यदि सभी हित समूहों का समर्थन सक्रिय रूप से प्राप्त किया जाना है तो यह केवल मात्र भावी काल की सुनहरी हुई [illegible] कारी स्थिति के वादे के आधार पर नहीं की जा सकती। कम से कम मात्रा में लाभ वर्तमान भाग लेने वालों को तुरन्त प्राप्त होने चाहिये। [illegible] की आवश्यकतायें सर्वश्रेष्ठ हैं–के इस विचार पर आधारित सामाजिक [illegible] ही अनिवार्य रूप से एक प्रकार की सामाजिक गतिविधि को पैदा कर रहा है। इजरायल की श्रम महासंघ 'हिस्ताद्रुत' और इसके सदस्य, जो कि राष्ट्र की आय व वेतन भोगियों की संख्या में से ९२ प्रतिशत हैं, इस नीति को [illegible] स्वीकार करेंगे, जिसके अन्तर्गत वे बढ़ती हुई आर्थिक गतिविधियों में भाग ले रहे हों, उस समय जबकि जनसंख्या की एक बहुत छोटी सी अनुपात इन [illegible] धियों से लाभान्वित होती हो। इजरायल में यह सर्वविदित है कि सरकार केवल मतदाताओं का ही नेतृत्व नहीं करती, वरन् उनकी इच्छाओं के अनुसार भी चलती है। इसलिये समय-समय पर जो कुछ भी इजरायल की [illegible] विकास योजनाओं के लक्ष्य होते हैं। उसने हमेशा अपने सम्मुख ३ उद्देश्य [illegible] हैं–(१) जन समुदाय की बढ़ती हुई कल्याणकारी स्थिति (२) रोजगार की उच्चतम स्थिति और (३) आर्थिक स्वतन्त्रता। इन तीनों में से [illegible] कल्याणकारी स्थिति हमेशा मुख्य उद्देश्य के रूप में रही है। इस [illegible] आर्थिक उत्थान में इस नीति के अपनाये जाने के कारण [illegible] हैं। वर्ष १९६२ में जबकि जनसंख्या ४.४ प्रतिशत बढ़ी, बेरोजगारी [illegible] घटकर ३.८ प्रतिशत रह गयी और प्रति व्यक्ति उत्पादन [illegible] में ४.६ प्रतिशत बढ़ा। वर्ष १९६३ के आंकड़े ये हैं–जनसंख्या [illegible] प्रतिशत, बेरोजगारी की कमी ३.८ से ३.६ प्रतिशत और प्रति व्यक्ति [illegible] बढ़ोत्तरी ६.२ ·/. । इस प्रकार इजराइल की अर्थव्यवस्था की [illegible]

स्वरूप बिगड़ रहा है, [illegible] राष्ट्रीय [illegible]
१०/. या उससे [illegible] हुई थी, में [illegible]
देते क्रमत भी यही देखी है [illegible] है, जैसा कि [illegible]
आंकड़ों में ६ प्रतिशत वृद्धि का अनुमान किया जा [illegible] है।
वर्ष १९६४ तक जबकि इस राष्ट्र की आयु केवल १९ [illegible]
का जीवन स्तर प्राप्त किया है—जो दक्षिण योरुप के [illegible]
है। इसका निर्यात भी बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। वे यह आशा
उनके द्वारा बनाये उत्पाद, जिनका डिजाइन उन्होंने स्वयं किया है, [illegible]
उच्चतम गुणशाली है, शीघ्र ही उसके लिये योरुप और विश्व के [illegible] में
व्यापक बाजार का स्थान प्राप्त कर लेंगे। उन्होंने अब तक पूरे [illegible]
गारी को प्राप्त कर लिया है और कुछ क्षेत्रों में तो अब की कमी [illegible] में
आती है। योजना को क्रियान्वित करने के आग्रह के [illegible] अब [illegible]
वाला भौतिकीय विस्तार का स्थान, द्वितीय क्रम में बदल गया है। [illegible]
क्रम में बदल गया है। इस द्वितीय क्रम में प्राथमिकता प्रधान [illegible]
को अपनाया, परिस्थितियों के सुधार का आग्रह और उत्पादन [illegible]
में सुधार करना है।

इन सभी का आधारभूत प्रेरणास्रोत राष्ट्रभक्ति की सुदृढ़ [illegible]। सम्पूर्ण जन समूह राष्ट्रभक्ति और सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति [illegible] से प्रभावित है। इसका एक प्रगटीकरण यूनियन प्रबन्धक सम्बन्धों की [illegible] है, जो इस देश में अपने अस्तित्व के साथ-साथ पैदा हुई, सदा [illegible] और प्रबन्ध के बीच में वस्तुतः मतभेद, झगड़े और संघर्ष भी हैं। [illegible] दो पक्षों की व्यक्तिगत और सामूहिक अड़चनें व समस्यायें हैं, जो [illegible] भी हड़ताल, धीरे चलो, तालाबन्दी के भी रूप धारण करती हैं, [illegible] ऐसा नहीं होता कि यह संघर्ष हिंसात्मक स्वरूप धारण कर ले। [illegible] द्वारा कभी भी ये भावनायें प्रगट नहीं होती कि [illegible] तबाह करने पर तुला हुआ है अथवा नियोजक यह कभी [illegible] नहीं करता कि यूनियन तबाही करने के रास्ते पर है। [illegible] छोटे काल तक भी चलती है, अक्सर इन झगड़ों का [illegible] हालत में ही परिणित होता है। इसके बाद भी श्रमिकों और [illegible] यह विशेष बात नहीं कि वे अक्सर परियोजनाओं, [illegible]

राजों को सामूहिक रूप से है अपनाया। वर्ष १९६२ में [illegible] बजटरी भाषण में ही सरकार ने श्रमिकों व प्रबन्धकों को यह सुझाव [illegible] कि हर कारखाने में सहयोग समितियां स्थापित की जायें जो कि [illegible] को सुधारने और उत्पादन को बढ़ाने से सम्बन्धित हों। ये प्रस्ताव [illegible] सम्बन्धित पक्षों के सम्मुख विचाराधीन रहा और कुछ ही दिन बाद हर [illegible] प्लान्ट में इनकी स्थापना हुई और एक गतिशील आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस संबंध में एक राष्ट्रीय समझौता भी हुआ, जिसकी बहुत सी धाराओं में से कुछ के अनुसार हर कारखाने में प्रस्थापित वर्कस्टडी (Work Study) के आधार पर उत्पादन के लिए रूपरेखा और निर्धारित उत्पादन के १ प्रतिशत से अधिक विशेष वेतन (Premium pay) के रूप में अर्थात् इसी मात्रा में अतिरिक्त बढ़ोत्तरी शामिल किया गया। सरकार ने भी अपनी ओर से सामने आकर घोषणा की कि प्रीमियम पेपर अनुपात में कम दरों पर आयकर लगाया जायगा। कम दरों पर आयकर देने वाले प्रीमियम पे के लिये राष्ट्रीय उत्पादक स्थात को यह प्रमाणित करना पड़ेगा कि निर्धारित रूपरेखा एक सही रूपरेखा है और उचित वर्कस्टडी के आधार पर स्थापित की गयी है। शुरू में कुछ वामपंथी राजनीतिक दलों ने इन रूप रेखाओं और उत्पादकता सम्बन्धी पद्धतियों की स्थापना का विरोध किया, क्योंकि उन्होंने यह दावा किया कि नियोजक लोग श्रमिकों के अधिक गति से काम करने और पसीना बहाने का दुरुपयोग करेंगे। परन्तु राष्ट्रभक्ति का वातावरण इतना सबल था कि श्रमिकों ने इसकी रूपरेखा और प्रीमियम पे वाली पद्धति की स्थापना के लिए बराबर आन्दोलन शुरू कर दिया। आज ऐसा कोई भी औद्योगिक संस्थान नहीं है, जो इस पद्धति के अंतर्गत काम न करता हो। बढ़ी हुयी उत्पादकता से सीधे लाभ के अनुभव तथा समाजवाद की इस अनुभूति को कि इस पद्धति के प्रशासन में अपनी आवाज को रखने के लिए अधिकार देती है, ने इस पद्धति को न केवल चलते रखा है बल्कि उसको छोड़ने में बड़ी कठिनाई होगी। यह माना जा सकता है कि जब भी काम की पद्धति में बदल लाया जाता है एक नई वर्कस्टडी की जाती है और परिणामस्वरूप एक नई रूपरेखा स्थापित होती है, साथ ही श्रमिक यूनियन और उत्पादकता संस्था में समझौता है, जिसके अन्तर्गत इस पद्धति विकास में श्रमिक प्रतिनिधि का समावेश है। इजरायल में न केवल सरकार अथवा नियोजक ही उत्पादक श्रमिक को पुरस्कार देते हैं, ट्रेड यूनियनस भी कृषि, मछलियन, [illegible] आदि सभी आर्थिक शाखाओं में 'श्रमिक हीरोज' को पुरस्कार प्रदान करती

हैं। इन सभी पुरस्कारों को श्रम मन्त्री द्वारा [illegible] हो धूमधाम से राष्ट्रीय स्तर पर [illegible] है। राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था की [illegible] जो वर्ग हितों को बढ़ावा देने के कारण पैदा होती है, को एक [illegible] का विषय बनाया जाता है। उसे न केवल समाचार पत्रों और दूसरे [illegible] सम्बन्धी सार्वजनिक माध्यमों के द्वारा प्रकाशित किया जाता है, [illegible] ट्रेड यूनियन बैठकों, कारखानों की नुक्कड़ सभाओं में भी चर्चा का विषय बना-कर प्रचारित किया जाता है। परिणामस्वरूप वेतन वृद्धि को [illegible] उत्पाद की वृद्धि के वार्षिक दर से जोड़ दिया जाता है। [illegible] और आय संस्था की स्थापना की गई, जो कि सार्वजनिक समिति के [illegible] होती है। इस समिति में २७ सदस्य होते हैं—९ सरकार से, ९ ट्रेड [illegible] से और ९ नियोजकों से। संस्थान में ७ पेशेवर प्रबन्धकों और एक-एक [illegible] निधि निम्नांकित संस्थानों में से होते हैं—सेन्ट्रल ब्यूरो आफ स्टेटस्टिक्स, बैंक आफ इजराइल, उत्पादकता संस्थान और आर्थिक योजना अधिकृत [illegible] से। पेशेवर प्रबन्ध, समिति को स्टेटस्टिक्स और आर्थिक आंकड़े प्रस्तुत करता है। समिति इन आंकड़ों के आधार पर स्वतन्त्र रूप से वार्तालाप करके [illegible] वेतन नीति का विकास करती है। इस आधार पर सर्वप्रथम राष्ट्रीय [illegible] वर्ष १९६४ में किया गया। इस प्रकार राष्ट्रीय उत्थान योजना के [illegible] को निश्चित करने में न केवल हित समूह को निर्धारित किया जाता है [illegible] कार्यान्वित कराने में भी इन्हें सीधे रूप से शामिल किया जाता है। [illegible] और मानव शक्ति के विकास के क्षेत्र में सार्वजनिक और सरकारी [illegible] पर न केवल ट्रेड यूनियन और नियोजकों के प्रतिनिधि होते हैं, बल्कि [illegible] पक्ष इस दृष्टि से अपने स्कूल भी स्थापित किये हैं, उदाहरणार्थ—[illegible] द्वारा व्यावसायिक विद्यालयों की एक शृंखला चलाया जाता है। [illegible] यूनियन ने न केवल प्रशिक्षण और [illegible] की कुशलता को सुधारने [illegible] खोले हैं, बल्कि प्रबन्धकीय स्कूल भी खोला है, ताकि उसके [illegible] समझदार वर्ग व प्रबन्धकीय स्थानों के लिये तैयार हो सकें। ट्रेड [illegible] यह कहना है कि प्रबन्ध श्रम उत्पादकता को प्रभावित करने के लिये [illegible] भूमिका निभाते हैं और इस हेतु वे उन गतिविधियों को सुगमीकृत [illegible] प्रबन्ध विशुद्धता को सुधारने में सहायक हों। प्रबन्धकों के प्रतिनिधियों के साथ-साथ प्रमुख सार्वजनिक समितियों पर श्रमिकों के प्रतिनिधि भी होते हैं। ये समितियां निम्नलिखित हैं—(१) विकास कार्य हेतु बजट के लिये [illegible]

वाली समिति, जो [illegible] सम्बन्धित [illegible]
उधार देने में [illegible]
हेतु सहायक समिति, [illegible]
जो आवास सम्बन्धी [illegible]

यह सिद्धान्त जिस पर [illegible] ने अपनी [illegible] है, उसके अनुसार आर्थिक योजना को बनाने और [illegible] समूह को शामिल किया है, वह प्रगति करने वाले देशों के लिये [illegible] अध्ययन का विषय है। इन सिद्धान्तों की सफलता ने योजना के [illegible] आर्थिक सिद्धान्तों को झुठला दिया है। इसका प्रमुख कारण योजना [illegible] लिक पहलू को सम्मिलित करना है और जिसने सम्माजिक, आर्थिक [illegible] लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है और एक प्रमुख धुरे के [illegible] किया है। इजराइली यह विश्वास करते हैं कि विकास योजना [illegible] काफी मात्रा में जन समूह के अनुशासन पर तथा उनके उस पद्धति [illegible] हार करने की तैयारी में हैं, जो योजना के उद्देश्यों के विरोध में [illegible] करतीं, वरन् उस पर निर्भर करती हैं। योजना के उद्देश्यों की प्राप्ति [illegible] निम्नलिखित बातें अनिवार्य हैं—आर्थिक ढांचों, उत्पादन की पद्धतियों व [illegible] रण की पद्धतियों को आवश्यकतानुसार बदलना। साथ ही समूह और [illegible] के दृष्टिकोण, बचत, खपत, आय आदि के क्षेत्रों के व्यवहार में भी [illegible] कतानुसार बदल जरूरी होता है। प्रजातांत्रिक समाज में इस प्रकार के [illegible] परिवर्तन और आर्थिक अनुशासन भय पर आधारित नहीं हो सकते। [illegible] कहना कुछ हो मात्रा में सत्य है कि पद्धति की सफलता या असफलता [illegible] आन्तरिक प्रवृत्ति व प्रकृति पर निर्भर करती है। अधिक मात्रा में [illegible] है कि यह उस तथ्य पर निर्भर करती है, जिन पर उस समाज के [illegible] विश्वास करने के लिये चुनाव करते हैं। जब व्यक्ति किसी गतिविधि [illegible] लेता है, तब उसे उन उद्देश्यों की प्राप्ति की इच्छा जाग्रत करने [illegible] के बारे में मनवाने की कम आवश्यकता पड़ती है। ये [illegible] हैं, क्योंकि वे इसके अंग हैं। समकालीन समाज अधिकांशतः [illegible] समूह, जैसे—श्रमिकों की ट्रेड यूनियन, व्यवसाय [illegible] संस्थाओं व कृषक समुदाय आदि के अनुसार संगठित होते हैं। ये [illegible] खतरा भी पैदा कर सकते हैं, क्योंकि हर एक [illegible] तानी करता है और उस दिशा के विरोध में चलता है। [illegible] योजना के लिये अनिवार्य होता है। प्राथमिक रूप से [illegible]

...ीव विस्तारपूर्वक ... सम्मिलित होने है... के ... सामाजिक आर्थिक ... और सर्वसम्मति ... पर ... मत होने में अधिक सम्भावना ... हैं। परामर्श ... व्यक्ति के विकास को भी दिशा मिलती है, जो कि ... इससे भाग लेने वालों का सामाजिक स्तर और सम्मान ... है ... हेतु सकारात्मक दृष्टिकोण का जो विकास होता है, वो ... वाले दृष्टिकोण से एक अच्छा दृष्टिकोण है। यह न केवल राष्ट्रीय ... स्तर पर ठीक है, वरन् कारखाने स्तर पर भी ठीक है। परिय... (प्लान्ट स्तर) पर कुशलता, सुधार की पद्धतियां, ... कमी, उपकरण का रखरखाव और उत्पादकता को बढ़ाने ... हल में श्रमिकों के भाग लेने से प्रबन्ध के कार्य में सुगमता ... संगठन की गतिविधियों की जिम्मेवारी को श्रमिकों के ... बना रहती है। इसका एक कीमती उपयुत्पाद (By product) ... यह स्वाभाविक ढंग से उन व्यक्तियों को सामने लाता है, जो ... अपने कन्धों पर ले सकते हैं। और इस प्रकार ... कुशलता वाले लोगों का समुदाय सम्मुख आता है। ... वाली क्रिया को सम्भव बनाते हैं और संगठनात्मक ... नीति, इसे लाभकारी बनाती हैं। वे यह भी निश्चित ... इस भय से कि वह अपनी नौकरी खो देगा उससे आशा ... ठनात्मक ढांचा जो हित समूहों द्वारा सकारात्मक ... आधारित है, को पूर्ण रोजगार को प्राथमिकता देना है। ... अन्तर्गत जो समस्यायें खड़ी होती हैं, उस प्रक्रिया में ... नहीं हैं, जो परिवर्तन लाने हेतु एजेन्सीज हैं, वरन् परिवर्तन में ... वाले ट्रेड यूनियन व उसके सदस्य भी परिवर्तन की एजेन्सीज ... प्रजातांत्रिक योजना में यह न केवल सम्भव है, वरन् ... समूहों को अक्सर सम्मिलित किया जाय। सफलता प्राप्त ... अनिवार्य है कि व्यापक जन शिक्षा अभियान चलाये जाय, ... की आर्थिक समस्याओं और सामाजिक ... सीधे सम्बन्ध की जानकारी को निश्चित किया जा सके। ... राष्ट्रनीति विदित रहती है और वे बहुत जोरों के साथ ... हैं, साथ ही हित समूह एक दूसरे के अनुकूल प्रतिक्रिया ... किसी व्यक्ति के लिये विरोध करना कठिन हो जाता है।

ऊपर लिखे सिद्धान्तों से अलग होने के कारण यह निश्चित है कि इजराइल में ट्रेड यूनियनवाद का योगदान स्वयंसिद्ध (Co[illegible] ionist) न होकर बहुत उलझा है। वे उत्पादन सम्बन्धी कार्यों में योगदान देती हैं। इजराइल की एक और विशेषता है कि कृषि क्षेत्र में किबूट्स (Kibbuts) और मोशाव (Moshar) के प्रकार के सामूहिक आधारित है, जनसंख्या को आत्मनिर्भर प्रगतिशील बनाने वाले हिस्सों में विभाजित है और राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक विकास में प्रभावी स्थान रखता है। यह कोई अपवाद नहीं है कि सैम सभी मन्त्रालयों के मुकाबले में कृषि मन्त्रालय से सम्बन्धित अधिक सामंजस्यिक समितियां, आयोग और कौन्सिल और सभी भिन्न-भिन्न क्रमों पर योजना को बनाने और कार्यान्वित करने में सम्मिलित होती हैं। साथ ही वे ट्रेड यूनियन आंदोलन के एक सामूहिक अंग के रूप में हैं और हिस्त्राकृत की प्रमुख समितियों में सक्रिय भाग लेती हैं तथा नीति निर्धारण में भी हिस्सा लेती हैं। परिणामस्वरूप इजरायल के महासंघ की भिन्न-भिन्न गतिविधियों के लिये नेतृत्व प्रदान करती हैं। यह संस्था का यह वह भाग है जो आत्मसपन की भावना प्रदान करने में अत्यधिक रंगा हुआ है और जिसने आधुनिक उत्थान की नींव डाली है।

ट्रेड यूनियन की योजनाओं में सम्मिलित होने से योजना के ढांचे में निश्चित ही बदल हुआ है। यह बदल अधिक लागत के लक्ष्यों से खपत के वास्तविक स्तरों की प्राप्ति की ओर है, परन्तु यह एक देन बन गई है, जिसने आर्थिक विशेषज्ञों को एक नया सिद्धान्त प्रदान किया है। वर्तमान सामाजिक कल्याण की आवश्यकताओं के सम्बन्ध ने निश्चित रूप से एक आर्थिक मूल्य (Economic cost) का रूप दिया है, जिसके अन्तर्गत साधनों को लागत के स्थान पर खपत के रूप में परिवर्तित किया गया है, परन्तु यह पाया गया है कि यह मूल्य लागत के रूप में अधिक है। सामाजिक प्रगति के इस सम्बन्ध ने एक प्रमुख कारण को उत्पन्न किया है जिसके अन्तर्गत, सभी हित समूह राष्ट्रीय, आर्थिक विकास की प्रक्रिया में निहित हैं और न कि उसके बाहर हैं। इसलिए यह उसी प्रकार का आर्थिक मूल्य है जैसा कि उत्पादन हेतु भिन्न-भिन्न वर्गों पर खर्च किया जाता है, जैसे उपकरण और सामग्री पर। यह उनसे इस रूप में भिन्न है, जिसमें सामाजिक कल्याण न केवल आर्थिक विकास को प्राप्त करने का साधन है, वरन् आर्थिक गतिविधियों को अपनाने हेतु यही लक्ष्य भी है।

प्रयोग इंगित करता है कि सामाजिक उत्थान को प्राप्त करते समय सामाजिक कष्ट उठाना आवश्यक नहीं है। यह एक महत्वपूर्ण शिक्षा है। साधारण रूप में सामाजिक कल्याण एक मूल्य के रूप में होना जरूरी नहीं है वरन् यह एक लागत ही सकती है, जो कि एक अल्पकाल में लाभ शीर्षलाभ में वापस (Dividends) दे सकती है।

# निष्कर्ष

भिन्न-भिन्न देशों के अध्ययन से निम्नलिखित तथ्यों का निष्कर्ष निकाला जा सकता है :—

१— यद्यपि विश्व की ट्रेड यूनियन संगठनों के कोई व्यापक ढांचे की समानता मालूम नहीं होती तो भी ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न है।

२— वर्तमान सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के ऐतिहासिक उत्थान और ढांचे की प्रक्रियाओं में इस विभिन्नता का कारण है।

३— इन दोनों ही पक्षों में हिन्दुस्तान की अपनी विचित्र विशेषतायें हैं, क्योंकि हमारे यहां बहुत अधिक मात्रा में और विभिन्नता के बहुमूल्य अनुभवों का परम्परागत भण्डार है, आत्मा की अनुभूति से ही ये सभी जानकारियां मिली हुई हैं, जिनका स्वरूप अनोखा और विश्वव्यापी है।

४— यद्यपि हर एक देश हमें एक या दूसरे प्रकार से शिक्षा एवं चेतावनी देता है तो भी हमें अपने ढांचे का स्वयं विकास करना होगा, जो हमारी परम्परा व परिस्थितियों के अनुकूल हो।

५— कम से कम कुछ देशों में ट्रेड यूनियन आन्दोलन ने योजना के बनाने और कार्यान्वित करने में उल्लेखनीय भूमिका निभायी है। ऐसा कोई कारण नहीं है कि भारतवर्ष में भी वे योजना के बनाने और कार्यान्वित करने में इस भूमिका को सक्रिय और निर्णयात्मक ढंग से न निभा पाये।

६— इस दृष्टिकोण से राष्ट्रीय सम्पन्नता में एक महत्वपूर्ण योगदान देने के लिये यह अनिवार्य है कि ट्रेड यूनियन आन्दोलन को सभी प्रकार के इज्म (वाद) की गुलामी से मुक्त कराया जाये। दृष्टिकोण और अपनाये जाने

वाली पद्धति व्यावहारिक होनी चाहिये न कि किसी विशेष मत का अन्धानुकरण।

७— देश में राष्ट्रभक्ति के सशक्त भाव की अनुपस्थिति में कोई भी कानूनी कार्यवाही अथवा ढांचे की पद्धति परिणाम नहीं दे सकती। अन्तर्राष्ट्रवाद के स्थान पर राष्ट्रवाद ही कठिन परिश्रम करने और अधिकतम त्याग करने का एक सही प्रेरणा केन्द्र है। औद्योगिक प्रजातान्त्रिक योजना उसी हद तक सफल हो सकती है, जिस हद तक नियोजक, कर्मचारी और सरकार अपने आपको सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ एकात्म कर सके। राष्ट्रीय एकात्मा की यही मनोभूमिका औद्योगिक सम्बन्धों के भिन्न-भिन्न पक्षों को ठीक प्रकार से मोड़ सकती है।

जनसंख्या के सभी अंगों, जिसमें श्रमिक भी शामिल है, की सुस्ती को तभी दूर किया जा सकता है, जब उसके सम्मुख एक महान उद्देश्य प्रस्तुत हो और उसे एक राष्ट्रीय कौशल और ज्ञान की जागृति की स्थिति को प्राप्त करने की भावना से प्रेरित किया जाय। हर एक नागरिक को राष्ट्रोत्थान में उसकी भूमिका के बारे में अवगत कराया जाय। कौशल और ज्ञान की जागृति की स्थिति के लिये ठोस नींव निर्माण की जाय। प्रखर सिद्धान्तवादिता की ठोस नींव निर्माण की जाये न कि छुद्र स्वार्थों की पूर्ति का साधन।

भारतीय मजदूर संघ का यह विचार है कि देश में ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका को राष्ट्र की शेष समस्याओं से भिन्न करके नहीं देखा जा सकता। राष्ट्रीय उत्थान की सामूहिक योजना में इसे एक सामूहिक रूप के अन्तर्गत मानकर ही विचार करना है। कुछ नवीन विचार जो कि कष्ट-दायक हो सकते हैं, का इस संदर्भ में प्रस्तुत करना जरूरी है। परिवर्तन विरोध और क्रान्तिकारी परिवर्तन के नाम पर दुस्साहस वाली गतिविधियों दोनों से हमें निष्पक्ष रहना चाहिये। हमें सभी देशों के अनुभवों व प्रयोगों से लाभ उठाना चाहिये, परन्तु उनका अन्धविश्वास से नकल नहीं करना चाहिये। हमें अपने प्राचीन काल के अनुभवों, जिन पर काफी मात्रा में पर्दा पड़ा हुआ है, की विशेषताओं व कमजोरियों को व्यापक रूप से खोजना चाहिये, परन्तु यह खोजते समय अपनी वर्तमान दुर्दशा और भविष्य की आकांक्षाओं को आंख से ओझल नहीं होने देना चाहिये। जनसंख्या के सभी अंगों में हमें राष्ट्र के

हितों के लिये अहर्निश सेवा भाव (Missionary Zeal) के जोश को पैदा करना चाहिये, ताकि राष्ट्र के अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचने के सामूहिक प्रयत्नों में कन्धे से कन्धा लगाकर सब खड़े हो सकें।

एकात्मभाव की प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होने वाली वाणी से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक पूज्य श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर ने राष्ट्रोत्थान की प्रक्रिया को बतलाते हुये कहा है "जब एक बार एकात्मभाव की जीवन्त प्रवाह हमारे राष्ट्रपुरुष के सभी अंगों में आजादी से बहने लगेगी तब हमारे राष्ट्रीय जीवन के भिन्न-भिन्न अंग सक्रिय और एकात्मरूप से संपूर्ण राष्ट्र के कल्याण हेतु क्रिया करना शुरू कर देंगे। इस प्रकार जीवित व प्रगति करता हुआ समाज पुरानी पद्धतियों व ढाचों के असंख्य स्वरूपों में से उनको जो अनिवार्य है और जो प्रगति के पथ पर चलने के लिये लाभदायक है, बनाये रखेगा और उन सबको उठाकर फेंक देगा व परित्याग कर देगा जिन्होंने अपनी उपयोगिता पूरी कर ली है और इनके रिक्त स्थानों पर नई पद्धतियों का विकास करेगा। किसी को पुरानी व्यवस्था के चले जाने के ऊपर आंसू बहाने की जरूरत नहीं है और न नवीन व्यवस्था के स्वागत से भागना ही है। ये सभी जीवित और प्रगतिशील जीव प्राणियों की प्रकृति है, जब एक पेड़ बढ़ता है तो पके हुये पत्ते और सूखी टहनियां गिर जाती हैं और उनके स्थान पर नये पल्लव विकास हेतु रास्ता बनाते हैं। प्रमुख बात जो अपने सम्मुख रखना चाहिये वह यह कि एकात्मता का जीवसार हमारे सामाजिक ढांचे के हर हिस्से में धीमे-धीमे पहुंचता है। हर एक पद्धति और ढांचा जीवित रहेगा अथवा बदलेगा या सम्पूर्ण रूप से लुप्त हो जायेगा—यह इस बात पर निर्भर करता है कि जीवसार उसके पालन पोषण के लिये पहुंचेगा अथवा नहीं पहुंचेगा। अतः सभी प्रकार की पद्धतियों के भविष्य के बारे में वर्तमान परिस्थिति को सामने रखकर बहस करना व्यर्थ है। काल की यह सर्वोच्च आवाज है कि एकात्मभाव को जीवित किया जाय और साथ ही साथ अपने समाज के जीवनोद्देश्यों की चेतना पुनः पैदा की जाय, शेष सभी बातें स्वयं ही अपनी चिन्ता कर लेंगी।"

श्री गुरू जी की यह टिप्पणी विशेष स्थान रखती है, जब हम इस तथ्य को देखते हैं कि विश्वव्यापी धर्म और उसके अधिष्ठान 'भारतीय राष्ट्रवाद' का यह ऋषि अपने संगठन द्वारा राष्ट्र को स्वस्थ बनाने और मानव की

प्रतिष्ठा के लिए अनिवार्य सभी विशेषताओं व गुणों को बनाये रखने और आगे बढ़ाने के लिये सतत प्रयत्न कर रहा है, जैसा कि ऋषि मनु ने प्रलय काल में एक नैय्या में बैठे हुये सभी प्रकार के जीव प्राणियों को बचाने का प्रयत्न किया था।

अब समय आ गया है कि ऊपर लिखी हुई दिव्यश्री की अन्तरात्मा व भावना को ध्यान में रखकर भारत में ट्रेड-यूनियन आन्दोलन की भूमिका के बारे में हम सब लोग इकट्ठा होकर विचार करें।

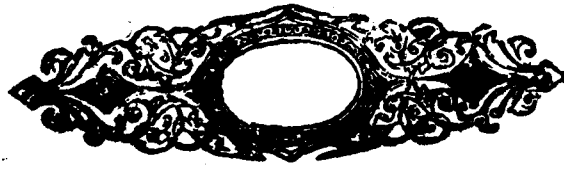

भाग ४ अध्याय १६ (क)

# श्रमनीति

## ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका

और

दृष्टिकोण

—भारतीय मजदूर संघ

मूल्य : २५ पैसे

भाग ४ अध्याय १६ (क)

# श्रमनीति

## ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका

और

## दृष्टिकोण

--भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

राष्ट्रीय श्रम आयोग को भारतीय मजदूर संघ द्वारा प्रस्तुत किये गये "**Labour Policy**" नामक अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है ।

हिन्दी में इस पुस्तक के सभी २० अध्याय अलग अलग पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये गये हैं, साथ ही इस अध्याय क्र० १९ के दो भाग हैं ।

आपातकालीन स्थिति के अन्तर्गत कानपुर जिला कारागार की बन्दी अवधि में हमारे परम मित्र आई० आई० टी० कानपुर के प्राध्यापक डा० भूषणलाल धूपड़ के सहयोग से इस अध्याय का हिन्दी अनुवाद सम्भव हो सका है । मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ ।

राम नरेश सिंह

# ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका

## एक दृष्टिकोण

क्या वर्तमान ढांचे के अन्तर्गत ट्रेड यूनियन एक विशेष भूमिका निभा रही है ? वर्तमान काल में क्या यह परम आवश्यक है ?! हिटलर, मुसोलिनी, फ्रैन्को, सालाजार तथा माओ इसको आग्रहपूर्वक अस्वीकार करेंगे। विशेष प्रतिष्ठित लोग यह तर्क प्रस्तुत करेंगे कि उदारवादी अधिनायकवाद के अन्तर्गत श्रमिकों के हितों की सुरक्षा और बढ़ोत्तरी करने के लिये किसी भिन्न संगठन की जरूरत नहीं है। आज भी तन्जानिया के राष्ट्रपति श्री नेअरे [Nyeyere] ने अपने आपको श्रमिकों के संरक्षक की भूमिका निभाने की घोषणा की है तथा अपने देश में सभी ट्रेड यूनियनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया है और सभी कारखाने के श्रमिकों को उनके द्वारा बनाई हुई एक मात्र राष्ट्रीय श्रमिक संगठन में सम्मिलित होने के लिए बाध्य किया गया है। इस एक मात्र श्रमिक संगठन को भिन्न-भिन्न उद्योगों के अनुसार विभाजित किया गया है और वे यह निश्चित कर लिये हैं कि यह संगठन उनके निर्देशों को ईमानदारी से निभाये। इस नई व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रपति के संरक्षण में श्रमिकों के भाग्य में निश्चित रूप से लाभ पहुंचा है। कुवैत जो कि एक छोटा सा देश है और जहाँ प्रति व्यक्ति आय काफी ऊंची है, उसने अपने श्रमिकों को अच्छी आवास व्यवस्था, सामाजिक सुरक्षा एवं उच्च वेतन दिया है। यद्यपि वहाँ के श्रमिक ठीक ढंग से संगठित नहीं है तिस पर भी उक्त दोनों देशों में सजग श्रमिक अपने स्थायी उत्थान के लिए इस सरकारी कृपा रूपी निर्भर करने वाली पद्धति को स्वीकार नहीं करते। वे अपने स्वावलम्बन को यथा ट्रेड यूनियन के द्वारा अपने अधिकार को प्रगट करने वाली पद्धति को छोड़ना बहुत हानिकारक समझते हैं, क्योंकि आत्म निर्भरता की कोई और पूरकता नहीं होती। यदि किसी देश में श्रमिक सत्ता में आ जाय, तो भी वे अपने संगठन को तोड़ देने को सहन नहीं करेंगे, ऐसी दशा में भी जिसमें श्रमिक हित, जिनकी सरकार द्वारा सुरक्षा होगी तथा श्रमिक संगठनों के द्वारा हित मिलेंगे, उसके समकक्ष नहीं होंगे। ट्रेड यूनियनों को एक विशेष भूमिका अदा करनी ही है।

भारतवर्ष में ट्रेड यूनियन गतिविधियों की भूमिका के बारे में कोई एक मत दिखाई नहीं देता । यह बात सही है कि एटुक, जिसका मार्क्सवादी लेनिनवादी स्वरूप है, जब से साम्यवादियों के आधिपत्य में आयी, ट्रेड यूनियन

गतिविधियों को साम्यवादी विचारधारा के अन्तर्गत व्यवहार कर रही है। यद्यपि इस दृष्टिकोण ने एक तात्विक एकीकरण प्रगट किया है, और अब तक वह संगठन का केन्द्र बना रहा है किन्तु अब यही उसके संगठन की कमजोरी हो गयी है उस समय से जब से साम्यवादी दल में मार्क्सवाद-लेनिनवाद की व्याख्या पर मतभेद पैदा हो गया। ध्यान रहे कि अभी दोनों पक्ष एक ही संगठन के अन्तर्गत काम कर रहे हैं, अब ऐसा आभास होता है कि शीघ्र ही एक अलग वामपन्थी ट्रेड यूनियन केन्द्र की शुरुआत होगी। (नोट-अब CITU (सीटू) नामक अलग संगठन बन चुका है) साम्यवादी दल द्वारा राज्य स्तर पर सत्ता प्राप्त करना, जबकि केन्द्र पर उनकी सत्ता नहीं है ने उन्हें और भी घाटे में डाल दिया है। ऐसा होने के कारण साम्यवादी दल को एक विरोधी दल के रूप में काम करना पड़ रहा है। जब वह पूरे देश की राज्य सत्ता को हथिया लेगा तभी वह शीघ्र और उग्र अधिनायकवाद के अन्तर्गत सरकार की भूमिका को बदल सकता है। ऊपर लिखी गयी परिस्थिति के कारण दल को क्रान्ति के पूर्व और क्रान्ति के पश्चात् भूमिका अदा करनी पड़ रही है यही उसकी कष्टप्रद एवं विरोधाभासी भूमिका है। केरल में सी० पी० एम० द्वारा नियंत्रित राज्य में श्रम विभाग द्वारा जो ज्ञापन राष्ट्रीय श्रम आयोग को दिया गया है कि एटुक द्वारा वर्तमान प्रस्ताव में की गयी भर्त्सना इसी संदर्भ में देखने योग्य है। इनटुक जो कि गान्धी जी के द्वारा दिये गये राष्ट्रीय विचार धारा पर आधारित मजदूर महाजन लाभ के लिए बना, ने अपने आपको कांग्रेस संगठन एवं सरकार के साथ एक रूप करके अपनी आत्मा को खो बैठा है जिसके फलस्वरुप कांग्रेस के अन्दर के मतभेद इनटुक के संगठनात्मक ढांचे में प्रगट होते हैं। इन सब कारणों ने इसको कमजोर और भिन्न-भिन्न स्तरों पर विभाजित कर दिया हैं तथा आज यह प्रगट होना भी कठिन हो गया है कि इसकी सदस्य संख्या कितनी है ? हिन्द मजदूर सभा की शाखायें अपने में बहुत सशक्त हैं पर सामूहिक दृष्टि से कमजोर हैं क्योंकि इन यूनियनों के नेता प्रजातांत्रिक ट्रेड यूनियनिज्म के सिद्धान्तों को ईमानदारी से निभाते तो हैं, परन्तु ऐसा करते हुए वे राष्ट्रीय उत्थान में केन्द्रीय श्रम संगठन तथा सामूहिक श्रम कल्याण को प्राप्त करने की भूमिका के बारे में कम ध्यान देते हैं। युटुक जो अपने आपको पूर्णतः अराजनीतिक स्वरूप को प्रगट करता हैं वस्तुतः आर० एस० पी० व बोलशेविक पार्टी द्वारा निर्देशित होती थी, परन्तु दोनों दलों के अन्दर भीषण फूट के कारण इसे काफी हानि हुई है और आज वह बहुत पीछे हो गयी हैं। हिन्द मजदूर पंचायत ही एक ऐसा संगठन है जो बड़े दावे से घोषणा करता है कि ट्रेड यूनियन को एक राजनीतिक दल की शाखा के रूप में काम करना चाहिए और इस व्यवस्था से यूनियन एवं दल को

बहुत लाभ होगा (नोट: अब हिन्द मजदूर पंचायत कई भागों में बट जाने के कारण छिन्न-भिन्न व समाप्त प्राय: हो चुका है।) अखिल भारतीय सिद्धार्थ श्रमिक संघ अभी प्रारम्भिक स्थिति में है और रिपब्लिकन पार्टी ही एक मात्र खेतिहर श्रमिकों का अ० भा० संगठन के रूप को प्रगट करती हैं। दल की उद्योगों तथा कृषि क्षेत्र में पहले से ही सम्भावित सदस्यता बनी हुई है और वे श्रम-क्षेत्र में समर्पित नेताओं की इन्तजारी कर रहे हैं। डी० एम० के० ने भी श्रम क्षेत्र में बड़े जोर शोर से प्रवेश किया है और इसके ट्रेड यूनियन नेता जो कि इस आन्दोलन में नये हैं तथा अपने राज्य तमिलनाडु तक ही सीमित हैं और राज्य की आर्थिक समस्याओं को हल करने हेतु उपयुक्त पद्धतियों को अपनाने में इमानदार हैं। लाल निशान गुट अथवा पीजेन्ट्स एण्ड वर्कर्स पार्टी के श्रमिक संगठन केवल स्थानीय स्तर पर ही प्रभावी हैं और कोई राष्ट्रीय भूमिका अथवा विचार रखते की स्थिति नहीं रखने और वे दावा भी नहीं करते तथा शिवसेना से सम्बन्धित भारतीय कामगार सेना की भी यही स्थिति है और इसके सिद्धान्त और नीतियों की घोषणा करना शेष है। संगठित मजदूरों का एक बहुत बड़ा भाग भिन्न भिन्न यूनियनों व औद्योगिक संस्थाओं के अन्तर्गत है जिनका स्वरूप स्वतंत्र है तथा किसी भी अ० भा० श्रमिक संगठन से सम्बद्ध नहीं हैं। यद्यपि हर एक को उसकी अपनी उपयोगिता के अन्तर्गत तौलना होगा पर आम तौर से यह कहा जा सकता है कि इन संगठनों का ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका के लिये कोई विशेष विचारधारा का आधार नहीं है। इन्डियन फैडरेशन आफ फ्री ट्रेड यूनियन्स इसी श्रेणी की है और यद्यपि इसने अपनी सुविधा हेतु अर्न्त-राष्ट्रीय श्रम संस्था 'इन्टरनेशनल फेडरेशन आफ क्रिश्चियन ट्रेड यूनियन' से वार्तालाप की थी, ध्यान रहे कि अब 'क्रिश्चियन' शब्द की परिभाषा 'विलीवर' (आस्तिक) शब्द से कर दी गई है। अ० भा० सेडूलकास्ट एवं सेंडूल ट्राइब्स वर्कर्स वेलफेयर एशोसियेशन ने अपने उद्देश्यों की सफलता के लिये श्री जगजीवन राम का योग्य नेतृत्व प्राप्त किया हैं किन्तु किसी भी रूप में इसे ट्रेड यूनियन संगठन नहीं कहा जा सकता। साम्यवादियों द्वारा प्रभावित किसान सभा ने खेती-हर मजदूरों के हितों की सुरक्षा के लिये कई आन्दोलन किये परन्तु इसने अपने आपको नियमित रूप से चलने वाली ट्रेड यूनियन नहीं कहा। इस हेतु यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका किसी एकमत को प्रगट नहीं करती।

विश्वव्यापी स्तर पर ट्रेड यूनियन आन्दोलन इधर कुछ काल से एक संस्था के रूप में उत्पन्न हुयी है। यह आन्दोलन उद्योगीकरण के प्रारम्भ में एक विरोधी संगठन के रूप में शुरु हुआ और मुख्यत: सफल बुर्जुवा एवं प्लोटोक्रैट (व्यापारियों

की सरकार) के नियंत्रण के विरोध में विद्रोह के रूप में खड़ा हुआ परन्तु यह आन्दोलन अब इस ओर गतिशील हो रहा है कि वह एक विशेष भूमिका निभा सके। अब ऐसे संगठन हैं, जो अपने आपको निर्णय लेने वाली पद्धति से, जानकारी इकठ्ठा करने के उद्देश्य से अथवा परामर्श देने वाली भूमिका से सामने आ रहे हैं। कुछ और संगठन भी हैं, जो प्रशासन में भाग लेते हैं अथवा लाभदायी रचनात्मक सहयोग देते हैं। अब ऐसा भी एक चित्र खड़ा हुआ हैं, जिसके अर्न्तगत उद्योग का सामूहिक प्रशासन एवं नियंत्रण ट्रेड यूनियन द्वारा किया जा रहा है। ट्रेड यूनियन आन्दोलन से लिये गये प्रमुख व्यक्तियों द्वारा राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था के सम्पूर्ण प्रशासन की कल्पना अब स्वप्न मात्र नहीं रह गयी हैं। राष्ट्रीय उत्थान की गति शीलता में ट्रेड यूनियन आन्दोलन की सही भूमिका को समझने के लिए यह लाभ दायक रहेगा कि हम विश्वव्यापी श्रम संगठनों की भूमिका को भी अपने सम्मुख रखें।

## निष्कर्ष

भिन्न भिन्न देशों के अध्ययन से निम्नलिखित तथ्यों का निष्कर्ष निकाला जा सकता है:—

१ यद्यपि विश्व की ट्रेड यूनियन संगठनों के कोई व्यापक ढाँचे की समानता मालूम नहीं होती तो भी ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका भिन्न देशों में भिन्न भिन्न है।

२ वर्तमान सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के ऐतिहासिक उत्थान और ढाँचे की प्रक्रियाओं में इस विभिन्नता का कारण है।

३ इन दोनों ही पक्षों में हिन्दुस्तान की अपनी विचित्र विशेषतायें हैं, क्योंकि हमारे यहां बहुत अधिक मात्रा में और विभिन्नता के बहुमूल्य अनुभवों का परम्परागत भंडार है, आत्मा की अनुभूति से ही ये सभी जानकारियाँ मिली हुई हैं जिनका स्वरूप अनोखा और विश्वव्यापी है।

४ यद्यपि हर एक देश हमें एक या दूसरे प्रकार से शिक्षा एवं चेतावनी देता है तो भी हमें अपने ढाँचे का स्वयं विकास करना होगा, जो हमारी परम्परा व परिस्थितियों के अनुकूल हो।

५ कम से कम कुछ देशों में ट्रेड यूनियन आन्दोलन ने योजना के बनाने और कार्यान्वित करने में उल्लेखनीय भूमिका निभायी है। ऐसा कोई कारण नहीं है कि भारत वर्ष में भी वे योजना के बनाने और कार्यान्वित करने में इस भूमिका को सक्रिय और निर्णयात्मक ढंग से न निभा पायें।

६ इस दृष्टिकोण से राष्ट्रीय सम्पन्नता में एक महत्वपूर्ण योगदान देने के लिये यह अनिवार्य है कि ट्रेड यूनियन आन्दोलन को सभी प्रकार के इज्म (वाद) की गुलामी से मुक्त कराया जाये। दृष्टिकोण और अपनाये जाने वाली पद्धति व्यावहारिक होनी चाहिए न कि किसी विशेष मत का अन्धानुकरण।

७ देश में राष्ट्रभक्ति के सशक्त भाव की अनुपस्थिति में कोई भी कानूनी कार्य वाही अथवा ढाँचे की पद्धति परिणाम नहीं दे सकती। अन्तरराष्ट्रवाद के स्थान पर राष्ट्रवाद ही कठिन परिश्रम करने और अधिकतम त्याग करने का एक सही प्रेरणा केन्द्र है। औद्योगिक प्रजातांत्रिक योजना उसी हद तक सफल हो सकती है, जिस हद तक नियोजक कर्मचारी और सरकार अपने आपको सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ एकात्म कर सके। राष्ट्रीय एकात्मता की यही मनोभूमिका औद्योगिक सम्बन्धों के भिन्न भिन्न पक्षों को ठीक प्रकार से मोड़ सकती है।

जनसंख्या के सभी अंगों, जिसमें श्रमिक भी शामिल है, की सुस्ती को तभी दूर किया जा सकता हैं, जब उसके सम्मुख एक महान उद्देश्य प्रस्तुत हो और उसे एक राष्ट्रीय कौशल और ज्ञान की जागृति की स्थिति को प्राप्त करने की भावना से प्रेरित किया जाय। हर एक नागरिक को राष्ट्रोत्थान में उसकी भूमिका के बारे में अवगत कराया जाय। कौशल और ज्ञान की जागृति की स्थिति के लिये ठोस नींव निर्माण की जाय। प्रखर सिद्धान्तवादिता की ठोस नींव निर्माण की जाये न कि क्षुद्र स्वार्थ की पूर्ति का साधन।

भारतीय मजदूर संघ का यह विचार है कि देश में ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका को राष्ट्र की शेष समस्याओं से भिन्न करके नहीं देखा जा सकता। राष्ट्रीय उत्थान की सामूहिक योजना में इसे एक सामूहिक रूप के अर्न्तगत मानकर ही विचार करना है। कुछ नवीन विचार जो कि कष्टदायक हो सकते है, का इस सन्दर्भ में प्रस्तुत करना जरूरी है। परिवर्तन विरोध और क्राँतिकारी परिवर्तन के नाम पर दुस्साहस वाली गतिविधियों दोनों से हमें निष्पक्ष रहना चाहिये। हमें सभी देशों के अनुभवों व प्रयोगों से लाभ उठाना चाहिये, परन्तु उनका अन्ध विश्वास से नकल नही करना चाहिये। हमें अपने प्राचीन काल के अनुभवों, जिन पर काफी मात्रा में पर्दा पड़ा हुआ है, की विशेषताओं व कमजोरियों को व्यापक रुप से खोजना चाहिये, परन्तु यह खोजते समय अपनी वर्तमान दुर्दशा और भविष्य की आकांक्षाओं को आँख से ओझल नहीं होने देना चाहिये। जनसंख्या के सभी अंगों में हमें राष्ट्र के हितों के लिए अहिर्निश सेवा भाव (Missionary Jeal) के जोश को पैदा करना चाहिये, ताकि राष्ट्र के अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचने के सामूहिक प्रयत्नों में कन्धे से कन्धा लगाकर सब खड़े हो सकें।

एकात्मभाव की प्राकृतिकरूप से उत्पन्न होने वाली वाणी से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर ने राष्ट्रोत्थान की प्रक्रिया को बतलाते हुये कहा है "जब एक बार एकात्मभाव की जीवन्त प्रवाह हमारे राष्ट्रपुरुष के सभी अंगों में आजादी से बहने लगेगी तब हमारे राष्ट्रीय जीवन के भिन्न भिन्न अंग सक्रिय और एकात्मरूप से सम्पूर्ण राष्ट्र के कल्याण हेतु क्रिया करना शुरु कर देंगे।

इस प्रकार जीवित व प्रगति करता हुआ समाज पुरानी पद्धतियों व ढाचों के असंख्य स्वरुपों में से उनको जो अनिवार्य है और जो प्रगति के पथ पर चलने के लिये लाभदायक है, बनाये रखेगा और उन सब को उठाकर फेंक देगा व परित्याग कर देगा जिन्होंने अपनी उपयोगिता पूरी करली है और इनके रिक्त स्थानों पर नई पद्धतियों का विकास करेगा। किसी को पुरानी व्यवस्था के चले जाने के ऊपर आंसू बहाने की जरूरत नहीं है और न नवीन व्यवस्था के स्वागत से भागना ही हैं। ये सभी जीवित और प्रगतिशील जीव प्राणियों की प्रकृति है जब एक पेड़ बढ़ता हैं तो पके हुये पत्ते और सूखी टहनियाँ गिर जाती हैं और उनके स्थान पर नये पल्लव विकास हेतु रास्ता बनाते हैं। प्रमुख बात जो अपने सम्मुख रखना चाहिये वह यह कि एकात्मता का जीवसार हमारे सामाजिक ढाँचे के हर हिस्से में धीमे-धीमे पहुंचता है। हर एक पद्धति और ढाँचा जीवित रहेगा अथवा बदलेगा या सम्पूर्ण रूप से लुप्त हो जायगा यह इस बात पर निर्भर करता हैं कि जीवसार उसके पालन पोषण के लिये पहुंचेगा अथवा नहीं पहुंचेगा। अतः सभी प्रकार की पद्धतियों के भविष्य के बारे में वर्तमान परिस्थिति को सामने रखकर बहस करना व्यर्थ हैं। काल की यह सर्वोच्च आवाज हैं कि एकात्मभाव को जीवित किया जाय और साथ ही साथ अपने समाज के जीवनोद्देश्यों की चेतना पुनः पैदा की जाय, शेष सभी बातें स्वयं ही अपनी चिन्ता कर लेंगी।'

श्री गुरु जी की यह टिप्पणी विशेष स्थान रखती है, जब हम इस तथ्य को देखते हैं कि विश्वव्यापी धर्म और उसके अधिष्ठान 'भारतीय राष्ट्रवाद' का यह ऋषि अपने संगठन द्वारा राष्ट्र को स्वस्थ बनाने और मानव की प्रतिष्ठा के लिये अनिवार्य सभी विशेषताओं व गुणों को बनाये रखने और आगे बढ़ाने के लिये सतत प्रयत्न कर रहा है, जैसा कि ऋषि मनु ने प्रलय काल में एक नैय्या में बैठे हुये सभी प्रकार के जीव प्राणियों को बचाने का प्रयत्न किया था।

अब समय आ गया कि ऊपर लिखी हुयी टिप्पणी की अन्तरात्मा व भावना ध्यान में रखकर भारत में ट्रेड-यूनियन आन्दोलन की भूमिका के बारे में हम सब लोग इकठ्ठा होकर विचार करें। ❀

खण्ड—४ अध्याय—२०

# श्रमनीति

# राज्य का संविधान

तथा

# कार्यकलाप

## समाज की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था

भारतीय मजदूर संघ

# प्रस्तावना

राष्ट्रीय श्रम आयोग को भारतीय मजदूर संघ द्वारा प्रस्तुत किये गये 'Labour Policy' नामक अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है हिन्दी में इस पुस्तिका के सभी २० अध्याय अलग-अलग पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये गये हैं।

आपातकालीन स्थिति के अन्तर्गत कानपुर जिला कारागार में बंदी की अवधि में इस अध्याय का हिन्दी अनुवाद आई० आई० टी० कानपुर के प्राध्यापक डा० भूषणलाल धूपड़ के सहयोग से किया गया है। मैं इनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

—प्रकाशक

# अध्याय–२० खण्ड ४

# राज्य का संविधान तथा कार्यकलाप

## समाज की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था

### योजना के आदर्श

योजना के क्रियान्वयन हेतु जनता में उचित जोश उत्पन्न करने के लिए यह अनिवार्य है कि योजना राष्ट्र की 'संस्कृति' को सम्मुख रखकर बननी चाहिए। 'संस्कृति' शब्द का अर्थ समाज के मस्तिष्क पर पड़ी धारणाओं की दिशा से है, जो उस समाज को विशेष रूप प्रदान करती हैं और कालान्तर में जिसे समाज की उत्कण्ठा, भावनाओं, विचार, वाणी और गतिविधियों के सामूहिक प्रभाव को कहते हैं।

जाति राष्ट्रादिसंघातां साकल्यं चरितस्य यत् ।
व्यक्तं 'संस्कृति' शब्देन·····ज्ञानकोशकार ।।

हमारी संस्कृति के अनुसार योजना के उद्देश्य सदैव से धर्म की क्रमशः अनुभूति से बनी है। 'धर्म' शब्द का सम्पूर्ण अर्थ एवं विशेषता समाज की धारणा है। धर्म जनप्राणी की सम्पन्नता के रूप में बतलायी गयी है अथवा जो सम्पन्नता से प्राप्त होती है, उसे वस्तुतः धर्म कहते हैं।

प्रभवाय हि भूतानां धर्म-प्रवचनं कृतम्
यस्त्यात् प्रभव संयुक्तः स धर्म इति निश्चय:

महाभारत

'प्रभव' शब्द भौतिक प्रगति साथ ही आध्यात्मिक उन्नति को प्रकट करता है। (यतोभ्युदयनिः श्रेयशसंसिद्धिः सधर्मः)। कोई भी योजना जो इन दोनों उद्देश्यों में से केवल एक को ग्रहण करती है, समाज की संतुलित प्रगति को प्राप्त करने में एकतरफा व एकाकी रहती है। व्यवहारिक पक्ष से देखा गया है कि नागरिकों की एक न्यूनतम आवश्यकता तक आध्यात्मिक उन्नति उन्हें इस योग्य बनाती है कि वह अपने श्रम के फल को 'समाज पुरुष' के पवित्र चरणों में समर्पित कर दें। (स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दिति मानवाः)। समर्पण की भावना की अनुपस्थिति में

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की वास्तविक विशेषतायें और प्रशंसनीय उपलब्धियां आपस में स्पर्द्धा बन जाती हैं, बजाय इसके कि वे एक दूसरे के पोषक हों। भौतिकीय स्तर पर हमारे समाज में जो मनुष्य पैदा हुआ है, उसको निवास करने का अधिकार है। प्राचीन भारत में कोई भी व्यक्ति अपनी रोटी की उपलब्धि के बिना अपना जन्म नहीं लेता था। भारतीय राज्य तन्त्र के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति का अपनी प्रकृति के अनुसार काम करने के अधिकार को मौलिक अधिकार तथा जिम्मेदारी माना गया है। यह भारतीय आत्मा के विरुद्ध प्रतीत होता है कि अपने वर्तमान संविधान ने इस हक को सम्मिलित नहीं किया है। यह माना गया था कि जब तक जीवन की प्राथमिक आवश्यकतायें पूरी नहीं होती, मनुष्य को मानसिक शान्ति नहीं मिल सकती और न ही उसे इतना समय मिलता है कि वह मानसिक शान्ति से बढ़कर दूसरे उद्देश्यों के लिए ध्यान केन्द्रित करे। व्यक्ति का सर्वतोमुखी विकास तभी सम्भव होता है, जब उसे अपने गुण कर्म (स्वभावज गुणकर्म) के अनुकूल काम मिले। भारतीय सामाजिक आर्थिक प्रबन्ध की विशेषताओं में धारणाओं पर आधारित कार्य की व्यवस्था करनी थी। वे सभी व्यक्ति जो समान दृष्टिकोण रखते थे, और समान कार्य में लगे हुए थे, एक व्यवसायगत परिवार को बनाते थे, एक ही उद्योग में काम करने वाले सभी व्यवसायिक परिवार एक औद्योगिक परिवार को बनाते थे और एक ही क्षेत्र में सभी औद्योगिक परिवार क्षेत्रीय-औद्योगिक सामाजिक आर्थिक समूह को बनाते थे और सभी प्रकार के क्षेत्रीय-औद्योगिक समूहों को जोड़कर राष्ट्र बनता था। हर एक परिवार अथवा समूह को आन्तरिक स्वतन्त्रता और आजादी प्राप्त थी, ताकि इस सम्पूर्ण और उच्चस्तरीय राष्ट्र पुरुष के सर्वसाधारण अनुशासन के अन्तर्गत वे अपनी योजनायें बनाये। स्व-अनुशासन पर अधिक आग्रह किया गया था और भिन्न-भिन्न स्तरों पर के झगड़े अपने ही स्तर पर लोकप्रिय औद्योगिक समितियों द्वारा निपटाये जाते थे। राज्य द्वारा हस्तक्षेप बहुत ही कम था और राज्य समाज के नैतिक नेतृत्व द्वारा बताये गये नियमों और नियन्त्रणों के अन्तर्गत काम करता था। इस नैतिक नेतृत्व में न धन निहित था और न सत्ता। संक्षेप में हमारे समाज की स्वायत्तशासी, स्व-प्रशासित सामाजिक आर्थिक इकाइयों का चित्रण था, जो अपनी योजनाओं का स्वयं विकास करती थीं और सर्वकर्ष राष्ट्रीय योजना का अंग रहती थीं।

हमारे अनुसार यह आदर्शवादी स्थिति है। यदि राज्य को योजना के बनाने का सम्पूर्ण अधिकार देने का मान लिया गया, तो अधिकार मद का पैदा होना अनिवार्य है। यदि भिन्न-भिन्न हित समूह, जो समान चेतना को मानने वाले नही होते, को अपना मार्ग अपनाने की स्वतंत्रता थी और यदि नैतिक नेतृत्व का एक वर्ग अनुपस्थित हुआ, तो प्रत्येक समूह अपनी ओर खींचातानी करेगा और उस स्थिति

में किसी भी प्रकार राष्ट्रीय योजना का प्रगटीकरण सोचा भी नहीं जा सकता। भिन्न-भिन्न समूहों की भीतरी स्वायत्तता अनिवार्य है और उसे राष्ट्रवाद की सुदृढ़ भावनाओं से किया जाना चाहिये, जो निःस्वार्थी व्यक्तियों द्वारा निर्देशित हो। ये निःवार्थी व्यक्ति हृदय से सम्पूर्ण समाज का हित चाहने वाले हों, केवल मात्र तभी राज्य का हस्तक्षेप न्यूनतम हो सकता है।

वर्तमान परिस्थितियों में ऊपर की रूपरेखा को प्रभावी ढंग से अपनाने में कठिनाई यह है कि हमारे सामाजिक आर्थिक समूह में इस कार्य हेतु उचित संगठन की कमी है, उदाहरणार्थ–जब संगठित उद्योगों में श्रमिकों के कुछ भाग ने आवश्यक संगठनात्मक स्तर को प्राप्त किया है, उस समय भी कृषि, गृह उद्योग एवं लघु उद्योग में काम करने वाले श्रमिक निश्चित रूप से न्यूनतम आवश्यक स्तर के बहुत नीचे हैं। यही स्थिति स्वकर्मी (Self employed) व्यक्तियों के समूह और कुछ अन्य समाज के लोगों जैसे कि सेड्यूल्ड ट्राइब्स आदि हैं, के लिये भी लागू होता है। इसके पहले कि उन्हें योजना के विकास में भाग लेने के लिये कहा जाय, इन सबको उचित संगठित स्वरूप प्रदान करना होगा, यद्यपि हमें विश्वास है कि राष्ट्रवादी लोग ऊपर लिखी गयी एकीकरण की प्रक्रिया को बढ़ाने के लिये अपना पूर्ण प्रयास करेंगे। हम यह भी अनुभव करते हैं कि वर्तमान ढांचें में ट्रेड यूनियन्स इसी प्रकार के संगठित समूहों की एक स्वरूप हैं। यद्यपि कालान्तर में हम यह आंकांक्षा रखते हैं कि ये अपने आपको भारतीय रचना के अनुसार व्यवसाय और औद्योगिक परिवारों के रूप में विकसित हो जायेंगे।

## राज्य का आधार

हम यह देखते हैं कि ट्रेड यूनियन आन्दोलन न केवल श्रमिकों की समस्याओं और मांगों को प्रस्तुत करने की एक एजेन्सी है, वरन् यह समाज की एक प्रकार की ज्ञान एवं कर्मेन्द्रिय के समान हैं, जो सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन को सक्रिय रूप से विकसित करती हैं। वस्तुतः कर्मेन्द्रियों का कार्य इसका सही कार्य है और ज्ञानेन्द्रिय का कार्य आकस्मिक स्थितियों अथवा संयंत्र से सम्बन्धित महत्व के काम के समय है। इस प्रक्रिया को उस सीमा तक, जितना कि ट्रेड यूनियन्स जनसंख्या के पददलित वर्गों का प्रतिनिधित्व करती है, जिन्हें तुरन्त सहायता और सुविधा की आवश्यकता होती है, ट्रेड यनियन्स को समाज के शेष भागों के मुकाबले में अधिक जिम्मेदारी निभानी है, क्योंकि वर्तमान भारतीय परिस्थिति के अन्तर्गत ये अधिक सूक्ष्मग्राही (Sensitiue) हैं। जब जन-समुदाय के सभी अंग एक न्यूनतम आर्थिक स्तर को प्राप्त कर लें, तब ट्रेड यूनियन की महत्ता जिसकी इस समय अत्यधिक आवश्यकता है, को कम आंकना चाहिये, परन्तु फिर भी समाज का वह एक महत्वपूर्ण भाग बना रहेगा और जनता की आर्थिक जीवन के दिन प्रतिदिन की प्रक्रियाओं को जानता

और नियंत्रित करता रहेगा। इसलिये सार्वजनिक नीति को सम्मुख रखकर ट्रेड यूनियन आन्दोलन के उद्देश्यों को अधिक स्थान देना चाहिये और सार्वजनिक व निजी मामलों में अधिकारों के उपयोग के बारे में कुछ मात्रा में उन्हें स्वायत्तशासी होना चाहिये। उपर वाले वाक्य में कुछ मात्रा में अधिनायकवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है, जिसके अनुसार राज्य की भूमिका में प्रशासन और ट्रेड यूनियन आन्दोलन के कार्यकलाप दोनों एक दूसरे के क्षेत्रों में विद्यमान रहते हैं, जब कि राज्य की वह व्याख्या–जिसके अनुसार अराजकता समर्थक अथवा उदारवादिता दोनों ही हैं, ऊपर लिखी गयी भूमिका को ट्रेड यूनियन आन्दोलन के हाथ में सुपुर्द करने में कठिनाई का अनुभव करेगा। वस्तुतः दोनों ही प्रकार की द्विविधायें इस कारण से उत्पन्न होती हैं, क्योंकि उनके अनुसार राज्य सभी प्रभावों का केन्द्र है। परन्तु इतिहास के तथ्य हमें बतलाते हैं कि यह केवल मात्र एक अल्प काल के लिये सत्य है तथा लम्बे काल में मनुष्य प्रकृति की आधार-भूत शक्तियां अपने आप को एक मौलिक तथ्य के रूप में प्रकट करती हैं और राज्य की सही उपयोगिता के बारे में विरोधाभास और द्विविधायें प्रकट करती हैं। प्राचीन भारतीय मनीषियों की बुद्धिमत्ता इस दृष्टि में निहित है कि राष्ट्र पुरुष विराट को उन्होंने जनता का जीता जागता और बढ़ता हुआ एकात्मकभाव का स्वरूप दिया। समाज के इस राष्ट्र पुरुष के भिन्न-भिन्न अंगों से सभी प्रकार के धर्म उत्पन्न होते हैं जो राज्य अथवा क्षेत्र, कार्यविधि, किसी अन्य आधार पर बने किसी भी जन समूह और पद, आयु अथवा जीवन की कार्यविधि के अनुसार व्यक्तियों से सम्बन्धित रहते हैं। इस धर्म, जो प्रकृति के उन नियमों, जिनके अनुसार वे जन समूह को इकट्ठा बनाये रखते हैं और उनकी जीवन यात्रा को नियंत्रित करते हैं, और जिसे 'लोक संग्रह' और 'लोक यात्रा' के नाम से प्रकट किया गया है, को स्पष्ट रूप से देखा और जीवन शास्त्र के रूप में बतलाया। उसके अनुसार समाज के प्रत्येक भाग को इन नियमों के अनुसार चलने के अन्तर्गत जीवन की वास्तविक स्वतन्त्रता, समरसता और परिपूर्णता की अनुभूति होती है। यह शास्त्र कोई कानून नहीं था, जिसे राज्य सत्ता अथवा किसी अन्य द्वारा प्रकाशित हो। यह वह 'वाणी' थी, जो विभिन्न रूपों, पेचीदीगियों, गहरे अन्तर सम्बन्धों के रूप में सत्य के कार्यकलापों से सम्बन्धित है और जो मानव मात्र को उनके कार्यकलापों में मार्ग दर्शक के रूप में दी गयी है। इस शास्त्र के निरन्तर अभ्यास से समाज ने अपने आपको गठित किया। इतिहास अथवा पुराण ने इन शास्त्रों की महत्ता को जन साधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया, जो उस जाति के स्वानुभव के रूप में प्रकट की गयी है। ये शास्त्र जन-समुदाय के लिये किसी भी प्रकार के अपनाये जाने वाले अनिवार्य नियमों की रूप रेखा को प्रकट नहीं करते, बल्कि कार्य की प्रक्रिया और इसके परिणाम–कर्म फल को बतलाते हैं और विशेष परिस्थितियों में किन-किन

पद्धतियों को अपनाना चाहिये, को समझाते हैं । इसी प्रकार समय-समय पर भारतीय ऋषियों ने 'श्रम विधि' को भी बतलाया है और उनसे हम उद्योग सम्बन्धी विषयों पर आज बहुत से परामर्श पाते हैं, जो वृहस्पति, याज्ञवल्क, नारद, मनु, शुक्र, कौटिल्य और अन्य महापुरुषों द्वारा दिये गये हैं । राज्य ने अपने काम को समाज पुरुष की आवश्यकतानुसार सेवा करना माना है । महाभारत-के शान्तिपर्व में हम पाते हैं कि जब युधिष्ठिर भीष्म से राज्य की उत्पत्ति के बारे में पूछते हैं, तो भीष्म उत्तर में बताते हैं कि पुरातन काल में न राज्य था और न राज्याधिकारी तथा न दँड पाने वाला और न दंड देने वाला था, वरन् समाज में व्यक्ति एक दूसरे को धर्म की शक्ति के आधार पर सुरक्षा करता था ।

न राज्यं नैव राजाऽसीत न दण्डयो न च दाण्डिकः ।
धर्मणैव प्रजा सर्वे रक्षन्ति स्म परस्परम् ।।

न कोई संविधान था और न परिणाम स्वरूप न कोई अनुशासन की कार्यवाही ही विदित थी ।

तेषां नासीद विद्यातव्यं प्रायश्चित कथंचन ।

कोई मृत्युदंड न था, पुरातन काल में सामाजिक निन्दा ही एक मात्र दण्ड था ।

पुराधिग्दण्ड एवाऽसीत वधदण्डोऽद्य वर्तते ।

समाज इस आदर्श स्थिति से क्रमशः गिरता गया । क्या कारण था ? भीष्म कहते हैं—

ते मोहवशमापन्ना मनुजा मनुजर्षभ ।
प्रतिपत्ति विमोहाश्च धर्मस्तेजामनीनशन ।।

व्यक्तियों के मस्तिष्क में द्विविधा फैलने लग गई, उनकी मौलिक शिक्षा दूसित होने लग गयी और परिणाम स्वरूप उनका धर्म छिन्न भिन्न हो गया । तत्पश्चात ईश्वर के आदेश पर राज्य संस्था को अपनाया गया और राजा को सामाजिक संविधान के सरक्षक के रूप में सिंहासनारुढ़ किया गया ।

वर्णाश्रमधर्मप्रतिपालको राजा ।

यहाँ पर यह ध्यान रखने योग्य है कि राजा अथवा सर्वेसर्वा शब्द के अर्थ राजा के रूप में नहीं हैं, जैसा कि विदेशियों ने हमें विश्वास करने के लिये सिखाया । राजा 'धर्म' को कार्यान्वित करने वाला था, न कि कोई 'लार्ड' अथवा धरती का स्वामी और न कानून बनाने वाला । वस्तुतः वह भी कानून से नियंत्रित था । कोई भी राजा अथवा यवराज नहीं बन सकता था, जब तक उसे अधिष्ठित होने के लिये जनसभा की सम्मति और उससे भी बढ़कर उस भू भाग के ऋषियों द्वारा आशीर्वाद प्राप्त न हो जाता । इतना ही नहीं एक छोटे से क्षेत्र का राजा भी अपना स्थान

ग्रहण नहीं कर सकता था, जब तक निःस्वार्थ और प्रबुद्ध ऋषिगण जो कि ७ नदियों के किनारों पर निवास करते थे, (स्वाभाविकतः ये सातों नदियां उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर थीं और भारत के सभी भागों की थी), इ के अभिषेक को पूर्ण नहीं करते। तत्पश्चात उसे उसकी जिम्मेवारियां और कार्यक्रम जो कि उसे पूरे करने होते हैं, बतलाये जाते थे और उसे बताया जाता था कि यदि वह धर्म के अनुसार काम करने में असफल होगा तो धर्म दण्ड के अन्तर्गत उसे दण्ड दिया जायगा अथवा गद्दी से हटा दिया जायगा। ऋग्वेद (१० वां मण्डल) और अथर्ववेद (६ ठां मण्डल) में राजा को बताया गया है कि हमने तुम्हें अपने बीच में अब अधिष्ठित कर दिया है तुम सिद्धान्तों, जो समाज को इकट्ठा बनाये रखता है, उस पर दृढ़ रहो, ताकि जन समुदाय के सभी समूहों को तुम्हारी उपस्थिति इच्छित रहे। समाज को अवनति की ओर मत फिसलने दो, तुम जानों कि तुम प्रजा (विशामय) के हो और तुम्हें राष्ट्र को आदि काल तक बनाये रखना है। इस प्रकार से काम करने पर भूमि के सभी क्षेत्रों में भिन्न विचार रखने वाले भी तुम्हें एक मन से सहयोग देंगे और उनकी समितियां (एसेम्बलीज) स्थायी रूप से तुम्हें बनाये रखेंगी।

आत्वाहार्षमन्तर भूर्ध्रुवास्तिष्टाविचलत्।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तुमा त्वद्राष्ट्रमाधिभ्रशत्॥
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्टेह राष्ट्रमुधारय।
ध्रुवो राजा विशामयम् राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्।
सर्वा दिशः संगनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह॥

यह राज्य कल्पना का मूल है और आधुनिक विचार तथा उसकी प्रगति के सभी घोषणाओं के बाद भी राज्य दर्शन के सभी प्रकार के अनुभव हमें इसी अनुभूति पर लाकर खड़ा कर देते हैं, कि यही मात्र प्रथम विचार है और अन्तिम विचार भी यही है। यह बुद्धिमानी होगी कि हम धर्म की इस कल्पना को ठीक प्रकार से और स्पष्ट रूप से समझें, इसकी सभी धारणाओं की व्याख्या करके प्रस्तुत करें, जो एक स्वतन्त्र और महान जन समूह की सम्मिलित यात्रा को बनाये रख सके और इस दृष्टिकोण के तर्क (Logic) की रूप रेखा को तैयार कर सके।

## सामाजिक व्यवस्था और राज्य

अब तब हमने अपनी याचिका में ढांचे के बनाने की पद्धतियों, प्रेरणाओं, दृष्टिकोणों, नियमावलियों, आदर्शों, सिद्धान्तों, सामूहिक गतिविधियों और रचनात्मक दिशाओं को प्रस्तुत किया है, जो सामूहिक एक औद्योगिक परिवार के जीवन की धारणाओं और राष्ट्रीय भावनाओं के एकीकरण को सम्मिलित करके बनती है। अब इस अन्तिम अध्याय में यह प्रस्तुत करना आवश्यक है कि ये विचार किस प्रकार से काम करते हैं और राज्य के संविधान और कार्य कलापों की क्या दिशा होनी

चाहिये, जिन्हें प्रारम्भ में ही हमारे आदर्शों ने इंगित किया है। हमने पहले ही उद्योगों की प्रत्येक इकाई में वर्क्स कमेटी के निर्माण का उल्लेख किया है और उन्हें दिन प्रतिदिन की प्रक्रियाओं और उन्हें बरखास्त करने पर अपने विचार आदि से सम्बन्धित नियमों के बहुत से अधिकारों को बतलाया है। हमने एक औद्योगिक परिवार की कल्पना को कानूनी वादविवाद की आवश्यकता के अन्तर्गत भी प्रस्तुत किया है। हमने उद्योग को सामाजिक संरक्षण, बेरोजगारी बीमा और उसी प्रकार की स्कीमों तथा अभिनवीकरण और तकनीक सम्बन्धी विषयों पर निर्णय होने से श्रमिक को हानि पहुंचने से बचाने के लिये व्यवस्था को प्रशासन के रूप का उल्लेख किया है। श्रमिकों को कारखानों में शेयर होल्डर्स बनाने की प्रक्रिया का भी उल्लेख किया है, जिसके फलस्वरूप हम क्रमशः 'श्रमिकीकरण' की ओर बढ़ेंगे। कर्तव्यों के निर्धारण और उनसे सम्बन्धित नामकरण, कार्य मूल्यांकन और वेतन नीति सम्बन्धी आधारभूत सिद्धान्त हमें उद्योग की मर्यादाओं को पारकर व्यवसाय आधारित प्रभावी समूह को बनाने में भी सहायक बन सकते हैं। हमने योजना में श्रमिकों को सम्बन्धित करने की आवश्यकता को भी इंगित किया है और अपनी योजना को विकेन्द्रीकरण का स्वरूप देने के लिये भी उल्लेख किया है, जिसके अन्तर्गत शहरों (Township) का जो एक विस्तृत जाल पैदा हो–हर एक शहर (Town) प्रमुखतः एक उद्योग पर आधारित हो, विकास करे और शहर की सम्पूर्ण सामाजिक जीवन इस प्रकार की हो, ताकि हर श्रमिक को अपना घर बनाने के लिये उचित स्थान मिल सके। इन सभी सुझावों के अन्तर्गत हमारी यह इच्छा है कि इन सब बातों से अपना समाज स्वयं में संगठित (Self possessing collectivity) ढांचे के आधार पर निर्माण करने हेतु आधार बने, साथ ही स्व सामुहिकीकरण जो अपने विस्तृत रूप में एक स्वायत्तशासी एकीकरण की प्रक्रिया है और जो हिन्दुस्थान की पुरातन पद्धति रही है, विकसित करे। ध्यान रहे यह सामाजिक आर्थिक ढांचे का परिपक्व सिद्धान्त है। नारद स्मृति पुरातन काल के औद्योगिक समितियों के क्रमबद्ध ढांचे के बारे में उल्लेख करती है कि आपसी व्यवसाय सम्बन्धों के आधार पर सभी व्यक्तियों द्वारा मिले जुले व्यवसाय संगठन को एक 'कुल' कहा जाता था।

जातिसम्बन्धि बन्धुनां समूहः कुलम्।

कुल स्तर पर मातृभाव का सिद्धान्त अच्छी प्रकार से प्रस्थापित था। जब भिन्न-भिन्न व्यवसायों के लोग एक अन्तिम उत्पाद् अथवा काम अथवा सेवा की घोषणा करने हेतु इकट्ठा होते थे तो इससे 'श्रेणी' बनती थी।

नानाजातीयानामेकजातीयं कर्मकुर्वतां समूहः श्रेणयः।

भिन्न व्यवसायों और उद्योगों के श्रमिकों जो एक सामान्य क्षेत्र के सभी बिखरे हुये श्रमिक थे, के संगठन से एक 'युग' बनता था।

भिन्नजातीनां भिन्नवृत्तीनाम् एक स्थान निवासिनां समूहाः पूगा । उनके आपसी सम्बन्ध पैतृक भाव पर आधारित थे ।

कुलानि श्रेणायश्चैव गणाश्चाधिकृतो नृपः ।
प्रतिष्ठा व्यवहाराणां गुर्वेभ्यस्तूत्तरोत्तरम् ॥

विश्व भर के औद्योगिक सम्बन्धों के बारे में हमारे विवेचन ने यह प्रगट किया है कि किस प्रकार सभी स्थानों पर भिन्न-भिन्न स्तरों पर औद्योगिक श्रमिकों के संगठन बनाने की आधुनिक मनोवृत्ति है और किस प्रकार सम्बन्धित सत्ता की उन्हें उपयुक्त और अन्य कार्यकलापों को करने देने की मनोवृत्ति है । इन परिपक्व सामाजिक आर्थिक संगठनों को अपनाकर परियोजना (Plant) स्तर पर एक श्रम समिति होनी चाहिए जैसा कि सभी श्रमिकों की एक क्षेत्रीय यूनियन यूगोस्लाविया में है या जैसा कि पुरातन भारतीय शास्त्रों में 'युग' के नाम से लिखा गया है । जिसमें कार्य स्तर, उत्पादन, वितरण, वेतननीति, आदान-प्रदान, आवास एवं कार्य की स्थिति से सम्बन्धित सभी मामलों का परियोजना अथवा कारखाने स्तर पर श्रमिकों और प्रबन्धकों की समिति और नागरिकों व औद्योगिक श्रमिकों की क्षेत्रीय स्तर पर समिति की 'सामूहिक कड़ी' द्वारा निर्धारित की जाती है । हमने देखा है कि यूगोस्लाविया ने कुछ हद तक इस कड़ी का विकास किया है । साथ ही तब एक व्यावसायिक समिति भी होनी चाहिए, अपने व्यवसाय से सम्बन्धित कार्यकलापों जैसे प्रशिक्षण, शोध, व्यावसायिक स्तर को बनाये रखने और आपसी रद्दोबदल की जिम्मेदारी को निभा सके । यह समिति एक विशेष काम को भी निभा सकती है, जिसके अन्तर्गत वह कारखाने स्तर पर की समितियों के ऊपर एक प्रकार का नियन्त्रण रख सकती है, जबकि वह अपनी राक्षसी बहुमत का दुरुपयोग कर जितने समुदाय की महत्ता को दुर्लक्ष करने अथवा दबाने में श्रेणी के अनुसार यूनियन का यह ढांचा, अंग्रेजी ढांचे के स्वरूप की महत्ता को सामाजिक जीवन की कोई भी हानि पहुंचाये बिना इनकार नहीं किया जा सकता । इन सब समितियों के ऊपर औद्योगिक परिवार और उसके ऊपर संसद का विशिष्ट सदन (अपर हाऊस) होना चाहिये, जो कार्यकलापों अर्थात् व्यवसायों पर आधारित प्रतिनिधित्व से बने । इन सभी समितियों को राष्ट्रीय योजना और अपने-अपने क्षेत्र के कार्यकलापों को कार्यान्वित कराने के सम्बन्ध में उपयुक्त निर्णय करने सम्बन्धी अधिकार और जिम्मेवारियां दी जानी चाहिये । राष्ट्रीय योजना के बनाने और कार्यान्वित करने में किस प्रकार इनके अधिकार और कार्यकलाप हों और किस भांति इनसे परामर्श किया जाय तथा सम्मिलित किया जाय—की ओर हम पहले ही संकेत कर चुके हैं । इजराइल और मेक्सिको के उदाहरण हमें संकेत देते हैं कि किस प्रकार इससे एकीकरण (Coordination) हेतु औपचारिक या अनौपचारिक साधनों को बनाया जा सकता

है । एक मात्र अन्तर, जिसका हम आभास करते हैं, वह यह है कि इन समितियों के कार्यकलाप कमेटी पद्धति के द्वारा नहीं होने चाहिये, बल्कि हर क्रम पर इन्हें समितियों का ही स्वरूप बनाये रखना चाहिये, जहां पर कि विद्वान और निःस्वार्थ व्यक्तियों की सहायता से 'धर्म' को परिभाषित किया जा सके । जनक ने इसे 'सभा' नाम से परिभाषित किया है ।

न सा सभा यत्थ न सन्ति सन्तो ।
न ते सन्तो ये न भणन्ति धम्मं ॥
रागं च दोसं च पहाय मोहं ।
धम्मं भणन्ता च भवन्ति सन्तो ॥

यह समिति (एसेम्बली) के लिये गुणात्मक कोरम के रूप में है । जब तक किसी सभा अथवा समिति में धर्म की व्याख्या करने वाले कुछ लोगों की उपस्थिति नहीं होती, तब तक उस सभा को ठीक प्रकार से बनी हुई अथवा उसकी बैठक को ठीक प्रकार से कार्यान्वित की गयी की घोषणा नहीं की जा सकती । धर्म की व्याख्या करने वाले वे लोग होते थे, जो मन से विरक्त हैं, अपनी वाणी और क्रियाओं में दोष रहित हैं और समिति में उपस्थित होने के लिए कोई प्रलोभन नहीं है । वस्तुतः समिति की इस अनोखी बनावट और इस संवैधानिक प्राविधान के पीछे छिपी हुई गहरी बुद्धिमत्ता को चुनौती नहीं दी जा सकती । हम आज भी यह अनुभूति कर सकते हैं कि किस प्रकार हमारे योग्य पूर्वज चतुः आश्रम (सन्यास) में दाखिल होने और अनुभवों और ज्ञान से पूर्ण होने पर भगवान की गतिविधियों की सत्यता को प्रस्तुत करके समितियों को उन दृष्टिकोणों से प्रकाशित करते थे । ध्यान रहे ये कोसन्यासी एक स्थान से दूसरे स्थान पर हमेशा घूमते रहते थे और किसी भी स्थान पर ३ दिन से अधिक नहीं रहते थे और वशिष्ठ के समान उच्चस्तर की अनुभूति को प्राप्त करते थे । ये सन्यासी समिति के सम्मुख हर समस्या की व्याख्या, रहने की कला, हर समस्या के कारण व निदान के सम्बन्ध को बतलाते थे (जैसा कि महाभारत में विस्तृत रूप से प्रगट होता है) और इसके पश्चात निर्णय करने के लिये सभा पर छोड़ देते थे । यद्यपि कुछ समितियों (एसेम्बलीज) जैसे-कंश अथवा दुर्योधन की थी, को ऋषियों के परामर्श की चिन्ता नहीं थी, क्योंकि निर्णय हेतु सभी समितियाँ स्वतन्त्र थी, क्योंकि प्रजातांत्रिक प्रणाली में यह अनोखा प्राविधान था कि अपने सही उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अपना अत्युत्तम सम्भव रास्ता जो मानवता प्राप्त कर सकती है, अपनावें । हर स्तर पर नीति निर्धारण हेतु एक समिति होनी चाहिये, इसे एक समान प्रेरणा केन्द्र द्वारा चालित होनी चाहिये, एक समान निर्णय पर आना चाहिए और समान नियमों व नियंत्रणों को स्वीकार करना चाहिए, जैसा कि ऋग्वेद में लिखा है—

समानो मन्त्रः समितिः समाती समानं व्रतम् ।

पैतृक और अन्तर सम्बन्धी सामूहिक जीवन–एक राष्ट्र के जीवन को बनाता है । राज्य को इन सबके बीच में नियमों को स्थापित करने वाले के रूप में खड़ा होना चाहिए, जो राष्ट्र जीवन और उसकी समितियों के कार्यकलापों को सुविधा प्रदान करे । इस प्रकार से ही उत्पादन कल्याण में बढ़ोत्तरी, ज्ञानदान का विस्तार और सर्वव्यापी सम्पन्नता आ सकती है । जैसा कि राजा को 'अभिषेकमन्त्र' समझाता है—

इयं ते राष्ट्र । यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः ।
कृष्यैत्त्वा, क्षेमाय त्त्वा, रय्यैत्त्वा, पोषायत्त्वा ।।

यह राज्य की जिम्मेदारी है कि वह अपने आपको इससे अवगत कराये कि किस प्रकार जनता को सम्पन्नता प्राप्त हो सकती है किस प्रकार से उन पद्धतियों को जिनसे राष्ट्र लाभान्वित हो और सुखी समृद्धि आवे, लागू की जाय और बनाये रखी जाय, जैसा कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में परिभाषित है—

मनुष्याणां वृत्तिरर्थः मनुष्यवृत्ती भूमिरित्यर्थः ।
तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायः तस्यं शास्त्रमर्थशास्त्रमिति ।।

इस अर्थशास्त्र की परिभाषा इकानामिक्स (Economics) शब्द की व्याख्या से व्यापक है, क्योंकि अर्थशास्त्र न केवल मनुष्य व्यवहार से सम्बन्धित विज्ञान है, बल्कि तकनीकी सम्बन्धी विज्ञान भी है और वह एक ओर मनुष्य की इच्छाओं 'काम' के ज्ञान और दूसरी ओर सामाजिक संकलन (Social Synthesis) 'धर्म' के नियमों पर आधारित है । ये सभी शास्त्र राजधर्म के एक भाग का प्रगटीकरण करते हैं, जो राज्य की स्थापना से सम्बन्धित है यह उन आवश्यकताओं से उत्पन्न होती है, जो राज्य की कल्पना को जन्म देती है और मार्ग दिखाती है कि किस प्रकार से उसकी गतिविधियाँ पूरी की जा सकती हैं जैसा कि मनुस्मृति अपने ७ वें अध्याय के शुरू में कहती है—

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ।
संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमायथा ।।

महाभारत का शांन्ति पर्व भी हमें बतलाता है कि जब कोई व्यक्ति राजनीतिक सत्ता के स्थान पर बैठता है तो उसे अपनी व्यक्तिगत इच्छा अथवा अनिच्छा के आधार पर नहीं चलना चाहिये, बल्कि जनसमाज के हित के लिये जो अनिवार्य हो, उसके अनुसार चलना चाहिये, जैसा कि एक गर्भवती स्त्री अपनी व्यक्तिगत मनो इच्छाओं से दूर रहती है और वही सब कुछ अपनाती है जो कि बच्चेदानी के भीतर पलने वाले भ्रूण (बच्चे) के लिये लाभप्रद होता है ।

यथा हि गर्भिणी हित्वा स्वं प्रियं मनसोऽनुगम् ।
गर्भस्य हितमाधत्ते तथा राजाऽप्यसंयम् ॥
वर्तितव्य कुरुश्रेष्ठ यथल्लोके हितं भवेत् ॥

पुनः शान्ति पर्व बतलाता है कि 'उस राजा को सर्वोच्च माना जाना चाहिये, जिसके शासन में नागरिक बिना किसी भय के रहते हों, जैसे बच्चे अपने पिता के घर में रहते हैं।'

पुत्रा इव पितुर्गेहे विषये यस्य मानवाः ।
निर्भया विचारिष्यन्ति स राजा राजसत्तमः ॥

ऊपर की दोनों ही उपमायें—अद्यौगिक सम्बन्धों की राज्य नीति की आवश्यकताओं को अत्युत्तम ढंग से प्रस्तुत करती हैं। यह देखना राज्य का कार्य होना चाहिए कि हर एक नागरिक बिना किसी भय के वह रास्ता अपना सके जिससे कि वह अपने कार्य और जीवन पद्धति द्वारा अपने विकास को कर सके, साथ ही राज्य की यह स्थायी जिम्मेवारी है कि वह जाति की क्षमताओं के पोषण हेतु हर समय अपनी भूमिका अदा करे। समाज व पुरुष के बीच के विकास की सहायता हेतु राज्य की यह निर्माणकारी भूमिका है तथा उसके लिये यह आवश्यक है कि राजनीतिज्ञ इस विषय को बड़े ध्यान पूर्वक और मार्मिक रूप से ग्रहण करें, क्योंकि इसके किये बिना यह निश्चित है कि वे अपने आपको नपुंसक रूप में सिद्ध करेंगे। सार्वजनिक नीति के हर पहलू के लिये राज्य को जनता के पूर्ण विश्वास का भाजन बनना चाहिए।

'राजा भवति भूतानां विश्वास्यो हिमवानिव ।'—शान्ति पर्व

पुरातनकाल के भारतीय विचारकों द्वारा अनुभूति किये गये राज्य के वे कार्यकलाप और वे संविधान होने चाहिये, जो कि हमें एक महान व श्रेष्ठ परम्परा के रूप में मिले हैं।

एवं परम्पराप्राप्तम् इमं राजर्षयोः विदुः । स कालेनेह महता धर्मो
नष्टः परंतप । स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।

जैसा कि कृष्ण ने यह आवश्यक समझा था कि इस खोये हुये 'योग' को भगवद्गीता के रूप में पुनः प्रस्तुत करें, इसी प्रकार अब यह भी आवश्यक है कि राज्य के संविधान और कार्यकलापों के बारे में परम्परागत ज्ञान को पुनः प्रस्तुत किया जाय। यह वह ज्ञान है जो पुरातन काल के ऋषियों एवं राजाओं को मालूम थी और उसका उपयोग किया जाता था। यह न केवल इसलिये आवश्यक है कि यह हमारी पैतृक सम्पत्ति है और एक प्रेरणादायक पक्ष है वरन् इसलिये भी अनिवार्य है क्योंकि यह राज्य की जिम्मेवारियों और जनजीवन में उसके स्थान के बारे में अत्युम वैज्ञानिकप रिभाषाओं को व्यक्त करता है आधुनिक काल का कोई भी इज्म (वाद)

इस जानकारी को पूर्णरूपेण खोज नहीं पाया है, यद्यपि सभी प्रकार के वाद इस ज्ञान की खोज के लिये प्रयत्न कर रहे हैं और क्रमशः अनुभवों के आधार पर इस ओर प्रस्तुत हो रहे हैं, जैसा कि गीता में कहा गया है –ऐसा होना स्वाभाविक ही है पर यदि ऐसे अनुभव न भी होते तो भी वही निष्कर्ष निकलता ।

कर्तुंनेच्छारी यन्मोहात् करिषस्यावशो ऽ पितत् ।

इस प्रकार हमारे सम्मुख हमारे स्वपनों के अनुसार एक संगठित समाज का चित्रण है । इस चित्रण के अनुसार राज्य की वह कल्पना नहीं है, जो संस्था और पद्धतियों पर, कानून और प्रशासन के ऊपर तथा एक जीवित समाज के स्थान पर एक यांत्रिकीय राज्य की स्थापना की जाय । यह तो एक मरणासन्न प्रवृत्ति पर आधारित जंजीर है, जो अच्छी प्रकार से विभूषित होकर सैनिकीय अनुशासन की कुशलता को पोषित करती करती है, बल्कि हम अपने सम्मुख एक दूसरे प्रकार की दृष्टि रखते हैं, जिसके अन्तर्गत परियोजना (प्लान्ट) स्तर पर समितियों का एक समूह, जो कि हर उद्योग और हर युग के लिये है, क्षेत्र और उद्योग सम्बन्धी आधार पर है तथा हर एक उद्योग के लिए राष्ट्रीय स्तर पर है, जो गतिविधियों सम्बन्धी कार्य के लिये संसद के वरिष्ठ सदन 'उद्योग सभा' के रूप में परिणित हो । इन सभी को मिलाकर ही समाज पुरुष का पूरा चित्रण होता है । समाज के इस जीवित ढांचे में परियोजना स्तर की समिति की आधारभूत लघु समुदाय एक जोशीले, किन्तु स्वाभाविक आन्तरिक शक्ति के प्रथम चरण के रूप में विकसित होती हैं (इसके दूसरे छोर का उदाहरण रूस की आधुनिक वाध्यता के अन्तर्गत निम्न स्तर पर चल रही ट्रेड यूनियन्स और अनिवार्य विकेन्द्रीकरण की स्थिति है) । स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर ये लघु समितियां स्वाभाविक और स्वतन्त्र रूप से अपनी मर्यादायें और रूप रेखा, जीवन के ढांचें और सामाजिक आर्थिक पद्धतियों के रूप देंगी, ध्यान रहे ये आधारभूत मान्यतायें समुदाय के जीवन के अन्तर्ज्ञान और स्वभाव से उत्पन्न होंगी । क्रमशः उच्चस्तर पर सामूहिकीकरण से ये लघुसमूह एक दूसरे में मिश्रित होते जायेंगे, जो बढ़ते-बढ़ते एक सामाजिक और सांस्कृतिक एकता में प्रगट होंगी और इनसे भी व्यापक समूह समितियों के बनने से एक समान भावना और एक समान आधार तथा एक व्यापक ढांचे का निर्माण होगा । ध्यान रहे कि प्राचीन काल में इसके लघु स्वरूप और ढांचे के असंख्य रूपों में बहुत स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है । यह भारतीय समाज का आदर्श था । कोई कठोर समानता की आवश्यकता न थी, समान भावना और जीवन प्रवृत्ति एक व्यापक एकात्म के नियम को ढांचे के लचीलेपन पर थोपने के लिये पर्याप्त थी । समाज के इस ढांचे में निम्न और छोटे स्तर पर ऊपर लिखी हुयी संस्थाओं में विशेष गुण निहित थे, न कि व्यापक सामाजिक आर्थिक ढांचे में इनको समाप्त किया गया था । समाज के प्राकृतिक विकास में जो अपने आपको

स्थायी नहीं कर पाया और जिसकी अ वश्यकता नहीं थी, स्वय ही रास्ते से हट गया और निष्फल होने के कारण समाप्त हो गया, साथ ही जिसने परिस्थितियों और वातावरण के अनुकूल अपने आपको ढाला, वे जीवित बने रहे तथा जो कोई जन जीवन और स्वभाव के स्वस्थ औ· सुदृढ़ नियमों के अनुरूप काम करते रहे, वे व्यापक बन गये और समाज नीति और पुरुष के स्थायी रूप में अपना स्थान प्राप्त कर लिये। मनुष्य निमित्त के प्रति गम्भीर सम्मान, भारतीय जीवन और आत्मा का प्राकृतिक प्रकटीकरण, धर्म का स्वस्थ व सही प्रकटीकरण अथवा मनुष्य मात्र के अस्तित्व के उचित नियम–भारतीय समाजशास्त्र के तय किये गये सिद्धान्तों अर्थशास्त्र और राजनीति के सबल इकाईयों के रूप में सदैव बने रहे हैं। जन समुदाय के जीवन की प्राकृतिक व्यवस्था को यांत्रिकी पद्धति द्वारा स्थानापन्न करना–यूरोपियन सभ्यता की बीमारी रही है, जो अब अफसरी राज्य के राक्षसी अकृतिम संगठन के रूप में परिणित हुयी है। ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका का जो विश्व व्यापी चित्रण किया गया है, वह यह प्रस्तुत करता है कि किस प्रकार सभी स्थानों पर जन-समुदाय के स्वतन्त्र आन्तरिक भाव राज्य के इस लौह सदृश कठोर और यमराज समान कानून–जो यांत्रिकी अथवा ठेनेदारी सम्बन्धी जीवन प्रणाली है, उससे बाहर निकलने की कोशिश कर रहा है, जबकि दूसरी ओर सत्य व शुभ और आत्मनिर्भर किये जाने वाले निर्माणकर्ता के आधार पर भारतीय जीवन की नींव रखी गयी है। जीवन को 'मैं' के प्रकटीकरण के रूप में माना गया है। समुदाय को ब्रह्माण्ड निर्माता ब्रह्मा का का शरीर माना गया है, और उसमें समाज को समष्ठि भाव के रूप में तथा ब्रह्मा को जीव के रूप में माना गया है। इस सामूहिक प्रक्रिया को नारायण के रूप में माना गया है, जैसे– व्यक्ति को व्यक्ति में निहित ब्राह्मण माना गया और उसी प्रकार राजा अथवा राज्य को धर्म का संयंत्र माना गया और समुदाय की शेष व्यवस्थाओं को इस सामूहिक पक्ष के अन्तर्गत प्राकृतिक रूप में स्थान दिया गया। समाज के ये सभी अंग एक दूसरे से सम्बन्धित सत्ता के रूप में होने के कारण अपने अधिकार को न केवल राज्य से प्राप्त करते थे, बल्कि एक सम्माननीय और पवित्र मार्ग से प्राप्त करते थे, जिसको प्रभावहीन करना राज्य के अधिकार में नहीं था। जैसा कि अरविन्द ने इसे संक्षेप में प्रस्तुत किया है, "विश्व के समान मनुष्य जीवन की ठीक व्यवस्था प्राचीन भारतीय विचार के अनुसार चलती रहती है, जिसके अनुसार हर व्यक्ति अपने स्वधर्म, जो उसका सही कानून और प्रकृति की मर्यादा है, को इमानदारी से अपनाता है और समूह का व्यवहार एक सामूहिक जीव प्राणी के अनुसार होता है जो उसकी प्रकृति और सही कानून के अन्तर्गत भी क्रियाशील रहता है। ध्यान रहे कि व्यक्ति और समूह की प्रकृति अपने ही प्रकार की होती है। परिवार, वर्ग, जाति, समाज, धर्म' औद्योगिक अथवा अन्य समुदाय, राष्ट्र और जनता सभी को जीव प्राणी के

रूप में माना गया है और वे अपने धर्म का विकास करते हैं और अपने पालन, स्वस्थता, निरन्तरता और स्वस्थ कार्यकलापों की स्थिति को अपनाते हैं। सामाजिक स्थान, उसके कार्यकालापों और अन्यों से सम्बन्ध हेतु भी धर्म ही है, जैसा कि परिस्थिति, वायुमण्डल, काल और वे सब जो प्राकृतिक धर्म पर प्रभावित हो हे हैं, धर्म पर भी लागू होते हैं। ध्यान रहे कि ये सभी गतिविधियां स्वाभावानुकूल होती हैं और नियमों के समूह को बनाती हैं इसलिये स्वयं से निर्धारित होने वाला व्यक्ति और समूह प्राणी होने के नाते और जिसके द्वारा प्राणी बनाया गया है, के उचित और स्वतन्त्र नियम के अनुसार जीवित रहना आदर्श है। और राज्य का काम समाज के जीवन से बिना आवश्यकता के हस्तक्षेप करना नहीं है और उसे अपने नियम, रीति-रिवाज स्वाभाविक विकास के अनुसार अत्यधिक समय तक काम करने देना चाहिये। इस ठीक प्रक्रिया मे सहयोग और निरीक्षण भी करना चाहिये और यह देखना चाहिये कि धर्म को उत्साह से अपनाया जाता है और जो नकारात्मक दृष्टि अपनाते हैं, उन्हें दबाना चाहिये, दण्डित करना चाहिये और जहां तक हो सके धर्म के विरुद्ध आक्रमण को रोकना चाहिये। इसलिये इस जीव समान राजनीति के सत्ताधारी वर्ग की यह प्रमुख जिम्मेवारी थी कि वह समाज जीवन के इस स्वस्थ कानून को अपनाने हेतु सहायता व सेवा करे। राज्य प्रमुख धर्म का संरक्षक और प्रशासक था। समाज के प्रमुख कार्यकलाप की अन्तरात्मा आर्थिक और मनुष्य की दूसरी आवश्यकताओं और उसकी आमोद-प्रमोद और खुशहाली के अन्तर्गत सुख प्राप्ति के दावे के सही समाधान में निहित है, जो कि उनके ठीक नियमों के अनुसार हो, उनके समाधान का माप हो और जो नैतिक व सामाजिक धर्म के आधीन हो। सामाजिक आर्थिक–समूह के सभी सदस्यों और गुट का अपना धर्म था, जो उनकी प्रकृति, उनके स्थान और पूरे समूह के साथ उनके सम्बन्धों के आधार पर निर्धारित था और उसके स्वतन्त्र और सही उपयोग करने के लिये विश्वास दिया गया था। उन्हें अपनी मर्यादाओं में अपने और अपने द्वारा निर्धारित कार्यकलापों को करने की छूट थी और साथ ही अपनी सही मर्यादाओं और उचित कार्यकलापों से दूर हटने अथवा अपनी मर्यादाओं को पार कर दूसरे में दखल देने पर अंकुश लगा हुआ था। राज्य को इतना मात्र करने के लिये कहा गया था कि वह एकात्मकता उत्पन्न करे, सर्वसाधारण और सर्वोच्च नियन्त्रण को कार्यान्वित करे, जरायम और अव्यवस्था को दबाये, आर्थिक और औद्योगिक कल्याण की व्यापक शृंखला को नियन्त्रित करे, सुविधाओं के प्राविधानों को देखे और इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उस सत्ता का प्रयोग करे–जो इन सभी की सीमा के बाहर है। परिणामस्वरूप भारतीय राजतन्त्र बहुत ही पेचीदे प्रकार की प्रभावी पद्धति थी, जिसमें साम्प्रदायिक स्वतन्त्रता और स्वनिर्धारण था। समाज के हर एक समूह की इकाई की अपनी उचित जीवन व्यवस्था

और व्यापार था, वह व्यापार अन्य सभी के कार्य क्षेत्र और सीमाओं से एक प्राकृतिक आधार पर विभाजित था, परन्तु वह समूह से एक अच्छी प्रकार और समझदारी के सम्बन्धों से जुड़ी थी। यह व्यवस्था साम्प्रदायिक अस्तित्व की जिम्मेवारियों और सत्ताओं में शेष सभी के साथ सह सहभागी थी, अपनी उचित सीमाओं के अन्तर्गत अपने कानूनों व नियमों का प्रशासन करती थी, सामूहिक व सार्वजनिक हितों के सम्बन्धों के वार्तालाप और नियन्त्रण से जुड़ी हुयी थी और राज्य की सार्वजनिक समितियों में भी एक प्रकार से प्रतिनिधित्व करती थी और इस प्रतिनिधित्व का अनुपात इसकी महत्ता पर आधारित था। राज्य एकीकरण व एकात्मता का संयंत्र था और उसकी रक्षा हेतु वह सर्वोच्च अधिकार का प्रयोग करता था परन्तु यह अधिकार पूर्णरूपेण न था, क्योंकि इसके सभी प्रकार के हक और सत्ता, कानून और जनता की इच्छा शक्ति की सीमा में आबद्ध थी। और वह अपने सभी भीतरी कार्य-कलापों में सामाजिक राजनीतिक संगठन के दूसरे सदस्यों के साथ सहभागी था। यही भारतीय राजतन्त्र का विवेचन सिद्धान्त और वास्तविक संविधान था। साम्प्रदायिक स्वतन्त्रता और सहनिर्धारण की पेचीदी व्यवस्था, जिसको एक सर्वोच्च एकीकरण अधिकृत शक्ति नियंत्रित करती थी और यह कुशल सत्ता स्थान और सम्मान से सज्जित थी, परन्तु अपने हकों और कार्यकलापों में सीमित की गयी थी, क्योंकि अपने को स्वयं नियन्त्रित करती थी और शेष से नियंत्रित होती थी, साथ ही वह अपनी सभी शाखाओं में उसे सक्रिय सहभागी के रूप में स्वीकार करती थी, साम्प्रदायिक अस्तित्व के लिये प्रशासन और नियंत्रण में भागीदार थी और इस प्रकार राज्य जनता और उसके सभी भाग जो समुदाय के रूप में थे, धर्म के चक्र की देख-रेख और उसके नियंत्रण के अधीन थी। साथ ही साम्प्रदायिक जीवन के आर्थिक और राजनीतिक जीवन, धर्म के ही एक भाग थे, जो अपने में पृथक-पृथक नहीं थे परन्तु एक दूसरे से गहन और जटिल रूप से जुड़े हुये थे और सामाजिक अस्तित्व के उच्चतम सांस्कृतिक उद्देश्य 'धर्म और नैतिकता' थे। समाज जीवन को अपने में ही एक उद्देश्य के रूप में नहीं माना जाता था, यद्यपि अपनी पद्धति के अनुसार उसका विशेष स्थान था, बल्कि अपने सभी पक्षों और सम्पूर्ण को एक उच्च ढांचे के रूप में माना जाता था, जो मानव मस्तिष्क और आत्मा तथा उसके विकास की शिक्षा के लिये प्रशिक्षण का आधार था। प्रकृति से आध्यात्मिक अस्तित्व की ओर उसका विकास किया जाता था।" सम्पूर्ण भारतीय पद्धति सभी प्रकार की व्यवस्थाओं के एक सामूहिक जीवन में निकट रूप से भाग लेने पर आधारित था, हर एक अपने क्षेत्र में मुखिया था, परन्तु किसी को भी नागरिक जीवन व राजनीति में एक प्रभावी स्थान और आवाज, प्रशासन, न्याय में उसको अपने हिस्से से दूर नहीं रखा जाता था। परिणामस्वरूप किसी भी समय प्राचीन भारतीय राजनीति का विकास इस

प्रकार नहीं हुआ अथवा कम से कम इसका वह स्वरूप लम्बे काल तक नहीं बना रहा, जिसके अन्तर्गत वर्ग नियम के स्वरूप एक दूसरे से भिन्न हों और अछूते हों, जैसा कि एक लम्बे काल तक और बड़े शक्तिशाली रूप से दूसरे देशों की राजनीतिक इतिहास में स्पष्टत: दिखाई देते हैं। इस प्रकार भारतीय चिन्तन और स्वभाव एक बुद्धिमत्तापूर्ण और स्थायी संकलन पर पहुँची है। यह कोई खतरनाक अस्थाई संतुलन न था, यह कोई समझौता या सन्तुलन न था बल्कि सभी प्रकार के प्राकृतिक सत्ताओं और व्यवस्थाओं का संकलन था, यह एक जीवित और आवश्यक एकीकरण था, जो सामुदायिक समूह के सभी अंगों के स्वतन्त्र कार्य-कलापों के प्रति सम्मान रखता था तथा परिणामस्वरूप अपने क्षय, गड़बड़ी और अव्यवस्था के रोकने में समर्थ था। ध्यान रहे कि उक्त सभी बाते मनुष्य सम्बन्धोपद्धतियों पर काब पाती हैं और उनकी भिन्न-भिन्न गति होती है।

## तब हमें क्या करना चाहिये

सामाजिक आर्थिक पुनःनिर्माण के लिए भारतीय राज्यतन्त्र का यह आधार भूत सिद्धान्त है और यह जिस हद तक पहले लागू किये जाने योग्य थे, उससे किसी भी मात्रा में अब कम नहीं अपनाया जाना चाहिये। मनुष्य मात्र के रहन-सहन के लिये विश्व के किसी अन्य देश ने इससे बढ़िया ढांचे को इगित करने अथवा विकास करने के योग्य कोई ढांचा नहीं बनाया। इन आधार भूत सिद्धान्तों में ऐसा कुछ नहीं जो हमारी आधुनिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के विरुद्ध हों और उसके अनुसार उचित न बैठता हो। यदि वे हमारे अथवा पूरे विश्व के लिए कुछ प्रस्तुत करते हैं, जो बहुत से विचारों के व्यापक संकलन के रूप में है, जिसके लिये सारा विश्व बड़ा परिश्रम कर रहा है अथवा उसको प्राप्त करने के लिये तड़पड़ा रहा है। हमें अपने आपको पुन: खोजना चाहिये। ऋषियों के दिये हुये तत्वज्ञान को सम्मुख लाना चाहिये, जो एक विद्वतापूर्ण सत्य है। ये सभी लोग स्व अनुभूति और स्व प्रशंसा के आधार पर अपने आपको और इसमें व्यापक संकलन को खोजें। इस पुरातन राष्ट्र के इस प्रकार के पुनः संगठन से विश्व के संगठित जीवन में इसको बड़ी सरलता और शक्तिशाली ढग से प्रवेश करना चाहिए, ताकि विश्व को भगवानोन्मुख प्रयत्नों में नेतृत्व करने हेतु अपने ध्येय की पूर्ति वह कर सकें। राजनीति के इस ज्ञान को हमारे लिए पुनरावृत्ति करना कोई लम्बे काल की बात नहीं है। अपने इतिहास के समीप के ही काल में और हर पन्ने पर इसके अभ्यास के चिन्ह मिलते हैं। उदाहरणार्थ भारतीय प्रशासन अभ्यास की यह एक साधारण रीति थी कि किसी कार्य सम्बन्धी व्यक्ति की आवश्यकताओं को उसके बाहरी कार्यकलापों द्वारा उतना नही प्रस्तुत किया जाता था, जितना उसकी भीतरी विशेषताओं द्वारा उस स्थान की जिम्मेवारियां को निभाने के लिए आवश्यक है। कार्यकलाप सम्बन्धी

चारों वर्णों को भी उनकी भीतरी कुशलताओं को ध्यान में रखकर बतलाया गया है, जैसा कि शमो दमस्तपः शौचं .....आदि। शुक्रनीति के अनुसार राजा के सलाहकारों की जिम्मेवारियों को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है–

राजा तु धार्मिकान् सम्यान नियुज्ज्यात् सुपरीक्षितान्।
व्यवहारधुरंवोढुं ये शक्ताः पुङ्गवा इव ॥
लोकवेदज्ञधर्मज्ञाः.....आदि।

हम प्रशासन के तरीकों के आधारभूत विचार समान रूप से देखते हैं जो कि प्रशासकों की सर्वव्यापी प्रशंसनीय परम्परा है। मराठा इतिहास में रामचन्द्र नीलकण्ठ आमात्य की आज्ञायें (अमात्यांजी आज्ञापत्र) इन दिशाओं को पूरे रूप में प्रकट करती हैं जो कि राज्यतंत्र की आदिकाल से स्थापित व्यवस्था में निहित है। उदाहरणार्थ- शिवा जी द्वारा व्यक्तियों के साथ किये गये वर्ताव व व्यवहार सम्बन्धी ढंगों क बतलाते हुये उन्होंने लिखा है–"मनुष्य परीक्षनें नूतन चसेवक नवाजून योग्यतेनुसार भार वाढवून महत्कार्योपयोगी करून दाखविले। येकासयेक असाध्य असतां स्वसामर्थे सकलांवरि दया करून येकाचा येकापासून उपमर्द होऊं न देतां येकरुपर्तेने वर्तऊन त्याहातून स्वामि कार्ये घेतली।" प्रशासन के अभ्यास से सम्बन्धित यह छोटा स त्विवरण बहुत सी ऐसी पद्धतियों का बोध कराती हैं, जिसमें यह बतलाया गया है कि सरकार को किसी उद्देश्य हेतु किस प्रकार संगठित किया जाना चाहिये और किस प्रकार से प्रभावी काम करना चाहिये। उसमें यह प्रकट होता है कि भारतीय प्रशासक इस बात से अवगत थे कि किस प्रकार चुनाव और नियुक्ति के समय व्यक्ति के गुणों को पहचानना चाहिये और किस प्रकार प्रशिक्षण और अनेक उदाहरणों द्वारा तथ्योपस्थापन की प्रक्रिया में से गुजरना चाहिये, ताकि वह अधिक से अधिक जिम्मेवारी और विस्तृत कार्य के निभाने योग्य बन सके और किस प्रकार कार्य की महानता और विस्तार के स्वरूप अपने आपको कुशल सिद्ध कर सके। उन्हें इस बात की भी अनुभूति थी कि किस प्रकार बहुत से महत्वाकांक्षी व्यक्तियों के सर्वव्यापी क्षमता वाले (Master-Mind) समूह को साथ लेकर (Team work) उनके काम करने की क्षमता का उपयोग जा सकता है, किस प्रकार से उनके आपसी संघर्षों को हटाया जा सकता है, किस प्रकार स्नेह भाव और दया भाव के विस्तार हेतु सत्ता का उपयोग किया जा सकता है, ताकि सत्ता के कार्य के लिये समर्पण भाव के कारण कोई भी एक दूसरे के काम में हस्तक्षेप न कर पाये और सभी एकता की भावना से एक दूसरे के कार्य में सम्मलित हों भारतीय श्रम और औद्योगिक प्रशासन के लिये यह अनिवार्य है कि मन और हृदय की इन कुशलताओं का प्रकटीकरण हो, क्योंकि यही एक मात्र मार्ग है, जिसमें इच्छित सामाजिक और आर्थिकजीवन के जीवित ढांचें का निर्माण हो सकती है और स्थायी बनाकर रख सकती है। मनुष्य में इन दैवी योग्यताओं को किस प्रकार

पैदा किया जाय, चार आश्रमों में से पहला आश्रम, 'ब्रह्मचर्य'–इस क्षेत्र की प्रथम खोज है। हमें भारतीय शिक्षा पद्धति ने हर मनुष्य में इन क्षमताओं को पैदा करने की प्रक्रिया प्रदान की है, जो कि ध्यान को केन्द्रित कर अभ्यास से पैदा होती है परन्तु इनके बारे में हमें दूसरे मंच पर बोलना होगा, क्योंकि यहा पर हम द्वितीय आश्रम, 'गृहस्थाश्रम' के बारे में बोल रहे हैं। श्रम का क्षेत्र और औद्योगिक अभ्यास का क्षेत्र–'गृहस्थाश्रम की स्थापना और उसकी समृद्धि से सम्बन्धित है, जो सामाजिक जीवन में रीढ़ की हड्डी का काम करती है और जिसके ऊपर शेष आश्रम आश्रित रहते है और फलते फूलते रहते हैं तथा इस राष्ट्र के सामने जो एक प्रमुख काम के रूप में है और जो श्रम सम्बन्धी राष्ट्र व्यापी समस्या है, उत्पादन वितरण और आदान-प्रदान के क्षेत्रों में मानव शक्ति को दिशा देने, और सामाजिक आर्थिक ढांचे के बारे में साथ ही जो इस मानव प्रयत्न को नियंत्रित और संगठित कर सकती है, उसको एक 'श्रम–आ–श्रम' का स्वरूप दें। यहां पर हमने एक आधारभूत दिशा की ओर ही संकेत किया है, न कि प्राथमिक पद्धति की ओर।

हमें यह अवगत है कि यह प्रयत्न बहुत ही सीमित और असंगठित रूप में प्रस्तुत किया गया है, पर साथ ही हम इस तथ्य से भी परिचित हैं कि यहां पर लिखी आधुनिक समस्याओं का हल–भारत माता की अन्तरात्मा के गहरे और विस्तृत ज्ञान के एक लघु अंश से उत्पन्न हुयी है। हमें अपने आपको उन तथ्यों पर केन्द्रित करना चाहिये, क्योंकि यही एक मात्र मोक्ष का रास्ता है। राष्ट्र और व्यक्ति जो अन्तरात्मा के ज्ञान को प्राप्त करता है और उसमें जीवित रहता है, केवल मात्र वही इस समूचे ब्रह्माण्ड को अपना सकता है और एक रूप हो सकता है। 'स्वरत', अर्थात् अपने में स्वतन्त्र, आत्मसंयमी और स्वनियंत्रित ही विश्व का अधिकारी 'सम्राट' हो सकता है। यह सत्य है कि हम अपने प्राचीन काल के ढांचे की ओर नहीं जा सकते, परन्तु हम अपने अस्तित्व को अपनाकर पर्याप्त रूप में आगे बढ़ सकते हैं, जो हमें पहले से अच्छी, जीवित, वास्तविक और अधिक अन्तःसंयमी बना सकती है। अपने बीते वर्षों के अनुभव और आज तक के विश्व के अनुभव का सम्पूर्ण और सही रूप में उपयोग किया जा सकता है। इस संदर्भ में हम सुविधा प्राप्त स्थिति में हैं, क्योंकि हमारी आत्मा, प्रकृति और सिद्धान्तों की इमानदारी ने हमें एक आदर्श पूर्ण भूमिका प्रदान की है। हम आधुनिक काल की सभी समस्याओं को सफलतापूर्वक हल करने के लिये आग्रह रखें और आने वाले काल और भविष्य के वायुमण्डल के लिये अपने विशेष प्रकार के ढांचे का निर्माण करें और जो सभी प्रभावों और परिस्थितियों से सशक्त और कुशलतापूर्वक जूझने में सक्षम हो। इन सिद्धान्तों घोषणा, पद्धति और दिशा देने वाले ज्ञान के क्रियान्वित करने में बहुत अधिक कट्टर नहीं होना चाहिये। हर एक योग्य भारतीय मस्तिष्क को इसका हल निकालने के बारे में सोचना

चाहिये। अपने प्रभाव अधिकार और कार्यक्षेत्र में इसे क्रियान्वित करना चाहिये। भारतीय जागृति के युग की आत्मा जो अब जीवित हो रही है, शेष सबकी चिन्ता के लिये व्यापक रूप से जागरूक हो रही है, क्योंकि पुरातन विस्मरणीय शक्ति का पुनः स्मरण कर अपने गहरे अस्तित्व को फिर से प्राप्त कर रही है तथा प्रकाश और शक्ति की सर्वोच्च स्रोत की ओर अपने सिर को ऊँचा उठा कर बढ़ रही है। अब वह नित्य नूतन और महान भारत की खोज की ओर आमुख हुयी है, जिस पथ पर चलकर वह अपने धर्म के सम्पूर्ण अर्थ और व्यापक ढांचे को प्राप्त करेगी।

स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संहता स्वात्मशासिताः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः प्रेयः सलन्विताः॥
राष्ट्रांगभूताभूत्यर्थं राज्ययंशेण सेविताः।
उद्योगजनसंधास्ते धर्मचक्रप्रवर्तकाः॥

oooooooo